श्रीमंत सेठ सितावराय लक्ष्मीचंद्र जैन साहित्योद्धारक
सिद्धान्त ग्रंथमालासे प्रकाशनाधिकार प्राप्त

जीवराज जैन ग्रंथमाला
(धवला पुष्प– ४)

श्री भगवत्-पुष्पदन्त-भूतबलिप्रणीतः

षट्खंडागमः

वीरसेनाचार्य-विरचित-धवलाटीका-समन्वितः

तस्य प्रथमखंडे जीवस्थाने

हिन्दी भाषानुवाद–तुलनात्मक टिप्पण–प्रस्तावनानेकपरिशिष्टैः सम्पादिताः

क्षेत्र-स्पर्शन-कालानुगमाः

खंड–१ भाग–३, ४, ५ पुस्तक–४

– ग्रंथसम्पादक –
स्व. डॉ. हीरालाल जैन

– सहसम्पादकौ –
स्व . पं. फूलचन्द्र सिद्धान्त शास्त्री
स्व. पं. बालचन्द्र सिद्धान्त शास्त्री

– प्र का श क –
जैन संस्कृति संरक्षक संघ
संतोष भवन, फलटण गल्ली, सोलापुर–२

वीर निर्वाण संवत् २५२२ इसवी सन १९९६

विषय-सूची

	पृष्ठ
१ प्रस्तावना	
१ संपादकीय	१–२
२ विषय-परिचय	३–१४
३ विषय-सूची	१५–१८
२ मूल अनुवाद और टिप्पण	३३७–५९३
१ मोक्ष-अनुयोगद्वार आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज	३३७–३३८
२ संक्रम-अनुयोगद्वार	३३९–४८३
३ लेश्या-अनुयोगद्वार	४८४–४८९
४ लेश्याकर्म-अनुयोगद्वार	४९०–४९२
५ लेश्यापरिणाम-अनुयोगद्वार	४९३–४९७
६ सातासात-अनुयोगद्वार	४९८–५०६
७ दीर्घ-ह्रस्व-अनुयोगद्वार	५०७–५११
८ भवधारणीय-अनुयोगद्वार	५१२–५१३
९ पुद्गलात्त-अनुयोगद्वार	५१४–५१५
१० निधत्त-अनिधत्त-अनुयोगद्वार	५१६
११ निकाचित-अनिकाचित-अनुयोगद्वार	५१७
१२ कर्मस्थिति-अनुयोगद्वार	५१८
१३ पश्चिमस्कन्ध-अनुयोगद्वार	५१९–५२१
१४ अल्पबहुत्व-अनुयोगद्वार	५२२–५९३
३ परिशिष्ट	१–५४
१ धवलाकार-प्रशस्ति:	१
२ पुस्तकप्रदातृ-प्रशस्ति:	१–३
३ अवतरणगाथा-सूची	४
४ ग्रंथोल्लेख	४–५
५ ग्रंथकारोल्लेख	५–६
६ परंपरागतउपदेश	६
७ उपदेश भेद	६–७
८ पारिभाषिक शब्दसूची	७–१०
९ षट्खंडागमसूत्र व धवलाटीकाके सोलहों भागोंकी सम्मिलित पारिभाषिक शब्दसूची	११–५४

विषय सूची

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

		पृष्ठ
१	Introduction	i–iv
२	Mathematics of Dhavala (with index)	i–xxiv
३	धवलाका गणित शास्त्र	१–२८
४	शुद्धिपत्र	१–२

प्रस्तावना

१	प्राक् कथन	१–४
२	आवश्यक निवेदन	५–८
३	शंका–समाधान	९–१४
४	विषय–परिचय	१५–२१
५	क्षेत्र-स्पर्शन-कालप्रमाणदर्शक चार्ट	
६	विषय–सूची	२२–५१

२

मूल, अनुवाद और टिप्पण १–४८८

	क्षेत्रानुगम	१–१३८
	स्पर्शनानुगम	१३९–३०९
	कालानुगम	३११–४८८

३

परिशिष्ट १–४२

१	क्षेत्रप्ररूपणा सूत्रपाठ	१
	स्पर्शनप्ररूपणा सूत्रपाठ	५
	कालप्ररूपणा सूत्रपाठ	१३
२	अवतरण-गाथासूची	२६
३	न्यायोक्तियाँ	२७
४	ग्रंथोल्लेख	२८
५	पारिभाषिक शब्दसूची	३०–४२

चित्र सूची

		मुख पृष्ठ
१	मृदंगाकार लोकका सामान्य दृश्य	मुख पृष्ठ
२	मृदंगाकार लोकका यथादर्शन चित्र	,,
३	मृदंगाकार लोकका तलविन्यास	,,
४	अधोलोकका सूपाकार विन्यास	,,
५	अधोलोकका सूपाकार विन्यासका यथादर्शन चित्र	,,
६	अधोलोकका सूपाकार विन्यासका (समीकृत) चित्र	,,
७	,, ,, ,, का उपरितन दृश्य	
८	अधोलोकका सूपाकार विन्यासका खंडदर्शन चित्र	,,
९	खंड नं. २ और ५ का यथादर्शन चित्र	,,
१०	खंड नं. २ और ५ का एकपर एक रखनेपर दृश्य	,,
११	खंड नं. १, ३, ६ व ७ के यथादर्शन चित्रमें त्रिकोणाकार और चतुरस्राकार खंड	,,
१२	मध्यखंड नं. ४ का यथादर्शन चित्र	,,
१३	चतुरस्राकार लोकका पूर्व-पश्चिम दृश्य	,,
१४	,, ,, यथादर्शन चित्र	,,
१५	,, ,, का तलविन्यास	,,
१६	भ्रमर चित्र	,,
१७	गोम्ही ,,	,,
१८	शंख ,,	,,
१९	महामत्स्य ,,	,,
२०	लोकाकाशमें स्वर्ग-नरक विभाग	,,

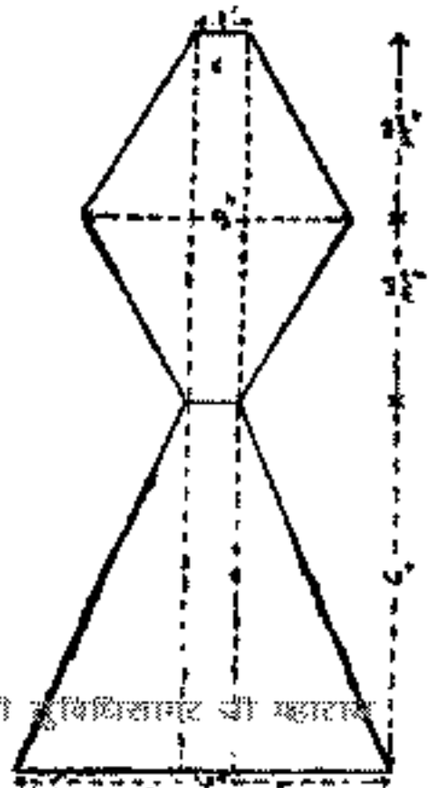

मृदंगाकार लोक का सामान्य दृश्य.
आ.क्रं. ३

(पृ. १२)

आ.क्रं. ४

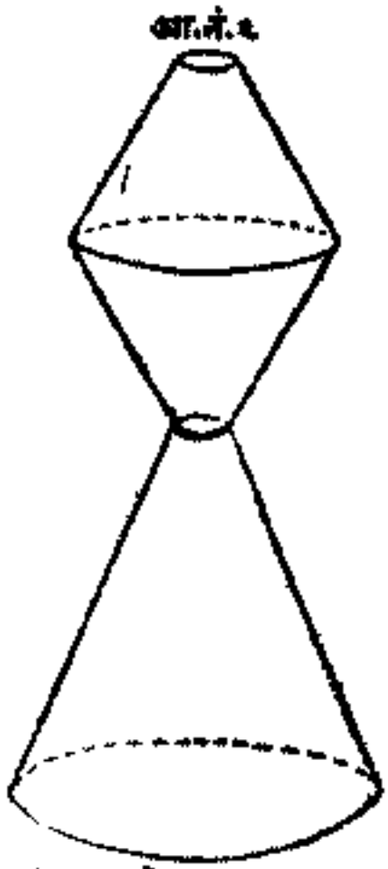

मृदंगाकार लोक का –
– यथादर्शन चित्र.

(पृ. १२)

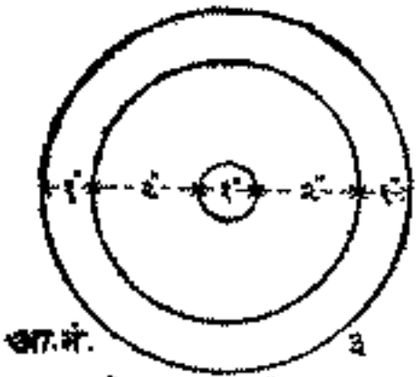

आ.क्रं. ३

भू-लो. का तलविन्यास.

(पृ. १२)

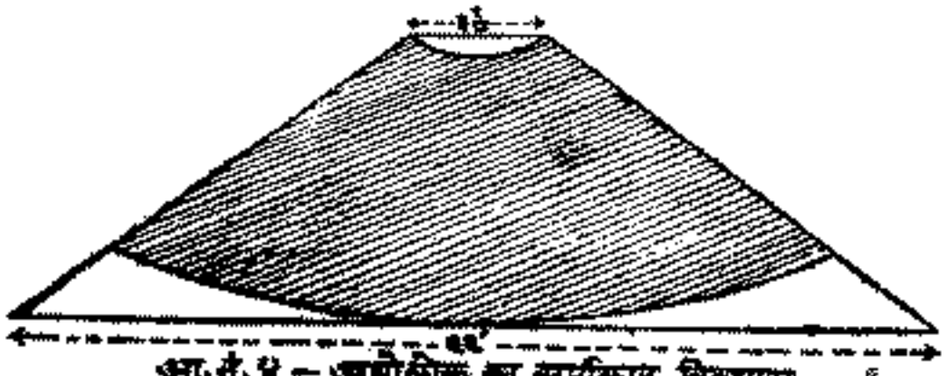

आ.क्रं. ५ – अधोलोक का सूपाकार विन्यास.

(पृ. १३)

आ.नं.९

अ.लो. सूचिकार विन्यास का यथादर्शि चित्र.

(पृ. १३)

आ.नं. ६.

अधोलोक सूचिकार विन्यास. (सम्मीकृत)

(पृ. १३)

आ.नं. ७

अधोलोक सूचिकार का उपरितम दृश्य.

(पृ. १३)

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

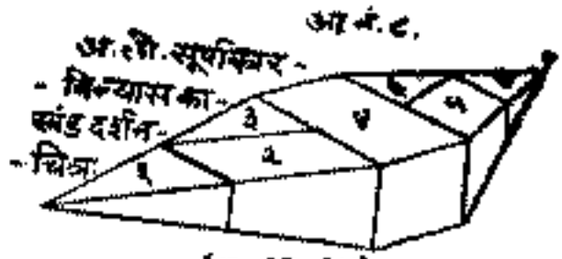

आ.नं. ८.

अ.लो. सूचिकार - विन्यास का खंड दर्शित - चित्र.

(पृ. १३-१४)

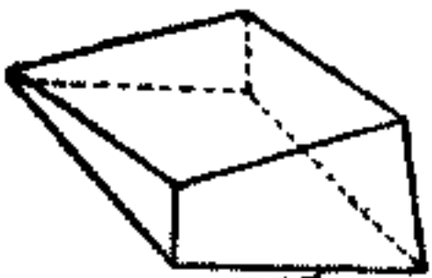

आ.नं. ९ खंड नं. २ और ५ का यथादर्शि चित्र.

(पृ. १४)

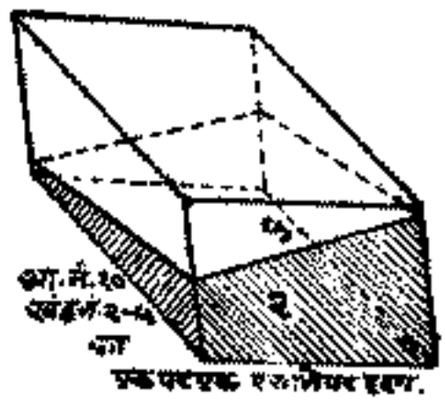

आ.नं. १० खंड नं. २-५ का

एक पार्श्वक दृश्यलेख दृश्य.

(पृ. १४)

आ.नं. ११. खंड नं. १-३-६-७ के यथादर्शि चित्रों निरोधनाकार और बहुरूपाकार खंड.

(पृ. १४)

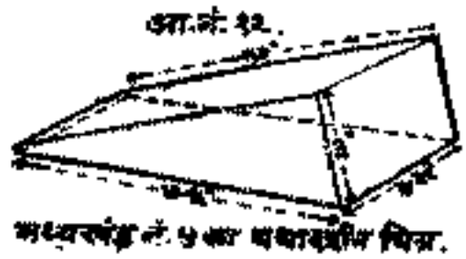

आ.नं. १२.

मध्यखंड नं. ५ का यथादर्शि चित्र.

(पृ. १५)

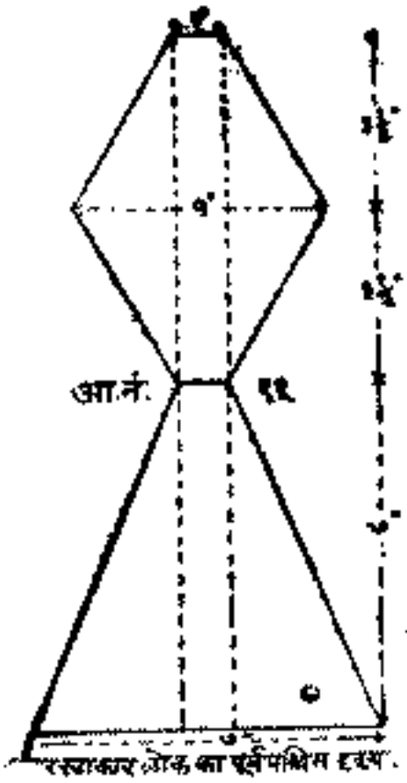

चतुरस्राकार लोक का ऊर्ध्वमध्यम द्रव्य.

(पृ. १९-२०)

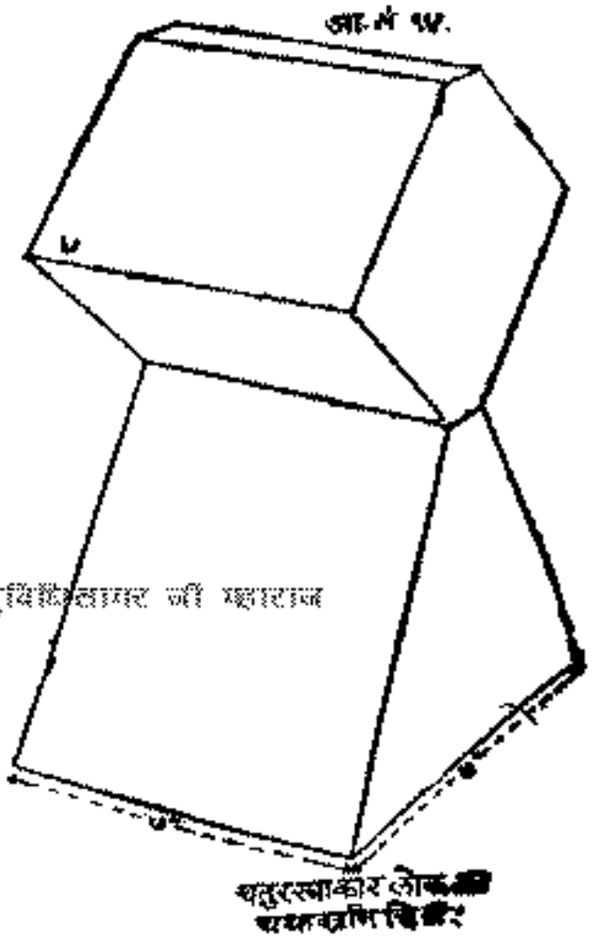

चतुरस्राकार लोक का ऊर्ध्वमध्यम विस्तार

(पृ. १९-२०)

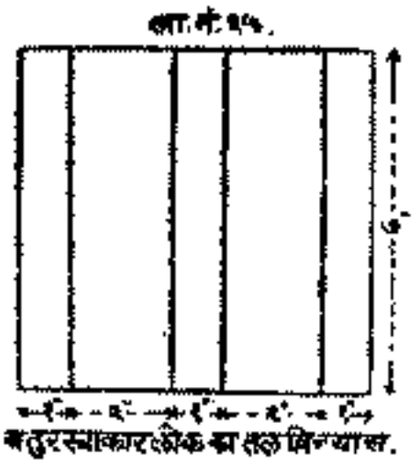

चतुरस्राकार लोक का तल विन्यास.

(पृ. १९-२०)

(पृ. ३५)

(पृ. ३५)

(पृ. ३५)

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

महामत्स्य आ.नं.१९

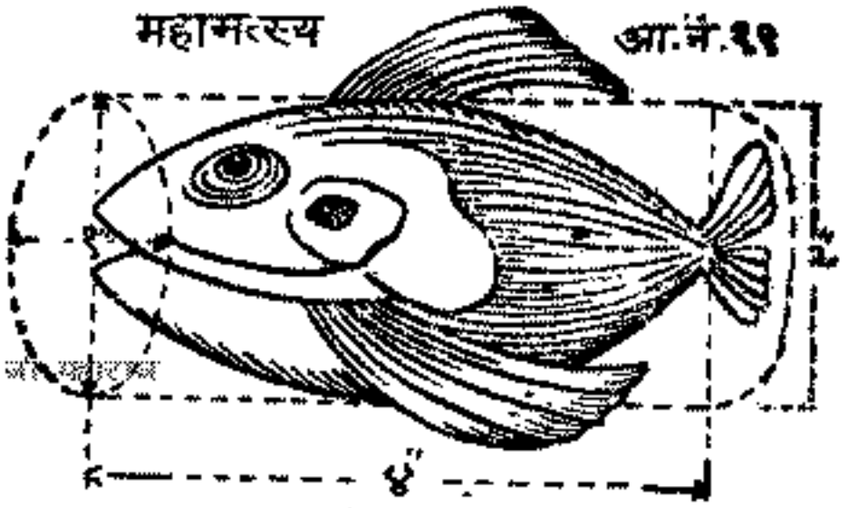

(पृ. ३६)

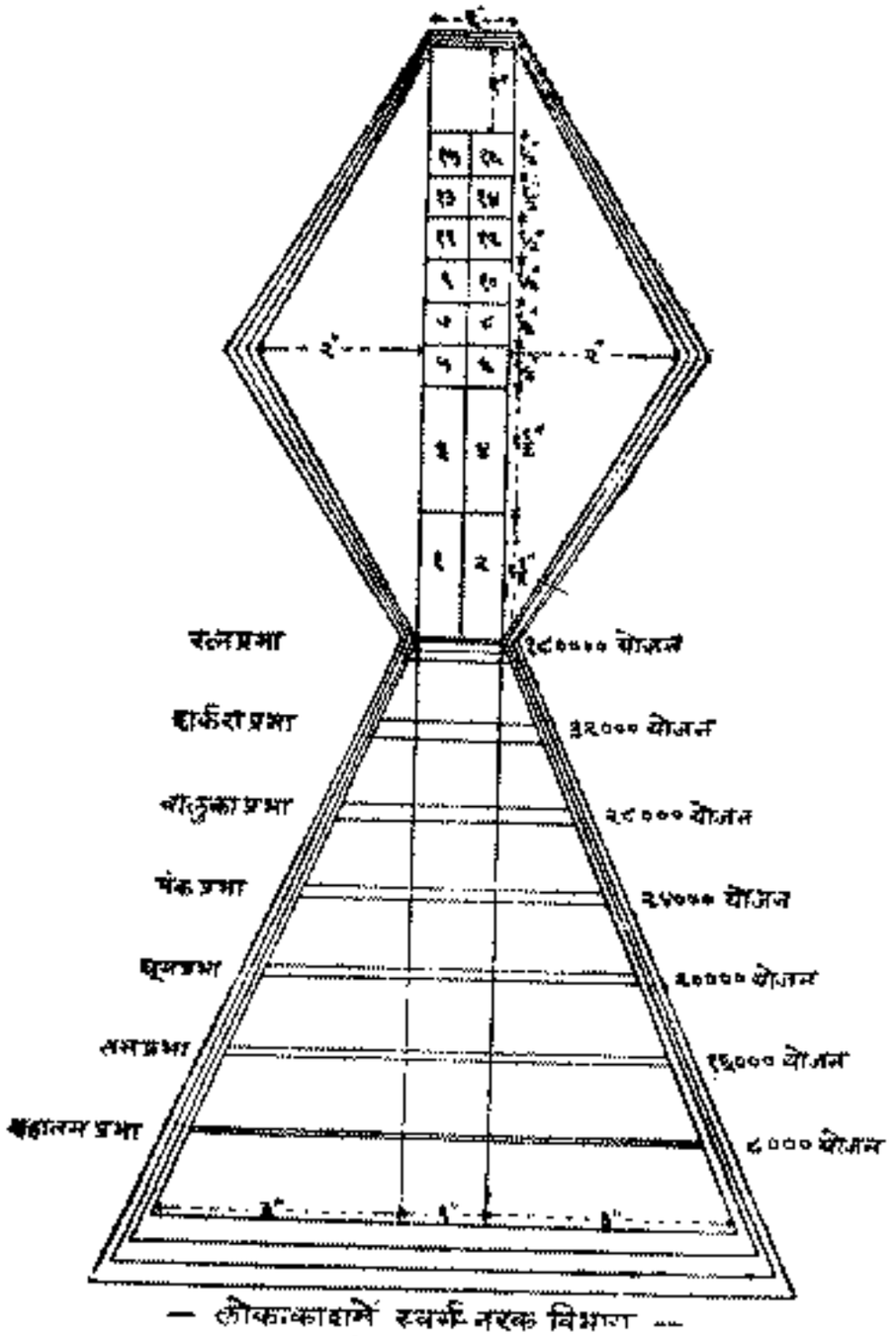

— लोकाकाशमें स्वर्ग-नरक विभाग —

(पृष्ठ ९७)

धवलाका गणितशास्त्र

(डा. अवधेश नारायण सिंह,
लखनऊ यूनीवर्सिटी, के लेखका अनुवाद)

यह विदित हो चुका है कि भारतवर्षमें गणित– अंकगणित, बीजगणित, क्षेत्रमिति आदिका अध्ययन अति प्राचीन कालमें किया जाता था। इस बातका भी अच्छी तरह पता चल गया है कि प्राचीन भारतवर्षीय गणितज्ञोंने गणितशास्त्रमें ठोस और सारगर्भित उन्नति की थी। यथार्थतः अर्वाचीन अंकगणित और बीजगणितके जन्मदाता वे ही थे। हमें यह सोचनेका अभ्यास होगया है कि भारतवर्षकी विशाल जनसंख्यामेंसे केवल हिंदुओंने ही गणितका अध्ययन किया, और उन्हें ही इस विषयमें रुचि थी, और भारतवर्षीय जनसंख्याके अन्य भागों, जैसे कि बौद्ध व जैनोंने, उसपर विशेष ध्यान नहीं दिया। विद्वानोंके इस मतका कारण यह है कि अभी अभी तक बौद्ध वा जैन गणितज्ञोंद्वारा लिखे गये कोई गणितशास्त्रके ग्रन्थ ज्ञात नहीं हुए थे। किन्तु जैनियोंके आगमग्रन्थोंके अध्ययनसे प्रकट होता है कि गणितशास्त्रका जैनियोंमें भी खूब आदर था। यथार्थतः गणित और ज्योतिष विद्याका ज्ञान जैन मुनियोंकी एक मुख्य साधना समझी जाती थी।

अब हमें यह विदित हो चुका है कि जैनियोंकी गणितशास्त्रकी एक शाखा दक्षिण भारतमें थी, और इस शाखाका कमसे कम एक ग्रन्थ, महावीराचार्य-कृत गणितसारसंग्रह, उस समयकी अन्य उपलब्ध कृतियोंकी अपेक्षा अनेक बातोंमें श्रेष्ठ है। महावीराचार्यकी रचना सन् ८५० की है। उनका यह ग्रन्थ सामान्य रूपरेखामें ब्रह्मगुप्त, श्रीधराचार्य, भास्कर और अन्य हिन्दू गणितज्ञोंके ग्रन्थोंके समान होते हुए भी विशेष बातोंमें उनसे पूर्णतः भिन्न है। उदाहरणार्थ- गणितसारसंग्रहके प्रश्न (problems) प्रायः सभी दूसरे ग्रन्थोंके प्रश्नोंसे भिन्न हैं।

वर्तमानकालमें उपलब्ध गणितशास्त्रसंबंधी साहित्यके आधारपरसे हम यह कह सकते हैं कि गणितशास्त्रकी महत्वपूर्ण शाखाएं पाटलिपुत्र (पटना), उज्जैन, मैसूर, मलवार और संभवतः बनारस, तक्षशिला और कुछ अन्य स्थानोंमें उन्नतिशील थीं। जब तक आगे प्रमाण प्राप्त न हों, तब तक यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि इन शाखाओंमें परस्पर क्या

---

१ देखो–भगवती सूत्र, अभयदेव सूरिकी टीका सहित, मेहसाणाकी आगमोदय समिति द्वारा प्रकाशित, १९१९, सूत्र ९०। जैकोबी कृत उत्तराध्ययन सूत्रका अंग्रेजी अनुवाद, ऑक्सफोर्ड १८९५, अध्याय ७, ८, ३८.

संबंध था। फिर भी हमें पता चलता है कि भिन्न भिन्न शाखाओंसे आये हुए ग्रन्थोंकी सामान्य रूपरेखा तो एकसी है, किन्तु विस्तारसंबंधी विशेष बातोंमें उनमें विभिन्नता है। इससे पता चलता है कि भिन्न भिन्न शाखाओंमें आदान-प्रदानका संबंध था, छात्रगण और विद्वान एक शाखासे दूसरी शाखामें गमन करते थे, और एक स्थानमें किये गये अविष्कार शीघ्र ही भारतके एक कोनेसे दूसरे कोने तक विज्ञापित कर दिये जाते थे।

प्रतीत होता है कि बौद्ध धर्म और जैन धर्मके प्रचारने विविध विज्ञानों और कलाओंके अध्ययनको उत्तेजना दी। सामान्यतः सभी भारतवर्षीय धार्मिक साहित्य, और मुख्यतया बौद्ध व जैनसाहित्य, बडी बडी संख्याओंके उल्लेखोंसे परिपूर्ण है। बडी संख्याओंके प्रयोगने उन संख्याओंको लिखनेके लिये सरल संकेतोंकी आवश्यकता उत्पन्न की, और उसीसे दाशमिक क्रम (The place value system of notation) का आविष्कार हुआ। अब यह बात निस्संशयरूपसे सिद्ध हो चुकी है कि दाशमिक क्रमका आविष्कार भारतमें ईसवी सन्के प्रारंभ कालके लगभग हुआ था, जब कि बौद्धधर्म और जैनधर्म अपनी चरमोन्नति पर थे। यह नया अंक-क्रम बडा शक्तिशाली सिद्ध हुआ, और इसीने गणितशास्त्रकी गतिप्रदान कर सुल्वसूत्रोंमें प्राप्त वेदकालीन प्रारंभिक गणितको विकासकी ओर बढाया, और वराहमिहिरके ग्रंथोंमें प्राप्त पांचवी शताब्दीके सुसम्पन्न गणितशास्त्रमें परिवर्तित कर दिया।

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

एक बडी महत्वपूर्ण बात, जो गणितके इतिहासकारोंकी दृष्टिमें नहीं आई, यह है कि यद्यपि हिन्दुओं, बौद्धों और जैनियोंका सामान्य साहित्य ईसासे पूर्व तीसरी व चौथी शताब्दीसे लगाकर मध्यकालीन समय तक अविच्छिन्न है, क्योंकि प्रत्येक शताब्दीके ग्रंथ उपलब्ध है, तथापि गणितशास्त्रसंबंधी साहित्यमें विच्छेद है, यथार्थतः सन् ४९९ में रचित आर्यभटीयसे पूर्वकी गणितशास्त्रसंबंधी रचना कदाचित् ही कोई हो। अपवादमें बख्शालि प्रति (Bakhsali-Manuscript) नामक वह अपूर्ण हस्तलिखित ग्रंथ ही है जो संभवतः दूसरी या तीसरी शताब्दीकी रचना है। किन्तु इसकी उपलब्ध हस्तलिखित प्रतिसे हमें उस कालके गणितज्ञानकी स्थितिके विषयमे कोई विस्तृत वृत्तान्त नही मिलता, क्योंकि यथार्थमें वह आर्यभट ब्रह्मगुप्त अथवा श्रीधर आदिके ग्रंथोके सदृश गणितशास्त्रकी पुस्तक नहीं है। वह कुछ चुने हुए गणितसंबंधी प्रश्नोंकी व्याख्या अथवा टिप्पणीसी है। इस हस्तलिखित प्रतिसे हम केवल इतना ही अनुमान कर सकते हैं कि दाशमिकक्रम और तत्संबंधी अंकगणितकी मूल प्रक्रियायें उस समय अच्छी तरह विदित थीं, और पीछेके गणितज्ञोंद्वारा उल्लिखित कुछ प्रकारके गणित प्रश्न (problems) भी ज्ञात थे।

यह पूर्व ही बताया जा चुका है कि आर्यभटीयमें प्राप्त गणितशास्त्र विशेष उन्नत है, क्योंकि उसमें हमको निम्न लिखित विषयोंका उल्लेख मिलता है– वर्तमानकालीन प्राथमिक

अंकगणितके सब भाग जिनमें अनुपात, विनिमय और ब्याजके नियम भी सम्मिलित हैं, तथा सरल और वर्ग समीकरण, और सरल कुट्टक (indeterminate equations) की प्रक्रिया तकका बीजगणित भी है। अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि क्या आर्यभटने अपना गणितज्ञान विदेशसे ग्रहण किया, अथवा जो भी कुछ सामग्री आर्यभटीयमें अन्तर्हित है वह सब भारतवर्षकी ही मौलिक सम्पत्ति है ? आर्यभट लिखते हैं "ब्रह्म, पृथ्वी, चंद्र, बुध, शुक्र, सूर्य, मंगल, बृहस्पति, शनि और नक्षत्रोंको नमस्कार करके आर्यभट उस ज्ञानका वर्णन करता है जिसका कि यहां कुसुमपुरमें आदर है[1]।" इससे पता चलता है कि उसने विदेशसे कुछ ग्रहण नहीं किया। दूसरे देशोंके गणितशास्त्रके इतिहासके अध्ययनसे भी यही अनुमान होता है, क्योंकि आर्यभटीय गणित संसारके किसी भी देशके तत्कालीन गणितसे बहुत आगे बढा हुआ था। विदेशसे ग्रहण करनेकी संभावनाको इस प्रकार दूर कर देने पर प्रश्न उपस्थित होता है कि आर्यभटसे पूर्वकालीन गणितशास्त्रसंबंधी कोई ग्रंथ उपलब्ध क्यों नहीं है ? इस शंकाका निवारण सरल है। दाशमिकक्रमका आविष्कार ईसवी सन्के प्रारंभ कालके लगभग किसी समय हुआ था। इसे सामान्य प्रचारमें आनेके लिये चार पांच शताब्दियां लग गई होंगी। दाशमिकक्रमका प्रयोग करनेवाला आर्यभटका ग्रंथ ही सर्वप्रथम अच्छा ग्रंथ प्रतीत होता है। आर्यभटके ग्रंथसे पूर्वके ग्रंथोंमें या तो पुरानी संख्यापद्धतिका प्रयोग था, अथवा, वे समयकी कसौटी पर ठीक उतरने लायक अच्छे नहीं थे। गणितकी दृष्टिसे आर्यभटकी विस्तृत ख्यातिका कारण, मेरे मतानुसार, बहुतायतसे यही था कि उन्होंने ही सर्वप्रथम एक अच्छा ग्रन्थ रचा, जिसमें दाशमिकक्रमका प्रयोग किया गया था। आर्यभटके ही कारण पुरानी पुस्तकें अप्रचलित और विलीन हो गई। इससे साफ पता चल जाता है कि सन् ४९९ के पश्चात् लिखी हुई तो हमें इतनी पुस्तकें मिलती हैं, किन्तु उसके पूर्वके कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हैं।

इस प्रकार सन् ५०० ईसवीके पूर्वके भारतीय गणितशास्त्रके विकास और उन्नतिका चित्रण करनेके लिये वास्तवमें कोई साधन हमारे पास नहीं है। ऐसी अवस्थामें आर्यभटसे पूर्वके भारतीय गणिज्ञानका बोध करानेवाले ग्रंथोंकी खोज करना एक विशेष महत्त्वपूर्ण कार्य हो जाता है। गणितशास्त्रसंबंधी ग्रन्थोंके नष्ट हो जानेके कारण सन् ५०० के पूर्वकालीन भारतीय गणितशास्त्रके इतिहासका पुनः निर्माण करनेके लिये हमें हिंदुओं, बौद्धों और

---

१ ब्रह्मकुजशिबुधभृगुरविकुजगुरुकोणभगणाश्चमस्कृत्य।
आर्यभटस्त्विह निगदति कुसुमपुरेऽभ्यर्चितं ज्ञानम् ॥ आर्यभटीय- २, १.

ब्रह्मभूमिनक्षत्रगणाश्चमस्कृत्य कुसुमपुरे कुसुमपुराख्येऽस्मिन्देशे अभ्यर्चितं ज्ञानं कुसुमपुरवासिभिः पूजितं ग्रहगतिज्ञानसाधनभूतं तन्त्रमार्यभटो निगदति। (परमेश्वराचार्यकृत टीका)

जैनियोंके साहित्यकी, और विशेषत: धार्मिक साहित्यकी, छानबीन करना पड़ती है। अनेक पुराणोंमें हमें ऐसे भी खंड मिलते हैं जिनमें गणितशास्त्र और ज्योतिषविद्याका वर्णन पाया जाता है। इसी प्रकार जैनियोंके अधिकांश आगमग्रन्थोंमें भी गणितशास्त्र या ज्योतिषविद्याकी कुछ न कुछ सामग्री मिलती है। यही सामग्री भारतीय परम्परागत गणितकी द्योतक है, और वह इस ग्रन्थसे जिसमें वह अन्तर्भूत है, प्राय: तीन चार शताब्दियां पुरानी होती है। अत: यदि हम सन् ४०० से ८०० तककी किसी धार्मिक या दर्शनिक कृतिकी परीक्षा करें तो उसका गणितशास्त्रीय विवरण ईसवीके प्रारंभसे सन् ४०० तकका माना जा सकता है।

उपर्युक्त निरूपणके प्रकाशमें ही हम इस नौवीं शताब्दीके प्रारंभकी रचना षट्खंडागमकी टीका धवलाकी खोजको अत्यन्त महत्त्वपूर्ण समझते हैं। श्रीयुत हीरालाल जैनने इस ग्रन्थका सम्पादन और प्रकाशन करके विद्वानोंको स्थायीरूपसे कृतज्ञताका ऋणी बना लिया है।

गणितशास्त्रकी जैनशाखा

सन १९१२ में रंगाचार्यद्वारा गणितसारसंग्रहकी खोज और प्रकाशनके समयसे विद्वानोंको आभास होने लगा है कि गणितशास्त्रकी ऐसी भी एक शाखा रही है जो कि पूर्णत: जैन विद्वानोंद्वारा चलाई जाती थी। हालहीमें जैन आगमके कुछ ग्रन्थोंके अध्ययनसे जैन गणितज्ञ और गणितग्रन्थोंसंबंधी उल्लेखोंका पता चला है[2]। जैनियोंका धार्मिक साहित्य चार भागोंमें विभजित है जो अनुयोग, (जैनधर्मके) तत्त्वोंका स्पष्टीकरण, कहलाते हैं। इनमेंसे एकका नाम करणानुयोग या गणितानुयोग, अर्थात् गणितशास्त्रसंबंधी तत्त्वोंका स्पष्टीकरण, है। इसीसे पता चलता है कि जैनधर्म और जैनदर्शनमें गणितशास्त्रको कितना उच्च पद दिया गया है।

यद्यपि अनेक जैन गणितज्ञोंके नाम ज्ञात हैं, परंतु उनकी कृतियां लुप्त हो गई हैं। उनमें सबसे प्राचीन भद्रबाहु हैं जो कि ईसासे २७८ वर्ष पूर्व स्वर्ग सिधारे। वे ज्योतिष विद्या दो ग्रन्थोंके लेखक माने जाते हैं (१) सूर्यप्रज्ञप्तिकी टीका; और (२) भद्रबाहवी संहिता नामक एक मौलिक ग्रंथ। मलयगिरि (लगभग ११५० ई.) ने अपनी सूर्यप्रज्ञप्तिकी टीकामें इनका उल्लेख किया है, और भट्टोत्पल[3] (९६५) ने उनके ग्रन्थावतरण दिये हैं। सिद्धसेन नामक एक दूसरे ज्योतिषीके ग्रन्थावतर वराहमिहिर (५०५) और भट्टोत्पल द्वारा दिये गये

---

१ देखो– रंगाचार्य द्वारा सम्पादित गणितसारसंग्रहकी प्रस्तावना, डी. ई. स्मिथद्वारा लिखित, मद्रास, १९१२.

२ बी. दत्त : गणितशास्त्रीय जैन शाखा, बुलेटिन कलकत्ता गणितसोसायटी, जिल्द २१ (१९१९), पृष्ठ ११५ से १४५.

३ बृहत्संहिता, एस. द्विवेदीद्वारा सम्पादित, बनारस, १८९५, पृ. २२६.

हैं। अर्धमागधी और प्राकृत भाषामें लिखे हुए गणितसम्बन्धी उल्लेख अनेक ग्रन्थोंमें पाये जाते हैं। धवलामें इसप्रकारके बहुसंख्यक अवतरण विद्यमान हैं। इन अवतरणोंपर यथास्थान विचार किया जायगा। किन्तु यहां बात उल्लेखनीय है कि वे अवतरण निःसंशयरूपसे सिद्ध करते हैं कि जैन विद्वानोंद्वारा लिखे गये गणितग्रंथ थे जो कि अब लुप्त हो गये हैं[1]। क्षेत्र समास और करणभावनाके नामसे जैन विद्वानोंद्वारा लिखित ग्रंथ गणितशास्त्रसम्बन्धी ही थे। पर अब हमें ऐसे कोई ग्रंथ प्राप्य नहीं हैं। हमारा जैन गणितशास्त्रसम्बन्धी अत्यन्त खंडित ज्ञान स्थानांग सूत्र, उमास्वातिकृत तत्वार्थाधिगमसूत्रभाष्य, सूर्यप्रज्ञप्ति, अनुयोगद्वारसूत्र, त्रिलोकप्रज्ञप्ति, त्रिलोकसार आदि गणितेतर ग्रन्थोंसे संकलित है। अब इन ग्रन्थोंमें धवलाका नाम भी जोडा जा सकता है।

धवलाका महत्त्व

धवला नौवीं सदीके प्रारंभमें वीरसेन द्वारा लिखी गई थी। वीरसेन तत्त्वज्ञानी और धार्मिक दिव्यपुरुष थे। वे वस्तुतः गणितज्ञ नहीं थे। अतः जो गणितशास्त्रीयसामग्री धवलाके अन्तर्गत है, वह उनसे पूर्ववर्ती लेखकोंकी कृति कही जा सकती है, और मुख्यतया पूर्वगत टीकाकारोंकी, जिनमेंसे पांचका इन्द्रनन्दीने अपने श्रुतावतारमें उल्लेख किया है। ये टीकाकार **कुंदकुंद, शामकुंद, तुंबुलूर, समन्तभद्र और बप्पदेव** थे, जिनमेंसे प्रथम लगभग सन् २०० के और अन्तिम सन् ६०० के लगभग हुए। अतः धवलाकी अधिकांश गणितशास्त्रीयसामग्री सन् २०० से ६०० तकके बीचके समयकी मानी जा सकती है। इस प्रकार भारतवर्षीय गणित-शास्त्रके इतिहासकारोंके लिये धवला प्रथम श्रेणीका महत्वपूर्ण ग्रंथ हो जाता है, क्योंकि उसमें हमें भारतीय गणितशास्त्रके इतिहासके सबसे अधिक अंधकारपूर्ण समय, अर्थात् पांचवी शताब्दीसे पूर्वकी बातें मिलती हैं। विशेष अध्ययनसे यह बात और भी पुष्ट हो जाती है कि धवलाकी गणितशास्त्रीय सामग्री सन् ५०० से पूर्वकी है। उदाहरणार्थ— धवलामें वर्णित अनेक प्रक्रियायें किसी भी अन्य ज्ञात ग्रंथमें नहीं पाई जातीं, तथा इसमें कुछ ऐसी स्थलताका आभास भी है जिसकी झलक पश्चात्के भारतीय गणितशास्त्रसे परिचित विद्वानोंको सरलतासे मिल सकती है। धवलाके गणितभागमें वह परिपूर्णता है परिष्कार नहीं है जो आर्यभटीय और उसके पश्चात्के ग्रंथोंमें है।

धवलान्तर्गत गणितशास्त्र

संख्याएं और संकेत—धवलाकार दाशमिकक्रमसे पूर्णतः परिचित हैं। इसके प्रमाण

---

१ वीरसेनने सूत्रकृतांगसूत्र, समयाध्ययन अनुयोगद्वार, श्लोक २८, पर अपनी टीकामें भंगसंबंधी (regarding permutation and combinations) तीन नियम उद्धृत किये हैं। ये नियम किसी जैन गणित ग्रंथमेंसे लिये गये जान पडते हैं।

सर्वत्र उपलब्ध होते हैं। हम यहां धवलाके अन्तर्गत अवतरणोंसे ली गई संख्याओंको व्यक्त करनेकी कुछ पद्धतियोंको उपस्थित करते हैं–

(१) ७९९९९९९८ को ऐसी संख्या कहा है कि जिसके आदिमें ७, अन्तमें ८ और मध्यमें छह बार ९ की पुनरावृत्ति है[1]।

(२) ४६६६६६६४ व्यक्त किया गया है– चौसठ, छह सौ, छयासठ हजार, छयासठ लाख, और चार करोड[2]।

(३) २२७१९४९८ व्यक्त किया गया है– दो करोड, सत्ताइस, निन्यानवे हजार, चारसौ और अट्ठानवे[3]।

इनमेंसे (१) में जिस पद्धतिका उपयोग किया है वह जैन साहित्यमें अन्य स्थानोंमें भी पायी जाती है, और गणितसारसंग्रहमें[4] भी कुछ स्थानोंमें है। उससे दाशमिकक्रमका सुपरिचय सिद्ध होता है। (२) में छोटी संख्याएं पहले व्यक्त की गई हैं। यह संस्कृत साहित्यमें प्रचलित साधारण रीतिके अनुसार नहीं है। उसी प्रकार यहां संकेत-क्रम सौ है, न कि दश जो कि साधारणत: संस्कृत साहित्यमें पाया जाता है[5]। किन्तु पाली और प्राकृतमें सौ का क्रम ही प्राय: उपयोगमें लाया गया है। (३) में सबसे बडी संख्या पहले व्यक्त की गई है। अवतरण (२) और (३) स्पष्टत: भिन्न स्थानोंसे लिये गये हैं।

बडी संख्यायें– यह सुविदित है कि जैन साहित्यमें बडी संख्यायें बहुलायतसे उपयोगमें आई हैं। धवलामें भी अनेक तरहकी जीवराशियों (द्रव्यप्रमाण) आदि पर तर्क वितर्क है। निश्चितरूपसे लिखी गई सबसे बडी संख्या पर्याप्त मनुष्योंकी है। यह संख्या धवलामें[6] दो के छठे वर्ग और दो के सातवें वर्गके बीचकी, अथवा और भी निश्चित, कोटि-कोटि-कोटि और कोटि-कोटि-कोटि-कोटिके बीचकी कही गई है। याने–

$२^{२^{६}}$ और $२^{२^{७}}$ के बीचकी। अथवा, और अधिक नियत-$(१,००,००,०००)^{१}$ और $(१,००,००,०००)^{४}$ के बीचकी। अथवा, सर्वथा निश्चित- $२^{२^{५}} \times २^{२^{६}}$। इन जीवोंकी संख्या अन्य मतानुसार[7] ७९२२८१६२५१४२६४३३७५९३५४३९५०३३६ है।

---

१. ध. भाग ३, पृष्ठ ९८, गाथा ५१। देखो गोम्मटसार, जीवकांड, पृष्ठ ६३३.

२. ध. भाग ३, पृ ९९, गाथा ५२. ३ ध. भाग ३, पृ. १००, गाथा ५३.

४ देखो-गणितसारसंग्रह १, २७. और भी देखो- दत्त और सिंहका हिन्दूगणितशास्त्रका इतिहास, जिल्द १, लाहौर १९३५, पृ १९. ५ दत्त और सिंह, पूर्ववत्, पृ १४.

६ ध. भाग ३, पृ. २५३ ७ गोम्मटसार, जीवकांड, (से. बु. जै. सीरीज) पृ.१०४.

यह संख्या उन्तीस अंक ग्रहण करती है। इसमें भी उतने ही स्थान हैं जितने कि $(१,००,००,०००)^४$ में, परन्तु है वह उससे बडी संख्या। यह बात धवलाकारको ज्ञात है, और उन्होंने मनुष्यक्षेत्रका क्षेत्रफल निकालकर यह सिद्ध किया है कि उक्त संख्याके मनुष्य मनुष्यक्षेत्रमें नहीं समा सकते, और इसलिये उस संख्यावाला मत ठीक नहीं है।

मौलिक प्रक्रियायें

धवलामें जोड, बाकी, गुणा, भाग, वर्गमूल और घनमूल निकालना, तथा संख्याओंका घात निकालना (The raising of numbers to given powers) आदि मौलिक प्रक्रियाओंका कथन उपलब्ध है। ये क्रियाएं पूर्णांक और भिन्न, दोनोंके संबंधमें कही गई हैं। धवलमें वर्णित घातांकका सिद्धान्त (Theory of indices) दूसरे गणित ग्रंथोंसे कुछ कुछ भिन्न है। निश्चयतः यह सिद्धान्त प्राथमिक है, और सन् ५०० से पूर्वका है। इस सिद्धान्तसंबंधी मौलिक विचार निम्नलिखित प्रक्रियाओंके आधारपर प्रतीत होते हैं:— (१) वर्ग, (२) घन, (३) उत्तरोत्तर वर्ग, (४) उत्तरोत्तर घन, (५) किसी संख्याका संख्यातुल्य घात निकालना (The raising of numbers to their own power), (६) वर्गमूल, (७) घनमूल, (८) उत्तरोत्तर वर्गमूल, (९) उत्तरोत्तर घनमूल, आदि। अन्य सब घातांक इन्हीं रूपोंमें प्रगट किये गये हैं।

उदाहरणार्थ—$अ^{\frac{1}{2}}$ को अ के घनका प्रथम वर्गमूल कहा है। $अ^{\circ}$ को अ का घनका घन कहा है। $अ^{६}$ को अ के घनका वर्ग, या वर्गका घन कहा है, इत्यादि[१]। उत्तरोत्तर वर्ग और घनमूल नीचे लिखे अनुसार हैं—

अ का प्रथम वर्ग याने $(अ)^{२} = अ^{२}$

,, द्वितीय वर्ग ,, $(अ^{२})^{२} = अ^{४} = अ^{२^{२}}$

,, तृतीय वर्ग ,, $अ^{२^{२}}$

,, न वर्ग ,, $अ^{२^{न}}$

उसी प्रकार— अ का प्रथम वर्गमूल याने $अ^{\frac{1}{2}}$

,, द्वितीय ,, ,, $अ^{\frac{1}{2^{२}}}$

,, तृतीय ,, ,, $अ^{\frac{1}{2^{२}}}$

,, न ,, ,, $अ^{\frac{1}{2^{न}}}$

---

१ धवला, भाग ३ पृष्ठ, ५३.

वर्गित-संवर्गित

परिभाषिक शब्द वर्गित-संवर्गितका प्रयोग किसी संख्याका संख्यातुल्य घात करनेके अर्थमें किया गया है।

उदाहरणार्थ——$न^{न}$ न का वर्गितसंवर्गितरूप है।

इस सम्बन्धमें धवलामें विरलन-देय 'फैलाना और देना' नामक प्रक्रियाका उल्लेख आया है। किसी संख्याका '**विरलन**' करना व फैलाना अर्थात् उस संख्याको एकएकमें अलग करना है। जैसे, न के विरलनका अर्थ है——

१ १ १ १ १.....न बार

'**देय**' का अर्थ है उपर्युक्त अंकोंमें प्रत्येक स्थान पर एककी जगह न (विवक्षित संख्या) को रख देना। फिर उस विरलन-देयसे उपलब्ध संख्याओंको परस्पर गुणा कर देनेसे उस संख्याका वर्गित-संवर्गित प्राप्त हो जाता है, और यही उस संख्याका प्रथम वर्गित-संवर्गित कहलाता है। जैसे, न का प्रथम वर्गित-संवर्गित $न^{न}$।

विरलन-देयकी एकवार पुनः प्रक्रिया करनेसे, अर्थात् $न^{न}$ को लेकर वही विधान फिर करनेसे, द्वितीय वर्गित-संवर्गित ($(न^{न})^{न^{न}}$) प्राप्त होता है। इसी विधानको पुनः एकवार करनेसे न का तृतीय वर्गित-संवर्गित $\left\{(न^{न})^{न^{न}}\right\}^{\left\{(न^{न})^{न^{न}}\right\}}$ प्राप्त होता है।

धवलामें उक्त प्रक्रियाका प्रयोग तीन बारसे अधिक अपेक्षित नहीं हुआ है। किन्तु, तृतीय वर्गितसंवर्गितका उल्लेख अनेकबार[1] बडी संख्याओं व असंख्यात व अनन्तके संबंधमें किया गया है। इस प्रक्रियासे कितनी संख्या प्राप्त होती है, इसका ज्ञान इस बातसे हो सकता है कि २ का तृतीयवार वर्गितसंवर्गित रूप $२^{५६}$ हो जाता है।

घातांक सिद्धान्त

उपर्युक्त कथनसे स्पष्ट है कि धवलाकार घातांक सिद्धान्तसे पूर्णतः परिचित थे। जैसे——

(१) $अ^{म} \cdot अ^{न} = अ^{म+न}$

(२) $अ^{म} / अ^{न} = अ^{म-न}$

(३) $(अ^{म})^{न} = अ^{मन}$

---

१ धवला, भाग ३, पृ. २० आदि.

उक्त सिद्धान्तोंके प्रयोगसंबंधी उदाहरण धवलामें अनेक हैं। एक रोचक उदाहरण निम्न प्रकारका है[1]– कहा गया है कि २ के ७ वें वर्गमें २ के छठवें वर्गका भाग देनेसे २ का छठवां वर्ग लब्धमें आता है। इसे निम्न प्रकार भी व्यक्त कर सकते हैं

$$२^{७} / २^{६} = २^{६}$$

जब दाशमिकक्रमका ज्ञान नहीं हो पाया तब द्विगुणक्रम और अर्धक्रमकी प्रक्रियाएं (The operations of duplation and mediation) महत्वपूर्ण समझी जाती थीं। भारतीय गणितशास्त्रके ग्रंथोंमें इन प्रक्रियाओंका कोई चिन्ह नहीं मिलता। किन्तु इन प्रक्रियाओंको मिश्र और यूनानके निवासी महत्वपूर्ण गिनते थे, और उनके अंकगणितसंबंधी ग्रंथोंमें वे तदनुसार स्वीकार की जाती थीं। धवलामें इन प्रक्रियाओंके चिन्ह मिलते हैं। दो या अन्य संख्याओंके उत्तरोत्तर वर्गीकरणका विचार निश्चयतः द्विगुणक्रमकी प्रक्रियासे ही परिस्फुटित हुआ होगा, और यह द्विगुणक्रमकी प्रक्रिया दाशमिकक्रमके प्रचारसे पूर्व भारतवर्षमें अवश्य प्रचलित रही होगी। उसी प्रकार अर्धक्रम पद्धतिका भी पता चलता है। धवलामें इस प्रक्रियाको हम २, ३, ४ आदि आधारवाले लघुरिक्थ सिद्धान्तमें साधारणीकृत पाते हैं।

लघुरिक्थ (Logarithm)

धवलामें निम्न पारिभाषिक शब्दोंके लक्षण पाये जाते हैं[2]–

(१) अर्धच्छेद– जितनी बार एक संख्या उत्तरोत्तर आधी आधी की जा सकता है, उतने उस संख्याके अर्धच्छेद कहे जाते हैं जैसे– $२^{म}$ के अर्धच्छेद = म

अर्धच्छेदका संकेत अछे मान कर हम इसे आधुनिक पद्धतिमें इस प्रकार रख सकते हैं–

क का अछे (या अछे क) = लरि क। यहां लघुरिक्थका आधार २ है।

(२) वर्गशलाका– किसी संख्याके अर्द्धच्छेदोंके उस संख्याकी वर्गशलाका होती है। जैसे– क की वर्गशलाका = वश क = अछे अछे क = लरि लरि क। यहां लघुरिक्थका आधार २ है।

(३) त्रिकच्छेद[3]– जितने बार एक संख्या उत्तरोत्तर ३ से विभाजित की जाती है, उतने उस संख्याके त्रिकच्छेद होते हैं। जैसे– क के त्रिकच्छेद = त्रिछे क = लरि ३क। यहां लघुरिक्थका आधार ३ है।

---

१ धवला भाग ३, पृ. २५३ आदि. २ धवला भाग ३, पृ. २१ आदि.

३ धवला भाग ३, पृ. ५६.

(४) **चतुर्थच्छेद**[1]— जितने बार एक संख्या उत्तरोत्तर ४ से विभाजित की जा सकती है, उतने उस संख्यासे चतुर्थच्छेद होते हैं। जैसे— क के चतुर्थच्छेद = चछे क = लरि ४ क। यहां लघुरिक्थका आधार ४ है।

धवलामें लघुरिक्थसंबंधी निम्न परिणामोंका उपयोग किया गया है—

(१)[2] लरि (म/न) = लरि म − लरि न

(२) लरि (म. न) = लरि म + लरि न

(३)[3] २ लरि म = म। यहां लघुरिक्थका आधार २ है।

(४)[4] लरि $(क^{क})^{२}$ = २ क लरि क

(५)[5] लरि लरि $(क^{क})^{२}$ = लरि क + १ + लरि लरि क,

(बाईं ओर) = लरि (२ क लरि क)

= लरि क + लरि २ + लरि लरि क

= लरि क + १ + लरि लरि क।

चूंकि लरि २ = १, जब कि आधार २ हैं।

(६)[6] लरि $(क^{क})$ = $क^{क}$ लरि $क^{क}$

(७) मानलो अ एक संख्या है, तो—

अ का प्रथम वर्गित-संवर्गित = $अ^{अ}$ = ब (मानलो)

,, द्वितीय ,, = $ब^{ब}$ = भ ,,

,, तृतीय ,, = $भ^{भ}$ = म ,,

धवलामें निम्न परिणाम दिये गये हैं[7]—

(क) लरि ब = अ लरि अ

(ख) लरि लरि ब = लरि अ + लरि लरि अ

(ग) लरि भ = ब लरि ब

---

१ धवला, भाग ३, पृ. ५६. २ धवला, भाग ३, पृ. ६०. ३ धवला, भाग ३, पृ. ५५.

४ धवला, भाग ३, पृ. २१ आदि. ५ पूर्ववत्.

६ पूर्ववत्। यहां यह बात उल्लेखनीय है कि ग्रंथमें ये लघुरिक्थ पूर्णांकों तक ही परिमित नहीं हैं। संख्या क कोई भी संख्या हो सकती है। $क^{क}$ प्रथम वर्गितसंवर्गित राशि और $(क^{क})^{क^{क}}$ द्वितीय वर्गित-संवर्गित राशि है। ७ धवला, भाग ३, पृ. २१–२४.

(घ) लरि लरि भ = लरि ब + लरि लरि ब
= लरि अ + लरि लरि अ + अ लरि अ

(ङ) लरि म = भ·लरि भ

(च) लरि लरि म = लरि भ + लरि लरि भ । इत्यादि

(८)[1] लरि लरि म < ब²

इस असाम्यतासे निम्न असाम्यता आती है—
ब लरि ब + लरि ब + लरि लरि ब < ब²

भिन्न— अंकगणितमें भिन्नोंकी मौलीक प्रक्रियाओं, जिनका ज्ञान धवलामें ग्रहण कर लिया गया है, के अतिरिक्त यहां हम भिन्नसंबंधी अनेक ऐसे रोचक सूत्र पाते हैं जो अन्य किसी गणितसंबंधी ज्ञात ग्रन्थमें नहीं मिलते । इनमें निम्न लिखित उल्लेखनीय हैं—

(१)[2] $\frac{न^2}{न \pm (न/प)} = न \mp \frac{न}{प \pm १}$

(२)[3] मान लो कि किसी एक संख्या भ में द, द' ऐसे दो भाजकों का भाग दिया गया और उनसे क्रमशः क और क' ये दो लब्ध (या भिन्न) उत्पन्न हुए । निम्न लिखित सूत्रमें म के द ± द' से भाग देने का परिणाम दिया गया है—

$$\frac{म}{द \pm द'} = \frac{क'}{(क'/क) \pm १}$$

अथवा $= \frac{क}{१ \pm (क/क')}$

(३)[4] यदि $\frac{म}{द} = क$, और $\frac{म'}{द} = क'$, तो— द (क–क') + म' = म

(४)[5] यदि $\frac{अ}{ब} = क$, तो– $\frac{अ}{ब + \frac{ब}{न}} = क - \frac{क}{न + १}$;

---

१ धवला, भाग ३, पृ. २४.
२ धवला, भाग ३, पृ. ४६.
३ धवला, भाग ३, पृ. ४६.
४ धवला, भाग ३, पृ. ४७, गाथा २७.
५ भाग ३, पृ. ४६, गाथा २४.

और $\frac{अ}{ब - \frac{ब}{न}} = क + \frac{क}{न}$ आचार्य श्री शुभचन्द्रसागर जी महाराज

(५)[1] यदि $\frac{अ}{ब} = क$, तो– $\frac{अ}{ब + स} = क - \frac{क}{\frac{ब}{स} + १}$;

और $\frac{अ}{ब - स} = क + \frac{क}{\frac{ब}{स} - १}$

(६)[2] यदि $\frac{अ}{ब} = क$, और $\frac{अ}{ब'} = क + स$, तो–

$$ब' = ब - \frac{ब}{\frac{क}{स} + १}$$

और यदि $\frac{अ}{ब'} = क - स$, तो –– $ब' = ब + \frac{ब}{\frac{क}{स} - १}$

(७)[3] यदि $\frac{अ}{ब} = क$, और $\frac{अ}{ब'}$ दूसरा भिन्न है, तो––

$$\frac{अ}{ब} - \frac{अ}{ब'} = क\left(\frac{ब' - ब}{ब'}\right)$$

(८)[4] यदि $\frac{अ}{ब} = क$, और $\frac{अ}{ब + ख} = क - स$, तो–– $ख = \frac{ब\,स}{क - स}$

(९)[5] यदि $\frac{अ}{ब} = क$, और $\frac{अ}{ब - ख} = क + स$, तो– $ख = \frac{ब\,स}{क + स}$

(१०)[6] यदि $\frac{अ}{ब} = क$, और $\frac{अ}{ब + स} = क'$, तो– $क' = क - \frac{क\,स}{ब + स}$

---

१ भाग ३, पृ. ४६, गाथा २४.
२ भाग ३, पृ. ४६, गाथा २५.
३ भाग ३, पृ. ४६, गाथा २८.
४ भाग ३, पृ. ४८, गाथा २९.
५ भाग ३, पृ. ४९, गाथा ३०.
६ भाग ३, पृ. ४९, गाथा ३१.

(११)[1] यदि $\frac{अ}{ब} = क$, और $\frac{अ}{ब - स} = क'$, तो $- क' = क + \frac{क स}{ब - स}$

ये सब परिणाम धवलाके अन्तर्गत अवतरणोंमें पाये जाते हैं। वे किसी भी गणित-संबंधी ज्ञात ग्रंथमें नहीं मिलते। ये अवतरण अर्धमागधी अथवा प्राकृत ग्रंथोंके हैं। अनुमान यही होता है कि वे सब किन्हीं गणितसंबंधी जैन ग्रन्थोंसे, अथवा पूर्ववर्ती टीकाओंसे लिये गये हैं। वे अंकगणितकी किसी सारभूत प्रक्रियाका निरूपण नहीं करते। वे उस कालके स्मारकावशेष हैं जब कि भाग एक कठिन और श्रमसाध्य विधान समझा जाता था। ये नियम निश्चयतः उस काल के हैं जब कि दाशमिक-क्रमका अंकगणितकी प्रक्रियाओंमें उपयोग सुप्रचलित नहीं हुआ था।

त्रैराशिक— त्रैराशिक क्रियाका धवलामें अनेक स्थानों पर उल्लेख और उपयोग किया गया है[2]। इस प्रक्रियासंबंधी पारिभाषिक शब्द हैं— फल, इच्छा और प्रमाण— ठीक वही जो ज्ञात ग्रंथोंमें मिलते हैं। इससे अनुमान होता है कि त्रैराशिक क्रियाका ज्ञान और व्यवहार भारतवर्षमें दाशमिक क्रमके आविष्कारसे पूर्व भी वर्तमान था।

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

अनन्त

बडी संख्याओंका प्रयोग—'अनन्त' शब्दका विविध अर्थोंमें प्रयोग सभी प्राचीन जातियोंके साहित्यमें पाया जाता है। किन्तु उसकी ठीक परिभाषा और समझदारी बहुत पीछे आई। यह स्वाभाविक ही है कि अनन्तकी ठीक परिभाषा उन्हीं लोगोंद्वारा विकसित हुई जो बडी संख्याओंका प्रयोग करते थे, या अपने दर्शनशास्त्रमें ऐसी संख्याओंके अभ्यस्त थे। निम्न विवेचनसे यह प्रकट हो जायगा कि भारतवर्षमें जैन दार्शनिक अनन्तसे संबंध रखनेवाली विविध भावनाओंको श्रेणीबद्ध करने तथा गणनासंबंधी अनन्तकी ठीक परिभाषा निकालनेमें सफल हुए।

बडी संख्याओंको व्यक्त करनेके लिये उचित संकेतोंका तथा अनन्तकी कल्पनाका विकास तभी होता है जब निगूढ़ तर्क और विचार एक विशेष उच्च श्रेणीपर पहुंच जाते हैं। यूरोपमें आर्किमिडीजने समुद्र-तटकी रेतके कणोंके प्रमाणके अंदाज लगानेका प्रयत्न किया था और यूनानके दार्शनिकोंने अनन्त एवं सीमा (limit) के विषयमें विचार किया था। किन्तु उनके पास बडी संख्याओंको व्यक्त करनेके योग्य संकेत नहीं थे। भारतवर्षमें हिन्दू, जैन और बौद्ध दार्शनिकोंने बहुत बडी संख्याओंका प्रयोग किया और उस कार्यके लिये उन्होंने उचित संकेतोंका

---

१ भाग ३, पृ. ४९, गाथा ३२.

२ धवला भाग ३, पृ. ६९ और १०० आदि.

भी आविष्कार किया। विशेषत: जैनियोंने लोकभरके समस्त जीवों, काल-प्रदेशों और क्षेत्र अथवा आकाश-प्रदेशों आदिके प्रमाणका निरूपण करनेका प्रयत्न किया है।

बडी **संख्यायें** व्यक्त करनेके तीन प्रकार उपयोगमें लाये गये—

(१) **दाशमिक-क्रम** (Place-value notation)— जिसमें दशमानका उपयोग किया गया। इस संबंधमें यह बात उल्लेखनीय है कि दशमानके[1] आधारपर $१०^{१४०}$ जैसी बडी संख्याओंको व्यक्त करनेवाले नाम कल्पित किये गये।

(२) **घातांक नियम** (Law of indices वर्ग-संवर्ग) का उपयोग बडी संख्याओंको सूक्ष्मतासे व्यक्त करनेके लिये किया गया। जैसे—

(अ) $२^२ = ४$

(ब) $(२^२)^{२^२} = ४^४ = २५६$

(स) $\{(२^२)^{२^२}\}\ \{(२^२)^{२^२}\} = २५६^{२५६}$

जिसको २ का तृतीय वर्गित-संवर्गित कहा है। यह संख्या समस्त विश्व (universe) के विद्युत्कणों (protons and electrons) की संख्यासे बडी है।

(३) **लघुरिक्थ** (अर्धच्छेद) अथवा लघुरिक्थके लघुरिक्थ (अर्धच्छेदशलाका) का उपयोग बडी संख्याओंके विचारको छोटी संख्याओंके विचारमें उतारने लिये किया गया। जैसे—

(अ) लरि $_२$ $२^२ = २$

(ब) लरि $_२$ लरि $_२$ $४^४ = २$

(स) लरि $_२$ लरि $_२$ $२५६^{२५६} = ११$

इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि आज भी संख्याओंको व्यक्त करनेके लिये हम उपर्युक्त तीन प्रकारोंमेंसे किसी एक प्रकारका उपयोग करते हैं। दाशमिकक्रम समस्त देशोंकी साधारण सम्पत्ति बन गई है। जहां बडी संख्याओंका गणित करना पडता है, वहां लघुरिक्थोंका उपयोग किया जाता है। आधुनिक पदार्थविज्ञानमें परिमाणों (magnitudes) को व्यक्त करनेके

---

१ बडी संख्याओं तथा संख्या-नामोंके संबंधमें विशेष जाननेके लिये देखिये दत्त और सिंह कृत हिन्दू गणितशास्त्रका इतिहास (History of Hindu Mathematics), मोतीलाल बनारसीदास, लाहौर, द्वारा प्रकाशित, भाग १, पृ. ११ आदि.

लिये घातांक नियमोंका उपयोग सर्वसाधारण है। उदाहरणार्थ– विश्वभरके विद्युत्कणोंकी गणना[1] करके उसकी व्यक्ति इस प्रकार की गई है— $१३६\cdot२^{२५५}$ तथा, रूढ संख्याओंके विकलन (distribution of primes) को सूचित करनेवाली स्क्यूज संख्या (Skewes' number) निम्न प्रकारसे व्यक्त की जाती है–

$$१०^{१०^{१०^{३४}}}$$

संख्याओंको व्यक्त करनेवाले उपर्युक्त समस्त प्रकारोंका उपयोग धवलामें किया गया है। इससे स्पष्ट है कि भारतवर्षमें उन प्रकारोंका ज्ञान सातवीं शतब्दिसे पूर्व ही सर्व-साधारण हो गया था।

अनन्तका वर्गीकरण

धवलामें अनन्तका वर्गीकरण पाया जाता है। साहित्यमें अनन्त शब्दका उपयोग अनेक अर्थोंमें हुआ है। जैन वर्गीकरणमें उन सबका ध्यान रखा गया है जैन वर्गीकरणके अनुसार अनन्तके ग्यारह प्रकार हैं। जैसे–

(१) नामानन्त— नामका अनन्त। किसी भी वस्तु-समुदायके यथार्थतः अनन्त होने या न होनेका विचार किये बिना ही केवल उसका बहुत्व प्रगट करनेके लिये साधारण बोलचालमें अथवा अबोध मनुष्यों द्वारा या उनके लिये, अथवा साहित्यमें, उसे अनन्त कह दिया जाता है। ऐसी अवस्थामें 'अनन्त' शब्दका अर्थ नाममात्रका अनन्त है। इसे ही नामानन्त कहते हैं।

---

१ संख्या $१३६\cdot२^{२५५}$ को दाशमिक-क्रमसे व्यक्त करने पर जो रूप प्रकट होता है वह इस प्रकार है– १५,७४७,७२४,१३६,२७५,००२,५७७,६०५,६५३,९६१,८१९,५५५,४६८,०४४,७१७,९१४,५७२,११६, ७०९,३६६,२३१,४२५,०७६,८८५,६३१,०३१,२९६,

इससे देखा जा सकता है कि २ का तृतीय वर्गित-संवर्गित अर्थात् $२५६^{२५६}$ विश्वभरके समस्त विद्युत् कणोंकी संख्यासे अधिक होता है। यदि हम समस्त विश्वको एक शतरंजका फलक मान ले और विद्युत्कणोंको उसकी गोटियां, और दो विद्युत्कणोंकी किसी भी परिवृत्तिको इस विश्वके खेलकी एक 'चाल' मान लें, तो समस्त संभव 'चालों' की संख्या—

$१०^{१०^{१०^{३४}}}$ होगी।

यह संख्या रूढ संख्याओं (primes) के विभाग (distribution) से भी संबंध रखती है।

२ जीवाजीवमिस्सदव्वस्स कारणभिरवेक्खा सण्णा अनंता। धवला ३, पृ. ११.

(२) **स्थापनानन्त**[1]— आरोपित या आनुषंगिक, या स्थापित अनन्त। यह भी यथार्थ अनन्त नहीं है। जहां किसी वस्तुमें अनन्तका आरोपण कर लिया जाता है वहां इस शब्दका प्रयोग किया जाता है।

(३) **द्रव्यानन्त**[2]— तत्काल उपयोगमें न आते हुए ज्ञानकी अपेक्षा अनन्त। इस संज्ञाका उपयोग उन पुरुषोंके लिये किया जाता है जिन्हें अनन्त-विषयक शास्त्रका ज्ञान है, जिसका वर्तमानमें उपयोग नहीं है।

(४) **गणनानन्त** संख्यात्मक अनन्त। यह संज्ञा गणितशास्त्रमें प्रयुक्त वास्तविक अनन्तके अर्थमें आई है।

(५) **अप्रदेशिकानन्त** परिमाणहीन अर्थात् अत्यन्त अल्प परमाणुरूप।

(६) **एकानन्त**— एकदिशात्मक अनन्त। यह वह अनन्त है जो एक दिशामें सीधी एक रेखारूपसे देखनेमें प्रतीत होता है।

(७) **विस्तारानन्त**— द्विविस्तारात्मक अथवा पृष्ठदेशीय अनन्त। इसका अर्थ है प्रतरात्मक अनन्ताकाश।

(८) **उभयानन्त**— द्विदिशात्मक अनन्त। इसका उदाहरण है एक सीधी रेखा जो दोनों दिशाओंमें अनन्त तक जाती है

(९) **सर्वानन्त**— आकाशात्मक अनन्त। इसका अर्थ है त्रिधा-विस्तृत अनन्त अर्थात् घनाकार अनन्ताकाश।

(१०) **भावानन्त**— तत्काल उपयोगमें आते हुए ज्ञानकी अपेक्षा अनन्त। इस संज्ञाका उपयोग उस पुरुषके लिये किया जाता है जिसे अनन्त-विषयक शास्त्रका ज्ञान है और जिसका उस ओर उपयोग है।

(११) **शाश्वतानन्त**— नित्यस्थायी या अविनाशी अनन्त।

पूर्वोक्त वर्गीकरण खूब व्यापक है जिसमें उन सब अर्थोंका समावेश हो गया है जिन अर्थोंमें कि 'अनन्त' संज्ञाका प्रयोग जैन साहित्यमें हुआ है।

---

१ जं तं ट्ठवणाणंतं णाम तं कट्ठकम्मेसु वा चित्तकम्मेसु वा पोत्तकम्मेसु वा.....अक्खो वा वराडओ वा जे चा अण्णे ट्ठवणाए ट्ठविदा अणंतमिदि तं सव्वं ट्ठवणाणंतं णाम। ध. ३, पृ. ११ से १२.

२ जं तं दव्वाणंतं तं दुविहं आगमदो णोआगमदो य। ध. ३, पृ. १२.

गणनानन्त (Numerical infinite)

धवलामें यह स्पष्टरूपसे कह दिया गया है कि प्रकृतमें अनन्त संज्ञाका प्रयोग[1] गणनानन्तके अर्थमें ही किया गया है, अन्य अनन्तोंके अर्थमें नहीं,, 'क्योंकि उन अन्य अनन्तोंके द्वारा प्रमाणका प्ररूपण नहीं पाया जाता'[2] । यह भी कहा गया है कि 'गणनानन्त बहुवर्णनीय और सुगम है'[3] । इस कथनका अर्थ संभवतः यह है कि जैन-साहित्यमें अनन्त अर्थात् गणनानन्तकी परिभाषा अधिक विशदरूपसे भिन्न भिन्न लेखकों द्वारा कर दी गई थी, तथा उसका प्रयोग और ज्ञान भी सुप्रचलित हो गया था । किन्तु धवलामें अनन्तकी परिभाषा नहीं दी गई । तो भी अनन्तसंबंधी प्रक्रियाएं संख्यात और असंख्यात नामक प्रमाणोंके साथ साथ बहुत बार उल्लिखित हुई हैं ।

संख्यात, असंख्यात और अनन्त प्रमाणोंका उपयोग जैन साहित्यमें प्राचीनतम ज्ञातकालसे किया गया है । किन्तु प्रतीत होता है कि उनका अभिप्राय सदैव एकसा नहीं रहा । प्राचीनतर ग्रंथोंमें अनन्त सचमुच अनन्तके उसी अर्थमें प्रयुक्त हुआ था जिस अर्थमें हम अब उसकी परिभाषा करते हैं । किन्तु पीछेके ग्रंथोंमें उसका स्थान अनन्तानन्तने ले लिया । उदाहरणार्थ– नेमिचंद्र द्वारा दशवीं शताब्दिमें लिखित ग्रंथ त्रिलोकसारके अनुसार परीतानन्त, युक्तानन्त एवं जघन्य अनन्तानन्त एक बडी भारी संख्या है, किन्तु है वह सान्त । उस ग्रंथके अनुसार संख्याओंके तीन मुख्य भेद किये जा सकते हैं—

(१) **संख्यात**——जिसका संकेत हम **स** मान लेते हैं ।

(२) **असंख्यात**——जिसका संकेत हम **अ** मान लेते हैं ।

(३) **अनन्त**——जिसका संकेत हम **न** मान लेते हैं ।

उपर्युक्त तीनों प्रकारके संख्या-प्रमाणोंके पुनः तीन तीन प्रभेद किये गये हैं जो निम्न प्रकार हैं–

(१) संख्यात—— (गणनीय) संख्याओंके तीन भेद हैं——

(अ) जघन्य-संख्यात (अल्पतम संख्या) जिसका संकेत हम **स ज** मान लेते हैं ।

(ब) मध्य-संख्यात (बीचकी संख्या) जिसका संकेत हम **स म** मान लेते हैं ।

---

१ धवला ३, पृ. १६.

२ 'ण च सेसअणंताणि पमाणपरूवणाणि, तत्थ ऊधादंसणादो' । ध. ३, पृ. १७.

३ 'जं तं गणणाणंतं तं बहुवण्णणीयं सुगमं च' । ध. ३, पृ. १६.

(स) उत्कृष्ट-संख्यात (सबसे बडी संख्या) जिसका संकेत हम स उ मान लेते हैं ।

(२) असंख्यात (अगणनीय) के भी तीन भेद हैं—

(अ) परीत-असंख्यात (प्रथम श्रेणीका असंख्य) जिसका संकेत हम अ प मान लेते हैं ।

(ब) युक्त-असंख्यात (बीचका असंख्य) जिसका संकेत हम अ यु मान लेते हैं ।

(स) असंख्यातासंख्यात (असंख्य-असंख्य) जिसका संकेत हम अ अ मान लेते हैं ।

पूर्वोक्त इन तीनों भेदोंमेंसे प्रत्येकके पुनः तीन तीन प्रभेद होते हैं । जैसे, जघन्य (सबसे छोटा), मध्यम (बीचका) और उत्कृष्ट (सबसे बडा) । इस प्रकार असंख्यातके भीतर निम्न संख्याएं प्रविष्ट हो जाती हैं—

१	जघन्य-परीत-असंख्यात	.....	अ प ज
२	मध्यम-परीत-असंख्यात	.....	अ प म
३	उत्कृष्ट-परीत-असंख्यात	.....	अ प उ
१	जघन्य-युक्त-असंख्यात	.....	अ यु ज
२	मध्यम-युक्त-असंख्यात	.....	अ यु म
३	उत्कृष्ट-युक्त-असंख्यात	.....	अ यु उ
१	जघन्य-असंख्यातासंख्यात	.....	अ अ ज
२	मध्यम-असंख्यातासंख्यात	.....	अ अ म
३	उत्कृष्ट-असंख्यातासंख्यात	.....	अ अ उ

(३) अनन्त— जिसका संकेत हम न मान चुके हैं । उसके तीन भेद हैं—

(अ) परीत-अनन्त (प्रथम श्रेणीका अनन्त) जिसका संकेत हम न प मान लेते हैं ।

(ब) युक्त-अनन्त (बीचका अनन्त) जिसका संकेत हम न यु मान लेते हैं ।

(स) अनन्तानन्त (निःसीम अनन्त) जिसका संकेत हम न न मान लेते हैं ।

असंख्यातके समान इन तीनों भेदोंके भी प्रत्येकके पुनः तीन तीन प्रभेद होते हैं । जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट । अतः अनन्तके भेदोंमें हमें निम्न संख्याएं प्राप्त होती हैं—

१	जघन्य-परीतानन्त	.....	न प ज
२	मध्यम-परीतानन्त	.....	न प म
३	उत्कृष्ट-परीतानन्त	.....	न प उ

१	जघन्य युक्तानन्त	.....	न यु ज
२	मध्यम-युक्तानन्त	.....	न यु म
३	उत्कृष्ट-युक्तानन्त	.....	न यु उ
१	जघन्य-अनन्तानन्त	.....	न न ज
२	मध्यम-अनन्तानन्त	.....	न न म
३	उत्कृष्ट-अनन्तानन्त	.....	न न उ

संख्यातका संख्यात्मक परिमाण—सभी जैन ग्रंथोंके अनुसार जघन्य संख्यात २ है, क्योंकि, उन ग्रंथोंके मतसे भिन्नताकी बोधक यही सबसे छोटी संख्या है। एकत्वको संख्यातमें सम्मिलित नहीं किया। मध्यम संख्यातमें २ और उत्कृष्ट संख्यातके बीचकी समस्त गणना आ जाती है, तथा उत्कृष्ट-संख्यात जघन्य-परीतासंख्यातसे पूर्ववर्ती अर्थात् एक कम गणनाका नाम है। अर्थात् स उ = अ प ज − १। अ प ज को त्रिलोकसारमें निम्न प्रकारसे समझाया है[1]—

जैन भूगोलानुसार यह विश्व, अर्थात् मध्यलोक, भूमि और जलके क्रमवार वलयोंसे बना हुआ है। उनकी सीमाएं उत्तरोत्तर बढ़ती हुई त्रिज्याओंवाले समकेन्द्रीय वृत्तरूप हैं। किसी भी भूमि या जलमय एक वलयका विस्तार उससे पूर्ववर्ती वलयके विस्तारसे दुगुना है। केन्द्रवर्ती वृत्त (सबसे प्रथम बीचका वृत्त) एक लाख (१००,०००) योजन व्यासवाला है, और जम्बूद्वीप कहलाता है।

अब बेलनके आकारके चार ऐसे गड्ढोंकी कल्पना कीजिये जो प्रत्येक एक लाख योजन व्यासवाले और एक हजार योजन गहरे हों। इन्हें $अ_1$, $ब_1$, $स_1$ और $ड_1$ कहिये। अब कल्पना कीजिये कि $अ_1$ सरसोंके बीजोंसे पूरा भर दिया गया और फिर भी उस पर और सरसों डाले गये जब तक कि उसकी शिखा शंकुके आकारकी हो जाय, जिसमें सबसे ऊपर एक सरसोंका बीज रहे। इस प्रक्रियाके लिये जितने सरसोंके बीजोंकी आवश्यकता होगी उनकी संख्या इस प्रकार है—

बेलनाकार गड्ढेके लिये— १९७९१२०९२९९९६८'१०^{११}। ऊपर शंक्वाकार शिखाके लिये— १७९९२००८४५४५१६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६। संपूर्ण सरसोंका प्रमाण— १९९७११२९३८४५१३१६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६-३६३६३६.

---

१ देखो त्रिलोकसार. गाथा ३५.

इस पूर्वोक्त प्रक्रियाको हम बेलनाकार गड्ढेका सरसोंके बीजोंसे 'शिखायुक्त पूरण' कहेंगे। अब उपर्युक्त शिखायुक्त पूरित गड्ढेमेंसे उन बीजोंको निकालिये और जम्बूद्वीपसे प्रारंभ करके प्रत्येक द्वीप और समुद्रके वलयोंमें एक एक बीज डालिये। चूंकि बीजोंकी संख्या सम है, इसलिये अन्तिम बीज समुद्रवलय पर पड़ेगा। अब एक बीज ब$_1$ नामक गड्ढेमें डाल दीजिये, यह बतलानेके लिये कि उक्त प्रक्रिया एक बार होगई।

अब एक ऐसे बेलनकी कल्पना कीजिये जिसका व्यास उस समुद्रकी सीमापर्यन्त व्यासके बराबर हो जिसमें वह अन्तिम सरसोंका बीज डाला हो। इस बेलनको अ$_2$ कहिये। अब इस अ$_2$ को भी पूर्वोक्त प्रकार सरसोंसे शिखायुक्त भर देनेकी कल्पना कीजिये। फिर इन बीजोंको भी पूर्व प्राप्त अन्तिम समुद्रवलयसे आगेके द्वीप-समुद्ररूप वलयोंमें पूर्वोक्त प्रकारसे क्रमशः एक एक बीज डालिये। इस द्वितीय बार विरलनमें भी अन्तिम सरसों किसी समुद्रवलय पर ही पड़ेगा। अब ब$_1$ में एक और सरसों डाल दो, यह बतलानेके लिये कि उक्त प्रक्रिया द्वितीय बार हो चुकी।

अब फिर एक ऐसे बेलनकी कल्पना कीजिये जिसका व्यास उसी अन्तिम प्राप्त समुद्र-वलयके व्यासके बराबर हो तथा जो एक हजार योजन गहरा हो। इस बेलनको अ$_3$ कहिये। अ$_3$ को भी सरसोंसे शिखायुक्त भर देना चाहिये और फिर उन बीजोंको आगेके द्वीपसमुद्रोंमें पूर्वोक्त प्रकारसे एक एक डालना चाहिये। अन्तमें एक और सरसों ब$_1$ में डाल देना चाहिये।

कल्पना कीजिये कि यही प्रक्रिया तब तक चालू रखी गई जब तक कि ब$_1$ शिखायुक्त न भर जाय। इस प्रक्रियामें हमें उत्तरोत्तर बढ़ते हुए आकारके बेलन लेना पड़ेंगे—

$$अ_1, अ_2, \ldots\ldots अ_r, \ldots\ldots$$

मान लीजिये कि ब$_1$ के शिखायुक्त भरने पर अन्तिम बेलन अ' प्राप्त हुआ।

अब अ' को प्रथम शिखायुक्त भरा गड्ढा मान कर उस जलवलयके बादसे जिसमें पिछली क्रियाके अनुसार अन्तिम बीज डाला गया था, प्रारम्भ करके प्रत्येक जल और स्थलके वलयमें एक एक बीज छोड़ने की क्रियाको आगे बढ़ाइये। तब स$_1$ में एक बीज छोड़िये। इस प्रक्रियाको तब तक चालू रखिये जब तक कि स$_1$ शिखायुक्त न भर जाय। मान लीजिये कि इस प्रक्रियासे हमें अन्तिम बेलन अ'' प्राप्त हुआ। तब फिर इस अ'' से वही प्रक्रिया प्रारम्भ कर दीजिये और उसे द$_1$ के शिखायुक्त भर जाने तक चालू रखिये। मान लीजिये कि इस प्रक्रियाके अन्तमें हमें अ''' प्राप्त हुआ। अतएव अधन्यपरीतासंख्यात

अ प ज का प्रमाण अ''' में समानेवाले सरसों बीजोंकी संख्याके बराबर होगा और उत्कृष्ट-संख्यात = स उ = अ प ज – १.

पर्यालोचन— संख्याओंको तीन भेदोंमें विभक्त करनेका मुख्य अभिप्राय यह प्रतीत होता है– संख्यात अर्थात् गणना कहां तक की जा सकती है यह भाषामें संख्या-नामोंकी उपलब्धि अथवा संख्याव्यक्तिके अन्य उपायोंकी प्राप्ति पर अवलम्बित है। अतएव भाषामें गणनाका क्षेत्र बढानेके लिये भारतवर्षमें प्रधानतः दश-मानके आधारपर संख्या-नामोंकी एक लम्बी श्रेणी बनाई गई। हिन्दू $१०^{१७}$ तककी गणनाको भाषामें व्यक्त कर सकनेवाले अठारह नामोंसे संतुष्ट होगये। $१०^{१७}$ से ऊपरकी संख्याएं उन्हीं नामोंकी पुनरावृत्ति द्वारा व्यक्त की जा सकती थीं, जैसा कि अब हम दश दश-लाख (million million) आदि कह कर करते हैं किन्तु इस बातका अनुभव होगया कि यह पुनरावृत्ति भारभूत (cumbersome) है। बौद्धों और जैनियोंको अपने दर्शन और विश्वरचना संबंधी विचारोंके लिये $१०^{१७}$ से बहुत बडी संख्याओंकी आवश्यकता पडी। अतएव उन्होंने और बडी बडी संख्याओंके नाम कल्पित कर लिये। जैनियोंके संख्यानामोंका तो अब हमें पता नहीं है[१], किन्तु बौद्धोंद्वारा कल्पित संख्या-

---

१ जैनियोंके प्राचीन साहित्यमें दीर्घ काल-प्रमाणोंके सूचक नामोंकी तालिका पाई जाती है जो एक वर्ष प्रमाणसे प्रारम्भ होती है। यह नामावली इस प्रकार है—

१ वर्ष			१७ अटटांग	=	८४ त्रुटित
२ युग	=	५ वर्ष	१८ अटट	=	,, लाख अटटांग
३ पूर्वांग	=	८४ लाख वर्ष	१९ अममांग	=	,, अटट
४ पूर्व	=	,, लाख पूर्वांग	२० अमम	=	,, लाख अममांग
५ नयुतांग	=	,, पूर्व	२१ हाहांग	=	,, अमम
६ नयुत	=	,, लाख नयुतांग	२२ हाहा	=	,, लाख हाहांग
७ कुमुदांग	=	,, नयुत	२३ हूहांग	=	,, हाहा
८ कुमुद	=	,, लाख कुमुदांग	२४ हूहू	=	,, लाख हूहांग
९ पद्मांग	=	,, कुमुद	२५ लतांग	=	,, हूहू
१० पद्म	=	,, लाख पद्मांग	२६ लता	=	,, लाख लतांग
११ नलिनांग	=	,, पद्म	२७ महालतांग	=	,, लता
१२ नलिन	=	,, लाख नलिनांग	२८ महालता	=	,, लाख महालतांग
१३ कमलांग	=	,, नलिन	२९ शीर्षप्रहेलित	=	,, लाख महालता
१४ कमल	=	,, लाख कमलांग	३० हस्तप्रहेलित	=	,, लाख शीर्षप्रहेलित
१५ त्रुटितांग	=	,, कमल	३१ अचलप्र	=	,, लाख हस्तप्रहेलित
१६ त्रुटित	=	,, लाख त्रुटितांग			

यह नामावली त्रिलोकप्रज्ञप्ति (४–६ वीं शताब्दि) हरिवंशपुराण (८ वीं शताब्दि) और राजवार्तिक (८ वीं शताब्दि) में कुछ नामभेदोंके साथ पाई जाती है। त्रिलोकप्रज्ञप्तिके एक उल्लेखानुसार अचलप्रका प्रमाण ८४ को ३१ बार परस्पर गुणा करनेसे प्राप्त होता है–अचलप्र – $८४^{३१}$ तथा संख्या ९० अंक प्रमाण होगी। किन्तु लघुरिक्थ तालिका (Logarithmic tables) के अनुसार $८४^{३१}$ संख्या ६० अंक प्रमाण ही प्राप्त होती है। देखिये धवला, भाग ३, प्रस्तावना ५ फुट नोट, पृ ३४ —**सम्पादक.**

नामोंकी निम्न श्रेणिका चित्ताकर्षक है—

१ एक	= १	१५ अब्बुद	= $(१०,०००,०००)^{८}$
२ दस	= १०	१६ निरब्बुद	= $(१०,०००,०००)^{९}$
३ सत	= १००	१७ अहह	= $(१०,०००,०००)^{१०}$
४ सहस्स	= १,०००	१८ अबब	= $(१०,०००,०००)^{११}$
५ दससहस्स	= १०,०००	१९ अटट	= $(१०,०००,०००)^{१२}$
६ सतसहस्स	= १००,०००	२० सोगन्धिक	= $(१०,०००,०००)^{१३}$
७ दससतसहस्स	= १,०००,०००	२१ उप्पल	= $(१०,०००,०००)^{१४}$
८ कोटि	= १०,०००,०००	२२ कुमुद	= $(१०,०००,०००)^{१५}$
९ पकोटि	= $(१०,०००,०००)^{२}$	२३ पुंडरीक	= $(१०,०००,०००)^{१६}$
१० कोटिप्पकोटि	= $(१०,०००,०००)^{३}$	२४ पदुम	= $(१०,०००,०००)^{१७}$
११ नहुत	= $(१०,०००,०००)^{४}$	२५ कथान	= $(१०,०००,०००)^{१८}$
१२ निन्नहुत	= $(१०,०००,०००)^{५}$	२६ महाकथान	= $(१०,०००,०००)^{१९}$
१३ अखोभिनी	= $(१०,०००,०००)^{६}$	२७ असंख्येय	= $(१०,०००,०००)^{२०}$
१४ बिन्दु	= $(१०,०००,०००)^{७}$		

यहां देखा जाता है कि श्रेणिकामें अन्तिम नाम **असंख्येय** है। इसका अभिप्राय यही प्रतीत होता है कि असंख्येयके ऊपरकी संख्याएं गणनातीत हैं।

असंख्येयका परिमाण समय समय पर अवश्य बदलता रहा होगा। नेमिचंद्रका असंख्यात उपर्युक्त असंख्येयसे, जिसका प्रमाण $१०^{१४०}$ होता है, निश्चयतः भिन्न है।

असंख्यात— ऊपर कहा ही जा चुका है कि असंख्यातके तीन मुख्य भेद हैं और उनमेंसे भी प्रत्येकके तीन तीन भेद हैं; ऊपर निर्दिष्ट संकेतोंके प्रयोग करनेसे हमें नेमिचंद्रके अनुसार निम्न प्रमाण प्राप्त होते हैं—

$$\text{जघन्य-परीत-असंख्यात } (\text{अ प ज}) = \text{स उ} + १$$
$$\text{मध्यम-परीत-असंख्यात } (\text{अ प म}) \text{ है} > \text{अ प ज, किन्तु} < \text{अ प उ.}$$
$$\text{उत्कृष्ट-परीत-असंख्यात } (\text{अ प उ}) = \text{अ यु ज} - १$$

जहां—

$$\text{जघन्य-युक्त-असंख्यात } (\text{अ यु ज}) = (\text{अ प ज})^{\text{अ प ज}}$$
$$\text{मध्यम-युक्त-असंख्यात } (\text{अ यु म}) \text{ है} > \text{अ यु ज, किन्तु} < \text{अ यु उ.}$$

उत्कृष्ट-युक्त-असंख्यात (अ यु उ = अ अ ज − १.

जहां—

जघन्य-असंख्यातासंख्यात (अ अ ज) = (अ यु ज)[२]
मध्यम-असंख्यातासंख्यात (अ अ म) है > अ अ ज, किन्तु < अ अ उ.
उत्कृष्ट-असंख्यातासंख्यात (अ अ उ) = न प ज − १.

जहां—

न प ज जघन्य-परीत-अनन्तका बोधक है।

अनन्त— अनन्त श्रेणीकी संख्याएं निम्न प्रकार हैं—

जघन्य-परीत-अनन्त (न प ज) निम्न प्रकारसे प्राप्त होता है—

$$क = \left[\left\{ {}^{(अअज)}_{(अअज)} \right\} \left\{ {}^{(अअज)}_{(अअज)} \right\} \right] \left[\left\{ {}^{(अअज)}_{(अअज)} \right\} \left\{ {}^{(अअज)}_{(अअज)} \right\} \right]$$

मानलो ख = क + छह द्रव्य[१]

$$मानलो\ ग = \left\{ {}^{ख ख}_{(ख ख)} \right\} \left\{ {}^{ख ख}_{(ख ख)} \right\} + ४ \text{ राशियां}[२]$$

तब—

$$जघन्य\text{-}परीत\text{-}अनन्त\ (न प ज) = \left\{ {}^{गग}_{(गग)} \right\} \left\{ {}^{गग}_{(गग)} \right\}$$

मध्यम-परीत-अनन्त (न प म) है > न प ज, किंतु < न प उ
उत्कृष्ट-परीत-अनन्त (न प उ = न यु ज − १,

---

१ छह द्रव्य ये हैं— (१) धर्म, (२) अधर्म, (३) एक जीव, (४) लोकाकाश, (५) अप्रतिष्ठित (वनस्पति जीव), और (६) प्रतिष्ठित (वनस्पति जीव).

२ चार समुदाय ये हैं— (१) एक कल्पकालके समय, (२) लोकाकाशके प्रदेश, (३) अनुभागबंध-अध्यवसायस्थान, और (४) योगके अविभाग-प्रतिच्छेद.

जहां—

$$\text{जघन्य युक्त-अनन्त } (\text{नयुज}) = (\text{अपज})^{(\text{अपज})}$$

$$\text{मध्यम-युक्त-अनन्त } (\text{नयुम}) \text{ है} > \text{नयुज, किंतु} < \text{नयुउ}$$

$$\text{उत्कृष्ट-युक्त-अनन्त } (\text{नयुउ}) = \text{ननज} - १$$

जहां—

$$\text{जघन्य-अनन्तानन्त } (\text{ननज}) = (\text{नयुज})^{२}$$

$$\text{मध्यम-अनन्तानन्त } (\text{ननम}) > \text{है ननज, किंतु} < \text{ननउ}$$

आवश्यकता—सुविधानुसार और संशोधन

ननउ उत्कृष्ट अनन्तानन्तके लिये प्रयुक्त है, जो कि नेमिचंद्रके अनुसार निम्न प्रकारसे प्राप्त होता है—

$$\text{क्ष} = \left[\left\{(\text{ननज})^{\text{ननज}}\right\}\left\{(\text{ननज})^{\text{ननज}}\right\}\right]\left[\left\{(\text{ननज})^{\text{ननज}}\right\}\left\{(\text{ननज})^{\text{ननज}}\right\}\right] + \text{छह राशियां}^{१}$$

$$\text{त्र} = \left\{(\text{क्षक्ष})^{\text{क्षक्ष}}\right\}\left\{(\text{क्षक्ष})^{\text{क्षक्ष}}\right\} + \text{दो राशियां}^{२}$$

$$\text{ज्ञ} = \left\{(\text{त्रत्र})^{\text{त्रत्र}}\right\}\left\{(\text{त्रत्र})^{\text{त्रत्र}}\right\}$$

अब, केवलज्ञान राशि ज्ञ से भी बडी है और—

$$\text{ननउ} = \text{केवलज्ञान} - \text{ज्ञ} + \text{ज्ञ} = \text{केवलज्ञान,}$$

पर्यालोचन— उपर्युक्त विवरणका यह विष्कर्ष निकलता है—

(१) जघन्य-परीत-अनन्त (नपज) अनन्त नहीं होता जबतक उसमें प्रक्षिप्त किये गये छह द्रव्यों या चार राशियोंमेंसे एक अधिक अनन्त न मान लिये जायं।

---

१ छह राशियां ये हैं– (१) सिद्ध, (२) साधारण वनस्पति निगोद, (३) वनस्पति, (४) पुद्गल (५) व्यवहारकाल और (६) अलोकाकाश.

२ ये दो राशियां हैं– (१) धर्मद्रव्य, (२) अधर्मद्रव्य, (इन दोनोंके अगुरुलघु गुणके अविभाग-प्रतिच्छेद)।

(२) उत्कृष्ट-अनन्त-अनन्त (न न नउ) केवलज्ञानराशिके समप्रमाण है। उपर्युक्त विवरणसे यह अभिप्राय निकलता है कि उत्कृष्ट अनन्तानन्त अंकगणितकी किसी प्रक्रियाद्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता, चाहे वह प्रक्रिया कितनी ही दूर क्यों न ले जाई जाय। यथार्थतः वह अंकगणितद्वारा प्राप्त ज्ञ की किसी भी संख्यासे अधिक ही रहेगा। अतः मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि केवलज्ञान अनन्त है और इसीलिये उत्कृष्ट-अनन्तानन्त भी अनन्त है।

इस प्रकार त्रिलोकसारान्तर्गत विवरण हमें कुछ संशयमें ही छोड देता है कि परीतानन्त और युक्तानन्तके तीन तीन प्रकार तथा जघन्य अनन्तानन्त सचमुच अनन्त है या नहीं, क्योंकि ये सब असंख्यातके ही गुणनफल कहे गये हैं, और जो राशियां उनमें जोडी गई हैं वे भी असंख्यातमात्र ही हैं। किन्तु धवलाका अनन्त सचमुच अनन्त ही है, क्योंकि यहां यह स्पष्टतः कह दिया गया है कि 'व्यय होनेसे जो राशि नष्ट हो वह अनन्त नहीं कही जा सकती'[1]। धवलामें यह भी कह दिया गया है कि अनन्तानन्तसे सर्वत्र तात्पर्य मध्यम-अनन्तानन्तसे है। अतः धवलानुसार मध्यम-अनन्तानन्त अनन्त ही है। धवलामें उल्लिखित दो राशियोंके मिलानकी निम्न रीति बडी रोचक है[2]—

एक ओर गतकालकी समस्त अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी अर्थात् कल्पकालके समयोंको (time-instants) स्थापित करो। (इनमें अनादि-सान्तत्व होनेसे अनन्तत्व है ही।) दूसरी ओर मिथ्यदृष्टि जीवराशि रखो। अब दोनों राशियोंमेंसे एक एक रूप बराबर उठा-उठा कर फेंकते जाओ। इस प्रकार करते जानेसे कालराशि नष्ट हो जाती है, किन्तु जीव-राशिका अपहार नहीं होता[3]। धवलामें इस प्रकारसे यह निष्कर्ष निकाला गया है कि मिथ्या-दृष्टि राशि अतीत कल्पोंके समयोंसे अधिक है।

यह उपर्युक्त रीति और कुछ नहीं केवल एकसे-एककी संगति (one-to-one correspondence) का प्रकार है जो आधुनिक अनन्त गणनांकोंके सिद्धान्त (Theory of infinite cardinals) का मूलाधार है। यह कहा सकता है कि वह रीति परिमित गणनांकोंके मिलानमें भी उपयुक्त होती है, और इसीलिये उसका आलम्बन दो बडी परिमित राशियोंसे मिलानके लिये लिया गया था— इतनी बडी राशियां जिनके अंगों (elements)

---

१ 'संते वए णट्ठंतस्स अणंतत्तविरोहादो'। ध. ३, पृ. २५.

२ धवला ३, पृ. २८.

३ 'अणंताणंताहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि ण अवहिरंति कालेण'। ध. ३, पृ. २८ सूत्र ३ देखो टीका, पृ. २८. 'कधं कालेण मिणिज्जंते मिच्छाइट्ठी जीवा'? आदि।

की गणना किसी संख्यात्मक संज्ञा द्वारा नहीं की जा सकी । यह दृष्टिकोण इस बातसे और भी पुष्ट होता है कि जैन-ग्रंथोंमें समयके अध्वानका भी निश्चय कर दिया गया है, और इसलिये एक कल्प (अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी) के कालप्रदेश परिमित ही होना चाहिये, क्योंकि, कल्प स्वयं कोई अनन्त कालमान नहीं है । इस अंतिम मतके अनुसार जघन्य-परीत-अनन्त, जो कि परिभाषानुसार कल्पके कालप्रदेशोंकी राशिसे अधिक है, परिमित ही है ।

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, एकसे-एककी संगतिकी रीति अनन्त गणनांकोंके अध्ययनके लिये सबसे प्रबल साधन सिद्ध हुई है, और उस सिद्धान्तके अन्वेषण तथा सर्व-प्रथम प्रयोगका श्रेय जैनियोंको ही है ।

संख्याओंके उपर्युक्त वर्गीकरणमें मुझे अनन्त गणनांकोंके सिद्धान्तको विकसित करनेका प्राथमिक प्रयत्न दिखाई देता है । किन्तु इस सिद्धान्तमें कुछ गंभीर दोष हैं । ये दोष विरोध उत्पन्न करेंगे । इनमेंसे एक स – १ को संख्याकी कल्पनाका है, जहां स अनन्त है और एक वर्गकी सीमाका नियामक है । इसके विपरीत जैनियोंका यह सिद्धान्त कि एक संख्या स का वर्गित-संवर्गित रूप अर्थात् $स^{स}$ एक नवीन संख्या उत्पन्न कर देता है, युक्तपूर्ण है । यदि यह सच हो कि प्राचीन जैन साहित्यका उत्कृष्ट-असंख्यात अनन्तसे मेल खाता है, तो अनन्तकी संख्याओंकी उत्पत्तिमें आधुनिक अनन्त गणनांकोंके सिद्धान्त (Theory of infinite cardinals) का कुछ सीमा तक पूर्वनिरूपण हो गया है । गणितशास्त्रीय विकासके उतने प्राचीन काल और उस प्रारम्भिक स्थितिमें इस प्रकारके किसी भी प्रयत्नकी असफलता अवश्यंभावी थी । आश्चर्य तो यह है कि ऐसा प्रयत्न किया था ।

अनन्तके अनेक प्रकारोंकी सत्ताको जार्ज केन्टरने उन्नीसवीं शताब्दिके मध्यकालके लगभग प्रयोग–सिद्ध करके दिखाया था । उन्होंने सीमातीत (transfinite) संख्याओंका सिद्धांत स्थापित किया । अनन्त राशियोंके क्षेत्र(domain)के विषयमें कैन्टरके अन्वेषणोंसे गणितशास्त्रके लिये एक पुष्ट आधार, खोजके लिये एक प्रबल साधन और गणितसंबंधी अत्यन्त गूढ विचारोंको ठीक रूपमें व्यक्त करनेके लिये एक भाषा मिल गई है । तो भी यह सीमातीत संख्याओंका सिद्धांत अभी अपनी प्राथमिक अवस्थामें ही है । अभी तक इन संख्याओंका कलन (Calculus) प्राप्त नहीं हो पाया है, और इसलिये हम उन्हें अभी तक प्रयत्नमात्रसे गणितशास्त्रीय विश्लेषणमें नहीं उतार सके हैं ।

शब्द-सूची

'धवलाका गणितशास्त्र' शीर्षक लेखमें जो गणितसे सम्बन्ध रखनेवाले विशेष हिन्दी शब्दोंका उपयोग किया गया है उनके समरूप अंग्रेजी शब्द निम्न प्रकार हैं—

अनन्त–Infinite.

अनन्त गणनांक सिद्धान्त–Theory of infinite cardinals.

अनुपात–Proportion.

अर्धक्रम–Operation of mediation.

अर्धच्छेद–Number of times a number is halved; mediation; logarithm.

असंख्यात–Innumerable.

असाम्यता–Inequality.

अंक–Notational place.

अंकगणित–Arithmetic.

अंग–Element.

आधार–Base (of logarithm).

आविष्कार–Discovery; invention.

उत्तरोत्तर–Successive.

एकदिशात्मक–One directional.

एकसे-एककी संगति–One-to-one correspondence

कला–Art.

कालप्रदेश–Time-instant.

कुट्टक Indeterminte equation.

केन्द्रवर्ती वृत्त–Initial circle; central core.

क्रिया Operation.

क्षेत्रप्रदेश–Locations; points or places.

क्षेत्रमिति–Mensuration.

गणित, °शास्त्र Mathematics.

गणितज्ञ–Mathematician.

गुणा–Multiplication.

घनमूल–Cube root.

घात निकालना, °करना Raising of numbers to given powers.

घातांक Powers.

घातांक सिद्धान्त–Theory of indices.

चतुर्थच्छेद–Number of times that a number can be divided by 4.

चिन्ह Trace.

जोड–Addition.

ज्योतिषविद्या–Astronomy.

टिप्पणी–Notes.

त्रिकच्छेद–Number of times that a number can be divided by 3.

त्रिज्या Radius.

त्रैराशिक–Rule of three.

दशमान Scale of ten.

दाशमिकक्रम–Decimal place-value notation.

द्विगुणक्रम–Operation of duplation.

द्विविस्तारात्मक Two-dimensional; superficial.

निगूढतर्क–Abstract reasoning.

नियम–Rule.

पद्धति Method.

परिणाम–Result.

परिमाण Magnitude.

परिमाणहीन Dimensionless.

परिमित गणनांक Finite cardinals.

पूर्णांक–Integer.
प्रक्रिया–Process; operation.
प्रतरात्मक अनन्त आकाश–Infinite plane area.
प्रश्न–Problem.
प्राथमिक–Elementary: primitive.
बाकी–Subtraction.
बीजगणित–Algebra.
बेलनाकार–Cylindrical.
भाग–Division.
भाजक–Divisor.
भिन्न–Fraction.
मूल, °भौलिक प्रक्रिया–Fundamental operation.
राशि–Aggregate.
रूढ संख्या–Prime.
रूपरेखा–General outline.
लघुरिथ–Logarithm.
लब्ध–Quotient.
वर्ग–Square.
वर्गमूल–Square root.
वर्गशलाका–Logarithm of logarithm.
वर्गसमीकरण–Quadratic equation.
वर्गित-संवर्गित–Raising a number to its own power (संख्यातुल्य घात).
वलय–Ring.
विकलन–Distribution.
विज्ञान–Science.
विद्युत्कण–Protons and electrons.
विनिमय–Barter and exchange.
विरलन–Distribution; spreading.
विरलन-देय–Spread and give.
विश्लेषण–Analysis.
विस्तार–Details.
वृत्त–Circle.
व्याज–Interest.
व्यास–Diameter.
शंक्वाकार शिखा–Super-incumbent cone.
शाखा–Shcool.
श्रेणीबद्ध करना–Classify.
समकेन्द्रीय–Concentric.
सरल समीकरण–Simple equation.
संकेत–Symbol, notation.
संकेतक्रम–Scale of notation.
संख्या–Number.
संख्यात–Numberable.
संख्यातुल्य घात–Raising of a number to its own power.
सातत्य–Continuum.
साधारणीकृत–Generalised.
सीमा–Boundary.
सीमातीत संख्या–Transfinite number.
सूत्र–Formula.

शुद्धिपत्र

पृ.	पं.	अशुद्धि	शुद्धि
३	१५	उभयरूप कारणोंकी	उभयरूप अन्य कारणोंकी[1]
६४	३०	मुखविस्तारसे करना	मुखविस्तारसे गुणित करना
६५	१०	परूवणाए पदं	परूवणाए उववादपदं
६६	१२	प्ररूपणाके समान	प्ररूपणा उपपाद पदके प्रति
७४	२३	पर्याप्त मनुष्य	मनुष्य पर्याप्त[1]
११७	१८	द्वारा आये हुए दोष प्रसंगका प्रतिषेध कर दिया गया है।	द्वारा प्रसज्याभावके प्रतिषेध का निराकरण कर दिया है।
११७	२३	वेदियोंमें इस पदके प्रव्य निर्देशकी भी इसी	वेदियोंमें यह पद द्रव्य निर्देश पर है। अतः इसका इसी
१२०	१	तीसु	तिसु
१४७	५	आयाम कहा नहीं। चौदह	आयामके चौदह
१५०	२१	कर पुनः	कर जो शेष रहे उसे पुनः
१५३	२७	द्वीपके समुद्रके	द्वीप और समुद्रके
१५६	९	उपर्युक्त	पूर्वोक्त
१८१	२६	प्रकार सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयत	प्रकार असंयत
१८२	१८	एक योजन	एक हजार योजन
१८४	११	तिर्यंच योनिमती	तिर्यंच योनिनी
१९०	१७	किया है। किन्तु	किया है। केवल इतनेही क्षेत्रसे कम नहीं है। किन्तु
१९४	५	॥ ४ ॥	॥ ५ ॥
१९६	१९	तीसरा है	तक तीन हो जाते हैं,
२१३	१३	शेष तिर्यंच गतिके	शेष गुणस्थानवाले तिर्यंच गतिके
२१३	१३	क्षेत्र ओघके	क्षेत्र तिर्यंच ओघके
३१४	१	पडवादीण	पईवादीण
३१४	१२	प्रतिपादका शब्द पाये	प्रदीपादि पाये
३१५	१८	काल पुद्गलोंके	काल, जीव और पुद्गलोंके

१. आगममें सर्वत्र मनुष्योंके मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त मनुष्यिनी और मनुष्य अपर्याप्त ये चार भेद किये गये है। अतः आगे जहाँ भी इस संज्ञाओंमें फरक किया गया हो वहाँ इसी विधिसे सुधार कर स्वाध्याय करना चाहिये।

२. आगममें उक्त शब्दका अर्थ विवक्षित है।

पृ.	पं.	अशुद्धि	शुद्धि
३१५	१८	उत्पन्न होता	आचार्य श्री सुविधिसागरजी महाराज अपेक्षमान होता
३१५	१८	और पुद्गलादिका	और जीव तथा पुद्गलोंका
३१७	२०	पुद्गल एवं धर्मादिक द्रव्योंके	पुद्गल द्रव्योंके
३१७	२२	आदि वर्तनारहित चिर अथवा क्षिप्र की अर्थात् परत्व और अपरत्वकी, कोई सत्ता नहीं हैं। वह वर्तना भी पुद्गल द्रव्यके बिना नही होती है, इसलिए कालद्रव्य पुद्गलके निमित्तसे हुआ कहा जाता है ॥ ९ ॥	चिर अथवा क्षिप्र यह ज्ञान प्रमाणके बिना नहीं होता और वह प्रमाण पुद्गल द्रव्यके परिणामके बिना नहीं होता, इसलिए वह काल पुद्गलके आलम्बन सापेक्ष उत्पन्न होता है ॥ ९ ॥
३२५	१५	आनेवाले	आये हुए
३२९	९	निरूपणा	निरूपणा
३३९	१९	कि क्षण होनेवाली सभी राशियोंके प्रतिपक्षसहित पाई जाती है।	क्योंकि सभी राशियां प्रतिपक्षसहित पाई जाती हैं।
३४३		तो प्रमत्त	तो उसका प्रमत्त
३४६	४	पक्खसाहणत्तेहि	पक्खसाहणत्ते हि
३५३	१६	अन्य भी अप्रमत्तसंयत जीव	अन्य अप्रमत्तसंयत जीवोंको भी
३५३	१६	करना	कराना
३६२	१६	सम्यग्दृष्टि	सम्यग्मिथ्यादृष्टि
३६२	३	पडिविज्जय	पडिवज्जिय
३६८	७	तण्णि	तिण्णि
३६९	१६	करना नहीं है।	करना सम्भव नहीं है।
३६८	१७	लब्ध्यपर्याप्तकोंमें	अपर्याप्तकोंमें
३६८	१८	क्योंकि लब्ध्यपर्याप्त	क्योंकि अपर्याप्त अर्थात् निवृत्य पर्याप्त
३७१	१६	काल ओघके	काल तिर्यंच ओघके
३७६	३	एगजीवण्णदर	एगजीवसस अण्णदर
३७६	९	णाणाजाव	जाणाजीवं
३७६	१७	सम्यग्मिथ्यादृष्टि	सम्यग्मिथ्यादृष्टि एक जीवके
३८४	६	लंतव	लांतव
३८५	७	मीच्छादिट्ठी	मिच्छादिट्ठी
४०२	१	अणप्पिपद	अणप्पिद
४१८	५	तंधा ज	तं जधा
४५७	१	सव्भदे	लब्भदे
४७६	११	अकाट्टिम	अकिट्टिम
४८५	४	बादेन	बादेण

प्राक् कथन

षट्खंडागमका तीसरा भाग अप्रेल १९४१ में प्रकाशित हुआ था। वर्ष पूरा होते होते उसका चौथा भाग भी तैयार होकर पाठकोंके हाथमें पहुंच रहा है। इन सिद्धान्त ग्रन्थोंका समाजमें आदर और प्रचार देखकर हमें अपने ध्येयकी सफलताका संतोष है। विद्वत्समाज अब इस ओर कितना उत्सुक और तत्पर हो उठा है इसका अनुमान इसीसे किया जा सकता है कि इसी अल्पकालमें हमें इस सिद्धान्तोद्धारके कार्यमें पंडिताचार्यवर्य भट्टारक चारुकीर्तिजी स्वामी तथा पंचोंकी कृपासे मूडबिद्री संस्थानका पूर्ण सहयोग प्राप्त हो गया है, जिससे अब सिद्धान्तग्रंथका मूल पाठ वहांकी ताड़पत्रीय प्रतियोंके मिलान परसे ही निश्चित किया जाता है। इस कारण अब इतर प्रतियोंके मिलान प्रकाशित करनेकी आवश्यकता नहीं रही। इसी बीच द्वितीय सिद्धान्तग्रंथ कषायप्राभृत और उसकी टीका जयधवलाके प्रकाशनके लिये भी एक नहीं अनेक संस्थाएं उत्सुक हो उठी हैं, और जैनसंघ, मथुरा, ने उस ओर कार्य प्रारंभ भी कर दिया है। उधर शोलापुरवाले स्वर्गीय सेठ रावजी सखारामजी दोशीके संरक्षणमें जो सिद्धान्तोद्धारसंबंधी फंड था, उसकी उनके सुयोग्य उत्तराधिकारी सेठ गुलाबचंद्रजीने सुव्यवस्था करके महाधवलके निमित्त एक समिति सुसंगठित कर दी है। यही नहीं, श्रीयुक्त मंजैयाजी हेगडेने तीनों सिद्धान्तोंके मूलपाठको ताड़पत्रीय प्रतियोंके अनुसार प्रकाशित करानेकी भी एक स्कीम प्रस्तुत की है। साहित्योद्धारके महत्व और उसकी आवश्यकताको अनुभव करके शोलापुरके अत्यन्त धर्मानुरागी ब्रह्मचारी जीवराज गौतमचंदजी दोशीने गम्भीर विचार और विद्वत्परामर्शके पश्चात 'जैन संस्कृति संरक्षक संघ' का आयोजन किया है, और उसके लिये अपनी ओरसे तीस हजारका दान भी दे दिया है। इस संघका ध्येय बहुत विशाल और सर्वांगव्यापी है, जिसकी पूर्ति धीरे धीरे ही हो सकती है तथा समाजके सहयोगपर अवलम्बित है। किन्तु उसके अन्तर्गत जो एक 'जीवराज जैन ग्रंथमाला' के संचालनका निश्चय किया गया था, उसका मेरे प्रियमित्र डॉ. आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्याय और मेरे सम्पादकत्वमें कार्य प्रारंभ हो गया है, और उस मालाका प्रथम पुष्प, उक्त सिद्धान्तग्रंथोंकी ही कोटिका प्राचीन प्रामाणिक ग्रंथ 'तिलोयपण्णत्ति' (त्रिलोकप्रज्ञप्ति) मुद्रणाधीन है। इस प्रकार यह सिद्धान्तोद्धारका अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य अब अनेक कंधोंद्वारा सम्हाला जा रहा है, जिससे हमें अब अपना बोझ कुछ हलका हुआ प्रतीत होने लगा है। इसकी हमें प्रसन्नता है।

किन्तु गतिके साथ गति-अवरोधोंके प्रयत्नोंका भी सर्वथा अभाव नहीं है। प्रकाशित सिद्धान्त ग्रन्थोंकी धार्मिक ज्ञानवृद्धिमें बड़ी भारी उपयोगिताका अनुभव करके बंबईकी माणिकचंद्र जैन परीक्षालय समितीने अपनी गत बैठकमें धवलसिद्धान्तके प्रथम भाग सत्प्ररूपणाको अपनी सर्वोच्च शास्त्री परीक्षाके पाठ्यक्रममें सम्मिलित करना आवश्यक समझा। इसका अधिकांश पाठकों और विद्यार्थियोंने बड़ा हर्ष मनाया। किन्तु, मोरेना जैन सिद्धान्त विद्यालयके प्रधान

अध्यापक पं. मक्खनलालजी शास्त्रीने इसका घोर विरोध प्रारंभ कर दिया है। उन्होंने 'सिद्धान्तशास्त्र और उनके अध्ययनका अधिकार' शीर्षक एक पुस्तिका लिखी है जिसमें उन्होंने यह बतलानेका प्रयत्न किया है कि गृहस्थ जैनियोंको इन सिद्धान्तग्रंथोंके पढ़नेका बिलकुल अधिकार नहीं है और इसलिये इनका पढ़ना पढाना व छपाना एकदम बंद कर देना चाहिये। इस पुस्तिकाके आधारसे जैन पाठशालाओंके अध्यापकोंके ऐसे मत संग्रह करनेका भी प्रयत्न किया जा रहा है कि वे धवल, जयधवल, महाधवल, इन सिद्धान्त ग्रंथोंका पठन-पाठन नहीं करेंगे। अपनी अपनी समझ और विवेकके अनुसार तो प्रत्येकको अपना मत बनाने और उसका प्रचार करनेका अधिकार है, किन्तु उक्त पुस्तिकामें जो इस मतके लिये प्राचीन प्रमाण दिये गये हैं, उनसे साधारण पाठकोंको एक भ्रम पैदा हो जानेकी संभावना है। अतएव हमने यह आवश्यक समझा कि हम अपने पाठकोंके लिये उन प्राचीन प्रमाणोंकी जांच पड़ताल करके अपना निष्कर्ष उनके सन्मुख रख दें, ताकि वे उक्त मतकी सारहीनताको समझ जावें। हमारे इस विवेचनको पाठक प्रस्तुत भागकी प्रस्तावनामें 'सिद्धान्त और उनके अध्ययनका अधिकार' शीर्षक लेखमें देखेंगे जिससे उन्हें पता चल जायगा कि कुंदकुंद, समन्तभद्र आदि जैसे अत्यन्त प्राचीन और प्रामाणिक आचार्योंने गृहस्थोंको सिद्धान्त शास्त्र पढ़नेका प्रतिषेध नहीं किया, किन्तु खूब उपदेश दिया है। तथा सिद्धान्त अध्ययनका प्रतिषेध करनेवाले जो ग्रंथ हैं वे बहुत पीछेके १२ वी शताब्दि और उसके पश्चात्के अत्यन्तसाधारण लेखकों द्वारा रचे गये हैं; और उन्होंने भी यह कहीं नहीं कहा कि धवल-जयधवल ग्रंथ ही सिद्धान्त ग्रंथ हैं, व गोम्मटसारादि सिद्धान्त ग्रंथ नहीं हैं। यह सब उक्त पुस्तिकाके लेखककी ही मौलिक कल्पना है जिसका यथार्थ मर्म वे ही जानें। स्वयं धवलादि सिद्धान्त ग्रंथोंमें बार बार यह कहा गया है कि इन ग्रन्थोंकी रचना, सर्व प्राणियोंके हितके लिये, मनुष्यमात्रके उपयोगके लिये मूर्खसे मूर्ख और बुद्धिमान् से बुद्धिमान् पुरुषोंके उपकारार्थ हुई है। अतएव उनके पठन-पाठनका सभीको पूरा अधिकार है।

पूर्व-प्रकाशित द्रव्यप्रमाणानुगममें जो गणित आया है, और उसके संबंधमें हमें जो कुछ सहायता लखनऊ विश्वविद्यालयके गणिताध्यापक **डॉ. अवधेश नारायण सिंह** जीसे मिली थी उसका हम उसी भागमें उल्लेख कर आये हैं। वहां हमारे अंग्रेजी नोटमें हमने यह भी कहा था कि डॉ. साहब उस गणितका विशेष अध्ययन कर रहे हैं। हमें बड़ा हर्ष है कि डॉ. सिंहजीने अब अपने अध्ययनका फल इस भागमें पाठकोंके सन्मुख उपस्थित कर दिया है। उन्होंने उस भागकी गणित पर अंग्रजीमें एक विद्वत्तापूर्ण लेख लिखकर हमें भेजा है जो इस भागमें प्रकट हो रहा है। उससे पाठक समझ सकेंगे कि जैनियोंके द्वारा भारतीय गणितशास्त्रमें कितनी उन्नति हुई है, और धवलाके अन्तर्गत गणितशास्त्र किस कोटिका है। अगले भागमें हम इस लेखका पूरा हिन्दी अनुवाद भी अपने पाठकोंकी भेंट करेंगे, और उसमें प्रस्तुत भागके क्षेत्रमिति संबंधी गणित पर भी ऐसा ही विद्वत्तापूर्ण लेख सम्मिलित करेंगे। इस सहयोगके लिये हम डॉ. सिंहके बहुत ऋणी हैं।

प्रस्तुत खंडांशमें जीवट्ठाणकी तीन प्ररूपणाएं आयी हैं– क्षेत्र, स्पर्शन और काल। इनमें क्रमशः ९२, १८५ और ३४२ सूत्र पाये जाते हैं। इनकी टीकामें क्रमशः लगभग १०१, १२४ और ११५ शंका-समाधान आये हैं। हिन्दी अनुवादमें अर्थको स्पष्ट करने के लिये क्रमशः ३५, १७ और ८ विशेषार्थ तथा २६ और २५ गणितके उदाहरण जोड़े गये हैं। तुलनात्मक व पाठ-भेदसंबंधी टिप्पणियोंकी संख्या क्रमशः १९७, १४८ और २७६ है। इस प्रकार इस ग्रंथभागमें लगभग ३४० शंका-समाधान, ६० विशेषार्थ, ५२ गणितोदाहरण तथा ६२१ टिप्पण पाये जावेंगे।

इनमें और विशेषतः प्रथम दो प्ररूपणाओंमें द्रव्यप्रमाणप्ररूपणाके सदृश बहुतसा गणित भाग आया है। विशेषता यह है कि यहांका गणित प्रायः क्षेत्रमिति (Geometry) से संबंध रखता है, जब कि द्रव्यप्रमाणका गणित अंकगणितसंबंधी था। लोकके आकारसंबंधी मान्यताओंमें मतभेद और उनमें तथ्यातथ्य-निर्णयके लिये उनके घनप्रमाण लानेकी प्रक्रियाएं जैन करणानुयोगकी बिलकुल नई चीजें हैं। उसी प्रकार शंखक्षेत्र, गोहूीक्षेत्र, भ्रमरक्षेत्र व मत्स्यक्षेत्रके घनफलकी प्रक्रियाएं भी ध्यान देने योग्य हैं : स्पर्शनप्ररूपणामें द्वीपसागरोंके विस्तार और तत्संबंधी चंद्रोंके प्रमाणका गणित भी बड़ा सूक्ष्म है और उनके गणितसूत्रोंसे संबंध रखता है।

इस सब गणितको विधिवत् समझने व समझानेमें हमें पुनः हमारे कालेजके गणित अध्यापक प्रोफेसर **काशीदत्तजी पांडे** से बहुत सहायता मिली है। जैसे परिश्रमसे उन्होंने द्रव्यप्रमाणके गणितको व्यवस्थित करा दिया था, वैसे ही उन्होंने यहां भी बड़ा योग दिया। लोकाकार संबंधी मतभेद व प्रमाणके गणितको समझनेके लिये हमें उस उस आकारके काष्ठादर्शों (wooden models) की आवश्यकता पड़ी जो हमारे प्रियमित्र, श्रद्धेय पं. सूरजभानुजी वकीलके सुपुत्र, **कुलवंतरायजी जैनी** के परिश्रमसे तैयार हो गये। उन्होंने उनके कुछ चित्रादि बनाकर भी दिये जिनसे विषयके स्पष्टीकरणमें हमें बड़ी सहायता मिली। उन्हीं काष्ठादर्शों व चित्रोंके आधारसे तथा अन्य गणित परसे हमारे नगरके 'न्यू हाइस्कूल' के ड्राइंग मास्टर श्रीयुक्त **एस. वाय. पत्की**, डी. टी. सी. ने हमें वे बीस चित्र बनाकर दिये जिनके ब्लाक इस भागमें प्रकट किये जा रहे हैं, तथा जिनकी सहायतासे तत्संबंधी गणित हमारे पाठकोंको भी सुग्राह्य हो सकेगा। इस सब सहायताके लिये हम उक्त सज्जनोंके बहुत कृतज्ञ हैं। हमारी प्रतियोंकी साधन-सामग्री पूर्ववत् कायम है जिसके लिये हम अमरावती जैन मंदिर, सिद्धान्तभवन आरा तथा कारंजा ब्रह्मचर्याश्रमके अनुगृहीत हैं। हमारे संशोधनसहायक भी पूर्ववत् स्थिर हैं।

गत भागकी प्रस्तावनाके भीतर हमने एक शंका–समाधानका स्तम्भ भी रखा था जिसमें उस समय तक आई हुई चौबीस शंकाओंके उत्तर दिये गये थे। समालोचकोंने इस स्तम्भ पर

हर्ष प्रकट किया और आगे भी उसे नियत रखनेकी प्रेरणा की। किन्तु इस बार हमारे पास कोई विशेष शंकाएं नहीं आयें। तब हमने इसके लिये पत्रोंमें एक सूचना निकाली, जिसके फलस्वरूप जो शंकाएं हमारे पास आये उनका हमने पूरा उपयोग किया है और प्रस्तुत भागकी प्रस्तावनाके अन्तर्गत शंका-समाधान, एवं शुद्धिपत्रमें पूर्वभागोंके पाठका संशोधन उसकी सुपरिणाम है। इस ओर विशेषरूपसे रुचि दिखलानेके लिये श्रीयुक्त नानकचंदजी, खतौली, श्रीयुक्त रतनचंदजी मुख्तार, सहारनपुर और श्रीयुक्त नेमिचंदजी वकील, सहारनपुर, को हम धन्यवाद देते हैं। यदि उनकी भेजी गई कोई शंकाएं या शुद्धियां, यहां सम्मिलित नहीं की गई हैं तो समझना चाहिए कि उनका संकलन पूर्वभागोंमें हो चुका है जिनका पाठकोंको सदैव ध्यान रखना चाहिए। कभी कभी शंकाकार हमसे ऐसा प्रश्न भी कर बैठते हैं कि अमुक बात अमुक प्रकार से क्यों नहीं कही या अमुक बात क्यों नहीं जोडी गई? इसके उत्तर में हम अपने पाठकोंका ध्यान केवल हमारे इस आदर्श की ओर आकर्षित करते हैं कि—

'नामूलं लिख्यते किञ्चित्, नानपेक्षितमुच्यते'

इस महान् कार्यमें हमें अब उत्तरोत्तर कठिनाइयोंका अनुभव हो रहा है। जैसा कि हम पूर्व भागमें प्रकट कर चुके हैं, हमारे एक सहयोगी पं. फूलचंद्रजी शास्त्री उस भागके सम्पूर्ण हो सकनेके पूर्व ही आकस्मिक विपत्तिके कारण यहांसे चले गये थे। तबसे वे फिर वापिस नहीं आसके। अतएव इस भागका संपूर्ण कार्य केवल पं. हीरालालजी सिद्धान्तशास्त्रीकी सहायतासे हुआ है। प्रूफ और प्रति मिलानमें तिलोयपण्णत्ति-विभागके कार्यकर्ता पं. बालचन्द्रजी शास्त्रीका साहाय्य रहा है। इधर यूरोपीय युद्धके कारण कागज आदिका भाव बेहद बढ़ता गया। यथेष्ट कागज ठीक समय पर मिलना भी अशक्य हो गया। इतने पर अमरावती नगरमें साम्प्रदायिक झगडेने कुछ समयके लिये ऐसा भीषणरूप धारण किया कि आफिस और प्रेसका कार्य बंद रखना पड़ा। पुस्तकोंकी बिक्री भी इतनी नहीं हो रही जिससे आगेका कार्य चलता जावे। इससे हमारा फंड भी कुछ कुछ कम होता जा रहा है। इन सिद्धान्त ग्रंथोंके प्रचारको रोकनेका भी जो प्रयत्न हो रहा है उसका हम ऊपर उल्लेख कर ही आये हैं। किन्तु इन सब कठिनाइयोंके होते हुए भी किसी अज्ञात शक्तिके प्रभावसे कार्य अग्रेसर होता ही गया। हम कहां तक अपने आदर्शको स्थिर रख सके हैं, इसका निर्णय करना हमारे मर्मज्ञ पाठकोंके अधिकारमें है।

किंग एडवर्ड कालेज,
अमरावती
१५-१२-४१

हीरालाल जैन

आवश्यक निवेदन

जीवस्थान षट्खण्डागमका प्रथम खण्ड है। उसके क्षेत्र, स्पर्शन और काल क्रमशः तीसरा, चौथा और पाँचवाँ ये तीन अनुयोगद्वार हैं। इनके पहले सत् और संख्या इन दो अनुयोगद्वारोंका हम संशोधनपूर्वक सम्पादन कर चुके हैं। किन्तु विशेष अस्वस्थ रहने के कारण प्रथम पुस्तकको छोड कर उनमें किये गये संशोधनोंका दिग्दर्शन हम नहीं करा पाये हैं। इन पाँचों अनुयोगद्वारोंका अनुवाद हम और स्व. श्री. पं. हीरालालजी सि. शा. ने मिलकर किया था। इतना अवश्य है कि जब इस चौथी पुस्तकका अनुवाद होकर मुद्रण हो रहा था तब परिस्थितिवश हमने इस कार्यसे निवृत्त होना ही उचित समझा। फलस्वरूप कुछ काल तक हम षट्खण्डागम धवलाकी अनुवाद प्रक्रियासे समुचित योगदान न कर पाये। इतना अवश्य है कि जिस समय षट्खण्डागम धवलाका अनुवाद होकर प्रकाशन हो रहा था तब तक मूडबिद्रीके सिद्धान्त मन्दिरमें स्थित ताड़पत्रीय प्रतियाँ उपलब्ध होकर उनके फोटो प्रिंट नहीं हो पाये थे। किन्तु अब उनके फोटो प्रिंट उपलब्ध होनेसे पुनर्मुद्रणके कार्यमें हम उनका समुचित उपयोग इसलिये नहीं कर पा रहे हैं, क्योंकि, उनके आधारसे जो टिप्पण लिखाये गये हैं उन्हीं पर हमें निर्भर रहना पड़ता है। सत्प्ररूपणाकी प्रथम पुस्तकके संशोधनके समय जिस विधिसे हमने फोटो प्रिंटोंका उपयोग कर कतिपय आवश्यक संशोधन करनेमें हम समर्थ हुए थे वह स्थिति पुनः नहीं बन पाई और मात्र फोटो प्रिंटोंके आधारसे लिये गये टिप्पणों पर ही हमें निर्भर रहना पड़ता है। अस्तु,

अब प्रकृतमें इस पुस्तकमें किये गये संशोधनोंके आधारसे विचार करना है। यद्यपि जिन टिप्पणोंके आधारसे हमने संशोधन किया था वे टिप्पण हमारे सामने नहीं हैं। फिर भी संशोधित प्रति हमारे सामने होनेसे उसके आधारसे संक्षेपमें विचार किया जाता है। ताकि पाठक इस पुस्तकमें किये गये कतिपय संशोधनोंसे अवगत हो सकें।

प्रथम संस्करण	पृ.	पं.	द्वितीय संस्करण	पृ.	पं.
णामपत्तिद्धडीणं	२८	५	णामपत्तिद्धडीणं	२८	६
प्राप्त नहीं हुई	२८	२०	प्राप्त हुई	२८	१२
सम्यग्दृष्टि मनुष्य	७५	१२	सम्यग्दृष्टि सामान्य मनुष्य	७५	१३
मिथ्यादृष्टि मनुष्य	७५	१५	मिथ्यादृष्टि उक्त मनुष्य	७५	१६
संयतासंयत मनुष्य	७५	१८	संयतासंयत उक्त मनुष्य	७५	१९
मनुष्य	७५	२०	सामान्य मनुष्य	७५	२१
तक मनुष्योंके	७५	२२	तक सामान्य मनुष्योंके	७५	२३
अपज्जत्ता च सत्थाण	१००	८	अपज्जत्ता च सव्वलोगे एवं णिगोद सुहुमणिगोद	१००	६–८

प्रथम संस्करण	पृ.	पं.	द्वितीय संस्करण	पृ.	पं.
			तेसिंपज्जत्तापज्जत्ताणं च बादरवणप्फदिकाइया बादरणिगोदा तेसिं पज्जत्तापज्जत्ता च सत्थाण–		
वनस्पतिकायिक स्वस्थान	१००	२७	वनस्पतिकायिक और सूक्ष्म वनस्पतिकायिक जीव तथा उनके पर्याप्त और अपर्याप्त जीव सर्व लोकमें रहते हैं। इसी प्रकार निगोद जीव और सूक्ष्म निगोद जीव तथा उनके पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंको जानना चाहिये	१००	२५ २७
			आगमोद्धारक श्री आनन्दसागर जी महाराज		
औदारिककाययोगका क्षेत्र	१०५	१६	औदारिककाययोगके साथ वैक्रियिक समुद्घातका क्षेत्र	१०५	१७
क्योंकि यहाँ	१०६	२५	क्योंकि मिथ्यादृष्टि गुणस्थानके साथ	१०६	२४
विद्यमान	१०६	२५	होनेवाले	१०६	२५
स्थित जीवोंका	१०७	२२	स्थित सासादन और असंयम सम्यग्दृष्टि जीवोंका	१०७	२३
मनुष्य तिर्यंचोंमें	१०८	१७	मनुष्योंमें	१०८	१७
ओघक्षेत्रके समान है।	१११	२५	ओघक्षेत्रके लिये कही गई अपवर्तनाके समान है।	१११	२७
इसलिये	११५	१९	इसलिये उक्त पदवाले जीव	११५	१८
चदुट्ठाणमोघं	१२४	५	चदुट्ठाणी ओघं	१२४	५
णत्थि आहारित्ता	१३७	७	णत्थि तत्थ आहारित्ता	१३७	७
फुसणवसणे	१४१	८	फुसणघसणे	१४१	८
कलुषताके संम्मार्जन	१४१	१३	कलुषताके स्पर्शको संमार्जन करनेमें समर्थ	१४१	१३
अजीवो	१४२	२	अजिओ	१४२	२
ताव ओघेणेसि	१४५	६	ताव ओघेण भणामि सि ओघेणेसि	१४५	४
असंखेज्जगुणं	१४८	४	असंखेज्जगुणमेत्तं	१४८	४

प्रथम संस्करण	पृ.	पं.	द्वितीय संस्करण	पृ.	पं.
दुगुणकमेण	१५३	२	दुगुणगुणकमेण	१५३	२
गच्छेहि पुव्व	१५३	२	गच्छेहि पुव्वपुव्व	१५३	३
क्योंकि दुगुणे हुए स्थान पर चार रूपकी	१५३	२६	क्योंकि दुगुणे हुए स्थान पर पहलेके समुद्र या द्वीपके प्रथम वलयके प्रमाणसे अगले द्वीप या समुद्रके प्रथम वलयका प्रमाण दूना हो जाता है, उसमें चार रूपकी	१५३	२५
माणयणकरणादो	१५५	६	मवणयणकरणादो	१५५	७
शलाकाओंका आता है।	१५५	२४	शलाकाओंका अपनयन किया गया है।	१५६	२४
अण्णाइरिओ	१५७	२	पुव्वाइरिओ	१५७	३
रूपोंसे भाग	१६२	११	रूपोंसे व्यन्तरराशिमें भाग	१६१	२७
पञ्चेन्द्रियोंमेंहि	१६३	२४	पचेंन्द्रिय तिर्यंचोंमेंहि	१६३	१६
समस्तफलितमिति	१६९	२	समस्तफलमिति	१६८	६
गदेहि पंच	१७८	७	गदेहि देसूणा पंच.	१७७	१३
उजुवलणा	१८०	३	उजुवलणा	१७९	५
(ब)	१८०	६	ब ण	१७९	८
(ण)	१८०	६	—	१७९	८
कधं विहारवदि सत्थाण परिणदाणं तिरिक्खाणं	१९२	५	कधं विहरंततिरिक्खाणं	१९१	११
खेत्तगुणिदेण	१९४	६	खेत्तगणिदेण	१९३	१०
खेत्तगुणिदेण	१९५	२	खेत्तगणिदेण	१९४	२
भजिदेसु	२००	३	भाजिदेसु	१९९	१
पज्जत्त-जोणिणीसु	२११	५	पज्जत्त-पंचिंदियतिरिक्ख जोणिणीसु	२११	५
गमणादिविसन्ति	२१७	१	गमणादिविसेससत्ति	२१७	१
चदुपणालीसु	२१९	१	चदुपाणद्धीसु	२१९	२
पहाणत्तादो	२२०	१	पमाणत्तादो	२२०	१
भागो पोसिदो	२२१	२	भागो संखेज्जा भागा वा फोसिदा	२२१	२

ये कतिपय संशोधन है जो यहाँ दिये गये हैं। कार्य गुरुतर है। साथ ही इसके मुद्रणका स्थान भिन्न है, इसलिये कुछ ऐसे अपरिहार्य संशोधन रह जाते हैं, जिनके बिना संशोधित संस्करणको पूर्ण रूपसे शुद्ध कहना कठिन हो जाता है। इस बीच इस संस्थाके कर्मठ मन्त्री आ. काका बालचन्द देवचन्दजी शहाका स्वर्गवास होनेसे संस्थाकी जो अपूरणीय क्षति हुई है उसे पूरा करना असम्भव ही प्रतीत होता है। वे एक कर्मठ और प्रत्येक मामलेमें सतर्क कार्यकर्ता थे अपि तु उनका जिसके साथ जो सम्बन्ध चला आ रहा था उसका उचित अनुचित सभी अवस्थाओं का निर्वाह करना वे अच्छी तरहसे जानते थे। आज कल मन्त्रीके इस गुरु तर कार्यको मान्य से. रतनचन्दजी शहा देखते हैं। संस्थाके हित साधनसे इनकी विशेष रुचि होनेसे उसके योग्यताके साथ संचालनमें किसी प्रकारकी कमी नहीं होने पायेगी ऐसा हमें प्रतीत होता है।

संस्थाके कार्यालयका पूरा उत्तरदायित्व बन्धुवर पं. श्री. नरेन्द्रकुमारजी भिसीकरके उपर ही निर्भर है। उन्हें ही हिसाब-किताबसे लेकर पूरा कार्य देखना पडता है। प्रूफ देखना, प्रेसकी व्यवस्था करना, आगे किस ग्रन्थ आदिको मुद्रणके लिये प्राथमिकता दी जाय आदि सभी कार्योंका उन्हेंही निर्वाह करना पड़ता है। हमें प्रसन्नता है कि उनकी देख-रेखमें कार्यालयसम्बन्धी सभी कार्योंका निर्वाह योग्यतापूर्वक हो रहा है।

यहाँ एक निवेदन अवश्य करना है कि मुद्रणके साथ प्रूफके देखनेमें जितनी सम्भव हो उतनी विशेष सावधानी अवश्य रखी जानी चाहिये। जिस समय द्वितीय संस्करणके लिये संशोधन-सम्पादनका कार्य मुझे सौंपा गया था उस समय स्व. प्रा. हीरालालजीकी यह इच्छा अवश्य थी कि इस द्वितीय संस्करणके लिये संशोधन-सम्पादनके साथ उसके मुद्रण आदि करानेका पूरा उत्तरदायित्व श्री. पं. फूलचंद्रजीके ही सुपुर्द कर दिया जावे, पर बीचमें कुछ ऐसे संस्थागत बाधक कारण थे जिससे मुद्रण आदि की व्यवस्था मेरी देख-रेखमें न हो सकी। इस प्रसंगसे जो व्यक्ति कार्यसिद्धिका विचार किये बिना जो भी मत बना लेता है उसे बदलना कठिन हो जाता है। यह तो अच्छा रहा कि मुद्रणकी व्यवस्था करना, प्रूफ पढनेकी व्यवस्था करना आदिसे मुक्त रखा गया है। यहाँ तो मात्र उस परिस्थितिका निर्देश मात्र किया है।

अन्तमें मैं संस्थाके वर्तमान यशस्वी मन्त्री सेठ रतनचन्दजी शहा और उक्त पंडीतजीका मैं इसलिये विशेष आभारी हूँ कि उनके सक्रिय सहयोगके कारण श्री षट्खण्डागम धवलाका आवश्यक संशोधन सम्पादनके साथ दूसरी बार मुद्रण हो रहा है।

फुलचन्द्र शास्त्री

७-७-८३

४. शंका-समाधान

पुस्तक १, पृष्ठ २३४

१. शंका– 'तद्भ्रमणमंतरेणाशुभ्रमज्जीवानां भ्रमद्भूम्यादिदर्शनानुपपत्तेः इति'। इस वाक्यका अर्थ मुझे स्पष्ट नहीं हो सका। उसमें पृथ्वीके परिभ्रमणका उल्लेखसा प्रतीत होता है। उसका अर्थ खोलकर समझानेकी कृपा कीजिये। (नेमीचंदजी वकील, सहारनपुर, पत्र २४-१०-४१)

समाधान– प्रस्तुत प्रकरणमें शंका यह उठाई गई है कि द्रव्येन्द्रियप्रमाण जीव-प्रदेशोंका भ्रमण नहीं होता, ऐसा क्यों न मान लिया जाय, क्योंकि, सर्वजीव प्रदेशोंके भ्रमण माननेपर उनके शरीरके साथ सम्बन्ध-विच्छेदका प्रसंग आता है। इस शंकाका उत्तर आचार्य इस प्रकार देते हैं कि 'यदि द्रव्येन्द्रियप्रमाण जीव-प्रदेशोंका भ्रमण नहीं माना जावे, तो अत्यंत द्रुतगतिसे भ्रमण करते हुए जीवोंको भ्रमण करती हुई पृथिवी आदिका ज्ञान नहीं हो सकता है।' इसका अभिप्राय यह है कि जब कोई व्यक्ति शीघ्रतासे चक्कर लेता है तो उसे कुछ क्षणके लिये अपने आसपास चारों ओरका समस्त भूमंडल पृथिवी, पर्वत, वृक्ष, गृहादि घूमता हुआ दिखाई देता है। इसका कारण पूर्वोक्त समाधानमें यह सूचित किया गया है, कि उस व्यक्तिके शीघ्रतासे चक्कर लेनेकी अवस्थामें उसके जीवप्रदेश भी शरीरके भीतर ही भीतर शीघ्रतासे भ्रमण करने लगते हैं जिसके कारण उसे पृथिवी आदि सब घूमते हुए दिखाई देने लगते हैं। यदि द्रव्येन्द्रियप्रमाण जीवप्रदेशोंको स्थिर माना जाय तो उक्त अवस्थामें भूमंडलादिके घूमते हुए दिखनेका कोई कारण नहीं रह जाता। इसलिये आचार्य कहते हैं कि 'आत्मप्रदेशोंके भ्रमण करते समय द्रव्येन्द्रियप्रमाण आत्मप्रदेशोंका भी भ्रमण स्वीकार कर लेना चाहिए'। वर्तमानमें भूभ्रमण-सम्बन्धी मान्यता प्रचलित है इस शंका-समाधानसे कोई सम्बन्ध नहीं है।

पुस्तक २, पृ. ४२३.

२ शंका– नकशा नं. २ में प्राणके खानेमें सयोगिकेवलीकी अपेक्षा २ प्राण भी होना चाहिए? (रतनचंदजी मुख्तार, सहारनपुर. पत्र, ३-४-४१)

समाधान– प्रस्तुत प्रकरणमें अपर्याप्त जीवोंके सामान्य आलाप बतलाए गए हैं, जिनमें क्रमशः संज्ञी पंचेन्द्रियसे लगाकर एकेन्द्रिय तकके समस्त जीवोंकी विवक्षा है केवलिसमुद्घात जैसी विशेष अवस्थाओंकी यहां विवक्षा नहीं है। इसी कारण शंकाकार द्वारा बतलाये गये २ प्राण न मूल टीकामें कहे गये, न अनुवादमें लिये गये, और न उक्त नकशेमें दिखाये गये। किन्तु पृष्ठ नं. ४४८ नकशा नं. २५ में जहां सयोगिकेवलीके ही आलाप बतलाये गये हैं, वहांपर साधारण अवस्थामें होनेवाले चार प्राणोंका और विशेष अवस्थामें होनेवाले उक्त दो प्राणोंका उल्लेख किया ही गया है।

पुस्तक २, पृ. ४३६-४३९

३ शंका– अर्थमें तथा नकशा नं. १४, १५, १६ और १७ में वेदके आलापमें जो तीन वेद कहे है सो वहां ३ भाव वेदकहना चाहिए। (नानकचंदजी खतौली, पत्र ता. १०-११-४१)

समाधान– मूल सिद्धान्त ग्रन्थोंमें गुणस्थान और मार्गणास्थानोंमें जीवोंके भावों और अवस्थाओंकी अपेक्षा ही विवेचन हुआ है, द्रव्यवेद और द्रव्य लेश्याकी चर्चा उत्तर कालीन टीका ग्रन्थोंमें ही दृष्टिगोचर होती है, इसलिए नकशा नं. १४, १५, १६ और १७ संबंधी आलापोंमें तथा इससे आगे पीछेके सभी आलापोंमें भाववेदकी ही विवक्षा की गई है। धवलाकारने लेश्या आलापोंमें जैसे द्रव्यलेश्या और भावलेश्याका विभाग कर पृथक् पृथक् वर्णन किया है, वैसा वेद आलापमें द्रव्यवेद और भाववेदका विभाग कर मूलमें कहीं वर्णन नहीं किया है। अतः उक्त नकशोंमें भी भाववेद लिखनेकी आवश्यकता नहीं समझी, यद्यपि तात्पर्य यहां तथा अन्यत्र भाववेदसे ही है।

पुस्तक २, पृ. ४५४

४ शंका– पृ. ४५४ यंत्र ३१, में प्राणमें अ, लिखा है सो नहीं होना चाहिये ?

(नानकचंदजी खतौली, पत्र १०–११–४१)

समाधान– जिन गुणस्थानों या जीवसमासोंमें पर्याप्त और अपर्याप्त कालसम्बन्धी आलाप सम्भव हैं, उनके सामान्य आलाप कहते समय पाठकोंको भ्रम न हो, इसलिए पर्याप्त कालमें सम्भव प्राणों के आगे प लिखा गया है। तथा अपर्याप्त कालमें सम्भवित प्राणोंके आगे अ लिखा गया है। इसी नियमके अनुसार प्रस्तुत यंत्र नं. ३१ में नारक सामान्य मिथ्यादृष्टियोंके आलाप प्रकट करते समय पर्याप्त अवस्थामें होनेवाले १० प्राणोंके नीचे प और अपर्याप्त अवस्थामें सम्भव ७ प्राणोंके आगे अ लिखा गया है।

पुस्तक २, पृ. ६२४

५ शंका– पृ. ६२४ के विशेषार्थमें यह और होना चाहिए कि चौदहवें गुणस्थानमें पर्याप्तका उदय रहता है, लेकिन नोकर्मवर्गणा नहीं आती ?

(रतनचंदजी मुख्तार, सहारनपुर, पत्र ३–४–४१)

समाधान– उक्त विशेषार्थमें जो बात सयोगिकेवलीके लिये कही गई है, वह अयोगिकेवलीके लिये भी उपयुक्त होती है। अतएव वहां उक्त भावार्थको लेनेमें कोई आपत्ती नहीं।

पुस्तक २, पृ. ६३८

६ शंका– यंत्र नं. २५३ के प्राणके खानेमें ३, २ भी होना चाहिए, क्योंकि, योगके खानेमें ६ योग लिखे हैं ? (रतनचंदजी मुख्तार, सहारनपुर, पत्र ३–४–४१)

समाधान– योगके खानेमें ६ योग लिखे जानेसे ३ और २ प्राण और भी कहनेकी आवश्यकता प्रतीत होना स्वाभाविक ही है। किन्तु, यहांपर ६ योगोंका उल्लेख विवक्षाभेदसे ही किया गया है, जैसा कि मूलके ' अथवा तीन योग ' इस कथन से स्पष्ट है, और जिसका कि अभिप्राय वहीं पर विशेषार्थमें स्पष्ट कर दिया गया है (देखो पृ. ६३९)। इसी कारण मूलमें प्राणोंके खानेमें ३ और २ प्राणोंका उल्लेख नहीं किया जानेसे पत्रमें भी नहीं किया है।

पुस्तक २, पृ. ६४९

७ शंका– पृ. ६४९ पर काययोगी अप्रमत्तसंयत जीवोंके आलापमें वेद लिखा है सो यहां भाववेद होना चाहिए ? (मानकचंदजी कासलीवाल, पत्र १०–११–४१)

समाधान– इसका उत्तर शंका नंबर ३ में दे दिया गया है।

पुस्तक २, पृ. ६५५, ६६१

८ शंका– पृष्ठ ६५५ पर समाधान जो पहला किया गया है उसमें लिखा है कि 'अपर्याप्त योगमें वर्तमान कपाटसमुद्घातगत सयोगिकेवलीका पहलेके शरीरके साथ सम्बन्ध नहीं रहता है। यही पृष्ठ ६६१ पर समाधान करते हुए लिखा है। यह किस अपेक्षासे कहा है ? क्या समुद्घातमें पूर्व मूलशरीरसे सम्बन्ध छूट जाता है ? (मानकचंदजी, कासलीवाल, पत्र १०–११–४१)

समाधान– 'अपर्याप्त योगमें वर्तमान कपाटसमुद्घातगत सयोगिकेवलीका पहलेके शरीरके साथ सम्बन्ध नहीं रहता, ' इसका अभिप्राय यह लेना चाहिए कि उक्त अवस्थामें जो आत्मप्रदेश शरीरसे बाहर फैल गए हैं, उनका शरीरके साथ सम्बन्ध नहीं रहता है। आत्मप्रदेशोंके बाहर निकलनेपर भी यदि शरीरके साथ सम्बन्ध माना जायगा, तो जिस परिमाणमें जीवप्रदेश फैले हैं, उतने परिमाणवाला ही औदारिकशरीरका होना मानना पड़ेगा। किन्तु ऐसा नहीं है अतः यह कहा गया है कि कपाटसमुद्घातगत सयोगिकेवलीका पहलेके शरीरके साथ सम्बन्ध नहीं रहता। किन्तु जो आत्मप्रदेश उस समय शरीरके भीतर हैं, उनसे तो एक अपेक्षासे सम्बन्ध बना ही रहता है। इसी प्रकार किसी भी समुद्घातकी दशामें पूर्व मूलशरीरसे सम्बन्ध सर्वथा नहीं छूटता है। समुद्घातके लक्षणमें स्पष्ट ही कहा गया है कि मूलशरीरको न छोड़कर जीवके प्रदेशोंके बाहर निकालनेको समुद्घात कहते हैं।

पुस्तक ३, पृ. २३

९ शंका– $२^{१अ}$ की वर्गशलाका अ होगी यह शुद्ध ज्ञात नहीं होता, क्योंकि $२^{४}=२५६$ होता है, और २५६ की वर्गशलाका ३ है, ४ नहीं ?

समाधान– $२^{१अ}$ का अर्थ है २ का $२^{अ}$ के प्रमाण वर्ग। अब यदि हम अ को ४ के बराबर मान लें तो– $२^{१अ}=२^{४}=२^{१६}=२५६\times२५६=६५५३६$, जिसकी वर्गशलाका ४ होगी। शंकाकारने भूल यह की है कि $२^{१अ}=(२^{१})^{अ}$ मान लिया है। किन्तु ऐसा नहीं है। प्रचलित पद्धतिके अनुसार $२^{१अ}=२^{(१अ)}$ होता है। अतएव अनुवादमें उदाहरणरूपसे जो बात कही गई है उसमें कोई दोष नहीं है।

पुस्तक ३, पृ. ३०

१० शंका– यहां सोलह राशिगत अल्पबहुत्व निरूपणमें जो अभव्योंसे सिद्धकालको गुणकार छह महिनोंके अष्टम भागमें एक मिला देनेपर उत्पन्न हुई समय संख्यासे भाजित अतीत

कालका असंख्यातवां भाग कहा है वह अशुद्ध प्रतीत होता है। मेरी राय में अतीत कालको छह माह आठ समयसे भाग देनेपर जो लब्ध आवे उसको ६०८ से गुणा करनेपर उत्पन्न हुई राशिका असंख्यातवां भाग गुणकार होना चाहिए ? (नेमीचंदजी वकील, सहारनपुर, पत्र २४-११-४१)

समाधान– उक्त शंकामें शंकाकारकी दृष्टि उस प्रचलित मान्यता पर है जिसके अनुसार प्रत्येक छह माह आठ समयमें ६०८ जीव मोक्ष जाते हैं। किन्तु धवलामें उक्त स्थलपर दिये गये अल्पबहुत्वमें उक्त पाठ द्वारा उसकी सिद्धि नहीं होती, जब तक कि उस पाठको विशेषरूपसे परिवर्तित न किया जाय। उक्त स्थलका अर्थ करते समय हमारी भी दृष्टि इस बातपर थी। किन्तु उपलब्ध पाठ वैसा होने तथा मूडबिद्रीकी ताड़पत्रीय प्रतियोंके मिलानसे भी उस पाठमें कोई परिवर्तन प्राप्त न होनेसे हम उस पाठको बदलने या मूलको छोड़कर अर्थ करने में असमर्थ रहे। यथार्थतः उक्त पाठसे आगे जो सिद्धोंका गुणकार हमने 'रूपशतपृथक्त्व' ग्रहण कर लिया था वह पूर्वोक्त दृष्टिसे ही केवल एक प्रतीके आधार पर किया था। किन्तु दो प्रतियोंमें उसके स्थानपर 'रूपदशपृथक्त्व' पाठ था, और मूडबिद्रीके प्रति-मिलानसे भी इसी पाठकी पुष्टि हुई है। अतः इससे यह संदर्भ और भी शंकास्पद और विचारणीय हो गया है। अतएव जब तक कोई स्पष्ट प्रमाण इस सम्बन्धका न मिल जावे तब तक उस सम्बन्धमें निर्णयात्मक कुछ नहीं कहा जा सकता।

पुस्तक ३, पृ. ३५

११ शंका– "रज्जुके अर्धच्छेद उत्तरोत्तर एक एक समुद्रमें द्वीप और एक एक समुद्रमें पड़ते हैं, किन्तु लवणसमुद्रमें दो अर्धच्छेद पड़ेंगे।" यह बात समझमें नहीं आती। जब धातकीखंडमें एक अर्धच्छेद पड़ेगा, और लवणसमुद्र उसका आधा है, तब उसमें दो अर्धच्छेद कैसे पड़ जायगे ? (नेमीचंदजी वकील, सहारनपुर, पत्र २३-११-४१)

समाधान– पूर्वोक्त शंकाका समाधान रज्जुके अर्धच्छेदोंकी व्यवस्थाको स्पष्टतः समझ लेनेसे सहज ही हो जाता है। समस्त तिर्यग्लोक एक रज्जुप्रमाण है। अतः रज्जुको प्रथमवार आधा करनेसे प्रथम अर्धच्छेद जम्बूद्वीपके मध्यमें मेरुपर पड़ा। दूसरी बार जब हम रज्जुको आधा करेंगे तो यह दूसरा अर्धच्छेद स्वयंभूरमणद्वीपकी परिधिसे कुछ आगे चलकर स्वयंभूरमण-समुद्रमें पड़ेगा, क्योंकि, उक्त समुद्रका विस्तार भीतरके समस्त द्वीप-समुद्रोंके सम्मिलित विस्तारसे कुछ अधिक है। इसी प्रकार रज्जुको तीसरी बार आधा करनेपर तीसरा अर्धच्छेद स्वयंभूरमण-द्वीपमें उसकी प्रारम्भिक सीमासे कुछ और विशेष आगे चलकर पड़ेगा। इस प्रकार रज्जु उत्तरोत्तर छोटा होता जावेगा और उत्तरोत्तर अर्धच्छेद प्रत्येक द्वीप-समुद्रमें पड़ते जावेंगे, किन्तु उनका स्थान उस उस द्वीप-समुद्रकी भीतरी परिधिसे उत्तरोत्तर आगेको बढ़ता जावेगा। इस प्रकार होते होते अन्तिम समुद्र लवणसागरमें एक अर्धच्छेद उसकी बाह्य सीमाके समीप और दूसरा उसकी भीतरी सीमाके समीप पड़ जावेगा। यही बात आगेके चित्रसे और भी स्पष्ट हो जावेगी।

मान लो कि स्वयंभूरमणसमुद्र जम्बूद्वीपसे आगे तीसरे वलयपर है, और उसकी बाह्य सीमापर रज्जुका अन्त होता है। रज्जुका प्रथम अर्धच्छेद तो जम्बूद्वीपके मध्यमें मेरुपर पड़ेगा ही। अब वहांसे आगेका विस्तार पचास हजार योजनेको १ मान लेनेपर केवल १+४+८+१६=२९ योजन रहा।

अतएव रज्जुका दूसरा अर्धच्छेद १४½ योजन पर स्वयंभूरमणसमुद्रमें, तीसरा अर्धच्छेद ७½ योजन पर उससे पूर्ववर्ती द्वीपमें, चौथा अर्धच्छेद ३½ योजन पर लवणसमुद्रकी बाह्य सीमाके समीप, तथा पांचवां अर्धच्छेद १¾ योजन पर लवणसमुद्रकी आभ्यंतर सीमाके समीप पड़ेगा। इस प्रकार हम कितने ही द्वीप समुद्र आगे आगे मान लें तो भी लवणसमुद्रमें अन्ततः दो ही अर्धच्छेद पड़ेंगे। यही बात त्रिलोकसारकी गाथा नं. ३५२–३५८ में कही गई है।

पुस्तक ३, पृ. ४४

१२ शंका—पुस्तक ३ के पृ. ४४ पर क्षेत्राकारके द्वारा जो यह समझाया गया है कि संपूर्ण जीवराशिके वर्गको दूसरे भाग अधिक जीवराशिसे भाजित करनेपर तीसरा भागहीन जीवराशि प्राप्त होती है, सो यह बात वहां दिये गये आकारसे समझमें नहीं आती। कृपया समझाइये ? (नेमीचंदजी वकील, सहारनपुर, पत्र २४-११-४१)

समाधान— मान लीजिये, सर्व जीवराशि १६ है, इसका वर्ग हुआ १६×१६=२५६ अब यदि हम इस जीवराशिके वर्ग (२५६) में जीवराशि (१६) का भाग देते हैं तो $\frac{२५६}{१६}$=१६ अर्थात् जीवराशि प्रमाण ही लब्ध आता है। और यदि उसी जीवराशिके वर्गमें द्विभाग अधिक जीवराशि (१६+८=२४) का भाग देते है तो त्रिभागहीन जीवराशिप्रमाण, अर्थात् ३६−$\frac{१६}{३}$ = १०$\frac{२}{३}$ आता है; जैसे $\frac{२५६}{२४}$ = १०$\frac{२}{३}$.

इसी बातको धवलाकारने क्षेत्रमिति द्वारा भी समझाया है जिसका कि अनुवादके साथ चित्र भी दिया गया है। इस चित्रमें स ड जीवराशि (मानलो १६) है, उसको स ड' (१६) से वर्गित करनेपर प्रतराकार क्षेत्र स ड स' ड' बन जाता है जिसमें अंकप्रमाण दिखानेके लिये

यहां १६×१६=२५६ खंड किये जाते हैं। इस वर्गक्षेत्रमें जब हम स ड के १६ खंडोंको मापक

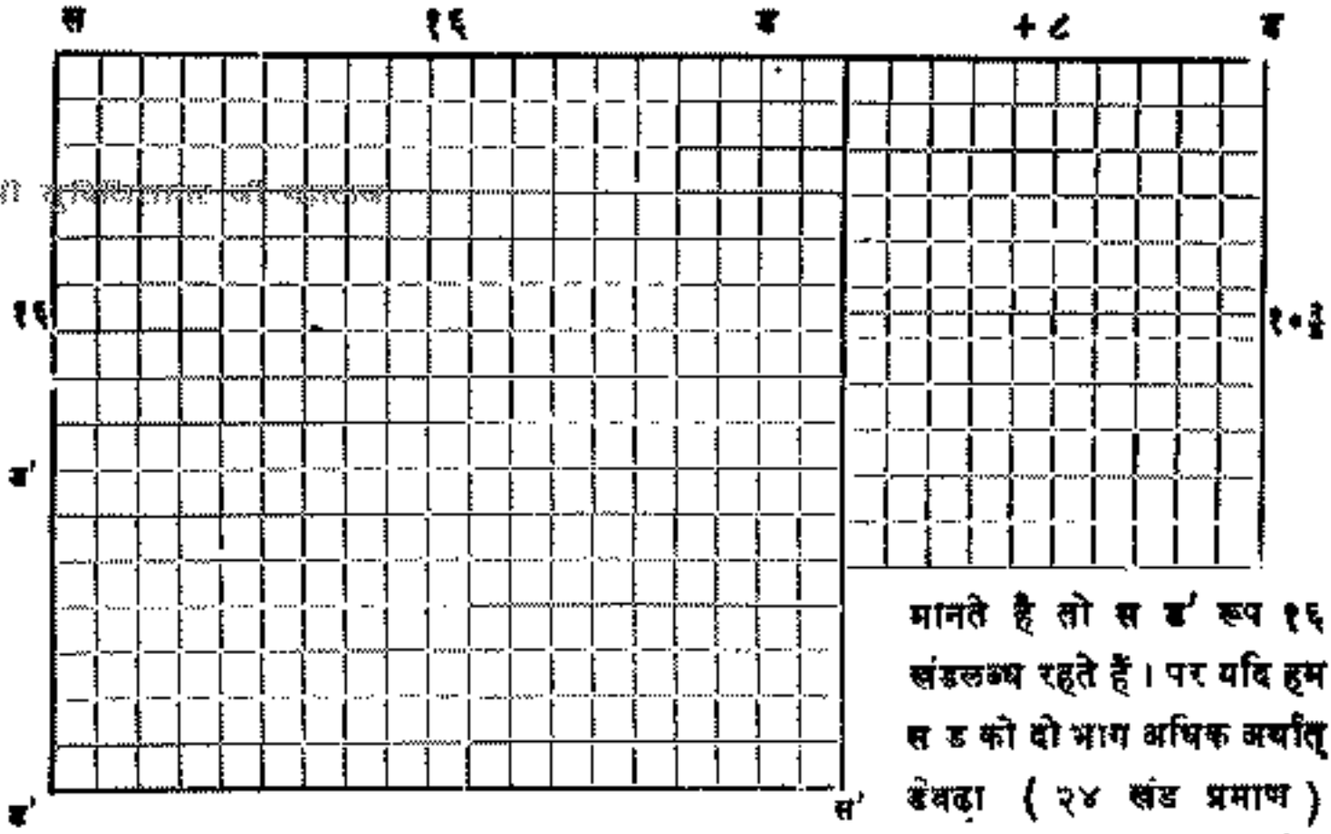

मानते हैं तो स ड' रूप १६ खंडलब्ध रहते हैं। पर यदि हम स ड को दो भाग अधिक अर्थात् डेवढ़ा (२४ खंड प्रमाण) कर दें, तो उसी वर्गराशि प्रमाण क्षेत्रफलको नियत रखनेके लिये हमें स ड' को त्रिभागहीन अर्थात् १०½ खंडप्रमाण कर लेना पड़ेगा, जो जीवराशिका त्रिभागहीन (१६−⅓) भाग है। यही आचार्य द्वारा समझाये गये और चित्र द्वारा दिखाये गये सिद्धान्तका अभिप्राय है।

पुस्तक ३, पृ. २७८–२७९

१३ शंका– यहां जो नारकी व स्वर्गवासियोंकी राशियां लानेके लिये विष्कंभसूचियां व अवहारकाल बतलाये गये हैं वे खुदाबंध और जीवट्ठाणमें न्यूनाधिक क्यों कहे गये हैं? इनमें समानता माननेमें क्या दोष आता है, सो समझ नहीं पड़ता। स्पष्ट कीजिये?

(नेमीचंदजी, वकील, सहारनपुर, पत्र २४–११–४१)

समाधान– खुदाबंधमें जो नारकी व देवोंका प्रमाण लानेके लिये विष्कंभसूचियां व अवहारकाल कहे गये हैं वे उन उन जीवराशियोंमें गुणस्थानका भेद न करके सामान्यराशिके लिये उपयुक्त हैं। किन्तु यहां जीवस्थानमें गुणस्थान विवक्षा है, तथा प्रस्तुतमें अन्य गुणस्थानोंको छोड़कर केवल मिथ्यादृष्टियोंका प्रमाण कहा जा रहा है जो सामान्यराशिसे कुछ न्यून होगा ही। अतः इस न्यून राशिको बतलानेके लिये जीवट्ठाणमें उसकी विष्कंभसूची भी खुदाबंधमें कथित विष्कंभसूचीसे कुछ न्यून, तथा अवहारकाल उससे अधिक कहा जाना आवश्यक है। यदि हम खुदाबंधमें बतलाये गये सामान्यराशिकी विष्कंभसूचीको ही जीवट्ठाणमें मिथ्यादृष्टिराशिकी विष्कंभसूची मान लें तो उस समस्त सामान्य जीवराशिका मिथ्यादृष्टियोंमें ही समावेश होकर शेष गुणस्थानोंके उक्त देवों व नारकियोंमें अभावका प्रसंग आ जायगा। खुदाबंध और यहां जीवट्ठाणमें विष्कंभसूची और अवहारकालको समान मान लेनेमें यही दोष उत्पन्न होता है।

५. विषय-परिचय

जीवस्थानकी पूर्व प्रकाशित दो प्ररूपणाओं–सत्प्ररूपणा और द्रव्यप्रमाणानुगममें क्रमशः जीवका स्वरूप, गुणस्थान व मार्गणास्थानानुसार भेद तथा प्रत्येक गुणस्थान व मार्गणास्थानसंबंधी जीवोंका प्रमाण व संख्या बतलाई जा चुकी है। अब प्रस्तुत भागमें जीवस्थानसंबंधी आगेकी तीन प्ररूपणाएं प्रकाशित की जा रही हैं– क्षेत्रानुगम, स्पर्शनानुगम और कालानुगम।

१ क्षेत्रानुगम

क्षेत्रानुगममें जीवोंके निवास व विहारादिसंबंधी क्षेत्रका परिमाण बतलाया गया है। इस संबंधमें प्रथम प्रश्न यह उठता है कि यह क्षेत्र है कहां ? इसके उत्तरमें अनन्त आकाशके दो विभाग किये गये हैं। एक लोकाकाश और दूसरा अलोकाकाश। लोकाकाश समस्त आकाशके मध्यमें स्थित है, परिमित है और जीवादि पांच द्रव्योंका आधार है। उसके चारों तरफ शेष समस्त अनन्त आकाश अलोकाकाश है। उक्त लोकाकाशके स्वरूप और प्रमाणके संबंधमें दो मत हैं। एक मतके अनुसार यह लोकाकाश अपने तलभागमें सात राजु व्यासवाला गोलाकार है। पुनः ऊपरको क्रमसे घटता हुआ अपनी आधी उंचाई अर्थात् सात राजुपर एक राजु व्यासवाला रह जाता है। वहांसे पुनः ऊपरको क्रमसे बढ़ता हुआ साढे तीन राजु ऊपर जाकर पांच राजु व्यासप्रमाण हो जाता है और वहांसे पुनः साढे तीन राजु घटता हुआ अपने सर्वोपरि उच्च भागपर एक राजु व्यासवाला रह जाता है। इस मतके अनुसार लोकका आकार ठीक अधोभागमें, वेत्रासन, मध्यमें झल्लरी और ऊर्ध्वभागमें मृदंगके समान हो जाता है। किन्तु अकलाकारने इस मतको स्वीकार नहीं किया है, क्योंकि, ऐसे लोकमें जो प्रमाणलोकका घनफल जगत्श्रेणी अर्थात् सात राजुके घनप्रमाण कहा है, वह प्राप्त नहीं होता। यह बात स्पष्टतः दिखलानेके लिये उन्होंने अपने समयके गणितज्ञानकी विविध और अभूतपूर्व प्रक्रियाओं द्वारा इस प्रकारके लोकके अधोभाग व उर्ध्वभागका घनफल निकाला है जो कुल $१६४\frac{३२५}{१९२}$ घनराजु होनेसे श्रेणीके घन अर्थात् ३४३ घनराजुसे बहुत हीन रह जाता है। इसलिए उन्होंने लोकका आकार पूर्व–पश्चिम दो दिशाओंमें तो ऊपरको ओर पूर्वोक्त क्रमसे घटता बढ़ता हुआ, किन्तु उत्तर–दक्षिण दो दिशाओंमें सर्वत्र सात राजु ही माना है। इस प्रकार यह लोक गोलाकार न होकर समचतुरस्राकार हो जाता है और दो दिशाओंसे उसका आकार वेत्रासन, झल्लरी और मृदंगके सदृश भी दिखाई दे जाता है। "ऐसे लोकका प्रमाण ठीक श्रेणीका घन $७^३ = ७ \times ७ \times ७ = ३४३$ घनराजु हो जाता है। यही लोक जीवादि पांचों द्रव्योंका क्षेत्र है।

यहां प्रश्न यह उपस्थित होता है कि उक्त ३४३ घनराजुप्रमाण केवल असंख्यात प्रदेशात्मक अत्यन्त परिमित क्षेत्रमें अनन्त जीव व अनन्त पुद्गल परमाणु कैसे रह सकते हैं ? इसका उत्तर यह है कि जीवों और पुद्गल-परमाणुओंमें अप्रतिघातरूपसे अन्योन्यावगाहन शक्ति विद्यमान है जिसके कारण अंगुलके असंख्यातवें भागमें भी अनन्तानन्त जीवोंका और जीवके भी प्रत्येक प्रदेशपर अनन्त औदारिकादि पुद्गल परमाणुओंका अस्तित्व बन जाता है।

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज गुणस्थानोंकी अपेक्षा जीवोंका क्षेत्र ४ सूत्रोंमें बतला दिया गया है कि मिथ्यादृष्टि जीव सर्वलोकमें व अयोगिकेवली और शेष सासादनसम्यग्दृष्टि आदि समस्त बारह गुणस्थानोंमेंसे प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीव लोकके असंख्यातवें भागमें, और सयोगिकेवली लोकके असंख्यातवें भागमें, असंख्यात बहु भागोंमें, तथा सर्वलोकमें रहते हैं। धवलाकारने इन सूत्र-वचनोंको एक ओर जीवोंकी नाना अवस्थाओंका विचार करके, और दूसरी ओर सूक्ष्मतर क्षेत्रमानके लिये लोकको पांच विभागोंमें बांटकर बड़े विस्तारसे समझाया है।

क्षेत्रावगाहनाकी अपेक्षासे जीवोंकी तीन अवस्थाएं हो सकती है (१) स्वस्थान (२) समुद्घात और (३) उपपाद। स्वस्थान भी दो प्रकारका है– अपने स्थायी निवासके क्षेत्रको स्वस्थान-स्वस्थान, और अपने विहारके क्षेत्रको विहारवत्स्वस्थान कहते हैं। जीवके प्रदेशोंका उनके स्वाभाविक संगठनसे अधिक फैलना समुद्घात कहलाता है। वेदना और पीड़ाके कारण जीवप्रदेशोंके फैलनेको वेदनासमुद्घात कहते हैं। क्रोधादि कषायोंके कारण जीव-प्रदेशोंके विस्तारको कषायसमुद्घात कहते हैं। इसी प्रकार अपने स्वाभाविक शरीरके आकारको पूरी तरह छोड़कर अन्य शरीराकार परिवर्तनको वैक्रियिकसमुद्घात, मरनेके समय अपने पूर्व शरीरको न छोड़कर नवीन उत्पत्तिस्थान तक जीव-प्रदेशोंके विस्तारको मारणान्तिक, तैजस-शरीरकी अप्रशस्त व प्रशस्त विक्रियाको तैजससमुद्घात, ऋद्धिप्राप्त मुनियोंके शंका-निवारण आदिके लिए कुछ जीवप्रदेशोंके प्रस्तारको आहारकसमुद्घात, और सर्वज्ञताप्राप्त केवलीके प्रदेशोंका आयुकर्मको छोड़कर शेष कर्मक्षय-निमित्त दंडाकार, कपाटाकार, प्रतराकार व लोक-पूरणरूप प्रस्तारको केवलिसमुद्घात कहते हैं– जीवका अपनी पूर्व पर्यायको छोड़कर तीरके समान सीधे व एक, दो या तीन मोड़े लेकर अन्य पर्यायके ग्रहणक्षेत्र तक गमन करनेको उपपाद कहते हैं। इन्हीं दश–अर्थात् (१) स्वस्थानस्वस्थान (२) विहारवत्स्वस्थान (३) वेदनासमुद्घात (४) कषायसमुद्घात (५) वैक्रियिकसमुद्घात (६) मारणान्तिकसमुद्घात (७) तैजससमुद्घात (८) आहारकसमुद्घात (९) केवलिसमुद्घात और (१०) उपपाद अवस्थाओंकी अपेक्षासे यथासम्भव अपने अपने भिन्न भिन्न गुणस्थानों और मार्गणास्थानों स्थित जीवोंके क्षेत्रप्रमाणको इस क्षेत्रप्ररूपणामें बतलाया गया है।

सूक्ष्म, सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम क्षेत्रमानके लिये धवलाकारने पांच प्रकारसे लोकका ग्रहण किया है (१) समस्त लोक या सामान्य लोक जो ७ राजुका घनप्रमाण है; (२) अधोलोक जो १९६ घनराजुप्रमाण है, (३) ऊर्ध्वलोक जो १४७ घनराजुप्रमाण है (४) तिर्यक्लोक या

मध्यलोक जो १ राजूके प्रतर या वर्गप्रमाण है; और (५) मनुष्यलोक जो अढ़ाई द्वीपप्रमाण, अर्थात् ४५ लाख व्यासवाला वर्तुलाकार क्षेत्र है। किसी भी प्रकारके जीवोंका क्षेत्रमान बतलानेके लिये धवलाकारने उस उस जातिशेषवाली प्रधान राशिको लेकर उसके क्षेत्रावगाहनका विचार किया है। उदाहरणार्थ– विहारवत्स्वस्थानवाले मिथ्यादृष्टियोंके क्षेत्रका विचार करते समय उन्होंने त्रसपर्याप्तराशिको ही विहार करनेकी योग्यता रखनेवाली मानकर पहले यह निर्दिष्ट कर दिया कि किसी भी समयमें इस राशिका संख्यातवां भाग ही विहार करेगा। फिर उन्होंने इस विहार करनेवाली राशिमें स्वयंप्रभनागेन्द्र पर्वतके परभागवर्ती बड़े बड़े त्रस जीवोंका विचार किया, जिनमें द्वीन्द्रिय जीव शंख बारह योजनका, त्रीन्द्रिय गोम्ही तीन कोसकी, चतुरिन्द्रिय भ्रमर एक योजनका और पंचेन्द्रिय मच्छ एक हजार योजनका होता है। अतएव ऐसे प्रत्येक जीवका उन्होंने क्षेत्रमितीके सूत्र व विधान देकर प्रमाणांगुलोंमें घनफल निकाला, और फिर इस उत्कृष्ट अवगाहनमें जघन्य अवगाहनका अंगुलका असंख्यातवां भाग जोड़कर उसका आधा किया जिससे उस राशिके एक जीवकी मध्यम अर्थात् औसत अवगाहना संख्यात घनांगुल आ गई। समस्त त्रस पर्याप्तराशि प्रतरांगुलके संख्यातवें भागसे भाजित जगप्रतरप्रमाण है और इसका केवल संख्यातवां भाग विहार करता है। अतः इस संख्यातवें भागको पूर्वोक्त घनफलसे गुणा करनेपर विहारवत्स्वस्थान मिथ्यादृष्टिराशिका क्षेत्र संख्यात सूच्यंगुलगुणित जगद्प्रतर-प्रमाण होता है, जो लोकका असंख्यातवां भाग, और उसी प्रकार अधोलोक और ऊर्ध्वलोकका भी असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और मनुष्यलोक या अढ़ाईद्वीपसे असंख्यात गुणा होगा।

२ स्पर्शनानुगम

स्पर्शनप्ररूपणामें यह बतलाया गया है कि भिन्न भिन्न गुणस्थानवाले जीव, तथा गति आदि भिन्न भिन्न मार्गणास्थानवाले जीव तीनों कालोंमें पूर्वोक्त दश अवस्थाओंद्वारा कितना क्षेत्र स्पर्श कर पाते हैं। इससे स्पष्ट है कि क्षेत्र और स्पर्शन प्ररूपणाओंमें विशेषता इतनी ही है कि क्षेत्रप्ररूपणा तो केवल वर्तमानकालकी ही अपेक्षा रखती है, किन्तु स्पर्शन प्ररूपणामें अतीत और अनागतकालका भी, अर्थात् तीनों कालोंका क्षेत्रमान ग्रहण किया जाता है।

उदाहरणार्थ– क्षेत्रप्ररूपणामें सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका क्षेत्र लोकका असंख्यातवां भाग बताया गया है। यह क्षेत्र वर्तमानकालसे ही सम्बन्ध रखता है, अर्थात् वर्तमानमें इस समय स्वस्थानादि यथासंभव पदोंको प्राप्त सासादनसम्यग्दृष्टि जीव लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रको व्याप्त करके विद्यमान हैं। यही बात स्पर्शनप्ररूपणामें वर्तमानकालिक स्पर्शनको बताते समय कही है। उसके पश्चात् दूसरे सूत्रमें अतीतकालसम्बन्धी स्पर्शनक्षेत्र बतलाया गया है कि सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने अतीतकालमें देशोन आठ बटे चौदह ($\frac{८}{१४}$) और बारह बटे चौदह ($\frac{१२}{१४}$) भाग स्पर्श किए हैं। इसका अभिप्राय जान लेना आवश्यक है। तीनसौ तेतालीस घनराजूप्रमित इस लोकाकाशके ठीक मध्य भागमें वृक्षमें सारके समान एक राजु

आचार्य श्री सूर्यसागरजी महाराज

लम्बी चौडी और चौदह राजु ऊंची लोकनाली अवस्थित है। इसे त्रसनाली भी कहते है, क्योंकि, त्रसजीवोंका संचार इसके ही भीतर होता है। केवल कुछ अपवाद हैं, जिनमें कि इसके भी बाहर त्रसजीवोंका पाया जाना संभव है। इस त्रसनालीके एक एक राजु लम्बे, चौडे और मोटे भाग बनाए जावें तो चौदह भाग होते हैं। उनमेंसे जो जीव जितने घनराजुप्रमाण क्षेत्रको स्पर्श करता है, उसका उतना ही स्पर्शनक्षेत्र माना जाता है। जैसे प्रकृतमें सासादन-सम्यग्दृष्टियोंका स्पर्शनक्षेत्र आठ बटे चौदह ($\frac{८}{१४}$) या बारह बटे चौदह ($\frac{१२}{१४}$) भाग बताया गया है। इनमेंसे विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकसमुद्घातगत सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने उक्त त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे आठ भागोंको स्पर्श किया है, अर्थात् आठ घनराजुप्रमाण त्रसनालीके भीतर ऐसा एक प्रदेश नहीं है कि जिसे अतीतकालमें सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने (देव, मनुष्य, तिर्यंच और नारकी, इन सभीने मिलकर) स्पर्श न किया हो। यह आठ घनराजुप्रमाण क्षेत्र त्रसनालीके भीतर जहां कहीं नहीं लेना चाहिए, किन्तु नीचे तीसरी वालुका पृथिवीसे लेकर ऊपर सोलहवें अच्युतकल्प तक लेना चाहिये। इसका कारण यह है कि भवनवासी देव स्वतः नीचे तीसरी पृथिवी तक विहार करते हैं, और ऊपर सौधर्मविमानके शिखरध्वजदंड तक। किन्तु उपरिम देवोंके प्रयोगसे ऊपर अच्युतकल्प तक भी विहार कर सकते हैं (देखो. पृ. २२९)। उनके इतने क्षेत्रमें विहार करनेके कारण उक्त क्षेत्रका मध्यवर्ती एक भी आकाश-प्रदेश ऐसा नहीं बचा है कि जिसे अतीत कालमें उक्त गुणस्थानवर्ती देवोंने स्पर्श न किया हो। इस प्रकार इस स्पर्श किये गये क्षेत्रको लोकनालीके चौदह भागोंमेंसे आठ भागप्रमाण स्पर्शनक्षेत्र कहते है। मारणान्तिकसमुद्घातकी अपेक्षा उक्त गुणस्थानवर्ती जीवोंने लोकनालीके चौदह भागोंमेंसे बारह भाग स्पर्श किये हैं। इसका अभिप्राय यह है कि छठी पृथिवीके सासादन-गुणस्थानवर्ती नारकी मध्यलोक तक मारणान्तिकसमुद्घात कर सकते हैं, और सासादनसम्यग्दृष्टि भवनवासी आदि देव आठवीं पृथिवीके ऊपर विद्यमान पृथिवीकायिक जीवोंमें मारणान्तिकसमुद्घात कर सकते हैं, या करते हैं। इस प्रकार मेरुतलसे छठी पृथिवी तकके ५ राजु, और ऊपर लोकान्त तकके ७ राजु, दोनों मिलाकर १२ राजु हो जाते हैं। यही बारह घनराजुप्रमाण क्षेत्र त्रसनालीके बारह बटे चौदह ($\frac{१२}{१४}$) भाग, अथवा त्रसनालीके चौदह भागोंसे बारह भागप्रमाण स्पर्शनक्षेत्र कहा जाता है।

इस उक्त प्रकारसे बतलाए गए स्पर्शनक्षेत्रको यथासंभव जान लेना चाहिए। ध्यान रखनेकी बात केवल इतनी ही है कि वर्तमानकालिक स्पर्शनक्षेत्र तो लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण होता है, किन्तु अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे यथासंभव $\frac{१}{१४}$, $\frac{२}{१४}$, को आदि लेकर $\frac{१३}{१४}$ तक होता है। मिथ्यादृष्टि जीवोंका मारणान्तिक, वेदना, कषायसमुद्घात आदिकी अपेक्षा सर्व लोक स्पर्शनक्षेत्र होता है, क्योंकि, सारे लोकमें सर्वत्र ही एकेन्द्रिय जीव ठसाठस भरे हुए हैं और गमनागमन कर रहे हैं, अतएव उनके द्वारा समस्त लोकाकाश वर्तमानमें भी स्पर्श हो रहा है और अतीतकालमें भी स्पर्श किया जा चुका है।

इन एकेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि जीवोंके अतिरिक्त सयोगिकेवली भगवान् भी प्रतरसमुद्घातके समय लोकके असंख्यात बहु भागोंको और लोकपूरणसमुद्घातके समय सर्व लोकाकाशको स्पर्श करते हैं। तथा उपपाद और मारणान्तिकसमुद्घातवाले त्रसजीवोंका भी त्रसनालीके बाहर अस्तित्व पाया जाता है। वह इस प्रकारसे कि लोकके अन्तिम वातवलयमें स्थित कोई जीव मरण करके विग्रहगतिद्वारा त्रसनालीके अन्तःस्थित त्रसपर्यायमें उत्पन्न होनेवाला है वह जीव जिस समय मरण करके प्रथम मोड़ा लेता है, उस समय त्रसपर्याप्तको धारण करने पर भी वह त्रसनालीके बाहर है, अतएव उपपादकी अपेक्षा त्रसजीव त्रसनालीके बाहर रहता है। इसी प्रकार त्रसनालीमें स्थित किसी ऐसे त्रसजीवने जिसे कि त्रसनालीके बाहर मरकर उत्पन्न होना है मारणान्तिक-समुद्घातके द्वारा त्रसनालीके बाहरके आकाश-प्रदेशोंका स्पर्श किया, तो उस समय भी त्रसजीवका अस्तित्व त्रसनालीके बाहर पाया जाता है, (देखो पृ. २१२)। उक्त तीन अवस्थाओंको छोड़कर शेष त्रसजीव त्रसनालीके बाहर कभी नहीं रहते हैं।

इस प्रकार चौदह गुणस्थानों और चौदह मार्गणास्थानोंमें उक्त स्वस्थानादि दश पदोंको प्राप्त जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र इस स्पर्शनप्ररूपणामें बतलाया गया है।

स्पर्शनप्ररूपणाकी कुछ विशेष बातें

सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका क्षेत्र निकालते हुए प्रसंगवश असंख्यात द्वीप-समुद्रोंके ऊपर आकाशमें स्थित समस्त चंद्रोंके प्रमाणको भी गणितशास्त्रके अनेक अदृष्टपूर्व करणसूत्रोंके द्वारा निकाला गया है और साथ ही यह बतलाया गया है कि एक चंद्रके परिवारमें एक सूर्य, अठासी ग्रह, अट्ठाईस नक्षत्र और छयासठ हजार नौसौ पचहत्तर कोड़ाकोड़ी (६६९७५०००००००००००००) तारे होते हैं। इस चारों प्रकारके परिवारके प्रमाणसे चन्द्रबिम्बोंकी संख्याको गुणा कर देनेपर समस्त ज्योतिष्क देवोंका प्रमाण निकल आता है।

इसी बीचमें धवलाकारने ज्योतिष्क देवोंके भागहारको उत्पन्न करनेवाले सूत्रसे अवलम्बित युक्तिके बलसे यह सिद्ध किया है कि चूंकि-- स्वयंभूरमणसमुद्रके परभागमें भी राजुके अर्धच्छेद पाये जाते हैं, इसलिए स्वयंभूरमणसमुद्रके परभागमें भी असंख्यात द्वीप-समुद्रोंके व्यास-रूढ योजनोंसे संख्यात हजार गुने योजन आगे जाकर तिर्यग्लोककी समाप्ति होती है, अर्थात् स्वयंभू-रमणसमुद्रकी बाह्यवेदिकाके परे भी पृथिवीका अस्तित्व है; वहां भी राजुके अर्धच्छेद उपलब्ध होते हैं; किन्तु वहांपर ज्योतिषी देवोंके विमान नहीं हैं। (देखो पृ. १५०-१६०)

इसी प्रकरणमें उन्होंने अपनी उक्त बातकी पुष्टि करते हुए जो उदाहरण दिए हैं, उनसे एकदम तीन ऐसी बातोंपर प्रकाश पड़ता है, जिनसे पता चलता है कि वे बातें वीर-सेनाचार्यके पूर्ववर्ती दिगम्बर साहित्यमें प्रतिष्ठित नहीं थीं और सर्व प्रथम इन्हींने उनकी प्रतिष्ठा की है।

वे नवीन प्रतिष्ठित तीनों बातें इस प्रकार हैं--

(१) 'संख्यात आवलियोंका एक अन्तर्मुहूर्त होता है' इस प्रचलित और सर्वमान्य

मान्यता को भी 'एवेहि पलिदोवममवहिरदि अंतोमुहुत्तेण कालेण' (द्रव्यप्र. सू ६) इस सूत्रके आधारसे 'अन्तर्मुहूर्त' इस पदमें पड़े हुए अन्तर शब्दको सामीप्यार्थक मानकर यह सिद्ध किया है कि अन्तर्मुहूर्तका अभिप्राय मुहूर्तसे अधिक कालका भी हो सकता है।

(२) दूसरी बात आयतचतुरस्र लोक-संस्थानके उपदेशकी है, जिसका अभिप्राय समझनेके लिये [illegible] तकका अंश देखिए। उससे ज्ञात होता है कि धवलाकारके सामने विद्यमान करणानुयोगसम्बन्धी साहित्यमें लोकके आयतचतुरस्राकार होनेका विधान या प्रतिषेध कुछ भी नहीं मिल रहा था, तो भी उन्होंने प्रतरसमुद्घातगत केवलीके क्षेत्रके साधनार्थ कही गई दो गाथाओंके (देखो इसी भागके पृ. २०–२१) आधारपर यही सिद्ध किया है कि लोकका आकार आयतचतुष्कोण है, न कि अन्य आचार्योंसे प्ररूपित १६४$\frac{३४३}{४९}$ घनराजु प्रमाण मृदंगके आकार। साथ ही उनका कहना है कि यदि ऐसा न माना जायगा तो उक्त दोनों गाथाओंको अप्रमाणता और लोकमें ३४३ घनराजुओंका अभाव प्राप्त होगा। इसलिए लोकका आकार आयतचतुरस्र ही मानना चाहिए।

(३) तीसरी बात स्वयंभूरमणसमुद्रके परभागमें पृथिवीके अस्तित्व सिद्ध करनेकी है जिसका उल्लेख पूर्वमेंही किया जा चुका है। (देखो पृ. १५५-१५८ तक)

इस प्रकार बड़े जोरदार शब्दोंमें उक्त तीनों बातोंका समर्थन करनेके पश्चात् भी उनकी निष्पक्षता दर्शनीय है। वे लिखते हैं– यह ऐसा ही है' इस प्रकार एकान्त हठ पकड़ करके असद् आग्रह नहीं करना चाहिए, क्योंकि, परमगुरुओंकी परम्परासे आए हुए उपदेशको युक्तिके बलसे अयथार्थ सिद्ध करना अशक्य है, तथा अतीन्द्रिय पदार्थोंमें छद्मस्थ जीवोंके द्वारा उठाए गए विकल्पोंके अविसंवादी होनेका नियम नहीं है। अतएव पुरातन आचार्योंके व्याख्यानका परित्याग न करके हेतुवाद (तर्कवाद) के अनुसरण करनेवाले व्युत्पन्न शिष्योंके अनुरोधसे तथा अव्युत्पन्न शिष्यजनोंके व्युत्पादनके लिये यह दिशा भी दिखाना चाहिए। (देखो पृ. १५७-१५८)

तिर्यंचोंके स्वस्थानस्वस्थानक्षेत्रको निकालते हुए द्वीप और समुद्रोंका क्षेत्रफल अनेक करणसूत्रोंद्वारा पृथक् पृथक् और सम्मिलित निकालनेकी प्रक्रियाएं दी गई हैं, और साथ ही यह भी सिद्ध किया गया है कि इस मध्यलोकमें कितना भाग समुद्रसे रुका हुआ है।

(देखो. पृ. १९४-२०३)

कायमार्गणामें बादर पृथिवीकायिक जीवोंके स्पर्शनक्षेत्रको बतलाते हुए रत्नप्रभादि सातों पृथिवीयोंकी लम्बाई चौड़ाईका भी प्रमाण बतलाया गया है।

३. कालानुगम

उक्त प्ररूपणाओंके समान कालप्ररूपणामें भी ओघ और आदेशकी अपेक्षा कालका निर्णय किया गया है, अर्थात् यह बतलाया गया है कि यह जीव किस गुणस्थान या मार्गणास्थानमें कमसे कम कितने काल तक रहता है, और अधिकसे अधिक कितने काल रहता है।

उदाहरणार्थ–मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्वगुणस्थानमें कितने काल तक रहते हैं! इस प्रश्नके

उत्तरमें बतलाया गया है कि नाना जीवोंकी अपेक्षा तो मिथ्यादृष्टि जीव सर्वकाल ही मिथ्यात्व गुणस्थानमें रहते हैं, अर्थात् तीनों कालोंमें ऐसा एक भी समय नहीं है, जब कि मिथ्यादृष्टि जीव न पाये जाते हों। किन्तु, एक जीवकी अपेक्षा मिथ्यात्वका काल तीन प्रकारका होता है— अनादि-अनन्त, अनादि-सान्त और सादि-सान्त। जो अभव्य जीव हैं, अर्थात् त्रिलोकमें भी जिनको सम्यक्त्वकी प्राप्ति नहीं होना है, ऐसे जीवोंके मिथ्यात्वका काल अनादि-अनन्त होता है, क्योंकि, उनके मिथ्यात्वका न कभी आदि है, न अन्त। जो अनादिमिथ्यादृष्टि भव्य जीव हैं, उनके मिथ्यात्वका काल अनादि-सान्त है, अर्थात् अनादि कालसे आज तक सम्यक्त्वकी प्राप्ति न होनेसे तो उनका मिथ्यात्व अनादि है, किन्तु आगे आकर सम्यक्त्वकी प्राप्ति और मिथ्यात्वका अन्त हो जानेसे वह मिथ्यात्व सान्त है। धवलाकारने इस प्रकारके जीवोंमेंसे वर्द्धनकुमारका दृष्टान्त दिया है, जो कि उस पर्यायमें सर्व प्रथम सम्यक्त्वी हुए थे। इस प्रकार सर्व प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करनेवाले जीवोंके सम्यक्त्व प्राप्तिके पूर्व समय तक उनके मिथ्यात्वका काल अनादि-सान्त समझना चाहिए। जिन जीवोंने एक बार सम्यक्त्वको प्राप्त कर लिया, तथापि अतिशीघ्र संक्लेशादि निमित्तसे जो फिर भी मिथ्यात्वको प्राप्त हो जाते हैं, उनके मिथ्यात्वका काल सादि-सान्त माना जाता है, क्योंकि, उनके मिथ्यात्वका आदि और अन्त, ये दोनों पाये जाते हैं। इस प्रकारके जीवोंमें भी श्रीकृष्णका दृष्टान्त धवलाकारने दिया गया।

प्रकृतमें अनादि-अनन्त और अनादि-सान्त मिथ्यात्वके कालको छोड़कर सादि-सान्त मिथ्यात्वकालकी ही विवक्षा की गई है और उसीकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टि गुणस्थानका जघन्य और उत्कृष्ट काल बतलाया गया है।

मिथ्यादृष्टि गुणस्थानका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त बतलाया गया है, जिसका अभिप्राय यह है कि यदि कोई सम्यग्मिथ्यादृष्टि, या असंयतसम्यग्दृष्टि या संयतासंयत या प्रमत्तसंयत जीव परिणामोंके निमित्तसे मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ और मिथ्यात्वदशामें सबसे छोटे अन्तर्मुहूर्तकाल तक रहकर पुनः सम्यग्मिथ्यात्वको, या असंयतसम्यक्त्वको या, संयमासंयम अथवा अप्रमत्तसंयमको प्राप्त हो गया, तो ऐसे जीवके मिथ्यात्वका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण पाया जाता है। ऐसे मिथ्यात्वको सादि-सान्त कहते हैं, क्योंकि, उसका आदि और अन्त दोनों पाये जाते हैं। इसी सादि-सान्त मिथ्यात्वका उत्कृष्ट काल कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है। इसका अभिप्राय यह है कि जब कोई जीव प्रथम बार सम्यक्त्वी होकर पुनः मिथ्यात्वी हो जाता है तो वह अधिकसे अधिक अर्धपुद्गलपरिवर्तनकालके भीतर अवश्य ही पुनः सम्यक्त्व प्राप्त कर मोक्ष चला जाता है। (अर्धपुद्गलपरिवर्तनकालके लिये देखिये पृ. ३२५–३३२)

इसी प्रकार शेष गुणस्थानोंके भी जघन्य और उत्कृष्ट काल बतलाये गये हैं।

६. क्षेत्रानुगम-विषय-सूची

क्रम सं.	विषय	पृष्ठ सं.
	१	
	विषयकी उत्थानिका	१–९
१	ग्रंथकारका मंगलाचरण और प्रतिज्ञा	
२	क्षेत्रानुगमकी अपेक्षा निर्देश भेद-कथन	
३	क्षेत्रानुयोगद्वारके अवतारकी उपयोगिता	
४	निक्षेपकी उपयोगिता उसके [illegible] स्वरूप और भेद, तथा निक्षेपोंका नयोंमें अन्तर्भाव	२–७
५	क्षेत्रशब्दकी निरुक्ति, एकार्थ-वाचक नाम, तथा निर्देशादि छह अनुयोगद्वारोंसे क्षेत्रपदार्थ का निर्णय	७–८
६	लोकशब्दका निरुक्ति, भेद और उसका स्वरूप	९
७	क्षेत्रानुगमका अर्थ तथा निर्देश का स्वरूप	,,
	२	
	ओघसे क्षेत्रानुगमनिर्देश	१०–५६
८	मिथ्यादृष्टि जीवोंका क्षेत्रनिरूपण	१०
९	लोक पदसे घनलोकका ही अभिप्राय है, इस बातका शंका-समाधानपूर्वक समर्थन	१०–११
१०	अन्य-आचार्य-प्ररूपित मृदंगाकार लोकके प्रमाणका निरूपण और तत्सम्बन्धी घनफल निकालनेके लिए सूचीकार, आयतचतुरस्र, त्रिकोण आदि अनेक आकारोंकी कल्पना तथा उनके प्रमाणका निर्णय आदि	१२–१८
११	मृदंगाकार लोक घनलोकके संख्यातवें भाग है, यह बतलाकर घनलोकको ही प्रमाणलोक या द्रव्यलोक माननेमें युक्ति	१८–१९
१२	लोकका आयाम, विष्कम्भ और उत्सेधका निरूपण	१९–२०
१३	लोकका तीनसौ तेतालीस घन-राजु न माननेपर दो सूत्रगाथाओंके अप्रमाणताका अनिष्टापादन	२०–२१
१४	असंख्यातप्रदेशी लोकमें अनन्त जीव कैसे रह सकते हैं, इस आशंकाका परिहार	२२–२४
१५	आकाशकी अवगाहना शक्तिका निरूपण	२४–२५
१६	जीवोंकी स्वस्थान, समुद्घात और उपपाद, इन तीन अवस्थाओंके भेद स्वरूपका वर्णन	२६–३०
१७	स्वस्थानस्वस्थान, विहार-वत्स्वस्थान, सात समुद्घात और उपपाद, इन दश अवस्थाओंके द्वारा यथासंभव मिथ्यादृष्टि आदि चौदह जीवसमासोंके क्षेत्र-निरूपणकी प्रतिज्ञा, तथा स्वस्थानस्वस्थान आदि राशियोंका प्रमाण-निरूपण	३१
१८	अधोलोक और ऊर्ध्वलोकका प्रमाण	३२
१९	असंख्यातवें भाग-प्रमाण विहार-वत्स्वस्थानराशिका गुणकार संख्यात घनांगुल कैसे जाना ? इस शंकाका समाधान	३३
२०	भ्रमरक्षेत्रके निकालनेका विधान	३४

क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.
२१	गोम्मिटक्षेत्रके निकालनेका विधान	३४
२२	शंखक्षेत्रके निकालनेका विधान	३५
२३	महामत्स्यक्षेत्रके निकालनेका विधान	३६
२४	तिर्यग्लोकका स्वरूप	३७
२५	वैक्रियिकसमुद्घातगत मिथ्यादृष्टि जीवोंका क्षेत्र निरूपण	३८
२६	देव अपने अवधिज्ञानके क्षेत्रप्रमाण विक्रिया करते हैं, ऐसा कहनेवाले आचार्योंके कथनका निराकरण	,,
२७	सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थानतक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंके क्षेत्रका वर्णन	३९–४७
२८	देव, मनुष्य और नारकियोंका उत्सेध क्रमशः दश, नौ और आठ तालके प्रमाणसे कहा गया है, इस बातका निरूपण	४०
२९	ऊर्ध्वलोक, अधोलोक और तिर्यग्लोकका प्रमाण-वर्णन	४१
३०	सूक्ष्मपरिधि निकालनेका कारण-सूत्र	४२
३१	भरत, ऐरावत और विदेह-सम्बन्धी प्रमत्तसंयतादि संयमी जीवोंकी जघन्य और उत्कृष्ट अवगाहनाके प्रमाणका निरूपण	४५
३२	तैजससमुद्घात क्षेत्रका प्रमाण	४७
३३	सयोगिकेवलीके क्षेत्रका निरूपण	४८
३४	दंडसमुद्घातगत केवलीका क्षेत्र	,,
३५	कपाटसमुद्घातगत केवलीका क्षेत्र	४९
३६	प्रतरसमुद्घातगत केवलीका क्षेत्र	५०
३७	लोकके चारों ओर स्थित तीनों वातवलयोंके क्षेत्रफलका निरूपण	५१–५५
३८	लोकपूरणसमुद्घातगत केवलीका क्षेत्र	५६

क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.
	३	
	आदेशसे क्षेत्रप्रमाणनिर्देश	५६-१३८
	१ गतिमार्गणा	५६-८१
	(नरकगति)	५६-६६
३९	सामान्य नारकियोंका क्षेत्र	५६
४०	नारकियोंकी अवगाहना	५७
४१	प्रथम पृथिवीके तेरहों पटलोंके नारकियोंकी ऊंचाई	५८
४२	द्वितीय पृथिवीके ग्यारहों पटलोंके नारकोंकी ऊंचाई	५९
४३	तृतीय पृथिवीके नौ पटलोंके नारकोंकी ऊंचाई	६०
४४	चतुर्थपृथिवीके सातों पटलोंके नारकोंकी ऊंचाई	६१
४५	पंचम पृथिवीके पांचों पटलोंके नारकोंकी ऊंचाई	,,
४६	छठी पृथिवीके तीनों पटलोंके नारकोंकी ऊंचाई	६२
४७	सातवीं पृथिवीके नारकोंकी ऊंचाई	,,
४८	नारकियोंके क्षेत्रको निकालनेके लिए अर्थपदका निरूपण	६३
४९	सातों पृथिवीयोंके नारकियोंका क्षेत्रवर्णन	६५
	तिर्यंचगति	६६–७३
५०	तिर्यंच मिथ्यादृष्टि जीवोंका क्षेत्र	६६
५१	सासादनगुणस्थानसे लेकर संयतासंयत गुणस्थान तकके प्रत्येक गुणस्थानवर्ती तिर्यंचोंका क्षेत्रप्रमाण	६७
५२	पंचेन्द्रियतिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंचपर्याप्त और पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती जीवोंका मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर संयतासंयत गुणस्थान तकके क्षेत्रका निरूपण	६९

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.
५३	लब्ध्यपर्याप्त पंचेन्द्रियतिर्यंचोंका क्षेत्र	७३
	(मनुष्यगति)	७३–७७
५४	मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तकके मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनियोंके क्षेत्रका वर्णन	७३
५५	सयोगिकेवलीका क्षेत्र	७५
५६	लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्योंका क्षेत्र	७६
	(देवगति)	७७–८१
५७	मिथ्यादृष्टि आदि चारों गुणस्थानवर्ती सामान्यदेवोंका क्षेत्र	७७
५८	भवनवासी देवोंसे लेकर नव ग्रैवेयक तकके चारों गुणस्थानवर्ती देवोंका क्षेत्र	,,
५९	भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिष्क देवोंके शरीरकी ऊंचाईका वर्णन	७९
६०	नव अनुदिश और पांच अनुत्तर विमानवासी देवोंका क्षेत्र	८१
	२ इन्द्रियमार्गणा	८१–८७
६१	सामान्य एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय और इन तीनोंके पर्याप्त तथा अपर्याप्तक जीवोंके क्षेत्रोंका वर्णन	८१
६२	वेदनासमुद्घातगत एकेन्द्रिय जीवोंका प्रमाण, तथा उनका क्षेत्रनिरूपण	८२
६३	स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घातगत बादर-एकेन्द्रिय और बादरएकेन्द्रिय-पर्याप्त जीवोंके क्षेत्रका निरूपण	८३
६४	सामान्य, पर्याप्त और अपर्याप्त विकलत्रय जीवोंके स्वस्थानादि क्षेत्रोंका निर्णय	८५
६५	पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रियपर्याप्तकोंके सभी गुणस्थानोंका क्षेत्र-निरूपण	८६
६६	लब्ध्यपर्याप्तक पंचेन्द्रिय जीवोंके क्षेत्रका वर्णन	८७
	३ कायमार्गणा	८७–१०२
६७	पृथिवीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, तथा बादरपृथिवीकायिक, बादर-अप्कायिक, बादरतेजस्कायिक, बादरवायुकायिक, बादरवनस्पति-कायिकप्रत्येकशरीर और इन पांच बादरोंके अपर्याप्त, सूक्ष्मपृथिवी-कायिक, सूक्ष्मअप्कायिक, सूक्ष्म-तेजस्कायिक, सूक्ष्मवायुकायिक, तथा इन चार सूक्ष्मोंके पर्याप्त और अपर्याप्तक जीवोंके क्षेत्रका निरूपण	८७
६८	रत्नप्रभादि सातों अधस्तन तथा उपरितन ईषत्प्राग्भार, इन आठों पृथिवीयोंके आयाम, विष्कम्भ और बाहल्यका वर्णन	८८–९१
६९	पृथिवीयोंमें सर्वत्र जल नहीं पाया जाता है इसलिए अप्-कायिक जीवोंका सर्वत्र पृथिवी-योंमें रहना संभव नहीं है, इस शंकाका समाधान	९२
७०	बादर पृथिवीकायिक, बादर अप्कायिक, बादर तेजस्कायिक और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीरपर्याप्तक जीवोंका क्षेत्र-वर्णन	९३
७१	वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्तकी जघन्य अवगाहनासे द्वीन्द्रियपर्याप्तकी जघन्य अवगा-हना असंख्यातगुणी है, इस	

क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.
	बातकी सिद्धिके लिए क्षेत्रा-क्षेत्रविधानमें कहे गये अवगाहना-दंडकका अवतरण	९४–९८
७२	बादरनिगोदप्रतिष्ठित पर्याप्त जीवोंके सूत्रमें नहीं कहनेका कारण	९९
७३	बादरवायुकायिक पर्याप्त जीवोंके क्षेत्रका निर्णय	,,
७४	बादर, सूक्ष्म तथा पर्याप्तक और अपर्याप्तक वनस्पति-कायिक वा निगोद जीवोंके क्षेत्रका निरूपण	१००
७५	मिथ्यादृष्टयादि अयोगिकेवल्यन्त त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्त जीवोंका क्षेत्र-वर्णन	१०१
७६	लब्ध्यपर्याप्तक त्रसजीवोंका क्षेत्र-वर्णन	,,
	४ योगमार्गणा	१०२–१११
७७	मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी जीवोंके क्षेत्रका निरूपण	१०२
७८	वैक्रियिकसमुद्घातगत, मार-णान्तिकसमुद्घातगत, तथा मूर्च्छित जीवोंका मनोयोग और वचनयोग कैसे संभव है ? इन शंकाओंका समाधान	,,
७९	काययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंका क्षेत्र	१०३
८०	सासादनगुणस्थानसे लेकर क्षीणकषायगुणस्थान तकके काययोगी जीवोंका क्षेत्र	,,
८१	काययोगी सयोगिकेवलीका क्षेत्र	१०४
८२	औदारिककाययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंका क्षेत्र	,,
८३	असंख्यातराशिका कितना भाग संचार करता है, इस बातका निरूपण	१०४
८४	सासादनगुणस्थानसे लेकर सयोगिकेवली तकके औदारिक-काययोगी जीवोंका क्षेत्र	१०५
८५	औदारिकमिश्रकाययोगी मिथ्या-दृष्टियोंका क्षेत्र	,,
८६	औदारिकमिश्रका वैक्रियिक-समुद्घात आदि पदोंके साथ भेद पाये जानेसे सूत्रोक्त ओघनिर्देश घटित नहीं होता है, इस शंकाका समाधान	१०६
८७	औदारिक मिश्रकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि, असंयत-सम्यग्दृष्टि और सयोगिकेवलीका क्षेत्र-निरूपण	,,
८८	औदारिकमिश्रकाययोगी सासा-दनसम्यग्दृष्टि और असंयत-सम्यग्दृष्टि जीवोंके उपपाद पद क्यों नहीं कहा, इस शंकाका समाधान	१०७
८९	मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तकके वैक्रियिककाययोगी जीवोंका क्षेत्र	१०८
९०	वैक्रियिकमिश्रकाययोगी मिथ्या-दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका क्षेत्र	१०९
९१	आहारककाययोगी और आहारक-मिश्रकाययोगी प्रमत्तसंयतोंका क्षेत्र	,,
९२	कार्मणकाययोगी मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, असंयत-सम्यग्दृष्टि और सयोगिकेवलीका क्षेत्र	११०–१११

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.
	५ वेदमार्गणा १११–११३	
९३	मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण तकके स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी जीवोंका क्षेत्र, तथा तत्सम्बन्धी विशेषताओंका वर्णन	१११
९४	मिथ्यादृष्ट्यादि नौ गुणस्थानवर्ती नपुंसकवेदी जीवोंका क्षेत्र, तथा तत्सम्बन्धी विशेषताओंका वर्णन	११२
९५	अपगतवेदी जीवोंका क्षेत्र	११३
	६ कषायमार्गणा ११३–११७	
९६	क्रोध, मान, माया और लोभकषायी मिथ्यादृष्टि जीवोंका क्षेत्र	११३
९७	सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तकके क्रोध, मान, माया और लोभकषायी जीवोंका क्षेत्र	११४
९८	सूत्रमें ओघपद क्यों नहीं कहा, इस शंकाका समाधान	,,
९९	'लोकके असंख्यातवें भागमें' इतना पद ही सूत्रमें कहनेसे प्रकृतमें 'मानुष्यक्षेत्रके भी असंख्यातवें भागमें रहते हैं' यह अर्थ क्यों नहीं लेना चाहिए, इस शंकाका, तथा इसीके अन्तर्गत एक और भी शंकाका समाधान	११५
१००	लोभकषायी सूक्ष्मसाम्परायिक शुद्धिसंयतोंका क्षेत्र	११६
१०१	अकषायी जीवोंका क्षेत्र	,,
१०२	उपशान्तकषायी जीवको अकषाय कैसे कहा, इस शंकाका तथा इसीके अन्तर्गत कुछ अन्य भी शंकाओंका समाधान	११७
	७ ज्ञानमार्गणा ११७–१२१	
१०३	मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी मिथ्यादृष्टि जीवोंका क्षेत्र	११७
१०४	मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी सासादनसम्यग्दृष्टियोंका क्षेत्र	११८
१०५	अचेतन और क्षणक्षयी शब्दकी अविनष्टरूपसे अनुवृत्ति कैसे हो सकती है, इस शंकाका समाधान	,,
१०६	विभंगज्ञानी मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका क्षेत्र, तथा स्वस्थानादि पदगत विभंगज्ञानी मिथ्यादृष्टि जीव तिर्यग्लोकके असंख्यातवें भागमें और मनुष्यलोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें ही क्यों रहते हैं, इस शंकाका समाधान	,,
१०७	असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषायवीतराग-छद्मस्थ गुणस्थान तक मति, श्रुत और अवधिज्ञानी जीवोंका क्षेत्र	११९
१०८	प्रमत्तसंयतसे लेकर क्षीणकषायान्त मनःपर्ययज्ञानी जीवोंका क्षेत्र	,,
१०९	पर्यायार्थिक और द्रव्यार्थिकनयी देशनाओंके कहनेका प्रयोजन	१२०
११०	केवलज्ञानी सयोगिकेवली और अयोगिकेवली जिनोंका क्षेत्र	,,
१११	स्वस्थानस्वस्थान पदका स्वरूप बतलाकर क्षीणमोही अयोगिकेवलीमें उसकी असंभवताका आपादन और समाधान	१२१

क्रम सं.	विषय	पृ. सं.
	८ संयममार्गणा	१२१–१२५
११२	संयमी जीवोंमें प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर अयोगी-केवली गुणस्थान तकके जीवोंका क्षेत्र	१२१
११३	द्रव्यार्थिक नयावलम्बनका प्रयोजन	१२२
११४	सयोगिकेवलीका क्षेत्र और पृथक् सूत्र निर्माणका प्रयोजन	,,
११५	सामायिक और छेदोपस्थापना संयतोंमें प्रमत्तसंयत गुण-स्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तकके संयत जीवोंका क्षेत्र	१२२-१२३
११६	परिहारविशुद्धिसंयत, सामा-यिक और छेदोपस्थापना शुद्धिसंयतोंसे पृथग्भूत क्यों नहीं, इस शंकाका समाधान	,,
११७	परिहारविशुद्धिसंयमी प्रमत्त- और अप्रमत्त संयतोंका क्षेत्र	,,
११८	सूक्ष्मसाम्पराय संयमवाले उपशामक और क्षपक जीवोंका क्षेत्र	,,
११९	यथाख्यातसंयमी, संयमासंयमी और असंयमी मिथ्यादृष्टि जीवोंकापृथक् क्षेत्र-निरूपण	१२४
१२०	ओघप्ररूपणाके भेद-प्रभेद और प्रकृतमें किस ओघसे प्रयोजन है, यह बताकर तत्सम्बन्धी शंका-समाधान	१२५
१२१	असंयमी सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयत-सम्यग्दृष्टि जीवोंका क्षेत्र	,,
	९ दर्शनमार्गणा	१२६-१२८
१२२	चक्षुदर्शनी जीवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषाय गुणस्थान तक क्षेत्र-निरूपण	१२६
१२३	लब्ध्यपर्याप्तक जीवोंमें चक्षु-दर्शन पाया जाता है या नहीं, इस शंकाका समाधान	१२६
१२४	अचक्षुदर्शनी जीवोंमें मिथ्या-दृष्टिसे लेकर क्षीणकषाय गुण-स्थान तकका क्षेत्र-निरूपण	१२७
१२५	अवधिदर्शनी और केवल दर्शनी जीवोंका क्षेत्र	,,
	१० लेश्यामार्गणा	१२८-१३१
१२६	कृष्ण, नील और कापोत लेश्यावाले मिथ्यादृष्टि, सासा-दनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्या-दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका पृथक् पृथक् क्षेत्र-वर्णन	१२८
१२७	तेज और पद्मलेश्यावालोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर अप्रमत्त-संयत तकके जीवोंका क्षेत्र	१२९
१२८	मारणान्तिक समुद्घातगत तेजोलेश्यावाले मिथ्यादृष्टि जीवोंके क्षेत्रमें विशेषता का वर्णन	,,
१२९	वैक्रियिक, मारणान्तिक और उपपादपदगत पद्मलेश्यावाले जीवोंमें कौनसी राशि प्रधान है, इस बातका निरूपण	१३०
१३०	शुक्ललेश्यावाले जीवोंमें मिथ्यात्व गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषाय तकके जीवोंका क्षेत्र	,,
१३१	शुक्ललेश्यावाले सयोगिकेवली का क्षेत्र और अलेश्य जीवोंका क्षेत्र नहीं कहनेका कारण	१३१
	११ भव्यमार्गणा	१३१–१३२
१३२	भव्यसिद्धिक जीवोंमें मिथ्या-दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानमें जीवोंका क्षेत्र	१३१

क्रम नं.	विषय	पृ. नं.
१३३	भव्यसिद्धिक मिथ्यादृष्टि जीवोंका क्षेत्र	१३२
१३४	विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकसमुद्घातगत अभव्य जीव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और मनुष्यलोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, इस बातका सप्रमाण निरूपण	"
१३५	सातिबंध करनेवाले जीव पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र होते हैं, इस बातका सयुक्तिक वर्णन	१३२-१३३
१३६	एकेन्द्रियोंमें संचित अनन्त सादिबंधकोंमेंसे जगत्प्रतरके असंख्यातवें भागप्रमाण सादिबंधक जीव त्रसोंमें क्यों नहीं उत्पन्न होते, इस शंकाका समाधान	१३३
	१२ सम्यक्त्वमार्गणा	१३३-१३६
१३७	सामान्य सम्यग्दृष्टि और क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका क्षेत्र	१३३
१३८	वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें असंयत गुणस्थानसे लेकर अप्रमत्तगुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका क्षेत्र	१३४
१३९	उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें असंयतगुणस्थानसे लेकर उपशान्तकषाय गुणस्थान तकके जीवोंका क्षेत्र	"
१४०	मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादगत असंयत उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंकी संख्याका निरूपण	१३५
१४१	उपशम श्रेणीसे उतरकर मरनेवाले उपशमसम्यक्त्वी जीवोंके सिवाय अन्य उपशमसम्यक्त्वी जीवोंका मरण क्यों नहीं होता, इस शंकाका समाधान	१३५
१४२	सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीवोंका पृथक् पृथक् क्षेत्रनिरूपण	"
	१३ संज्ञीमार्गणा	१३६
१४३	संज्ञी जीवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषाय गुणस्थान तकके जीवोंका क्षेत्र	"
१४४	असंज्ञी जीवोंका क्षेत्र	"
	१४ आहारमार्गणा	१३७-१३८
१४५	आहारक जीवोंमें मिथ्यादृष्टिगुणस्थानसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तकके जीवोंका क्षेत्र-निरूपण	१३७
१४६	अनाहारक मिथ्यादृष्टि जीवोंका क्षेत्र	"
१४७	अनाहारक सासादनसम्यग्दृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और सयोगिकेवलीका क्षेत्र	१३८
१४८	अनाहारक सयोगिकेवलीका क्षेत्र	"

स्पर्शनानुगम

१

विषयकी उत्थानिका १४१-१४५

१	धवलाकारका मंगलाचरण और प्रतिज्ञा	१४१
२	स्पर्शनानुगमकी अपेक्षा निर्देश-भेद-कथन	"
३	नामस्पर्शन, स्थापनास्पर्शन, द्रव्यस्पर्शन, क्षेत्रस्पर्शन, काल-	

क्रम नं.	विषय	पृ. नं.
	स्पर्शन और भावस्पर्शन, इन छह प्रकारके स्पर्शनोंका सभेद स्वरूप और नयोंमें अन्तर्भाव	१४१–१४४
४	स्पर्शनशब्दकी निरुक्ति, ओघशब्दके एकार्थक नाम और प्रमाणवाक्यके अभावकी आशंकाका समाधान	१४४–१४५
	२	
	ओघसे स्पर्शनानुगमनिर्देश	१४५-१७३
५	मिथ्यादृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र निरूपण	१४५
६	स्पर्शनानुयोगद्वारके अवतारकी आवश्यकताका प्रतिपादन	१४५–१४६
७	लोकका प्रमाण-निरूपण	१४६–१४७
८	सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका वर्तमानकालिक स्पर्शनक्षेत्र	१४८
९	सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	१४९–१६५
१०	सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यंचोंका स्वस्थानस्वस्थानक्षेत्र	१४९
११	सासादनसम्यग्दृष्टि ज्योतिष्क देवोंका स्वस्थानक्षेत्र	१५०–१६०
१२	एक चन्द्रके परिवारका प्रमाण	१५१–१५२
१३	ज्योतिष्कदेवोंके सर्व विमानोंका प्रमाण	१५२
१४	स्वयम्भूरमण समुद्रके परभागमें राजुके अर्धच्छेदोंके अस्तित्वकी सिद्धि, तथा परिकर्मसूत्रके साथ उसका विरोध उद्भावन कर उसका परिहार	१५५–१५६
१५	राजुके अर्धच्छेद सर्व द्वीप-सागरोंके प्रमाणसे तत्प्रायोग्य संख्यात रूपाधिक हैं, यह कथन केवल त्रिलोकप्रज्ञप्तिसूत्रके अनुसार है, यह बतलाते हुए असंख्यात आवलियोंके अवहार-कालके तथा आयतचतुरस्र लोक-संस्थानके उपदेशका उल्लेख और स्वकीय निष्पन्न मनोवृत्तिका परिचय	१५७–१५८
१६	चन्द्रबिम्बशलाकाओंकी उत्पत्ति	१५९
१७	ज्योतिषी देवोंके विमानोंका प्रमाण उत्सेधांगुलसे ही लेना चाहिए, प्रमाणांगुलसे नहीं, अन्यथा जम्बूद्वीप-सम्बन्धी तारे जम्बूद्वीपमें समा नहीं सकते, इस बातका पक्षान्तर स्वीकारके साथ उल्लेख	१६०
१८	सासादनसम्यग्दृष्टि व्यन्तर देवोंका स्वस्थानक्षेत्र निरूपण	१६१
१९	सासादनसम्यग्दृष्टि जीव एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होते हैं, या केवल मारणान्तिकसमुद्घात करते हैं, इस बातका सप्रमाण निर्णय	१६२–१६३
२०	जब कि सासादनसम्यग्दृष्टि देव एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिकसमुद्घात करते हैं, तो फिर सर्वलोकवर्ती एकेन्द्रियोंमें क्यों नहीं करते, इस शंकाका सयुक्तिक समाधान	१६४
२१	सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका बारह बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शनक्षेत्र कैसे घटित होता है, वे वायुकायिक जीवोंमें मारणान्तिकसमुद्घात क्यों नहीं करते, इन शंकाओंका समाधान	,,
२२	उपपादगत सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके देशोन ग्यारह बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शनक्षेत्रकी सिद्धि	१६५
२३	जिन आचार्योंका यह अभिमत है कि देव नियमसे मूलशरीरमें प्रविष्ट होकर ही मरण करते हैं, और इसी अपेक्षा उपपादगत सासादनसम्यग्दृष्टि देवोंका	

क्रम सं.	विषय	पृ. सं.
	स्पर्शनक्षेत्र देशोन दश बटे चौदह भागप्रमाण कहते हैं, उनके कथनका सप्रमाण विरोध-निरूपण	१६५
२४	सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयत-सम्यग्दृष्टि जीवोंका वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	१६६
२५	संयतासंयत जीवोंका वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	१६७–१७६
२६	स्वयम्भूरमणसमुद्र और स्वयम्भूरमणद्वीपके अभ्यन्तरवर्ती क्षेत्रका विष्कम्भ बतलाते हुए संयतासंयत जीवोंके स्वस्थानक्षेत्रकी सप्रमाण सिद्धि	१६८–१६९
२७	प्रमत्तसंयत गुणस्थान लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तकके जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र, तथा विक्रियादि ऋद्धिसम्पन्न ऋषियोंने सर्व मनुष्यक्षेत्रका स्पर्श किया है, या नहीं; क्या मेरुशिखर तक जाने आनेवाले ऋषि मनुष्यक्षेत्रमें सर्वत्र नहीं जा आ सकते; क्या तिर्यंचोंका भी एक लाख योजन ऊपर तक जाना सम्भव नहीं है, इत्यादि अनेक शंकाओंका समाधान	१७०–१७२
२८	सयोगिकेवलीका स्पर्शनक्षेत्र	,,
	३ आदेशसे स्पर्शनक्षेत्र-निर्देश	१७३-३०९
	१ गतिमार्गणा	,, -२४०
	(नरकगति)	,, -१९२
२९	नारकी मिथ्यादृष्टि जीवोंका वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	१७३
३०	अतीतकालकी विहारवत्स्वस्थानादि पदगत नारकी मिथ्यादृष्टियोंका स्पर्शनक्षेत्र तिर्यग्लोकके संख्यातवें भाग प्रमाण क्यों नहीं, इस शंकाका तथा इसीके अन्तर्गत और भी अनेकों शंकाओंका समाधान	१७४
३१	विग्रहगतिमें जीवोंके विग्रह सहेतुक होते हैं, या अहेतुक, इस बातका निर्णय करते हुए नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देवगति प्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्मकी प्रकृतियोंके भेदोंका निरूपण और उनके क्षेत्र-विपाकित्वकी सिद्धि	१७५–१७६
३२	सासादनसम्यग्दृष्टि नारकियोंका वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	१७७
३३	नारकावासोंके आकारोंका तथा वर्तमानकालमें नारकियोंसे रोके हुए क्षेत्रका वर्णन	१७८
३४	सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयत-सम्यग्दृष्टि नारकियोंका स्पर्शनक्षेत्र बतलाते हुए एक नारकावासका क्षेत्रफल, तथा मारणान्तिक समुद्घातगत असंयत सम्यग्दृष्टि नारकियोंका स्पर्शनक्षेत्र मनुष्यलोकसे असंख्यातगुणा क्यों है, इस बातका अनेक युक्तियोंके साथ समर्थन	१७९–१८२
३५	प्रथम पृथिवीके मिथ्यादृष्टि आदि चारों गुणस्थानवर्ती स्वस्थानादिपदगत नारकियोंके स्पर्शनक्षेत्रकी सयुक्तिक सिद्धि करते हुए प्रसंगागत मृदंगाकार लोकके अनुसार एक लाख योजन बाहल्य और एक राजु गोल तिर्यग्लोकके प्रमाणका, जगत्श्रेणी जगत्प्रतर, घनलोकका परिकर्मके अवतरण पूर्वक स्वरूप-निरूपण	

क्रम सं.	विषय	पृ. सं.
	करते हुए अनेक युक्तियों और प्रमाणोंसे खंडन	१८२–१८७
३६	द्वितीय पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि नारकियोंका वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	१८८–१८९
३७	उक्त पृथिवीयोंके सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि नारकियोंका स्पर्शनक्षेत्र	१८९–१९०
३८	सातवीं पृथिवीके मिथ्यादृष्टि नारकियोंका वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र तथा देशोन क्षेत्रका स्पष्टीकरण	१९०–१९१
३९	सातवीं पृथिवीके सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि नारकियोंका स्पर्शनक्षेत्र	१९१–१९२
	(तिर्यंचगति)	१९२–२१६
४०	तिर्यंच मिथ्यादृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र, तथा त्रसजीवरहित असंख्यात द्वीप और समुद्रोंमें विहारवत्स्वस्थान पदपरिणत तिर्यंचोंका होना कैसे संभव है, इस शंकाका समाधान करते हुए अतीतकालमें विहार करनेवाले तिर्यंचोंसे स्पर्श किये गये क्षेत्रके निकालनेका विधान	१९२–१९३
४१	सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यंचोंका वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	१९३–२०६
४२	जम्बूद्वीपका क्षेत्रफल	१९४
४३	लवणसमुद्रका क्षेत्रफल	१९५
४४	धातकीखंड आदि द्वीपों और कालोदक आदि समुद्रोंके क्षेत्रफलके निकालनेके लिए गुणकार शलाकाओंका निरूपण और उनसे विवक्षित द्वीप और समुद्रके क्षेत्रफल निकालनेका विधान	१९५–१९८
४५	स्वयम्भूरमण समुद्रके क्षेत्रफल निकालनेका विधान	१९८
४६	सर्व समुद्रोंके क्षेत्रफलका संकलन-निरूपण	१९९–२०१
४७	स्वयम्भूरमण समुद्रके अतिरिक्त शेष सर्व समुद्रोंके क्षेत्रफलको निकालनेका विधान	२०२–२०३
४८	सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यंच मेरुपर्वतसे नीचे मारणान्तिकसमुद्घात क्यों नहीं करते हैं, उनकी भवनवासी देवोंमें उत्पत्ति होती है, कि नहीं; इत्यादि अनेक शंकाओंका समाधान	२०४–२०६
४९	सम्यग्मिथ्यादृष्टि तिर्यंचोंका स्पर्शनक्षेत्र	२०६
५०	असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत तिर्यंचोंका वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	२०७–२११
५१	नवग्रैवेयकोंमें यदि मिथ्यादृष्टि मनुष्य उत्पन्न होते हैं तो असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत तिर्यंचोंकी उत्पत्ति क्यों नहीं होना चाहिए ? यदि कहा जाय कि मिथ्यादृष्टि मनुष्य द्रव्यलिंगसे उत्पन्न होते हैं, तो ये भी द्रव्यलिंगसे ही उत्पन्न होवें ? इस शंकाका समाधान	२०८
५२	उपपादपरिणत असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्यंचोंके स्पर्शनक्षेत्रके करणसूत्र द्वारा निकालनेका विधान	२०९–२१०
५३	विहारवत्स्वस्थानादि पदपरिणत संयतासंयत तिर्यंचोंका स्पर्शनक्षेत्र	२१०–२११

क्रम सं.	विषय	पृ. सं.
५४	मिथ्यादृष्टि पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय-पर्याप्त और योनिमती तिर्यंचोंका वर्तमान और अतीतकालिका स्पर्शनक्षेत्र,	२११–२१२
५५	असनालीके बाहिर असकायिक जीवोंके अभाव होनेसे मारणान्तिक और उपपादगत उक्त तिर्यंच-त्रिकोंका स्पर्शनक्षेत्र सर्व लोक कैसे सम्भव है, इस शंकाका समाधान	२१२
५६	सासादनगुणस्थानसे लेकर संयतासंयत गुणस्थान तक उक्त पंचेन्द्रियत्रिकोंका स्पर्शनक्षेत्र	२१३
५७	पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक तिर्यंचोंका वर्तमानकालिक स्पर्शन-क्षेत्र	,,
५८	पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक तिर्यंचोंका अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र तथा उसके निकालनेका विधान	२१४
५९	अंगुलके असंख्यातवें भागमात्र अवगाहनावाले लब्ध्यपर्याप्त जीवोंके संख्यात अंगुलप्रमाण उत्सेध कैसे संभव है, इस शंकाका समाधान	,,
६०	महामत्स्यकी अवगाहनामें एक बन्धनसे बद्ध षट्कायिक जीवोंका अस्तित्व कैसे जाना जाता है, इस शंकाका समाधान	२१५
	(मनुष्यगति)	२१६–२२४
६१	मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनी मिथ्यादृष्टि जीवोंका वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	२१६–२१७
६२	उक्त तीनों प्रकारके सासादन-सम्यग्दृष्टि मनुष्योंका वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	२१७–२२०
६३	मनुष्योंसे अगम्य प्रदेशवाले कुलाचल आदिके क्षेत्रको 'मनुष्य क्षेत्र' यह संज्ञा कैसे है, इस शंकाका समाधान	२१८
६४	मनुष्योंमें उत्पन्न होनेवाले मारकी सासादनसम्यग्दृष्टियोंका स्पर्शन-क्षेत्र तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग नहीं हो सकता, इस बातका समुचित आक्षेप और परिहार	२१८–२२०
६५	सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तकके मनुष्योंका स्पर्शनक्षेत्र	२२०–२२१
६६	मारणान्तिक समुद्घातगत असंयतसम्यग्दृष्टि मनुष्योंने तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग कैसे स्पर्श किया, इस शंकाका समाधान	२२१
६७	बद्धायुष्क असंयतसम्यग्दृष्टि मनुष्योंके उपपादक्षेत्रके निकालनेका समाधान	२२१–२२२
६८	सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म परिधिक्षेत्रके निकालनेका करणसूत्र	२२१
६९	अयोगिकेवली जिनोंका स्पर्शन-क्षेत्र	२२३
७०	लब्ध्यपर्याप्त मनुष्योंका वर्तमान-कालिक स्पर्शनक्षेत्र	,,
७१	लब्ध्यपर्याप्त मनुष्योंका अतीत-कालिक स्पर्शनक्षेत्र	२२३
	(देवगति)	२२४–२४०
७२	मिथ्यादृष्टि और सासादन-सम्यग्दृष्टि देवोंका वर्तमान-कालिक स्पर्शनक्षेत्र	२२४
७३	उक्त देवोंका अतीत और अना-गतकालसम्बन्धी स्पर्शनक्षेत्रका सोपपत्तिक निरूपण	२२५
७४	दिशा और विदिशाका स्वरूप, तथा षट्कापक्रमनियमके होनेमें युक्ति	२२६

क्रम सं.	विषय	पृ. सं.
७५	भवनवासियोंमें उत्पन्न होनेवाले तिर्यंचोंका उपपाद सम्बन्धी स्पर्शनक्षेत्र साधिक पांच राजु क्यों नहीं होता, इस शंकाका समाधान	२२६–२२७
७६	सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयत-सम्यग्दृष्टि देवोंके वर्तमान तथा अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्रका सोपपत्तिक निरूपण	२२७
७७	मिथ्यादृष्टि और सासादन-सम्यग्दृष्टि भवनत्रिक, देवोंके वर्तमानकालिक स्पर्शनक्षेत्रका सयुक्तिक निरूपण	२२८–२२९
७८	उक्त देवोंके अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्रका सोपपत्तिक निरूपण	२२९–२३२
७९	उपपादपदगत मिथ्यादृष्टि भवन-वासी देवोंके स्पर्शनक्षेत्रसम्बन्धी अनेक अपूर्व शंकाओंका समाधान	२३०
८०	मिथ्यादृष्टि और सासादन-सम्यग्दृष्टि व्यन्तर देवोंके स्वस्था-नादि पदोंके स्पर्शनक्षेत्रका सोप-पत्तिक निरूपण	२३०–२३१
८१	उपपादकी अपेक्षा तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणा क्षेत्र वर्तमान-कालमें व्याप्त करके स्थित व्यन्तरदेव अतीतकालमें कैसे तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागको स्पर्श करते हैं, इस शंकाका सयुक्तिक समाधान	२३१
८२	व्यन्तरोंके प्रसंगोपात्त आवास-स्थानोंका निरूपण	२३२
८३	उपपादगत ज्योतिष्क देवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२३२–२३३
८४	सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयत-सम्यग्दृष्टि भवनत्रिक देवोंका वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	२३३–२३४
८५	सौधर्म और ईशानकल्पवासी देवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुण-स्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती देवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२३४–२३६
८६	इन्द्रक, श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक विमानोंके विस्तारका निरूपण	२३४
८७	सौधर्मादि सर्व कल्पोंके विमा-नोंकी संख्याका निरूपण	२३५–२३६
८८	सौधर्मकल्पवासी देवोंका स्पर्शन-क्षेत्र देवोंके ओघस्पर्शनके समान क्यों है, इसका सोपपत्तिक निरूपण	२३६
८९	सनत्कुमारकल्पसे लेकर सहस्रार-कल्प तकके मिथ्यादृष्टि आदि चारों गुणस्थानवर्ती देवोंका वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	२३७–२३८
९०	आनतकल्पसे लेकर अच्युतकल्प तकके मिथ्यादृष्टि आदि चारों गुणस्थानवर्ती देवोंके वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्रका सोपपत्तिक निरूपण	२३८–२३९
९१	नवग्रैवेयकोंके मिथ्यादृष्टि आदि चारों गुणस्थानवर्ती देवोंका वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	२३९
९२	नव अनुदिश और पांच अनुत्तर विमानवासी असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२४०
	२ (इन्द्रियमार्गणा)	२४०–२४६
९३	बादर, सूक्ष्म और पर्याप्त अपर्याप्त एकेन्द्रिय जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२४०–२४२
९४	बादर एकेन्द्रिय और बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र सामान्य लोक आदि	

क्रम नं.	विषय	पृ. नं.
	तीन लोकोंके संख्यातवें भाग क्यों है, इस शंकाका समाधान	२४१
९५	सामान्य एवं पर्याप्त और वर्तमानकालिक स्पर्शनक्षेत्र	२४२
९६	उक्त तीनों प्रकारके विकलत्रय जीवोंके अतीतकालिक स्पर्शन-क्षेत्रका सोपपत्तिक निरूपण	२४३
९७	पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रियपर्याप्त मिथ्यादृष्टि जीवोंके वर्तमान तथा अतीतकालिक स्पर्शन-क्षेत्रका सोपपत्तिक निरूपण	२४४
आलाप ९८	सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान-तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रियपर्याप्त जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२४५
९९	लब्ध्यपर्याप्त पंचेन्द्रिय जीवोंका वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	२४६
	३ (कायमार्गणा)	२४७–२५५
१००	सामान्य तथा बादर पृथिवी-कायिक, जलकायिक, अग्नि-कायिक, वायुकायिक और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक-शरीर, तथा इन्हींके अपर्याप्त जीव, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्मजलकायिक, सूक्ष्मअग्नि-कायिक, सूक्ष्मवायुकायिक और इन्हींके पर्याप्त तथा अपर्याप्त जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२४७
१०१	उक्त जीवोंने तिर्यग्लोकसे संख्यातगुणा क्षेत्र कैसे स्पर्श किया है, यह बतलाते हुए आठों पृथिवीयोंकी लम्बाई चौड़ाई और मोटाईका निरूपण	२४७-२४८
१०२	बादर तेजस्कायिक और वायु-कायिक जीवोंके वैक्रियिक-समुद्घातसम्बन्धी स्पर्शनक्षेत्रका सोपपत्तिक वर्णन	२४९–२५०
१०३	बादर पृथिवीकायिक, जल-कायिक, अग्निकायिक और वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त जीवोंके वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्रका तथा तदन्तर्गत शंका-समा-धानोंका सप्रमाण वर्णन	२५०–२५२
१०४	बादर वायुकायिकपर्याप्त जीवोंका वर्तमान तथा अतीत-कालिक स्पर्शनक्षेत्र	२५२–२५३
१०५	वनस्पतिकायिक, निगोद, तथा उनके बादर, सूक्ष्म और पर्याप्त-अपर्याप्त जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२५३–२५४
१०६	त्रसकायिक और त्रसकायिक-पर्याप्त जीवोंके मिथ्यादृष्टि आदि चौदहों गुणस्थानों सम्बन्धी स्पर्शनक्षेत्रका निरूपण	२५४
१०७	त्रसकायिक लब्ध्यपर्याप्त जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२५४–२५५
	४ योगमार्गणा	२५५–२७१
१०८	पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंका वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	२५५–२५६
१०९	सासादनसम्यग्दृष्टि गुण-स्थानसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुण-स्थानवर्ती पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२५६–२५७
११०	मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषायगुणस्थान तक	

क्रम सं.	विषय	पृ. सं.
	काययोगी जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२५८
१११	काययोगी सयोगिकेवलीका स्पर्शनक्षेत्र, तथा पृथक् सूत्र-द्वारा बतलानेका सयुक्तिक कारण-निरूपण	२५८-२५९
११२	औदारिककाययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२५९-२६०
११३	औदारिककाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	२६०-२६१
११४	औदारिककाययोगी सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत जीवोंका वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	२६१-२६२
११५	प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तकके औदारिककाययोगी जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२६२-२६३
११६	औदारिकमिश्रकाययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२६३-२६४
११७	औदारिकमिश्रकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और सयोगिकेवली जीवोंके स्पर्शनक्षेत्रका तदन्तर्गत शंका-समाधान पूर्वक सोपपत्तिक निरूपण	२६४-२६५
११८	वैक्रियिककाययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंके वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र सोपपत्तिक निरूपण	२६६
११९	वैक्रियिककाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२६७-२६८
१२०	वैक्रियिकमिश्रकाययोगी मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२६८-२६९
१२१	आहारकाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी प्रमत्तसंयतोंका स्पर्शनक्षेत्र	२६९
१२२	कार्मणकाययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२६९-२७०
१२३	कार्मणकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका वर्तमान तथा अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	२७०-२७१
१२४	कार्मणकाययोगी सयोगिकेवलीका स्पर्शनक्षेत्र	२७१
	५ वेदमार्गणा	२७१-२७९
१२५	स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी मिथ्यादृष्टि जीवोंके वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्रका सयुक्तिक निरूपण	२७१-२७२
१२६	स्त्री और पुरुषवेदी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्रका तदन्तर्गत शंका-समाधानके साथ निरूपण	२७२-२७४
१२७	स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी सम्यग्मिथ्यादृष्टि तथा असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	२७४
१२८	स्त्री और पुरुषवेदी संयतासंयतोंका वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	२७४-२७५
१२९	प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण उपशामक और क्षपक गुणस्थान तक स्त्री और पुरुषवेदी जीवोंका तदन्तर्गत	

क्रम सं.	विषय	पृ. सं.
	विशेषताओंके साथ स्पर्शन-क्षेत्रका वर्णन	२७५–२७६
१३०	नपुंसकवेदी मिथ्यादृष्टि जीवोंके तदन्तर्गत शंका-समाधानके साथ स्पर्शनक्षेत्रका निरूपण	२७६
१३१	नपुंसकवेदी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	२७६–२७७
१३२	सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तकके नपुंसकवेदी जीवोंका वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	२७७–२७९
१३३	अपगतवेदी जीवोंका स्पर्शन-क्षेत्र	२७९
	६ (कषायमार्गणा)	२८०–२८१
१३४	मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान-तकके चारों कषायवाले जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२८०
१३५	लोभकषायवाले सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानवर्ती उपशामक और क्षपक जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	,,
१३६	उपशान्तकषाय आदि अन्तिम चार गुणस्थानवाले अकषायी जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२८०–२८१
	७ (ज्ञानमार्गणा)	२८१–८२५
१३७	मिथ्यादृष्टि और सासादन-सम्यग्दृष्टि मत्यज्ञानी तथा श्रुताज्ञानी जीवोंके स्पर्शन-क्षेत्रका तदन्तर्गत शंका-समाधानपूर्वक निरूपण	२८१–२८२
१३८	विभंगज्ञानी मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके स्पर्शनक्षेत्रका तदन्तर्गत शंका-समाधानपूर्वक निरूपण	२८२–२८३
१३९	असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषायगुणस्थान तकके मति, श्रुत और अवधि-ज्ञानी जीवोंके स्पर्शनक्षेत्रका तदन्तर्गत शंका-समाधानपूर्वक निरूपण	२८३–२८४
१४०	प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषाय गुणस्थान तकके मनःपर्ययज्ञानी जीवोंका स्पर्शन-क्षेत्र	२८४
१४१	केवलज्ञानी सयोगिकेवली और अयोगिकेवली जिनोंका स्पर्शनक्षेत्र	२८४–२८५
	८ संयममार्गणा	२८५–२८८
१४२	प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तकके संयत जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२८५–२८६
१४३	प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तकके सामायिक और छेदोपस्थापना संयमी जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२८६
१४४	प्रमत्त और अप्रमत्तसंयत गुण-स्थानवर्ती परिहारविशुद्धि-संयतोंका स्पर्शनक्षेत्र	,,
१४५	उपशामक और क्षपक सूक्ष्म-साम्परायसंयमी जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२८७
१४६	अन्तिम चार गुणस्थानवर्ती यथाख्यातसंयमी जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	,,
१४७	संयमासंयमवाले जीवोंका तद-न्तर्गत शंका-समाधानके साथ स्पर्शनक्षेत्र-निरूपण	,,
१४८	मिथ्यादृष्टि आदि चार गुण-स्थानवर्ती असंयत जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२८८

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

क्रम सं.	विषय	पृष्ठ सं.
	९ दर्शनमार्गणा	२८८–२९०
१४९	चक्षुदर्शनी मिथ्यादृष्टि जीवोंका वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	२८८
१५०	सासादन सम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषाय गुणस्थान तकके चक्षुदर्शनी जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२८९
१५१	मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषाय गुणस्थान तकके अचक्षुदर्शनी जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	"
१५२	अवधिदर्शनी जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	"
१५३	केवलदर्शनी जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	२९०
	१० लेश्यामार्गणा	२९०–३०१
१५४	कृष्ण, नील और कापोतलेश्यावाले मिथ्यादृष्टि जीवोंका सोपपत्तिक स्पर्शनक्षेत्र	२९०
१५५	उक्त तीनों अशुभलेश्यावाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	२९१–२९२
१५६	देवोंसे एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करनेवाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका तीनों अशुभ लेश्यासम्बन्धी स्पर्शनक्षेत्र यथाक्रमसे बारह बटे चौदह भाग, ग्यारह बटे चौदह भाग और नौ बटे चौदह भागप्रमाण क्यों नहीं पाया जाता, इस शंकाका समाधान	२९२
१५७	कृष्ण, नील और कापोत लेश्यावाले तथा एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करनेवाले सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यंच और मनुष्योंका स्पर्शनक्षेत्र क्रमशः बारह बटे चौदह, ग्यारह बटे चौदह और नौ बटे चौदह भागप्रमाण क्यों नहीं पाया जाता, इस शंकाका समाधान	२९२
१५८	तिर्यंचगतिमें उत्पन्न होनेवाले देवोंके तीनों अशुभलेश्याओंका उपपादपदसम्बन्धी क्रमशः ग्यारह बटे चौदह, दश बटे चौदह और आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्र क्यों नहीं पाया जाता, इस शंकाका समाधान	२९२
१५९	उक्त तीनों अशुभलेश्यावाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका सपुक्तिक स्पर्शनक्षेत्र	२९३–२९४
१६०	तेजोलेश्यावाले मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	२९४–२९५
१६१	तेजोलेश्यावाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	२९५–२९६
१६२	तेजोलेश्यावाले संयतासंयत जीवोंका वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	२९६–२९७
१६३	तेजोलेश्यावाले प्रमत्त और अप्रमत्त संयतोंका स्पर्शनक्षेत्र	२९७
१६४	मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तकके पद्मलेश्यावाले जीवोंका वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	२९७–२९८

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

क्रम सं.	विषय	पृ. सं.
१६५	पद्मलेश्यावाले संयतासंयत जीवोंका वर्तमान और अतीत अनागतकालसंबंधी स्पर्शनक्षेत्र	२९८
१६६	पद्मलेश्यावाले प्रमत्त और अप्रमत्तसंयतोंका स्पर्शनक्षेत्र	२९९
१६७	मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर संयतासंयत गुणस्थान तकके शुक्ललेश्यावाले जीवोंका वर्तमान और अतीत-अनागतकाल-संबंधी स्पर्शनक्षेत्र	२९९–३००
१६८	शुक्ललेश्यावाले तिर्यंच, शुक्ल-लेश्यावाले देवोंमें क्यों नहीं उत्पन्न होते हैं, इस शंकाका समाधान	३००
१६९	उपपादपदपरिणत शुक्ललेश्या-वाले असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंके तथा मारणान्तिकपदपरिणत शुक्ललेश्यावाले संयतासंयत जीवोंके देशोन छह बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन-क्षेत्रका सोपपत्तिक निरूपण	,,
१७०	प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तकके शुक्ललेश्यावाले जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	३००–३०१
	११ भव्यमार्गणा	३०१
१७१	मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तकके भव्यजीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	३०१
१७२	अभव्य जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	,,
	१२ सम्यक्त्वमार्गणा	३०२–३०६
१७३	असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तकके सम्यक्त्वी जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	३०२
१७४	असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानवर्ती क्षायिक सम्यक्त्वी जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	३०२
१७५	उपपादपदगत असंयत क्षायिक-सम्यग्दृष्टि जीवोंका स्पर्शन-क्षेत्र तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागप्रमाण कैसे है, इस शंकाका समाधान	३०२–३०३
१७६	संयतासंयत गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तकके क्षायिकसम्यक्त्वी जीवोंका सोपपत्तिक स्पर्शनक्षेत्र-वर्णन	३०३–३०४
१७७	असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तकके वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	३०४
१७८	असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान-वर्ती औपशमिकसम्यक्त्वी जीवका स्पर्शनक्षेत्र, तथा उसके ओघके समान कहनेमें उपस्थित आपत्तिका परिहार	३०४–३०५
१७९	संयतासंयत गुणस्थानसे लेकर उपशान्तकषाय गुणस्थान तकके उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	३०५
१८०	सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्य-ग्मिथ्यादृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीवोंका पृथक् पृथक् स्पर्शनक्षेत्र	३०६
	१३ संज्ञिमार्गणा	३०६–३०७
१८१	संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीवोंका वर्तमान और अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र	३०६–३०७
१८२	सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषाय गुणस्थान तकके संज्ञी जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	,,

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

क्रम नं.	विषय	पृ. नं.
१८३	असंज्ञी जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	
	१४ आहारमार्गणा	३०८–३०९
१८४	आहारक मिथ्यादृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	३०८
१८५	आहारमार्गणाकी अपेक्षा उपपादपदका राजुप्रमाण आयाम नहीं पाया जाता, अतः सर्वलोक प्रमाण स्पर्शनक्षेत्रके अभाव होनेसे ओघपना नहीं बनता है, इस शंकाका समाधान	,,
१८६	सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तकका स्पर्शनक्षेत्र	,,
१८७	अनाहारक जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र	३०९
	कालानुगम	
	१	
	विषयकी उत्थानिका	३१३–३२३
१	धवलाकारका मंगलाचरण और प्रतिज्ञा	३१३
२	कालानुगमकी अपेक्षा निर्देशभेद निरूपण	,,
३	नामकाल, स्थापनाकाल, द्रव्यकाल और भावकाल, इन चार प्रकारके कालनिक्षेपोंका सभेद स्वरूप-निरूपण	३१३–३१७
४	तद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यकालका स्वरूप और उसकी पुष्टिमें पंचास्तिकायप्राभृत, जीवसमास और आचारांगकी गाथाओंका उल्लेख	३१४–३१६
५	द्रव्यकालके अस्तित्वको समर्थन करते हुए तत्त्वार्थसूत्रका सूत्रप्रमाण-निरूपण	३१६
६	प्रकृत जीवस्थान आदिमें द्रव्यकालके न कहनेका कारण	,,
७	व्यवहारकालके अस्तित्वकी पुष्टिमें पंचास्तिकायप्राभृतकी गाथाओंका उल्लेख	३१७
८	प्रकृतमें नोआगमभावकालका प्रयोजन और उसके समय, आवली, मुहूर्त वर्ष आदि स्वरूप होनेका निरूपण	,,
९	कालशब्दकी निरुक्ति और उसके पर्यायवाची नामोंका निरूपण	३१७–३१८
१०	समय, आवली, उच्छ्वासनिःश्वास श्लोक, लव, नाली, मुहूर्त और दिवसके कालप्रमाणका सप्रमाण निरूपण	३१८
११	दिन और रात्रिसम्बन्धी तीस मुहूर्तोंके नाम	३१८–३१९
१२	पक्षका प्रमाण और दिवसोंके नाम	३१९
१३	मास, वर्ष और युग आदिका स्वरूप	३२०
१४	निर्देश, स्वामित्व आदि प्रसिद्ध छह अनुयोगद्वारोंसे कालका स्वरूप-निरूपण	३२०–३२२
१५	यदि काल एकमात्र मनुष्यक्षेत्रसे सूर्यमंडलमें ही अवस्थित है, तो उसके द्वारा छह द्रव्योंके परिणाम कैसे प्रकाशित किये जा सकते हैं, इस शंकाका समाधान	३२०
१६	देवलोकमें तो दिन-रात्रिरूप कालका अभाव है, फिर वहां पर कालका व्यवहार कैसे होता है, इत्यादि कालसम्बन्धी अनेकों शंकाओंके अपूर्व समाधान	३२१
१७	निर्देशके पर्यायवाची नाम बतलाकर दोनों प्रकारके निर्देशोंकी सार्थकताका निरूपण	३२२–३२३

क्रम सं.	विषय	पृ. सं.
	आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज	
	ओघसे कालानुगमनिर्देश	३२३-३५७
१८	मिथ्यादृष्टि जीवोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा कालनिरूपण	३२३
१९	एक जीवकी अपेक्षा कालके तीन भेदोंका सदृष्टांत उल्लेख और प्रकृतमें सादि-सान्त कालकी अपेक्षा जघन्यकालका निरूपण	३२४
२०	सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंको भी मिथ्यात्व गुणस्थानमें पहुंचा कर उसका जघन्यकाल क्यों निरूपण	३२५
२१	एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट सादि-सान्त मिथ्यात्वकालका निरूपण	,,
२२	अर्धपुद्गलपरिवर्तनका स्वरूप बतलाते हुए पांच प्रकारके परिवर्तनोंका नामोल्लेख कर द्रव्यपरिवर्तनका विशद स्वरूप-निरूपण	३२५-३२६
२३	यदि जीवने आज तक भी समस्त पुद्गल भोगकर नहीं छोड़े हैं, तो 'सव्वे वि पोग्गला खलु' इत्यादि सूत्र-गाथाके साथ विरोध क्यों नहीं होगा, इस शंकाका समाधान	३२६
२४	प्रथम समयमें गृहीत पुद्गल-पुंज द्वितीय समयमें निर्जीण हो, अकर्मरूप अवस्थाको धारण कर, पुनः तृतीय समयमें उसी जीवमें जाता है, यह कैसे जाना, इस शंकाका समाधान	३२७
२५	पुद्गलपरिवर्तनकालके तीन प्रकारोंका स्वरूप	३२८
२६	पुद्गलपरिवर्तनके स्वरूपका बोधक यंत्र	३३०
२७	अगृहीत, मिश्र और गृहीत संबंधी तीनों प्रकारके कालोंका सकारण अल्पबहुत्व-निरूपण	३३१
२८	नोकर्मपुद्गलपरिवर्तनके समान ही कर्मपुद्गलपरिवर्तनके स्वरूपका उल्लेख और तत्सम्बन्धी विशेषताओंका निरूपण	३३२
२९	क्षेत्र, काल, भव और भाव-पुद्गलपरिवर्तनोंका सूत्रगाथाओं द्वारा स्वरूप-निरूपण	३३३-३३४
३०	एक जीवकी अपेक्षा पांचों परिवर्तनवारोंका अल्पबहुत्व	३३४
३१	पांचों परिवर्तनोंका कालसंबंधी अल्पबहुत्व	,,
३२	सादि-सान्त मिथ्यात्वके कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन कालका निदर्शन	३३५
३३	सम्यक्त्वकी उत्पत्ति और मिथ्यात्वका विनाश, इन दोनों विभिन्न कार्योंका एक समय कैसे हो सकता है; इस शंकाका समाधान	,,
३४	मिथ्यात्व नाम पर्यायका है, वह पर्याय उत्पाद विनाशात्मक है, क्योंकि, उसमें स्थितिका अभाव है। और यदि उसकी स्थिति भी मानते हैं, तो मिथ्यात्वके द्रव्यपना प्राप्त होता है, इस शंकाका समाधान	३३६-३३७
३५	अनन्तका स्वरूप और उसके प्रमाणमें आर्षगाथाका उल्लेख	३४८
३६	व्ययसहित अर्धपुद्गलपरिवर्तन आदि राशियोंके अनन्तपना किस अपेक्षासे है, इसका स्पष्टीकरण	,,
३७	अक्षय अनन्त राशिका विवेचन	३३९

क्रम सं.	विषय	पृ. सं.
३८	सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा सोपपत्तिक जघन्य कालनिरूपण	३३९
३९	उक्त जीवोंके उत्कृष्ट कालका सयुक्तिक कालवर्णन	३४०
४०	एक जीवकी अपेक्षा सासादन-सम्यग्दृष्टियोंके जघन्य कालका निरूपण	३४१
४१	उपशमसम्यक्त्वकालके अधिक माननेमें क्या दोष है, इस शंकाका समाधान करते हुए सासादनगुणस्थानके कालका सप्रमाण निरूपण	३४१
४२	एकजीवकी अपेक्षा सासादन-सम्यग्दृष्टियोंके उत्कृष्ट कालका सप्रमाण निरूपण	३४२
४३	सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य काल	३४२–३४३
४४	अप्रमत्तसंयत जीव सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानको क्यों नहीं प्राप्त होते, इस शंकाका समाधान	३४३
४५	सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव अपना काल पूरा कर पीछे संयमको, अथवा संयमासंयमको क्यों नहीं प्राप्त होता, इस शंकाका समाधान	,,
४६	नाना जीवोंकी अपेक्षा सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका उत्कृष्ट काल	३४४
४७	एक जीवकी अपेक्षा सम्यग्मिथ्या-दृष्टियोंके जघन्य कालका सवन्तर्गत शंका-समाधानपूर्वक निरूपण	,,
४८	एक जीवकी अपेक्षा सम्यग्मिथ्या-दृष्टियोंके उत्कृष्ट कालका सोपपत्तिक प्रतिपादन	३४५
४९	असंयतसम्यग्दृष्टियोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा काल, तथा तत्सम्बन्धी अनेकों शंकाओंका समाधान	३४५–३४६
५०	एक जीवकी अपेक्षा असंयत-सम्यग्दृष्टियोंके जघन्य कालका सनिदर्शन निरूपण	३४६–३४७
५१	एक जीवकी अपेक्षा असंयत-सम्यग्दृष्टियोंके जघन्य कालका तदन्तर्गत शंका-समाधानपूर्वक सोपपत्तिक निरूपण	३४७–३४८
५२	संयतासंयत जीवोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा काल	३४८
५३	एक जीवकी अपेक्षा संयतासंय-तोंका जघन्य काल	३४९
५४	सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संयमा-संयमको क्यों नहीं प्राप्त होता, इस शंकाका समाधान	,,
५५	एक जीवकी अपेक्षा संयता-संयतोंका उत्कृष्ट काल	३५०
५६	प्रमत्त और अप्रमत्तसंयतोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा काल-निरूपण	३५०
५७	एक जीवकी अपेक्षा प्रमत्त और अप्रमत्तसंयतोंके जघन्य कालका सोपपत्तिक निरूपण	३५०–३५१
५८	एक जीवकी अपेक्षा प्रमत्त और अप्रमत्तसंयतोंका उत्कृष्ट काल	३५१
५९	चारों उपशामकोंका नाना जीवोंकी जघन्य काल	३५२
६०	अप्रमत्तसंयतको अपूर्वकरण गुणस्थानमें ले जाकर और द्वितीय समयमें मरण कराके अपूर्वकरण गुणस्थानके एक समयकी प्ररूपणा क्यों नहीं की, इस शंकाका समाधान	,,
६१	नाना जीवोंकी अपेक्षा चारों उपशामकोंके उत्कृष्ट कालका सोपपत्तिक निरूपण	३५२–३५३

क्रम नं.	विषय	पृ. नं.
६२	एक जीवकी अपेक्षा चारों उपशामकोंका जघन्य काल	३५३–३५४
६३	एक जीवकी अपेक्षा चारों उपशामकोंका उत्कृष्ट काल	३५४
६४	चारों क्षपक और अयोगिकेवलीका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य तथा उत्कृष्ट काल	३५४–३५५
६५	उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	३५५
६६	सयोगिकेवली जिनका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल निरूपण	३५६–३५७
	३ आदेशसे काल प्रमाण-निर्देश	
	१ गतिमार्गणा	
	(नरकगति)	३५७–३६३
६७	नारकी मिथ्यादृष्टि जीवोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा काल निरूपण	३५७
६८	एक जीवकी अपेक्षा नारकी मिथ्यादृष्टियोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल	३५७–३५८
६९	सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि नारकियोंका काल वर्णन	३५८
७०	असंयतसम्यग्दृष्टि नारकियोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल निरूपण	३५८–३५९
७१	सातों पृथिवियोंके नारकियोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट कालोंका प्रतिपादन	३६०–३६१
७२	सातों पृथिवियोंके सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि नारकियोंका काल वर्णन	३६१
७३	सातों पृथिवीयोंके असंयतसम्यग्दृष्टि नारकियोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट कालोंका सोपपत्तिक निरूपण	३६१–३६३
	(तिर्यंचगति)	३६३–३७२
७४	तिर्यंच मिथ्यादृष्टि जीवोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा काल वर्णन	३६३
७५	एक जीवकी अपेक्षा तिर्यंच मिथ्यादृष्टि जीवोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल	३६३–३६४
७६	'असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन' इस वचनसे अनन्तताकी उपलब्धि होती है, अतः सूत्रमेंसे अनन्त पद क्यों न निकाल दिया जाय, इस शंकाका समाधान	३६४
७७	सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि तिर्यंचोंका काल प्रमाण	,,
७८	असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्यंचोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	३६५–३६६
७९	संयतासंयत तिर्यंचोंका नाना और एकजीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	३६६
८०	पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रियपर्याप्त और योनिमती मिथ्यादृष्टि जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	३६७–३६९
८१	पंचानवे पूर्वकोटियोंकी पूर्वकोटी-पृथक्त्वसंज्ञा कैसे हो सकती है, इस शंकाका समाधान	३६८
८२	लब्ध्यपर्याप्तकोंमें स्त्रीवेदकी संभवता-असंभवताका विचार	३६९
८३	उक्त तीनों प्रकारके सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि तिर्यंचोंका काल वर्णन	,,

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

क्रम नं.	विषय	पृ. नं.
८४	उक्त तीनों प्रकारके असंयत-सम्यग्दृष्टि तिर्यंचोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा सोपपत्तिक जघन्य और उत्कृष्ट काल	३६९–३७१
८५	उक्त तीनों प्रकारके संयतासंयत तिर्यंचोंका काल	३७१
८६	पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक तिर्यंचोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	३७१–३७२
	(मनुष्यगति)	३७२–३८०
८७	मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनी मिथ्यादृष्टि जीवोंके नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट कालका सोपपत्तिक निरूपण	३७२–३७३
८८	उक्त तीनों प्रकारके सासादन-सम्यग्दृष्टि मनुष्योंका नाना एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	३७४–३७५
८९	उक्त तीनों प्रकारके सम्यग्मिथ्यादृष्टि मनुष्योंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	३७५–३७६
९०	उक्त तीनों प्रकारके असंयत-सम्यग्दृष्टि मनुष्योंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	३७६–३७८
९१	उक्त तीनों प्रकारके मनुष्योंका संयतासंयत गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली तक काल निरूपण	३७८
९२	लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्योंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	३७९–३८०
	(देवगति)	३८०–३८७
९३	मिथ्यादृष्टि देवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	३८०
९४	सासादन और असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंका काल	३८१
९५	असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	"
९६	भवनवासियोंसे लगाकर शतार सहस्रारकल्प तकके मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	३८२–३८४
९७	घातायुष्क सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि देवोंका कालमें विशेषता	३८३
९८	उक्त देवोंकी स्थिति बतलानेवाले कालसूत्रका और त्रिलोक प्रज्ञप्तिसूत्रका विरोध उद्भावन कर उसका परिहार	३८४
९९	भवनवासियोंसे लेकर सहस्रारकल्प तकके सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवोंका काल	३८५
१००	आनतकल्पसे लेकर नवग्रैवेयकों तकके मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट कालका निरूपण	३८५–३८६
१०१	नौ अनुदिश और विजयादि चार अनुत्तर विमानोंका असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	३८६–३८७
१०२	सर्वार्थसिद्धि विमानवासी असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा काल निरूपण	३८७
	२ इन्द्रियमार्गणा	३८८–४०१
१०३	एकेन्द्रिय जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	३८८

क्रम नं.	विषय	पृ. नं.
१०४	बादर एकेन्द्रिय जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	३८८–३८९
१०५	'कर्मस्थितिको आवलीके असंख्यातवें भागसे गुणा करने पर बादरस्थिति होती है,' इस परिकर्म-वचनके साथ बतलाये गये बादर एकेन्द्रियोंके एक जीवगत उत्कृष्ट कालका विरोध क्यों नहीं होगा, इस शंकाका समाधान	३९०
१०६	बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	,,
१०७	क्षुद्रभवग्रहणका काल संख्यात आवलीप्रमाण होता है, इस बातका सप्रमाण निरूपण	३९०–३९४
१०८	अन्तर्मुहूर्त भी संख्यात आवली-प्रमाण होता है, अतः अन्तर्मुहूर्त और क्षुद्रभवके कालमें कोई भेद नहीं मानना चाहिए, इस शंकाका समाधान	३९२
१०९	बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीवोंकी भवस्थिति असंख्यात वर्षप्रमाण क्यों नहीं होती है, इस शंकाका समाधान	३९२
११०	यदि कोई जीव बादर एकेन्द्रियोंमें उत्कृष्ट संख्यात बार या उसके संख्यातवें भागप्रमाण बार उत्पन्न हो, तो असंख्यात वर्षप्रमाण बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीवोंकी उत्कृष्ट भवस्थिति क्यों नहीं हो जायगी, इस शंकाका समाधान	३९३
१११	बादर एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	३९३-३९४
११२	सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	३९४
११३	सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट कालका तदन्तर्गत शंका-समाधान पूर्वक निरूपण	३९४-३९५
११४	जब कि एक सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवके आयुकर्मकी स्थिति संख्यात आवली प्रमाण होती है, तब संख्यात बार उसमें ही पुनः पुनः उत्पन्न होनेवाले जीवके दिवस, पक्ष, मास आदि प्रमाण स्थितिकाल क्यों नहीं पाया जाता, इस शंकाका समाधान	३९५
११५	सूक्ष्म एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट कालका तदन्तर्गत अनेकों शंका-समाधानोंके साथ निरूपण	३९६-३९७
११६	सामान्य विकलत्रय और पर्याप्तक विकलत्रय जीवोंके एक और नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट कालोंका तत्संबंधी अनेक शंका-समाधानोंके साथ निरूपण	३९७-३९८
११७	लब्ध्यपर्याप्तक विकलत्रय जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल, वा तत्सम्बन्धी शंका-समाधान	३९८-३९९
११८	पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रियपर्याप्त मिथ्यादृष्टि जीवोंका नाना	

क्रम नं.	विषय	पृ. नं.
	और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	३९९-४००
११९	सासादनसम्यग्दृष्टिसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक दोनों प्रकारके पंचेन्द्रिय जीवोंका कालवर्णन	४००
१२०	पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक जीवोंका काल	४००-४०१
	३ कायमार्गणा	४०१-४०९
१२१	पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट कालका निरूपण	४०१-४०२
१२२	बादरपृथिवीकायिक, बादर-जलकायिक, बादरअग्निकायिक, बादरवायुकायिक और बादर-वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	४०२-४०३
१२३	कर्मस्थितिसे किस कर्मकी स्थितिका अभिप्राय है, दर्शन-मोहनीयकर्मकी स्थितिकी प्रधानता क्यों है, इन शंकाओंका समाधान	४०३
१२४	उक्त पांचों प्रकारके पर्याप्त स्थावर जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट कालका पृथक् पृथक् निरूपण	४०३-४०४
१२५	उक्त पांचों प्रकारके लब्ध्य-पर्याप्त स्थावर जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	४०५
१२६	सूक्ष्म तथा पर्याप्तक और अपर्याप्तक पांचों स्थावर-कायिक जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा काल	४०५-४०६
१२७	वनस्पतिकायिक जीवोंका काल	४०६
१२८	निगोदिया जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	४०६-४०७
१२९	बादरनिगोद जीवोंका काल	४०७
१३०	त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्त मिथ्यादृष्टि जीवोंके नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट कालोंका तत्सम्बन्धी शंका-समाधान-पूर्वक निरूपण	४०७-४०८
१३१	सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लगाकर अयोगिकेवली गुणस्थान तकके त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्त जीवोंका काल	४०८
१३२	त्रसकायिक लब्ध्यपर्याप्तक जीवोंका काल	४०८-४०९
	४ योगमार्गणा	४०९-४३७
१३३	पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी मिथ्यादृष्टि, असंयत-सम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्त-संयत, अप्रमत्तसंयत और सयोगिकेवली गुणस्थानवर्ती जीवोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा काल निरूपण	४०९
१३४	एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंके जघन्य कालका योग-परिवर्तन, गुणस्थानपरिवर्तन मरण और व्याघात, इन चारके द्वारा सोदाहरण काल निरूपण	४०९-४१२
१३५	उक्त जीवोंके उत्कृष्ट कालका वर्णन	४१२

क्रम नं.	विषय	पृ. नं.
१३६	पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका काल	४१२–४१३
१३७	उक्त योगवाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका नाना जीव और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	४१३–४१४
१३८	पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी चारों उपशामकों और चारों क्षपकोंका नाना जीव और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	४१४–४१५
१३९	एक समयसम्बन्धी विकल्पोंका गाथासूत्रद्वारा निरूपण	४१५
१४०	काययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	४१५–४१७
१४१	सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तकके काययोगी जीवोंका काल	४१७
१४२	औदारिककाययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंका नाना और एक जीवसम्बन्धी जघन्य और उत्कृष्ट काल	४१७–४१८
१४३	सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तकके औदारिककाययोगी जीवोंका काल	४१८
१४४	औदारिकमिश्रकाययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	४१८–४१९
१४५	औदारिकमिश्रकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	४२०–४२१
१४६	औदारिकमिश्रकाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंके नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट कालका सोदाहरण निरूपण	४२१–४२३
१४७	औदारिकमिश्रकाययोगी सयोगिकेवलीके नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट कालका तत्सम्बन्धी क्षपकों शंकाओंके समाधानपूर्वक निरूपण	४२३–४२४
१४८	वैक्रियिककाययोगी मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा सोदाहरण जघन्य और उत्कृष्ट काल	४२५–४२६
१४९	वैक्रियिककाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका पृथक् पृथक् काल निरूपण	४२६
१५०	वैक्रियिकमिश्रकाययोगी मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंके नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट कालका सोदाहरण तदन्तर्गत शंका-समाधानपूर्वक निरूपण	४२६–४२९
१५१	वैक्रियिकमिश्रकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट कालका सोदाहरण निरूपण	४२९–४३०
१५२	आहारककाययोगी प्रमत्तसंयतोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा सोदाहरण जघन्य और उत्कृष्ट काल	४३१–४३२
१५३	आहारकमिश्रकाययोगी प्रमत्तसंयतोंका नाना और एक	

क्रम सं.	विषय	पृ. सं.
	जीवकी अपेक्षा सोदाहरण जघन्य और उत्कृष्ट काल	४३२–४३३
१५४	कार्मणकाययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और सोदाहरण उत्कृष्ट काल	४३३–४३५
१५५	तीन विग्रहवाली गति किन जीवोंके होती है, यह बतलाकर तीन विग्रह करनेकी दिशाका निरूपण	४३४–४३५
१५६	कार्मणकाययोगी सासादन-सम्यग्दृष्टि और असंयतसम्य-ग्दृष्टि जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा सोदाहरण जघन्य और उत्कृष्ट काल	४३५–४३६
१५७	कार्मणकाययोगी सयोगि-केवलीका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	४३६-४३७
	५ वेदमार्गणा	४३७–४४४
१५८	स्त्रीवेदी मिथ्यादृष्टि जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	४३७
१५९	स्त्रीवेदी सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका पृथक् पृथक् काल-निरूपण	४३८
१६०	स्त्रीवेदी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा सोदाहरण जघन्य और उत्कृष्ट काल	४३८–४३९
१६१	संयतासंयत गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तकके स्त्रीवेदी जीवोंका सोदाहरण काल	४३९–४४०
१६२	पुरुषवेदी मिथ्यादृष्टि जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा सोदाहरण जघन्य और उत्कृष्ट काल	४४०–४४१
१६३	सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तकके पुरुषवेदी जीवोंका काल	४४१
१६४	नपुंसकवेदी मिथ्यादृष्टि जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा सोदाहरण जघन्य और उत्कृष्ट काल	४४१–४४२
१६५	नपुंसकवेदी सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका पृथक् पृथक् काल निरूपण	४४२
१६६	नपुंसकवेदी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा सोदाहरण जघन्य और उत्कृष्ट काल	४४२–४४३
१६७	संयतासंयत गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तकके नपुंसकवेदी जीवोंका काल	४४३
१६८	अपगतवेदी जीवोंका काल	४४४
	६ कषायमार्गणा	४४४–४४८
१६९	मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तकके चारों कषायवाले जीवोंके कालका कषायपरिवर्तन, गुण-स्थानपरिवर्तन और मरणकी अपेक्षा निरूपण	४४४–४४५
१७०	किस कषायसे मरा हुआ जीव किस गतिमें उत्पन्न होता है, इस बातका विवेचन	४४५
१७१	क्रोध, मान और माया, इन तीन कषायवाले आठवें और नवें गुणस्थानवर्ती उपशामकोंका तथा लोभकषायवाले आठवें, नवें और दशवें गुणस्थानवर्ती उपशामकोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	४४६–४४७

क्रम नं.	विषय	पृ. नं.
१७२	उक्त कषाय तथा उक्त गुण-स्थानवाले क्षपक जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	४४७–४४८
१७३	कषायरहित जीवोंका काल	४४८
	७ ज्ञानमार्गणा	४४८–४५१
१७४	मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी मिथ्यादृष्टि तथा सासादन-सम्यग्दृष्टि जीवोंका काल	४४८–४४९
१७५	विभंगज्ञानी मिथ्यादृष्टि जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	४४९–४५०
१७६	विभंगज्ञानी सासादनसम्य-ग्दृष्टियोंका काल	४५०
१७७	असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषाय गुणस्थान तकके मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंका काल	४५०–४५१
१७८	अवधिज्ञानी संयतासंयतोंके एक जीवसम्बन्धी उत्कृष्ट कालकी विशेषताका निरूपण	,,
१७९	प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषाय गुणस्थान तकके मनःपर्ययज्ञानी जीवोंका काल	४५१
१८०	केवलज्ञानियोंका काल निरूपण	,,
	८ संयममार्गणा	४५१–४५३
१८१	प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तकके संयतोंका काल	४५१–४५२
१८२	प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक सामायिक और छेदोपस्थापना-शुद्धिसंयतोंका काल	४५२
१८३	परिहारविशुद्धिसंयमी प्रमत्त और अप्रमत्तसंयतोंका काल	२४२
१८४	सूक्ष्मसाम्परायिक शुद्धिसंयतोंका काल	,,
१८५	अन्तिम चार गुणस्थानवर्ती यथाख्यातविहारशुद्धिसंयतोंका काल	४५३
१८६	संयतासंयत जीवोंका काल	,,
१८७	असंयत जीवोंका काल	,,
	९ दर्शनमार्गणा	४५३–४५५
१८८	चक्षुदर्शनी मिथ्यादृष्टि जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	४५३–४५४
१८९	निर्वृत्यपर्याप्तकोंके समान सद्भावपर्याप्तकोंमें चक्षुदर्शन क्यों नहीं होता, इस शंकाका समाधान	४५४
१९०	सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषाय गुणस्थान तकके चक्षुदर्शनी जीवोंका काल	,,
१९१	मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषाय गुणस्थान तकके अचक्षुदर्शनी जीवोंका काल	४५५
१९२	अवधिदर्शनी जीवोंका काल	,,
१९३	केवलदर्शनी जीवोंका काल	,,
	१० लेश्यामार्गणा	४५५–४७६
१९४	कृष्ण, नील और कापोतलेश्या वाले मिथ्यादृष्टि जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा सोदाहरण जघन्य और उत्कृष्ट काल निरूपण, तथा तत्स-म्बन्धी शंकाओंका सयुक्तिक समाधान	४५५–४५८
१९५	तीनों अशुभलेश्यावाले सासा-दनसम्यग्दृष्टि जीवोंका काल	४५८

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

क्रम नं.	विषय	पृ. नं.
१९६	तीनों अशुभ लेश्यावाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका काल	४५९
१९७	तीनों अशुभ लेश्यावाले असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा सोदाहरण जघन्य और उत्कृष्ट काल-निरूपण, तथा तदन्तर्गत अनेकों शंकाओंका सप्रमाण समाधान	४५९–४६२
१९८	तेजोलेश्या और पद्मलेश्यावाले मिथ्यादृष्टि तथा असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा सोदाहरण जघन्य और उत्कृष्ट काल	४६२–४६५
१९९	मिथ्यादृष्टि जीवके तेजोलेश्याकी उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्तसे कम अढ़ाई सागरोपम प्रमाण क्यों नहीं होती, इस शंकाका, तथा इसीसे सम्बन्धित अन्य कई शंकाओंका अपूर्व समाधान	४६३–४६५
२००	तेजोलेश्या और पद्मलेश्यावाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका काल	४६५
२०१	उक्त दोनों लेश्यावाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका काल	४६५–४६६
२०२	उक्त दोनों लेश्यावाले संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत जीवोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा काल	४६६
२०३	उक्त जीवोंके एक जीवकी अपेक्षा लेश्यापरिवर्तन, गुणस्थानपरिवर्तन और मरण, इन तीनके द्वारा जघन्य कालका निरूपण	४६६–४७१
२०४	मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि, इन दो गुणस्थानोंके तेज और पद्मलेश्यावाले जीवोंकी लेश्या और गुणस्थानपरिवर्तनकी अपेक्षा एक समयकी प्ररूपणा क्यों नहीं कही, इस शंकाका समाधान	४६७–४६८
२०५	तेज और पद्मलेश्याके समान कापोत और नील लेश्याओंका भी एक समय पाया जाता है, फिर उसे क्यों नहीं कहा, इस शंकाका समाधान	४६८
२०६	तेज या पद्मलेश्याके कालमें एक समय शेष रहनेपर जैसे नीचेके गुणस्थानवाले संयमासंयमको प्राप्त होते हैं, उसी प्रकारसे प्रमत्तसंयत भी संयमासंयम गुणस्थानको क्यों नहीं प्राप्त होता, इस शंकाका समाधान	४७०
२०७	पद्मलेश्याके कालमें विद्यमान कोई प्रमत्तसंयत उस लेश्याके कालक्षयसे तेजोलेश्यासे परिणत होकर दूसरे समयमें अप्रमत्तसंयत क्यों नहीं होता, इस शंकाका समाधान	४६९–४७०
२०८	उक्त प्रकारका जीव मिथ्यात्व आदिक नीचेके गुणस्थानोंको क्यों नहीं प्राप्त हो जाता, इस शंकाका समाधान	४७०
२०९	तेज और पद्मलेश्यावाले संयतासंयतादि तीन गुणस्थानवाले जीवोंका उत्कृष्ट काल	४७१
२१०	शुक्ललेश्यावाले मिथ्यादृष्टि जीवोंके नाना और एक जीवकी अपेक्षा सोदाहरण जघन्य और उत्कृष्ट कालका निरूपण	४७१–४७२

क्रम नं.	विषय	पृ. नं.
२११	शुक्ललेश्यावाले सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका पृथक् पृथक् काल निरूपण	४७२–४७३
२१२	शुक्ललेश्यावाले संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयतोंके नाना और एक जीवकी अपेक्षा लेश्यापरिवर्तन, गुणस्थानपरिवर्तन और मरणकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट कालका निरूपण	४७३–४७५
२१३	तेज, पद्म और शुक्ल लेश्या-सम्बन्धी एक एक समयके भंगोंका निरूपण	४७५
२१४	शुक्ल लेश्यावाले चारों उपशामक, चारों क्षपक और सयोगिकेवलीका काल वर्णन	४७६
	११ भव्यमार्गणा	४७६–४८०
२१५	भव्यसिद्धिक मिथ्यादृष्टि जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा सोदाहरण जघन्य और उत्कृष्ट काल	,,
२१६	मिथ्यात्वके अनादि और अकृत्रिम होनेसे उसका विनाश नहीं होना चाहिए; कारण रहित वस्तुका विनाश नहीं होता, अतः अज्ञान या कर्मबन्धका विनाश नहीं होना चाहिए, इत्यादि अनेक अपूर्व शंकाओंका अद्वितीय समाधान	,,
२१७	मोक्षको जानेके कारण निरन्तर व्ययशील भव्य राशिका विच्छेद क्यों नहीं होता, इस शंकाका समाधान	४७८
२१८	सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तकके भव्य जीवोंका काल	४८०
२१९	अभव्य जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा काल निरूपण	,,
	१२ सम्यक्त्वमार्गणा	४८१–४८५
२२०	सामान्य सम्यग्दृष्टि और क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तकके जीवोंका काल	४८१
२२१	असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तकके वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंका काल	,,
२२२	असंयत और संयतासंयत गुणस्थानवर्ती असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत जीवोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	४८२
२२३	उक्त सम्यग्दृष्टि जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा सोदाहरण जघन्य और उत्कृष्ट काल	४८३
२२४	प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर उपशान्तकषाय गुणस्थान तकके उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंके नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट कालोंका सोदाहरण निरूपण	४८३–४८४
२२५	सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीवोंका पृथक् पृथक् काल-वर्णन	४८४–४८५
	१३ संज्ञिमार्गणा	४८५–४८६
२२६	संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीवोंका	

क्रम नं.	विषय	पृ. नं.
	नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	४८५
२२७	सासादनगुणस्थानसे लेकर क्षीणकषाय गुणस्थान तकके संज्ञी जीवोंका काल	,,
२२८	असंज्ञी जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	४८६
	१४ आहारमार्गणा	
२२९	आहारक मिथ्यादृष्टि जीवोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल	४८६–४८७
२३०	सासादन गुणस्थानसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तकके आहारक जीवोंका काल	४८७
२३१	अनाहारक मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और सयोगिकेवली जीवोंका काल	४८७–४८८
२३२	अनाहारक अयोगिकेवलीका काल	४८८

ॐ

सिरि-भगवंत-पुप्फदंत-भूदबलि-पणीदो

छक्खंडागमो

सिरि-वीरसेणाइरिय-विरइय-धवला-टीका-समण्णिदो

तस्स

पढमखंडे जीवट्ठाणे
खेत्ताणुगमो

लोयालोयपयासं गोदमथेरं पुणो जिणं वीरं ।
णमिऊण[1] खेत्तसुत्तं जहोवएसं पयासेमो ॥

केवलज्ञानरूप सूर्यसे लोक और अलोकके प्रकाशक अर्थात् सर्वज्ञ, गौतम अर्थात् उत्तमवाणीके स्थविर[2] अर्थात् विधाता (दिव्यध्वनिके प्रणेता) और जिन अर्थात् वीतराग ऐसे त्रिविध विशेषणविशिष्ट श्रीवीर भगवानको; अथवा द्वादशांग ग्रन्थ-रचनासे प्रकाशित किया है, लोक और अलोकको जिन्होंने ऐसे, तथा जिन अर्थात् काम-क्रोधादि भाव शत्रुओंके जीतनेवाले, और वीर[3] अर्थात् विशेषरूपसे जो प्राणियोंको मोक्षके लिए प्रेरणा करते हैं, या मोक्षमार्गकी ओर चलाते हैं, ऐसे गौतमस्थविर श्रीइन्द्रभूति गणधरको नमस्कार करके क्षेत्रसूत्रको अर्थात् क्षेत्रानुयोगद्वारसम्बन्धी सूत्रोंके अर्थको जैसा उपदेश अर्थरूपसे दिव्यध्वनिके द्वारा श्रीवीर भगवानने दिया और ग्रन्थरूपसे श्री गौतम गणधरने दिया, उसीके अनुसार हम (वीरसेन) भी प्रकाशित करते हैं ।

१ म १ प्रतौ ' णमियूण ' इति पाठः ।

२ ' थेरो विही विरिंचो ' पा. ल. ना. २. थेरस्स के थेरो अह्मा. दे. ना. मा. ५,२२. स्थविरः, ... धाता विधाता. है. को. २, १२५-१२६.

३ विशेषेण ईरयति मोक्षं प्रति प्रेरयति गमयति वा प्राणिन इति वीरः । (अभि. रा. वीर.)

खेत्ताणुगमेण दुविहो णिद्देसो, ओघेण आदेसेण य[1] ॥ १ ॥

किफलो खेत्ताणिओगद्दारस्स अवयारो ? उच्चदे । तं जहा– संताणिओगद्दारादो अत्थित्तेणावगयाणं दव्वाणिओगद्दारे अवगयपमाणाणं चोद्दसजीवसमासाणं खेत्तपमाणावगमफलो[2] । अथवा अणंतो जीवरासी असंखेज्जपएसिए लोगागासे किं सम्मादि, ण सम्मादि त्ति संदेहेण घुलंतस्स सिस्सस्स संदेहविणासणट्ठो वा खेत्ताणिओगद्दारस्स अवयारो । एत्थ खेत्तं णिक्खिविदव्वं । णिक्खेवो त्ति किं ? संशये विपर्यये अनध्यवसाये वा स्थितं तेभ्योऽपसार्य निश्चये क्षिपतीति निक्षेपः[3] । अथवा बाह्यार्थविकल्पो निक्षेपः । अप्रकृतनिराकरणद्वारेण प्रकृतप्ररूपको[4] वा । उक्तं च–

अपगयणिवारणट्ठं पयदस्स परूवणाणिमित्तं च ।
संसयविणासणट्ठं तच्चत्थवधारणट्ठं च ॥ १ ॥

क्षेत्रानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है, ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश ॥ १ ॥

शंका– यहां क्षेत्रानुयोगद्वारके अवतारका क्या फल है ?

समाधान– उक्त शंकाका उत्तर देते हैं । वह इस प्रकार है– सत्प्ररूपणा नामके अनुयोगद्वारसे जिनका अस्तित्व जान लिया है, तथा द्रव्यानुयोगद्वारमें जिनका संख्यारूप प्रमाण जान लिया है, ऐसे चौदह जीवसमासोंके (गुणस्थानोंके) क्षेत्रसंबंधी प्रमाणका जानना ही क्षेत्रानुयोगद्वारके अवतारका फल है । अथवा, असंख्यात प्रदेशवाले लोकाकाशमें अनन्त प्रमाणवाली जीवराशि क्या समाती है, या नहीं समाती है, इस प्रकारके संदेहसे घुलनेवाले शिष्यके संदेहके विनाश करनेके लिए क्षेत्रानुयोगद्वारका अवतार हुआ है ।

इस क्षेत्रानुयोगद्वारके प्रारम्भमें क्षेत्रका निक्षेप करना चाहिये ।

शंका– निक्षेप किसे कहते हैं ?

समाधान– संशय, विपर्यय और अनध्यवसायमें अवस्थित वस्तुको उनसे निकालकर जो निश्चयमें क्षेपण करता है, उसे निक्षेप कहते हैं । अथवा, बाहरी पदार्थके विकल्पको निक्षेप कहते हैं, अथवा, अप्रकृतका निराकरण करके प्रकृतका प्ररूपण करनेवाला निक्षेप है । कहा भी है–

अप्रकृतके निवारण करनेके लिये, प्रकृतके प्ररूपण करनेके लिये और तत्त्वार्थके अवधारण करनेके लिये निक्षेप किया जाता है ॥ १ ॥

१ क्षेत्रमुच्यते, तत् द्विविधम् । सामान्येन विशेषेण च ॥ स. सि. १, ८.

२ मु. १–२ प्रतौ वगमफलो । ता. प्रतौ.

३ उपायो न्यास इष्यते । लघीय. ३, ५२. तदधिगतानां वाच्यतामापन्नानां वाचकेषु भेदोपन्यासो न्यासः । लघीय. ३, ७४. विवृत्तिः ।

४ स किमर्थः ? अप्रकृतनिराकरणाय प्रकृतनिरूपणाय च । स. सि. १, ५. अप्रस्तुतार्थापाकरणात् प्रस्तुतार्थव्याकरणाच्च निक्षेपः फलवान् । लघीय. स्वो. वि. पृ. २६.

सो च एत्थ चउव्विहो णिक्खेवो[1] णाम-ट्ठवणा-दव्व-भावखेत्तभेएण । कधं णिक्खेवस्स चउव्विहत्तं ? दव्वट्ठिय-पज्जवट्ठियणयावलंबिवयणवावारादो । उत्तं च–

णामं ठवणा दवियं ति एस दव्वट्ठियस्स णिक्खेवो ।
भावो दु पज्जवट्ठियपरूवणा एस परमत्थो[2] ॥ २ ॥

जीवाजीवुभयकारणणिरवेक्खो अप्पाणम्हि पयट्ठो[3] खेत्तसद्दो णामखेत्तं । सो च णामणिक्खेवो वयण-वत्तव्वणिच्चज्झवसायमंतरेण ण होदि त्ति, तब्भव-सरिससामण्णणिबंधणो त्ति वा, वाच्य-वाचकशक्तितद्वयात्मकैकशब्दस्य पर्यायार्थिकनये

यह निक्षेप यहां पर नामक्षेत्र, स्थापनाक्षेत्र, द्रव्यक्षेत्र और भावक्षेत्रके भेदसे चार प्रकारका है ।

शंका– निक्षेप चार प्रकारका कैसे है ?

समाधान– द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नयके आश्रय करनेवाले वचनोंके व्यापारकी अपेक्षासे निक्षेप चार प्रकारका होता है । कहा भी है–

नाम, स्थापना और द्रव्य ये तीन निक्षेप द्रव्यार्थिकनयकी प्ररूपणाके विषय हैं और भावनिक्षेप पर्यायार्थिकनयकी प्ररूपणाका विषय है । यही परमार्थ सत्य है ॥ २ ॥

जीव, अजीव और उभयरूप कारणोंकी अपेक्षासे रहित होकर अपने आपमें प्रवृत्त हुआ ' क्षेत्र ' यह शब्द नामक्षेत्रनिक्षेप है । वह नामनिक्षेप, वचन और वाच्यके नित्य अध्यवसाय अर्थात् वाच्य-वाचक-सम्बन्धके सार्वकालिक निश्चयके बिना नहीं होता है । इसलिये अथवा तद्भव-सामान्य-निबन्धनक और सादृश्य-सामान्य-निमित्तक होता है । इसलिये अथवा वाच्य-वाचकरूप दो शक्तियोंवाला एक शब्द पर्यायार्थिक नयमें असंभव है । इसलिये, द्रव्यार्थिक-नयका विषय है, ऐसा कहा जाता है ।

विशेषार्थ– यहां पर नामनिक्षेपको द्रव्यार्थिकनयका विषय बतलानेके लिए तीन हेतु दिये हैं, जिनका अभिप्राय क्रमशः इस प्रकार है । १) नामनिक्षेप वचन और वाच्यके नित्य अध्यवसायके बिना नहीं होता है, इसलिए यह द्रव्यार्थिकनयका विषय है, अर्थात्, इस ' शब्दसे यह पदार्थ जानना चाहिए ' इस प्रकारका संकेत किये जानेसे शब्द अपने वाच्यका वाचक होता है । यदि यह संकेत या वाच्य-वाचकका सम्बन्ध नित्य न माना जाय तो भिन्न देश या भिन्न कालमें उस शब्दसे उसके वाच्यरूप अर्थका ज्ञान नहीं हो सकता है । किन्तु ' देवदत्त ' आदि जो नाम किसी व्यक्तीके बाल्यावस्थामें रखे गये थे, वह आज वृद्धावस्थामें भी समानरूपसे उस व्यक्तीके वाचक देखे जाते हैं, इससे सिद्ध होता है कि वचन और वाच्यके मध्यमें जो सम्बन्ध है, वह नित्य है और नित्यताका द्रव्यके अतिरिक्त अन्यत्र पाया जाना

---

१ म १ प्रतौ ' सो च ' इत्यधिकः पाठः ।
२ स. त. १, ६.
३ प्रतिषु ' पयट्ठो ' इति पाठः ।

असंभवाद्वा दव्वट्ठियणयस्सेसि वुच्चदे। कट्ठ-कंत-सिलादीणि सब्भावासब्भावसरूवाणि बुद्धीए इच्छिदखेत्तेणेयत्तमुवगयाणि ट्ठवणा णाम। सब्भावासब्भावसरूवेण सव्वदव्ववावि त्ति वा, पधाणापधाणदव्वाणमेगत्तणिबंधणेत्ति वा ट्ठवणाणिक्खेवो

असंभव है, इससे सिद्ध होता है कि नामनिक्षेप द्रव्यार्थिकनयका विषय है। नामनिक्षेपको तद्गुणसामान्य और सादृश्यसामान्य-निमित्तक कहा है, उसका अभिप्राय यह है कि, विवक्षित सुवर्णादि वस्तुके पूर्वापर-कालभावी कटक, केयूरादि पर्यायोंमें पर्यायकृत विभिन्नता रहते हुए भी उनमें एक ही सुवर्ण समानरूपसे सदा विद्यमान रहता है, इसलिये इस प्रकारकी समानताको तद्गुणसामान्य कहते हैं। तथा किसी भी एक विवक्षित कालमें विद्यमान, किन्तु विभिन्न प्रकारके सुवर्णोंसे निर्मित कटक, कुण्डल, केयूरादि पर्यायोंमें 'यह भी सुवर्ण है, यह भी सुवर्ण है,' इत्यादि रूपसे सदृशता-बोधक जो समानता है, उसे सादृश्य-सामान्य कहते हैं। इसी प्रकारसे नामनिक्षेपरूप शब्द भी पूर्वापर-कालभावी 'क्षेत्र, क्षेत्र' इत्यादि शब्दोंमें समान प्रतीतिका उत्पादक होनेसे तद्गुणसामान्यका निमित्त है। तथा, विवक्षित किसी भी एक कालमें विभिन्न देशवर्ती मथुरा, काशी इत्यादि क्षेत्रोंमें 'यह भी क्षेत्र है, यह भी क्षेत्र है' इत्यादि रूपसे उच्चारण किये जानेवाला शब्द सदृश-प्रत्ययका उत्पादक होनेसे सादृश्यसामान्यका भी निमित्त होता है और सामान्यको विषय करना ही द्रव्यार्थिकनयका विषय है; इसलिए नामनिक्षेपको द्रव्यार्थिकनयका विषय कहना युक्ति-संगत ही है। ३) नामनिक्षेपको द्रव्यार्थिक-नयका विषय बतानेके लिए तिसरी युक्ति यह दी है कि वाच्य-वाचकरूप दो शक्तियोंवाला एक शब्द पर्यायार्थिकनयमें असंभव है, अर्थात् पर्यायार्थिकनयका विषय नहीं हो सकता। इसका अभिप्राय यह है कि शब्दमें वाच्य-वाचकरूप दो शक्तियां द्रव्यार्थिकनयसे ही घटित होती हैं अर्थात् शब्द अपने वाच्यरूप अर्थका प्रतिपादक होता है, इसलिए तो उसमें इस नयसे वाचकशक्ति बन जाती है और स्वयं भी अपने स्वरूपका विषय होता है, इसलिये वाच्यशक्ति भी उसमें सर्वदा पाई जाती है। इस प्रकार इस नयसे किसी भी विवक्षित समयमें वह उक्त दोनों अर्थात् वाच्य-वाचकरूप शक्तियोंसे युक्त रहेगा और इसी कारणसे वह पर्यायार्थिकनयका विषय नहीं हो सकता, क्योंकि, यद्यपि आगममें शब्दको पुद्गलद्रव्यकी पर्याय कहा है तथापि जब वही शब्द वाच्य-वाचकरूप दो शक्तियोंवाला विवक्षित किया जाता है, तब वह इस अपेक्षासे द्रव्यार्थिकनयका विषय ही घटित होता है।

बुद्धिके द्वारा इच्छित क्षेत्रके साथ एकत्वको प्राप्त हुए, अर्थात् जिनमें बुद्धिके द्वारा इच्छित क्षेत्रकी स्थापना की गई है ऐसे सद्भाव और असद्भाव स्वरूप काष्ठ, दन्त और शिला आदि स्थापनाक्षेत्रनिक्षेप है। यह स्थापनानिक्षेप, तदाकार और अतदाकार स्वरूपसे सर्व द्रव्योंमें व्याप्त होनेके कारण, अथवा प्रधान और अप्रधान द्रव्योंकी एकताका कारण होनेसे द्रव्यार्थिकनयके अन्तर्गत है, ऐसा समझना चाहिये।

अधिकार श्री सुविधिसागर जी महाराज

दव्वट्ठियणयबुल्लीणो[1]। दव्वखेत्तं दुविहं आगमदो णोआगमदो य। तत्थ आगमदो खेत्तपाहुडजाणओ अणुवजुत्तो। कधमेदस्स जीवदवियस्स सुदणाणावरणीयक्खओवसमविसिट्ठस्स दव्व-भावखेत्तागमवदिरित्तस्स आगमदव्वखेत्तववएसो? ण एस दोसो, आधारे आधेयोवयारेण कारणे कज्जुवयारेण लद्धागमववएसखओवसमविसिट्ठजीवदव्वावलंबणेण वा तस्स तदविरोहा। णोआगमदो दव्वखेत्तं तिविहं, जाणुगसरीरं

विशेषार्थ– स्थापनानिक्षेपको द्रव्यार्थिकनयका विषय सिद्ध करनेके लिए दो हेतु दिये गये हैं, जिनका अभिप्राय क्रमशः इस प्रकार है। १) स्थापनानिक्षेप सद्भाव और असद्भावरूपसे सर्व द्रव्योंमें व्याप्त है, इसका अर्थ यह है कि त्रिलोकवर्ती सभी द्रव्य यद्यपि स्वतंत्र एवं निश्चित आकारवाले हैं; तथापि व्यवहारके योग्य एवं विशेष अपेक्षासे विशिष्ट आकारसे परिकल्पित द्रव्यको साकार, सद्भावरूप या तदाकार कहा जाता है और उससे भिन्न आकारवाली वस्तुको असद्भाव या अतदाकार कहा जाता है। काष्ठ या दांत वगैरह यद्यपि अपने स्वतंत्र आकारवाले हैं, तथापि उन्हींको हाथी, घोड़ा आदि किसी एक विवक्षित या निश्चित आकारसे घटित कर दिये जाने पर उन्हें तदाकार कहा जाता है और निश्चित आकारसे घटित नहीं होनेपर भी किसी एक वस्तुमें जो संकेतद्वारा किसी अन्य वस्तुकी परिकल्पना की जाती है, उसे अतदाकार कहते हैं। इस प्रकार यह स्थापनाका व्यवहार तदाकार और अतदाकाररूपसे सर्व द्रव्योंमें पाया जाता है, अर्थात् सभी द्रव्योंमें दोनों प्रकारका स्थापनानिक्षेप किया जा सकता है, जो कि क्षेत्रभेद या कालभेद होनेपर भी बन जाता है। इस कारणसे स्थापनानिक्षेपको द्रव्यार्थिकनयका विषय कहा है। २) प्रधान और अप्रधान द्रव्योंको एकताका कारण कहनेका अभिप्राय यह है कि जिस वस्तुकी स्थापना की जाती है, वह प्रधान द्रव्य, तथा जिस वस्तुमें स्थापना की जाती है, वह अप्रधान द्रव्य कहलाता है। 'यह सिंह है' इस प्रकारसे स्थापनानिक्षेप असली सिंहरूप प्रधानद्रव्य और मिट्टी आदिके खिलौनेमें स्थापित सिंहरूप आकारवाले अप्रधान द्रव्यमें एकताका कारण अर्थात् एकत्वप्रतीतिका निमित्त होता है, इसलिए भी स्थापनानिक्षेप द्रव्यार्थिकनयका विषय है।

आगमद्रव्यक्षेत्र और नोआगमद्रव्यक्षेत्रके भेदसे द्रव्यक्षेत्र दो प्रकारका है। उनमेंसे क्षेत्रविषयक शास्त्रका ज्ञाता, किन्तु वर्तमानमें उसके उपयोगसे रहित जीव आगमद्रव्यक्षेत्र निक्षेप है।

शंका– श्रुतज्ञानावरणीय कर्मके क्षयोपशमसे विशिष्ट, तथा द्रव्य और भावरूप क्षेत्रागमसे रहित इस जीवद्रव्यके आगमद्रव्यक्षेत्ररूप संज्ञा कैसे प्राप्त हो सकती है?

समाधान– यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, आधाररूप आत्मामें आधेयभूत क्षयोपशमस्वरूप आगमके उपचारसे; अथवा, कारणरूप आत्मामें कार्यरूप क्षयोपशमके उपचारसे,

---

१ म २ प्रतौ 'णवमल्लीणो' इति पाठः।

भवियं तव्वदिरित्तं चेदि। तत्थ जाणुगसरीरं तिविहं, भवियं वट्टमाणं समुज्झावमिदि। समुज्झावं पि तिविहं चुद चइद चत्तदेहमिदि। भवदु पुव्विल्लस्स दव्वखेत्तागमत्तादो खेत्तववएसो, एदस्स पुण सरीरस्स अणागमस्स खेत्तववएसो ण घडदि त्ति ? एत्थ परिहारो वुच्चदे। तं जधा– क्षियत्यक्षैषीत्क्षेष्यत्यस्मिन् द्रव्यागमो भावागमो वेति त्रिविधमपि शरीरं क्षेत्रम्, आधारे आधेयोपचाराद्वा। तत्थ भवियं खेत्तपाहुडजाणगभावी जीवो णिद्दिस्सदे। कधं जीवस्स खेत्तागमखओवसमरहिदस्सादो अणागमस्स खेत्तववएसो ? न, क्षेष्यत्यस्मिन् भावक्षेत्रागम इति जीवद्रव्यस्य पुरैव क्षेत्रत्वसिद्धेः। जाणुगसरीरं-भवियवदिरित्तदव्वखेत्तं दुविहं, कम्मदव्वखेत्तं णोकम्मदव्वखेत्तं चेदि। तत्थ कम्मदव्वक्खेत्तं णाणावरणादिअट्ठविहकम्मदव्वं। कधं कम्मस्स खेत्तववएसो ?

अथवा प्राप्त हुई है आगमसंज्ञा जिसको ऐसे क्षयोपशमसे युक्त जीवद्रव्यके अवलम्बनसे जीवके आगमद्रव्यक्षेत्ररूप संज्ञाके होनेमें कोई विरोध नहीं आता है।

ज्ञायकशरीर, भव्य और तद्व्यतिरिक्तके भेदसे नोआगमद्रव्यक्षेत्र तीन प्रकारका है। उनमेंसे ज्ञायकशरीर तीन प्रकारका है; भावी ज्ञायकशरीर, वर्तमान ज्ञायकशरीर और अतीत ज्ञायकशरीर। इनमेंसे अतीत ज्ञायकशरीर भी च्युत, च्यावित और त्यक्तके भेदसे तीन प्रकारका है।

शंका– द्रव्यक्षेत्रागमके निमित्तसे पूर्वके शरीरको क्षेत्रसंज्ञा भले ही रही आवे, किन्तु इस अनागमशरीरके क्षेत्रसंज्ञा घटित नहीं होती है ?

समाधान– उक्त शंकाका यहां परिहार कहते हैं। वह इस प्रकार है– जिसमें द्रव्यरूप आगम अथवा भावरूप आगम वर्तमानकालमें निवास करता है, भूतकालमें निवास करता था और आगामी कालमें निवास करेगा; इस अपेक्षा तीनों ही प्रकारका शरीर क्षेत्र कहलाता है। अथवा, आधाररूप शरीरमें आधेयरूप क्षेत्रागमका उपचार करनेसे भी क्षेत्रसंज्ञा बन जाती है।

नोआगम द्रव्यक्षेत्रके तीन भेदोंमेंसे जो आगामी कालमें क्षेत्रविषयक शास्त्रको जानेगा, ऐसे जीवको भावी नोआगमद्रव्यक्षेत्र कहते हैं।

शंका– जो जीव क्षेत्रागमरूप क्षयोपशमसे रहित होनेके कारण अनागम है, उस जीवके क्षेत्रसंज्ञा कैसे बन सकती है ?

समाधान– नहीं, क्योंकि, 'भावक्षेत्ररूप आगम जिसमें निवास करेगा' इस प्रकारकी निरुक्तिके बलसे जीवद्रव्यके क्षेत्रागमरूप क्षयोपशम होनेके पूर्व ही क्षेत्रपना सिद्ध है।

ज्ञायकशरीर और भावीसे भिन्न जो तद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यक्षेत्र है, वह कर्मद्रव्यक्षेत्र और नोकर्मद्रव्यक्षेत्रके भेदसे दो प्रकार है। उनमेंसे ज्ञानावरणादि आठ प्रकारके कर्मद्रव्यको कर्मद्रव्यक्षेत्र कहते हैं।

न, क्षियन्ति[1] निवसन्त्यस्मिन् जीवा इति कर्मणां क्षेत्रत्वसिद्धेः। (जं) णोकम्मदव्वखेत्तं तं दुविहं, ओवयारियं पारमत्थियं चेदि। तत्थ ओवयारियं णोकम्मदव्वखेत्तं लोगपसिद्धं सालिखेत्तं वीहिखेत्तमेवमादि। पारमत्थियं णोकम्मदव्वखेत्तं आगासदव्वं। उत्तं च—

खेत्तं खलु आगासं तव्विदिरित्तं च होदि णोखेत्तं।
जीवा य पोग्गला वि य धम्माधम्मत्थिया कालो ॥ ३ ॥
आगासं सपदेसं तु उड्ढाधो तिरिओ वि य।
खेत्तलोगं वियाणाहि अणंत जिण-देसिदं[2] ॥ ४ ॥

एसो वि णिक्खेवो दव्वट्ठियस्स, दव्वेण विणा एदस्स संभवाभावादो। जं तं भावखेत्तं तं दुविहं, आगमदो णोआगमदो भावखेत्तं चेदि। आगमदो भावखेत्तं खेत्तपाहुडजाणुगो उवजुत्तो। णोआगमदो भावखेत्तं आगमेण विणा अत्थोवजुत्तो

शंका— कर्मद्रव्यको क्षेत्रसंज्ञा कैसे प्राप्त होती है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, जिसमें जीव 'क्षियन्ति' अर्थात् निवास करते हैं, इस प्रकारकी निरुक्तिके बलसे कर्मोंके क्षेत्रपना सिद्ध है।

तद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यका दूसरा भेद जो नोकर्मद्रव्यक्षेत्र है, वह औपचारिक और पारमार्थिकके भेदसे दो प्रकारका है। उनमेंसे लोकमें प्रसिद्ध शालिक्षेत्र, व्रीहि (धान्य) क्षेत्र इत्यादि औपचारिक नोकर्मतद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यक्षेत्र कहलाता है। आकाशद्रव्य पारमार्थिक नोकर्मतद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यक्षेत्र है। कहा भी है—

आकाशद्रव्य नियमसे तद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यक्षेत्र है और आकाशद्रव्यके अतिरिक्त जीव, पुद्गल, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय तथा कालद्रव्य नोक्षेत्र कहलाते हैं ॥ ३ ॥

आकाश सप्रदेशी है और वह ऊपर, नीचे और तिरछे सर्वत्र व्याप्त है। उसे ही क्षेत्रलोक जानना चाहिए। उसे जिन भगवानने अनन्त कहा है ॥ ४ ॥

यह आगम और नोआगमके भेदरूप द्रव्यक्षेत्रनिक्षेप भी द्रव्यार्थिकनयका विषय है, क्योंकि, द्रव्य अर्थात् सामान्यके विना यह निक्षेप संभव नहीं है।

जो भावक्षेत्रनिक्षेप है, वह आगमभावक्षेत्र और नोआगमभावक्षेत्रके भेदसे दो प्रकारका है। क्षेत्रविषयक प्राभृतके ज्ञाता और वर्तमानकालमें उसमें उपयुक्त जीवको आगमभावक्षेत्रनिक्षेप कहते हैं। जो आगमसे अर्थात् क्षेत्रविषयक शास्त्रके विना अन्य पदार्थमें उपयुक्त हो उस जीवको; अथवा, औदयिक आदि पांच प्रकारके भावोंको नोआगमभावक्षेत्र-निक्षेप कहते हैं।

१ क्षि निवासगत्योः।

२ आगासस्स पएसा उड्ढं च अहे य तिरियलोए य। आणाहि खित्तलोगं अणंत जिणदेसिअं सम्मं ॥ १३७ ॥ (अभि. रा. लोक.)

ओदइयादिपंचविधभावो वा[1]। एवेसु खेत्तेसु केण खेत्तेण पयदं? णोआगमदो दव्वखेत्तेण पयदं। णोआगमदो दव्वखेत्तं णाम किं? आगासं गगणं देवपथं गोज्झगाचरिदं अवगाहणलक्खणं आधेयं वियापगमाधारो भूमि त्ति एयट्ठो। कस्स खेत्तं? णत्थि सामिसंबंधो। केण खेत्तं? पारिणामिएण भावेण। कम्हि खेत्तं? अप्पाणम्हि चेव। कधमेगत्थ आधाराधेयभावो? ण सारे स्थंभ इदि एगत्थ वि आधाराधेयभावदंसणादो। केवचिरं खेत्तं? अणादियमपज्जवसिदं। कदिविधं खेत्तं? दव्वट्ठियणयं च पडुच्च एगविधं। अधवा पओजणमभिसमिच्च दुविहं,

शंका– ऊपर बतलाये गये इन क्षेत्रोंमेंसे यहां पर कौनसे क्षेत्रसे प्रयोजन है?

समाधान– यहां पर नोआगमद्रव्यक्षेत्रसे प्रयोजन है।

शंका– नोआगमद्रव्यक्षेत्र किसे कहते हैं?

समाधान– आकाश, गगन, देवपथ, गुह्यकाचरित (यक्षोंके विचरणका स्थान) अवगाहनलक्षण, आधेय, व्यापक, आधार और भूमि, ये सब नोआगमद्रव्यक्षेत्रके एकार्थक नाम हैं।

विशेषार्थ– अब धवलाकार निर्देश, स्वामित्व, साधन, अधिकरण, स्थिति और विधान इन प्रसिद्ध छह अनुयोगद्वारोंसे क्रमशः क्षेत्रका विचार करते हैं। इनमेंसे पूर्वमें जो निक्षेप या एकार्थ द्वारा क्षेत्रका विचार किया गया है, वह सब निर्देशसे अन्तर्गत समझना चाहिए।

शंका– क्षेत्र किसका है, अर्थात् इसका स्वामी कौन है?

समाधान– यह भंग शून्य है, अर्थात् स्वामी कोई नहीं है।

शंका– किससे क्षेत्र होता है, अर्थात् क्षेत्रका साधन या करण क्या है?

समाधान– पारिणामिक भावसे क्षेत्र होता है, अर्थात् क्षेत्रकी उत्पत्तिमें कोई दूसरा निमित्त न होकर वह स्वभावसे है।

शंका– किसमें क्षेत्र रहता है, अर्थात् इसका अधिकरण क्या है?

समाधान– अपने आपमें ही यह रहता है, अर्थात् क्षेत्रका अधिकरण क्षेत्र ही है।

शंका– एक ही आकाशमें आधार-आधेय भाव कैसे संभव है?

समाधान– नहीं; क्योंकि, 'सारमें स्तम्भ है' इस प्रकार एक वस्तुमें भी आधार आधेयभाव देखा जाता है।

शंका– कितने कालपर्यन्त क्षेत्र रहता है, अर्थात् क्षेत्रकी स्थिति कितनी है?

समाधान– क्षेत्र अनादि और अनन्त है।

---

१ ओदइए ओवसमिए खइए अ तहा खओवसमिए अ। परिणामि सण्णिवाए अ छव्विहो भावलोगो उ॥ २००॥ (अभि. रा. लोक.)

लोगागासमलोगागासं चेदि । लोक्यन्ते उपलभ्यन्ते यस्मिन् जीवादिद्रव्याणि स लोकः । तद्विपरीतोऽलोकः । अथवा देसभेएण तिविहो, मंदरचूलियादो उवरिमुडुलोगो, मंदरमूलादो हेट्ठा अधोलोगो, मंदरपरिच्छिण्णो मज्झलोगो[1] त्ति । जधा दव्वाणि ट्ठिदाणि तधावबोधो अणुगमो । खेत्तस्स अणुगमो खेत्ताणुगमो, तेण खेत्ताणुगमेण सरीरस्सेव दुविहो णिद्देसो । णिद्देसो पदुप्पायणं कहणमिदि एयट्ठो । ओघेण द्रव्यार्थिकनयावलम्बनेन, आदेसेण पर्यायार्थिकनयावलम्बनेन चेदि द्विविधो निर्देशः । किमट्ठमुभयथा णिद्देसो कीरदे? न, उभयनयावस्थितसत्त्वानुग्रहार्थत्वात् । ण य तइओ अत्थि, णयद्दयसंट्ठियजीवव्वदिरित्तसोदाराणं असंभवादो ।

शंका– क्षेत्र कितने प्रकारका है ?

समाधान– द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षा क्षेत्र एक प्रकारका है । अथवा, प्रयोजनके आश्रयसे क्षेत्र दो प्रकारका है, लोकाकाश और अलोकाकाश । जिसमें जीवादि द्रव्य अवलोकन किये जाते हैं, पाये जाते हैं, उसे लोक कहते हैं । इसके विपरीत जहां जीवादि द्रव्य नहीं देखे जाते हैं, उसे अलोक कहते हैं । अथवा देशके भेदसे क्षेत्र तीन प्रकारका है– मंदरावल (सुमेरुपर्वत) की चूलिकासे ऊपरका क्षेत्र ऊर्ध्वलोक है । मंदरावलके मूलसे नीचेका क्षेत्र अधोलोक है । मंदराचलके परिच्छिन्न [illegible] क्षेत्र मध्यलोक है ।

जिस प्रकारसे द्रव्य अवस्थित हैं, उस प्रकारसे उनको जानना अनुगम कहलाता है । क्षेत्रके अनुगमको क्षेत्रानुगम कहते हैं । उससे अर्थात् क्षेत्रानुगमसे शरीरके (शरीर सामान्य और मुखादि अंगोपांग विशेष) निर्देशके समान दो प्रकारका निर्देश किया गया है । निर्देश, प्रतिपादन और कथन, ये सब एकार्थक हैं । ओघसे अर्थात् द्रव्यार्थिकनयके अवलम्बनसे और आदेशसे अर्थात् पर्यायार्थिकनयके अवलम्बनसे निर्देश दो प्रकारका है ।

शंका– दोनों नयोंकी अपेक्षासे निर्देश किसलिये किया जाता है ?

समाधान– नहीं, क्योंकि, द्रव्यार्थिकनयमें अवस्थित शिष्योंके अनुग्रहके लिये ओघनिर्देश किया जाता है । तथा पर्यायार्थिकनयमें अवस्थित शिष्योंके अनुग्रहके लिये आदेशनिर्देश किया जाता है ।

इन दोनों निर्देशोंके अतिरिक्त और कोई तीसरा निर्देश है नहीं, क्योंकि, दोनों प्रकारके नयोंमें अवस्थित जीवोंके अतिरिक्त अन्य प्रकारके श्रोताओंका अभाव है, अतएव दो प्रकारसे ही निर्देश किया जाता है ।

१ मेरुरयं त्रयाणां लोकानां मानदंडः । अस्याधस्तलादधोलोकः । चूलिकामूलादूर्ध्वमूर्ध्वलोकः । मध्यमप्रमाणस्तिर्यग्विस्तीर्णस्तिर्यग्लोकः । स. रा. वा. ३, १०. इह च बहुसमभूमिभागे रत्नप्रभाभागे मेरुमध्ये अष्टप्रदेशो रुचको भवति, तस्योपरितनप्रस्तरस्योपरिष्टाच्च योजनशतानि यावज्ज्योतिश्चक्रस्योपरितलस्तावत् तिर्यग्लोकस्ततः परत ऊर्ध्वभागस्थितत्वात् ऊर्ध्वलोको देशोनसप्तरज्जुप्रमाणो रुचकस्याधस्तनप्रस्तरस्याधो नव योजनशतानि यावत्सातिरेकसप्तरज्जुप्रमाणः, अधोलोकोर्ध्वलोकयोर्मध्ये अष्टादशयोजनशतप्रमाणस्तिर्यग्भागस्थितत्वात् तिर्यग्लोक इति । स्थानां. ३, २. टीका.

'जहा उद्देसो तहा णिद्देसो' त्ति कट्टु ओघणिद्देसट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि–

ओघेण मिच्छाइट्ठी केवडि खेत्ते[1], सव्वलोगे[2] ॥ २ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो वुच्चदे । तं जहा– ओघणिद्देसो आदेसवुदासट्ठो । मिच्छाइट्ठिणिद्देसो सेसगुणट्ठाणपडिसेहट्ठो । केवडि खेत्ते इदि पुच्छा सुत्तस्स पमाणत्तप्पदुप्पायणफला । सव्वलोगे इदि खेत्तपमाणणिद्देसो । एत्थ लोगे त्ति वुत्ते सत्तरज्जूणं[3] घणो घेत्तव्वो[4] । कुदो ? एत्थ खेत्तपमाणाधियारे–

पल्लो सायर सूई पदरो य घणंगुलो य जगसेढी ।
लोयपदरो य लोगो अट्ठ दु माणा मुणेयव्वो[5] ॥ ५ ॥

'जिस प्रकारसे उद्देश किया जाता है, उसी प्रकारसे निर्देश होता है' इस न्यायके अनुसार ओघनिर्देशके लिये उत्तर सूत्र कहते हैं–

ओघनिर्देशकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टि जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सर्व लोकमें रहते हैं ॥ २ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं । वह इस प्रकार है– सूत्रमें 'ओघ' इस पदका निर्देश, आदेश प्ररूपणाके निराकरणके लिए आया है । 'मिथ्यादृष्टि' इस पदका निर्देश, शेष गुणस्थानोंके प्रतिषेधके लिए आया है । 'कितने क्षेत्रमें रहते हैं' इस पृच्छाका फल सूत्रकी प्रमाणता प्रतिपादन करना है । 'सर्व लोकमें' इस पदसे क्षेत्रके प्रमाणका निर्देश किया है । यहां सूत्रमें 'लोक' ऐसा सामान्य पद कहने पर सात राजुओंका घनात्मक लोक ग्रहण करना चाहिए । क्योंकि, यहां क्षेत्रप्रमाणाधिकारमें–

पल्योपम, सागरोपम, सूच्यंगुल, प्रतरांगुल, घनांगुल, जगश्रेणी, लोकप्रतर और लोक ये आठ मान जानना चाहिए ॥ ५ ॥

---

१ विवक्षित...जीवैर्वर्तमानकाले विविक्षितपदविशिष्टत्वेनावष्टब्धाकाशः क्षेत्रं । गो. जी. जी. प्र. टी. ५४३.

२ सामान्येन तावत् मिथ्यादृष्टीनां सर्वलोकः । स. सि. १, ८. मिच्छा उ सव्वलोए ॥ पञ्चसं. २, २६.

३ जगसेढीए सत्तमभागो रज्जू पमासंते । ति. प. १, १३२.

४ जगसेढिघणपमाणो लोयायासो सपंचदव्वट्ठिदो । ति. प. १, ९१. चउदस रज्जू लोओ बुद्धिकओ होइ सत्तरज्जुघणो । कर्म. ५ कर्म. ९७.

५ ति. प. १, ९३. त्रि. सा. ९२. पल्योपमस्य सागरोपमस्य च स्वरूपं ति. प. १, ९३–१३०; स. सि. ३, ३८; त. रा. वा. ३०, ३८. अद्धापल्यस्यार्धच्छेदेन शलाका विरलीकृत्य प्रत्येकमद्धापल्यप्रदानं कृत्वा अन्योन्यगुणिते यावत्तच्छेदास्तावद्भिराकाशप्रदेशैर्मुक्तावली कृता सूच्यंगुलमित्युच्यते । तदेवापरेण सूच्यंगुलेन गुणितं प्रतरांगुलं । तत्प्रतरांगुलमपरेण सूच्यंगुलेनाभ्यस्तं

इदि एत्थ वुत्तलोगग्गहणादो। जदि एसो लोगो घेप्पदि, पंचदव्वाहारआगासस्स गहणं ण पावदे। कुदो ? तम्हि सत्तरज्जुघणपमाणमेत्तखेत्तस्सा[1]भावा। भावे वा –

हेट्ठा मज्झे उवरिं वेत्तासण-झल्लरी-मुदंगणिहो।
मज्झिमवित्थारेण य चोद्दसगुणमायदो लोगो[2] ॥ ६ ॥
लोगो अकट्टिमो खलु अणाइणिहणो सहावणिव्वत्तो।
जीवाजीवेहि फुडो णिच्चो तलरुक्खसंठाणो[3] ॥ ७ ॥
लोयस्स य विक्खंभो चउप्पयारो य होइ णायव्वो।
सत्तेक्कगो य पंचेक्कगो य रज्जू मुणेयव्वा[4] ॥ ८ ॥

इस गाथामें जो लोकका ग्रहण किया गया है उससे जाना जाता है कि यहां पर सात राजुके घनप्रमाण लोकका ग्रहण अभीष्ट है।

विशेषार्थ– एक प्रदेशवाली सात राजु लम्बी आकाश-प्रदेशपंक्तिको जगत्श्रेणी कहते हैं। तथा जगत्श्रेणीके वर्गको जगत्प्रतर और घनको घनलोक कहते हैं। गाथामें इसी क्रमसे जगत्श्रेणी, जगत्प्रतर और लोक पदका ग्रहण हुआ है। इससे ज्ञात होता है कि यहां पर लोकसे घनलोकका अभिप्राय है।

शंका– यदि यहांपर इसी घनलोकका ग्रहण किया जाता है, तो पांच द्रव्योंके आधारभूत आकाशका ग्रहण नहीं प्राप्त होता है; क्योंकि, उस लोकमें सात राजुके घनप्रमाणवाले क्षेत्रका अभाव है और यदि सद्भाव माना जावे तो–

नीचे वेत्रासन (बेंतके मूंढा) के समान, मध्यमें झल्लरीके समान और ऊपर मृदंगके समान आकारवाला; तथा मध्यमविस्तारसे अर्थात् एक राजुसे चौदह गुणा आयत (लम्बा) लोक है ॥ ६ ॥

यह लोक निश्चयतः अकृत्रिम है, अनादि-निधन है, स्वभावसे निर्मित है, जीव और अजीव द्रव्योंसे व्याप्त है, नित्य है, तथा तालवृक्षके आकारवाला है ॥ ७ ॥

लोकका विष्कम्भ (विस्तार) चार प्रकारका है ऐसा जानना चाहिए। जिसमेंसे अधोलोकके अन्तमें सात राजु, मध्यमलोकके पास एक राजु, ब्रह्मलोकके पास पांच राजु और ऊर्ध्वलोकके अन्तमें एक राजु विस्तार जानना चाहिये ॥ ८ ॥

घनांगुलं। असंख्येयानां वर्षाणां यावंतः समयास्तावत्खंडमद्धापल्यं कृतं, ततोऽसंख्येयान् खंडानपनीयासंख्येयमेकं भागं बुद्ध्या विरलीकृत्य एकैकस्मिन् घनांगुलं दत्त्वा परस्परेण गुणिता जगच्छ्रेणी। सा अपरया जगच्छ्रेण्या-भ्यस्ता प्रतरलोकः। स एवापरया जगच्छ्रेण्या संवर्गितो घनलोकः। त. रा. वा. ३, ३८.

१ प्रतिषु– खेत्तस्समावा इति पाठः।

२ जंबू. प. ११, १०६.

३ त्रि. सा. ४ तत्र चतुर्थचरणे ' सव्वागासावयवो णिच्चो ' इति पाठः।

४ जंबू. प. ११, १०७

एदाओ सुत्तगाहाओ अप्पमाणत्तं पावेंति त्ति ?

एत्थ परिहारो वुच्चदे। एत्थ लोगे त्ति वुत्ते पंचदव्वाहारआगासस्सेव गहणं, ण अण्णस्स। 'लोगपूरणगदो केवली केवडि खेत्ते, सव्वलोगे' इदि वयणादो। जदि लोगो सत्तरज्जुघणपमाणो ण होदि तो 'लोगपूरणगदो केवली लोगस्स संखेज्जदि भागे' इदि भणेज्ज। ण च मुदिंगायारलोगस्स पमाणं पेक्खिऊण संखेज्जदिभागत्तमसिद्धं, गणिज्जमाणे तहोवलंभादो। तं जहा– मुदिंगायारलोयस्स सूइं चोद्दसरज्जुआयदं एगरज्जुविक्खंभं वट्टं लोगादो अवणिय पुध ट्ठवेदव्वं। एवं ठविय तस्स फलाणयणविहाणं भणिस्सामो। तं जहा– एदस्स मुहतिरियवट्टस्स एगागासपदेसबाहल्लस्स परिठओ एत्तिओ होदि $\frac{३}{१०}$। इममद्धेऊण विक्खंभद्धेण गुणिदे एत्तियं होदि $\frac{३}{४०}$। अधोलोग-भागमिच्छामो त्ति सत्तहि रज्जूहि गुणिदे खायफलमेत्तियं होदि $५\frac{३}{४०}$। पुणो णिस्सूईखेत्तं चोद्दसरज्जुआयदं दो खंडाणि करिय तत्थ हेट्ठिमखंड घेत्तूण उड्ढं फालिम[1] पसारिदे

– ये पूर्वमें कही गई सूत्रगाथाएं अप्रमाणताको प्राप्त होती हैं ?

समाधान– अब यहां उक्त शंकाका परिहार करते हैं। इस प्रकृत सूत्रमें 'लोक' ऐसा पद कहने पर पांच द्रव्योंके आधारभूत आकाशका ही ग्रहण किया है, अन्यका नहीं, क्योंकि, 'लोकपूरणसमुद्घातगत केवली कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सर्व लोकमें रहते हैं' इससे उक्त बात सिद्ध होती है। यदि लोक सात राजुके घनप्रमाण नहीं है, तो 'लोकपूरणसमुद्घातगत केवली लोकके संख्यातवें भागमें रहते हैं' इस प्रकार कहना चाहिये और मृदंगाकार लोकके प्रमाणको देखकर अर्थात् उसकी अपेक्षासे, लोकपूरण समुद्घातगत केवलीका घनलोकके संख्यातवें भागमें रहना असिद्ध भी नहीं है, क्योंकि, गणना करने पर मृदंगाकार लोकका प्रमाण घनलोकके संख्यातवें भाग पाया जाता है। वह इस प्रकार है– चौदह राजुप्रमाण आयत, एक राजुप्रमाण विस्तृत और गोल आकारवाली, ऐसी मृदंगाकार लोककी सूचीको लोकके मध्यसे निकाल करके पृथक् स्थापित करना चाहिये। इस प्रकारसे स्थापित करके अब उसके फल अर्थात् घनफलको निकालनेका विधान कहते हैं। वह इस प्रकार है– मुखमें तिर्यक्रूपसे गोल और आकाशके एक प्रदेशप्रमाण बाहल्यवाली इस पूर्वोक्त सूचीकी परिधि $\frac{३}{१०}$ इतनी होती है। (देखो आगे गाथा नं. १४) इस परिधिके प्रमाणको आधा करके, पुनः उसे एक राजुविष्कम्भके आधेसे गुणा करने पर, उसके क्षेत्रफलका प्रमाण $\frac{३}{४०}$ इतना होता है। अब हमें लोकके अधोभागका घनफल लाना इष्ट है, इसलिये उस क्षेत्रफलको सात राजुओंसे गुणा करने पर सात राजुप्रमाण लम्बी और एक राजुप्रमाण चौडी उक्त गोलसूचीका घनफल $५\frac{३}{४०}$ इतना होता है। फिर सूचीरहित चौदह राजु लम्बे लोकरूप क्षेत्रके मध्यलोकके पाससे दो खंड करके उनमेंसे नीचेके अर्थात् अधोलोकसम्बन्धी खंडको ग्रहण कर उसे

१ मु प्रतौ पातिय इति पाठः।

सुप्पखेत्तं होऊण चेट्ठदि। तस्स मुहवित्थारो[1] $\frac{३}{७}$। तलवित्थारो २२$\frac{२}{७}$। एत्थ मुहवित्थारेण सत्तरज्जुआयामेण छिदिदे दो तिकोणखेत्ताणि एयमायदचउरस्सखेत्तं च होइ। तत्थ ताव मज्झिमखेत्तफलमाणिज्जदे। एदस्स उस्सेहो सत्त रज्जुओ। विक्खंभो पुण एसिओ होदि $\frac{३}{७}$। मुहम्मि एगागासपदेसबाहल्लं, तलम्मि तिण्णि रज्जुबाहल्लो त्ति सत्तहि रज्जूहि मुहवित्थारं गुणिय तलबाहल्लद्धेण गुणिदे मज्झिमखेत्तफलमेत्तियं होइ ३४$\frac{२}{७}$। संपहि सेसदोखेत्ताणि सत्तरज्जुअवलंबयाणि तेरसुत्तरसदेण एगरज्जुं खंडिय तत्थ अट्ठेतालीसखंडब्भहिय-णवरज्जुभुजाणि भुजकोडिपाओग्गकण्णाणि

(एक ओरसे) ऊपरसे (लगाकर नीचेतक) काटकर पसारने पर सूर्प (सूपा) के आकारवाला क्षेत्र हो जाता है।

विशेषार्थ– यहांपर शंकाकार, मृदंगाकार लोकको दृष्टिमें रखकर यह कथन कर रहा है, उसका भाव यह है कि कितने ही आचार्य अधोलोकका आकार चारों ओरसे गोल ऐसे वेत्रासनके समान मानते हैं। जो नीचे गोल आकारवाला तथा सात राजु चौड़ा है और ऊपर क्रमशः घटता हुआ मध्यलोकमें गोल आकारवाला तथा एक राजु चौड़ा है। इसके ठीक मध्यमें ऊपरसे नीचेतक स्थित सात राजु लम्बी एक राजु चौड़ी गोल आकारवाली त्रसनाली है। उसको यदि वेत्रासनाकार अधोलोकके बीचमेंसे निकालकर बचे हुए अधोलोकको एक ओरसे ऊपरसे नीचेतक काटकर पसार दिया जाय, तो उसका आकार ठीक सूपाके समान हो जाता है।

इस सूर्पाकार क्षेत्रके मुखका विस्तार $\frac{३}{७}$ इतना है और तलका विस्तार २२$\frac{२}{७}$ राजुप्रमाण है। इसे मुखविस्तारसे (अर्थात् मुखविस्तारके अन्तसे लगाकर दोनों ओर) सात राजु लम्बा नीचेकी ओर छेदनेपर दो त्रिकोण क्षेत्र और एक आयतचतुरस्रक्षेत्र, इस प्रकार तीन क्षेत्र हो जाते हैं।

उक्त प्रकारसे बने हुए इन तीन क्षेत्रोंमेंसे पहले आयतचतुरस्र आकारवाले मध्यवर्ती क्षेत्रका घनफल निकालते हैं। इस आयतचतुरस्र क्षेत्रका उत्सेध (ऊंचाई) सात राजु है और विष्कम्भ $\frac{३}{७}$ इतने राजु है। मुखमें एक प्रदेशप्रमाण बाहल्य (मोटाई) है और तलभागमें तीन राजुप्रमाण बाहल्य है, इसलिए उत्सेधका प्रमाण जो सात राजु है उससे मुखके प्रमाणको गुणा करके तलभागका बाहल्य जो तीन राजु है उसके आधेसे अर्थात् डेढ़ राजुसे गुणा करनेपर मध्यम क्षेत्रका अर्थात् आयतचतुरस्र क्षेत्र घनफल $\frac{३}{७} \times \frac{७}{१} \times \frac{३}{२} = ३४\frac{२}{७}$ इतना होता है।

अब शेष जो दो त्रिकोण क्षेत्र हैं वे सात राजु लम्बे हैं और एकसौ तेरहसे एक राजुको खंडित कर उनमेंसे अड़तालीस खंड अधिक भी राजु भुजावाले हैं अर्थात् उनका

१ मु. प्रतौ 'एसिओ होदि' इति पाठः।

कण्णभूमीए[1] आलिहिय दोसु वि दिसासु मज्झम्मि फालिदे तिण्णि तिण्णि खेत्ताणि होंति। तत्थ दो खेत्ताणि अद्धट्ठरज्जुस्सेहाणि छव्वीसुत्तर-वेसदेहि एगरज्जुं खंडिय तत्थ एगट्ठिखंडब्भहियखंडसदेण सादिरेयचत्तारिरज्जुविक्खंभाणि दक्खिण-वामहेट्ठिमकोणे तिण्णि रज्जुबाहल्लाणि, दक्खिण-वामकोणेसु जहाकमेण उवरिम-हेट्ठिमेसु विवड्ढरज्जुबाहल्लाणि, अवसेसदोकोणेसु आगासपवेसबाहल्लाणि, अण्णत्थ कम-वड्ढिगद-बाहल्लाणि घेत्तूण तत्थ एगखेत्तस्सुवरि विदियखेत्ते विवज्जासं काऊण ट्ठविदे सव्वत्थ तिण्णि रज्जुबाहल्लखेत्तं होइ। एदस्स वित्थारमुस्सेहेण गुणिय वेहेण गुणिदे खायफलमेत्तियं होइ ४१२½½। अवसेसचत्तारि खेत्ताणि अद्धट्ठरज्जुस्सेहाणि

अधोविस्तार ९½½ है। इसी विस्तारको यहां त्रिकोण क्षेत्रकी अपेक्षासे 'भुजा' कहा है। तथा उन दोनों त्रिकोण क्षेत्रोंका भुजा और कोटिके यथायोग्य संभवित कर्णका प्रमाण है। इन दोनों त्रिकोण क्षेत्रोंको कर्णभूमीसे लेकर दोनों ही दिशाओंमें बीचमेंसे काटनेपर तीन तीन क्षेत्र हो जाते हैं।

विशेषार्थ– यहां पर त्रिकोण क्षेत्रके भुजा और कोटिका प्रमाण तो दिया है, पर कर्णका प्रमाण नहीं दिया है। उसके निकालनेकी प्रक्रिया यह है कि भुजाके प्रमाणका वर्ग और कोटिके प्रमाणका वर्ग जितना हो, उन्हें जोड़कर उसका वर्गमूल निकालना चाहिये, जो वर्गमूलका प्रमाण आवे, वही कर्णरेखाका प्रमाण समझना चाहिए[2]।

उक्त प्रकारसे उत्पन्न हुए इन तीन तीन क्षेत्रोंमें एक एक आयतचतुरस्रक्षेत्र और दो दो त्रिकोणक्षेत्र जानना चाहिये। उनमें सात राजु उत्सेधवाले आयतचतुरस्र क्षेत्रके दायें बायें दोनों ओर जो दो आयतचतुरस्रक्षेत्र हैं, उनमें प्रत्येकका साढ़े तीन राजु उत्सेध है। तथा दो सौ छब्बीससे एक राजुको खंडित कर उनमें एकसौ इकसठ खंडोंसे अधिक चार राजु अर्थात् ४१६½½ प्रमाण विष्कम्भ है। तथा दक्षिण और वाम (दायें बायें) अधस्तन कोनेपर तीन राजु बाहल्य है। अन्य दक्षिण वामकोणोंपर यथाक्रमसे ऊपर और नीचे डेढ़ राजु बाहल्य है। अवशिष्ट दो कोनोंपर एक आकाशप्रवेशप्रमाण बाहल्य है और अन्यत्र अर्थात् बीचमें क्रमसे वृद्धिको प्राप्त बाहल्य है। इस प्रकारके इन दोनों आयतचतुरस्र क्षेत्रोंको लेकर (उठाकर) उनमें एक क्षेत्रके ऊपर दूसरे क्षेत्रको विपर्यास अर्थात् उलटा करके स्थापित करने पर सर्वत्र तीन राजु बाहल्यवाला क्षेत्र हो जाता है। इसके विस्तारको उत्सेधसे गुणाकर पुनः वेध (मोटाई) से गुणा करनेपर घनफल ४१६½½ × ३½ × ३ = ४१६½½ इतना हो जाता है। अब अवशिष्ट जो चार त्रिकोण क्षेत्र हैं, वे साढे तीन राजु उत्सेधवाले हैं, तथा दोसौ छब्बीससे एक राजुको खंडित कर उनमेंसे एकसौ इकसठ खंडोंसे अधिक चार राजु अर्थात्

१ ता. १–२ प्रत्योः 'कम्म–' इति पाठः।

२ इष्टो बाहुर्यःस्यात् तत्स्पर्धिन्यौ दिशौतरौ बाहुः। त्र्यस्रे चतुरस्रे वा सा कोटिः कीर्तिता तज्ज्ञैः॥ तत्कृत्योर्योगपदं कर्णः। लीलावती क्षेत्रव्य. १.

छव्वीसुत्तरवेसदेहि एगरज्जुं खंडिय तत्थ एगट्ठसवखंडेहि सादिरेयचत्तारिरज्जुभुजाणि कण्णक्खेत्ते[1] आलिहिय दोसु वि पासेसु मज्झम्मि छिण्णेसु चत्तारि आयदचउरंसखेत्ताणि अट्ठ तिकोणखेत्ताणि च होंति। एत्थ चदुण्हमायदचउरंसखेत्ताणं फलं पुव्विल्लदोखेत्तफलस्स चउब्भागमेत्तं होदि। अट्ठसु वि खेत्तेसु बाहल्लाविरोहेण एगट्ठं कदेसु तिण्णिरज्जुबाहल्लं, पुव्विल्लखेत्तविक्खंभायामेहिंतो अद्धमेत्तविक्खंभायामपमाणखेत्तुवलंभादो। किमट्ठं चदुण्हं पि मिलिदाणं तिण्णि रज्जुबाहल्लत्तं? पुविल्लखेत्तबाहल्लादो संपहियखेत्ताणमद्धमेत्तबाहल्लं होदूण तदुस्सेहं पेक्खिदूण अद्धमेत्तुस्सेहदंसणादो। संपहि सेसअट्ठखेत्ताणि पुव्वं व खंडिय तत्थ सोलस तिकोणखेत्ताणि अणंतरादीदखेत्ताणमुस्सेहादो विक्खंभादो बाहल्लादो च अद्धमेत्ताणि अक्खणिय अट्ठण्हमायदचउरंसखेत्ताणं फलमणंतराइक्कंतचदुखेत्तफलस्स चउभागमेत्तं होदि। एवं सोलसबत्तीस-चउसट्ठिआदिकमेण आयदचउरंसखेत्ताणि पुव्विल्लखेत्तफलादो चउब्भागमेत्तफलाणि होदूण गच्छंति जाव अविभागपलिच्छेदं पत्तं ति। एवमुप्पण्णा-

---

४$\frac{१}{२}\frac{१}{२}$ राजु प्रमाण भुजावाले हैं। उन्हें कर्णक्षेत्रसे लगाकर दोनों ही पार्श्वभागोंमें बीचसे छिन्न करनेपर चार आयतचतुरस्रक्षेत्र और आठ त्रिकोणक्षेत्र हो जाते हैं।

यहांपर चारों ही आयतचतुरस्र क्षेत्रोंका घनफल पहलेके दोनों आयतचतुरस्र क्षेत्रोंके घनफलके चतुर्थभाग मात्र होता है, क्योंकि, चारों ही क्षेत्रोंको बाहल्यके अविरोधसे इकट्ठा करनेपर अर्थात् यथाक्रमसे विपर्यास कर उलटा रखनेपर तीन राजु बाहल्य और पहलेके क्षेत्रके विष्कम्भ और आयामसे अर्धमात्र विष्कम्भ और आयामप्रमाणवाला क्षेत्र पाया जाता है।

शंका– इन चार आयतचतुरस्र क्षेत्रोंके मिलानेपर तीन राजु बाहल्य कैसे होता है?

समाधान– क्योंकि, पहले बताये हुये आयतचतुरस्र क्षेत्रके बाहल्यसे इस समयके आयतचतुरस्र क्षेत्रोंका बाहल्य आधा ही है और पहलेके उनके उत्सेधकी अपेक्षा अबके इनका उत्सेध भी आधा ही दिखाई देता है।

अब शेष रहे आठ त्रिकोण क्षेत्रोंको पूर्वके समान ही खंडित करनेपर उनमें सोलह त्रिकोणक्षेत्र और आठ आयतचतुरस्रक्षेत्र हो जाते हैं।

पहले बताये गये चार आयतचतुरस्र क्षेत्रोंका उत्सेधसे, विष्कम्भसे और बाहल्यसे अर्धप्रमाण निकालकर आठों ही आयतचतुरस्र क्षेत्रोंका घनफल अभी बताये गये चार आयतचतुरस्र क्षेत्रोंके घनफलके चतुर्थ भागमात्र होता है। इसी प्रकार सोलह, बत्तीस, चौंसठ आदिकमसे आयतचतुरस्र क्षेत्र पहले पहलेके आयतचतुरस्र क्षेत्रके घनफलोंके चतुर्थ भागमात्र घनफलवाले होते हुए तब तक चले जायेंगे जबतक कि अविभागप्रतिच्छेद अर्थात् एक परमाणु (प्रदेश) नहीं प्राप्त हो जायगा। इस प्रकारसे उत्पन्न हुए समस्त क्षेत्रोंके घनफलोंके जोड़नेका

---

१ ता. १-२-३ प्रतिषु 'कम्म' इति पाठः।

सेसखेत्तफलमेलावणविहाणं वुच्चदे । तं जहा- सव्वखेत्तफलाणि चउगुणकमेण अवट्ठिदाणि त्ति कादूण तत्थ अंतिमखेत्तफलं चउहि[1] गुणिय रूवूण[2] तिगुणिदछेदेण ओवट्टिदे एत्तियं होइ $५\frac{३२०}{३६५}$ । अधोलोगस्स सव्वखेत्तफलसमासो $१०६\frac{३५९}{३६५}$ ।

संपहि उड्ढलोगखेत्तफलमाणेमो । तत्थ सूईखेत्तफलं पुव्वविहाणेण आणिदे एत्तियं होइ $५\frac{३२०}{३६५}$ । संपहि उवरिमद्धं पंचरज्जुविक्खंभट्ठेसे खंडिय तत्थ एगखंडं पुध ट्ठविय मज्झम्मि सेसखंडं उड्ढं फालिय पसारिदे सुप्पखेत्तं होदि । तस्स मुहवित्थारो एत्तिओ होदि $\frac{३२०}{३६५}$ । तलवित्थारो एत्तिओ होदि $१५\frac{३२०}{३६५}$ । मुहम्मि एगागासपएस-बाहल्लं, तलम्मि मुहप्पमाणमज्झम्मि वेरज्जुबाहल्लं, पुणो कमहाणीए गंतूण हेट्ठिमदोकोणेसु एगागासबाहल्लं होदि । एदम्मि खेत्ते मुहवित्थारविक्खंभेण खंडिदे दोण्णि तिकोणखेत्ताणि एगमायदचउरंसखेत्तं च होदि । तत्थ आयदचउरंसखेत्तस्स

विधान कहते हैं । वह इस प्रकार है- सभी क्षेत्रोंका घनफल चतुर्गुणित क्रमसे अवस्थित है, इसलिए उनमें अन्तिम क्षेत्रफलको चारसे गुणा करके और चारमेंसे एक कम अर्थात् तीनसे भाग देनेपर घनफल $५\frac{३२०}{३६५}$ इतना होता है और अधोलोकके सभी क्षेत्रोंका घनफल $१०६\frac{३५९}{३६५}$ होता है ।

अब चारों ओरसे मृदंगाकार ऊर्ध्वलोकरूप क्षेत्रका घनफल निकालते हैं । उसमें एक राजु चौडे, सात राजु लम्बे और गोल आकारवाले सूचीरूप क्षेत्रका घनफल पहले अधोलोकमें कहे गये विधानसे निकालने पर $१\frac{३२०}{३६५}$ राजु इतना होता है । (इस सूचीको ऊर्ध्वलोकके मध्यभागसे निकालकर पृथक् स्थापन कर देना चाहिये ।) अब, लोकको मध्यलोकसे काटनेपर जो दो भाग पहले हुए थे उनमेंके ऊपरी अर्ध भागको, पांच राजु है विष्कम्भ जहांपर ऐसे ब्रह्मलोकके अन्तस्थित प्रदेशपर बीचसे खंडितकर उसमेंसे एक खंडको पृथक् स्थापनकर बचे हुए खंडको मध्यमें ऊपरसे नीचेतक फाड़कर पसारनेसे सूपाके आकारवाला क्षेत्र हो जाता है । उसके मुखका विस्तार $\frac{३२०}{३६५}$ इतना होता है । तथा तलविस्तार $१५\frac{३२०}{३६५}$ इतना होता है । इस सूपक्षेत्रके मुखमें मोटाई आकाशके एक प्रदेश प्रमाण है और तलके मुखप्रमाण मध्यभागमें दो राजु मोटाई है, पुनः क्रमसे हानिको प्राप्त होती हुई अर्थात् कम होती हुई इसी तलभागके दोनों कोनों पर आकाशके एक प्रदेश प्रमाण मोटाई है । इस सूपक्षेत्रको, मुखविस्तार-प्रमाण विष्कम्भसे खंडित करने पर दो त्रिकोण क्षेत्र और एक आयतचतुरस्र क्षेत्र हो जाते हैं । उनमेंसे पहले आयतचतुरस्र क्षेत्रका जो साढ़े तीन राजु लम्बा है, तीन राजुसे

१ ता. प्रतौ ' चउ ' इत्यपि पाठः ।
२ मु. प्रतौ रूवूणं काऊण इति पाठः ।

अध्वुट्ठरज्जुबाहल्लस्स सादिरेयतिण्णिरज्जुविक्खंभस्स तलम्मि वे रज्जु मुहम्मि एगागास-पएसबाहल्लस्स फलमाणेमो । तं जहा– विक्खंभेणुस्सेहं गुणेऊण ओवेहेणेगरज्जुणा गुणिदे मज्झिल्लखेत्तफलं होइ । तस्स पमाणमेदं ११३३३ ।[1] सेसदो तिकोणखेत्ताणि अध्वुट्ठरज्जुस्सेहाणि एगरज्जुं तेरसुत्तरसदेण खंडिय तत्थ बत्तीसखंडब्भहियछरज्जु-विक्खंभाणि पुव्वं व मज्झम्मि खंडिय तत्थुप्पण्णचत्तारि[2] तिकोणखेत्ताणि ओसारिय बोद्दमायदचउरंसखेत्ताणं पाऊणदोरज्जुस्सेहाणं तेरसुत्तरसदेण एगरज्जुं खंडिय तत्थ सोलसखंडब्भहियतिण्णिरज्जुविक्खंभाणं दो-एक्क-सुण्णेक्करज्जुबाहल्लाणं फलमाणेमो । तं जहा– एगखस्सुवरि विदियखेत्तं विवज्जासं काऊण दुविदे वेरज्जुबाहल्लमेगं खेत्तं होइ । पुणो विक्खंभुस्सेहाणं संवग्गं काऊण ओवेहेण गुणिदे खेत्तफलं होदि । तस्स पमाणमेदं १०३३३ । पुणो सेसचउण्हं खेत्ताणं फलमेदस्स

कुछ अधिक अर्थात् ३$\frac{३२}{३२६}$ राजु चौड़ा है, तलमें दो राजु और मुखमें एक आकाश प्रदेश प्रमाण मोटा है, ऐसे उस आयतचतुरस्र क्षेत्रका घनफल निकालते हैं। वह इस प्रकार है– विष्कम्भ $\frac{३२}{३२६}$ से उत्सेध ३ को गुणाकार पुनः उसे मोटाईके प्रमाण एक राजुसे गुणा करने पर मध्यम अर्थात् आयतचतुरस्र क्षेत्रका घनफल आ जाता है। उसका प्रमाण $\frac{३२}{३२६} \times ३ \times १ = ११\frac{३३}{३२६}$ इतना होता है। शेष जो दो त्रिकोण क्षेत्र हैं, जो कि साढे तीन राजु ऊंचे तथा एक राजुको एक सौ तेरहसे खंडित कर उनमें बत्तीस खंडसे अधिक छह राजु अर्थात् ६$\frac{३२}{३२६}$ राजु चौडे हैं, उन्हें पहलेके समान ही मध्यमेंसे खंडित कर उनमें उत्पन्न हुए चार त्रिकोण क्षेत्रोंको दूर रख कर दोनों आयतचतुरस्र क्षेत्रोंका, जो कि पौने दो राजु ऊंचाईवाले, तथा एकसौ तेरहसे एक राजुको खंडित कर उनमें सोलह खंडोंसे अधिक तीन राजु अर्थात् ३$\frac{१६}{३२६}$ राजु प्रमाण चौडे, तथा क्रमशः दो, एक, शून्य और एक राजु मोटे हैं, उनके घनफलको निकालते हैं।

विशेषार्थ– यहां पर जो आयतचतुरस्र क्षेत्रकी मोटाई क्रमशः दो, एक, शून्य और एक राजु प्रमाण कही है, उसका अभिप्राय यह है कि ब्रह्मलोकके पासवाले भीतरी भागकी मोटाई दो राजु है। उसीके बाहरी भागकी मोटाई एक राजु है। कर्णरेखावाले क्षेत्रकी मोटाई शून्य या एक प्रदेश है और कोटिरेखाके भागवाले ऊपरी क्षेत्रकी मोटाई एक राजु है।

यह इस प्रकार है– एक आयतचतुरस्र क्षेत्रके ऊपर दूसरे आयतचतुरस्र क्षेत्रको उलटा करके रखने पर दो राजुकी मोटाईवाला एक क्षेत्र हो जाता है। पुनः विष्कम्भ और उत्सेधका संवर्ग अर्थात् परस्पर गुणन करके वेधसे गुणा करने पर उक्त क्षेत्रका घनफल होता है

१ म प्रत्योः $\frac{११}{३२६}$ इति पाठः।

२ प्रतिषु 'तत्थुप्पण्णा' इति पाठः।

चउभागमेत्तं होदि । कारणं सुगमं, अधोलोगपरूवणाए परूविदत्तादो । जेणेवं सव्वखेत्तफलाणि अणंतराइक्कंतखेत्तफलादो चउब्भागक्कमेणावट्ठिदाणि, तेण तेसिं फले एत्थ मेलाविदे एत्तियं होदि १४$\frac{३}{४}$ । उड्ढलोगखेत्तस्स सव्वफलसमासो एत्तिओ होइ ५८$\frac{१}{२}$ ।[1] उड्ढाधोलोगखेत्तफलसमासो एत्तिओ होदि १६४$\frac{३}{४}$ । तदो सिद्धं घणलोगस्स संखेज्जदिभागत्तं । ण च[2] एदव्वदिरित्तमण्णं सत्तरज्जुघणपमाणं लोगसण्णिदं खेत्तमत्थि, जेण पमाणलोगो छदव्वसमुदयलोगादो अण्णो होज्ज ? ण च लोगालोगेसु वि ट्ठिदसत्तरज्जुघणमेत्तागासपदेसाणं पमाणघणलोगववएसो, लोगसण्णाए जादिच्छियत्तप्पसंगा। होदु णाम, अव्वाहय-सेढि-पदर-घणाणं पि जादिच्छियसण्णा-

जिसका प्रमाण $\frac{१}{२} \times \frac{३}{४} \times \frac{१}{२} = १\frac{३}{१६}$ इतना होता है । पुनः जो शेष चार त्रिकोण क्षेत्र हैं, उनका घनफल इस आयतचतुरस्रक्षेत्रके चतुर्थभागमात्र होता है । इसका कारण सुगम है, क्योंकि, अधोलोककी प्ररूपणामें कह आये हैं (पृ. १६) । चूंकि इस प्रकार सर्व त्रिकोण क्षेत्रोंके घनफल अनन्तर अतिक्रांत अर्थात् अभी पहले बताये गये क्षेत्रोंके घनफलसे चतुर्भागके क्रमसे अवस्थित हैं, इसलिये उनके घनफलको यहां अर्थात् १$\frac{३}{१६}$ में मिलानेपर १४$\frac{३}{४}$ इतना प्रमाण हो जाता है । ऊर्ध्वलोकका समस्त घनफल ५८$\frac{१}{२}$ इतना होता है ।

विशेषार्थ– ऊर्ध्वलोकका यह घनफल इस प्रकार आता है– पहले जो प्रमाण बतलाया गया है, वह प्रमाण ऊर्ध्वलोकके विभक्त किये गये दो भागोंमेंसे एक भागका है, इसलिए दोनों खंडोंका घनफल लानेके लिए आयतचतुरस्रक्षेत्रके घनफलको दूना किया, तब ११$\frac{१}{२}$ × $\frac{२}{१}$ = २३ हुआ । तथा त्रिकोणक्षेत्रोंका भी घनफल दूना किया, तब १४$\frac{३}{४}$ × $\frac{२}{१}$ = २९$\frac{१}{२}$ हुआ । इस प्रकार ऊर्ध्वलोककी सूचीका, आयतचतुरस्र और त्रिकोणक्षेत्रोंका समस्त घनफल जोड़ देनेपर ५$\frac{१}{२}$ + २३ + २९$\frac{१}{२}$ = ५८$\frac{१}{२}$ होता है ।

ऊर्ध्वलोक और अधोलोकका घनफल जोड़ देनेपर १९६$\frac{१}{२}$ + ५८$\frac{१}{२}$ = १६४$\frac{३}{४}$ इतना प्रमाण होता है । इसलिए अन्य प्रकारसे माना हुआ लोक घनलोकके संख्यातवें भागप्रमाण सिद्ध हुआ और इस लोकके अतिरिक्त सात राजुके घनप्रमाण लोकसंज्ञक अन्य कोई क्षेत्र है नहीं, जिससे कि प्रमाणलोक छह द्रव्योंके समुदायरूप लोकसे भिन्न माना जावे और न लोकाकाश तथा अलोकाकाश ही स्थित सात राजुके घनमात्र आकाशप्रदेशोंके प्रमाणकी घनलोकसंज्ञा है, क्योंकि, ऐसा माननेपर लोकसंज्ञाके यादृच्छिकपनेका प्रसंग प्राप्त होता है ।

शंका– यदि लोकसंज्ञाको यादृच्छिकपनेका प्रसंग प्राप्त होता है तो हो जाओ ?

१ अ १ प्रतौ $\frac{१}{२}$, म २ प्रतौ $\frac{१}{१२}$ इति पाठः ।

२ ' भागत्तं । ण च ' इति स्थाने क प्रतौ ' भागत्त गणपवए ', आ प्रतौ ' भागत्त गणिय ', म प्रत्योः ' -भागत्तणं च ' इति पाठः ।

पसंगादो। किं च 'पदरगदो केवली केवडि खेत्ते, लोगे असंखेज्जदिभागूणे'। उड्ढलोगेण दुवे उड्ढलोगा उड्ढलोगस्स तिभागेण देसूणेण सादिरेगा' इच्चेदस्स सादिरेयदुगुणत्तस्स उड्ढलोगादो कहूणण्णहाणुववत्तीदो सिद्धं दोण्हं लोगाणमेगत्तमिदि। तम्हा पमाणलोगो छदव्वसमुदयलोगादो आगासपदेसगणणाए समाणो त्ति घेत्तव्वो। कधं लोगो विद्धिज्जमाणो सत्तरज्जुघणपमाणो होज्ज? वुच्चदे- लोगो णाम सव्वागासमज्झत्थो चोद्दसरज्जुआयामो दोसु वि दिसासु मूलद्ध-तिण्णि-चउब्भाग-चरिमेसु सत्तेक्कपंचेक्करज्जुरुंदो सव्वत्थ सत्तरज्जुबाहल्लो वड्ढि-हाणीहि, ट्ठिदवोपेरंतो[2],

समाधान- नहीं, क्योंकि, संपूर्ण आकाश, जगत्श्रेणी, जगत्प्रतर और घनलोक, सभी संज्ञाओंका भी यादृच्छिकपनेका प्रसंग आ जायगा।

दूसरी बात यह है कि 'प्रतरसमुद्घातगत केवली कितने क्षेत्रमें रहते हैं? लोकके असंख्यातवें भागसे न्यून सर्व लोकमें रहते हैं। लोकके असंख्यातवें भागसे न्यून सर्व लोकका प्रमाण ऊर्ध्वलोकके कुछ कम तीसरे भागसे अधिक दो ऊर्ध्वलोकप्रमाण है।' इस प्रकार ऊर्ध्वलोककी अपेक्षा इस साधिक दुगुणताका कथन अन्यथा बन नहीं सकता था, अतएव प्रमाणलोक और द्रव्यलोक इन दोनों लोकोंका एकत्व सिद्ध हुआ।

विशेषार्थ- यहांपर प्रतरसमुद्घातगत केवलीके क्षेत्रका प्रमाण जो ऊर्ध्वलोककी अपेक्षा दो ऊर्ध्वलोक और उसीके कुछ कम तीसरे भागसे अधिक बताया है, उसका अभिप्राय यह है कि ऊर्ध्वलोकका प्रमाण १४७ घनराजु है इसे दूना करनेपर २९४ घनराजु हुए। इसमें १४७ का त्रिभाग ४९ घनराजुके जोड़ देनेपर ३४३ घनराजु होते हैं जो कि घनलोकका प्रमाण है। प्रतरसमुद्घातगत केवली लोकान्तमें स्थित वातवलयोंसे रुद्ध क्षेत्रको छोड़कर शेष संपूर्ण क्षेत्रको व्याप्त कर लेते हैं। इसलिये ३४३ घनराजुमेंसे वातवलयोंसे रुद्ध क्षेत्रको कम कर देना चाहिये। यही यहां पर देशोन क्षेत्रका अभिप्राय है।

इसलिये, उक्त प्रकारसे प्रमाणलोक और द्रव्यलोकके एक सिद्ध हो जानेपर, प्रमाणलोक छह द्रव्योंके समुदायवाले लोकसे आकाशके प्रदेशगणनाकी अपेक्षा समान है, ऐसा अर्थ स्वीकार करना चाहिये।

शंका- पिंडरूपसे एकत्रित करनेपर, अर्थात् घनरूप किया गया, यह लोक सात राजुके घनप्रमाण कैसे हो जाता है?

समाधान- उक्त शंकाका उत्तर कहते हैं- जो सर्व आकाशके मध्य भागमें स्थित है, चौदह राजु आयामवाला है, दोनों दिशाओंके अर्थात् पूर्व और पश्चिम दिशाके मूल, अर्धभाग, त्रि-चतुर्भाग और चरमभागमें यथाक्रमसे सात, एक, पांच और एक राजु विस्तारवाला है, तथा सर्वत्र सात राजु मोटा है, वृद्धि और हानिके द्वारा जिसके दोनों पार्श्वभाग स्थित हैं,

१ म प्रत्योः 'लोगो असंखेज्जदिभागूणो' इति पाठः।

२ उदयदलं आयाम वास पुव्वावरेण भूमिमुहे। सत्तेक्कपंच एक्कं य रज्जू मज्झम्हि हाणिचयं॥ त्रि. सा. ११३.

चोद्दसरज्जुआयदरज्जुवग्गमुहलोगणालिगब्भो[1] । एसो पिंडिज्जमाणो सत्तरज्जु-घणपमाणो होदि[2] । जदि लोगो एरिसो ण घेप्पदि तो पदरगदकेवलिखेत्तसाहणट्ठं वुत्त दो-गाहाओ णिरत्थियाओ होज्ज, तत्थ वुत्तफलस्स अण्णहा संभवाभावा । काओ ताओ दो गाहाओ त्ति वुत्ते वुच्चदे–

मुह-तलसमास-अद्धं वस्सेधगुणं गुणं च वेधेण ।
घणगणिदं जाणेज्जो वेत्तासणसंठिये खेत्ते[3] ॥ ९ ॥

चौदह राजु लम्बी एक राजुके वर्गप्रमाण मुखवाली लोकनाली जिसके गर्भमें है, ऐसा यह पिंडरूप किया गया लोक सात राजुके घनप्रमाण अर्थात् ७ × ७ × ७ = ३४३ राजु है ।

विशेषार्थ– लोकका पूर्वोक्त विस्तार इस प्रकार है– लोक सर्व आकाशके मध्यमें स्थित है । उसका आयाम चौदह राजु है । पूर्व-पश्चिम तलभाग सात राजु, लोकके आधे अर्थात् सात राजु ऊपर जाकर मध्यलोकमें एक राजु, लोकके पौन भाग अर्थात् साढ़े दस राजु ऊपर जाकर ब्रह्मलोकमें पांच पांच राजु और पूरे चौदह राजु ऊपर जाकर लोकके अन्तिम भागमें एक राजु विस्तार है । लोकका उत्तर-दक्षिण विस्तार सर्वत्र सात राजु है । इस प्रकारके लोकके बीच एक राजु चौड़ी चतुष्कोण और चौदह राजु ऊंची त्रसनाडी है । पूर्व-पश्चिम भागमें लोक घट-बढ़ विस्तारवाला है । इस प्रकार लोक सात राजुके घनप्रमाण होता है ।

यदि इस प्रकारका लोक ग्रहण नहीं किया जायगा, तो प्रतरसमुद्घातगत केवलीके क्षेत्रके साधनार्थ कही गई दो गाथाएं निरर्थक हो जायेंगी, क्योंकि, उन गाथाओंमें कहा गया घनफल लोकको अन्य प्रकारसे माननेपर संभव नहीं है ।

शंका– वे दोनों गाथाएं कौनसी हैं ?

समाधान– ऐसी शंका करनेपर कहते हैं–

मुखभाग और तलभागके प्रमाणको जोड़कर आधा करो, पुनः उसे उत्सेधसे गुणा करो, पुनः मोटाईसे गुणा करो । ऐसा करनेपर वेत्रासन आकारसे स्थित अधोलोकरूप क्षेत्रका घनफल जानना चाहिए ॥ ९ ॥

विशेषार्थ– वेत्रासन आकारवाले अधोलोकके मुखविस्तारका प्रमाण एक राजु है और तलविस्तारका प्रमाण सात राजु है । इन दोनोंको जोड़नेपर आठ हुए । उसे आधा कर अधोलोककी ऊंचाईके प्रमाण सात राजुसे गुणा करनेपर अट्ठाईस हुए । इस संख्याको अधोलोककी उत्तर-दक्षिण दिशाकी मोटाई सात राजुसे गुणा करनेपर एकसौ छयानवे राजु हुए । यही अधोलोकका घनफल है । जैसे– ७ + १ = ८; ८ ÷ २ = ४; ४ × ७ = २८; २८×७=१९६ घनराजु ।

१ लोयबहुमज्झदेसे रुक्खे सारव्व रज्जुपदरजुदा । चोद्दसरज्जूत्तुंगा तसणाली होदि गुणणामा ॥ त्रि. सा. १४३.

२ सव्वागासमणंतं तस्स य बहुमज्झदेसभागम्हि । लोगोऽसंखपदेसो जगसेढिघण-प्पमाणो हु ॥ त्रि. सा. ३ .

३ ति. प. १, १६५. जंबू प. ११, १०८.

मूलं मज्झेण गुणं मुहसहिदद्धमुस्सेधकदिगुणिदं ।
घणगणिदं जाणेज्जो मुइंगसंठाणखेत्तम्हि[1] ॥ १० ॥

ण च एवस्स लोगस्स पढमगाहाए सह विरोहो, एगदिसाए वेत्तासण-मुइंगसंठाणदंसणादो । ण च एत्थ झल्लरीसंठाणं णत्थि, मज्झम्हि[2] सयंभूरमणोवहि-परिक्खित्तदेसेण चंदमंडलमिव समंतदो असंखेज्जजोयणरुंदेण जोयणलक्खबाहल्लेण झल्लरीसमाणत्तादो[2] । ण च दिट्ठंतो दारिट्ठंतिएण सव्वहा समाणो, दोण्हं पि अभावप्पसंगादो । ण च तालरुक्खसंठाणमेत्थ ण संभवइ, एगदिसाए

मूलके प्रमाणको मध्यके प्रमाणसे गुणा करो, पुनः मुखसहित अर्ध भागको उत्सेधकी कृति अर्थात् वर्गसे गुणा करो । ऐसा करनेपर मृदंगके आकारवाले क्षेत्रमें प्राप्त घनफल जानना चाहिये ॥ १० ॥

विशेषार्थ— ऊर्ध्वलोक, बीचमें मोटा और ऊपर नीचे सकड़ा होनेसे मृदंगाकारक्षेत्र कहलाता है । इस मृदंगाकार ऊर्ध्वलोकका मूलभागसम्बन्धी विस्तार एक राजुसे मध्यभागके विस्तार पांच राजुको गुणा करनेपर १ × ५ = ५ हुए । उसमें मुखविस्तार एक राजुको जोड़कर ५ + १ = ६ आधा करनेपर ६ ÷ २ = ३ रहे । इसे ऊंचाई सातके वर्गसे ७ × ७ = ४९ गुणा करनेपर ४९ × ३ = १४७ हुए । यही एकसौ सैंतालीस राजु ऊर्ध्वलोकका घनफल है । इस प्रकार अधोलोक और ऊर्ध्वलोकके घनफलोंको जोड़ देनेपर १९६ + १४७ = ३४३ तीनसौ तेतालीस राजु सर्व लोकका घनफल होता है ।

और, उक्त प्रकारके इस लोकका 'हेट्ठा मज्झे उवरिं वेत्तासण-झल्लरी-मुइंगणिभो' इत्यादि इस प्रथम गाथाके साथ भी विरोध नहीं है, क्योंकि, एक दिशामें वेत्रासन और मृदंगका आकार दिखाई देता है । यदि कहा जाय कि अभी बताये गए लोकमें (मध्य भागपर) झल्लरीका आकार नहीं है, सो भी नहीं, क्योंकि, मध्यलोकमें स्वयम्भूरमणसमुद्रसे परिक्षिप्त, तथा चारों ओरसे असंख्यात योजन विस्तारवाला और एक लाख योजन मोटाईवाला यह मध्यवर्ती प्रदेश चन्द्रमंडलकी तरह झल्लरीके समान दिखाई देता है और दृष्टान्त सर्वथा दार्ष्टान्तके समान नहीं होता है, अन्यथा दोनोंके ही अभावका प्रसंग आ जायगा । यदि कहा जाय कि ऊपर बताये गए इस लोकके आकारमें तालवृक्षके समान आकार संभव नहीं है, सो भी नहीं, क्योंकि, एक दिशासे देखनेपर तालवृक्षके समान संस्थान दिखाई देता है और 'लोयस्स य विक्खम्भो चउप्पयारो य होइ णायव्वो' इत्यादि इस तीसरी गाथाके साथ भी

१ जंबू प. ११, ११०.

२ पुव्वावरेण लोगो मूले मज्झे तहेव उवरिम्मि । वरवेत्तासण-झल्लरि-मुइंगसंठाणपरिणामो । उत्तर-दक्खिणपासे संठाणो टंकछिण्णगिरिसरिसो । अहवा कुडगिरिसरिसो आयदचउरंसदरणिभो ॥ जंबू प. ४, ४-५.

तालरुक्खसंठाणदंसणादो । ण च तइयाए गाहाए सह विरोहो, एत्थ वि दोसु दिसासु चउव्विहविक्खंभदंसणादो । ण च सत्तरज्जुबाहल्लं करणाणिओगसुत्तविरुद्धं, तस्स तत्थ विधिपडिसेधाभावादो । तम्हा एरिसो चेव लोगो त्ति घेत्तव्वो ।

एत्थ चोदगो भणदि– कथमणंता जीवा असंखेज्जपदेसिए लोए अच्छंति । जदि एक्कम्हि आगासपदेसे एक्को चेव जीवो अच्छदि तो असंखेज्जजीवाणं थक्को होदूण अवरेसिं जीवाणमलोगे अच्छणं पावेदि, तेसिमभावो वा । ण च तेसिमभावो अत्थि, 'अणंता जीवा' त्ति अणेण सुत्तेण सह विरोधा । ण च अलोगागासे वि सेसाणमच्छणमत्थि, लोगालोगविहायस्स अभावावत्तीदो । ण च एगागासपदेसे एगो जीवो अच्छदि, 'एगजीवस्स जहण्णोगाहणा वि अंगुलस्स असंखेज्जदिभागमेत्ता' त्ति वेदणाखेत्तविधाणे परूविदत्तादो । तम्हा लोगमज्झम्हि जदि होंति, तो लोगस्स असंखेज्जदिभागमेत्तेहि चेव जीवेहि होदव्वमिदि ?

विरोध नहीं आता है, क्योंकि, यहांपर भी पूर्व और पश्चिम इन दोनों ही दिशाओंमें गाथोक्त चारों ही प्रकारके विष्कम्भ देखे जाते हैं । तथा लोकके उत्तर-दक्षिण भागमें सर्वत्र सात राजुका बाहल्य भी करणानुयोगसूत्रके विरुद्ध नहीं है, क्योंकि, करणानुयोगसूत्रमें सात राजुके बाहल्यके विधान व प्रतिषेधका अभाव है । इसलिए अभी कहे गए आकारवाला ही लोक है, ऐसा स्वीकार करना चाहिए ।

शंका– यहांपर शंकाकार कहता है कि असंख्यात प्रदेशवाले लोकमें अनन्त संख्यावाले जीव कैसे रह सकते हैं ? यदि एक आकाशके प्रदेशमें एक ही जीव रहे, तो भी सर्व लोकमें असंख्यात जीवोंकी स्थिति होकर अवशिष्ट अन्य जीवोंका अलोकाकाशमें रहना प्राप्त होता है, अथवा उन शेष जीवोंका अभाव प्राप्त होता है । किन्तु उनका अभाव है नहीं, क्योंकि, उक्त कथनका 'जीव अनन्त हैं' इस सूत्रके साथ विरोध आता है और न अलोकाकाशमें भी शेष जीवोंका रहना बनता है, क्योंकि, ऐसा माननेपर, लोक और अलोकके विभागका अभाव प्राप्त होता है । दूसरी बात यह भी है कि आकाशके एक प्रदेशमें एक जीव रहता भी नहीं है, क्योंकि, 'एक जीवकी जघन्य अवगाहना भी अंगुलके असंख्यातवें भागमात्र होती है' ऐसा वेदनाखंडके वेदनाक्षेत्रविधान नामक अनुयोगद्वारमें प्रतिपादन किया गया है । इसलिये यदि लोकके मध्यमें जीव रहते हैं, तो वे लोकके असंख्यातवें भागमात्र ही होना चाहिए ?

समाधान– अब यहांपर इस शंकाका परिहार कहते हैं– शंकाकारका उक्त कथन घटित नहीं होता है, क्योंकि, उक्त कथनके मान लेनेपर पुद्गलोंके भी असंख्यातपनेका प्रसंग आ जाता है ।

एत्थ परिहारो वुच्चदे– णेवं घडदे, पोग्गलाणं पि असंखेज्जत्तप्पसंगादो। कथं ? एगेगलोगागासपदेसे एक्केक्को जदि परमाणू अच्छदि, तो लोगमेत्ता परमाणू भवंति, सेसपोग्गलाणमभावो चेव, अणवगासाणमत्थित्तविरोधा। ण च तेहि लोगमेत्तपरमाणूहि कम्म-सरीर-घड-पड-त्थंभादिसु एगो वि णिप्पज्जदे, अणंताणंत-परमाणुसमुदयसमागमेण विणा एक्किस्से ओसण्णासण्णियाए[1] वि संभवाभावा। होदु चे ण, सयलपोग्गलद्दव्वस्स अणुवलद्धिप्पसंगादो, सव्वजीवाणमक्कमेण केवलणाणुप्पत्तिप्प-संगादो च। एवमइप्पसंगो मा होदि त्ति अवगेज्झमाणजीवाजीवसत्तण्णहाणुववत्तीदो अवगाहणधम्मिओ लोगागासो त्ति इच्छिदव्वो खीरकुम्भस्स मधुकुंभो व्व।

शंका– पुद्गलोंके असंख्यात होनेका प्रसंग कैसे आ जावेगा ?

समाधान– इस शंकाका परिहार इस प्रकार है– लोकाकाशके एक एक प्रदेशमें यदि एक एक ही परमाणु रहे, तो लोकाकाशके प्रदेशप्रमाण ही परमाणु होंगे और शेष पुद्गलोंका अभाव हो जाएगा, क्योंकि, जिन पुद्गलोंको अवकाश नहीं मिला, उनका अस्तित्व माननेमें विरोध आता है। तथा उन लोकमात्र परमाणुओंके द्वारा कर्म, शरीर, घट, पट और स्तम्भ आदिकोंमेंसे एक भी वस्तु निष्पन्न नहीं हो सकती है, क्योंकि, अनन्तानन्त परमाणुओंके समुदायका समागम हुए विना एक अवसन्नासन्न संज्ञक भी स्कंधका होना संभव नहीं है।

शंका– एक भी वस्तु निष्पन्न नहीं होवे, तो भी क्या हानि है ?

समाधान– नहीं, क्योंकि, ऐसा माननेपर समस्त पुद्गल द्रव्यकी अनुपलब्धिका प्रसंग आता है, तथा सर्व जीवोंके एक साथ ही केवलज्ञानकी उत्पत्तिका भी प्रसंग प्राप्त होता है।

विशेषार्थ– यहांपर समस्त पुद्गलद्रव्यकी अनुपलब्धिका जो दूषण दिया है, उसका अभिप्राय यह है कि घट, पटादि कार्योंके देखनेसे ही कारणरूप पुद्गलपरमाणुओंके अस्तित्वका अनुमान होता है। शंकाकारके कथनानुसार जब किसी भी वस्तुकी निष्पत्ति न होगी, तो उन कार्योंके निष्पादक कारणधर्मवाले परमाणु हैं, यह कैसे जाना जा सकेगा ? अतएव घट, पटादि कार्योंकी निष्पत्तिके अभावमें पुद्गलद्रव्यके अभावका प्रसंग आता है। तथा, सर्व जीवोंके एक साथ केवलज्ञानकी उत्पत्तिके प्रसंग प्राप्त होनेका जो दूषण दिया गया है, उसका अभिप्राय यह है कि जब लोकाकाशके प्रदेशप्रमाण असंख्यात ही परमाणु होंगे तो उनसे प्रथम तो एक कार्मणशरीरकी उत्पत्ति ही नहीं होगी। यदि थोडी देरके लिए यह कल्पना कर भी ली जाय कि असंख्यात परमाणुओंसे एक कार्मणशरीर या कर्मपिंड बन भी जाता हो, जो कि जीवके ज्ञानादिक गुणोंके आवरण करनेमें समर्थ है, तो भी वह किसी एक ही जीवके गुणोंका आवरण कर सकेगा, अनन्त जीवोंका नहीं। इस प्रकारसे भी सभीजीवोंके आवरक कर्मका अभाव होनेसे केवलज्ञानकी उत्पत्तिका प्रसंग प्राप्त होता है। अथवा, किसी एक जीवके द्वारा उस कार्मणशरीरका शुक्ल-ध्यानाग्निसे विनाश किये जानेपर समस्त ही जीवोंके केवलज्ञानकी उत्पत्तिका प्रसंग आता है।

१ परमाणूहि अणंताणंतेहि बहुविहेहि दव्वेहि। ओसण्णासण्णो त्ति ॥ ति. प. १, १०२. अनन्तानन्त-परमाणुसंघातपरिमाणादाविर्भूता उत्सन्नासंज्ञैका। त. रा. वा. ३, ३८.

तम्हा ओगाहणलक्खणेण सिद्धलोगागासस्स ओगाहणमाहप्पमाइरियपरंपरागदोवदेसेण भणिस्सामो। तं जहा– उस्सेहघणंगुलस्स असंखेज्जदिभागमेत्ते खेत्ते सुहुमणिगोदजीवस्स जहण्णोगाहणा भवदि[1]। तम्हि ट्ठिदघणलोगमेत्तजीवपदेसेसु पडिपदेसमभवसिद्धिएहि अणंतगुणा, सिद्धाणमणंतभागमेत्ता होदूण ट्ठिदओरालियसरीरपरमाणूणं तं चेव खेत्तमोगासं जादि। पुणो ओरालियसरीरपरमाणूहिंतो अणंतगुणाणं तेजइयसरीरपरमाणूणं पि तम्हि चेव खेत्ते ओगाहणा भवदि। पुव्वभणिदतेजइयपरमाणूहिंतो अणंतगुणा कम्मइयपरमाणू तेणेव जीवेण मिच्छत्तादिकारणेहि संचिदा पडिपदेसमभवसिद्धिएहि अणंतगुणा सिद्धाणमणंतभागमेत्ता तत्थ भवंति[2], तेसिं पि तम्हि चेव खेत्ते ओगाहणा भवदि। पुणो ओरालिय-तेजा-कम्मइयविस्ससोवचयाणं

इस प्रकारका अतिप्रसंग दोष न होवे, इस लिये अवगाह्यमान जीव और अजीव द्रव्योंकी सत्ता अन्यथा न बन सकनेसे क्षीरकुंभका मधुकुंभके समान अवगाहन धर्मवाला लोकाकाश है, ऐसा मान लेना चाहिए।

विशेषार्थ– जैसे क्षीरकुम्भका मधुकुम्भमें अवगाहन हो जाता है, अर्थात् मधुसे भरे हुए कलशमें तत्प्रमाणवाले दूधसे भरे हुए कलशका दूध डाल दिया जाय, तो समस्त दूध उसीमें समा जाता है, ऐसी अवगाहन शक्ति देखी जाती है। उसीके समान आकाशकी भी ऐसी अवगाहना शक्ति है कि असंख्य प्रदेशी होते हुए भी उसमें अनन्त जीव और अनन्तानन्त पुद्गलोंका अवगाहन हो जाता है।

इसलिए अब हम अवगाहन लक्षणसे प्रसिद्ध लोकाकाशके अवगाहन माहात्म्यको आचार्य परम्परागत उपदेशके अनुसार कहते हैं। वह इस प्रकार है– उत्सेधघनांगुलके असंख्यातवें भाग मात्र क्षेत्रमें सूक्ष्म निगोदिया जीवकी जघन्य अवगाहना है। उस क्षेत्रमें स्थित घनलोक मात्र जीवके प्रदेशोंमेंसे प्रत्येक प्रदेशपर अभव्यसिद्धोंसे अनन्तगुणे और सिद्धोंके अनन्तवें भाग मात्र हो करके स्थित औदारिकशरीरके परमाणुओंका वही क्षेत्र अवकाशपनेको प्राप्त है। पुनः औदारिकशरीरके परमाणुओंसे अनन्तगुणे तैजसकशरीरके परमाणुओंकी भी उसी ही क्षेत्रमें अवगाहना है। तथा पूर्वमें कहे गए तैजस परमाणुओंसे अनन्तगुणे, उसी ही जीवके द्वारा मिथ्यात्व, अविरति आदि कारणोंसे संचित और प्रत्येक प्रदेशपर अभव्यसिद्धोंसे अनन्तगुणे तथा सिद्धोंके अनन्तवें भाग मात्र कर्मपरमाणु उस क्षेत्रमें रहते हैं, इसलिए उन कर्मपरमाणुओंकी भी उसी ही क्षेत्रमें अवगाहना है। पुनः औदारिकशरीर, तैजसकशरीर और

१ सुहुमणिगोदअपज्जत्तयस्स आदस्स तदियसमयम्हि। अंगुलअसंखभागं जहण्णयं। गो. जी. ९५.

२ प्रदेशतोऽसंख्येयगुणं प्राक्तैजसात्। अनन्तगुणे परे। त. सू. २, ३८–३९। परमाणूहि अणंतेहि वग्गणसण्णा हु होदि सक्का हु। ताहि अणंताहि णियमा समयपबद्धो हवे एक्को॥ ताणं समयपबद्धा सेढिअसंखेज्जभागगुणिदकमा। गंतेण य तेजदुगा परं परं होदि सुहुमं खु॥ गो. जी. २४५, २४६.

पादेक्कं सव्वजीवेहि अणंतगुणाणं पडिपरमाणुम्हि तत्तियमेत्ताणं तम्हि चेव खेत्ते ओगाहणा भवदि[1]। एवमेगजीवेणच्छिदअंगुलस्स असंखेज्जदिभागमेत्ते जहण्णखेत्तम्हि समाणोगाहणो होदूण विदिओ जीवो तत्थेव अच्छदि। एवमणंताणंताणं समाणोगाहणाणं जीवाणं तम्हि चेव खेत्ते ओगाहणा भवदि। तदो अवरो जीवो तम्हि चेव मज्झिमपदेसमंतिमं काऊण उववण्णो। एदस्स वि ओगाहणाए अणंताणंतजीवा समाणोगाहणा अच्छंति त्ति पुव्वं व परूवेदव्वं। एवमेगपदेसा सव्वदिसासु वड्ढावेदव्वा जाव लोगो आवुण्णो त्ति। एत्थ एक्केक्कोगाहणाए ठिदजीवाणमप्पाबहुगं भणिस्सामो। तं जहा— तेउक्काइया जीवा असंखेज्जा लोगा। तत्तो पुढविकाइया विसेसाहिया। आउकाइया जीवा विसेसाहिया। वाउक्काइया जीवा विसेसाहिया। तत्तो वणप्फदिकाइया अणंतगुणा त्ति। अणेण पयारेण सव्वजीवरासिणा लोगो आवुण्णो त्ति सद्दहेदव्वं, अण्णहा पुव्वुत्तदोसप्पसंगादो।

कार्मणशरीरके विस्रसोपचयोंका, जो कि प्रत्येक सर्व जीवोंसे अनन्तगुणे हैं और प्रत्येक परमाणुपर उतने ही प्रमाण हैं, उनकी भी उसी ही क्षेत्रमें अवगाहना है। इस प्रकार एक जीवसे व्याप्त अंगुलके असंख्यातवें भागमात्र उसी जघन्य क्षेत्रमें समान अवगाहनावाला होकरके दूसरा जीव भी रहता है। इसी प्रकार समान अवगाहनावाले अनन्तानन्त जीवोंकी उसी ही क्षेत्रमें अवगाहना है। तत्पश्चात् दूसरा कोई जीव, उसी ही क्षेत्रमें उसके मध्यवर्ती प्रदेशको अपनी अवगाहनाका अन्तिम प्रदेश करके उत्पन्न हुआ। इस जीवकी भी अवगाहनामें, समान अवगाहनावाले अनन्तानन्त जीव रहते हैं, इस प्रकार यहां भी पूर्वके समान प्ररूपण करना चाहिये। अर्थात्, उस क्षेत्रमें स्थित घनलोकमात्र जीवके प्रदेशोंमेंसे प्रत्येक प्रदेशपर अनन्त औदारिकशरीरके परमाणु, औदारिकशरीरसे अनन्तगुणे तैजसकशरीरके और इससे अनन्तगुणे कार्मणशरीरके परमाणु भी हैं। पुनः इन तीनों शरीरोंके सर्व जीवोंसे अनन्त गुणित विस्रसोपचय भी उसी प्रदेशपर विद्यमान हैं। इस प्रकार समान अवगाहनावाले अनन्तानन्त जीव उसी क्षेत्रमें रहते हैं। इस प्रकारसे लोकके परिपूर्ण होनेतक सभी दिशाओंमें लोकका एक एक प्रदेश बढ़ाते जाना चाहिये। अब यहांपर उत्सेध घनांगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण एक एक अवगाहनामें स्थित जीवोंका अल्पबहुत्व कहते हैं। वह इस प्रकार है— तैजस्कायिक जीव असंख्यात लोकप्रमाण हैं। तैजस्कायिक जीवोंसे पृथिवीकायिक जीव विशेष अधिक हैं। पृथिवीकायिक जीवोंसे जलकायिक जीव विशेष अधिक हैं। जलकायिक जीवोंसे वायुकायिक जीव विशेष अधिक हैं। वायुकायिक जीवोंसे वनस्पतिकायिक जीव अनन्तगुणे हैं। इस प्रकारसे सर्व जीवराशिके द्वारा यह लोकाकाश परिपूर्ण है, ऐसा श्रद्धान करना चाहिए, अन्यथा पूर्वोक्त दोषोंका प्रसंग प्राप्त होता है।

---

१ जीवादो णंतगुणा पडिपरमाणुम्हि विस्ससोवचया। ते जीवेण य समवेदा एक्केक्कं पडि समाणा हु॥ गो. जी. २४९.

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

सव्वजीवाणमवत्था तिविहा भवदि, सत्थाण-समुग्घादुववादभेदेण। तत्थ सत्थाणं दुविहं, सत्थाणसत्थाणं विहारवदिसत्थाणं चेदि। तत्थ सत्थाणसत्थाणं णाम अप्पणो उप्पण्णगामे णयरे रण्णे वा सयण-णिसीयण-चंकमणादिवावारजुत्तेणच्छणं[1]। विहारवदिसत्थाणं णाम अप्पणो उप्पण्णगाम-णयर-रण्णादीणि छड्डिय अण्णत्थ सयण-णिसीयण-चंकमणादिवावारेणच्छणं[2]। समुग्घादो[3] सत्तविधो, वेदणसमुग्घादो कसायसमुग्घादो वेउव्वियसमुग्घादो मारणंतियसमुग्घादो तेआसरीरसमुग्घादो आहार-समुग्घादो केवलिसमुग्घादो चेदि। तत्थ वेदणसमुग्घादो णाम अक्खि-सिरो-वेदणादीहि जीवाणमुवक्कस्सेण सरीरतिगुणविप्फुज्जणं[4]। कसायसमुग्घादो णाम कोध-भयादीहि सरीरतिगुणविप्फुज्जणं[5]। वेउव्वियसमुग्घादो णाम देव-णेरइयाणं वेउव्वियसरीरो-दइल्लाणं साभाविय[6]मागारं छड्डिय अण्णागारेणच्छणं[7]। मारणंतियसमुग्घादो णाम अप्पणो वट्टमाणसरीरमछड्डिय रिजुगईए विग्गहगईए वा जावुप्पज्जमाणखेत्तं ताव

स्वस्थान, समुद्घात और उपपादके भेदसे सर्व जीवोंकी अवस्था तीन प्रकारकी है। उनमें स्वस्थान दो प्रकारका है– स्वस्थानस्वस्थान और विहारवत्स्वस्थान। उनमेंसे अपने उत्पन्न होनेके ग्राममें, नगरमें अथवा अरण्यमें सोना, बैठना, चलना आदि व्यापारसे युक्त होकर रहनेका नाम स्वस्थानस्वस्थान है। अपने उत्पन्न होनेके ग्राम, नगर अथवा अरण्य आदिको छोड़कर अन्यत्र शयन, निषोदन और परिभ्रमण आदि व्यापारसे युक्त होकर रहनेका नाम विहारवत्स्वस्थान है। समुद्घात सात प्रकारका है– १ वेदनासमुद्घात, २ कषायसमुद्घात, ३ वैक्रियिकसमुद्घात, ४ मारणान्तिकसमुद्घात, ५ तैजसकशरीरसमुद्घात, ६ आहारकशरीर-समुद्घात और ७ केवलिसमुद्घात। उनमेंसे नेत्रवेदना, शिरोवेदना आदिके द्वारा जीवोंके प्रदेशोंका उत्कृष्टतः शरीरसे तिगुणे प्रमाण विसर्पणका नाम वेदनासमुद्घात है। क्रोध, भय आदिके द्वारा जीवके प्रदेशोंका शरीरसे तिगुणे प्रमाण प्रसर्पणका नाम कषायसमुद्घात है। वैक्रियिकशरीरके उदयवाले देव और नारकी जीवोंका अपने स्वाभाविक आकारको छोड़कर अन्य आकारसे रहनेका नाम वैक्रियिकसमुद्घात है। अपने वर्तमानशरीरको नहीं छोड़कर

१ तत्र तावत् उत्पन्नपुरग्रामादिक्षेत्रं तत् स्वस्थानस्वस्थानम्। गो. जी. जी. प्र. ५४३.

२ विवक्षितपर्यायपरिणतेन परिभ्रमितुमुचितक्षेत्रं तद्विहारवत्स्वस्थानमिति। गो. जी. जी. प्र. ५४३.

३ इतेर्गमिक्रियात्वात्संभूयात्मप्रदेशानां बहिरुद्गमनं समुद्घातः। स सप्तविधः। त. रा. वा. १, २०. मूलसरीरमछंडिय उत्तरदेहस्स जीवपिंडस्स। णिग्गमणं देहादो होदि समुग्घादणामं तु॥ गो. जी. ६६८. वेदनादिवशेन निजशरीरात्तजीवप्रदेशानां बहिःप्रदेशे तत्प्रायोग्यविसर्पणं समुद्घातः। गो. जी. जी. प्र. ५४३.

४ तत्र वातिकादिरोगविषादिद्रव्यसंबंधः संतापापादितवेदनाकृतो वेदनासमुद्घातः। त. रा. वा. १, २०.

५ द्विषयप्रत्ययप्रकर्षोत्पादितक्रोधादिकृतः। कषायसमुद्घातः। त. रा. वा. १, २०.

६ एकत्वपृथक्त्वनानाविधविक्रियशरीरवाक्प्रचारप्रहरणादिविक्रियाप्रयोजनो वैक्रियिकसमुद्घातः त. रा. वा. १, २०.

गंतूण सरीरतिगुणबाहल्लेण अण्णहा वा अंतोमुहुत्तमच्छणं[1]। वेदण-कसायसमुग्घादा मारणंतियसमुग्घादे किण्ण पदंति त्ति वुत्ते ण पदंति। मारणंतियसमुग्घादो णाम बद्धपरभवियाउआणं चेव होदि। वेदण-कसायसमुग्घादा पुण बद्धाउआणमबद्धाउआणं च होंति। मारणंतियसमुग्घादो णिच्छएण उप्पज्जमाणदिसाहिमुहो होदि, ण चेअराणमेगदिसाए गमणणियमो, दससु वि दिसासु गमणे पडिबद्धत्तादो[2]। मारणंतियसमुग्घादस्स आयामो उक्कस्सेण अप्पणो उप्पज्जमाणखेत्तपज्जवसाणो, ण चेअराणमेस णियमो त्ति। तेजासरीरसमुग्घादो णाम तेजइयसरीरविउव्वणं। तं दुविहं णिस्सरणप्पयं अणिस्सरणप्पयं चेदि[3]। तत्थ जं तं णिस्सरणप्पगं तेजइयसरीरविउव्वणं

ऋजुगतिद्वारा अथवा विग्रहगतिद्वारा आगे जिसमें उत्पन्न होना है ऐसे क्षेत्रतक जाकर, शरीरसे तिगुणे विस्तारसे अथवा अन्य प्रकारसे अन्तर्मुहूर्ततक रहनेका नाम मारणान्तिक समुद्घात है।

शंका— वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घात ये दोनों मारणान्तिकसमुद्घातमें अन्तर्भूत क्यों नहीं होते हैं?

समाधान— वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घातका मारणान्तिक समुद्घातमें अन्तर्भाव नहीं होता है, क्योंकि, जिन्होंने परभवकी आयु बांध ली है, ऐसे जीवोंके ही मारणान्तिक समुद्घात होता है। किन्तु वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घात, बद्धायुष्क जीवोंके भी होते हैं और अबद्धायुष्क जीवोंके भी होते हैं। मारणान्तिक समुद्घात निश्चयसे आगे जहां उत्पन्न होना है ऐसे क्षेत्रकी दिशाके अभिमुख होता है। किन्तु अन्य समुद्घातोंके इस प्रकार एक दिशामें गमनका नियम नहीं है, क्योंकि, उनका दशों दिशाओंमें भी गमन पाया जाता है। मारणान्तिक समुद्घातकी लम्बाई उत्कृष्टतः अपने उत्पद्यमान क्षेत्रके अन्त तक है, किन्तु इतर समुद्घातोंका यह नियम नहीं है।

तैजस्कशरीरके विसर्पणका नाम तैजस्कशरीरसमुद्घात है। वह दो प्रकारका होता है, निस्सरणात्मक और अनिस्सरणात्मक। उनमें जो निस्सरणात्मक तैजस्कशरीरविसर्पण है वह भी दो प्रकारका है, प्रशस्ततैजस और अप्रशस्ततैजस। उनमें अप्रशस्तनिस्सरणात्मक

१ औपक्रमिकानुपक्रमायुःक्षयाविर्भूतमरणांतप्रयोजनो मारणान्तिकसमुद्घातः। त. रा. वा. १, २०.

२ आहारकमारणांतिकसमुद्घातावेकदिक्कौ × × शेषाः पंच समुद्घाताः षड्दिक्काः। त. रा. वा. १, २०. आहारमारणंतियदुगं पि णियमेण एगदिसिगं तु। दस दिसिगदा हु सेसा पंच समुग्घादया होंति॥ गो. जी. ६६९.

३ जीवानुग्रहोपघातप्रवणतेजःशरीरनिर्वर्तनार्थस्तेजःसमुद्घातः। त. रा. वा. १, २०.

४ तद् द्विविधं निःसरणात्मकमितरच्च। औदारिकवैक्रियिकाहारकदेहाभ्यंतरस्थं देहस्य दीप्तिहेतुरनिःसरणात्मकं। यतेरुग्रचरित्रस्यातिक्रुद्धस्य जीवप्रदेशसंपृक्तं बहिर्निष्क्रम्य दाह्यं परिवृत्यावतिष्ठमानं निर्दाहकहरितदरिद्रपूर्णस्थालीमग्निरिव पचति पक्त्वा च निवर्तते। अथ चिरमवतिष्ठते अग्निसाद्दाह्योर्थो भवति सदेतन्निःसरणात्मकं। त. रा. वा. २, ४९.

तं पि दुविहं, पसत्थमप्पसत्थं चेदि । तत्थ अप्पसत्थं बारहजोयणायामं णवजोयण-वित्थारं सूचिअंगुलस्स संखेज्जदिभागबाहल्लं जासवणकुसुमसंकासं भूमिपव्वदादि-डहणक्खमं, पडिवक्खरहियं रोसिंधणं वामंसप्पभवं इच्छियखेत्तमेत्तविसप्पणं । जं तं पसत्थं तं पि एरिसं चेव, णवरि हंसधवलं दक्खिणंससंभवं अणुकंपाणिमित्तं मारि-रोगादिपसमणक्खमं । जं तमणिस्सरणप्पयं तेजइयसरीरं तेणेत्थ अणधियारो । आहारसमुग्घादो णाम पत्तिद्धीणं महारिसीणं होदि[1] । तं च हत्थुस्सेधं हंसधवलं सव्वंगसुंदरं खणमेत्तेण अणेयजोयणलक्खगमणक्खमं अप्पडिहयगमणं उत्तमंगसंभवं, आणाकणिट्ठदाए असंजमबहुलदाए च लद्धप्पसरूवं[2] । केवलिसमुग्घादो[3] णाम दंड-कवाड-पदर-लोगपूरणभेएण चउव्विहो । तत्थ दंडसमुग्घादो णाम पुव्वसरीरबाहल्लेण तत्तिगुणबाहल्लेण वा सविक्खंभादो सादिरेयतिगुणपरिट्ठएण केवलिजीवपदेसाणं

तैजसकशरीरसमुद्घात, बारह योजन लम्बा, नौ योजन विस्तारवाला, सूच्यंगुलके संख्यातवें भाग मोटाईवाला, जपाकुसुमके सदृश लालवर्णवाला, भूमि और पर्वतादिके जलानेमें समर्थ, प्रतिपक्षरहित, रोषरूप इन्धनवाला, बायें कंधेसे उत्पन्न होनेवाला और इच्छित क्षेत्रप्रमाण विसर्पण करनेवाला होता है । तथा जो प्रशस्तनिस्सरणात्मक तैजसकशरीरसमुद्घात है, वह भी विस्तार आदिमें तो अप्रशस्ततैजसके ही समान है, किन्तु इतनी विशेषता है कि वह हंसके समान धवलवर्णवाला है, दाहिने कंधेसे उत्पन्न होता है, प्राणियोंकी अनुकम्पाके निमित्तसे उत्पन्न होता है और मारी, रोग आदिके प्रशमन करनेमें समर्थ होता है । इनमेंसे जो अनिस्सरणात्मक तैजसशरीरसमुद्घात है, उसका यहांपर अधिकार नहीं है ।

जिनको ऋद्धि प्राप्त हुई है, ऐसे महर्षियोंके आहारकसमुद्घात होता है । वह एक हाथ ऊंचा, हंसके समान धवल वर्णवाला, सर्वांगसुन्दर, क्षणमात्रमें कई लाख योजन गमन करनेमें समर्थ, अप्रतिहत गमनवाला, उत्तमांग अर्थात् मस्तकसे उत्पन्न होनेवाला तथा जो आज्ञाकी अर्थात् श्रुतज्ञानकी कनिष्ठता अर्थात् हीनताके होनेपर और असंयमकी बहुलताके होनेपर जिसने अपना स्वरूप प्राप्त किया है, ऐसा है ।

दंड, कपाट, प्रतर और लोकपूरणके भेदसे केवलिसमुद्घात चार प्रकारका है । उनमें जिसकी अपने विष्कंभसे कुछ अधिक तिगुनी परिधि है ऐसे पूर्वशरीरके बाहल्यरूप अथवा पूर्वशरीरसे तिगुने बाहल्यरूप दंडाकारसे केवलीके जीवप्रदेशोंका कुछ कम चौदह राजु

१ सं. प. सूत्र ५९ (प्र. भाग पृ. २९७; तृ. भाग प्रस्तावना शंका १८, पृ. २७.)

२ अथोक्तविधिनाऽल्पसावद्यसूक्ष्मार्थग्रहणप्रयोजनाऽऽहारकशरीरनिर्वर्त्यर्थं आहारकसमुद्घातः । त. रा. वा. १, २०. गो. जी. २३६, २३७.

३ वेदनीयस्य बहुतरादनस्वाच्चायुषोऽनाभोगपूर्वकमायुःसमकरणार्थं द्रव्यस्वभावत्वात् सुराद्रव्यस्य फेनवेगबुद्बुदादिभावोपशमदेहस्थात्मप्रदेशानां बहिःसमुद्घातनं केवलिसमुद्घातः । त. रा. वा. १, २०.

दंडागारेण देसूणचोद्दसरज्जुविसप्पणं । कवाडसमुग्घादो णाम पुव्विल्लबाहल्लायामेण वादवलयवदिरित्तसव्वखेत्तावूरणं । पदरसमुग्घादो णाम केवलिजीवपदेसाणं वादवलय-रुद्धलोगखेत्तं मोत्तूण सव्वलोगावूरणं । लोगपूरणसमुग्घादो णाम केवलिजीवपदेसाणं घणलोगमेत्ताणं सव्वलोगावूरणं । वुत्तं च—

वेदण-कसाय-वेउव्वियओ य मरणंतिओ समुग्घादो ।
तेजाहारो छट्ठो सत्तमओ केवलीणं तु[1] ॥ ११ ॥

उववादो एयविहो । सो वि उप्पण्णपढमसमए चेव होदि[2] । तत्थ उज्जुवगदीए उप्पण्णाणं खेत्तं बहुवं ण लब्भदि, संकोचिदासेसजीवपदेसादो । विग्गहो तिविहो, पाणिमुत्ता लांगलिओ गोमुत्तिओ चेदि । तत्थ पाणिमुत्ता एगविग्गहा[3] । विग्गहो

फैलनेका नाम दंडसमुद्घात है । दंडसमुद्घातमें बताये गये बाहल्य और आयामके द्वारा वातवलयसे रहित संपूर्ण क्षेत्रके व्याप्त करनेका नाम कपाटसमुद्घात है । केवली भगवानके जीवप्रदेशोंका वातवलयसे रुके हुए लोकक्षेत्रको छोड़कर संपूर्ण लोकमें व्याप्त होनेका नाम प्रतरसमुद्घात है । घनलोकप्रमाण केवली भगवानके जीवप्रदेशोंका सर्व लोकके व्याप्त करनेको केवलिसमुद्घात कहते हैं । कहा भी है—

विशेषार्थ— 'पूर्वशरीरके बाहल्यरूप अथवा पूर्वशरीरसे तिगुने बाहल्यरूप दंडाकारसे, ऐसा कहनेका अभिप्राय यह है कि जब खड्गासनसे विराजमान केवली भगवान् समुद्घात करते हैं उस अवस्थामें पूर्वशरीरके बाहल्यसे कुछ अधिक तिगुनी परिधिवाले दंडाकार आत्मप्रदेश होते हैं । तथा जब पद्मासनस्थ केवली भगवान् समुद्घात करते हैं, तब पूर्वशरीरसे तिगुने बाहल्यकी कुछ अधिक तिगुनी परिधिवाले दंडाकार आत्मप्रदेश निकलते हैं, इसलिए धवलाकारने 'पुव्वसरीरबाहल्लेण तस्सिगुणबाहल्लेण वा' ऐसा विशेषण दिया है ।

वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, वैक्रियिकसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात, तैजस-समुद्घात, छठा आहारकसमुद्घात और सातवां केवलिसमुद्घात इस प्रकार समुद्घात सात प्रकारका है ॥ ११ ॥

उपपाद एक प्रकारका है और वह भी उत्पन्न होनेके पहले समयमें ही होता है । उपपादमें ऋजुगतिसे उत्पन्न हुए जीवोंका क्षेत्र बहुत नहीं पाया जाता है, क्योंकि, इसमें जीवके समस्त प्रदेशोंका संकोच हो जाता है । विग्रह तीन प्रकारका है, पाणिमुक्ता, लांगलिक और गोमूत्रिक । इनमेंसे पाणिमुक्ता गति एक विग्रहवाली होती है । विग्रह, वक्र और कुटिल ये सब एकार्थवाची नाम हैं । लांगलिका गति दो विग्रहवाली होती है और गोमूत्रिका गति

१ गो. जी. ६६७.
२ परित्यक्तपूर्वभवस्य उत्तरभवप्रथमसमये प्रवर्तनमुपपादः । गो. जी. जी. प्र. ५४३.
३ एकविग्रहा गतिः पाणिमुक्ता । त. रा. भा. २, २८.

वक्को कुटिलो त्ति एगट्ठो[1] । लांगलिओ[2] दुविग्गहो[3] । गोमुत्तिओ तिविग्गहो[4] । तत्थ मारणंतिएण विणा विग्गहगदीए उप्पण्णाणं उजुगदीए उप्पण्णपढमसमयओगाहणाए समाणा चेव ओगाहणा भवदि । णवरि दोण्णमोगाहणाणं संठाणे समाणत्तणियमो णत्थि । कुदो ? आणुपुव्विसंठाणणामकम्मेहि जणिदसंठाणाणमेगत्तविरोधा । विग्गहगदीए मारणंतियं कादूणुप्पण्णाणं पढमसमए असंखेज्जजोयणमेत्ता ओगाहणा होदि, पुव्वं पसारिदएग-दो-तिदंडाणं पढमसमए उवसंघाराभावादो ।

तीन विग्रहवाली होती है । इनमेंसे मारणान्तिक समुद्घातके विना विग्रहगतिसे उत्पन्न हुए जीवोंके ऋजुगतिसे उत्पन्न हुए जीवोंके प्रथम समयमें होनेवाली अवगाहनाके समान ही अवगाहना होती है । विशेषता केवल इतनी है कि दोनों अवगाहनाओंके आकारमें समानता का नियम नहीं है, क्योंकि, आनुपूर्वी नामकर्मके उदयसे उत्पन्न होनेवाले और संस्थान नामकर्मके उदयसे उत्पन्न होनेवाले संस्थानोंके एकत्वका विरोध है ।

विशेषार्थ– यहांपर जो आनुपूर्वी और संस्थान नामकर्मसे जनित आकारोंमें एकत्वका विरोध बताया है उसका अभिप्राय यह है कि विग्रहगतिमें जीवके आकारमें आनुपूर्वी नामकर्मके उदयसे निमित्त है, क्योंकि, वहांपर संस्थान नामकर्मका उदय नहीं होता है[5] । किन्तु ऋजुगतिमें आनुपूर्वी नामकर्मका उदय नहीं है, क्योंकि, आनुपूर्वी नामकर्मका उदय कार्मणकाययोगवाली विग्रहगतिमें ही होता है । ऋजुगतिमें तो कार्मणकाययोग न होकर औदारिकमिश्र या वैक्रियिकमिश्रकाययोग ही होता है और गो. कर्मकांड आदिमें इन दोनों मिश्रयोगोंमें संस्थान नामकर्मका उदय बताया गया है, आनुपूर्वीका नहीं । इससे सिद्ध है कि ऋजुगतिसे उत्पन्न होनेवाले जीवके प्रथम समयमें ही विवक्षित क्षेत्रमें उत्पत्ति हो जानेसे संस्थान नामकर्मका उदय हो जाता है । इसलिए आनुपूर्वी और संस्थान नामकर्मोंसे उत्पन्न होनेवाले आकार भिन्न ही होंगे, एकसे नहीं । विग्रहगतिमें आनुपूर्वीके उदयसे जीवके पूर्व शरीरका आकार रहता है, किन्तु संस्थान नामकर्मके उदयसे वर्तमान पर्यायका आकार हो जाता है ।

मारणान्तिक समुद्घात करके विग्रहगतिसे उत्पन्न हुए जीवोंके पहले समयमें असंख्यात योजनप्रमाण अवगाहना होती है, क्योंकि, पहले फैलाये गये एक, दो और तीन दंडोंका प्रथम समयमें संकोच नहीं होता है ।

१ विग्रहो व्याघातः कौटिल्यमित्यर्थः । स. सि. २, २७. विग्रहो व्याघातः कौटिल्यमित्यनर्थान्तरम् त. रा. वा. २, २७.

२ म प्रत्योः ' लांगुलिओ ' इति पाठः ।

३ द्विविग्रहा गतिर्लांगलिका । त. रा. वा. २, २८.

४ त्रिविग्रहा गतिर्गोमूत्रिका । त. रा. वा. २, २८.

५ ओघं कम्मे सरगविपत्तेयाहाररालदुग मिस्सं । उवघादपणविगुव्वदुथीणतिसंठाणसंघयणी अथिरं ॥ गो. क. ३१८.

एदेहि दसहि विसेसणेहि जहासंभवं विसेसिदमिच्छाइट्ठिआदि-चोद्दसजीव-समासाणं खेत्तपरूवणं[1] कस्सामो। सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय-मारणंतिय-उववादेहि मिच्छाइट्ठी केवडि खेत्ते, सव्वलोगे। कुदो? जेण सव्वजीवरासिस्स संखेज्जदिभागेणूणो सव्वो जीवपुंजो सत्थाणसत्थाणरासी वट्टदे। वेदण-कसायसमुग्घादगदजीवा वि सव्वजीवरासिस्स संखेज्जदिभागमेत्ता। मारणंतियसमुग्घादगदजीवा वि सव्वजीव-रासिस्स संखेज्जदिभागमेत्ता। कुदो? एदेसिं तिण्हं रासीणं अप्पणो जीविदस्स संखेज्जदिभागमेत्तसमुग्घादकालत्तादो। उववादरासी पुण सव्वजीवरासिस्स असंखेज्जदिभागो[2], एगसमयसंचयादो। तेणेदे पंच वि रासिणो अणंता, तदो सव्वलोगे भवंति। विहारवदिसत्थाणमिच्छादिट्ठी केवडि खेत्ते[3], लोगस्स असंखेज्जदिभागे।

इस प्रकार स्वस्थानके दो भेद, समुद्घातके सात भेद और एक उपपाद, इन दश विशेषणोंसे यथासंभव विशेषताको प्राप्त मिथ्यादृष्टि आदि चौदह गुणस्थानोंके क्षेत्रका निरूपण करते हैं। स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टि जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं? सर्व लोकमें रहते हैं।

शंका— किस कारणसे?

समाधान— चूंकि, सर्व जीवराशिके संख्यातवें भागसे न्यून शेष सर्व जीवसमूह स्वस्थानस्वस्थान राशिरूप रहता है। तथा वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घातको प्राप्त हुए जीव भी सर्व जीवराशिके संख्यातवें भागप्रमाण हैं। मारणान्तिकसमुद्घातको प्राप्त हुए जीव भी सर्व जीवराशिके संख्यातवें भागप्रमाण हैं, क्योंकि, उक्त तीन राशियोंके समुद्घातका काल अपने जीवनकालके संख्यातवें भागप्रमाण है। उपपादराशि तो सर्व जीवराशिके असंख्यातवें भाग है, क्योंकि, उपपादराशिका संचय एक समयमें होता है। अतः स्वस्थानस्वस्थान आदि उक्त पांचों जीवराशियां अनन्त हैं और इसलिये वे सर्व लोकमें पाई जाती हैं।

विशेषार्थ— आगे मिथ्यादृष्ट्यादि चौदह गुणस्थानोंसे तथा मार्गणास्थानोंसे जीवोंका क्षेत्र सामान्यलोक, अधोलोक, ऊर्ध्वलोक, तिर्यक्लोक और मनुष्यलोक, इन पांच प्रकारके लोकोंकी अपेक्षा बतलाया गया है। तीनसौ तेतालीस घनराजुप्रमाण सर्वलोकको सामान्यलोक कहते हैं। एकसौ छयानवे घनराजुप्रमाण या चार राजु मोटे जगत्प्रतरप्रमाण लोकके अधोभागको अधोलोक कहते हैं। एकसौ सैंतालीस घनराजु या तीन राजु मोटे जगत्प्रतरप्रमाण लोकके ऊर्ध्वभागको ऊर्ध्वलोक कहते हैं। ऊर्ध्वलोक और अधोलोकके मध्यमें स्थित, पूर्व-पश्चिम दिशामें एक राजु चौड़े, उत्तर-दक्षिण दिशामें सात राजु लम्बे और एक लाख योजन ऊंचे क्षेत्रको तिर्यक्लोक या मध्यलोक कहते हैं। ढाई द्वीपप्रमाण विस्तृत अर्थात् पैंतालीस लाख

१ सामान्याधऊर्ध्वतिर्यग्मनुष्यलोकान् पंच संस्थाप्यालापः क्रियते। गो. जी. जी. प्र. टी. ५४३.

२ मरदि असंखेज्जदिमं तस्सासण्णा य विग्गहे होंति। तस्सासंखं दूरे उववादे तस्स खु असंखं॥ गो. जी. ५४४.

कुदो? ण ताव तसअपज्जत्तरासी विहरदि, तत्थ विहायगदिणामकम्मस्स उदयाभावा। तसपज्जत्तरासिस्स वि संखेज्जविभागो चेव विहरमाणरासी होदि। कुदो? ममेदं बुद्धीए पडिगहिदखेत्तं सत्थाणं णाम। तत्तो बाहिं गंतूणच्छणं विहारवदिसत्थाणं। तत्थच्छणकालो सगावासे अवट्ठाणकालस्स संखेज्जदिभागो त्ति। दोण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे। कुदो? चत्तारि रज्जुबाहल्लं जगपदरं अधोलोगपमाणं होदि। तिण्णि रज्जुबाहल्लं जगपदरमुड्ढलोगपमाणं होदि। एदे दोण्णि वि लोगे तसपज्जत्तरासिस्स

योजन चौड़े और एक लाख योजन ऊंचे क्षेत्रको मनुष्यलोक कहते हैं। एक लोकसामान्यके पांच भेद करनेका अभिप्राय यह है कि विवक्षित जीवके बताये गये क्षेत्रका ठीक परिमाण समझमें आ जावे। जहां जिन जीवोंका क्षेत्र सर्वलोक बताया जावे, वहां सामान्यलोकका ग्रहण करना चाहिए। जहां दो लोकोंका निर्देश किया जावे वहां अधोलोक और ऊर्ध्वलोक इन दो लोकोंका ग्रहण करना, जहां तीन लोकोंका निर्देश किया जाय, वहां अधोलोक, ऊर्ध्वलोक और तिर्यक्लोकका ग्रहण करना, तथा जहां चार लोकोंका निर्देश किया जाय, वहां मनुष्यलोकको छोड़कर शेष चारों लोकोंका ग्रहण करना चाहिए।

विहारवत्स्वस्थान मिथ्यादृष्टि जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं। चूंकि त्रसकायिक अपर्याप्तराशि तो विहार करती नहीं है, क्योंकि, त्रसकायिक अपर्याप्तोंमें विहायोगति नामकर्मका उदय नहीं होता है। त्रसकायिक पर्याप्तकोंके भी संख्यातवें भागप्रमाण राशि ही विहार करनेवाली होती है, क्योंकि, 'यह मेरा है' इस प्रकारकी बुद्धिसे स्वीकार किया गया क्षेत्र स्वस्थान है और उससे बाहर जाकर रहनेका नाम विहारवत्स्वस्थान है। उस विहारवत्स्वस्थान क्षेत्रमें रहनेका काल अपने आवासमें (स्वस्थानमें) रहनेके कालके संख्यातवें भागप्रमाण है, इसलिये विहारवत्स्वस्थान मिथ्यादृष्टि जीव दोनों लोकोंके अर्थात् अधोलोक और ऊर्ध्वलोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं। इसका कारण यह है कि अधोलोकका प्रमाण चार राजु मोटा जगत्प्रतर है और ऊर्ध्वलोकका प्रमाण तीन राजु मोटा जगत्प्रतर है। संख्यात घनांगुलगुणित त्रसकायिक पर्याप्तराशिके संख्यातवें भागसे इन दोनों ही लोकोंके भाजित करने पर जगत्श्रेणीका असंख्यातवां भाग लब्ध आता है।

विशेषार्थ— त्रसकायिक पर्याप्तक जीवोंका प्रमाण क्षेत्रकी अपेक्षा सूच्यंगुलके संख्यातवें भागके वर्गरूप भागहारसे भाजित जगत्प्रतर प्रमाण बताया गया है। इस प्रमाणवाली त्रसपर्याप्तराशिके भी संख्यातवें भागप्रमाण ही विहार करनेवाली राशि होती है। अब यदि एक त्रसपर्याप्तक जीवकी मध्यम अवगाहना संख्यात घनांगुल प्रमाण मानकर उससे विहार करनेवाली राशिके प्रमाणको गुणित भी किया जाय, तो भी उसका जगत्श्रेणीके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहना सिद्ध होता है, इसलिए यह सिद्ध होता है कि विहार करनेवाली त्रसराशि ऊर्ध्वलोक और अधोलोकके असंख्यातवें भागमें रहती है, क्योंकि, इन दोनों लोकोंका प्रमाण जगत्श्रेणीके वर्गसे भी बहुत अधिक है।

संखेज्जदिभागेण संखेज्जघणंगुलगुणिदेण ओवट्टिदे सेढीए असंखेज्जदिभागो आगच्छदि त्ति । संखेज्जघणंगुलगुणगारो कधमवगम्मदे ? वुच्चदे– सयंपहणगिंदपव्वयपरभागट्ठियतसपज्जत्तरासी पहाणो इयरकम्मभूमिजीवेहिंतो दीहाउवो महल्लोगाहणो य । भोगभूमीसु पुण विगलिंदिया णत्थि । पंचिंदिया वि तत्थ सुट्ठु थोवा, सुहकम्माहियजीवाणं बहुवाणमसंभवादो । सयंपहपव्वयपरभागट्ठियजीवाणमोगाहणा महल्लेत्ति जाणावणसुत्तमेदं–

संखो पुण बारह जोयणाणि गोम्ही भव तिकोसं तु ।
भमरो जोयणमेगं मच्छो पुण जोयणसहस्सो ॥ १२ ॥

एदाओ ओगाहणाओ घणंगुलपमाणेण कीरमाणे संखेज्जाणि घणंगुलाणि हवंति, तेण संखेज्जघणंगुलगुणगारो विहारवदिसत्थाणरासिस्स ठविदो । सयंपहणगिंदपव्वदस्स परदो जहण्णोगाहणा वि जीवा अत्थि त्ति चे ण, मूलग्गसमासं काऊणं

शंका– त्रसकायिक पर्याप्तराशिके संख्यातवें भागप्रमाण विहारवत्स्वस्थान राशिका गुणकार संख्यात घनांगुल है यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान– प्रकृतमें स्वयंप्रभनगेन्द्र पर्वतके परभागमें स्थित त्रसकायिक पर्याप्त जीवराशि प्रधान है, क्योंकि, यह राशि इतर कर्मभूमिज जीवोंकी अपेक्षा दीर्घायु और बडी अवगाहनावाली है । भोगभूमिमें तो विकलेन्द्रिय जीव नहीं होते हैं और वहांपर पंचेंद्रिय जीव भी स्वल्प होते हैं, क्योंकि, शुभ कर्मके उदयकी अधिकतावाले बहुत जीवोंका होना असंभव है ।

स्वयंप्रभ पर्वतके परभागमें स्थित जीवोंकी अवगाहना सबसे बड़ी होती है, इस बातका ज्ञान करानेके लिये यह गाथासूत्र है–

शंख नामक द्वीन्द्रिय जीव बारह योजनकी लम्बी अवगाहनावाला होता है । गोम्ही नामक त्रीन्द्रिय जीव तीन कोसकी लम्बी अवगाहनावाला होता है । भ्रमर नामक चतुरिन्द्रिय जीव एक योजनकी लम्बी अवगाहनावाला होता है और महामत्स्य नामक पंचेन्द्रिय जीव एक हजार योजनकी लम्बी अवगाहनावाला होता है ॥ १२ ॥

योजनों और कोसोंमें कही गई इन अवगाहनाओंको घनांगुलप्रमाणसे करनेपर संख्यात घनांगुल होते हैं, इस लिये विहारवत्स्वस्थानराशिका गुणकार संख्यात घनांगुल स्थापित किया है ।

शंका– स्वयंप्रभनगेन्द्र पर्वतके उस ओर अघन्य अवगाहनावाले भी जीव पाये जाते हैं ?

समाधान– नहीं, क्योंकि, अघन्य अवगाहनारूप मूल अर्थात् आदि और उत्कृष्ट अवगाहनारूप अन्त, इन दोनोंको जोड़कर आधा करनेपर भी संख्यात घनांगुल देखे जाते हैं । उत्कृष्ट और अघन्य अवगाहनाओंको जोड़कर आधा करनेपर संख्यात घनांगुल कैसे आते हैं, आगे इसका स्पष्टीकरण करनेके लिये उन द्वीन्द्रियादिकोंकी अवगाहनाओंमेंसे पहले भ्रमरक्षेत्रके घनफलके निकालनेका विधान कहते हैं–

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

अधवा कदे वि सखज्जघणंगुलदसणादो । तं कधं ? तत्थ ताव भमरखेत्ताणयणविधाणं भणिस्सामो । भमरखेत्तं[1] पुण जोयणायामं अद्धजोयणुस्सेहं जोयणद्धपरिहिविक्खंभं ठविय विक्खंभद्धमुस्सेहगुणमायामेण गुणिदे उस्सेहजोयणस्स तिण्णि-अट्ठभागा भवंति । ते घणंगुलाणि कीरमाणे पण्णरहसद-छत्तीसरूवेहि घणीकदेहि तिण्णिसय-बासट्ठिकोडीहि अट्ठहत्तरिसहस्साहिय-अट्ठत्तीसलक्खेहि छस्सद-छप्पण्णेहि य उस्सेधघण-जोयणाणि गुणिदे पमाणघणंगुलाणि हवंति । गोम्हि-आयामो उस्सेधजोयणतिण्णि

एक योजन लम्बे, आधे योजन ऊंचे और आधे योजनकी परिधिप्रमाण विष्कंभवाले भ्रमरक्षेत्रको स्थापित करके, विष्कंभके आधेको उत्सेधसे गुणा करके, जो लब्ध आवे उसे आयामसे गुणित करनेपर एक योजनके आठ भागोंमेंसे तीन भाग लब्ध आते हैं और यही भ्रमरक्षेत्रका घनफल है ।

उदाहरण– भ्रमरका आयाम १ योजन, उत्सेध $\frac{1}{2}$ योजन, विष्कंभ $\frac{1}{2}$ योजनकी परिधिप्रमाण । $\frac{1}{2}$ योजनकी स्थूल परिधि $1\frac{1}{2}$ योजन । $\frac{3}{2} \div 2 = \frac{3}{4}$; $\frac{3}{4} \times \frac{1}{2} = \frac{3}{8}$; $\frac{3}{8} \times 1 = \frac{3}{8}$ भ्रमरक्षेत्रका योजनोंमें घनफल ।

भ्रमरक्षेत्रके योजनमें आये हुए घनफलके घनांगुल करनेपर इस उत्सेध घनयोजनमें आये हुए घनफलको पन्द्रहसौ छत्तीसके घन तीनसौ बासठ करोड, अड़तीस लाख, अठहत्तर हजार, छहसौ छप्पनसे गुणित करनेपर प्रमाणघनांगुल होते हैं ।

उदाहरण– भ्रमरक्षेत्रका उत्सेध घनयोजनमें घनफल $\frac{3}{8}$; एक उत्सेध घनयोजनके प्रमाण घनांगुल $१५३६^3 = ३६२३८७८६५६$; $\frac{3}{8} \times ३६२३८७८६५६ = १३५८९५४४९६$ प्रमाण घनांगुलोंमें भ्रमरक्षेत्रका घनफल ।

विशेषार्थ– एक उत्सेध योजनमें सात लाख अडसठ हजार उत्सेधसूच्यंगुल होते हैं । इस नियमसे एक उत्सेधघनयोजनके घनांगुल करनेपर उसमें सात लाख अडसठ हजार को तीनवार रखकर परस्पर गुणा करनेसे जितना लब्ध आयेगा उतने उत्सेधघनांगुल होंगे । उत्सेधयोजनसे प्रमाणयोजन पांचसौ गुणा बडा होता है, अतएव इन उत्सेधघनांगुलोंके प्रमाणघनांगुल करनेके लिये उक्त अंगुलोंके प्रमाणमें पांचसौ के घनका भाग देनेपर ३६२३८७८६५६ घनांगुल आ जाते हैं और वह राशि १५३६ के घनप्रमाण पड़ती है ।

गोम्हीका आयाम उत्सेधयोजनके चार भागोंमेंसे तीन भाग प्रमाण है । विष्कंभ उत्सेधके आठवें भागप्रमाण है और बाहल्य विष्कंभसे आधा है । गोम्ही क्षेत्रका घनफल लानेके लिये

१ सप्पहावलपरमाणुट्ठियखेत्ते उप्पण्णममरस्स उक्कस्सोगाहणं × × × जोयणायामं अद्धजोयणुस्सेहं जोयणद्धपरिहिविक्खंभं ठविय विक्खंभद्धमुस्सेहगुणमायामेण गुणिदे उस्सेहजोयणस्स तिण्णिअट्ठभागा भवंति । तं चेदं $\frac{3}{8}$ । ते पमाणघणंगुला कीरमाणे एकसत्तसंचदोसकोडीए उणगउदिलक्ख-चउरुणसहस्स चउसय-छण्णउदि-रूवेहि गुणिदघणंगुलाणि हवंति । तं चेदं १३५८९५४४९६ । ति. प. प. १९५.

चउब्भागो, तदट्ठभागो विक्खंभो, विक्खंभद्धं बाहल्लं[1] । एदे तिण्णि वि परोप्परं गुणिदे उस्सेधजोयणघणस्स संखेज्जदिभागो आगच्छदि । तं पण्णरहसयछस्सीसरूवेहि घणीकरेहि गुणिदे पमाणघणंगुलाणि होंति । बारहजोयणायाम-चदुजोयणमुह-संखखेत्तफलं—

व्यासं तावत्कृत्वा वदनदलोनं मुखार्धवर्गयुतम् ।
द्विगुणं चतुर्विभक्तं सनाभिकेऽस्मिन् गणितमाहुः[2] ॥ १३ ॥

एदेण सुत्तेण आणिय मुहूणुस्सेहसहिदुस्सेहचदुब्भागेण गुणिय उस्सेह-घणजोयणाणि आणिय पुव्वुत्तगुणगारेण गुणिदे पमाणघणंगुलाणि होंति[3] ।

इन तीनोंके परस्पर गुणित करनेपर उत्सेधयोजनके घनका संख्यातवां भाग लब्ध आता है । इसे पन्द्रहसौ छप्पनके घनसे गुणित करनेपर गोम्हीके घनरूप क्षेत्रके प्रमाणघनांगुल आ जाते हैं ।

उदाहरण— गोम्हीका आयाम $\frac{3}{4}$ योजन; विष्कंभ $\frac{3}{8}$ योजन; बाहल्य $\frac{3}{16}$ योजन; $\frac{3}{4} \times \frac{3}{8} = \frac{9}{32}$; $\frac{9}{32} \times \frac{3}{16} = \frac{27}{512}$ उत्सेध घनयोजनमें गोम्हीक्षेत्रका घनफल । $\frac{27}{512} \times ३६२३८७८६५६ = ११९४३९३६$ प्रमाण घनांगुलोंमें गोम्हीक्षेत्रका घनफल ।

बारह योजन आयामवाले और चार योजन मुखवाले शंखक्षेत्रका क्षेत्रफल—

व्यासको उतनी ही बार करके अर्थात् व्यासका जितना प्रमाण है उतनीबार व्यासको रखकर जोड़नेपर जो लब्ध आवें उसमेंसे मुखके आधे प्रमाणको घटाकर, मुखके आधे प्रमाणके वर्गको जोड़ दें । इस प्रकार जो संख्या आवे उसे द्विगुणित करके पश्चात् चारका भाग दें । इस प्रकार जो लब्ध आवें, उसे शंखका क्षेत्रफल कहते हैं ॥ १३ ॥

इस सूत्रसे लाकर उस क्षेत्रफलको मुखसे हीन उत्सेधसहित उत्सेधके चौथे भागसे गुणित करके उत्सेध घनयोजन लाकर और पूर्वोक्त गुणकारसे गुणित करनेपर घनरूप शंखक्षेत्रके प्रमाणघनांगुल हो जाते हैं ।

---

१ सयंपहाचलपरभागट्ठियखेत्ते उप्पण्णगोहीए उक्कस्सोगाहणं × × उस्सेहजोयणस्स तिण्णिचउब्भागो आयामो, तदट्ठभागो विक्खंभो, विक्खंभद्धं बाहल्लं । एदे तिण्णि वि परोप्परं गुणिय पमाणघणंगुले कदे एक्केकोडीए उणवीस लक्खा तेदालसहस्सणवसयछस्सीसरूवेहि गुणिदघणंगुला होंति । ११९४३९३६ । ति. प. प. १९५.

२ आयामकदी मुहदलहीणा मुहवासअद्धवग्गजुदा । दिगुणा वेहेण हदा संखावत्तस्स खेत्तफलं ॥ त्रि. सा. ३२७

३ सयंपहाचलपरभागट्ठियखेत्ते उप्पण्णगोहीए उक्कस्सोगाहणा × × बारसजोयणायाम-चउजोयण-मुहसंखखेत्तफलं व्यासं तावत्कृत्वा वदनदलोनं मुखार्धवर्गयुतं । द्विगुणं चतुर्विभक्तं सनाभिकेऽस्मिन् गणितमाहुः ॥ एदेण सुत्तेण खेत्तफलमाणिदे तेहत्तरि उस्सेहजोयणाणि भवंति ७३ । आयामे मुहं सोहिय पुणरवि आयामसहिद-मुहमजियं बाहल्लं णायव्वं संखागारट्ठिये खेत्ते ॥ एदेण सुत्तेण बाहल्लं आणिदे पंच जोयणपमाणं होदि ५ । पुव्वमाणिदतेहत्तरिभूदखेत्तफलं पंचजोयणबहल्लेण गुणिदे अणजोयणाणि तिण्णिसयपण्णट्ठी होंति ३६५ । एदं घणपमाणंगुलाणि कदे एककलक्ख-बत्तीससहस्स-दोण्णिसय-एककहत्तरि कोडीओ सत्तावण्णलक्खणवसहस्स-चउसयचालीसरूवेहि गुणिदघणंगुलमेत्त होदि । तं चेदं १३२२७१५७०९४४० । ति. प. प. १९५.

जोयणसहस्सायामपंचसदुस्सेह-तदद्धवित्थार-महामच्छखेत्तं पि संखेज्जाणि पमाण-घणंगुलाणि होंति[1] । एत्थ घणंगुलस्स संखेज्जदिभागं पक्खिविय अद्धेण छिण्णे वि संखेज्जाणि पमाणघणंगुलाणि होंति त्ति सिद्धं । किं च विहारवदिसत्थाणे ण तिरिक्खखेत्तस्स पहाणत्तं, किंतु देवखेत्तस्सेव, पदरंगुलस्स संखेज्जदिभागमेत्तमुहेण संखेज्जजोयणसहस्सं विहरमाणदेवोगाहणाए संखेज्जघणंगुलसुवलंभादो । तेण संखेज्जघणंगुलोगाहणाए गुणेयव्वमिदि । असंखेज्जजोयणाणि विहरंता वि देवा अत्थि

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

उदाहरण— शंखक्षेत्रका आयाम १२ योजन; मुख ४ योजन ।

१२ × १२ = १४४; १४४ − ६ = १४२; १४२ + $(\frac{६}{२})^२$ = १४२ + ४ = १४६; १४६ × २ = २९२; २९२ ÷ ४ = ७३;

१२ − ४ = ८; १२ + ८ = २०; २० ÷ ४ = ५; ७३ × ५ = ३६५ उत्सेध घनयोजनोंमें शंखक्षेत्रका घनफल । ३६५ × ३६२३८७८६५६ = १३२२७१५७०९४४० प्रमाण घनांगुलोंमें शंखक्षेत्रका घनफल ।

एक हजार योजन आयाम, पांचसौ योजन उत्सेध और उत्सेधके आधे अर्थात् ढाईसौ योजन विस्तारवाले महामत्स्यका क्षेत्र भी घनफलरूप करनेपर संख्यात प्रमाणघनांगुल होता है ।

उदाहरण— महामत्स्यका आयाम १००० योजन; उत्सेध ५०० योजन; विष्कंभ २५० । १००० × ५०० = ५००००० ; ५००००० × २५० = १२५०००००० योजनोंमें घनफल । १२५०००००० × ३६२३८७८६५६ = ४५२९८४८३२०००००००० प्रमाण घनांगुलोंमें महामत्स्यका घनफल ।

इस प्रकार उत्कृष्ट अवगाहनारूपसे आये हुए इन प्रमाणघनांगुलोंमें घनांगुलके संख्यातवें भागप्रमाण जघन्य अवगाहनाको प्रक्षिप्त करके जो जोड़ हो उसे आधेसे छिन्न करनेपर भी संख्यात प्रमाण घनांगुल ही रहते हैं, यह सिद्ध हुआ ।

दूसरी बात यह है कि विहारवत्स्वस्थानमें तिर्यंचोंके क्षेत्रकी प्रधानता नहीं है, किन्तु देवक्षेत्रकी ही प्रधानता है, क्योंकि, प्रतरांगुलके संख्यातवें भागप्रमाण मुखरूपसे अर्थात् विष्कंभ और उत्सेधरूपसे विहार करनेवाले देवोंकी संख्यात हजार योजन प्रमाण अवगाहनामें घनफलरूपसे संख्यात घनांगुल पाये जाते हैं, इसलिये विहारवत्स्वस्थान राशिको संख्यात घनांगुलरूप अवगाहनासे गुणित करना चाहिये ।

[1] आयदचउरंसघणायट्ठियखेत्ते उप्पण्णसमुच्छिममहामच्छस्स सव्वुक्कस्सोगाहणा × × उस्सेहजोयणेण एक्कसहस्सायाम पंचसदविक्खंभ तदद्धउस्सेहं तं पमाणंगुले कीरमाणे चउसहस्स-पंचसय-एउणतीस-चाहीओ [illegible] -तेसीदिसहस्स-दुसदाकोडिकोडीहि गुणिदरूवाणघणंगुलाणि भवंति । तं जहा ४५२९८४८३२०००००००० । ति. प. प. १९६.

त्ति चे ण, तेसिं देवाणमसंखेज्जदिभागत्तेण पहाणत्ताभावादो। तं कुदो णव्वदे? 'तिरियलोगस्स संखेज्जदिभाए' त्ति वक्खाणादो। तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागत्तं कधं? तिरियलोगो णाम जोयणलक्खसत्तभागमेत्तसूचिअंगुलबाहल्लजगपदरमेत्तो। तं पुविल्लविहारवदिसत्थाणखेत्तेणोवट्टिदे संखेज्जरूवाणि लब्भंति। तेण तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे त्ति वुत्तं। अट्ठाइज्जखेत्तादो विहारवदिसत्थाणजीवखेत्तमसंखेज्जगुणं। कुदो? अट्ठाइज्जखेत्तम्हि संखेज्जघणंगुलदंसणादो।

शंका— असंख्यात योजनप्रमाण विहार करनेवाले भी देव होते हैं?

समाधान— नहीं, क्योंकि, असंख्यात योजनप्रमाण विहार करनेवाले देव सर्व देवराशिके असंख्यातवें भागमात्र हैं, अतः उनकी यहांपर प्रधानता नहीं है।

शंका— यह किस प्रमाणसे जाना जाता है?

समाधान— मिथ्यादृष्टि विहारवत्स्वस्थान राशि 'तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहती है' इस प्रकारके व्याख्यानसे उक्त बात जानी जाती है।

शंका— मिथ्यादृष्टि विहारवत्स्वस्थान राशिके रहनेका क्षेत्र तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमात्र कैसे है?

समाधान— एक लाख योजनमें सातका भाग देनेसे जितने सूच्यंगुल लब्ध आवें तत्प्रमाण बाहल्यरूप जगत्प्रतरप्रमाण तिर्यग्लोक है। इसे पूर्वोक्त विहारवत्स्वस्थानरूप क्षेत्रसे भाजित करनेपर संख्यातरूप लब्ध आते हैं, इसीलिये तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें मिथ्यादृष्टि विहारवत्स्वस्थानराशि रहती है, ऐसा कहा है।

विशेषार्थ— तिर्यग्लोक पूर्व-पश्चिम एक राजु चौडा, उत्तर-दक्षिण सात राजु लम्बा और एक लाख योजन ऊंचा है। इसे जगत्प्रतररूपसे करनेके लिये एक लाख योजनमें सातका भाग देना चाहिये, क्योंकि, तिर्यग्लोक भी उत्तर-दक्षिण सात राजु तो है ही, किन्तु पूर्व-पश्चिम जो एक राजुमात्र है उसे सात राजुप्रमाण प्रकल्पित करनेके लिये उत्सेधमें सातका भाग देनेसे उत्सेध एक लाख योजनका सातवां भाग रह जाता है और पूर्व-पश्चिममें सात राजुप्रमाण क्षेत्र हो जाता है। इस प्रकार एक लाख योजनके सातवें भागमें जितने सूच्यंगुल होंगे तत्प्रमाण बाहल्यरूप जगत्प्रतरप्रमाण तिर्यग्लोक आ जाता है। एक योजनमें ७६८००० सूच्यंगुल होते हैं, इसलिये एक लाख योजनके सातवें भागमें १०९७१४२८५७१३ सूच्यंगुल होंगे। अतएव १०९७१४२८५७१३ सूच्यंगुलप्रमाण जगत्प्रतर तिर्यग्लोक जानना चाहिये। प्रतरांगुलके संख्यातवें भागका जगत्प्रतरमें भाग देनेसे त्रसपर्याप्तराशिका प्रमाण आता है और इसके संख्यात एक भागप्रमाण विहारवत्स्वस्थानराशि है। विहारवत्स्वस्थानराशिमें एक जीवकी मध्यम अवगाहना संख्यात घनांगुल है तो पूर्वोक्त राशिका कितना क्षेत्र होगा, इस प्रकार त्रैराशिक करनेपर विहारवत्स्वस्थानराशिका क्षेत्र संख्यात सूच्यंगुल गुणित जगत्प्रतरप्रमाण आ जाता है जो तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागप्रमाण है।

वेउव्वियसमुग्घादगदमिच्छाइट्ठी केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे, दोण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे। एत्थ पुव्वं व ओवट्टणा कायव्वा। णवरि वेउव्वियसमुग्घादस्स जोदिसियरासी सत्तदंडुस्सेहो पहाणो, तेण जोइसियदेवाणं संखेज्जदिभागस्स संखेज्जघणंगुलाणि गुणगारो ठवेयव्वो। कुदो? संखेज्जजोयणसहस्सं विउव्वमाणदेवाणमुवलंभादो। असंखेज्जजोयणाणि णिरुंभिय विउव्वंता देवा अत्थि त्ति के वि ण, तेसिं देवाणमसंखेज्जदिभागत्तादो। सगोहिखेत्तमेत्तं सव्वे देवा विउव्वंति त्ति के वि भणंति[1], तं ण घडदे, 'तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे' त्ति वक्खाणादो। मिच्छाइट्ठिस्स सेस-तिण्णि विसेसणाणि ण संभवंति, तक्कारणसंजमादिगुणाणमभावादो। मिच्छाइट्ठिस्स सत्थाणादी सत्त विसेसा सुत्तेण अणुद्दिट्ठा अत्थि त्ति कधं णव्वदे?

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

विहारवत्स्वस्थान जीवोंका क्षेत्र ढाई द्वीपसे असंख्यातगुणा है, क्योंकि, अढाई द्वीपमें संख्यात प्रमाण घनांगुल ही देखे जाते हैं।

वैक्रियिकसमुद्घातको प्राप्त हुए मिथ्यादृष्टि जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं? सर्व लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें, ऊर्ध्वलोक और अधोलोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें तथा अढ़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं। यहांपर अपवर्तना पहलेके समान कर लेना चाहिये। इतनी विशेषता है कि वैक्रियिकसमुद्घातमें सात धनुष उत्सेधरूप अवगाहनासे युक्त ज्योतिष्कदेवराशि प्रधान है, इसलिये ज्योतिष्क देवोंके संख्यातवें भागप्रमाण वैक्रियिकसमुद्घातयुक्त राशिका क्षेत्र लानेके लिये संख्यात घनांगुल गुणकार स्थापित करना चाहिये, क्योंकि, संख्यात हजार योजनप्रमाण विक्रिया करनेवाले देव पाये जाते हैं।

शंका— असंख्यात योजन क्षेत्रको रोककर विक्रिया करनेवाले भी देव पाये जाते हैं?

समाधान— नहीं, क्योंकि, असंख्यात योजनप्रमाण विक्रिया करनेवाले देव सामान्य देवोंके असंख्यातवें भागमात्र ही होते हैं। कितने ही आचार्य ऐसा कहते हैं कि सभी देव अपने अवधिज्ञानके क्षेत्रप्रमाण विक्रिया करते हैं। परन्तु उनका यह कथन घटित नहीं होता है, क्योंकि, वैक्रियिकसमुद्घातको प्राप्त हुई राशि 'तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहती है' ऐसा व्याख्यान देखा जाता है।

मिथ्यादृष्टि जीवराशिके शेष तीन विशेषण अर्थात् आहारकसमुद्घात, तैजससमुद्घात और केवलिसमुद्घात संभव नहीं हैं, क्योंकि, इनके कारणभूत संयमादि गुणोंका मिथ्यादृष्टिके अभाव है।

१ णियणियओहिखेत्तं णाणारूवाणि तह विकुव्वंता। पूरंति असुरपहुदी भावणदेवा दस वियप्पा॥ ति. प. ३, १८२.

आइरियपरंपरागदुववेसादो। किं च 'मिच्छाइट्ठी' इदि सामण्णवयणेण एदे सत्त वि मिच्छाइट्ठिविसेसा सूचिदा चेव, एदव्वदिरित्तमिच्छाइट्ठीणमभावादो। सेस चत्तारि वि लोगा सुत्तेण सूचिदा चेव, सेसचदुण्हं लोगाणं लोगपुधभूदाणमणुवलंभादो। तम्हा सुत्तसंबद्धमेवेदं वक्खाणमिदि।

सासणसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभाए[1] ॥ ३ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थं भणिस्सामो। जदि वि सव्वगुणट्ठाणाणं पहुडिसद्दस्स ववत्थावाइयस्स संगहणसंभवो अत्थि, तो वि सजोगिगुणट्ठाणं णो गेण्हदि। कुदो? पुरदो भण्णमाणबाधगसुत्तदंसणादो। सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादपरिणदा केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे, तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो

शंका— स्वस्थानादि सात विशेषण सूत्रमें नहीं कहे गये हैं, फिर भी वे मिथ्यादृष्टि जीवके पाये जाते हैं, यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान— मिथ्यादृष्टि जीवके स्वस्थान आदि सात विशेषण पाये जाते हैं, यह बात आचार्यपरंपरासे आये हुए उपदेशसे जानी जाती है।

दूसरी यह बात है कि सूत्रमें आये हुए 'मिथ्यादृष्टि' इस सामान्य वचनसे स्वस्थान आदि सात विशेषण भी मिथ्यादृष्टिके विशेष हैं, यह सूचित हो ही जाता है, क्योंकि, इनको छोड़कर मिथ्यादृष्टि जीव नहीं पाये जाते हैं। इसी प्रकार घनलोकके अतिरिक्त ऊर्ध्वलोक, अधोलोक, तिर्यग्लोक और अढ़ाई द्वीपसम्बन्धी लोक, ये चार लोक भी सूत्रसे सूचित हो ही जाते हैं, क्योंकि, घनलोकसे पृथग्भूत उपर्युक्त शेष चार लोक नहीं पाये जाते हैं। इसलिये स्वस्थानस्वस्थानराशि आदिका व्याख्यान सूत्रसे संबद्ध ही है।

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थानतक प्रत्येक गुणस्थानके जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं ॥ ३ ॥

अब इस सूत्रका अर्थ कहते हैं। यद्यपि व्यवस्थावाची प्रभृति शब्दके बलसे सभी गुणस्थानोंका संग्रह संभव है, तो भी यहांपर सयोगिकेवली गुणस्थानका ग्रहण नहीं करना चाहिये, क्योंकि, आगे कहा जानेवाला इसका बाधक सूत्र देखा जाता है। स्वस्थानस्वस्थान,

१ सासादनसम्यग्दृष्ट्यादीनामयोगकेवल्यन्तानां लोकस्यासंख्येयभागः। स. सि. १, ८. सासणाइ सव्वे लोयस्स असंखयम्मि भागम्मि। पञ्चसं. २, ९६.

असंखेज्जगुणे अच्छंति। तं कधं? एदेसिं तिण्हं गुणट्ठाणाणं सोधम्मीसाणरासी पहाणो। तेसिमोगाहणा सत्तहत्थुस्सेहा, अंगुलगणणाए अट्ठसट्ठिसदुस्सेधंगुलपमाणा, एदस्स दसभागविक्खंभा। कुदो? जदो देव-मणुस्स-णेरइयाणमुस्सेधो दस-णव-अट्ठतालपमाणेण भणिदो। पुणो वासद्धं वग्गिय विगुणिय अट्ठसट्ठिसदुस्सेधंगुलेहि गुणिय घणीकदपंचसदंगुलेहि ओवट्टिदे पमाणघणंगुलस्स संखेज्जदिभागो आगच्छदि। एदेण तिण्हं गुणट्ठाणाणं सत्थाणादिरासिं ओघरासिस्स संखेज्जभागं[1] च गुणिदे तिण्हं

विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घातरूपसे परिणत हुए सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें, ऊर्ध्वलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें और अढ़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं।

शंका— यह कैसे?

समाधान— इन तीन गुणस्थानोंमें सौधर्म और ऐशानकल्पसंबन्धी देवराशि प्रधान है। उनकी अवगाहना सात हाथ उत्सेधरूप है और अंगुलकी अपेक्षा गणना करनेपर एकसौ अड़सठ अंगुलप्रमाण है। इसके दशवें भागप्रमाण उस अवगाहनाका विष्कंभ है।

शंका— यहांपर उत्सेधके दशवें भागप्रमाण विष्कंभ क्यों लिया है?

समाधान— चूंकि देव, मनुष्य और नारकियोंका उत्सेध दश, नौ और आठ तालके प्रमाणसे कहा गया है, इसलिये यहांपर उत्सेधके दशवें भागप्रमाण विष्कंभ लिया है।

पुनः व्यासके आधेका वर्ग करके और उसे दूना करके अनन्तर एकसौ अड़सठ उत्सेधके अंगुलोंसे गुणित करके पांचसौ अंगुलोंके घनसे अपवर्तित करनेपर प्रमाण घनांगुलका संख्यातवां भाग लब्ध आता है। इससे, सासादनसम्यग्दृष्टि आदि तीन गुणस्थानोंकी स्वस्थानस्वस्थान आदि राशियां जो कि सासादनसम्यग्दृष्टि आदि ओघराशिके उत्तरोत्तर संख्यातवें भागप्रमाण हैं, उन्हें गुणित करनेपर तीन गुणस्थानोंकी स्वस्थानस्वस्थान आदि राशियोंके क्षेत्र हो आते हैं।

विशेषार्थ— यहां स्वस्थानादि पदपरिणत सासादनादि तीन गुणस्थानवर्ती जीवोंके अढ़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहनेकी उपपत्ति बतलाई गई है। प्रकृतमें सौधर्म-ऐशान देवराशि प्रधान है। इन स्वर्गोंके एक देवकी अवगाहना ७ हाथ = १६८ उत्सेधअंगुल ऊंची तथा इसके दशमांश विष्कंभरूप होती है। तदनुसार एक देवकी अवगाहनाका घनफल इसप्रकार आता है—

उत्सेध १६८ अंगुल, विष्कम्भ $\frac{१६८}{१०}$ अंगुल।

$\left(\frac{१६८}{१०} \div \frac{१}{२}\right)^२ \times २ \times १६८$ एक देवकी अवगाहनाके उत्सेध घनांगुल।

१ आ प्रतौ 'संखेज्जभागमसंखेज्जदिभागं च' इति पाठः।

गुणट्ठाणाणं सत्थाणादिखेत्ताणि होंति। णवरि वेदण-कसायखेत्ताणि णवहि गुणेयव्वाणि, सरीरतिगुणविक्खंभादो। विहारवेउव्वियपदाणं संखेज्जाणि घणंगुलाणि। अथवा वेदणादिणा सरीरतिगुणसमुग्घादं करेंता सुट्ठु थोवा त्ति मज्झिमगुणगारो णवट्ठरूवपमाणो होदि। एदेहि लोगे भागे हिदे लद्धं विरलेदूण एक्केक्कस्स रूवस्स लोगं समखंडं कादूण दिण्णे एगभागो एदेहि रुद्धखेत्तं होदि। उड्ढलोगपमाणं तिण्णि रज्जुबाहल्लं जगपदरं। एत्थ वि ओवट्टणा पुव्वं व कादव्वा। अधोलोगपमाणं चत्तारि रज्जुबाहल्लं जगपदरं। तधा चेव ओवट्टणा। तिरियलोगपमाणं जोयणलक्ख-सत्तभागबाहल्लं जगपदरं। एत्थ वि ओवट्टणा पुव्वं व कायव्वा। एत्थ तिरियलोगपमाणे आणिज्जमाणे विक्खंभायामेहि एगरज्जुपमाणमेव तिण्हं

इसके प्रमाणांगुल हुए $\frac{\text{आवली}^2 \times \text{सूचिश्रेणि} \times \text{जगश्रेणि}}{२०} \times २ \times १६८ = \frac{९४८३२६४}{५००^3} = \frac{९२६१}{५०००००००००} = १९५३१२५$

यह राशि प्रमाणघनांगुलके संख्यातवें भाग हुई। इसे सौधर्म ईशान स्वर्गोंकी सासादनादि तीन गुणस्थानवर्ती राशियोंसे गुणा करनेपर तीनों गुणस्थानोंके स्वस्थानादि पदोंके क्षेत्रोंका प्रमाण आता है, जो तीनों लोकोंके असंख्यातवें भाग तथा अढ़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणा होता है।

इतनी विशेषता है कि वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घातका क्षेत्र लानेके लिये मूल अवगाहनाको नौ से गुणित करना चाहिये, क्योंकि, वेदना और कषाय समुद्घातमें उत्कृष्टरूपसे शरीरसे तिगुना विस्तार पाया जाता है। विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकसमुद्घातका क्षेत्र लानेके लिये संख्यात घनांगुल गुणकार होते हैं। अथवा, वेदनासमुद्घात आदिके द्वारा शरीरसे तिगुने समुद्घातको करनेवाले जीव स्वल्प हैं, इसलिये मध्यम गुणकार नौ के आधेरूप अर्थात् साढ़े चार होता है। इन पूर्वोक्त गुणकारोंसे लोकके भाजित करनेपर जो लब्ध आवे उसे विरलित करके और उस विरलित राशिके प्रत्येक एकके प्रति लोकको समान खंड करके देयरूपसे दे देनेपर प्रत्येक विरलनके प्रति जो एक भाग प्राप्त होता है उतना इन गुणकारोंसे रुद्ध क्षेत्र होता है। तीन राजुबाहल्यसे युक्त जगत्प्रतरप्रमाण ऊर्ध्वलोक है। यहांपर भी अपवर्तना पहलेके समान करनी चाहिये। चार राजु मोटा और जगत्प्रतरप्रमाण लंबा चौड़ा अधोलोक है। यहांपर भी पूर्वके समान अपवर्तना करनी चाहिये। एक लाख योजनमें सातका भाग देनेसे जितना लब्ध आवे उतना मोटा और जगत्प्रतरप्रमाण लंबा चौड़ा तिर्यग्लोक है। यहांपर भी अपवर्तना पहलेके समान करनी चाहिये। यहां तिर्यग्लोकका प्रमाण लानेपर विष्कंभ और आयामसे एक राजुप्रमाण ही है, अतः घनलोक, ऊर्ध्वलोक और अधोलोक इन तीन लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें तिर्यग्लोक है, ऐसा कितने ही आचार्य

लोगाणमसंखेज्जदिभागे तिरियलोगो होदि त्ति के वि आइरिया भणंति, तं ण घडदे, पुव्वब्भुवगमेण सह विरोधा। को सो पुव्वब्भुवगमो ? चत्तारि तिण्णि-रज्जुबाहल्ल-जगपदरपमाणा अध-उड्ढलोगा, सत्तरज्जुबाहल्लजगपदरपमाणो सव्वलोगो त्ति। माणुसलोगपमाणं पणदालीसजोयणसदसहस्सविक्खंभं जोयणसदसहस्सुस्सेधं[1]। पुणो विक्खंभस्सेधे अंगुलाणि करिय–

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

व्यासं षोडशगुणितं षोडशसहितं त्रिरूपरूपैर्भक्तम्।
व्यास-त्रिगुणितसहितं सूक्ष्मादपि तद्भवेत्सूक्ष्मम् ॥ १४ ॥

कहते हैं, परन्तु उनका इस प्रकारका कथन घटित नहीं होता है, क्योंकि, इस कथनका पूर्वमें स्वीकार किये गये कथनके साथ विरोध आता है।

शंका– वह पहले स्वीकार किया गया कथन कौनसा है ?

समाधान– चार राजु मोटा और जगत्प्रतरप्रमाण लंबा चौड़ा अधोलोक है। तीन राजु मोटा और जगत्प्रतरप्रमाण लंबा चौड़ा ऊर्ध्वलोक है। सात राजु मोटा और जगत्प्रतरप्रमाण लंबा चौड़ा सर्वलोक है, यही वह पूर्व स्वीकार किया गया कथन है।

पैंतालीस लाख योजन विष्कंभरूप और एक लाख योजन ऊंचा मानुषलोक है। पुनः पूर्वोक्त गुणकाररूप क्षेत्रसंबन्धी विष्कम्भ और उत्सेधके अंगुल करके–

व्यासको सोलहसे गुणा करे, पुनः सोलह जोड़े, पुनः तीन एक और एक अर्थात् एकसौ तेरहका भाग देवे और व्यासका तिगुना जोड़ देवे, तो सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म परिधिका प्रमाण होता है ॥ १४ ॥

विशेषार्थ– यहांपर मंडलाकार क्षेत्रकी परिधिका प्रमाण लानेकी प्रक्रिया बतलाई गई है। स्थूल मानसे तो परिधिका विस्तार व्याससे तिगुणा ले लिया जाता है, यथा-वासो तिगुणो परिही (त्रि. सा. १७) इससे भी सूक्ष्मप्रमाण वृत्ताकार वर्गमूल बतलाया गया है। यथा-विक्खंभवग्गदहगुणकरणी वट्टस्स परिरओ होदि (त्रि. सा. ९६)। किन्तु प्रस्तुत गाथामें इस सूक्ष्मप्रमाणसे भी सूक्ष्मतर प्रमाण निकालनेकी प्रक्रिया बतलाई गई है, जो इस प्रकार है–

उदाहरण– १ राजु व्यासके वृत्तक्षेत्रकी परिधिका प्रमाण इस प्रकारसे होगा–

$$\frac{१ \times १६ + १६}{११३} + \frac{१ \times ३}{१} = \frac{३७१}{११३} = ३\frac{३२}{११३} \text{ राजु}।$$

उसी प्रकार ७ राजु वृत्तक्षेत्रकी परिधिका प्रमाण इस प्रकार होगा–

$$\frac{७ \times १६ + १६}{११३} + \frac{७ \times ३}{१} = \frac{२५०१}{११३} = २२\frac{१५}{११३} \text{ राजु}।$$

१ तसणालीबहुमज्झे चित्तायं खिदीय उदरिमे भागे। अइवट्टो मणुवजगो जोयणलक्खायदक्खधिवट्टो॥ ति. प. ४, ६.

एदेण सुत्तेण परिट्ठियं कादूण विक्खंभचउब्भागेण गुणिदे जादाणि पदरंगुलाणि। पुणरवि उस्सेधेण गुणिदे संखेज्जाणि घणंगुलाणि जादाणि। पुव्वं व ओवट्टणा एत्थ कायव्वा। मारणंतिय-उववादगद-सासणसम्माविट्ठि-असंजदसम्माविट्ठीणमेवं चेव वत्तव्वं। णवरि ओघरासिमावलियाए असंखेज्जदिभागेण खंडेदूणेगभागो उववादं करेदि। तस्स वि असंखेज्जा भागा विग्गहगदीए उववादं करेंति त्ति ओघरासिस्स दो आवलियाए असंखेज्जदिभागा भागहारा ठवेदव्वा। पुणो रूवूणावलियाए असंखेज्जदि-भागो उवरि गुणगारो ठवेदव्वो। सेढीए संखेज्जदिभागायामविक्खियबंडट्ठियजीवे इच्छिय अवरो आवलियाए असंखेज्जदिभागो भागहारो ठवेयव्वो। उवरि घणंगुलस्स संखेज्जदिभागमवणिय पदरंगुलस्स संखेज्जदिभागं संखेज्जपदरंगुलाणि च गुणगारं ठविय किंचूणदिवड्ढरज्जूहि गुणिय ओवट्टेयव्वं। मारणंतियस्स एवं चेव वत्तव्वं। णवरि अप्पणो रासिस्स असंखेज्जदिभागो मारणंतियं करेदि। मारणंतियकालादो गुणकालस्स संखेज्जगुणत्तादो मारणंतियजीवा सग-सगसव्वजीवेहिंतो संखेज्जगुणहीणा किण्ण होंति? ण, मरंतजीवेहिंतो तम्हि चेव भवे मिच्छत्तं पडिवज्जमाणजीवाणम-

इस सूत्रके नियमानुसार परिधि करके व्यासके चौथे भागसे गुणित करनेपर प्रतरांगुल हो जाते हैं। पुनः इन प्रतरांगुलोंको उत्सेधसे गुणित करनेपर संख्यात घनांगुल हो जाते हैं। यहांपर भी पहलेके समान अपवर्तना करनी चाहिये। अर्थात् इन घनांगुलोंके प्रमाणघनांगुल करनेके लिये पांचसौके घनका भाग देना चाहिये।

मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादगत सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टियोंका इसी प्रकार कथन करना चाहिये। इतनी विशेषता है कि ओघ सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि राशिको आवलीके असंख्यातवें भागसे खंडित करके जो एक भाग लब्ध आवे उतनी राशि उपपाद करती है। तथा इस उपपादराशिके असंख्यात बहुभागप्रमाण जीव विग्रहगतिसे उपपाद करते हैं। इसलिये दो बार आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण ओघराशिके भागहार स्थापित करने चाहिये। तथा एक कम आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण ऊपर गुणकार स्थापित करना चाहिये। जगश्रेणीके संख्यातवें भाग लंबे दूसरे दंडमें स्थित जीवोंकी अपेक्षा फिर भी आवलीका असंख्यातवां भाग भागहार स्थापित करें और ऊपर घनांगुलके संख्यातवें भागको निकालकर उसके स्थानमें प्रतरांगुलके संख्यातवें भागप्रमाण और संख्यात प्रतरांगुलप्रमाण गुणकारको स्थापित करके, कुछ कम डेढ़ राजुसे गुणित करके अपवर्तित करना चाहिये, क्योंकि, मध्यलोकसे सौधर्मकल्प डेढ़ राजु ऊंचा है। मारणान्तिकसमुद्घातका भी इसी प्रकार कथन करना चाहिये। इतनी विशेषता है कि अपने अपने गुणस्थानसंबन्धी राशिके असंख्यातवें भागप्रमाण राशि मारणान्तिकसमुद्घात करती है।

शंका— मारणान्तिकसमुद्घातके कालसे गुणस्थानका काल संख्यातगुणा है, इसलिए मारणान्तिकजीव अपने अपने गुणस्थानके सर्व जीवोंसे संख्यातगुणे हीन क्यों नहीं होते हैं?

संखेज्जगुणत्तादो, उवसमसम्मत्तद्धावसेसे आउए उवसमसम्मत्तगुणं पडिवज्जंताण बहुवाणमभावादो, तत्तो तस्स संखेज्जगुणणियमाभावादो च । एत्थ उवरिमरासिस्स गुणगारो पुव्वुत्तो चेव होदि, देवरासिस्स पहाणत्तादो । उववादे पुण तिरिक्खरासी पहाणो। णवरि असंजदसम्माइट्ठि-उववादे देवा पहाणा, मारणंतिए तिरिक्खा पहाणा। सम्मामिच्छाइट्ठिस्स मारणंतिय-उववादा णत्थि, तग्गुणस्स तदुहयविरोहित्तादो ।

एवं संजदासंजदाणं । णवरि उववादो णत्थि, अपज्जत्तकाले संजमासंजमगुणस्स अभावादो । संजदासंजदाणमोगाहणगुणगारो धणंगुलं । मारणंतिए पदरंगुलं दादव्वं । वेगुव्वियपदेण सगरासिस्स असंखेज्जदिभागो आवलियाए असंखेज्जदिभागपडिभागेण । संजदासंजदाणं कधं वेउव्वियसमुग्घादस्स संभवो ? ण, ओरालियसरीरस्स विउव्वणप्पयस्स विण्हुकुमारादिसु दंसणादो[1] । संजदासंजदेसु वि मारणंतियरासी ओघरासिस्स असंखेज्जदिभागो । कारणं पुव्वं परूविदं ।

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

समाधान— नहीं, क्योंकि, मरण करनेवाले जीवोंसे उसी भवमें मिथ्यात्वको प्राप्त होनेवाले जीव असंख्यातगुणे होते हैं । अथवा, उपशमसम्यक्त्वके कालप्रमाण आयुके अवशिष्ट रहनेपर उपशमसम्यक्त्व गुणको प्राप्त होनेवाले बहुत जीव नहीं पाये जाते हैं और मारणान्तिकसमुद्घातके कालसे गुणस्थानका काल संख्यातगुणा होता है, ऐसा कोई नियम नहीं है ।

यहांपर उपरिम राशिका गुणकार पूर्वोक्त ही है, क्योंकि, यहां देवराशिकी प्रधानता है । उपपादमें तो तिर्यंचराशि प्रधान है । इतनी विशेषता है कि असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसंबन्धी उपपादमें देव प्रधान हैं । तथा असंयतगुणस्थानसंबन्धी मारणान्तिकसमुद्घातमें तिर्यंच प्रधान हैं । सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद नहीं होते हैं, क्योंकि, इस गुणस्थानका इन दोनों प्रकारकी अवस्थाओंके साथ विरोध है ।

इसी प्रकार संयतासंयतोंका क्षेत्र जानना चाहिये । इतना विशेष है कि संयतासंयतोंके उपपाद नहीं होता है, क्योंकि, अपर्याप्त कालमें संयमासंयम गुणस्थान नहीं पाया जाता है । संयतासंयतोंकी अवगाहनाका गुणकार धनांगुल है । मारणान्तिकसमुद्घातमें प्रतरांगुलरूप गुणकार देना चाहिये । वैक्रियिकपदसे आवलीके असंख्यातवें भागरूप प्रतिभागके द्वारा अपनी राशिका असंख्यातवां भाग लेना चाहिये ।

१ आह चोदकः जीवस्थाने योगभंगे सप्तविधकाययोगस्वामिप्ररूपणायामौदारिककाययोगः औदारिकमिश्रकाययोगश्च तिर्यङ्मनुष्याणां, वैक्रियिककाययोगो वैक्रियिकमिश्रकाययोगश्च देवनारकाणामुक्तः, इह तिर्यङ्मनुष्याणामपीत्युच्यते, तदिदमार्षविरुद्धं, इत्यत्रोच्यते— न, अन्यथोपदेशात् । व्याख्याप्रज्ञप्तिदंडकेषु शरीरभंगे वायोरौदारिकवैक्रियिकतैजसकार्मणानि चत्वारि शरीराण्युक्तानि, मनुष्याणां च । एवमप्यार्षयोस्तयोर्विरोधः ? न विरोधः; आभिप्रायकत्वात् । जीवस्थाने सर्वदेवनारकाणां सर्वकालवैक्रियिकदर्शनात् सङ्योगविधिरित्यभिप्रायः । नैवं तिर्यङ्मनुष्याणां लब्धिप्रत्ययवैक्रियिकं सर्वेषां सर्वकालमस्ति कादाचित्कत्वाद् व्याख्याप्रज्ञप्तिदंडकेष्वस्तित्वमात्रमभिप्रेत्योक्तं । त. रा. वा. २, ४९.

पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति जहण्णिया ओगाहणा आहट्ठरयणीओ[1], उक्कस्सिया पंचसद-पणवीसुत्तरधणूणि[2]। एदाओ दो वि ओगाहणाओ भरह-इरावएसु चेव होंति, ण विदेहेसु, तत्थ पंचसदधणुस्सेधणियमा[3]। तत्तो थोवूणुस्सेधो वा विदेहसंजदरासी जदो सव्वुक्कस्सो होदि, सो पधाणो, पंचधणुस्सुस्सेहाविणाभावित्तादो। एत्थ अंगुल[4] कदउस्सेहपत्तरुंदो विक्खंभो त्ति कट्टु परिट्ठयमद्धं करिय विक्खंभद्धेण गुणिय उस्सेहेण गुणिदे संखेज्जाणि घणंगुलाणि जादाणि। एदेहि संखेज्जघणंगुलेहि अप्पप्पणो रासिं गुणिदे इच्छिदखेत्तं होदि। णवरि आहारसरीरस्स उस्सेधो एया रयणी, उस्सेहवसमभागो तस्स विक्खंभो, दिव्वत्तादो। विहारे संखेज्जघणंगुलाणि सत्थाणसमाणोगाहणमूहमच्छिण्णपउमणालसुत्तसंताणं व मूलाहारसरीराणमंतरे जीवपदेसाणमवट्ठाणादो। ण च सरीरादो-गदजीवपदेसाणं पुणो

शंका– संयतासंयतोंके वैक्रियिकसमुद्घात कैसे संभव है ?

समाधान– नहीं, क्योंकि, विष्णुकुमार आदिमें विक्रियात्मक औदारिकशरीर देखा जाता है।

संयतासंयतोंमें भी मारणान्तिकसमुद्घातको प्राप्त जीवराशि ओघसंयतासंयत राशिके असंख्यातवें भागप्रमाण होती है। इसके कारणका प्ररूपण पहले कर आये हैं। प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक जीवोंकी जघन्य अवगाहना साढ़े तीन रत्निप्रमाण है और उत्कृष्ट अवगाहना पांचसौ पच्चीस धनुष है। ये दोनों ही अवगाहनाएं भरत और ऐरावत क्षेत्रमें ही होती हैं, विदेहमें नहीं, क्योंकि, विदेहमें पांचसौ धनुषके उत्सेधका नियम है। अतः पांचसौ पच्चीस धनुषसे कुछ कम उत्सेधवाली विदेहक्षेत्रस्थ संयतराशि चूंकि सबसे अधिक होती है, इसलिये यहांपर वह राशि प्रधान है, क्योंकि, विदेहस्थ संयतराशिका पांचसौ धनुषकी ऊंचाईके साथ अविनाभावसंबन्ध पाया जाता है। यहांपर अंगुलोंमें किये गये (मनुष्योंके) उत्सेधका नौवां भाग विष्कंभ होता है, ऐसा समझकर विष्कंभकी परिधिको आधा करके और विष्कंभके आधेसे गुणित करके उत्सेधसे गुणित करनेपर संख्यात घनांगुल हो जाते हैं। इन संख्यात घनांगुलोंसे अपनी अपनी राशिके गुणित करनेपर इच्छित गुणस्थानसंबन्धी क्षेत्र होता है। इतनी विशेषता है कि आहारकशरीरका उत्सेध एक रत्निप्रमाण है। तथा उत्सेधके दशवें भागप्रमाण उसका विष्कंभ है, क्योंकि, यह शरीर दिव्यस्वरूप है। इसका विहारमें संख्यात घनांगुल क्षेत्र होता है। उस समय इस शरीरका मूल अर्थात् विष्कंभ और उत्सेध स्वस्थानस्वस्थानके समान अवगाहनाप्रमाण है, क्योंकि, मूल और आहारक शरीरके अन्तरालमें पद्मनालके अच्छिन्न सूत्रसंतानके समान जीवप्रदेशोंका अवस्थान पाया जाता है। शरीरसे

१ मध्यांगुलीकूर्परयोर्मध्ये प्रामाणिकः करः। ध्रुवमुष्टिकरो रत्निररत्निः सकनिष्ठिका। हलायु. कोष.

२ आहट्ठहत्थपहुदी पणुवीसब्भहियपणसयधणूणि ॥ ति. प. १, ९२.

३ पंचसयचावतुंगा × × ति. प. ४, ५८. ४ प्रतिषु 'अंगुलकद' इति पाठः।

तत्थ पवेसाभावो, समुग्घादगदकेवलिजीवपवेसेहि विय हियारादो। एदाणि खेत्ताणि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो त्ति पमत्तादओ चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे अच्छंति, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभाग। मारणंतियस्स सत्तरज्जूहि संखेज्जपदरंगुल-गुणिदइच्छिदसंजदरासी गुणेदव्वो। तेण मारणंतियसमुग्घादगदसंजदा माणुसलोगादो असंखेज्जगुणे खेत्ते अच्छंति। एवं सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-

निकले हुए जीवप्रदेशोंका फिरसे शरीरमें प्रवेश नहीं होता है, सो भी बात नहीं है, क्योंकि, ऐसा माननेपर समुद्घातगत केवलीके जीवप्रदेशोंके साथ व्यभिचार आ जाता है। ये सब क्षेत्र सामान्य आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं, इसलिये प्रमत्तसंयत आदि राशियां चार लोकोंके असंख्यातवें भाग क्षेत्रमें रहती हैं, तथा मानुषक्षेत्रके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहती हैं। मारणान्तिकसमुद्घातका क्षेत्र लानेके लिये जिस अभीष्ट संयतराशिका क्षेत्र लाना हो उसे संख्यात प्रतरांगुलोंसे गुणित करके जो लब्ध आवे उसे सात राजुओंसे गुणित करना चाहिये। इस कारण मारणान्तिकसमुद्घातको प्राप्त हुए संयत जीव मानुषलोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं।

विशेषार्थ– यहां प्रमत्तसंयत गुणस्थानवर्ती जीवोंका मारणान्तिकसमुद्घातसंबन्धी क्षेत्रके लानेके लिए अभीष्ट राशिको संख्यात प्रतरांगुलोंसे गुणित करके पुनः सात राजुओंसे गुणित करनेका विधान कहा है। इसका अभिप्राय यह है कि संयत जीव सौधर्मकल्पसे लेकर सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त उत्पन्न होते हैं और इसीलिए वे वहांतक मारणान्तिकसमुद्घात भी कर सकते हैं। सर्वार्थसिद्धि मध्यलोकसे लगाकर कुछ कम ७ राजु ऊंची है। तथा एक संयतकी उत्कृष्ट अवगाहना भी संख्यात प्रतरांगुल प्रमाण ही होती है। अतः उत्कृष्ट मारणान्तिक-समुद्घातक्षेत्रकी अपेक्षा सात राजुओंसे संख्यात प्रतरांगुलोंके गुणित करनेका विधान किया गया है। एक संयतकी उत्कृष्ट अवगाहनाके प्रतरांगुल इस प्रकार आते हैं–

उत्सेध ५०० धनुष; विष्कम्भ $\frac{५००}{९}$ धनुष;

परिधि $\frac{\frac{५००}{९} \times १६ + १६}{११३} + \frac{५००}{९} \times \frac{३}{१} = \frac{१७७६४४}{१०१७}$

क्षेत्रफल $\frac{१७७६४४}{१०१७} \times \left(\frac{५००}{९} \times \frac{१}{४}\right) = \frac{८८८१२०००}{३६६१२}$ धनुष।

$= \frac{८८८१२०००}{३६६१२} \times \frac{९६}{१} = \frac{८५२५९५२०००}{३६६१२}$ प्रतरांगुल

सर्व संयत राशिका प्रमाण ८९९९९९९७ इतना है,। इसमेंसे प्रमत्तादि गुणस्थानोंकी यथायोग्य राशिके संख्यातवें भागप्रमाण राशि ही मारणान्तिकसमुद्घात करती है। अतएव उससे पूर्वमें निकाले गये एक अवगाहनाके प्रतरांगुलोंसे गुणित करनेपर भी संख्यात प्रतरांगुल ही

वेउव्वियाहार-मारणंतियसमुग्घादाणं उत्तं। णवरि तेजासमुग्घादस्स विक्खंभायामे णव बारहजोयणपमाणे कदंगुले अण्णोण्णं गुणिय बाहल्लेण गुणिदे तेजासमुग्घादखेत्तं होदि। एदं सप्पाओग्गसंखेज्जरूवेहि गुणिदे सव्वखेत्तसमासो होदि। ओवट्टणा पुव्वं व।

अप्पमत्तसंजदा सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाणत्था केवडि खेत्ते, चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागे। मारणंतिय-अप्पमत्ताणं पमत्त-संजदभंगो। अप्पमत्ते सेसपदा णत्थि। चदुण्हमुवसमा सत्थाणसत्थाण-मारणंतियपदेसु पमत्तसमा। चदुण्हं खवगाणं अजोगिकेवलीणं च सत्थाणसत्थाणं पमत्तसमं। खवगुवसामगाणं णत्थि वुत्तसेसपदाणि। खवगुवसामगाणं ममेदंभावविरहिदाणं कधं सत्थाणसत्थाणपदस्स संभवो? ण एस दोसो, ममेदंभावसमण्णिदगुणेसु तहा गहणादो। एत्थ पुण अवट्ठाणमेत्तगहणादो।

होते हैं। इस प्रकार मारणान्तिकसमुद्घातको प्राप्त समस्त संयतोंका क्षेत्र संख्यात प्रतरांगुल गुणित सात राजु होता है, जब कि तिर्यक्लोक एक लाख योजनके सातवें भागप्रमाण मोटे जगप्रतरप्रमाण है। अतः उक्त मारणान्तिक समुद्घातका क्षेत्र चारों लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण होता है। तथा मनुष्यलोक ४५ लाख चौड़ा और १ लाख योजन ही ऊंचा है। अतः संयतोंका मारणान्तिकक्षेत्र मनुष्यलोकसे असंख्यात गुणा सिद्ध होता है।

इस प्रकार उक्त क्षेत्र स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक, आहारक और मारणान्तिकसमुद्घातवाले जीवोंका कहा। इतनी विशेषता है कि तैजससमुद्घातके नौ योजनप्रमाण विष्कंभ और बारह योजनप्रमाण आयाम क्षेत्रके किये हुए अंगुलोंका परस्पर गुणा करके सूच्यंगुलके संख्यातवें भागप्रमाण बाहल्यसे गुणित करनेपर तैजससमुद्घातका क्षेत्र होता है। इसे इसके योग्य संख्यातसे गुणित करनेपर तैजससमुद्घातके सर्वक्षेत्रका जोड़ होता है। यहांपर अपवर्तना पहलेके समान जाननी चाहिये।

स्वस्थानस्वस्थान और विहारवत्स्वस्थानरूपसे परिणत अप्रमत्तसंयत जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं? सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं और मानुषक्षेत्रके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं। मारणान्तिकसमुद्घातको प्राप्त हुए अप्रमत्तसंयतोंका क्षेत्र मारणान्तिकसमुद्घातको प्राप्त हुए प्रमत्तसंयतोंके क्षेत्रके समान होता है। अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें उक्त तीन स्थानोंको छोड़कर शेष स्थान नहीं होते हैं। उपशमश्रेणीके चारों गुणस्थानवर्ती उपशामक जीव स्वस्थानस्वस्थान और मारणान्तिकसमुद्घात इन दोनों पदोंमें स्वस्थानस्वस्थान और मारणान्तिकसमुद्घातगत प्रमत्तसंयतोंके समान होते हैं। क्षपकश्रेणीके चार गुणस्थानवर्ती क्षपक और अयोगिकेवली जीवोंका स्वस्थानस्वस्थान प्रमत्तसंयतोंके स्वस्थानस्वस्थानके समान होता है। क्षपक और उपशामक जीवोंके उक्त स्थानोंके अतिरिक्त शेष स्थान नहीं होते हैं।

शंका— यह मेरा है, इस प्रकारके भावसे रहित क्षपक और उपशामक जीवोंके स्वस्थानस्वस्थान नामका पद कैसे संभव है?

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

सजोगिकेवली केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे, असंखेज्जेसु वा भागेसु, सव्वलोगे वा ॥ ४ ॥

एत्थ सजोगिकेवलिस्स सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाणाणं पमत्तभंगो। दंडगदो केवली केवडि खेत्ते, चउण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे। तं कधं? अट्ठुत्तरसदपमाणंगुलाणि उस्सेधो उक्कस्सोगाहणकेवलीणं होदि। तस्स णवमभागो विक्खंभो १२ एत्तिओ होदि। तस्स परिट्ठओ सत्ततीस अंगुलाणि पंचाणउदि-तेरससदभागा ३७$\frac{९५}{११३}$। इमं विक्खंभचउब्भागेण गुणिदे मुहपदरंगुलाणि होंति। एदाणि देसूणचोद्दसरज्जूहि गुणिदे दंडखेत्तं होदि।

समाधान– यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, जिन गुणस्थानोंमें 'यह मेरा है' इस प्रकारका भाव पाया जाता है वहां वैसा ग्रहण किया है। परन्तु यहांपर अर्थात् क्षपक और उपशामक गुणस्थानोंमें अवस्थानमात्रका ग्रहण किया गया है।

सयोगिकेवली जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें, अथवा लोकके असंख्यात बहुभागप्रमाण क्षेत्रमें, अथवा सर्वलोकमें रहते हैं ॥ ४ ॥

यहांपर सयोगिकेवलीका स्वस्थानस्वस्थान और विहारवत्स्वस्थान क्षेत्र प्रमत्तसंयतोंके स्वस्थानस्वस्थान और विहारवत्स्वस्थान क्षेत्रके समान होता है। दंडसमुद्घातको प्राप्त हुए केवली जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं? सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें और अढ़ाईद्वीपसंबन्धी लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं।

शंका– दंडसमुद्घातको प्राप्त हुए केवलियोंका उक्त क्षेत्र कैसे संभव है।

समाधान– उत्कृष्ट अवगाहनासे युक्त केवलियोंका उत्सेध एकसौ आठ प्रमाणांगुल होता है और उसका नौवां भाग अर्थात् बारह प्रमाणांगुल विष्कंभ होता है इसकी परिधि सैंतीस अंगुल और एक अंगुलके एकसौ तेरह भागोंमेंसे पंचानवे भागप्रमाण ३७$\frac{९५}{११३}$ होती है। इसे विष्कंभ बारह अंगुलके चौथे भाग तीन अंगुलोंसे गुणित करनेपर मुखरूप बारह अंगुल लंबे और बारह अंगुल चौड़े गोल क्षेत्रके प्रतरांगुल होते हैं। इन्हें कुछ कम चौदह राजुओंसे गुणित करनेपर दंड क्षेत्रका प्रमाण आता है। यह एक केवलीके दंडक्षेत्रका प्रमाण हुआ।

उदाहरण– व्यास १२ अंगुल; अतएव गाथा नं. १४ के अनुसार उसकी परिधिका

प्रमाण– $\frac{१२ \times १६ + १६}{११३} + \frac{३६}{१} = \frac{४२७६}{११३} = ३७\frac{९५}{११३}$ अंगुल।

क्षेत्रफल– $\frac{४२७६}{११३} \times \frac{१२}{४}$ (व्यासका चतुर्थांश) $= \frac{१२८२८}{११३}$ प्रतरांगुल।

अतएव दंडसमुद्घातगत केवलीका क्षेत्रप्रमाण $= \frac{१२८२८}{११३} \times$ देशोन १४ राजु।

एदं संखेज्जरूवगुणं तेरासियकमेण चदुहि लोगेहि भागे हिदे तेसिं लोगाणमसंखेज्जदिभागो आगच्छदि। माणुसलोगेण भागे हिदे असंखेज्जाणि माणुसखेत्ताणि आगच्छंति। णवरि पलियंकेण दंडसमुग्घादगदकेवलिस्स विक्खंभो पुव्वविक्खंभादो तिगुणो होदि। तस्स पमाणमेदं ३६। एदस्स परिरओ तेरहुत्तरसदंगुलाणि सत्तावीसतेरहुत्तरसदभागा ११३$\frac{२७}{११३}$। सेसं पुव्वं व।

कवाडगदो केवली केवडि खेत्ते, तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, (तिरिय-

विशेषार्थ– यहांपर दंडसमुद्घात क्षेत्रका प्रमाण केवलीकी उत्कृष्ट अवगाहना १०८ प्रमाणांगुल लेकर बतलाया है। किन्तु इससे पूर्व ही केवलीकी उत्कृष्ट अवगाहना ५२५ धनुष प्रमाण कही गई है। चूंकि उत्सेधांगुलसे प्रमाणांगुल ५०० गुणा होता है, इसलिये ५२५ धनुषके प्रमाणांगुल $\frac{५२५ \times ९६}{५००} = १००\frac{४}{५}$ होते हैं। वर्तमान प्रकरणमें विदेहक्षेत्रकी संयतराशि प्रधान है। अतएव यदि विदेहसम्बन्धी अवगाहना ली जाय, तो वह $\frac{५०० \times ९६}{५००} = ९६$ प्रमाणांगुल ही होती है। १०८ प्रमाणांगुलके धनुष $\frac{१०८ + ५००}{९६} = ५६२\frac{१}{२}$ होते हैं जो उक्त ५२५ धनुषके प्रमाणसे बढ़ जाते हैं। इस वैषम्यका कारण विचारणीय है।

एक साथ समुद्घात करनेवाले संख्यात केवलियोंके दंडक्षेत्रका प्रमाण लानेके लिये इसे संख्यातसे गुणित करें। इस प्रकार जो क्षेत्र उत्पन्न हो उसे त्रैराशिकके क्रमसे सामान्यलोक आदि चार लोकोंसे भाजित करनेपर उन चार लोकोंमेंसे प्रत्येक लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण दंडक्षेत्र आता है। तथा उक्त दंडक्षेत्रको मानुषलोकसे भाजित करने पर असंख्यात मानुषक्षेत्र लब्ध आते हैं। इतनी विशेषता है कि पल्यंकासनसे दंडसमुद्घातको प्राप्त हुए केवलीका विष्कंभ पहले कहे हुए बारह अंगुलप्रमाण विष्कंभसे तिगुना होता है। उसका प्रमाण ३६ अंगुल है। इसकी परिधि एकसौ तेरह अंगुल और एक अंगुलके एकसौ तेरह भागोंमेंसे सत्ताईस भागप्रमाण ११३$\frac{२७}{११३}$ है।

उदाहरण– व्यास ३६; अतएव गाथा नं. १४ के अनुसार परिधिका प्रमाण–

$$\frac{३६ \times १६ + १६}{११३} + \frac{१०८}{१} = ११३\frac{२७}{११३}$$

शेष कथन पूर्वके समान है।

कपाटसमुद्घातको प्राप्त हुए केवली कितने क्षेत्रमें रहते हैं? सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं। अब यहांपर कपाटसमुद्घातको प्राप्त हुए केवलीका क्षेत्र लानेका विधान कहते हैं–

लोगस्स संखेज्जदिभागे,) अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे। एत्थ कवाडगदकेवलिस्स खेत्ताणयणविहाणं वुच्चदे– केवली पुव्वाहिमुहो वा उत्तराहिमुहो वा समुग्घादं करेंतो जदि पलियंकेण समुग्घादं करेदि, तो कवाडबाहल्लं छत्तीसंगुलाणि होंति। अह जइ काउस्सग्गेण कवाडं करेदि, तो बारहंगुलबाहल्लं कवाडं होदि। तत्थ ताव पुव्वाहिमुहकेवलिस्स कवाडखेत्ताणयणं भण्णमाणे चोद्दसरज्जुआयामं सत्तरज्जुविक्खंभं छत्तीसंगुलबाहल्लं खेत्तं ठविय मज्झे छेत्तूण एक्कक्खेत्तस्सुवरि विदियखेत्तं ठविदे बाहत्तरिअंगुलबाहल्लं जगपदरं होदि। काउस्सग्गेण ट्ठिदकेवलिकवाडखेत्तं चउव्वीसंगुलबाहल्लं होदि। उत्तराहिमुहो होदूण पलियंकेण समुग्घादगदकेवलिकवाडखेत्तं छत्तीसंगुलबाहल्लं जगपदरं होदि। इयरस्स १२ बारहंगुलबाहल्लं, वेयणाए विणा तिगुणत्ताभावा। एवं खेत्तं तेरासियकमेण तिण्हं लोगाणं पमाणेण कीरमाणे तेसिं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स पुण संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणं होदि।

पदरगदो केवली केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जेसु भागेसु। लोगस्स असंखेज्जदिभागं वादवलयरुद्धखेत्तं मोत्तूण सेसबहुभागेसु अच्छदि त्ति जं वुत्तं

केवली जिन पूर्वाभिमुख अथवा उत्तराभिमुख होकर समुद्घातको करते हुए यदि पल्यंकासनसे समुद्घातको करते हैं तो कपाटक्षेत्रका बाहल्य छत्तीस अंगुल होता है और यदि कायोत्सर्गसे कपाटसमुद्घात करते हैं तो बारह अंगुलप्रमाण बाहल्यवाला कपाटसमुद्घात होता है। इनमेंसे पहले पूर्वाभिमुख केवलीके कपाटक्षेत्रके लानेकी विधिका कथन करनेपर चौदह राजु लंबे, सात राजु चौड़े और छत्तीस अंगुल मोटे क्षेत्रको स्थापित करके उसे चौदह राजु लंबाईमेंसे बीचमें सात राजुके ऊपर छिन्न करके एक क्षेत्रके ऊपर दूसरे क्षेत्रको स्थापित कर देनेपर बहत्तर अंगुल मोटा जगत्प्रतर हो जाता है और कायोत्सर्गसे पूर्वाभिमुख स्थित हुए केवलीका कपाटक्षेत्र चौबीस अंगुल मोटा जगत्प्रतर होता है। उत्तराभिमुख होकर पल्यंकासनसे समुद्घातको प्राप्त हुए केवलीका कपाटक्षेत्र छत्तीस अंगुल मोटा जगत्प्रतरप्रमाण होता है। तथा इतरका अर्थात् उत्तराभिमुख होकर कायोत्सर्गसे समुद्घातको करनेवाले केवलीका कपाटक्षेत्र बारह अंगुल मोटा जगत्प्रतरप्रमाण लंबा चौड़ा होता है, क्योंकि, वेदनासमुद्घातको छोड़कर जीवके प्रदेश तिगुने नहीं होते हैं। यह उपर्युक्त कपाटसमुद्घातगत केवलीका क्षेत्र त्रैराशिकक्रमसे सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके प्रमाणरूपसे करनेपर उन तीन लोकोंमेंसे प्रत्येक लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागप्रमाण है और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा है।

प्रतरसमुद्घातको प्राप्त हुए केवली जिन कितने क्षेत्रमें रहते हैं? लोकके असंख्यात बहुभागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं। लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण वातवलयसे रुके हुए क्षेत्रको छोड़कर लोकके शेष बहुभागोंमें रहते हैं, यह इस कथनका अभिप्राय है। घनलोकका प्रमाण

होदि । घणलोगपमाणं तेदालीसुत्तरतिसद ३४३ घणरज्जूओ । अधोलोगपमाणं छण्णवुदिसदघणरज्जूओ १९६ । उड्ढलोगपमाणं सत्तेतालसदघणरज्जूओ १४७ । उड्ढलोगपमाणाणयणे सुत्तगाहा–

मूलं मज्झेण गुणं मुहसहिदद्धमुस्सेधकदिगुणिदं ।
घणगणिदं जाणेज्जो मुदिंगसंठाणखेत्तम्हि ॥ १५ ॥

आचार्य श्री पुष्पदन्त जी महाराज

एदिस्से गाहाए अत्थो वुच्चदे– मूलं मुदिंगखेत्तस्स बुंधवित्थारं, मज्झेण मुदिंगमज्झपंचरज्जूहि सह, गुणं जुदं कादव्वं । मुहं मुदिंगमुहरुंधपमाणं, सहिदं मुदिंगमज्झेण जुदं कादूण, अद्धं अद्धं करिय समीकदं, उस्सेधकदिगुणिदं उस्सेधवग्गेण गुणिदे कदे, मुदिंगखेत्तफलं होदि ।

मुह-मूहतलसमासअद्धं उस्सेधगुणं गुणं च वेहेण ।
घणगणिदं[1] जाणेज्जा वेत्तासणसंठिए खेत्ते ॥ १६ ॥

एदीए गाहाए अधोलोगघणगणिदमाणेज्जो ।

[2]संपहि लोगपेरंतट्ठिदवादवलयरुद्धखेत्ताणयणविधाणं वुच्चदे– लोगस्स तले तिण्हं वादाणं बाहल्लं पादेक्कं वीससहस्सजोयणमेत्तं । तं सव्वमेगट्ठं कदे

तीनसौ तेतालीस ३४३ घनराजु है । अधोलोकका प्रमाण एकसौ छयानवे १९६ घनराजु है । ऊर्ध्वलोकका प्रमाण एकसौ सैंतालीस १४७ घनराजु है । अब ऊर्ध्वलोकके प्रमाणको लानेके लिये नीचे सूत्रगाथा दी जाती है–

मूलके प्रमाणको मध्यके प्रमाणसे गुणित करके जो लब्ध आवे उसमें मुखका प्रमाण जोड़कर आधा करो । पुनः इसे उत्सेधके वर्गसे गुणित करो । वह मृदंगाकार क्षेत्रमें घनफल लानेका गणित जानना चाहिये ॥ १५ ॥

अब इस गाथाका अर्थ कहते हैं– मूल अर्थात् मृदंगक्षेत्रके बुध्नविस्तारको मृदंगक्षेत्रके मध्यविस्तार पांच राजुओंके साथ गुणित करके जोड़ दें । इसका तात्पर्य यह हुआ कि मुखको अर्थात् मृदंगाकार क्षेत्रके मुखविस्तारके प्रमाणको मृदंगके मध्यविस्तार पांच राजुओंसे सहित अर्थात् युक्त करके, आधा आधा करके समीकरण कर लें । अनन्तर उसे उत्सेधके वर्गसे गुणित करनेपर मृदंगक्षेत्रका घनफल होता है । (देखो विशेषार्थ पृष्ठ २१)

मुखके प्रमाण और तलभागके प्रमाणको जोड़कर आधा करें । पुनः इसे उत्सेधसे गुणित करके वेधसे गुणित करें । यह वेत्रासनके आकारवाले क्षेत्रमें घनफल लानेकी प्रक्रिया जानना चाहिये ॥ १६ ॥

इस गाथासे अधोलोकका घनगणित ले आना चाहिये ।

---

१ प्रतिषु ' गुणिदं ' इति पाठः ।

२ इत आरभ्यास्मेतनो वातवलयप्ररूपकः प्रबन्धस्त्रिलोकप्रज्ञप्तेः प्रथमाधिकारगतेन अनेन प्रकरणेन शब्दशः समानः ।

सट्ठिजोयणसहस्सबाहल्लं जगपदरं होइ[1] । णवरि दोसु वि अंतेसु सट्ठिसहस्सजोयणुस्सेहपरिहाणिखेत्तेण ऊणं एदमजोएदूण सट्ठिसहस्सबाहल्लं जगपदरमिदि संकप्पिय तच्छेदूण पुध ट्ठवेदव्वं ६०००० । पुणो एगरज्जुस्सेधेण सत्तरज्जुआयामेण सट्ठिजोयणसहस्सबाहल्लेण दोसु वि पासेसु दिवड्ढखेत्तं बुद्धीए पुध करिय जगपदरपमाणेण बद्धे वीससहस्साहियजोयणलक्खस्स सत्तभागबाहल्लं जगपदरं होदि १२००००[2] । तं

अब लोकके पर्यन्त भागमें स्थित वातवलयसे रुके हुए क्षेत्रके लानेकी विधिको बतलाते हैं– लोकके तलभागमें तीनों वायुओंमेंसे प्रत्येक वायुका बाहल्य बीस हजार योजन प्रमाण है । उस सब बाहल्यको एकत्रित करनेपर साठ हजार योजन बाहल्यप्रमाण जगत्प्रतर होता है । इतनी विशेषता है कि पूर्व और पश्चिमके दोनों ही पार्श्वभागोंमें साठ हजार योजन ऊंचाईतक हानिरूप क्षेत्रकी अपेक्षा उपर्युक्त क्षेत्र हानिरूप है । फिर भी इस उन क्षेत्रकी गणना न करके और उसे साठ हजार योजन मोटा जगत्प्रतरप्रमाण संकल्प कर उसे छिन्न करके पृथक् स्थापित कर देना चाहिये ।

उदाहरण– अधोलोकका तलभाग ७ राजु लम्बा और ७ राजु चौड़ा है, अतएव उसका क्षेत्रफल जगत्प्रतरप्रमाण होगा । तलभागमें प्रत्येक वातवलय २०००० हजार योजन मोटा है, इसलिये तीनों वातवलयोंकी मोटाई ६०००० योजन होती है । इसे जगत्प्रतरसे गुणित कर देनेपर साठ हजार योजनोंके जितने प्रदेश होंगे उतने जगत्प्रतर लब्ध आते हैं । यही तलभागके वातरुद्ध क्षेत्रका घनफल है ।

पुनः एक राजु उत्सेधरूप, सात राजु आयामरूप और साठ हजार योजन बाहल्यरूपसे उत्तर और दक्षिणसम्बन्धी दोनों ही पार्श्वभागोंमें स्थित वातक्षेत्रको बुद्धिसे पृथक् करके उसे जगत्प्रतरप्रमाणसे निबद्ध करनेपर एक लाख बीस हजार योजनोंके सातवें भाग बाहल्यप्रमाण जगत्प्रतर होता है ।

उदाहरण– अधोलोकके तलभागसे ऊपर एक राजुप्रमाण वातवलयसे रुके हुए क्षेत्रका घनफल– उत्तर और दक्षिणमें पूर्वसे पश्चिमतक प्रत्येक दिशामें जगत्श्रेणीप्रमाण लंबा; १ राजु ऊंचा; तीनों वातवलयोंका बाहल्य ६०००० योजन; दोनों दिशाओंके वायुरुद्ध क्षेत्र १२०००० योजनोंके प्रमाणमें सातका भाग देनेपर १७१४२$\frac{६}{७}$ योजन लब्ध आते हैं और ऊंचाईमें राजुके स्थानमें जगत्श्रेणीका प्रमाण हो जाता है । अतएव १७१४२$\frac{६}{७}$ योजनोंके जितने प्रदेश हों उतने जगत्प्रतरप्रमाण उत्तर और दक्षिणमें अधोलोकके तलभागसे एक राजु ऊंचे क्षेत्रतक वातवलयरुद्ध क्षेत्रका घनफल होता है ।

१ लोयतले वादस्स य बाहल्लं सट्ठिजोयणसहस्सं । संहिदतिकोडिगुणिदं किंचूणं वाउखेत्तफलं ॥ ति. सा. १२७.

२ किंचूणरज्जुवासो अवणेदव्वोदहरं तु तिट्ठाणे । जोयणसट्ठिसहस्सं सत्तवधिविहत्तयं अवरे य ॥ जगपदरलोभागं सट्ठिसहस्सेहि जोयणेहि गुणं । विगगुणिदसत्तरूवासे वादफलं पुध्व अवरे य ॥ ति. सा. १२८, १२९.

पुविल्लखेत्तस्सुवरि दुविदे चालीसजोयणसहस्साहिय पंचण्हं लक्खाणं सत्तभागबाहल्लं जगपदरं होदि $\frac{५४०००}{७}$ । पुणो अवरासु दोसु दिसासु एगरज्जुस्सेधेण तले सत्तरज्जुआयामेण मुहे सत्तभागाहियछरज्जुरुंदत्तेण सट्ठिजोयणसहस्सबाहल्लेण ट्ठिदवादवलयखेत्ते जगपदरपमाणेण कदे वीसजोयणसहस्साहियपंचवंचासजोयणलक्खाणं तेदालीस-तिसदभागबाहल्लं जगपदरं होदि $\frac{५५२०००}{३४३}$ ।[1] एदं पुव्विल्लखेत्तस्सुवरि पक्खित्ते एगूणवीसलक्ख-असीदिसहस्सजोयणाहिय-तिण्हं कोडीणं तेदालीस-तिसद-भागबाहल्लं जगपदरं होदि $\frac{११८४०००}{३४३}$ ।[2] पुणो सत्तरज्जुविक्खंभ-तेरहरज्जुआयाम-

इस घनफलको पहले तलभागके घनफलरूपसे आये हुए क्षेत्रमें मिला देनेपर पांच लाख चालीस हजार योजनोंके सातवें भागप्रमाण बाहल्यरूप जगत्प्रतर होता है ।

उदाहरण— $६०००० + \frac{१२०००}{७} = \frac{५४००००}{७}$ योजन मोटा जगत्प्रतर ।

पुनः दूसरी दो अर्थात् पूर्व और पश्चिम दिशाओंमें तलभागसे एक राजु ऊंचे, तलभागमें सात राजु लंबे, एक राजु ऊपर आकर मुखमें एक राजुके सातवें भाग अधिक छह राजु लंबे और साठ हजार योजन बाहल्यरूपसे स्थित वातवलयक्षेत्रको जगत्प्रतरप्रमाणसे करनेपर पचवन लाख बीस हजार योजनोंके तीनसौ तेतालीसवें भागप्रमाण बाहल्यरूप जगत्प्रतर होता है ।

उदाहरण— $\frac{४९}{७} + \frac{४३}{७} = \frac{९२}{७}$; $\frac{९२}{७} \div \frac{२}{१} = \frac{९२}{१४}$; $\frac{९२}{१४} \times \frac{२}{१} = \frac{९२}{७}$;

$\frac{९२}{७} \times ६०००० = \frac{५५२०००}{७}$ । इसे जगत्प्रतरप्रमाणसे करनेके लिये ४९ का भाग देनेपर $\frac{५५२०००}{३४३}$ योजनोंके जितने प्रदेश होंगे उतने जगत्प्रतर लब्ध आ जाते हैं । पूर्व और पश्चिममें तलभागसे एक राजुतक वातरुद्ध क्षेत्रका यही घनफल है ।

इसे पूर्वोक्त घनफलरूपसे आये हुए क्षेत्रमें मिला देनेपर तीन करोड़ उन्नीस लाख अस्सी हजार योजनोंके तीनसौ तेतालीसवें भागप्रमाण बाहल्यरूप जगत्प्रतर होता है ।

उदाहरण— $\frac{५४०००}{७} + \frac{५५२०००}{३४३} = \frac{३११८००००}{३४३}$ योजन मोटा जगत्प्रतर ।

---

१ उदयमुहभूमिवेहो रज्जुसत्तमछरज्जुसेढी य । जोयणसट्ठिसहस्सं सत्तमखिदिवखिणुत्तरदो ॥ तस्स फलं जगपदरो सट्ठिसहस्सेहि जोयणेहि हदो । वाणउदिगुणो सत्तमणसंभजिदे उभयपासम्हि ॥ त्रि. सा. १३०, १३१.

२ सेढी छरज्जु चोद्दसजोयणबाहल्लमासमुस्सेहं । पुव्वपरासजुगले सत्तमदी तिरियलोगो त्ति ॥ तव्वादरुद्धखेत्तं जोयणवउदीसगुणिदजगपदरं । उभयपदिसापंजणिदं णादव्वं गणिदकुसलेहिं ॥ त्रि. सा. १३२, १३३.

सोलहबारह-सोलहबारहजोयणबाहल्लेण दोसु वि पासेसु दुिदवादखेत्ते जगपदरपमाणेण कदे चउसट्ठिसदजोयणूण-अट्ठारहसहस्सजोयणाणं तेदालीस-तिसदभागबाहल्लं जगपदरं उप्पज्जदि $\frac{१७८३६}{३४३}$ । पुणो सत्तभागाहिय-छरज्जुमूलविक्खंभेण छरज्जुउस्सेधेण एगरज्जुमुहेण सोलह-बारहजोयणबाहल्लेण दोसु वि पासेसु दुिदवादखेत्तं जगपदरपमाणेण कदे वादालीसजोयणसदस्स तेदालीस-तिसदभागबाहल्लं जगपदरं होदि $\frac{४२००}{३४३}$ ।[1] पुणो एगपंच-एगरज्जुविक्खंभेण सत्तरज्जुउस्सेधेण बारह-सोलह-बारहजोयणबाहल्लेण उवरिमदोसु वि पासेसु दुिदवादखेत्तं जगपदरपमाणेण कदे अट्ठासीदिसमहिय-

पुनः उत्तर और दक्षिणमें पूर्वसे पश्चिमतक सात राजु विष्कंभरूपसे, सातवीं पृथिवीके तलभागसे लोकान्ततक तेरह राजु आयामरूपसे और अधोलोककी अपेक्षा सोलह, बारह और ऊर्ध्वलोककी अपेक्षा सोलह, बारह योजन बाहल्यरूपसे दोनों ही पार्श्वभागोंमें स्थित वातक्षेत्रको जगत्प्रतररूपसे करनेपर एकसौ चौसठ योजन कम अठारह हजार योजनोंके तीनसौ तेतालीसवें भागप्रमाण बाहल्यरूप जगत्प्रतर होता है ।

उदाहरण— १३ × ७ = ९१; ९१ × १४ = १२७४; १२७४ × २ = २५४८ । इसे जगत्प्रतररूपसे करनेके लिये सातसे गुणा करे और तीनसौ तेतालीस का भाग दें, तब $\frac{१७८३६}{३४३}$ योजन मोटा जगत्प्रतर आता है । यह उत्तर और दक्षिणमें सातवीं पृथिवीसे लेकर लोकान्ततक वातरुद्ध क्षेत्रका घनफल होता है ।

पुनः पूर्व और पश्चिम दिशामें सातवीं पृथिवीके पास एक राजुके सातवें भाग अधिक छह राजुप्रमाण मूलमें विष्कंभरूपसे छह राजु उत्सेधरूपसे, मध्यलोकके पास एक राजु मुखरूपसे और सोलह, बारह योजनप्रमाण बाहल्यरूपसे दोनों ही पार्श्वोंमें स्थित वातक्षेत्रको जगत्प्रतरप्रमाणसे करनेपर ब्यालीससौ योजनोंके तीनसौ तेतालीसवें भागप्रमाण बाहल्यरूप जगत्प्रतर होता है ।

उदाहरण— $\frac{४३}{७} + \frac{७}{७} = \frac{५०}{७}$; $\frac{५०}{७} \div \frac{२}{१} = \frac{५०}{१४}$; $\frac{५०}{१४} \times \frac{२}{१} = \frac{५०}{७}$; $\frac{५०}{७} \times १४ = \frac{७००}{७}$; $\frac{७००}{७} \times ६ = \frac{४२००}{७}$; इसे जगत्प्रतररूपसे करनेपर ४२ का भाग देनेसे $\frac{४२००}{३४३}$ योजनोंके जितने प्रदेश हों उतने जगत्प्रतर लब्ध आ जाते हैं । पूर्व और पश्चिममें सातवीं पृथिवीसे मध्यलोकतक वायुरुद्ध क्षेत्रका यही घनफल है ।

---

१ उवरिं भूमुह सेढी छरज्जु सत्तमछरज्जु रज्जू य । जोयण चोद्दस सत्तमतिरियो सि हु दविखणुत्तरदो ॥ तत्थाणिलखेत्तफलं छम्मे पासम्मि होइ जगपदरं । छस्सयजोयणमुणिदं पदिमस्स सत्तहरणेण त्ति ॥ ति. प. १३४, १३५

पंचजोयणसदाणं एगूणवंचासभागबाहल्लं जगपदरं होदि $\frac{५८८}{४९}$ ।[1] उवरि रज्जुविक्खंभेण सत्तरज्जुआयामेण [illegible] बाहल्लेण ट्ठिदवादक्खेत्तं जगपदरपमाणेण कदे ति-उत्तर-तिसदाणं बेसहस्स-विसद-चालीसभागबाहल्लं जगपदरं होदि $\frac{२३०३}{२२४०}$ ।[2] एवं सव्वमेगत्थ मेलाविदे चउवीसकोडिसमहियसहस्सकोडीओ एगूणवीसलक्ख-तेसीदिसहस्स-चदुसद-सत्तासीदिजोयणाणं णवसहस्स-सत्तसय-सट्ठिरूवाहियलक्खाए अवहिदेगभागबाहल्लं जगपदरं होदि $\frac{१०२४१९८३४८७}{१०९७६०}$ ।[3] एवं वादरुद्धखेत्तं घणलोगम्हि

पुनः मध्यलोकके पास एक राजु, ब्रह्मलोकके पास पांच राजु और लोकान्तमें एक राजु विष्कंभसे, सात राजु उत्सेधरूपसे तथा, बारह, सोलह और बारह योजनप्रमाण बाहल्यरूपसे ऊर्ध्वलोकके पूर्व और पश्चिम दोनों ही पार्श्वोंमें स्थित वातक्षेत्रको जगत्प्रतरप्रमाणसे करने पर पांचसौ अठासी योजनोंके उनचासवें भाग बाहल्यरूप जगत्प्रतर होता है।

उदाहरण– ५ + १ = ६; ६ ÷ २ = ३; ३ × ७ = २१; २१ × २ = ४२; ४२ × १४ = ५८८ इसे जगत्प्रतरप्रमाणसे करने पर ४९ का भाग देनेसे $\frac{५८८}{४९}$ योजनोंके जितने प्रवेश हों उतने जगत्प्रतर लब्ध आते हैं। यही ऊर्ध्वलोकके पूर्व और पश्चिम दो दिशाओंके वातरुद्ध क्षेत्रका घनफल है।

लोकके उपरिम भागमें एक राजु विष्कंभरूपसे, सात राजु आयामरूपसे, कुछ कम एक योजन बाहल्यरूपसे स्थित वातक्षेत्रको जगत्प्रतरप्रमाणसे करने पर तीनसौ तीन योजनोंके दो हजार बोसौ चालीसवें भागप्रमाण बाहल्यरूप जगत्प्रतर होता है

उदाहरण– १ × ७ × $\frac{३०३}{२२४०}$ ÷ $\frac{७}{१}$ = $\frac{३०३}{२२४०}$ यही लोकके अग्रभागके वातरुद्धक्षेत्रका घनफल है।

इस सर्व घनफलको एकत्रित करनेपर एक हजार चौबीस करोड़, उन्नीस लाख तेरासी हजार चारसौ सत्तासी योजनोंमें एक लाख नौ हजार सातसौ साठका भाग देनेपर जो एक भाग लब्ध आवे उतने योजनप्रमाण बाहल्यरूप जगत्प्रतर होता है।

उदाहरण– $\frac{३१९८०००}{३४४} + \frac{१७८३६}{३४४} + \frac{४२००}{३४३} + \frac{५८८}{४९} + \frac{७०३}{२२४०} = \frac{१०२४१९८३४८७}{१०९७६०}$

योजन बाहल्यरूप जगत्प्रतर लोकके चारों ओर वातरुद्धक्षेत्रका घनफल होता है।

१ आउड्ढरज्जुसेढी जोयण चोद्दस य वासभुजवेहो। बम्हो त्ति पुव्व-अवरे फलमेदं चदुगुणं सव्वं ॥ पंचाहट्ठिगिरज्जू भूतुंगमुहं दिससजोयणयं। वेहो सं चउगुणिदं खेत्तफलं दक्खिणुत्तरदो ॥ त्रि. सा. १३६, १३७.

२ वासुदयभूजं रज्जू इगिजोयणबोसतिसदखंडेसु। सत्तितिसदं सेढी फलमीसिपभारुवरि दंडवाऊणं ॥ त्रि. सा. १३८.

३ सत्तासीदिचदुस्सदमहत्ततेसीदिलक्खउगवीसं। चउवीसट्ठियं कोडिसहस्सगुणियं तु जगपदरं ॥ सट्ठीसत्तसएहि णवयसहस्सेगलक्खमजियं तु। सव्वं वादरुद्धं गणियं मणियं समासेण ॥ त्रि. सा. १३९–१४०.

अवणिदे पदरगदकेवलिखेत्तं देसूणलोगो होदि। एवं पदरगदकेवलिखेत्तमधोलोगपमाणेण कदे वे अधोलोगा अधोलोगस्स चदुब्भागेण सादिरेगेण ऊणया। उड्ढलोगपमाणेण कदे दुवे उड्ढलोगा उड्ढलोगस्स तिभागेण देसूणेण सादिरेगेण।

लोगपूरणगदो केवली केवडि खेत्ते, सव्वलोगे।

आदेसेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइएसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्माइट्ठि त्ति केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे[1] ॥ ५ ॥

इस वातरुद्धक्षेत्रको घनलोकमेंसे घटा देनेपर प्रतरसमुद्घातको प्राप्त केवलीका क्षेत्र कुछ कम लोकप्रमाण होता है। प्रतरसमुद्घातको प्राप्त केवलीका यह क्षेत्र अधोलोकके प्रमाणरूपसे करनेपर कुछ अधिक अधोलोकके चौथे भागसे कम दो अधोलोकप्रमाण होता है। तथा इसे ही ऊर्ध्वलोकके प्रमाणरूपसे करनेपर ऊर्ध्वलोकके कुछ कम तीसरे भागसे अधिक दो ऊर्ध्वलोकप्रमाण होता है।

विशेषार्थ– जगत्श्रेणीके जितने प्रदेश हों उतने जगत्प्रतरप्रमाण सर्वलोक है। इसमेंसे $\frac{१०२४११८३४८७}{१०२७६०}$ योजनप्रमाण जगत्प्रतरोंके घटा देनेपर प्रतरसमुद्घातको प्राप्त केवलीका क्षेत्र होता है। अधोलोकका प्रमाण १९६ घनराजु है, इसलिये यदि इसे अधोलोकके प्रमाणरूपसे किया जाय तो दो अधोलोकोंके प्रमाण ३९२ घनराजुओंमेंसे $\frac{१०२४११८३४८७}{१०२७६०}$ योजनप्रमाण जगत्प्रतर अधिक अधोलोकके चौथे भागप्रमाण ४९ घनराजु घटा देनेपर प्रतरसमुद्घातको प्राप्त केवलीका क्षेत्र आ जाता है। ऊर्ध्वलोकका प्रमाण १४७ घनराजु है, इसलिये यदि इस क्षेत्रको ऊर्ध्वलोकके प्रमाणरूपसे किया जाय तो ऊर्ध्वलोकके एक तिहाई घनराजु ४९ मेंसे $\frac{१०२४११८३४८७}{१०२७६०}$ योजनप्रमाण जगत्प्रतरोंको घटाकर जितना शेष रहे उसे दो ऊर्ध्वलोकके प्रमाण २९४ घनराजुओंमेंसे जोड़ देनेपर प्रतरसमुद्घातको प्राप्त केवलीका क्षेत्र आ जाता है।

लोकपूरणसमुद्घातको प्राप्त केवली भगवान् कितने क्षेत्रमें रहते हैं? सर्व लोकमें रहते हैं।

आदेशकी अपेक्षा गत्यनुवादसे नरकगतिमें नारकियोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानतक प्रत्येक गुणस्थानके जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं ॥ ५ ॥

[1] गत्यनुवादेन नरकगतौ सर्वासु पृथिवीषु नारकाणां चतुर्षु गुणस्थानेषु लोकस्यासंख्येयभागः। स. सि. १, ८.

एत्थ 'आदेसेण' गहणं ओघपडिसेधफलं। गदिगहणमिंदियादिपडिसेहफलं। अणुवादगहणं सुत्तस्स अकट्टिवुत्तपरूवणफलं। णिरयगदिणिद्देसो देवगदियादिपडिसेधफलो। णेरइएसु त्ति वयणं तत्थतणपुढविकाइयादिपडिसेधफलं। लोगस्स असंखेज्जदिभागे इदि वुत्ते सेसलोगाणं कधं गहणं होदि? ण, खेत्त-फोसणसुत्ताणं देसामासिगत्तादो।

संपहि सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादगद-मिच्छाइट्ठी केवडि खेत्ते, चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे। एदस्सअत्थपरूवणट्ठमेत्थोगाहणा वुच्चदे। तं जहा— पढमाए पुढवीए पढमपत्थडम्हि णेरइयाणमुस्सेधो तिण्णि हत्था। तेरहमपत्थडे सत्त धणू तिण्णि हत्था छ अंगुलाणि णेरइयाणमुस्सेधो होदि[1]।

मुह-भूमिविसेसम्हि दु उच्छेहभजिदम्हि सा हवे वड्ढी।
वड्ढी इच्छागुणिदा मुहसहिदा सा फले होदि॥ १७॥

इस सूत्रमें आदेश पदके ग्रहण करनेका फल ओघका प्रतिषेध करना है। गति पदके ग्रहण करनेका फल इन्द्रियादिका प्रतिषेध करना है। अनुवाद पदके ग्रहण करनेका फल सूत्रके अकर्तृकत्वका प्ररूपण करना है। नरकगति पदके निर्देश करनेका फल देवगति आदिका प्रतिषेध करना है। नारकियोंमें इस प्रकारके वचनके देनेका फल वहांके क्षेत्रमें रहनेवाले पृथिवीकायिक आदिका प्रतिषेध करना है।

शंका— लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं, केवल इतना कहनेपर शेष लोकोंका ग्रहण कैसे हो सकता है?

समाधान— नहीं, क्योंकि, क्षेत्र और स्पर्शन अनुयोगद्वारके सूत्र देशामर्शक हैं, इसलिये 'लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं' इतने पदके कहनेसे शेष लोकोंका भी ग्रहण हो जाता है।

अब विशेष पदोंकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टि नारकियोंका क्षेत्र कहते हैं— स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घातको प्राप्त हुए मिथ्यादृष्टि नारकी जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं? सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं और अढ़ाईद्वीपप्रमाण मानुषलोकसे संख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं। अब इसके अर्थके प्ररूपण करनेके लिये यहांपर नारकियोंकी अवगाहना कहते हैं। वह इस प्रकार है— पहली पृथिवीके पहले पाथड़ेमें नारकियोंका उत्सेध तीन हाथ है। तेरहवें पाथड़ेमें सात धनुष, तीन हाथ और छह अंगुल नारकियोंका उत्सेध है।

भूमिमेंसे मुखको घटाकर उत्सेधका भाग देनेपर जो लब्ध आवे वह वृद्धिका प्रमाण होता है। अब जिस पटलके नारकियोंके उत्सेधका प्रमाण लाना हो उसे इच्छा मानकर उससे

[1] सत्त-त्ति-छदंड-हत्थंगुलाणि कमसो हवंति घम्माए। चरिमिंदयम्मि उदओ। ति. प. २, २१७. रयणप्पभाए पुढवीए णेरइयाणं × × सरीरोगाहणा × × × उक्कोसेण सत्त धणूइं तिण्णि रयणीओ छच्च अंगुलाइं। जीवाभि. ३, २, १२.

एदीए गाहाए सेसएक्कारसपत्थडणेरइयाणमुस्सेधा आणेयव्वा। तेसिं पमाणमेदं—

[1]प्रस्तार	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३
धनुष	०	१	१	२	३	३	४	४	५	६	६	७	७
हस्त	३	१	२	२	०	२	१	३	१	०	२	०	३
अंगुल	०	८½	१७	१½	१०	१८½	३	११½	२०	४½	१३	२१½	६

[2]

वृद्धिको गुणित कर दो और मुखका प्रमाण जोड़ दो। इसका जो फल होगा वही इच्छित पाथड़ेके नारकियोंका उत्सेध समझना चाहिये ॥ १७ ॥

विशेषार्थ— यद्यपि द्वितीयादि नरकोंमें प्रथमादि नरकोंके अन्तिम पटलके नारकियोंका उत्सेध मुख हो जाता है, परन्तु प्रथम नरकमें पहले पाथड़ेके ही नारकियोंका उत्सेध मुख रहेगा। अतएव उक्त गाथाके नियमानुसार पहले नरकके पहले पाथड़ेके नारकियोंका उत्सेध नहीं निकाला जा सकता है। पहले नरकमें पदका प्रमाण १२ और शेष नरकोंमें जहां जितने पाथड़े होंगे वहां उतना पदका प्रमाण रहेगा। पहले नरकमें दूसरा पाथड़ा पहला और अन्तिम पाथड़ा बारहवां गिना जावेगा।

उदाहरण— प्रथम नरकमें मुखका प्रमाण ३ हाथ और भूमिका प्रमाण ७ धनुष, ३ हाथ, ६ अंगुल होता है। एक धनुषमें ४ हाथ और एक हाथमें २४ अंगुल होते हैं। इस प्रमाणके अनुसार मुखके अंगुल ३ × २४ = ७२ तथा भूमिके अंगुल ७ × ४ + ३ × २४ + ६ = ७५० हुए। उक्त गाथानुसार इसकी प्रक्रिया करनेपर ७५० − ७२ = $\frac{६७८}{१२}$ = ५६½ अं. = $\frac{११३}{२}$ = २ हाथ ८½ अंगुल होते हैं, यह प्रथम पृथिवीके प्रति-पटलमें वृद्धिका प्रमाण है।

अब यदि हमें प्रथम नरकके पांचवें पटलका उत्सेध प्रमाण निकालना है तो पूर्वोक्त नियमानुसार ५६½ अंगुलको ४ से गुणितकर प्रथम पटलके उत्सेधका प्रमाण उसमें जोड़ देना चाहिये। $\frac{११३}{२}$ × ४ + ७२ = २२६ + ७२ = २९८ अं. = १ हा. १० अं. = ३ घ. १० अं. यही प्रथम पृथिवीके पांचवें पटलके नारकियोंके उत्सेधका प्रमाण है।

इस पूर्वोक्त गाथाके नियमानुसार पहले नरकके पहले और तेरहवें पाथड़ेके अतिरिक्त शेष ग्यारह पाथड़ेके नारकियोंका उत्सेध ले आना चाहिये। उन अवगाहनाओंका प्रमाण यह है— (देखो मूलका नक्शा)।

---

१ प्रतिषु केवलमङ्का एव निर्दिष्टाः न प्रस्तारादिपदानि। तानि तु सुबोधार्थमस्माभिः सर्वत्र योजितानि।

२ रयणप्पहपुढवीए उदओ सीमंतणामपडलम्मि। जीवाणं हत्थतियं सेसेसु हाणिवड्ढीओ ॥ आदी अंते सोहिय रूऊणद्धाहिदम्मि हाणिचया। मुहसहिदे खिदिसुद्धे णियणियपदरेसु उच्छेहो ॥ हाणिचयाण पमाणं घम्माए होंति दोण्णि हत्थाइं। अट्ठंगुलाणि अंगुलभागो दोहि विहत्तो य ॥ एक्कपदुमेक्कहत्थो सत्तरसंगुलदलं च णिरयम्मि। इगिदंडो तिण्णिहत्थो सत्तरसं अंगुलाणि रोलए ॥ दो दंडा दो हत्था भंतम्मि विवड्ढमंगुलं होदि। उब्भंते दंडतियं दहंगुलाणि च उच्छेहो ॥ तिय दंडा दो हत्था अट्ठारहं अंगुलाणि पत्तेक्कं। संभंतणामइंदयउच्छेहो

विदियपुढविएक्कारसपत्थडे णेरइयाणमुस्सेधो पण्णरह धणूणि बे हत्था बारह अंगुलाणि[1] । सेसदसपत्थडणेरइयाणमुस्सेधो पुव्विल्लगाहाए आणेदव्वो । तेसिं पमाणमेदं–

प्रस्तार	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११
धनुष	८	९	९	१०	११	१२	१२	१३	१४	१४	१५
हस्त	२	०	३	२	१	०	३	१	०	३	२
अंगुल	$२\frac{३}{५}$	$२२\frac{५}{५}$	$१८\frac{६}{५}$	$१४\frac{६}{५}$	$१०\frac{६}{५}$	$७\frac{१}{५}$	$३\frac{३}{५}$	$२३\frac{५}{५}$	$१९\frac{५}{५}$	$१५\frac{१}{५}$	१२

दूसरी पृथिवीके ग्यारहवें पाथड़ेमें नारकियोंका उत्सेध पन्द्रह धनुष, दो हाथ, बारह अंगुल है। प्रथमादि शेष दश पाथड़ोंके नारकियोंका उत्सेध पूर्वोक्त गाथाके नियमानुसार ले आना चाहिये। उन अवगाहनाओंका प्रमाण यह है– (देखो मूलका नकशा)।

विशेषार्थ– इस दूसरी पृथिवीमें मुखका प्रमाण ७ धनुष, ३ हाथ, ६ अंगुल और भूमिका प्रमाण १५ धनुष, २ हाथ, १२ अंगुल है। तथा, प्रतिपटल वृद्धिका प्रमाण २ हाथ, $२०\frac{२}{५}$ अंगुल है।

पढमपुढवीए ।। चत्तारो चावाणि सत्तावीसं च अंगुलाणि पि । होदि असंभंतिंदियउदओ पढमाइ पुढवीए ।। चत्तारो कोदंडा तिय हत्था अंगुलाणि तेवीसं । दलिदाणि होदि उदओ बिब्भंतयणामि पडलम्मि ।। पंच च्चिय कोदंडा एक्को हत्थो य बीस पव्वाणि । तत्तिदयम्मि उदओ पण्णत्तो पढमखोणीए ।। छ च्चिय कोदंडाणि चत्तारो अंगुलाणि पव्वद्धं । उच्छेहो णादव्वो पडलम्मि य तत्तिदणामम्मि ।। वाणासणाणि छ च्चिय दो हत्था तेरसंगुलाणि पि । वक्कंतणामपडले उच्छेहो पढमपुढवीए ।। सत्त य सरासणाणि अंगुलया एक्कवीस पव्वद्धं । पडलम्मि य उच्छेहो होदि अवक्कंतणामम्मि ।। सत्त बिसिट्ठासणाणि हत्थाइं तिण्णि छव्व अंगुलयं । चरिमिंदयम्मि उदओ विक्कंते पढमपुढवीए ।। ति. प. २, २१८–२३०.

१ दोच्चाए × × उक्कोसेणं पण्णरस धणूइं अड्ढाइज्जाओ रयणीओ । जीवाभि. ३, २, १२.

२ दो हत्था वीसंगुल एक्कारसभजिद दो वि पव्वाइं । एयाइं वड्ढीओ मुहसहिदे होंति उच्छेहो ।। अट्ठ विसिट्ठासणाणि दो हत्था अंगुलाणि चउवीसं । एक्कारसभजिदाइं उदओ पुण विदियवसुहाए ।। णव दंडा बावीसंगुलाणि एक्कारसम्मि चउपव्वं । भजिदाओ सो भागो विदिए वसुहाए उच्छेहो ।। णव दंडा तिय हत्थं चउरुत्तरदोसयाणि पव्वाणि । एक्कारसभजिदाइं उदओ मणइंदयम्मि जीवाणं ।। दस दंडा दो हत्था चोद्दस पव्वाणि अट्ठ भागा य । एक्कारसेहि भजिदा उदओ तणगिंदयम्मि विदियाए ।। एक्कारस चावाणि एक्को हत्थो दसंगुलाणि पि । एक्कारसहिददससा उदओ घादिंदयम्मि विदियाए ।। बारस सरासणाणि पव्वाणि अट्ठहत्तरी होंति । एक्कारस भजिदाणि संघादे णारयाण उच्छेहो ।। बारस सरासणाणि तिय हत्था तिण्णि अंगुलाणि च । एक्कारसहियतिमाया उदओ जिब्भिंदयम्मि विदियाए ।। तेवण्णाण य हत्था तेवीसा अंगुलाणि पण्णासा । एक्कारसेहि भजिदा बिब्भगपडलम्मि उच्छेहो । चोद्दस दंडा सोलसजुत्ताणि दोसयाणि पव्वाणि । एक्कारसभजिदाहि लोलय-णामम्मि उच्छेहो ।। एक्कोणसट्ठि हत्था पणरस अंगुलाणि णव भागा । एक्कारसेहि भजिदा लोलयणामम्मि उच्छेहो ।। पण्णरस कोदंडा दो हत्था बारसंगुलाणि च अंतिमपडले तणलोलगम्मि विदियाय उच्छेहो ।। ति. प. २, २३१-२४२.

तदियपुढविणवमपत्थडम्हि णेरइयाणमुस्सेधो एक्कत्तीस धणूणि एगो हत्थो य[1]। सेसट्ठपत्थडणेरइयाणमुस्सेधो पुव्विल्लगाहाए आणेदव्वो। णवरि एत्थ एक्कत्तीस धणूणि सहत्थाणि भूमी होदि। पण्णरस धणूणि बे हत्था बारह अंगुलाणि मुहं होदि। भूमीदो मुहं सोहिय उस्सेधेण णवहि भागे हिदे वड्ढी होदि। तं वड्ढिं णवसु ठाणेसु ठविय एगादिएगुत्तरेहि गुणगारेहि गुणिय मुहम्मि पक्खित्ते इच्छिदउस्सेधो होदि। तस्स पमाणमेदं–

प्रस्तार	१	२	३	४	५	६	७	८	९
धनुष	१७	१९	२०	२२	२४	२६	२७	२९	३१
हस्त	१	०	३	२	१	०	३	२	१
अंगुल	१०$\frac{3}{9}$	९$\frac{1}{9}$	८	६$\frac{8}{9}$	५$\frac{5}{9}$	४	२$\frac{3}{9}$	१$\frac{6}{9}$	०

चउत्थपुढविसत्तमपत्थडणेरइयाणमुस्सेधो बासट्ठी धणूणि बे हत्था य[2]। एदं

तीसरी पृथिवीके नौवें पाथड़ेमें नारकियोंका उत्सेध इकतीस धनुष और एक हाथ है। शेष आठ पाथड़ोंके नारकियोंका उत्सेध पूर्व गाथाके नियमानुसार ले आना चाहिये। इतनी विशेषता है कि यहांपर इकतीस धनुष और एक हाथ भूमि है। पन्द्रह धनुष, दो हाथ और बारह अंगुल मुख है। भूमिमेंसे मुखको घटाकर उत्सेध (पद) नौ का भाग देनेपर वृद्धिका प्रमाण आता है। (तीसरी पृथिवीमें प्रतिपटल वृद्धिका प्रमाण १ धनुष, २ हाथ और २२$\frac{3}{9}$ अंगुल है।) इस वृद्धिको नौ स्थानोंमें स्थापित करके एक आदि एकोत्तर गुणकारोंसे गुणित करके मुखमें मिला देनेपर इच्छित पाथड़ेके नारकियोंका उत्सेध आता है। उसका प्रमाण यह है– (देखो मूलका नकशा)।

चौथी पृथिवीके सातवें पाथड़ेमें नारकियोंका उत्सेध बासठ धनुष और दो हाथ है। इसे भूमिरूपसे स्थापित करके शेष छह पाथड़ोंमें नारकियोंका उत्सेध ले आना चाहिए। उसका प्रमाण यह है– (देखो मूलका नकशा)।

१ तच्चाए × × उक्कोसेण एक्कतीस धणूइं एक्का रयणी। जीवाभि. ३, २, १२.

२ एक्क धणू दो हत्था बावीसं अंगुलाणि दो भागा। तियभजिदं णायव्वा मेघाए हाणिवुड्ढीओ॥ सत्तरसं चावाणि चोत्तीसं अंगुलाणि दो भागा। तियभजिदा मेघाए उदओ तत्तिदयम्मि ओघाणं॥ एक्कोणवीस दंडा अट्ठावीसंगुलाणि तिहिदाणि। तमिंदिदयम्मि तंदियक्खोणीए णारयाण उच्छेहो। बीसस्स दडसहियं सीदीए अंगुलाणि होदि सदा। तदियं चिय पुढवीए तवणिंदयणारयम्मि उच्छेहो॥ णउदिपमाणा हत्था तियविहत्ताणि बीस पव्वाणि। मेघाए तवणिंदयठिदाण जीवाण उच्छेहो॥ सत्ताणउदी हत्था सोलस पव्वाणि तियविहत्ताणि। उदओ णिदाधणामाए पढले णारया जीवा॥ छव्वीसं चावाणि चत्तारी अंगुलाणि मेघाए। पज्जलिदणामपढले ठिदाण जीवाण उच्छेहो॥ सत्तावीसं दंडा तिय हत्था अट्ठ अंगुलाणि च। तियभजिदाइं उदओ उज्जलिदे णारयाण णादव्वो॥ एक्कोणतीस दंडा दो हत्था अंगुलाणि चत्तारि। तियभजिदाइं उदओ संजलिदे तदीयपुढवीए॥ इकतीसं दंडाए एक्को हत्थो अ तदियपुढवीए। संपज्जलिदे चरिमिंदयणारयाण होदि उच्छेहो॥ ति. प. २, २४३-२५२.

३ चउत्थीए × बासट्ठी धणूइं दोण्णि रयणीओ। जीवाभि. ३, २, १२.

भूमिं करिय सेस-छ-पत्थडणेरइयाणमुस्सेधो आणेदव्वो । तस्स पमाणमेवं–

प्रस्तार	१	२	३	४	५	६	७
धनुष	३५	४०	४४	४९	५३	५८	६२
हस्त	२	०	२	०	२	०	२
अंगुल	२०$\frac{५}{९}$	१७$\frac{३}{९}$	१३$\frac{४}{९}$	१०$\frac{२}{९}$	६$\frac{६}{९}$	३$\frac{८}{९}$	०

पंचमपुढविपंचमपत्थडणेरइयाणमुस्सेधो पणुवीसुत्तरसदधणूणि[२] । एदं भूमिं करिय सेसचदुण्हं पत्थडाणमुस्सेधो आणेदव्वो । तेसिं पमाणमेदं–

प्रस्तार	१	२	३	४	५
धनुष	७५	८७	१००	११२	१२५
हस्त	०	२	०	२	०

विशेषार्थ– इस पृथिवीमें मुखका प्रमाण ३१ धनुष, १ हाथ और भूमिका प्रमाण ६२ धनुष, २ हाथ है । तथा, प्रतिपटल वृद्धिका प्रमाण ४ धनुष, १ हाथ और २०$\frac{५}{९}$ अंगुल है ।

पांचवीं पृथिवीके पांचवें पाथडेमें नारकियोंका उत्सेध एकसौ पच्चीस धनुष है । इसे भूमिरूपसे स्थापित करके शेष चार पाथडोंके नारकियोंका उत्सेध ले आना चाहिये । उसका प्रमाण यह है– (देखो मूलका नकशा) ।

विशेषार्थ– पांचवीं पृथिवीमें मुखका प्रमाण ६२ धनुष, २ हाथ और भूमिका प्रमाण १२५ धनुष है । तथा प्रतिपटल वृद्धिका प्रमाण १२ धनुष और २ हाथ है ।

१ चउ दंडा इगि हत्थो पव्वाणि वीस सत्त पडिहत्ता । चउ भागा तुरिमाए पुढवीए हाणिवड्ढीओ ॥ पणतीसं दंडाए हत्थाइं दोण्णि वीस पव्वाणि । सत्तहिदा चउभागा उदओ आदिट्ठिदाण जीवाणं ॥ चालीसं कोदंडा वीसब्भहियं सयं च पव्वाणि । सत्तहिदं उच्छेहो तुरिमाए मारयडलजीवाणं । भउदालं चावाणि दो हत्था अंगुलाणि छण्णउदी । सत्तहिदो उच्छेहो तारिदयसंठिदाण जीवाणं ॥ एक्कोणवण्ण दंडा बाहल्लरि अंगुला य सत्तहिदा । चत्तिदयम्मि तुरिमक्खोणीए णारयाण उच्छेहो ॥ तेवण्णा चावाणि दो हत्था अट्ठसाल पव्वाणि । सत्तहिदाणि उदओ दमगिंदयसंठियाण जीवाणं । अट्ठावण्णा दंडा सत्तहिदा अंगुला य चउवीसं । घादिंदयम्मि तुरिमक्खोणीए णारयाण उच्छेहो ॥ बासट्ठी कोदंडा हत्थाइ दोण्णि तुरिमपुढवीए । चरिमिंदयम्मि खलखलणामए णारयाण उच्छेहो ॥ ति. प. २, २५३–२६०

२ पंचमीए ५ पणवीसं धणुसयं । जीवाभि. ३, २, १२.

३ बारस सरासणाणि दो हत्था पंचमीय पुढवीए । खयवड्ढीए पमाणं णिद्दिट्ठं वीयरागेहि ॥ पणहत्तरिपरिमाणा कोदंडा पंचमीए पुढवीए । पढमिंदयम्मि उदओ तवणामे संठिदाण जीवाण ॥ सत्तासीदी दंडा दो हत्था पंचमीए खोणीए । पडलम्मि य बम्हाणामे णारयजीवाण उच्छेहो ॥ एक्कं कोदंडसयं अट्ठाणामे णारयाण उच्छेहो । चावाणि बारसुत्तरसयमेक्कं अंगयम्मि दो हत्था ॥ एक्कं कोदंडसयं अब्भहियं पंचवीसअंगुलेहिं । पमपडहाए चरिमिंदयम्मि तिण्णिसयमि उच्छेहो ॥ ति. प. २, २६१–२६५

आरसं की गुरिविलास की स्थापना

छट्ठीए पुढवीए तदियपत्थडणेरइयाणमुस्सेधो अड्ढाइज्जसदधणूणि[1]। एवं भूमिं करिय सेसदोण्हं पत्थडाणमुस्सेधो आणेदव्वो। तस्स पमाणमेदं–

प्रस्तार	१	२	३
धनुष	१६६	२०८	२५०
हस्त	२	१	०
अंगुल	१६	८	०

[2]

सत्तमाए पुढवीए णेरइयाणमुस्सेधो पंचसदधणूणि[3]। तेसिं पमाणमेदं–

प्रस्तार	१
धनुष	५००

[4]

एत्थ णेरइएसु उस्सेधअट्ठमभागो विक्खंभो त्ति कट्टु परिट्ठवमद्धं करिय विक्खंभद्धेण गुणियुस्सेहेण गुणिदे णेरइयाणमोगाहणा होदि। ओगाहणं पडि

छठवीं पृथिवीके तीसरे पाथडेमें नारकियोंका उत्सेध ढाईसौ धनुष है। इसे भूमिरूपसे स्थापित करके शेष दो पाथड़ोंके नारकियोंका उत्सेध ले आना चाहिये। उसका प्रमाण यह है – (देखो मूलका नकशा)।

विशेषार्थ– छठी पृथिवीमें मुखका प्रमाण १२५ धनुष और भूमिका प्रमाण २५० धनुष है। तथा प्रतिपटल वृद्धिका प्रमाण ४१ धनुष, २ हाथ और १६ अंगुल है।

सातवीं पृथिवीके नारकियोंका उत्सेध पांचसौ धनुष है। उसका प्रमाण यह है– (देखो मूलका नकशा)।

यहां नारकियोंमें उत्सेधके आठवें भागप्रमाण विष्कम्भ होता है, ऐसा समझकर, विष्कम्भकी परिधिको आधा करके और विष्कम्भके आधेसे गुणित करके उत्सेधसे गुणित करनेपर नारकियोंकी अवगाहना होती है। अवगाहनाकी अपेक्षा सातवीं पृथिवी प्रधान है,

१ छट्ठीए × अड्ढाइज्जाइं धणुसयाइं। जीवाभि. ३, २, १२.

२ एक्कसाले दंडा हत्थाई दोण्णि सोलसंगुलया। छट्ठीए वसुहाए परिमाणं हाणिवड्ढीए ॥ छासट्ठी अधियसयं कोदंडा दोण्णि होंति हत्था य। सोलस पव्वा य पुढं हिमपडलगदाण उच्छेहो ॥ दोण्णि सयाणि अट्ठाउत्त दंडाणि अंगुलाणं च। बत्तीसं छट्ठीए मंदलठिदजीवउच्छेहो ॥ पण्णासब्भहियाणि दोण्णि सयाणि सरासणाणि च। लल्लंकणामइंदयठिदाण जीवाण उच्छेहो ॥ ति. प. २, २६६–२६९.

३ सत्तमाए × पंचधणुसयाइं। जीवाभि. ३, २, १२.

४ पंचसयाइं धणूणि सत्तमअवणीइ अवधिठाणम्मि। सव्वेसिं णिरयाणं काउच्छेहो जिणादेसो ॥ ति. प. २, २७०.

सत्तमपुढवी पधाणा, पढमपुढविओगाहणादो सत्तमपुढविओगाहणाए संखेज्जगुणत्तुवलंभादो। दव्वं पडि पढमपुढवी पहाणा, सेसपुढविदव्वादो पढमपुढविदव्वस्स असंखेज्जगुणत्तुवलंभादो। ओगाहणगुणगारादो दव्वगुणगारो बहुगो त्ति पढमपुढवी पहाणा कायव्वा।

सामण्णेण एत्थ अत्थपदं वुच्चदे। सत्थाणसत्थाणरासी मूलरासिस्स संखेज्जा भागा होदि। विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादरासीओ मूलरासिस्स संखेज्जदिभागो। एवमत्थपदं सव्वत्थ जोजेदव्वं। पुणो अप्पप्पणो रासिओ ठविय अंगुलस्स संखेज्जदिभागमेत्तोगाहणाए गुणिय चदुहि लोगेहि ओवट्टिदे चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो आगच्छदि। माणुसखेत्तेणोवट्टिदे असंखेज्जाणि माणुसखेत्ताणि होंति। णवरि वेयण-कसायेसु णवगुणा[1], वेउव्वियसमुग्घादे संखेज्जगुणा ओगाहणा सव्वत्थ कायव्वा[2]। एवं मारणंतियपदस्स। णवरि ओवट्टणं ठविज्जमाणे पढमपुढविदव्वं पहाणं कायव्वं। कुदो? मारणंतिएण परिणदजीवस्स तत्थ विग्गहगईए

क्योंकि, पहली पृथिवीकी अवगाहनासे सातवीं पृथिवीकी अवगाहना संख्यातगुणी पाई जाती है। तथा, द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा पहली पृथिवी प्रधान है, क्योंकि, द्वितीयादि शेष छह पृथिवियोंके द्रव्यप्रमाणसे पहली पृथिवीका द्रव्य असंख्यातगुणा पाया जाता है। इस प्रकार सातवीं पृथिवीके अवगाहनाके गुणकारसे पहली पृथिवीके द्रव्यप्रमाणका गुणकार बहुत बड़ा है, इसलिये यहांपर पहली पृथिवीको प्रधान करना चाहिये।

अब सामान्यरूपसे यहांपर अर्थपदका निरूपण करते हैं— स्वस्थानस्वस्थानराशि मूल नारकराशिके संख्यात बहुभागप्रमाण है। विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घातको प्राप्त राशियां मूलराशिके संख्यातवें भागप्रमाण हैं। यह अर्थपद सर्वत्र जोड़ लेना चाहिये। पुनः अपनी अपनी राशियोंको स्थापित करके, उन्हें अंगुलके संख्यातवें भागप्रमाण अवगाहनासे गुणित करके जो लब्ध आवें उसे सामान्य आदि चार लोकोंसे पृथक् पृथक् भाजित करनेपर, अर्थात् सामान्य आदि चार लोकोंके, तत्प्रमाण खंड करनेपर, चार लोकोंका असंख्यातवां भाग लब्ध आता है। तथा उक्त प्रमाणको मानुषलोकसे अपवर्तित करनेपर अर्थात् उक्त प्रमाणके मानुषक्षेत्रप्रमाण खंड करनेपर असंख्यात मानुषक्षेत्र आते हैं। इतनी विशेषता है कि वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घातमें सर्वत्र अवगाहनाको नौगुणी और वैक्रियिकसमुद्घातमें अवगाहनाको सर्वत्र संख्यातगुणी कर लेना चाहिये। मारणान्तिकसमुद्घातका कथन इसी प्रकार जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि अपवर्तनाके

१ वेदनासमुद्घातेन समोहतो × × शरीरप्रमाणमेतो विष्कंभबाहल्लेन नियमा लोकेषु × × प्रज्ञा. ३६, १७. एवं कषायसमुद्घातोऽपि भणितव्यो। प्रज्ञा. ३६, १८.

२ वैक्रियसमुद्घातेन समोहतो × × शरीरप्रमाणमेतो विष्कंभबाहल्लेन, आयामेन जघन्येन अंगुलस्य संख्येयतिभागं उत्कर्षेण संख्येयानि योजनानि एकदिशि विदिशि वा एवइए खित्ते × × प्रज्ञा. ३६, १९.

रज्जुअसंखेज्जदिभागमेत्तवीहत्तस्स वि उवलंभादो। तेण आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तपढमपुढविउवक्कमणकालेण ओवट्टिय लद्धस्स असंखेज्जा भागा विग्गहं करेंति। तेसिं पि असंखेज्जा भागा मारणंतियं करेंति त्ति। पुणो तमावलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तमारणंतियउवक्कमणकालेण गुणिदे मारणंतियरासी आगच्छदि। पुणो णेरइयमुहवित्थारेण णवगुणरज्जुअसंखेज्जदिभागेण मारणंतियरासिं गुणिदे तक्खेत्तं होदि। उववादस्सोवट्टणं ठविज्जमाणे पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण विदियपुढविदव्वे भागे हिदे तिरिक्खेहिंतो विदियपुढवीए उप्पज्जमाणमिच्छाइट्ठिणो होंति। पुणो अवरेगं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागं भागहारं ठविय रूवूणेण गुणिदे विग्गहगईए मारणंतिएण उप्पज्जमाणतिरिक्खमिच्छाइट्ठिणो होंति। पुणो अवरेगं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागं भागहारं ठविदे तिरिक्खेहिंतो विग्गहगदीए रज्जुपडिभागेण मारणंतिय करिय उप्पज्जमाणतिरिक्खमिच्छाइट्ठिणो होंति त्ति वत्तव्वं। सव्वत्थ रज्जुमेत्तायामविदियदंडुवलंभादो। पुणो एदं दव्वं तिरिक्खोगाहणमुहविस्थारेण णवरज्जुगुणिदेण गुणेदव्वं। ओवट्टणा पुव्वं व कादव्वा। एवं सासणस्स। णवरि उववादो णत्थि।

स्थापित करनेपर पहली पृथिवीके द्रव्यको प्रधान करना चाहिये, क्योंकि, मारणान्तिक समुद्घातसे परिणत हुए जीवके यहां विग्रहगतिमें राजुके असंख्यातवें भागप्रमाण दीर्घता भी पाई जाती है। इसलिये आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण पहली पृथिवीके उपक्रमणकालसे प्रतिसमयमें मरनेवाली राशिको भाजित करके जो लब्ध आवे उसके असंख्यात बहुभागप्रमाण जीव विग्रहको करते हैं। तथा इनके भी असंख्यात बहुभागप्रमाण जीव प्रति समयमें मारणान्तिकसमुद्घातको करते हैं। पुनः इसे आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण मारणान्तिकसमुद्घातके उपक्रमणकालसे गुणित करनेपर मारणान्तिक समुद्घातराशि होती है। पुनः नारकियोंके मुखविस्तारसे नौ गुणे राजुके असंख्यातवें भागसे मारणान्तिकराशिको गुणित करनेपर मारणान्तिकसमुद्घातक्षेत्र होता है। यह युक्तिसे कहा है। वास्तवमें तो उपपादकी अपवर्तनाके स्थापित करनेपर पल्योपमके असंख्यातवें भागसे दूसरी पृथिवीसंबन्धी द्रव्यके भाजित करनेपर तिर्यंचोंमेंसे दूसरी पृथिवीमें उत्पन्न होनेवाले मिथ्यादृष्टि जीव होते हैं। पुनः पल्योपमके असंख्यातवें भागरूप एक दूसरा भागहार स्थापित करके एक कमसे गुणित करनेपर विग्रहगतिमें मारणान्तिकसमुद्घातसे उत्पन्न होनेवाले तिर्यंच मिथ्यादृष्टि जीव होते हैं। पुनः एक दूसरे पल्योपमके असंख्यातवें भागको भागहाररूपसे स्थापित करनेपर तिर्यंचोंमेंसे विग्रहगतिमें राजुके प्रतिभागरूपसे मारणान्तिक समुद्घात करके उत्पन्न होनेवाले तिर्यंच मिथ्यादृष्टि जीव होते हैं, ऐसा कथन करना चाहिये, क्योंकि, सर्वत्र राजुमात्र आयामसे युक्त दूसरा दंड पाया जाता है। पुनः इस द्रव्यको नौ गुणी राजुसे गुणित तिर्यंचोंकी अवगाहनाके मुखविस्तारसे करना चाहिये। यहांपर अपवर्तना पहलेके समान करनी चाहिये।

मारणंतियरासिमिच्छिय दो आवलियाए असंखेज्जदिभागे अण्णोण्णगुणे करिय पुव्वरासिस्स भागहारं ठविय तप्पाओग्गेण आवलियाए असंखेज्जदिभाएण गुणिदे मारणंतियरासी होदि। सेसविधी पुव्वं व। एवं सम्मामिच्छाइट्ठिस्स। णवरि मारणंतियं पि णत्थि। असंजदसम्माइट्ठिस्स सासणभंगो। णवरि उववादो अत्थि। मारणंतिय-उववादेसु णेरइया सम्माइट्ठिणो संखेज्जा चेव होंति। सेसं जाणिय वत्तव्वं।

एवं सत्तसु पुढवीसु णेरइया ॥ ६ ॥

दव्वट्ठियणयमवलंबिय सुत्तं जदो ट्ठिदं[1] तदो सत्तण्हं पुढवीणं परूवणा णिरओघपरूवणाए तुल्लेत्ति घडदे। पज्जवट्ठियणए पुण अवलंबिज्जमाणे पढमपुढवि-परूवणा णिरओघपरूवणाए तुल्ला, सव्वगुणाणं सव्वपदेहि सरिसत्तुवलंभादो। ण विदियादिपंचपुढवीणं परूवणा ओघपरूवणाए पदं पडि तुल्ला, तत्थ असंजद-

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

इसी प्रकार सासादनसम्यग्दृष्टि नारकियोंके भी स्वस्थानस्वस्थान आदि समझना चाहिये। इतनी विशेषता है कि उनके उपपाद नहीं पाया जाता है। जब मारणान्तिक समुद्घातको प्राप्त राशिके लानेकी इच्छा हो तब दो बार आवलीके असंख्यातवें भागको परस्पर गुणित करके और उसे पूर्वराशिका भागहार स्थापित करके उसके योग्य आवलीके असंख्यातवें भागसे गुणित करनेपर मारणान्तिक समुद्घातको प्राप्त राशि होती है। शेष विधि पहलेके समान है। इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यादृष्टि नारकियोंके भी स्वस्थानस्वस्थान आदि जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इनके मारणान्तिकसमुद्घात भी नहीं होता है। असंयतसम्यग्दृष्टि नारकियोंके स्वस्थानस्वस्थान आदि सासादनसम्यग्दृष्टि नारकियोंके स्वस्थानस्वस्थान आदिके समान है। इतनी विशेषता है कि इनके उपपाद पाया जाता है। मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादमें सम्यग्दृष्टि नारकी संख्यात ही पाये जाते हैं। शेष कथन जानकर करना चाहिये।

इसी प्रकार सातों पृथिवियोंमें नारकी जीव लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं ॥ ६ ॥

चूंकि यह सूत्र द्रव्यार्थिक नयका अवलंबन लेकर स्थित है, इसलिये सातों पृथिवियोंकी प्ररूपणा नारकियोंकी ओघप्ररूपणा तुल्य है, यह कथन घटित हो जाता है। पर्यायार्थिक नयका अवलम्बन करनेपर तो पहली पृथिवीकी प्ररूपणा नारकियोंकी ओघप्ररूपणाके तुल्य है, क्योंकि, पहली पृथिवीमें सामान्यप्ररूपणासे सर्व गुणस्थानोंकी सर्व पदोंकी अपेक्षा समानता पाई जाती है। किंतु स्वस्थानस्वस्थान आदि पदोंकी अपेक्षा द्वितीयादि पांच पृथिवियोंकी प्ररूपणा

१ प्रतिषु ' जदो ट्ठिदं तदो ट्ठिदं ' इति पाठः।

सम्माइट्ठीणं उववादाभावादो। ण सत्तमपुढविपरूवणा वि णिरओघपरूवणाए तुल्ला, सासणसम्माइट्ठिमारणंतियपदस्स असंजदसम्माइट्ठिमारणंतिय-उववादपदाणं च तत्थ अभावादो। सत्तण्हं पुढवीणं ओगाहणाभेदो मारणंतिय-उववादाणं ठविज्जमाण-रज्जुभेदो दव्वविसेसो च वत्तव्वो। पढमपुढविमिच्छाइट्ठिमारणंतियखेत्तं तिरियलोगादो असंखेज्जगुणं। कुदो? पदरंगुलस्स संखेज्जविभागगुणिदतद्दव्वे सेढीए संखेज्जविभागेण गुणिदे तिरियलोगादो असंखेज्जगुणत्तुवलंभादो त्ति[1] एगपदेसमादिं कादूण जा उक्कस्सेण सगुप्पत्तिपदेसो त्ति मारणंतियखेत्तायामस्सुवलंभादो[2]। ण चेदमसिद्धं, महामच्छखेत्तट्ठाणपरूवणण्णहाणुववत्तीदो तत्थ जेण सेढीए असंखेज्जदिभागायामेण मारणंतियं करिय मरंता बहुवा, तेण तिरियलोगस्स असंखेज्जदिभागत्तं घडदे।

तिरिक्खगदीए तिरिक्खेसु मिच्छादिट्ठी केवडि खेत्ते, सव्व-लोए ॥ ७ ॥

ओघप्ररूपणाके समान नहीं है, क्योंकि, उन पृथिवियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंका उपपाद नहीं होता है। इसी प्रकार सातवीं पृथिवीकी प्ररूपणा भी नारक सामान्यप्ररूपणाके तुल्य नहीं है, क्योंकि, सातवीं पृथिवीमें सासादनसम्यग्दृष्टिसंबन्धी मारणान्तिक पदका और असंयतसम्यग्दृष्टिसंबन्धी मारणान्तिक और उपपाद पदका अभाव है। यहांपर सातों पृथिवियोंकी अवगाहनाका भेद और मारणान्तिक तथा उपपादका स्थापित होनेवाला राजुभेद और द्रव्यविशेषका कथन करना चाहिये। पहली पृथिवीके मिथ्यादृष्टियोंका मारणान्तिक क्षेत्र तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणा है, क्योंकि, मारणान्तिकसमुद्घातको प्राप्त राशिको प्रतरांगुलके संख्यातवें भागसे गुणित करके पुनः जगत्श्रेणीके संख्यातवें भागसे गुणित करनेपर तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणा क्षेत्र पाया जाता है। तथा एक प्रदेशसे लेकर उत्कृष्टरूपसे अपनी उत्पत्तिके प्रदेशतक मारणान्तिक क्षेत्रका आयाम पाया जाता है, इसलिये भी पहली पृथिवीके मिथ्यादृष्टियोंका मारणान्तिक क्षेत्र तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणा है और यह कथन असिद्ध भी नहीं है, क्योंकि, महामत्स्यके क्षेत्रस्थानकी प्ररूपणा अन्यथा बन नहीं सकती है। वहांपर चूंकि जगत्श्रेणीयोंके असंख्यातवें भाग आयामरूपसे मारणान्तिकसमुद्घातको करके मरनेवाले जीव बहुत हैं, इसलिये तिर्यग्लोकका असंख्यातवां भाग बन जाता है।

तिर्यंचगतिमें तिर्यंचोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं? सर्व लोकमें रहते हैं ॥ ७ ॥

१ प्रतिषु ' ति ण ' इति पाठः।

२ मारणंतियसमुग्घादेण × × सरीरप्पमाणमेत्ते विक्खम्भबाहल्लेण, आयामेण जहण्णेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागं उक्कस्सेण असंखेज्जाणि जोयणाणि एगदिसिं एवडिते खेत्ते × × प्रज्ञा. ३६, १८.

एदस्स सुत्तस्स परूवणा ओघमिच्छाविट्ठिपरूवणाए तुल्ला । णवरि वेउव्विय-समुग्घादगदजीवा तिरियलोगस्स असंखेज्जदिभागे, तिरिक्खेसु विउव्वमाणरासी पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्त'घणंगुलेहि गुणिदसेढिमेत्तो त्ति गुरुवदेसादो ।

सासणसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदा त्ति केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ८ ॥

एदेण देसामासियसुत्तेण सूचिद-अत्थो वुच्चदे- सत्थाणसत्थाण-विहारवदि-सत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्विएहि परिणदसासणसम्माइट्ठी केवडि खेत्ते ? चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे अच्छंति । रासिपमाणं भण्णमाणे सत्थाणसत्थाणरासी मूलरासिस्स संखेज्जा भागा । सेसरासीओ मूलरासिस्स संखेज्जदिभागमेत्तीओ । णवरि वेउव्वियसमुग्घादरासी मूलरासिस्स असंखेज्जदि-भागो । कुदो ? तिरिक्खेसु विउव्वमाणजीवाणं पउरं संभवाभावादो । एत्थ ओगाहणगुणगारो संखेज्जघणंगुलमेत्तो, एगघणगुलं वा[2] ।

इस सूत्रकी प्ररूपणा ओघमिथ्यादृष्टि प्ररूपणाके समान है । इतनी विशेषता है कि वैक्रियिकसमुद्घातको प्राप्त तिर्यंच जीव तिर्यग्लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, तिर्यंचोंमें विक्रिया करनेवाली राशि पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र घनांगुलोंसे गुणित जगत्श्रेणीप्रमाण है, ऐसा गुरुका उपदेश है ।

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर संयतासंयत गुणस्थानतकके तिर्यंच जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं ॥ ८ ॥

अब इस देशामर्शक सूत्रसे सूचित अर्थको कहते हैं- स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घातरूपसे परिणत सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यंच जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । स्वस्थानस्वस्थान आदि उक्त राशियोंके प्रमाणका कथन करनेपर स्वस्थानस्वस्थान जीवराशि मूलराशिके संख्यात बहुभागप्रमाण है । तथा शेष राशियां मूलराशिके संख्यातवें भाग मात्र हैं । इतनी विशेषता है कि वैक्रियिक समुद्घातको प्राप्त राशि मूलराशिके असंख्यातवें भागप्रमाण है, क्योंकि, तिर्यंचोंमें विक्रिया करनेवाले जीव प्रचुर संभव नहीं है । यहां पर अवगाहनाका गुणकार संख्यात घनांगुलप्रमाण अथवा एक घनांगुल है ।

१ बादरपुण्णा तेऊ सगरासीए असंखभागमिदा । विक्किरियसंसिदुत्ता पल्लासंखेज्जया वाऊ ॥ पल्लासंखेज्जाहयविदंगुलगुणिदसेढिमेत्ता हु । वेगुव्वियपंचक्खा ओगभुमा पुह विगुव्वंति गो. जी. २५८-२५९.

२ गो. जी. ९६.

एवं सम्मामिच्छाइट्ठि-असंजदसम्माइट्ठि-संजदासंजदाणं । मारणंतियसमुग्घादगदसासणसम्मादिट्ठि केवडि खेत्ते? चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे अच्छंति । ओघरासिमावलियाए असंखेज्जदिभागेण भागे हिदे मरंतसासणसम्माइट्ठिरासी होदि । पुणो वि आवलियाए असंखेज्जदिभागेण हरिय रूवूणेण गुणिदे मारणंतियसमुग्घादगदरासी होदि। पुणो वि आवलियाए असंखेज्जदिभागेण भागे हिदे रज्जुमेत्तायामेण मारणंतियसमुग्घादगद-एगसमयसंचिदरासी होदि । तमावलियाए असंखेज्जदिभागेण गुणिदे तक्कालसंचिदरासी होदि । एवं संखेज्जपदरंगुलगुणिदरज्जूए गुणिदे मारणंतियखेत्तं होदि। एवमसंजद-संजदासंजदाणं। सम्मामिच्छाइट्ठीणं मारणंतियं णत्थि ।

उववादगदसासणसम्माइट्ठी केवडि खेत्ते, चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे । एत्थ रासिपमाणमाणिज्जमाणे मूलरासिमावलियाए असंखेज्जदिभाएण भागे हिदे उप्पज्जमाणसासणसम्माइट्ठिरासी होदि । पुणो अवरेण

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत तिर्यंचोंके भी स्वस्थानस्वस्थान आदिके विषयमें समझना चाहिये । मारणान्तिकसमुद्घातको प्राप्त हुए सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यंच कितने क्षेत्रमें रहते हैं? सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं। ओघराशिको आवलीके असंख्यातवें भागसे भाजित करने पर मरनेवाली सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यंचराशि होती है। फिर भी आवलीके असंख्यातवें भागसे भाजित करके एक कम उससे गुणित करने पर मारणान्तिकसमुद्घातको प्राप्त राशि होती है। फिर भी आवलीके असंख्यातवें भागसे भाजित करने पर रज्जु मात्र आयामकी अपेक्षा मारणान्तिकसमुद्घातको प्राप्त एक समयमें संचित जीवराशि होती है। इसे आवलीके असंख्यातवें भागसे गुणित करने पर मारणान्तिक समुद्घातके कालमें संचित हुई राशि होती है। इसे संख्यात प्रतरांगुलोंसे गुणित राजुसे गुणा करने पर मारणान्तिक क्षेत्र होता है। इसी प्रकार असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत तिर्यंचोंके मारणान्तिकसमुद्घातके विषयमें कहना चाहिये। सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंके मारणान्तिकसमुद्घात नहीं होता है।

उपपादको प्राप्त सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यंच कितने क्षेत्रमें रहते हैं? सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं। यहां पर सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यंचोंकी उपपादराशिका प्रमाण लाने पर मूलराशिको आवलीके असंख्यातवें भागसे भाजित करने पर उत्पन्न होनेवाली सासादनसम्यग्दृष्टि राशि

आवलियाए असंखेज्जदिभागेण भागे हिदे रूवूणेण गुणिदे विग्गहगईए मारणंतिएण उप्पज्जमाणरासी होदि। संखेज्जा भागा मारणंतियं कादूणुप्पज्जंति त्ति के वि भणंति, एदं जाणिय वत्तव्वं। णत्थि एत्थ मज्झणियमो। तमावलियाए असंखेज्जदिभागेण भागे हिदे उज्जुदो आगच्छमाणरासी होदि। एदस्स पदरंगुलस्स संखेज्जदिभाएण गुणिदरज्जुं गुणगारं ठविदे उववादखेत्तं होदि। एत्थ ओवट्टणा पुव्वं व। एवमसंजदसम्माइट्ठिस्स। णवरि उववादे जीवा संखेज्जा होंति, पुव्वं बद्धायुग-मणुस्ससम्माइट्ठीहि विणा अण्णेसिं तत्थ उववादाभावादो। ओगाहणगुणगारो वि संखेज्जपदरंगुलमेत्तो, एगपदरंगुलमेत्तो वा। सम्मामिच्छाइट्ठि-संजदासंजदाणं उववादं णत्थि।

पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्त-पंचिंदियतिरिक्ख-जोणिणीसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदा केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ९ ॥

होती है। पुनः एक दूसरे आवलीके असंख्यातवें भागसे भाजित करनेपर और एक कम उक्त भागहारसे गुणित करनेपर विग्रहगतिमें मारणान्तिकसमुद्घातसे उत्पन्न होनेवाली जीवराशि है। उत्पन्न होनेवाली राशिके संख्यात बहुभाग प्रमाण जीव मारणान्तिकसमुद्घात करके उत्पन्न होते हैं, ऐसा कितने ही आचार्य कहते हैं, इसलिये इसको जानकर कथन करना चाहिये। किन्तु इस विषयमें कोई मध्यम नियम नहीं है। इसे आवलीके असंख्यातवें भागसे भाजित करनेपर ऋजुगतिसे आनेवाली राशिका प्रमाण होता है। प्रतरांगुलके संख्यातवें भागसे राजुको गुणित करके जो लब्ध आवे उसे इस राशिका गुणकार स्थापित करने पर उपपादक्षेत्र होता है। यहां पर अपवर्तना पहलेके समान जाननी चाहिये। इसी प्रकार असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्यंचोंका उपपाद जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि उपपादमें असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्यंच संख्यात ही होते हैं, क्योंकि, जिन मनुष्योंने सम्यग्दर्शनके पहले तिर्यंचायुका बन्ध कर लिया है ऐसे मनुष्य सम्यग्दृष्टियोंके विना दूसरे सम्यग्दृष्टियोंका तिर्यंचोंमें उपपाद नहीं होता है। इनकी अवगाहनाका गुणकार भी संख्यात प्रतरांगुलप्रमाण अथवा एक प्रतरांगुल मात्र है। सम्यग्मिथ्यादृष्टि और संयतासंयत तिर्यंचोंके उपपाद नहीं होता है।

पंचेन्द्रियतिर्यंच, पंचेन्द्रियतिर्यंच पर्याप्त और पंचेन्द्रियतिर्यंच योनिनी जीवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर संयतासंयत गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानके तिर्यंच कितने क्षेत्रमें रहते हैं? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं ॥ ९ ॥

एवं पि देसामासियं सुत्तमेव, संगहिदाणेगसुत्तत्थादो। तं जहा– सत्थाण-सत्थाण - विहारवदिसत्थाण - वेदण - कसायसमुग्घादगदपंचिंदियतिरिक्खमिच्छाइट्ठी केवडि खेत्ते ? तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे अच्छंति। एत्थ पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तरासिं मोत्तूण पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्तरासी चेव घेत्तव्वो, अपज्जत्तोगाहणादो पज्जत्तोगाहणाए असंखेज्जगुणत्तुवलंभादो। एत्थ सत्थाणसत्थाणरासी मूलरासिस्स संखेज्जभागमेत्ता होदि। सेसरासीओ तस्स संखेज्जदिभागमेत्तीओ। एत्थ ओगाहणगुणगारो संखेज्जघणंगुलमेत्तो। ओवट्टणं जाणिदूण कादव्वं। एवं पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्त-जोणिणीमिच्छादिट्ठीणं। वेउव्वियसमुग्घादगदमिच्छादिट्ठी केवडि खेत्ते ? चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे अच्छंति। एवं पंचिंदियतिरिक्ख-पज्जत्त-जोणिणीमिच्छाइट्ठीणं। मारणंतियसमुग्घादगदपंचिंदियतिरिक्खमिच्छाइट्ठी केवडि खेत्ते ? तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे। कुदो ? पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्त-रासिस्स पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तभागहारस्स सत्तादो। तं कधं ?

यह भी सूत्र देशामर्शक ही है, क्योंकि, इसमें अनेक सूत्रोंका अर्थ संगृहीत है। उसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है– स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घातको प्राप्त पंचेन्द्रियतिर्यंच मिथ्यादृष्टि जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सामान्यलोक, ऊर्ध्वलोक और अधोलोक, इन तीन लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं। यहांपर पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त जीवराशिको छोड़कर पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त राशिका ही ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि, अपर्याप्तोंकी अवगाहनासे पर्याप्तोंकी अवगाहना असंख्यातगुणी पाई जाती है। यहां पर स्वस्थानस्वस्थान राशि मूलराशिके संख्यात बहुभागप्रमाण होती है। शेष राशियां मूलराशिके संख्यातवें भागमात्र होती हैं। यहांपर अवगाहनाका गुणकार संख्यात घनांगुलप्रमाण है। अपवर्तनाका कथन जानकर करना चाहिये। इसी प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त तथा पंचेन्द्रियतिर्यंच योनिनी मिथ्यादृष्टियोंकी स्वस्थानस्वस्थानराशि आदि समझना चाहिये। वैक्रियिकसमुद्घातको प्राप्त पंचेन्द्रिय तिर्यंच मिथ्यादृष्टि जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं। इसी प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त तथा पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिनी मिथ्यादृष्टियोंका वैक्रियिकसमुद्घातगत क्षेत्र जानना चाहिये। मारणान्तिकसमुद्घातको प्राप्त पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त मिथ्यादृष्टि जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सामान्यलोक, ऊर्ध्वलोक और अधोलोक इन तीन लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्तराशिका भागहार पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र पाया जाता है।

संखेज्जवस्साउअतिरिक्खोवक्कमणकालेण आवलियाए असंखेज्जदिभाएण तेरासियकमेण भागे हिदे मरंतपंचिंदियतिरिक्खमिच्छाइट्ठिपमाणं होदि । एत्थ उवक्कमणकालागमणविधी वुच्चदे- संखेज्जावलियासु जदि आवलियाए असंखेज्जदिभागो णिरंतरउवक्कमणकालो लब्भदि, तो उवक्कमणाणुवक्कमणप्पयस्मि आयुट्ठिदिम्हि केत्तियमुवक्कमणकालं लभामो त्ति पमाणेण फलगुणिदमिच्छमोवट्टिदे आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तुवक्कमणकालो लब्भदि । एवं संखेज्जवस्साउअरासीणं सांतराणमुवक्कमणकालो अण्णेसिं पि आणेदव्वो[1] । पुणो मारणंतियरासिमिच्छिय अवरं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागं भागहारं ठविय रूवूणेण गुणिय रज्जुआयामेण दुवरासिमिच्छिय अण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण भागहारो ठवेयव्वो । पुणो एत्थसणसंचयमिच्छिय मारणंतियउवक्कमणकालेण आवलियाए असंखेज्जदिभाएण गुणिय पुणो एवं रज्जुगुणिदसंखेज्जपदरंगुलेहि गुणिदे मारणंतियखेत्तं होदि । एदेण

शंका- यह कैसे ?

समाधान- संख्यात वर्षकी आयुवाले तिर्यंचोंके उपक्रमणकालरूप आवलीके असंख्यातवें भागसे त्रैराशिक क्रमसे भाजित करने पर प्रत्येक समयमें मरनेवाले पंचेन्द्रिय तिर्यंच मिथ्यादृष्टियोंका प्रमाण होता है ।

अब यहां पर उपक्रमणकालके लानेकी विधिको कहते हैं- संख्यात आवलियोंके भीतर यदि आवलीका असंख्यातवां भागप्रमाण निरन्तर उपक्रमणकाल प्राप्त होता है, तो उपक्रमण और अनुपक्रमणरूप आयुकी स्थितिके भीतर कितने उपक्रमणकाल प्राप्त होंगे, इस प्रकार आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण फलराशिसे उपक्रमण और अनुपक्रमणात्मक आयुकी स्थितिरूप इच्छाराशिको गुणित करके और संख्यात आवलीप्रमाण प्रमाणराशिका भाग देने पर आवलीके असंख्यातवें भागमात्र उपक्रमणकाल प्राप्त होता है । इसी प्रकार संख्यात वर्षकी आयुवाली अन्य सान्तर राशियोंका भी उपक्रमणकाल ले आना चाहिये । पुनः यहां मारणान्तिक राशिका प्रमाण लाना है, इसलिये एक दूसरा पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण भागहार स्थापित करके और एक कम उसीसे गुणित करके राजुप्रमाण आयामकी अपेक्षा स्थित राशि लाना इष्टिछत है, इसलिये एक दूसरे पल्योपमके असंख्यातवें भागरूपसे भागहार स्थापित करना चाहिये । पुनः यहांपर मारणान्तिकसमुद्घातको प्राप्त जीवराशिका संचय इष्टिछत है, इसलिये मारणान्तिकसंबन्धी उपक्रमणकाल आवलीके असंख्यातवें भागसे गुणित करके पुनः क्षेत्र लानेके लिये इस राशिको राजुसे गुणित संख्यात प्रतरांगुलोंसे गुणित करने पर मारणान्तिक क्षेत्रका प्रमाण होता है । इस क्षेत्रके प्रमाणसे सामान्यलोक आदि

१ सोवक्कमाणुवक्कमकालो संखेज्जवासट्ठिदिवागे । आवलिअसंखभागो संखेज्जावलिपमा कमसो ।। गो. जी. २६५.

तिण्णि वि लोगे भागे हिदे पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो आगच्छदि त्ति तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे अच्छंति त्ति सिद्धं। तिरिय-णरलोगेहिंतो असंखेज्जगुणे। एवं पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्त-जोणिणीणं वत्तव्वं। उववादगदपंचिंदियतिरिक्खमिच्छाइट्ठी केवडि खेत्ते? तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे। एत्थ उववादखेत्तमाणिज्जमाणे मारणंतियभंगो। णवरि पढमदंडमुवसंहरिय विदियदंडट्ठियजीवे इच्छिय अण्णेगो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो भागहारो ठवेदव्वो, असंखेज्जजोयणविदियदंडायाम-जीवाणं बहूणमणुवलंभादो। एसो एगसमयसंचिदो त्ति आवलियाए असंखेज्जदि-भाएण गुणगारे अवणिदे रज्जुगुणिदसंखेज्जपदरंगुलाणि गुणगारो होदि। एवं पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्त-जोणिणीणं वत्तव्वं। सेसगुणट्ठाणाणं तिरिक्खोघभंगो। णवरि जोणिणीसु असंजदसम्माइट्ठीणं उववादो णत्थि।

तीनों ही लोकोंके भाजित करने पर पल्योपमका असंख्यातवां भाग आता है, इसलिये सामान्य लोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें मारणान्तिकसमुद्घातगत पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त जीव रहते हैं, यह बात सिद्ध हुई। तथा मारणान्तिकसमुद्घातगत पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त जीव तिर्यग्लोक और मनुष्यलोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं। इसी प्रकार मारणान्तिकसमुद्घातको प्राप्त पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त और पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिनियोंका कथन करना चाहिये।

उपपादको प्राप्त हुए पंचेन्द्रिय तिर्यंच मिथ्यादृष्टि जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं? सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं। यहां पर उपपादक्षेत्रके लाते समय मारणान्तिक क्षेत्रके समान कथन करना चाहिये। इतनी विशेषता है कि प्रथम दंडका उपसंहार करके दूसरे दंडमें स्थित जीवोंका प्रमाण लाना इच्छित है, इसलिये पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण एक दूसरा भागहार स्थापित करना चाहिये, क्योंकि, असंख्यात योजन आयामवाले दूसरे दंडमें स्थित जीव बहुत नहीं पाये जाते हैं। यह एक समयमें संचित जीवराशि हुई, इसलिये आवलीके असंख्यातवें भागसे गुणकारके अपनीत करने पर राजुसे गुणित संख्यात प्रतरांगुल गुणकार होता है। इसी प्रकार उपपादको प्राप्त पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त और पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिनियोंका कथन करना चाहिये। उपपादकी अपेक्षा शेष गुणस्थानोंका कथन तिर्यंच ओघके कथनके समान जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि योनिनी तिर्यंचोंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंका उपपाद नहीं होता है।

विशेषार्थ— यहांपर जो प्रथम दंड आदिका कथन किया गया है, उसका अभिप्राय यह है कि विग्रहगतिमें मरणक्षेत्रसे लगाकर प्रथम मोड़े तक जीवका जो सीधा गमन होता है वह प्रथम दंड है। तथा प्रथम मोड़ेसे लगाकर द्वितीय मोड़े तक जीवका जो सीधा गमन होता है वह द्वितीय दंड है। इसी प्रकारसे तीसरा दंड भी समझना चाहिए।

पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्ता केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदि-भागे ॥ १० ॥

एवस्स देसामासियसुत्तस्स अत्थो वुच्चदे– सत्थाण-वेदण-कसायसमुग्घादगदा केवडि खेत्ते? चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे। कुदो? उस्सेधघणंगुलं पलिदोवमस्स असंखेज्जविभागेण खंडिदमेत्तोगाहणत्तादो। अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे अच्छंति। विहारवदिसत्थाणं वेउव्वियसमुग्घादो य णत्थि। मारणंतिय-उववादगदा केवडि खेत्ते? तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे। कुदो? रासिस्स भागहारभूदा होदूण जहाकमेण दोण्णि तिण्णि पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागा लब्भंति त्ति। तिरिय-माणुसलोगादो असंखेज्जगुणे अच्छंति। सुगममेदं।

मणुसगदीए मणुस-मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवली केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे[1] ॥११॥

पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं ॥ १० ॥

अब इस देशामर्शक सूत्रका अर्थ कहते हैं– स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घातको प्राप्त हुए पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं? सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, उत्सेध घनांगुलको पल्योपमके असंख्यातवें भागसे खंडित करके जो एक भाग लब्ध आवे तत्प्रमाण पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त जीवकी अवगाहना है। तथा पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त जीव अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं। पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त जीवोंके विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकसमुद्घात नहीं पाया जाता है। मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादको प्राप्त हुए पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं? सामान्य लोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, राशिके भागहाररूप होकर यथाक्रमसे अर्थात् मारणान्तिकसमुद्घातकी अपेक्षा दो बार पल्योपमके असंख्यातवें भाग और उपपादकी अपेक्षा तीन बार पल्योपमका असंख्यातवां भाग पाया जाता है। तथा तिर्यग्लोक और मनुष्यलोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादके प्राप्त पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त जीव रहते हैं। इस प्रकार इसका व्याख्यान सुगम है।

मनुष्यगतिमें मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानमें जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं ॥ ११ ॥

[1] मनुष्यगतौ मनुष्याणां मिथ्यादृष्ट्यादयोयोगकेवल्यन्तानां लोकस्यासंख्येयभागः। स. सि. १, ८.

एदस्स सुत्तस्स अत्थो वुच्चदे– सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादगदमिच्छाइट्ठी केवडि खेत्ते? चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागे। कुदो? मणुसपज्जत्तमिच्छाइट्ठिखेत्तग्गहणादो। सेढीए असंखेज्जदिभागमेत्तमणुसअपज्जत्ताणं खेत्तस्स गहणं किण्ण कीरदे? ण, तस्स अंगुलस्स संखेज्जदिभागे संखेज्जंगुलेसु वा अवट्ठाणादो। मारणंतियगदमिच्छाइट्ठी केवडि खेत्ते? तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरिय-णरलोगेहिंतो असंखेज्जगुणे। कुदो? पहाणीकदमणुसअपज्जत्तरासीदो। एवमुववादस्स वि। णवरि एगो आवलियाए असंखेज्जदिभागो दोण्णि पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागा च मणुसअपज्जत्तरासिस्स भागहारा ठवेदव्वा।

सासणसम्माइट्ठी असंजदसम्माइट्ठी सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादेहि परिणदा केवडि खेत्ते? चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागे। मारणंतिय-उववादगदा चदुण्हं

अब इस सूत्रका अर्थ कहते हैं– स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घातको प्राप्त हुए मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य और मनुष्यिनी मिथ्यादृष्टि जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं? सामान्य लोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें और मनुष्यक्षेत्रके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, यहांपर मनुष्य पर्याप्त मिथ्यादृष्टियोंके क्षेत्रका ग्रहण किया है।

शंका– अपर्याप्त मनुष्य जगत्श्रेणीके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं, अतएव यहां उनके क्षेत्रका ग्रहण क्यों नहीं किया है?

समाधान– नहीं, क्योंकि, पर्याप्त मनुष्यका अवस्थान अंगुलके संख्यातवें भागमें अथवा संख्यात अंगुलोंमें पाया जाता है, इसलिये यहांपर अपर्याप्त मनुष्योंके क्षेत्रका ग्रहण नहीं किया है।

मारणान्तिकसमुद्घातको प्राप्त हुए मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य और मनुष्यिनी मिथ्यादृष्टि जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं? सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें और तिर्यग्लोक तथा मनुष्यलोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, यहांपर मनुष्य अपर्याप्तराशिकी प्रधानता है। इसी प्रकार उपपादका भी कथन करना चाहिये। इतनी विशेषता है कि मनुष्य अपर्याप्तराशिके एकवार आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण और दो वार पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण भागहार स्थापित करना चाहिये।

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिक-समुद्घातसे परिणत हुए सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि सामान्य मनुष्य कितने क्षेत्रमें रहते हैं? सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें और मानुषक्षेत्रके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं। मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादको प्राप्त हुए

लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे। सम्मामिच्छाइट्ठी सत्थाण-सत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादपरिणदा केवडि खेत्ते? चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागे। संजदासंजदा सत्थाण-सत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादपरिणदा केवडि खेत्ते? चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागे। मारणंतियसमुग्घादगदा चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणे अच्छंति। पमत्त-संजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति मूलोघभंगो। एवं मणुसपज्जत्तमणुसिणीसु। णवरि मिच्छाइट्ठीणं सासणसम्माइट्ठिभंगो। मणुसिणीसु असंजदसम्माइट्ठीणं उववादो णत्थि। पमत्ते तेजाहारसमुग्घादा णत्थि।

सजोगिकेवली केवडि खेत्ते, ओघं[1] ॥ १२ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो मूलोघमवधारिय लोगस्स असंखेज्जदिभागे, असंखेज्जेसु वा भागेसु, सव्वलोगे वा त्ति वत्तव्वो।

सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि सामान्य मनुष्य सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं। स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घातरूपसे परिणत हुए सम्यग्मिथ्यादृष्टि उक्त मनुष्य कितने क्षेत्रमें रहते हैं? सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें और मनुष्यक्षेत्रके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं। स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घात इन पदोंसे परिणत हुए संयतासंयत उक्त मनुष्य कितने क्षेत्रमें रहते हैं? सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें और मनुष्यक्षेत्रके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं। मारणान्तिक-समुद्घातको प्राप्त हुए संयतासंयत सामान्य मनुष्य सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें और मनुष्यक्षेत्रसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं। प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक सामान्य मनुष्योंके यथासंभव स्वस्थानस्वस्थान आदि पदोंका क्षेत्र मूलोघप्ररूपणाके समान जानना चाहिये। इसी प्रकार मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें समझना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इनमें मिथ्यादृष्टियोंका कथन सासादनसम्यग्दृष्टियोंके समान है। मनुष्यिनियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंका उपपाद नहीं पाया जाता है। इसी प्रकार उन्हींके प्रमत्तसंयत गुणस्थानमें तैजससमुद्घात और आहारकसमुद्घात नहीं पाया जाता है।

सयोगिकेवली भगवान् कितने क्षेत्रमें रहते हैं? ओघप्ररूपणामें सयोगि-जिनोंका जो क्षेत्र कह आये हैं, तत्प्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं ॥ १२ ॥

इस सूत्रका अर्थ, मूलोघ सूत्रका निश्चय करके सयोगिकेवली ओघ लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रमें, लोकके असंख्यात बहुभागप्रमाण क्षेत्रमें अथवा सर्व लोकमें रहते हैं, इस प्रकार कहना चाहिये।

---

१ सयोगिकेवलिनां सामान्योक्तं क्षेत्रम्। स. सि. १, ८.

मणुसअपज्जत्ता केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥१३॥

सत्थाण-वेदण-कसायसमुग्घादेहि परिणदा चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागे णिचिदकमेण । विण्णासकमेण पुण असंखेज्जाणि माणुसखेत्ताणि । मारणंतियसमुग्घादो माणुसोघतुल्लो । मारणंतियखेत्तं ठविज्जमाणे सूचिअंगुलपढम-तदियवग्गमूले गुणेदूण सेढिम्हि भागे हिदे दव्वं होदि । तम्हि आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्त-उवक्कमणकालेण भागे हिदे एगसमयम्हि मरंतरासी होदि । तं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण ओवट्टिय रूवूणेण गुणिदे एगसमयसंचिद-मारणंतियरासी होदि । पुणो तमावलियाए असंखेज्जदिभाएण मारणंतियउवक्कमण-कालेण गुणिदे मारणंतियकालब्भंतरे संचिदरासी होदि । पुणो अवरेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण भागे हिदे रज्जुआयामेण मुक्कमारणंतियरासी होदि । रज्जुआयदस्स विक्खंभो पदरंगुले पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण ओवट्टिदे होदि । एवमुववादस्स वि । णवरि एगसमयसंचिदो त्ति आवलियाए असंखेज्जदिभाएण

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

लब्ध्यपर्याप्त मनुष्य कितने क्षेत्रमें रहते हैं? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं ॥ १३ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घातसे परिणत हुए लब्ध्यपर्याप्त मनुष्य निचितक्रमसे सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें और मनुष्यक्षेत्रके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं। विन्यासक्रमसे तो असंख्यात मनुष्यक्षेत्र लब्ध्यपर्याप्त मनुष्योंका क्षेत्र है। मारणान्तिकसमुद्घातको प्राप्त हुए लब्ध्यपर्याप्त मनुष्योंका क्षेत्र ओघमनुष्यप्ररूपणाके समान है। मारणान्तिकक्षेत्रके स्थापित करनेपर सूच्यंगुलके प्रथम और तृतीय वर्गमूलको परस्पर गुणित करके जो राशि आवे उसका जगत्श्रेणीमें भाग देनेपर लब्ध्यपर्याप्त मनुष्योंका द्रव्यप्रमाण होता है। इसमें आवलीके असंख्यातवें भागमात्र उपक्रमणकालका भाग देनेपर एक समयमें मरनेवाले लब्ध्यपर्याप्त मनुष्योंकी राशिका प्रमाण होता है। इसे पल्योपमके असंख्यातवें भागसे भाजित करके और एक कम पल्योपमके असंख्यातवें भागसे गुणित करनेपर एक समयमें संचित हुई मारणान्तिकसमुद्घातको प्राप्त लब्ध्यपर्याप्त मनुष्यराशि होती है। पुनः इस राशिको आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण मारणान्तिक उपक्रमणकालसे गुणित करनेपर मारणान्तिककालके भीतर संचित जीवराशिका प्रमाण होता है। पुनः इसे एक दूसरे पल्योपमके असंख्यातवें भागसे भाजित करनेपर राजुप्रमाण आयामरूपसे किया है मारणान्तिकसमुद्घात जिन्होंने, ऐसे लब्ध्यपर्याप्त मनुष्योंकी राशि होती है। प्रतरांगुलको पल्योपमके असंख्यातवें भागसे भाजित करनेपर राजुप्रमाण आयतक्षेत्रका विस्तार होता है। इसी प्रकार उपपादका भी क्षेत्र समझना चाहिये। इतनी विशेषता है कि उपपादराशि एक समयमें संचित होती है, इसलिये ऊपर जो आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण गुणकार कह आये हैं वह निकाल देना चाहिये। अब दूसरे दंडमें जगत्श्रेणीके

गुणगारो अवणेदव्वो । विदियवग्गे सेडीए संखेज्जदिभागायामेण मुक्कमारणंतियजीवे इच्छामो त्ति अण्णेगो पलिदोवमस्स असंखेज्जविभागो भागहारो ठवेदव्वो ।

देवगदीए देवेसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठि त्ति केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे[1] ॥ १४ ॥

सत्थाणसत्थाण - विहारवदिसत्थाण - वेदण-कसाय - वेउव्वियसमुग्घादगददेव-मिच्छादिट्ठी तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोयस्स संखेज्जदिभागे, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणे । कुदो ? पधाणीकदजोइसियरासित्तादो । मारणंतिय-उववादपरिणदमिच्छादिट्ठी तिण्हं लोगाणमसंखेज्जविभागे णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणे । एत्थ खेत्तपमाणं जाणिय ठवेदव्वं । सेसगुणट्ठाणाणमोघभंगो ।

एवं भवणवासियप्पहुडि जाव उवरिम-उवरिमगेवज्जविमाण-वासियदेवा त्ति ॥ १५ ॥

एदेण देसामासियसुत्तेण सूचिद-अत्थो वुच्चदे । तं जहा— सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण - वेदण-कसाय - वेउव्विय - उववादपरिणदभवणवासियमिच्छादिट्ठी

संख्यातवें भाग आयामरूपसे किया है मारणान्तिकसमुद्घात जिन्होंने, ऐसे जीवोंको लाना इष्ट है, इसलिये एक दूसरा पल्योपमका असंख्यातवां भाग भागहार स्थापित करना चाहिये ।

देवगतिमें देवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानके देव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं ॥ १४ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिक-समुद्घातको प्राप्त हुए देव मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें और मानुषक्षेत्रसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, यहांपर ज्योतिष्क देवराशि प्रधान है । मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादरूपसे परिणत हुए मिथ्यादृष्टि देव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें और मनुष्यलोक तथा तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । यहांपर क्षेत्रके प्रमाणको जानकर स्थापित करना चाहिये । देवोंके शेष गुणस्थानोंकी प्ररूपणा ओघप्ररूपणाके समान है ।

भवनवासी देवोंसे लेकर उपरिम-उपरिम ग्रैवेयकके विमानवासी देवों तकका क्षेत्र इसी प्रकार होता है ॥ १५ ॥

अब इस देशामर्शक सूत्रसे सूचित हुए अर्थको कहते हैं । वह इस प्रकार है— स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, वैक्रियिकसमुद्घात और

---

[1] देवगतौ देवानां सर्वेषां चतुर्षु गुणस्थानेषु लोकस्यासंख्येयभागः । स. सि. १, ८.

चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे । तिरिक्ख-मणुसमिच्छादिट्ठिणो कण्णागारेण ट्ठिदभवणवासियखेत्तेसु उप्पज्जमाणा वे विग्गहे कादूण सेढीए संखेज्जदिभागायामेण उप्पज्जंता संभवंति, तदो तिरियलोगादो असंखेज्जगुणेण उववादखेत्तेण होदव्वमिदि ? सच्चमेदं जइ सेढीए संखेज्जदिभागमेत्तायामो उववादखेत्तस्स लब्भइ । किंतु संखेज्जसूचिअंगुलमेत्तो चेव । एत्तो संखेज्जजोयणाणि हेट्ठा गंतूण भवणवासियविमाणाणमवट्ठाणाणुवलंभादो । ण च तिरियलोगे सव्वत्थ तदावासा, तिरियलोगस्स मज्झिमासंखेज्जदिभागे चेव तेसिमत्थित्तदंसणादो । ण च उवरिमदेवेसुप्पज्जमाणतिरिक्खाणं व भवणवासिएसुप्पज्जमाणतिरिक्ख-मणुस्साणं सगुप्पत्तिदिसं मुच्चा तिरिच्छेण गमणमत्थि, कंडुज्जुवाए गईए भवणवासियजगपणिधिमागंतूण हेट्ठावलिए भवणवासिएसुप्पत्तिदंसणादो । एदं कुदो णव्वदे ? भवणवासियाणमुववादखेत्तस्स तिरियलोगासंखेज्जदिभागत्तण्णहाणुववत्तीदो । सगच्छिदट्ठाणादो हेट्ठा ओयरिय भवणवासिएसुप्पज्जमाणाणमुववादखेत्तायामो सेढीए संखेज्जदिभागो

उपपादरूपसे परिणत हुए भवनवासी मिथ्यादृष्टि देव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं ।

शंका- कर्णरेखाके आकारसे स्थित भवनवासियोंके क्षेत्रोंमें उत्पन्न होनेवाले तिर्यंच और मनुष्य मिथ्यादृष्टि जीव दो विग्रह करके जगत्श्रेणीके संख्यातवें भागप्रमाण आयामरूपसे उत्पन्न होते हुए पाये जाना संभव है, इसलिये भवनवासियोंका उपपादक्षेत्र तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणा होना चाहिये ?

समाधान- यदि उपपादक्षेत्रका आयाम जगत्श्रेणीके संख्यातवें भागप्रमाण पाया जाता, तो यह उक्त कथन सत्य होता । किन्तु, उपपादक्षेत्रका आयाम संख्यात सूच्यंगुलमात्र ही है, क्योंकि, इससे संख्यात योजन नीचे जाकर भवनवासियोंके विमानोंका अवस्थान नहीं पाया जाता है, तथा तिर्यग्लोकमें भी सर्वत्र भवनवासियोंके आवास नहीं है, क्योंकि, तिर्यग्लोकके मध्यवर्ती असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें ही भवनवासी देवोंका अस्तित्व देखा जाता है । दूसरे, उपरिम देवोंमें उत्पन्न होनेवाले तिर्यंचोंके समान भवनवासियोंमें उत्पन्न होनेवाले तिर्यंच और मनुष्योंका अपनी उत्पत्तिकी दिशाको छोड़कर तिरछा गमन होता हो, ऐसा भी नहीं है, क्योंकि, मनुष्य और तिर्यंचोंकी बाणके समान सीधी गतिसे भवनवासी लोकके समीप आकर अधस्तनश्रेणीमें स्थित भवनवासी देवोंमें उत्पत्ति देखी जाती है ।

शंका- यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान- भवनवासियोंका उपपादक्षेत्र तिर्यग्लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण अन्यथा बन नहीं सकता है, इससे उक्त कथन जाना जाता है ।

अपने रहनेके स्थानसे नीचे आकर भवनवासी देवोंमें उत्पन्न होनेवाले मनुष्य तिर्यंचोंके उपपादक्षेत्रका आयाम जगत्श्रेणीके संख्यातवें भागप्रमाण पाया जाता है, मात्र इसीलिये उसका ग्रहण करना युक्त नहीं है, क्योंकि, उक्त प्रकारसे उनमें उत्पन्न होनेवाले जीव बहुत थोड़े होते हैं ।

लब्भदि त्ति तग्गहणं जुत्तं, तहा सत्थुप्पज्जमाणाणं सुट्ठु त्थोवत्तादो। एवं कुदो णव्वदे? तिरियलोगस्सासंखेज्जदिभागे त्ति वक्खाणादो। मारणंतियसमुग्घादगदमिच्छाइट्ठी तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे तिरियलोगादो असंखेज्जगुणे, अड्ढाइज्जादो वि असंखेज्जगुणे। सेसमोघं। णवरि असंजदसम्माइट्ठीणं उववादो णत्थि। वाणवेंतर-जोइसियाणं देवोघभंगो। णवरि असंजदसम्माइट्ठीणं उववादो णत्थि।

पणुवीसं असुराणं सेसकुमाराण दस धणू चेय।
वेंतर-जोदिसियाणं दस सत्त धणू मुणेयव्वा[1] ॥ १८ ॥

एदम्हादो उस्सेहादो एत्थ ओगाहणखेत्तमाणेदव्वं। सोधम्मीसाणे सत्थाण-सत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादगदमिच्छादिट्ठी चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणे। एत्थ सगलखेत्तपरिक्खा भवणवासियभंगो। अप्पणो ओहिखेत्तमेत्तं देवा विउव्वंति त्ति जं आइरियवयणं[2]

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

शंका— यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान— उपपादपरिणत भवनवासी देव तिर्यग्लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं, इस प्रकार व्याख्यानसे उक्त कथन जाना जाता है।

मारणान्तिकसमुद्घातको प्राप्त हुए मिथ्यादृष्टि भवनवासी देव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें, तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें और अढ़ाईद्वीपसे भी असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं। शेष कथन ओघप्ररूपणाके समान है। इतनी विशेषता है कि असंयतसम्यग्दृष्टियोंका भवनवासियोंमें उपपाद नहीं होता है। वानव्यन्तर और ज्योतिषी देवोंका क्षेत्र देवसामान्यके क्षेत्रके समान है। इतनी विशेषता है कि असंयत-सम्यग्दृष्टियोंका वानव्यन्तर और ज्योतिषियोंमें उपपाद नहीं होता है।

भवनवासियोंके दश भेदोंमेंसे प्रथम भेद असुरकुमारोंके शरीरकी ऊंचाई पच्चीस धनुष और शेष नौ कुमारोंके शरीरकी ऊंचाई दश धनुष है। तथा व्यन्तर देवोंके शरीरकी ऊंचाई दश धनुष और ज्योतिषी देवोंके शरीरकी ऊंचाई सात धनुष जानना चाहिये ॥ १८ ॥

इस पूर्वोक्त उत्सेधसे यहां अवगाहनाक्षेत्र ले आना चाहिये। सौधर्म और ईशान कल्पमें स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घातको प्राप्त हुए मिथ्यादृष्टि देव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें और मानुषक्षेत्रसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं। यहांपर सर्व पदगत क्षेत्रोंकी परीक्षा भवनवासियोंके क्षेत्रके समान करना चाहिये। देव अपने अपने अवधिज्ञानके क्षेत्रप्रमाण विक्रिया करते हैं, इस प्रकार जो अन्य आचार्योंका वचन है वह घटित नहीं होता है, क्योंकि, ऐसा माननेपर लोकके

१ त्रि. सा. २४९. तत्र चतुर्थचरणे ' दस सत्त सरीरउदओ दु ' इति पाठः।

२ सेसा वेंतरदेवा णिय-णिय-ओहीणखेत्तियं खेत्तं। पूरंति तेत्तियं चि हु पसंसकं विकरणबलेण। ति. प. ५, १६.

तण्ण घडदे, लोगस्स संखेज्जदिभागमेत्तवेउव्वियखेत्तप्पसंगादो। मारणंतिय-उववादाणं देवोघभंगो। उववादखेत्तं ठविज्जमाणे विक्खंभसूचीगुणिदसेढिं ठविय पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभाएण सोहम्मीसाणउवक्कमणकालेण ओवट्टिदे उप्पज्जमाणजीवा होंति। असंखेज्जजोयणविदियदंडेण उप्पज्जमाणजीवे इच्छिय अवरो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो भागहारो ठवेदव्वो। एक्कपदरंगुलविक्खंभेण सेढीए संखेज्जदिभागायामेण खेत्तं पुसंति त्ति पदरंगुलगुणिदसेढीए संखेज्जदिभागो गुणगारो ठवेदव्वो। सव्वत्थ उजुगदीए उप्पज्जमाणजीवेहिंतो विग्गहगदीए उप्पज्जमाणजीवा असंखेज्जगुणा। कुदो? सेढीदो उस्सेढीए बहुत्तुवलंभादो। भवणवासियउववादखेत्तं व तिरियलोगस्स असंखेज्जदिभागो किं ण होदि त्ति वुत्ते ण होदि, पभापत्थडे उप्पज्जमाणाणं तिरिक्खाणं सव्वेसिं पि सेढीए संखेज्जदिभागायामो विदियदंडस्स लब्भदे, तेणेदमुववादखेत्तं तिरियलोगादो असंखेज्जगुणं त्ति। सेसगुणट्ठाणाणं देवभंगो।

संख्यातवें भागप्रमाण वैक्रियिकसमुद्घातगत क्षेत्रके माननेका प्रसंग आ जाता है। सौधर्म और ईशानकल्पमें देवमिथ्यादृष्टियोंके मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादसंबन्धी क्षेत्र देवसामान्यके मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादगतके समान जानना चाहिये। उपपादक्षेत्रके स्थापित करते समय सौधर्म-ऐशान देवमिथ्यादृष्टियोंकी विष्कंभसूचीसे गुणित जगत्श्रेणीको स्थापित करके पल्योपमके असंख्यातवें भागरूप सौधर्म और ऐशानसंबन्धी उपक्रमणकालसे अपवर्तित करनेपर उत्पन्न होनेवाले जीवोंका प्रमाण होता है। पुनः असंख्यात योजनरूप दूसरे दंडसे उत्पन्न होनेवाले जीवोंको लाना इष्ट है, ऐसा समझकर पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण एक दूसरा भागहार स्थापित करना चाहिये। तथा एक प्रतरांगुलप्रमाण विष्कंभसे और जगत्श्रेणीके संख्यातवें भागप्रमाण आयामसे क्षेत्रके स्पर्श करते हैं, इसलिये प्रतरांगुलगुणित जगत्श्रेणीका संख्यातवां भागप्रमाण गुणकार स्थापित करना चाहिये। सर्वत्र ऋजुगतिसे उत्पन्न होनेवाले जीवोंकी अपेक्षा विग्रहगतिसे उत्पन्न होनेवाले जीव असंख्यातगुणे होते हैं, क्योंकि, श्रेणीकी अपेक्षा उच्छ्रेणियां बहुत पाई जाती हैं।

शंका— सौधर्म और ईशान कल्पके देवोंका उपपादक्षेत्र भवनवासी देवोंका उपपाद-क्षेत्रके समान तिर्यग्लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्यों नहीं होता है?

समाधान— नहीं, क्योंकि, सौधर्म ईशान कल्पके इकतीसवें प्रभापटलमें उत्पन्न होनेवाले सभी तिर्यंचोंके दूसरे दंडका आयाम जगत्श्रेणीके संख्यातवें भागप्रमाण पाया जाता है। इसलिये सौधर्म और ईशान कल्पके देवोंका उपपादक्षेत्र तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणा होता है, यह सिद्ध हुआ। सौधर्म और ईशानकल्पके देवोंके शेष गुणस्थानोंके स्वस्थानस्वस्थान क्षेत्रका कथन देवसामान्यके स्वस्थानस्वस्थान क्षेत्रके समान जानना चाहिये। सनत्कुमारकल्पसे लेकर उपरिम-उपरिमग्रैवेयक तक मिथ्यादृष्टि देवोंका स्वस्थानस्वस्थान आदि क्षेत्र ओघ सासादनसम्यग्दृष्टिके स्वस्थानस्वस्थान आदि क्षेत्रके समान है। तथा उन्हींके सासादनसम्यग्दृष्टि,

सणकुमारप्पहुडि जाव उवरिम-उवरिमगेवज्जो त्ति मिच्छाविट्ठी ओघसासणभंगो। सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीणं ओघभंगो।

अणुदिसादि जाव सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवा असंजदसम्मादिट्ठी केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ १६ ॥

सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्विय-मारणंतिय-उववादगदअसंजदसम्माइट्ठिणो चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे अच्छंति त्ति वत्तव्वं। णवरि सव्वट्ठे सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियपदेसु माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागे। कधं ? सव्वट्ठे वेदण-कसायसमुग्घादाणं तेहिंतो समुप्पज्जमाणथोवविप्फुज्जणं पडुच्च तधोवदेसादो, कारणे कज्जोवयारादो वा।

एवं गदिमग्गणा समत्ता।

इंदियाणुवादेण एइंदिया बादरा सुहुमा पज्जत्ता अपज्जत्ता केवडि खेत्ते, सव्वलोगे[1] ॥ १७ ॥

सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टियोंके स्वस्थानस्वस्थान आदि क्षेत्र ओघसासादनसम्यग्दृष्टि आदिके स्वस्थानस्वस्थान आदि क्षेत्रोंके समान होते हैं।

नौ अनुदिशोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धिविमान तकके असंयतसम्यग्दृष्टि देव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं ॥ १६ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, वैक्रियिकसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादको प्राप्त हुए उक्त असंयतसम्यग्दृष्टि देव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, ऐसा यहां कथन करना चाहिये। इतनी विशेषता है कि सर्वार्थसिद्धिमें स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घात इन स्थानोंमें देव मानुषक्षेत्रके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, सर्वार्थसिद्धिमें वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घातगत देवोंके उनके निमित्तसे उत्पन्न होनेवाला स्तोक उत्फुल्लन होता है, अर्थात् उक्त दोनों समुद्घातोंमें आत्मप्रदेशोंका बाह्य विस्तार बहुत कम होता है, इस अपेक्षा उक्त प्रकारका उपदेश दिया है। अथवा, कारणमें कार्यके उपचारसे उक्त प्रकारका उपदेश दिया है।

इस प्रकार गतिमार्गणा समाप्त हुई।

इन्द्रियमार्गणाके अनुवादसे एकेन्द्रियजीव, बादर एकेन्द्रियजीव, सूक्ष्म एकेन्द्रियजीव, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीव, बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीव, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त जीव और सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सर्व लोकमें रहते हैं ॥ १७ ॥

---

१ इन्द्रियानुवादेन एकेन्द्रियाणां क्षेत्रं सर्वलोकः। स. सि. १, ८.

एत्थ लोगणिद्देसेण पंचण्हं लोगाणं गहणं, देसामर्शकत्वाल्लोकस्य । बादर-सुहुमादिवयणेण सत्थाणसत्थाण-वेयण-कसाय-वेउव्विय-मारणंतिय-उववादपरिणद-जीवाणं गहणं, छव्विहावत्थावदिरित्तबादरादीणमभावादो । तदो सव्वसुत्ताणि देसामासियाणि चेव ? ण एस णियमो उभयगुणोवलंभादो । सत्थाण वेदण-कसाय-मारणंतिय-उववादगदा एइंदिया केवडि खेत्ते ? सव्वलोगे । वेउव्वियसमुग्घादगदा चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे । माणुसखेत्तं ण विण्णायदे, संपहियकाले विसिट्ठुव-एसाभावा । तं जहा– वेउव्वियमुट्ठावेंतरासी पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । अहवा तस्स ओगाहणा उस्सेहघणंगुलस्स असंखेज्जदिभागो । तस्स को पडिभागो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । विउव्वमाण-एइंदियरासीदो घणंगुलस्स भागहारो

इस सूत्रमें लोक पदके निर्देशसे पांचों लोकोंका ग्रहण किया है, क्योंकि, यहां लोक पदका निर्देश देशामर्शक है । सूत्रमें बादर और सूक्ष्म आदि वचनसे स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, वैक्रियिकसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपदसे परिणत हुए जीवोंका ग्रहण किया है, क्योंकि, उक्त छह प्रकारकी अवस्थाओंके अतिरिक्त बादर आदि जीव नहीं पाये जाते हैं ।

शंका– यदि ऐसा है, तो सर्व सूत्र देशामर्शक ही हैं ?

समाधान– सर्व सूत्र देशामर्शक ही हैं, यह नियम नहीं है, क्योंकि, सूत्रोंमें दोनों प्रकारके धर्म पाये जाते हैं । अर्थात् कुछ सूत्र देशामर्शक हैं और कुछ नहीं, इसलिये सभी सूत्र देशामर्शक ही हैं, यह नियम नहीं किया जा सकता है ।

स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादको प्राप्त हुए एकेन्द्रिय जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सर्व लोकमें रहते हैं । वैक्रियिकसमुद्घातको प्राप्त हुए एकेन्द्रिय जीव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं । किन्तु मानुषक्षेत्रके सम्बन्धमें नहीं जाना जाता है कि उसके कितने भागमें रहते हैं, क्योंकि, वर्तमानकालमें इस प्रकारका विशिष्ट उपदेश नहीं पाया जाता है । आगे इसी विषयका स्पष्टीकरण करते हैं– विक्रियाको उत्पन्न करनेवाली एकेन्द्रिय जीवराशि पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है । अथवा, विक्रियात्मक एकेन्द्रिय जीवोंके शरीरकी अवगाहना उत्सेधघनांगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण होती है ।

शंका– उत्सेधघनांगुलमें जिसका भाग देनेसे उत्सेधघनांगुलका असंख्यातवां भाग लब्ध आता है, उस असंख्यातवें भागका प्रतिभाग क्या है ?

समाधान– पल्योपमका असंख्यातवां भाग प्रतिभाग है, अर्थात् पल्योपमके असंख्यातवें भागका उत्सेधघनांगुलमें भाग देनेसे उत्सेधघनांगुलका असंख्यातवां भाग लब्ध आता है जो विक्रियात्मक एकेन्द्रिय जीवके शरीरकी अवगाहना है ।

किमप्पो बहुगो समो वा इदि ण[1] णव्वदे ? जदि वेउव्वियरासीदो घणंगुलभागहारो संखेज्जगुणो होदि, तो माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागे । अह असंखेज्जगुणो, तो असंखेज्जदिभागे । अह सरिसो, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागे । ण च एत्थ एवं चेव होदि त्ति णिच्छओ अत्थि, तदो माणुसखेत्तं ण णव्वदि त्ति सिद्धं ।

बादरेइंदिय-बादरेइंदियपज्जत्ता सत्थाण-वेदण-कसायसमुग्घादगदा तिण्हं लोगाणं संखेज्जदिभागे, णर-तिरियलोएहिंतो असंखेज्जगुणे । तं जहा– मंदरमूलादो उवरि जाव सदर-सहस्सारकप्पो त्ति पंचरज्जु-उस्सेधेण लोगणाली समचउरंसा वाहेण आउण्णा, तं जगपदरं कस्सामो । एक्कुणवंचासरज्जुपदराणं जदि एगं जगपदरं लब्भदि, तो पंचरज्जुमेत्तरज्जुपदराणं किं लभामो त्ति फलगुणिदमिच्छं पमाणेणोवट्टिदे[2]

ऊपर विक्रिया करनेवाली एकेन्द्रिय जीवराशि भी पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण बतलाई है और उत्सेधघनांगुलका भागहार भी पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण बतलाया है, इसलिये विक्रिया करनेवाली एकेन्द्रिय जीवराशिसे उत्सेधघनांगुलका भागहार क्या छोटा है, या बड़ा है, या समान है, यह कुछ नहीं जाना जाता है । अब यदि एकेन्द्रिय वैक्रियिकराशिसे उत्सेधघनांगुलका भागहार संख्यातगुणा है, ऐसा लेते हैं तो विक्रिया करनेवाली एकेन्द्रिय जीवराशि मानुषक्षेत्रके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहती है, ऐसा अभिप्राय निकलता है । अथवा, विक्रिया करनेवाली एकेन्द्रिय जीवराशिसे उत्सेधघनांगुलका भागहार असंख्यातगुणा लेते हैं तो वह राशि मानुषक्षेत्रके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहती है, यह अभिप्राय होता है और यदि विक्रिया करनेवाली एकेन्द्रिय जीवराशिसे उत्सेधघनांगुलका भागहार समान है, ऐसा लेते हैं तो वह राशि मानुषक्षेत्रके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहती है यह अभिप्राय होता है । परन्तु यहांपर मानुषक्षेत्रका इतना ही भाग लिया गया है, ऐसा कुछ भी निश्चय नहीं है, इसलिये मानुषक्षेत्रके सम्बन्धमें कुछ भी नहीं जाना जाता है कि विक्रिया करनेवाली एकेन्द्रिय जीवराशि उसके कितने भागमें रहती है, यह सिद्ध हुआ ।

स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घातको प्राप्त हुए बादर एकेन्द्रिय और बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें तथा मनुष्यलोक और तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है– मन्दराचलके मूलभागसे लेकर ऊपर शतार और सहस्रारकल्प तक पांच राजु उत्सेधरूपसे समचतुरस्र लोकनाली वायुसे परिपूर्ण है । अब उसे जगत्प्रतरके प्रमाणस्वरूप करते हैं– यदि उनंचास प्रतरराजुओंके एक पटलका एक जगत्प्रतर प्राप्त होता है, तो पांच राजुप्रमाण पांच प्रतरराजुओंका क्या प्राप्त होगा, इस प्रकार त्रैराशिक करके एक जगत्प्रतरप्रमाण फलराशिसे पांच प्रतरराजुप्रमाण इच्छाराशिको गुणित करके उनंचास प्रतरराजुप्रमाण प्रमाणराशिसे भाजित करनेपर, दो बटे पांच कम उनहत्तरसे घनलोकके भाजित करनेपर जो एक भाग होता है उतना लब्ध आता है, जो कि ५ घनराजु प्रमाण है ।

---

१ प्रतिषु ' ण ' इति पाठो नास्ति । २ प्रतिषु ' –दो वे ' इति पाठः ।

वे-पंचभागूण-एगूणसत्तरिरूवेहि घणलोगे भागे हिदे एगभागो आगच्छदि । लोगपेरंतवादखेत्तं संखेज्जजोयणबाहल्लं जगपदरं पुव्वपरूविदमाणेदूण एत्थेव पक्खिविय अट्ठपुढविखेत्तं तेसिं हेट्ठा ट्ठिदवादजगपदरं संखेज्जजोयणबाहल्लमाणेदूण पक्खित्ते जेण लोगस्स संखेज्जदिभागमेत्तं बादरेइंदिय-बादरेइंदियपज्जत्ताणं खेत्तं आदं, तेण बादरेइंदिय-बादरेइंदियपज्जत्ता लोगस्स संखेज्जदिभागे होंति त्ति सिद्धं । वेउव्वियसमुग्घादगदाणं एइंदियओघभंगो । मारणंतिय-उववादगदा सव्वलोगे । बादरेइंदियअपज्जत्ताणं बादरेइंदियभंगो । णवरि वेउव्वियपदं णत्थि । सुहुमेइंदिया तेसिं चेव पज्जत्तापज्जत्ता य सत्थाण-वेदण-कसाय-मारणंतिय-उववादगदा सव्वलोगे, सुहुमाणं सव्वत्थ अच्छणं पडि विरोहाभावादो ।

वीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिया तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता य केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे[1] ॥ १८ ॥

उदाहरण— १ × ५ = ५, ५ ÷ ४९ = $\frac{५}{४९}$ जगत्प्रतर । चूंकि यह वातपरिपूर्ण क्षेत्र १ राजु मोटा है, अतएव ५ घनराजु हुआ, जो कि $३४३ \times \frac{५}{४९} = ३४\frac{३}{७}$ घनलोक प्रमाण होता है ।

तथा पहले प्ररूपित किये गये लोकके चारों ओर प्रान्तभागमें संख्यात योजन बाहल्यरूप जगत्प्रतरप्रमाण वातक्षेत्रको लाकर इसी पूर्वोक्त वातक्षेत्रमें मिलाकर तथा आठों पृथिवियोंके क्षेत्र और उनके नीचे स्थित वायुक्षेत्र, जो कि संख्यात योजन बाहल्यरूप जगत्प्रतरप्रमाण हैं, उनको उसी पूर्वोक्त क्षेत्रमें मिला देनेपर चूंकि लोकके संख्यातवें भागप्रमाण बादर एकेन्द्रिय और बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंका क्षेत्र होता है, इसलिये बादर एकेन्द्रिय और बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीव लोकके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं, यह सिद्ध हुआ । वैक्रियिकसमुद्घातको प्राप्त हुए बादर एकेन्द्रिय और बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंका क्षेत्र वैक्रियिकसमुद्घातगत सामान्य एकेन्द्रियोंके क्षेत्रके समान होता है । मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादको प्राप्त हुए बादर एकेन्द्रिय और बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीव सर्व लोकमें रहते हैं । बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तोंका क्षेत्र बादर एकेन्द्रियोंके समान होता है । इतनी विशेषता है कि बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तोंके वैक्रियिकसमुद्घातपद नहीं होता है । स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादको प्राप्त हुए सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव और उन्हींके पर्याप्त अपर्याप्त जीव सर्व लोकमें रहते हैं, क्योंकि, सूक्ष्म जीवोंके सर्व लोकमें पाये जानेमें कोई विरोध नहीं है ।

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय जीव और उन्हींके पर्याप्त तथा अपर्याप्त जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं ॥ १८ ॥

[1] विकलेन्द्रियाणां लोकस्यासंख्येयभागः । स. सि. १, ८.

एदस्स अत्थो वुच्चदे– सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-समुग्घादपरिणदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे। णवरि तिण्हमपज्जत्ता चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे। मारणंतियउववादगदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगादो असंखेज्जगुणे, अड्ढाइज्जादो वि असंखेज्जगुणे। एत्थ मारणंतियखेत्तमाणिज्जमाणे बीइंदिय-तीइंदिय-चदुरिंदिया तेसिं पज्जत्त-अपज्जत्तदव्वं ठविय आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्त-उवक्कमणकालेण खंडिय तस्स असंखेज्जदिभागो वा संखेज्जदिभागो वा मारणंतिएण विणा मरदि त्ति एदस्स असंखेज्जा भागा संखेज्जा भागा वा घेत्तूण मारणंतिय-उवक्कमणकालेण आवलियाए असंखेज्जदिभाएण गुणिदे मारणंतियरासी होदि। रज्जुमेत्तायामेण ट्ठिदरासिमिच्छामो त्ति पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागं भागहारं ठविय अप्पप्पणो विक्खंभवग्गगुणिदरज्जूए गुणिदे मारणंतियखेत्तं होदि। उववादखेत्तं ठविज्जमाणे एवं चेव ठविय मारणंतिय-उवक्कमणकालगुणगारमवणिदे

अब इस सूत्रका अर्थ कहते हैं– स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घात इन पदोंसे परिणत हुए उक्त जीव सामान्य लोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं। इतनी विशेषता है कि तीनों ही विकलेन्द्रियोंके अपर्याप्त जीव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं। मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादको प्राप्त हुए तीनों विकलेन्द्रिय और उनके पर्याप्त तथा अपर्याप्त जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें, तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें तथा अढ़ाईद्वीपसे भी असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं। यहांपर मारणान्तिकक्षेत्रके लाते समय द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय तथा उनकी पर्याप्त और अपर्याप्त जीवराशिको स्थापित कर उसे आवलीके असंख्यातवें भागमात्र उपक्रमणकालसे खंडित करके उसका जो असंख्यातवां भाग अथवा संख्यातवां भाग लब्ध आवे, उतनी राशि मारणान्तिकसमुद्घातके बिना मरण करती है। इसलिये इस राशिके असंख्यात बहुभाग अथवा संख्यात बहुभागप्रमाण राशिको ग्रहण करके उसे मारणान्तिकसमुद्घातके उपक्रमण कालरूप आवलीके असंख्यातवें भागसे गुणित करनेपर मारणान्तिक जीवराशि होती है। यहां एक राजुमात्र आयामसे स्थित मारणान्तिक जीवराशि इच्छित है, इसलिये उक्त राशिके नीचे भागहारके स्थानमें पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र भागहारको स्थापित करके और अपने अपने विष्कंभके वर्गसे गुणित राजुसे उक्त राशिके गुणित करनेपर मारणान्तिकसमुद्घातगत विकलत्रय और उनके पर्याप्त तथा अपर्याप्त जीवोंका मारणान्तिकक्षेत्र होता है। उपपादक्षेत्रके लाते समय इसी मारणान्तिक जीवराशिको स्थापित करके और उसमेंसे मारणान्तिक उपक्रमणकालके गुणकारको निकाल लेनेपर एक समयमें संचित हुई मारणान्तिक जीवराशि होती है। एक समयमें संचित हुई

एगसमयसंचिदो मारणंतियरासी होदि । तस्स असंखेज्जा भागा विग्गहगदीए उप्पज्जंति त्ति तस्स असंखेज्जे भागे घेत्तूण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण ओवट्टिदे सेढीए संखेज्जदिभागायामेण विदियदंडाइवरासी होदि ।

पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्तएसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे[1] ॥ १९ ॥

एदस्स अत्थो - सत्थाणसत्थाण - विहारवदिसत्थाण - वेदण-कसाय-वेउव्विय-समुग्घादगदपंचिंदियमिच्छाइट्ठी तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे । मारणंतिय-उववादगदमिच्छाइट्ठी तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणे । एदाणं खेत्ताणमाणयणं पुव्वं व कादव्वं । सासणादीणमोघभंगो । एवं पज्जत्ताणं पि वत्तव्वं ।

सजोगिकेवली ओघं ॥ २० ॥

इस मारणान्तिक जीवराशिके असंख्यात बहुभाग जीव विग्रहगतिसे उत्पन्न होते हैं, इसलिये उसके असंख्यात भागको ग्रहण करके पल्योपमके असंख्यातवें भागसे भाजित करनेपर जगत्श्रेणीके संख्यातवें भाग आयामरूपसे दूसरे दंडमें स्थित जीवराशि होती है ।

पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानके जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं ॥ १९ ॥

अब इस सूत्रका अर्थ कहते हैं– स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घातको प्राप्त हुए पंचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादको प्राप्त हुए पंचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें और मनुष्यलोक तथा तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । इन क्षेत्रोंको पहलेके समान ले आना चाहिये । सासादनसम्यग्दृष्टि आदिका स्वस्थानस्वस्थान आदि पदगत क्षेत्र ओघसासादनसम्यग्दृष्टि आदिके स्वस्थानस्वस्थान आदि पदगत क्षेत्रके समान जानना चाहिये । इसी प्रकार पर्याप्तोंके क्षेत्रका भी कथन करना चाहिये ।

सयोगिकेवलियोंका क्षेत्र सामान्यप्ररूपणाके समान है ॥ २० ॥

१ पंचेन्द्रियाणां मनुष्यवत् । स. सि. १, ८.

एदस्स सुत्तस्स अत्थो पुव्वं परूविदो त्ति ण वुच्चदे ।

पंचिंदियअपज्जत्ता केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥२१॥

सत्थाण-वेदण-कसायसमुग्घादगवपंचिंदियअपज्जत्ता चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे । कुदो? अंगुलस्स असंखेज्जदिभागमेत्तओगाहणादो । मारणंतिय-उववादगदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणे ।

एदमिंदियमग्गणा गदा ।

कायाणुवादेण पुढविकाइया आउकाइया तेउकाइया वाउकाइया, बादरपुढविकाइया बादरआउकाइया बादरतेउकाइया बादरवाउकाइया बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरा तस्सेव अपज्जत्ता, सुहुमपुढविकाइया सुहुमआउकाइया सुहुमतेउकाइया सुहुमवाउकाइया तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता य केवडि खेत्ते, सव्वलोगे[1] ॥ २२ ॥

इस सूत्रके अर्थकी प्ररूपणा पहले कर आये हैं, इसलिये यहां पर पुनः उसका कथन नहीं करते हैं ।

लब्ध्यपर्याप्त पंचेन्द्रिय जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं ॥ २१ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घातको प्राप्त हुए लब्ध्यपर्याप्त पंचेन्द्रिय जीव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, लब्ध्यपर्याप्त पंचेन्द्रियोंकी अवगाहना अंगुलके असंख्यातवें भागमात्र है । मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादको प्राप्त हुए लब्ध्यपर्याप्त पंचेन्द्रिय जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें तथा मनुष्यलोक और तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं ।

इस प्रकार इन्द्रियमार्गणा समाप्त हुई ।

कायमार्गणाके अनुवादसे पृथिवीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक जीव तथा बादर पृथिवीकायिक, बादर अप्कायिक, बादर तेजस्कायिक, बादर वायुकायिक और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर जीव तथा इन्हीं पांच बादर कायसम्बन्धी अपर्याप्त जीव, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म अप्कायिक, सूक्ष्म तेजस्कायिक, सूक्ष्म वायुकायिक और इन्हीं सूक्ष्मोंके पर्याप्त और अपर्याप्त जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सर्व लोकमें रहते हैं ॥ २२ ॥

१ कायानुवादेन पृथिवीकायादिवनस्पतिकायिकान्तानां सर्वलोकः । स. सि. १, ८.

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

एदस्स सुत्तस्स अत्थो वुच्चदे । तं जहा– पुढविकाइया सुहुमपुढविकाइया तेसिं पज्जत्ता अपज्जत्ता, आउकाइया सुहुमआउकाइया तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता, तेउकाइया सुहुमतेउकाइया तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता, वाउकाइया सुहुमवाउकाइया तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता च सत्थाण-वेदण-कसाय मारणंतिय-उववादगदा सव्वलोए, असंखेज्जलोगमेत्तपरिमाणादो । णवरि तेउकाइया वेउव्वियसमुग्घादगदा पंचण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, वाउकाइया वेउव्वियसमुग्घादगदा चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे । माणुसखेत्तं ण णव्वदे । बादरपुढविकाइया तेसिं चेव अपज्जत्ता सत्थाण-वेदण-कसायसमुग्घादगदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगादो संखेज्जगुणे[1], अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे । तं जहा– जेण बादरपुढविकाइया सापज्जत्ता पुढवीओ चेव अस्सिदूण अच्छंति, तेण पुढवीओ जगपदरपमाणेण कस्सामो । [2]तत्थ पढमपुढवी एगरज्जुविक्खंभा सत्तरज्जुदीहा वीससहस्सूण-बे-जोयणलक्खबाहल्ला, एसा अप्पणो बाहल्लस्स सत्तमभागबाहल्लं जगपदरं होदि ।

अब इस सूत्रका अर्थ कहते हैं । वह इस प्रकार है– स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादको प्राप्त हुए पृथिवीकायिक और सूक्ष्म पृथिवीकायिक तथा उन्हींके पर्याप्त और अपर्याप्त जीव, अप्कायिक और सूक्ष्म अप्कायिक तथा उन्हींके पर्याप्त और अपर्याप्त जीव, तेजस्कायिक और सूक्ष्म तेजस्कायिक तथा उन्हींके पर्याप्त और अपर्याप्त जीव, वायुकायिक और सूक्ष्म वायुकायिक तथा उन्हींके पर्याप्त और अपर्याप्त जीव सर्व लोकमें रहते हैं, क्योंकि, उक्त राशियोंका परिमाण असंख्यात लोकप्रमाण है । इतनी विशेषता है कि वैक्रियिकसमुद्घातको प्राप्त हुई तेजस्कायिकराशि पांचों लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहती है । वैक्रियिकसमुद्घातको प्राप्त हुई वायुकायिकराशि सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहती है । वैक्रियिकसमुद्घातको प्राप्त हुई वायुकायिकराशि मानुषक्षेत्रकी अपेक्षा कितने क्षेत्रमें रहती है, यह नहीं जाना जाता है । स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घातको प्राप्त हुए बादर पृथिवीकायिक और उन्हींके अपर्याप्त जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें, तिर्यग्लोकसे संख्यातगुणे क्षेत्रमें और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है– चूंकि बादर पृथिवीकायिक जीव और उन्हींके अपर्याप्त जीव पृथिवीका आश्रय लेकर ही रहते हैं, इसलिये पृथिवियोंको जगत्प्रतरके प्रमाणसे करते हैं । उनमेंसे एक राजु चौड़ी, सात राजु लम्बी और बीस हजार योजन कम दो लाख योजन मोटी पहली पृथिवी है । यह घनफलकी अपेक्षा अपने बाहल्यके अर्थात् एक लाख अस्सी हजार योजनके सातवें भाग बाहल्यरूप जगत्प्रतरप्रमाण है ।

१ प्रतिषु ' असंखेज्जगुणे ' इति पाठः ।

२ इत आरभ्याष्टपृथिवीप्ररूपकोऽधस्तनो गद्यभागस्त्रिलोकप्रज्ञप्तेः प्रथमाधिकारस्यान्तिमभागेन सह शब्दशः समानः ।

विदियपुढवी सत्तमभागूण-वे-रज्जुविक्खंभा सत्तरज्जुआयदा बत्तीसजोयणसहस्स-बाहल्ला सोलहसहस्साहियचदुण्हं लक्खाणं एगुणवंचासभागबाहल्लं जगपदरं होदि । तदियपुढवी वे-सत्तभागहीण-तिण्णिरज्जुविक्खंभा सत्तरज्जुआयदा अट्ठावीसजोयण-सहस्सबाहल्ला बत्तीससहस्साहियं पंचलक्खजोयणाणं एगूणवंचासभागबाहल्लं जगपदरं होदि । चउत्थपुढवी तिण्णि-सत्तभागूण-चत्तारिरज्जुविक्खंभा सत्तरज्जुआयदा चउवीसजोयणसहस्सबाहल्ला छजोयणलक्खाणमेगूणवंचासभागबाहल्लं जगपदरं होदि ।

.....

उदाहरण– पहली पृथिवी उत्तरसे दक्षिणतक सात राजु, पूर्वसे पश्चिमतक एक राजु और एक लाख अस्सी हजार योजन मोटी है, अतएव १८०००० योजनोंके प्रमाणमें ७ का भाग देनेसे २५७१४$\frac{२}{७}$ योजन लब्ध आते हैं और एक राजुके स्थानमें जगत्श्रेणीका प्रमाण हो जाता है । इस प्रकार २५७१४$\frac{२}{७}$ योजनोंके जितने प्रवेश हों उतने जगत्प्रतरप्रमाण पहली पृथिवीका घनफल होता है ।

दूसरी पृथिवी एक राजुके सात भागोंमेंसे एक भाग कम दो राजु चौड़ी, सात राजु लम्बी और बत्तीस हजार योजन मोटी है । यह घनफलकी अपेक्षा चार लाख सोलह हजार योजनोंके उनंचासवें भाग बाहल्यरूप जगत्प्रतरप्रमाण है ।

उदाहरण– दूसरी पृथिवी उत्तरसे दक्षिणतक सात राजु; पूर्वसे पश्चिमतक $\frac{१३}{७}$ राजु और ३२००० योजन मोटी;

$$\frac{१३}{७} \times \frac{७}{१} = \frac{१३}{१} ; \quad \frac{१३}{१} \times \frac{३२०००}{१} = \frac{४१६०००}{१} ; \quad \frac{४१६०००}{१} \div \frac{४९}{१} = \frac{४१६०००}{४९}$$

योजन बाहल्यरूप जगत्प्रतरप्रमाण ।

तीसरी पृथिवी एक राजुके सात भागोंमेंसे दो भाग कम तीन राजु चौड़ी, सात राजु लम्बी और अट्ठाईस हजार योजन मोटी है । यह घनफलकी अपेक्षा पांच लाख बत्तीस हजार योजनोंके उनंचासवें भाग बाहल्यरूप जगत्प्रतरप्रमाण है ।

उदाहरण– तीसरी पृथिवी उत्तरसे दक्षिणतक ७ राजु लम्बी, पूर्वसे पश्चिमतक $\frac{१९}{७}$ राजु चौड़ी और २८००० योजन मोटी है ।

$$\frac{१९}{७} \times \frac{७}{१} = \frac{१९}{१} ; \quad \frac{१९}{१} \times \frac{२८०००}{१} = \frac{५३२०००}{१} ; \quad \frac{५३२०००}{१} \div \frac{४९}{१} = \frac{५३२०००}{४९}$$

योजन बाहल्यरूप जगत्प्रतर ।

चौथी पृथिवी एक राजुके सात भागोंमेंसे तीन भाग कम चार राजु चौड़ी, सात राजु लम्बी और चौबीस हजार योजन मोटी है । यह घनफलकी अपेक्षा छह लाख योजनोंके उनंचासवें भाग बाहल्यरूप जगत्प्रतरप्रमाण है ।

पंचमपुढवी चत्तारि-सत्तभागूणपंचरज्जुविक्खंभा सत्तरज्जुआयदा वीसजोयणसहस्स-बाहल्ला वीससहस्साहियछण्हं लक्खाणमेगूणवंचासभागबाहल्लं जगपदरं होदि। छट्ठपुढवी पंच-सत्तभागूण-छरज्जुविक्खंभा सत्तरज्जुआयदा सोलहजोयणसहस्स-बाहल्ला वाणउदिसहस्साहियपंचण्हं लक्खाणमेगूणवंचासभागबाहल्लं जगपदरं होदि। सत्तमपुढवी छ-सत्तभागूण-सत्तरज्जुविक्खंभा सत्तरज्जुआयदा अट्ठजोयणसहस्स-बाहल्ला चउदालसहस्साहियतिण्हं लक्खाणमेगूणवंचासभागबाहल्लं जगपदरं होदि।

उदाहरण– चौथी पृथिवी उत्तरसे दक्षिणतक सात राजु, पूर्वसे पश्चिमतक $\frac{२५}{७}$ राजु और मोटी २४००० योजन है।

$$\frac{२५}{७} \times \frac{७}{१} = \frac{२५}{१}; \quad \frac{२५}{१} \times \frac{२४०००}{१} = \frac{६०००००}{१}; \quad \frac{६००००००}{१} \div \frac{४९}{१} = \frac{६०००००}{४९}$$

योजन बाहल्यरूप जगत्प्रतरप्रमाण।

पांचवी पृथिवी एक राजुके सात भागोंमेंसे चार भाग कम पांच राजु चौड़ी, सात राजु लम्बी और बीस हजार योजन मोटी है। यह घनफलकी अपेक्षा छह लाख बीस हजार योजनोंके उनंचासवें भाग बाहल्यरूप जगत्प्रतरप्रमाण है।

उदाहरण– पांचवी पृथिवी उत्तरसे दक्षिणतक सात राजु; पूर्वसे पश्चिमतक $\frac{३१}{७}$ राजु और मोटी २०००० योजन है।

$$\frac{३१}{७} \times \frac{७}{१} = \frac{३१}{१}; \quad \frac{३१}{१} \times \frac{२००००}{१} = \frac{६२००००}{१}; \quad \frac{६२००००}{१} \div \frac{४९}{१} = \frac{६२०००}{४९}$$

योजन बाहल्यरूप जगत्प्रतरप्रमाण।

छठी पृथिवी एक राजुके सात भागोंमेंसे पांच भाग कम छह राजु चौड़ी, सात राजु लम्बी और सोलह हजार योजन मोटी है। यह घनफलकी अपेक्षा पांच लाख बानवे हजार योजनोंके उनंचासवें भाग बाहल्यरूप जगत्प्रतरप्रमाण है।

उदाहरण– छठी पृथिवी उत्तरसे दक्षिणतक सात राजु, पूर्वसे पश्चिमतक $\frac{३७}{७}$ राजु और मोटी १६००० योजन है।

$$\frac{३७}{७} \times \frac{७}{१} = \frac{३७}{१}; \quad \frac{३७}{१} \times \frac{१६०००}{१} = \frac{५९२०००}{१}; \quad \frac{५९२०००}{१} \div \frac{४९}{१} = \frac{५९२०००}{४९}$$

योजन बाहल्यरूप जगत्प्रतरप्रमाण।

सातवीं पृथिवी एक राजुके सात भागोंमेंसे छह भाग कम सात राजु चौड़ी, सात राजु लम्बी और आठ हजार योजन मोटी है। यह घनफलकी अपेक्षा तीन लाख चवालीस हजार योजनोंके उनंचासवें भाग बाहल्यरूप जगत्प्रतरप्रमाण है।

उदाहरण– सातवीं पृथिवी उत्तरसे दक्षिण तक सात राजु; पूर्वसे पश्चिम तक $\frac{४३}{७}$ राजु और मोटी ८००० योजन है।

अट्ठमपुढवी सत्तरज्जुआयदा एगरज्जुरुंदा अट्ठजोयणबाहल्ला सत्तमभागाहिय-एकजोयणबाहल्लं जगपदरं होदि। एदाणि सव्वाणि एगट्ठे कदे तिरियलोगबाहल्लादो संखेज्जगुणबाहल्लं जगपदरं होदि। एत्थ असंखेज्जा लोगमेत्ता पुढविकाइया चिट्ठंति, तेण तिरियलोगादो संखेज्जगुणो त्ति सिद्धं। एदेहि पदेहि लोगस्स असंखेज्जदिभागे चिट्ठंता बादरपुढविकाइया सुत्तेण सव्वलोगे चिट्ठंति त्ति वुत्ता, तं कथं घडदे? ण, मारणंतिय-उववादपदे पडुच्च तधोवदेसादो। मारणंतिय-उववादगदा सव्वलोगे।

$\frac{४३}{७} \times \frac{७}{१} = \frac{४३}{१}$; $\frac{४३}{१} \times \frac{८०००}{१} = \frac{३४४०००}{१}$; $\frac{३४४०००}{१} \div \frac{४९}{१} = \frac{३४४०००}{४९}$

योजन बाहल्यरूप जगत्प्रतरप्रमाण।

आठवीं पृथिवी सात राजु लम्बी, एक राजु चौड़ी और आठ योजन मोटी है। यह घनफलकी अपेक्षा एक योजनके सात भाग करनेपर उनमेंसे सातवां भाग अर्थात् एक भाग अधिक एक योजन बाहल्यरूप जगत्प्रतरप्रमाण है।

उदाहरण– आठवीं पृथिवी उत्तरसे दक्षिण तक सात राजु; पूर्वसे पश्चिम तक एक राजु और आठ योजन मोटी है।

$१ \times ७ = ७$; $८ \div ७ = \frac{८}{७}$ योजन बाहल्यरूप जगत्प्रतरप्रमाण.

इन सबको एकत्रित करनेपर तिर्यग्लोकके बाहल्यसे संख्यातगुणे बाहल्यरूप जगत्प्रतर होता है। इन पृथिवियोंमें असंख्यात लोकप्रमाण पृथिवीकायिक जीव रहते हैं, इसलिये वे तिर्यग्लोकसे संख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, यह सिद्ध हुआ।

विशेषार्थ– तिर्यग्लोकका प्रमाण घनफलकी अपेक्षा १४२८५$\frac{३}{७}$ योजन बाहल्यरूप जगत्प्रतर है और आठों पृथिवियोंका घनफल ६२३४३६$\frac{४}{७}$ योजन बाहल्यरूप जगत्प्रतर है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि तिर्यग्लोकके प्रमाणसे आठों पृथिवियोंका क्षेत्र संख्यातगुणा है। बादर पृथिवीकायिक जीव इन आठों पृथिवियोंमें सर्वत्र पाये जाते हैं, इसलिये वे तिर्यग्लोकसे संख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, यह सिद्ध हो जाता है।

शंका– उपर्युक्त स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घात, इन पदोंकी अपेक्षा बादर पृथिवीकायिक जीव जब कि लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं, तो वे 'सर्व लोकमें रहते हैं' ऐसा जो सूत्रद्वारा कहा गया है वह कैसे घटित होता है?

समाधान– नहीं, क्योंकि, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादकी अपेक्षा 'बादर पृथिवीकायिक जीव सर्व लोकमें रहते हैं,' इस प्रकारका उपदेश दिया गया है।

मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादको प्राप्त हुए बादर पृथिवीकायिक और बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त जीव सर्व लोकमें रहते हैं। इसी प्रकार बादर अप्कायिक और उन्हींके अपर्याप्त जीवोंका भी कथन करना चाहिये। अर्थात् पृथिवीकायिक और अपर्याप्त पृथिवीकायिक

एवं बादरआउकाइयाणं तेसिमपज्जत्ताणं च । पुढवीसु सव्वत्थ ण जलमुवलंभदि त्ति आउकाइया सव्वत्थ पुढवीसु ण होंति त्ति णासंकणिज्जं, बादरकम्मोदएण बादरत्तमुवगयाणं अणुवलंभमाणाणं पि सव्वपुढवीसु अत्थित्तविरोधाभावादो । एवं बादरतेउकाइयाणं तस्सेव अपज्जत्ताणं च । णवरि वेउव्वियपदमत्थि, ते च पंचण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे । तेउकाइया बादरा सव्वपुढवीसु होंति त्ति कधं णव्वदे ? आगमादो । एवं बादरवाउकाइयाण तेसिमपज्जत्ताण च । णवरि सत्थाण-वेयण-कसाय-समुग्घादगदा तिण्हं लोगाणं संखेज्जदिभागे, दो-लोगेहिंतो असंखेज्जगुणे । वेउव्वियसमुग्घादगदा चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे । माणुसखेत्तं ण विण्णायदे ।

जीवोंके समान स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घातको प्राप्त हुए बादर जलकायिक और बादरजलकायिक अपर्याप्त जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकसे संख्यातगुणे क्षेत्रमें, तथा मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादको प्राप्त हुए बादरजलकायिक और उन्हींके अपर्याप्त जीव सर्व लोकमें रहते हैं ।

शंका– पृथिवियोंमें सर्वत्र जल नहीं पाया जाता है, इसलिये जलकायिक जीव पृथिवियोंमें सर्वत्र नहीं रहते हैं ?

समाधान– ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिये, क्योंकि, बादरनामक नामकर्मके उदयसे बादरत्वको प्राप्त हुए जलकायिक जीव यद्यपि पृथिवियोंमें सर्वत्र नहीं पाये जाते हैं, तो भी उनका सर्व पृथिवियोंमें अस्तित्व होनेमें कोई विरोध नहीं आता है ।

इसी प्रकार अर्थात् बादर जलकायिक और उन्हींके अपर्याप्त जीवोंके समान बादर तेजस्कायिक और उन्हींके अपर्याप्त जीवोंका स्वस्थानस्वस्थान आदि पूर्वोक्त पदोंमें कथन करना चाहिये । इतनी विशेषता है कि बादर तेजस्कायिक जीवोंके वैक्रियिकसमुद्घातपद भी होता है और वे पांचों लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं ।

शंका– बादर तेजस्कायिक जीव सर्व पृथिवियोंमें होते हैं, यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान– आगमसे यह जाना जाता है कि बादर तेजस्कायिक जीव सर्व पृथिवियोंमें रहते हैं ।

इसी प्रकार बादर वायुकायिक और उन्हींके अपर्याप्त जीवोंके पदोंका कथन करना चाहिये । इतनी विशेषता है कि स्वस्थान, वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घातको प्राप्त हुए बादर वायुकायिक और बादर वायुकायिक अपर्याप्त जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें और तिर्यग्लोक तथा मनुष्यलोक इन दो लोकोंसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । वैक्रियिकसमुद्घातको प्राप्त हुए बादर वायुकायिक जीव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं । किन्तु यहां मनुष्यक्षेत्र नहीं जाना जाता है कि उसके कितने भागमें रहते हैं । सभी अपर्याप्त जीवोंमें वैक्रियिकसमुद्घातपद

सव्वअपज्जत्तेसु वेउव्वियपदं णत्थि । बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरा तस्सेव अपज्जत्ता बादरणिगोदपदिट्ठिदा तस्सेव अपज्जत्ता च बादरपुढवितुल्ला ।

बादरपुढविकाइया बादरआउकाइया बादरतेउकाइया बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरा पज्जत्ता केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ २३ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो वुच्चदे । तं जहा– बादरपुढविपज्जत्ता सत्थाण-वेदण-कसायसमुग्घादगदा चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे । एत्थ ओवट्टणं ठविय जोएदव्वं । मारणंतिय-उववादगदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, णरतिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणे । एवं बादरआउकाइयपज्जत्ता । बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीर-बादरणिगोदपदिट्ठिदपज्जत्ताणमेवं चेव । णवरि बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्ता वेदण-कसाय-सत्थाणेसु तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे । एदेसिं रासीणं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ता जगपदराणि पदरंगुलेण

नहीं होता है । बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर और उन्हींके अपर्याप्त जीव तथा बादर निगोदप्रतिष्ठित और उन्हींके अपर्याप्त जीव, बादर पृथिवीकायिक जीवोंके समान हैं ।

बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त जीव, बादर अप्कायिक पर्याप्त जीव, बादर तेजस्कायिक पर्याप्त जीव और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं ॥ २३ ॥

अब इस सूत्रका अर्थ कहते हैं । वह इस प्रकार है– स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घातको प्राप्त हुए बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त जीव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । यहांपर अपवर्तनाकी स्थापना करके योजना कर लेनी चाहिये । मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादको प्राप्त हुए बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें, तथा मनुष्य और तिर्यंग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । बादर अप्कायिक पर्याप्त जीव भी स्वस्थानस्वस्थान आदि पदोंमें इसी प्रकार रहते हैं । बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त और बादर निगोद प्रतिष्ठित पर्याप्त जीवोंके पदोंका इसी प्रकार कथन करना चाहिये । इतनी विशेषता है कि वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और स्वस्थान पदगत बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त जीव तिर्यंग्लोकके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं । पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण जगत्प्रतरोंको प्रतरांगुलसे खंडित करके जो एक भाग लब्ध आवे उतना इन राशियोंका प्रमाण है । तथा अवगाहना घनांगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है ।

खंडिदेयखंडमेत्तपमाणं होदि। ओगाहणा पुण घणंगुलस्स असंखेज्जदिभागो। तस्स को पडिभागो? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्त-ओगाहणा वि घणंगुलस्स असंखेज्जदिभागमेत्ता, अण्णहा तदो बीइंदियपज्जत्त-ओगाहणा असंखेज्जगुणा ण होज्ज। तदो पत्तेयसरीरपज्जत्तरासी तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागेण होज्ज? ण एस दोसो, घणंगुलभागहारो पदरंगुलभागहारादो संखेज्जगुणो त्ति। पत्तेयसरीरपज्जत्तजहण्णोगाहणादो बीइंदियपज्जत्तजहण्णोगाहणा असंखेज्जगुणा त्ति कुदो णव्वदे? वेयणखेत्तविहाणम्हि वुत्तओगाहणबंधयादो। तं जहा— सव्वत्थोवा सुहुमणिगोदजीवअपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा। सुहुमवाउकाइय-अपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा। सुहुमतेउकाइयअपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा। सुहुमआउकाइयअपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा। सुहुमपुढविकाइयअपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा। बादरवाउकाइयअपज्जत्तसस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा।

शंका— उसका क्या प्रतिभाग है, अर्थात् जिसका भाग घनांगुलमें देनेसे उसका विवक्षित असंख्यातवां भाग आता है, वह प्रतिभाग क्या है?

समाधान— पल्योपमका असंख्यातवां भाग प्रतिभाग है।

शंका— बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त जीवकी अवगाहना भी घनांगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है, यदि ऐसा न माना जावे तो इससे द्वीन्द्रिय पर्याप्त जीवोंकी अवगाहना असंख्यातगुणी नहीं हो सकती है, इसलिये प्रत्येकशरीर पर्याप्तराशि तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागप्रमाण होना चाहिये?

समाधान— यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, घनांगुलका भागहार प्रतरांगुलके भागहारसे संख्यातगुणा है।

शंका— वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्तकी जघन्य अवगाहनासे द्वीन्द्रिय पर्याप्तकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है, यह किस प्रमाणसे जाना जाता है?

समाधान— वेदनाक्षेत्रविधानमें कहे गये अवगाहनाबंधकसे यह जाना जाता है कि प्रत्येकशरीरकी जघन्य अवगाहनासे द्वीन्द्रिय पर्याप्तकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है।

आगे इसीका स्पष्टीकरण करते हैं— सूक्ष्म निगोद अपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना सबसे स्तोक है। इससे सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है। इससे सूक्ष्म तेजस्कायिक अपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है। इससे सूक्ष्म जलकायिक अपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है। इससे सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है। इससे बादर वायुकायिक अपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है। इससे बादर तेजस्कायिक अपर्याप्त

बादरतेउकाइयअपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा। बादरआउकाइय-अपज्जत्तयस्य जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा। बादरपुढविकाइयअपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा। बादरणिगोदजीवअपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा। णिगोदपदिट्ठिदअपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा। बादरवणप्फइकाइयपत्तेयसरीरअपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा। बेइंदियअपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा। तेइंदियअपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा। चउरिंदियअपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा। पंचिंदियअपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा। सुहुमणिगोदजीवणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्ज-गुणा। तस्सेव णिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया। तस्सेव णिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया। सुहुमवाउकाइयणिव्वत्ति-पज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा। तस्सेव अपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया। तस्सेव पज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया। सुहुमतेउकाइयणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा। तस्सेव

जीवकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है। इससे बादर जलकायिक अपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है। इससे बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है। इससे बादर निगोद अपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है। इससे निगोद प्रतिष्ठित अपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है। इससे बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर अपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है। इससे द्वीन्द्रिय अपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है। इससे त्रीन्द्रिय अपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है। इससे चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है। इससे पंचेन्द्रिय अपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है। इससे सूक्ष्म निगोद पर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है। इससे सूक्ष्म निगोद निर्वृत्यपर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है। इससे सूक्ष्म निगोद निर्वृत्तिपर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है। इससे सूक्ष्म वायुकायिक निर्वृत्तिपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है। इससे सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है। इससे सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है। इससे सूक्ष्म तेजस्कायिक निर्वृत्ति पर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है। इससे सूक्ष्म तेजस्कायिक अपर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है। इससे सूक्ष्म तेजस्कायिक पर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है। इससे सूक्ष्म अप्कायिक निर्वृत्तिपर्याप्त जीवकी

अपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया। तस्सेव पज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया। सुहुमआउकाइयणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा। तस्सेव णिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया। तस्सेव णिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया। सुहुमपुढविकाइय-णिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा। तस्सेव णिव्वत्ति-अपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया। तस्सेव णिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया। बादरवाउकाइयणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा। तस्सेव णिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया। तस्सेव णिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया। बादरतेउकाइयणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा। तस्सेव णिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया। तस्सेव णिव्वत्ति-पज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया। बादरआउकाइयणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा। तस्सेव णिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया। तस्सेव णिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसे-साहिया। बादरपुढविकइयणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा।

जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है। इससे सूक्ष्म अप्कायिक निर्वृत्त्यपर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है। इससे सूक्ष्म अप्कायिक निर्वृत्तिपर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है। इससे सूक्ष्म पृथिवीकायिक निर्वृत्तिपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है। इससे सूक्ष्म पृथिवीकायिक निर्वृत्त्यपर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है। इससे सूक्ष्म पृथिवीकायिक निर्वृत्तिपर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है। इससे बादर वायुकायिक निर्वृत्तिपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है। इससे बादर वायुकायिक निर्वृत्त्यपर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है। इससे बादर वायुकायिक निर्वृत्तिपर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है। इससे बादर तेजस्कायिक निर्वृत्तिपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है। इससे बादर तेजस्कायिक निर्वृत्त्यपर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है। इससे बादर तेजस्कायिक निर्वृत्तिपर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है। इससे बादर अप्कायिक निर्वृत्तिपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है। इससे बादर अप्कायिक निर्वृत्त्यपर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है। इससे बादर अप्कायिक निर्वृत्तिपर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है। इससे बादर पृथिवीकायिक निर्वृत्तिपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है। इससे बादर पृथिवीकायिक निर्वृत्त्यपर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है। इससे बादर पृथिवीकायिक निर्वृत्तिपर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है।

तस्सेव णिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया । तस्सेव णिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया । बादरणिगोदणिव्वत्ति-पज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा । तस्सेव णिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया । तस्सेव णिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया । (णिगोदपदिट्ठिदपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा । तस्सेव णिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया । तस्सेव णिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया ।)[1] बादरवणप्फइ-काइयपत्तेयसरीरणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा । बेइंदिय-णिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा । तेइंदियणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा संखेज्जगुणा । चउरिंदियणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा संखेज्जगुणा । पंचिंदियणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा संखेज्जगुणा । तेइंदियणिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा संखेज्जगुणा । चउरिंदियणिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा संखेज्जगुणा । बेइंदिय-णिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा संखेज्जगुणा । बादरवणप्फइ-काइयपत्तेयसरीरणिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा संखेज्जगुणा ।

इससे बादर निगोद निर्वृत्तिपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है । इससे बादर निगोद निर्वृत्यपर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है । इससे बादर निगोद निर्वृत्तिपर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है । (इससे निगोद प्रतिष्ठित पर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है । इससे निगोदप्रतिष्ठित निर्वृत्यपर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है । इससे निगोदप्रतिष्ठित निर्वृत्तिपर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है ।) इससे बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर निर्वृत्तिपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है । इससे द्वीन्द्रिय निर्वृत्तिपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है । इससे त्रीन्द्रिय निर्वृत्तिपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना संख्यातगुणी है । इससे चतुरिन्द्रिय निर्वृत्तिपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना संख्यातगुणी है । इससे पंचेन्द्रिय निर्वृत्तिपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना संख्यातगुणी है । इससे त्रीन्द्रिय निर्वृत्त्यपर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना संख्यातगुणी है । इससे चतुरिन्द्रिय निर्वृत्त्यपर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना संख्यातगुणी है । इससे द्वीन्द्रिय निर्वृत्त्यपर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना संख्यातगुणी है । इससे बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर निर्वृत्त्यपर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना संख्यातगुणी है । इससे पंचेन्द्रिय निर्वृत्त्यपर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना संख्यातगुणी है । इससे त्रीन्द्रिय निर्वृत्तिपर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट

१ प्रतिषु कोष्टकान्तर्गतपाठो नास्ति, वेदनाखंडादेव योजितः ।

पंचिंदियणिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा संखेज्जगुणा। तेइंदियणिव्वत्ति-पज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा संखेज्जगुणा। चउरिंदियणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा संखेज्जगुणा। बेइंदियणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा संखेज्जगुणा। बादरवणप्फइपत्तेयसरीरणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा संखेज्जगुणा। पंचिंदियणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा संखेज्जगुणा। सुहुमादो सुहुमस्स ओगाहणागुणगारो आवलियाए असंखेज्जदिभागो। सुहुमादो बादरस्स ओगाहणागुणगारो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो[1]। बादरादो सुहुमस्स ओगाहणागुणगारो आवलियाए असंखेज्जदिभागो। बादरादो बादरस्स ओगाहणागुणगारो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। बादरादो बादरस्स ओगाहणा-गुणगारो संखेज्जा समया। एत्थ बादरवणप्फइकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा घणंगुलस्स असंखेज्जदिभागो इदि वुत्ते होदु णामेदं, पदरंगुलभागहारादो घणंगुलभागहारो संखेज्जगुणो त्ति कुदो णव्वदे? तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे त्ति गुरूवदेसादो। एदम्हादो चेव एदिस्से ओगाहणाए जीवबहुत्तं च णायव्वं।

अवगाहना संख्यातगुणी है। इससे चतुरिन्द्रिय निर्वृत्तिपर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना संख्यातगुणी है। इससे द्वीन्द्रिय निर्वृत्तिपर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना संख्यातगुणी है। इससे बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर निर्वृत्तिपर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना संख्यातगुणी है। इससे पंचेन्द्रिय निर्वृत्तिपर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना संख्यातगुणी है।

एक सूक्ष्म जीवसे दूसरे सूक्ष्म जीवकी अवगाहनाका गुणकार आवलीका असंख्यातवां भाग है। सूक्ष्म जीवसे बादर जीवकी अवगाहनाका गुणकार पल्योपमका असंख्यातवां भाग है। बादर जीवसे सूक्ष्म जीवकी अवगाहनाका गुणकार आवलीका असंख्यातवां भाग है। बादरजीवसे अन्य बादर जीवकी अवगाहनाका गुणकार पल्योपमका असंख्यातवां भाग है। बादरसे बादरकी अवगाहनाका गुणकार संख्यात समय है, अर्थात् बादर पर्याप्त द्वीन्द्रिय जीवकी जघन्य अवगाहनासे बादर पर्याप्त त्रीन्द्रिय आदि जीवोंकी अवगाहनाका गुणकार संख्यात समय है।

शंका— यहांपर बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्तककी जघन्य अवगाहना घनांगुलके असंख्यातवें भाग कही है, सो वह भले ही रही आवे, किन्तु प्रतरांगुलके भागहारसे घनांगुलका भागहार संख्यातगुणा होता है, यह कैसे जाना जाता है?

समाधान— बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त जीव वेदनासमुद्घात, कषाय-समुद्घात और स्वस्थानपदोंकी अपेक्षा 'तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें रहते हैं' इस प्रकारके गुरूपदेशसे जाना जाता है कि प्रतरांगुलके भागहारसे घनांगुलका भागहार संख्यातगुणा है।

तथा, उक्त इसी गुरूपदेशसे बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीरकी अवगाहनामें जीवोंकी अधिकता भी जाननी चाहिए।

१ सुहुमेदरगुणगारो आवलिपल्ला असंखभागो दु। गो. जी. १०१.

बादरणिगोदपदिट्ठिदपज्जत्ता किमिदि सुत्तम्हि ण वुत्ता ? ण, तेसिं पत्तेयसरीरेसु अंतब्भावादो । बादरतेउकाइयपज्जत्ता सत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादगदा पंचण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे । मारणंतिय-उववादगदा चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणे ।

बादरवाउक्काइयपज्जत्ता केवडि खेत्ते, लोगस्स संखेज्जदिभागे ॥ २४ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो वुच्चदे– सत्थाण-वेदण-कसाय-मारणंतिय-उववादगदा बादरवाउपज्जत्ता तिण्हं लोगाणं संखेज्जदिभागे, दोलोगेहिंतो असंखेज्जगुणे । बादरवाउपज्जत्तरासी लोगस्स संखेज्जदिभागमेत्तो मारणंतिय-उववादगदो सव्वलोगे किण्ण होदि त्ति वुत्ते ण होदि, रज्जुपदरमुहेण पंचरज्जुआयामेण[1] ट्ठिदखेत्ते चेव पाएण तेसिमुप्पत्तीदो । अण्णखेत्तंतरं गंतूणुप्पज्जमाणजीवाणमइथोवत्तं कधमवगम्मदे? बादरवाउक्काइयपज्जत्ता लोगस्स संखेज्जदिभागे इदि सुत्तादो । अण्णहा सुत्तस्स पुध

शंका– सूत्रमें बादरनिगोदप्रतिष्ठित पर्याप्त जीव क्यों नहीं कहे ?

समाधान– नहीं, क्योंकि, बादरनिगोदप्रतिष्ठित पर्याप्त जीवोंका प्रत्येकशरीर पर्याप्त वनस्पतिकायिक जीवोंमें अन्तर्भाव हो जाता है ।

स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घातगत बादर तेजस्कायिक पर्याप्त जीव पांचों लोकोंके असंख्यातवें भागमें रहते हैं । मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादगत वे ही बादर तेजस्कायिक जीव चारों लोकोंके असंख्यातवें भागमें और मनुष्यलोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं ।

बादर वायुकायिक पर्याप्त जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके संख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ २४ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं– स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद पदगत बादरवायुकायिक पर्याप्त जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके संख्यातवें भागमें और तिर्यग्लोक तथा मनुष्यलोक इन दोनों लोकोंसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं ।

शंका– बादर वायुकायिक पर्याप्तराशि लोकके संख्यातवें भागप्रमाण है, अब वह मारणान्तिकसमुद्घात उपपाद पदोंको प्राप्त हो तब वह सर्व लोकमें क्यों नहीं रहती है ?

समाधान– नहीं रहती है, क्योंकि, राजुप्रतरप्रमाण मुखसे और पांच राजु आयामसे स्थित क्षेत्रमें ही प्रायः करके उन बादर वायुकायिक पर्याप्त जीवोंकी उत्पत्ति होती है ।

शंका– अन्य क्षेत्रान्तरको जाकर उत्पन्न होनेवाले बादर वायुकायिक पर्याप्त जीव अत्यन्त थोड़े हैं, यह कैसे जाना जाता है ?

[1] बादरवातकायिनां विक्रुर्वणाद् रज्जूव्यासायाम-पंचरज्जूदयक्षेत्रफलं लोकसंख्यातभागमात्रं भवति । गो. जी. जी. प्र. गा. ५४५.

आरंभो णिरत्थओ होज्ज, बादरवाउअपज्जत्तेसु अंतब्भावादो। वेउव्वियसमुग्घादगदा चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे। अड्ढाइज्जं ण विण्णायदे।

वणप्फदिकाइय-णिगोदजीवा बादरा सुहुमा पज्जत्तापज्जत्ता केवडि खेत्ते, सव्वलोगे ॥ २५ ॥

सत्थाण-वेदण-कसाय-मारणंतिय-उववादगदा वणप्फदिकाइया सुहुमवणप्फइकाइया तेसिं पज्जत्ता अपज्जत्ता च सव्वलोगे। एवं णिगोद-सुहुमणिगोद तेसिं पज्जत्तापज्जत्ताणं च बादरवणप्फदिकाइया बादरणिगोदा तेसिं पज्जत्तापज्जत्ता च सत्थाण-वेदणसमुग्घादगदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगादो संखेज्जगुणे, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणे। मारणंतिय-उववादगदा सव्वलोए। बादरा पुढवीओ चेव अस्सिदूण अच्छंति त्ति[1] लोगस्स असंखेज्जदिभागे होंति।

समाधान— 'बादर वायुकायिक पर्याप्त जीव लोकके संख्यातवें भागमें रहते हैं,' इस सूत्रसे जाना जाता है कि राजुप्रतरप्रमाण मुखवाले और पांच राजु आयामवाले क्षेत्रके अतिरिक्त अन्य क्षेत्रमें जाकर उत्पन्न होनेवाले बादर वायुकायिक पर्याप्त जीव बहुत कम होते हैं। यदि ऐसा न माना जावे, तो इस सूत्रका पृथक् आरंभ निरर्थक हो जायगा, क्योंकि, फिर तो उनका बादर वायुकायिक अपर्याप्तोंमें अन्तर्भाव हो जायगा।

वैक्रियिकसमुद्घातगत बादर वायुकायिक पर्याप्त जीव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें रहते हैं। अढ़ाईद्वीपसे अधिक क्षेत्रमें रहते हैं या कममें, यह जाना नहीं जाता।

वनस्पतिकायिक जीव, निगोद जीव, वनस्पतिकायिक बादर जीव, वनस्पतिकायिक सूक्ष्म जीव, वनस्पतिकायिक बादर पर्याप्त जीव, वनस्पतिकायिक बादर अपर्याप्त जीव, वनस्पतिकायिक सूक्ष्म पर्याप्त जीव, वनस्पतिकायिक सूक्ष्म अपर्याप्त जीव, निगोद बादर पर्याप्त जीव, निगोद बादर अपर्याप्त जीव, निगोद सूक्ष्म पर्याप्त जीव और निगोद सूक्ष्म अपर्याप्त जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं? सर्व लोकमें रहते हैं ॥ २५ ॥

स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादगत वनस्पतिकायिक और सूक्ष्म वनस्पतिकायिक जीव तथा उनके पर्याप्त और अपर्याप्त जीव सर्व लोकमें रहते हैं। इसी प्रकार निगोद जीव और सूक्ष्म निगोद जीव तथा उनके पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिये। स्वस्थान और वेदनासमुद्घात बादर वनस्पतिकायिक और बादर निगोद जीव तथा उनके पर्याप्त और अपर्याप्त जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकसे संख्यातगुणे और मानुषक्षेत्रसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं। मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादगत ये सब बादर जीव सर्व लोकमें रहते हैं। उक्त बादर जीव पृथिवियोंका ही आश्रय लेकर रहते हैं, इसलिये वे लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं।

१ आधारे थूलाओ। गो. जी. १८४.

एदं कधं णव्वदे ? गुरूवएसादो ।

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

तसकाइय-तसकाइयपज्जत्तएसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे[1] ॥ २६ ॥

तसकाइय-तसकाइयमिच्छाइट्ठी सत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादगदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे । मारणंतिय-उववादगदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणे । एत्थ ओवट्टणा जाणिय कायव्वा । सेसगुणट्ठाणाणं पंचिंदियभंगो ।

सजोगिकेवली ओघं ॥ २७ ॥

सुगममेदं ।

तसकाइयअपज्जत्ता पंचिंदियअपज्जत्ताणं भंगो ॥ २८ ॥

शंका— यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान— गुरुके उपदेशसे जाना जाता है कि बादर वनस्पतिकायिक जीव पृथिवियोंके ही आश्रयसे रहते हैं ।

त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्त जीवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ २६ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिक-समुद्घातगत त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्त मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादगत त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्त मिथ्यादृष्टि जीव तीनों लोकोंके असंख्यातवें भागमें तथा मनुष्यलोक और तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । यहांपर अपवर्तना जानकरके करना चाहिये । सासादनादि शेष गुणस्थानवर्ती त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्त जीवोंका क्षेत्र पंचेन्द्रिय जीवोंके क्षेत्रके समान जानना चाहिए ।

सयोगिकेवलीका क्षेत्र ओघनिरूपित सयोगिकेवलीके क्षेत्रके समान है ॥ २७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

त्रसकायिक लब्ध्यपर्याप्त जीवोंका क्षेत्र पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकोंके क्षेत्रके समान है ॥ २८ ॥

---

१ त्रसकायिकानां पञ्चेन्द्रियवत् । त. सि. १, ८.

एवं पि सुत्तं सुगमं पुव्वं परूविदत्तादो ।

एवं कायमग्गणा समत्ता ।

जोगाणुवादेण पंचमणजोगि-पंचवचिजोगीसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवली केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे[1] ॥ २९ ॥

एवस्स सुत्तस्स अत्थो वुच्चदे- पंचमणजोगि-पंचवचिजोगिमिच्छादिट्ठी सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादगदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे । वेउव्वियसमुग्घादगदाणं कधं मणजोग-वचिजोगाणं संभवो ? ण, तेसिं पि णिप्पण्णुत्तर-सरीराणं मणजोग-वचिजोगाणं परावत्तिसंभवादो । मारणंतियसमुग्घागदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणे । मारणंतियसमुग्घाद-गदाणं असंखेज्जजोयणायामेण ठिदाणं मुच्छिदाणं कधं मण-वचिजोगसंभवो ? ण,

यह सूत्र भी सुगम है, क्योंकि, इसका पहले प्ररूपण किया जा चुका है ।

इस प्रकार कायमार्गणा समाप्त हुई ।

योगमार्गणाके अनुवादसे पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगियोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ २९ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं- स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घातगत पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं ।

शंका- वैक्रियिकसमुद्घातको प्राप्त जीवोंके मनोयोग और वचनयोग कैसे संभव है ।

समाधान - नहीं, क्योंकि, निष्पन्न हुआ है विक्रियात्मक उत्तरशरीर जिनके, ऐसे जीवोंके मनोयोग और वचनयोगोंका परिवर्तन संभव है ।

मारणान्तिकसमुद्घातगत पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, मनुष्यलोक और तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं ।

शंका- मारणान्तिकसमुद्घातको प्राप्त, असंख्यात योजन आयामसे स्थित और मूर्च्छित हुए संज्ञी जीवोंके मनोयोग और वचनयोग कैसे संभव हैं ?

समाधान- नहीं, क्योंकि, बाधक कारणके अभाव होनेसे निर्भर (भरपूर)

१ योगानुवादेन बाह्यमानसयोगिनां मिथ्यादृष्ट्यादिसयोगकेवल्यन्तानां लोकस्यासंख्येयभागः । स. सि. १, ८.

वारणाभावादो अवत्ताणं णिब्भरसुत्त जीवाणं व तेसिं तत्थ संभवं पडि विरोहाभावादो। मण-वचिजोगेसु उववादो णत्थि। सासणसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव असमुग्घादगदसजोगिकेवलि त्ति मूलोघभंगो। णवरि सासण०-असंजदसम्माइट्ठीणं उववादो णत्थि।

कायजोगीसु मिच्छाइट्ठी ओघं[1] ॥ ३० ॥

सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय-मारणंतिय-उववादगदा कायजोगिमिच्छाइट्ठी सव्वलोए। विहारवदिसत्थाण-वेउव्वियसमुग्घादगदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे। एत्थ ओवट्टणा जाणिय कायव्वा।

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ३१ ॥

जोगाभावादो एत्थ अजोगीणमग्गहणं। सेसं सुगमं।

सोते हुए जीवोंके समान अव्यक्त मनोयोग और वचनयोग मारणान्तिकसमुद्घातगत मूर्च्छित अवस्थामें ही संभव हैं, इसमें कोई विरोध नहीं है।

मनोयोगी और वचनयोगी जीवोंमें उपपादपद नहीं होता है। सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर समुद्घातरहित सयोगिकेवली गुणस्थानतक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती मनोयोगी और वचनयोगी जीवोंका क्षेत्र मूलोघ क्षेत्रके समान है। विशेष बात यह है कि सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि मनोयोगी और वचनयोगी जीवोंके उपपादपद नहीं होता है।

काययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंका क्षेत्र ओघके समान सर्वलोक है ॥ ३० ॥

स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादगत काययोगी मिथ्यादृष्टि जीव सर्व लोकमें रहते हैं। विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकसमुद्घातगत काययोगी मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं। यहांपर अपवर्तना जान करके करनी चाहिये।

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती काययोगी जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ३१ ॥

योगका अभाव होनेसे इस सूत्रमें अयोगिकेवलियोंका ग्रहण नहीं किया गया है। शेष सूत्रका अर्थ सुगम है।

---

१ काययोगिनां मिथ्यादृष्टयादिसयोगकेवल्यन्तानामयोगकेवलिनां च सामान्योक्तं क्षेत्रम्। स. सि. १, ८.

सजोगिकेवली ओघं ॥ ३२ ॥

गुणपडिवण्णाणमेगजोगो किण्ण कदो ? ण, सजोगिम्हि लोगस्स असंखेज्जेसु भागेसु सव्वलोगे वा इदि विसेसुवलंभादो ।

ओरालियकायजोगीसु मिच्छाइट्ठी ओघं ॥ ३३ ॥

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

एदे सत्थाण-वेदण-कसाय-मारणंतियसमुग्घादगदा सव्वलोए, सुहुमपज्जत्ताणं सव्वलोगखेत्तेसु संभवादो[1] । उववादो णत्थि, णिरुद्धोरालियकायजोगादो । विहारवदि-सत्थाणगदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, तसपज्जत्त-रासिस्स संखेज्जदिभागस्स संचारो होदि त्ति गुरूवएसादो । अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे । वेउव्वियसमुग्घादगदा चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे, ओरालियकायजोगे णिरुद्धे वेउव्वियकायजोगिसहगदवेउव्वियसमुग्घादस्स असंभवादो ।

काययोगवाले सयोगिकेवलीका क्षेत्र ओघसयोगिकेवलीके क्षेत्रके समान है ॥ ३२

शंका— सासादनादि गुणस्थानप्रतिपन्न सभी जीवोंका एक योग क्यों नहीं किया ? अर्थात् पूर्वोक्त 'सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि' इत्यादि सूत्रका और इस 'सजोगिकेवली ओघं' सूत्रका एक समास क्यों नहीं किया ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, सयोगिकेवलीके क्षेत्रमें, 'सयोगिकेवली लोकके असंख्यात बहुभागोंमें और सर्व लोकमें रहते हैं' इस प्रकारका विशेष कथन पाया जाता है, इसलिये उक्त दोनों सूत्रोंका एक योग नहीं किया ।

औदारिककाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंका क्षेत्र ओघके समान सर्व लोक है ॥ ३३ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और मारणान्तिकसमुद्घातगत ये औदारिककाययोगी मिथ्यादृष्टि जीव सर्व लोकमें रहते हैं, क्योंकि, सूक्ष्म पर्याप्त एकेन्द्रिय जीव सर्व लोकवर्ती क्षेत्रोंमें संभव हैं । किन्तु उक्त जीवोंके उपपादपद नहीं होता है, क्योंकि, यहांपर औदारिककाययोगसे निरुद्ध जीवोंका क्षेत्र बताया जा रहा है । विहारवत्स्वस्थानवाले औदारिककाययोगी जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें और तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें रहते हैं, क्योंकि, समस्त त्रसपर्याप्तराशिके संख्यातवें भागका ही संचार (विहार) होता है, ऐसा गुरुका उपदेश है । उक्त औदारिककाययोगी मिथ्यादृष्टि जीव अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । वैक्रियिकसमुद्घातगत औदारिककाययोगी मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, औदारिककाययोगसे निरुद्ध होनेपर क्षेत्रका वर्णन करते समय वैक्रियिक-काययोगी जीवोंके होनेवाला वैक्रियिकसमुद्घात असंभव है ।

१ सव्वत्थ णिरंतरा सुहुमा । गो. जी. १८४.

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवली लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ३४ ॥

कधं सजोगिकेवली लोगस्स असंखेज्जदिभागे ? ण एस दोसो, ओरालिय-कायजोगे णिरुद्धे ओरालियमिस्स-कम्मइयकायजोगसहगदकवाड-पदर-लोगपूरणाणम-संभवादो । सासणसम्माविट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीणमुववादो णत्थि । पमत्ते आहारसमुग्घादो णत्थि । सेसं जाणिय वत्तव्वं ।

ओरालियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ३५ ॥

विशेषार्थ— इस उक्त कथनका अभिप्राय यह है कि अभी यहांपर वैक्रियिकसमुद्घातको प्राप्त औदारिककाययोगी जीवोंका क्षेत्र तिर्यग्लोकका असंख्यातवां भाग बताया है, तब शंका की जा सकती है कि वैक्रियिकशरीरवाले जीवोंके वैक्रियिकसमुद्घातका क्षेत्र तो तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग बतलाया गया है, फिर यहां उसका क्षेत्र तिर्यग्लोकका असंख्यातवां भाग क्यों कहा ? इस आशंकाका समाधान करते हुए धवलाकार कहते हैं कि यहांपर औदारिककाययोगका प्रकरण है, अतएव औदारिकशरीरवाले मनुष्य और तिर्यंचोंके जो वैक्रियिकसमुद्घात होता है, उसका क्षेत्र तिर्यग्लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही हो सकता है, अधिक नहीं । हां, वैक्रियिकशरीरवाले देवादिकोंके जो वैक्रियिकसमुद्घात होता है उसका क्षेत्र अवश्य तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागप्रमाण है । किन्तु उसका यहां प्रकरण नहीं है, क्योंकि, औदारिककाययोगके साथ वैक्रियिकसमुद्घातका क्षेत्र कहते समय वैक्रियिककाययोगिसहगत वैक्रियिकसमुद्घातका क्षेत्र कहना असंभव है ।

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती औदारिककाययोगी जीव लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ३४ ॥

शंका— सयोगिकेवली भगवान् लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं इतना ही क्यों कहा?

समाधान— यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, औदारिककाययोगसे निरुद्ध क्षेत्रका वर्णन करते समय औदारिकमिश्रकाययोग और कार्मणकाययोगके साथमें होनेवाले कपाट, प्रतर और लोकपूरण समुद्घातोंका होना संभव नहीं है । इसलिये औदारिककाययोगी सयोगिकेवली लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं, ऐसा कहा है ।

सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि औदारिककाययोगी जीवोंके उपपादपद नहीं होता है । प्रमत्तगुणस्थानमें आहारकसमुद्घातपद भी नहीं है, क्योंकि, यहांपर औदारिककाययोगियोंका क्षेत्र बताया जा रहा है । शेष गुणस्थानोंमें यथासंभव पद जानकर कहना चाहिये ।

औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव ओघके समान सर्वलोकमें रहते हैं ॥ ३५ ॥

बहुसु कधमेगवयणणिद्देसो? ण एस दोसो, बहूणं पि जादीए एगत्तुवलंभादो। अथवा मिच्छाइट्ठी इदि एसो बहुवयणणिद्देसो चेव। कधं पुण एत्थ विहत्ती णोवलब्भदे? 'आइ-मज्झंतवण्णसरलोवो' इदि विहत्तिलोवादो। सत्थाण-वेदण-कसाय-मारणंतिय-उववादगदा ओरालियमिस्सकायजोगिमिच्छाइट्ठी सव्वलोगे। विहारवदिसत्थाण-वेउव्वियसमुग्घादा णत्थि, तेण तेसिं विरोहादो। ओरालियमिस्सस्स वेउव्वियादिपदेहि भेदसंभवादो ओघणिद्देसो ण घडदे? ण एस दोसो, एत्थ विग्गहापण्णत्तं [परूवणा] ओघपरूवणाए तुल्लेत्ति ओघत्तविरोधाभावादो।

सासणसम्मादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी सजोगिकेवली केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ३६ ॥

शंका— मिथ्यादृष्टियोंके बहुत होनेपर भी यहां सूत्रमें एक वचनका निर्देश कैसे किया गया?

समाधान— यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, संख्याकी अपेक्षा बहुतसे भी जीवोंके जातिकी विवक्षासे एकत्व पाया जाता है। अथवा, 'मिच्छाइट्ठी' यह पद बहुवचनका ही निर्देश समझना चाहिए।

शंका— तो फिर यहां बहुवचनकी विभक्ति क्यों नहीं पाई जाती है?

समाधान— 'आदि, मध्य और अन्तके वर्ण और स्वरका लोप हो जाता है,' इस प्राकृतव्याकरणके सूत्रानुसार बहुवचनकी विभक्तिका लोप हो गया है।

स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद पदगत औदारिकमिश्रकाययोगी मिथ्यादृष्टि जीव सर्व लोकमें रहते हैं। यहांपर विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकसमुद्घात ये दो पद नहीं होते हैं, क्योंकि, औदारिकमिश्रकाययोगके साथ इन दोनों पदोंका विरोध है।

शंका— औदारिकमिश्रकाययोगका वैक्रियिकसमुद्घात आदि पदोंके साथ भेद पाया जाता है, अतएव सूत्रमें 'ओघ' पदका निर्देश घटित नहीं होता है?

समाधान— यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, मिथ्यादृष्टि गुणस्थानके साथ औदारिकमिश्र-काययोगमें होनेवाले स्वस्थान आदि पदोंकी प्ररूपणा ओघप्ररूपणाके तुल्य है, इसलिये ओघपना विरोधको प्राप्त नहीं होता है।

औदारिकमिश्रकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और सयोगिकेवली कितने क्षेत्रमें रहते हैं? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ३६ ॥

एत्थ पुव्वसुत्तादो ओरालियमिस्सकायजोगो अणुवट्टदे। तेणेवं संबंधो भवदि- ओरालियमिस्सकायजोगीसु सासणसम्मादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी सजोगिकेवली केवडि खेत्ते इदि। सासणसम्मादिट्ठी सत्थाण-वेदण-कसायसमुग्घादगदा चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे। कुदो? ओरालियमिस्सम्हि पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तसासणसम्मादिट्ठिरासिस्स संभवादो। एत्थ सेसपदाणि णत्थि, तेण तेसिं तत्थ विरोधादो। असंजदसम्माइट्ठी सत्थाण-वेदण-कसायसमुग्घादगदा चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागे, संखेज्जपरिमाणादो। सासणसम्मादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीणमुववादो किमट्ठं ण उत्तो? ण, ओरालियमिस्सम्हि दिट्ठाणमोरालियमिस्सकायजोगेसु उववादाभावादो।

इस सूत्रमें पूर्व सूत्रसे 'औदारिकमिश्रकाययोग' इस पदकी अनुवृत्ति होती है। इसलिये सूत्रके अर्थका इस प्रकार संबन्ध होता है- औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें सासादनसम्यग्दृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और सयोगिकेवली कितने क्षेत्रमें रहते हैं? स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घातगत सासादनसम्यग्दृष्टि जीव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और अढाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, औदारिकमिश्रकाययोगमें पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण सासादनसम्यग्दृष्टियोंकी राशिका पाया जाना संभव है। यहांपर शेष विहारवत्स्वस्थान आदि पद नहीं होते हैं, क्योंकि, सासादन गुणस्थानके साथ उन पदोंका यहांपर विरोध है।

स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घातगत औदारिकमिश्रकाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टि जीव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और मनुष्यक्षेत्रमें संख्यातवें भागमें रहते हैं, क्योंकि, वे संख्यात राशिप्रमाण होते हैं।

शंका- औदारिकमिश्रकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंके उपपादपद क्यों नहीं कहा?

समाधान- नहीं, क्योंकि, औदारिकमिश्रकाययोगमें स्थित सासादन और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका पुनः औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें उपपाद नहीं होता है। अथवा, उपपाद होता है, क्योंकि, सासादन और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानके साथ अनुक्रमसे ग्रहण किये गये नये भवसंबन्ध शरीरके प्रथम समयमें उसका सद्भाव पाया जाता है। दूसरी बात यह है कि स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, केवलिसमुद्घात और उपपाद इन पांच अवस्थाओंके अतिरिक्त औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंका अभाव है।

विशेषार्थ- यहांपर प्रथम तो औदारिकमिश्रकाययोगियोंका औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें उपपादका अभाव बतलाया गया। पुनः, अथवा करके औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें उपपादका सद्भाव भी बतला दिया गया। ये दोनों बातें परस्पर विरुद्ध सी प्रतीत होती हैं। किन्तु यथार्थतः उनमें कोई विरोध नहीं है। भेद केवल कथन-शैलीका है। जिसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है- प्रथम जो औदारिकमिश्रकाययोगियोंका औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें उपपादका

अथवा उववादो अत्थि, गुणेण सह अक्कमेण उपात्तभवसरीरपढमसमए उवलंभादो, पंचावत्थाविरित्तओरालियमिस्सजीवाणमभावादो च। सजोगिकेवली कवाडगदो तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे।

वेउव्वियकायजोगीसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठी केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ३७ ॥

एदस्सत्थो— सत्थाणसत्थाण - विहारवदिसत्थाण - वेदण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादगदा मिच्छाविट्ठी तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे,

---

अभाव बतलाया, उसका अभिप्राय यह है कि औदारिकमिश्रकाययोग तिर्यंच और मनुष्योंको अपर्याप्त अवस्थामें ही होता है और अपर्याप्तअवस्थाको प्राप्त सासादनसम्यग्दृष्टि या असंयतसम्यग्दृष्टि जीव मरणको प्राप्त नहीं होता है, जिससे कि वह पुनः औदारिकमिश्रकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि या असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्यंच या मनुष्योंमें उत्पन्न हो सके। अतएव उसमें सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंके उपपादका अभाव बतलाना सर्वथा युक्तिसंगत ही है। पुनः, अथवा करके जो औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें उनके उपपादका सद्भाव बतलाया गया, उसका अभिप्राय यह है कि पूर्वभवके शरीरको छोड़कर उत्तरभवके प्रथम समयमें प्रवर्तनको उपपाद कहा गया है। वह उपपाद उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें ही होता है, अतएव यदि कोई पांच मनोयोगी, पांच वचनयोगी और औदारिककाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि या असंयतसम्यग्दृष्टि जीव मरकर मनुष्य तिर्यंचोंमें पांच मनोयोगी, पांच वचनयोगी तथा वैक्रियिककाययोगी जीव मरकर मनुष्योंमें ऋजुगतिसे उत्पन्न होता है, तो उसकी उत्पत्तिके प्रथम समयमें औदारिकमिश्रकाययोगका सद्भाव पाया जायगा। इसीलिए कहा गया है कि सासादनसम्यग्दृष्टि या असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानके साथ ऋजुगतिसे धारण किये गये आगामी भवसंबन्धी शरीरके प्रथम समयमें औदारिकमिश्रकाययोगियोंके उपपादका सद्भाव पाया जाता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि उक्त दोनों कथनोंमें कोई पारस्परिक विरोध नहीं है, भेद केवल कथन-शैली व विवक्षाका ही है।

कपाटसमुद्घातगत औदारिकमिश्रकाययोगी सयोगिकेवली भगवान् सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं।

वैक्रियिककाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ३७ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं— स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घातगत वैक्रियिककाययोगी मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें और अढ़ाईद्वीपसे

अट्ठाइज्जादो असंखेज्जगुणे, पहाणीकयजोइसियरासित्तादो । मारणंतियसमुग्घादगदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणे । एत्थ ओवट्टिय वत्तव्वं । सासणादिपरूवणा ओघपरूवणाए तुल्ला, णवरि सव्वत्थ उववादो णत्थि ।

वेउव्वियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी सासणसम्मादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ३८ ॥

एदस्सत्थो– वेउव्वियमिस्सकायजोगी मिच्छादिट्ठी सत्थाण-वेयण-कसाय-समुग्घादगदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे अट्ठाइज्जादो असंखेज्जगुणे । सासणसम्मादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी सत्थाण-वेयण-कसायसमुग्घादगदा चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अट्ठाइज्जादो असंखेज्जगुणे ।

आहारकायजोगीसु आहारमिस्सकायजोगीसु पमत्तसंजदा केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ३९ ॥

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, यहां वैक्रियिककाययोगके प्रकरणमें ज्योतिष्क देवराशिकी प्रधानता है । मारणान्तिकसमुद्घातगत वैक्रियिककाययोगी मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें और नरलोक तथा तिर्यग्लोक, इन दोनों लोकोंसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । यहांपर अपवर्तना स्वयं जान लेना चाहिये । सासादनसम्यग्दृष्टि आदि शेष तीन गुणस्थानवर्ती वैक्रियिककाययोगी जीवोंके स्वस्थानादि पदोंकी क्षेत्रप्ररूपणा ओघक्षेत्रप्ररूपणाके तुल्य है । विशेषता केवल यह है कि इन सभी गुणस्थानोंमें उपपादपद नहीं होता है ।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयत-सम्यग्दृष्टि गुणस्थानवर्ती जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ३८ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं– स्वस्थान, वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घातगत वैक्रियिकमिश्रकाययोगी मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । स्वस्थान, वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घातगत सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं ।

आहारकाययोगियोंमें और आहारमिश्रकाययोगियोंमें प्रमत्तसंयत गुणस्थानवर्ती जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ३९ ॥

एवस्स अत्थो– सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाणपरिणदपमत्तसंजदा चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागे । मारणंतियसमुग्घादगदा चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे । सेसपदाणि णत्थि । आहारमिस्सकायजोगिणो पमत्तसंजदा सत्थाणगदा चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागे ।

कम्मइयकायजोगीसु मिच्छाइट्ठी ओघं ॥ ४० ॥

सत्थाण०-वेदण-कसाय-उववादगदा कम्मइयकायजोगिमिच्छादिट्ठिणो जेण सव्वत्थ सव्वद्धं होंति, तेण सव्वलोगे वुत्ता ।

सासणसम्मादिट्ठी असंजदसम्माइट्ठी ओघं ॥ ४१ ॥

एदे दो वि रासीओ जेण चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे खेत्ते अच्छंति, तेण सुत्ते ओघमिदि वुत्तं ।

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं– स्वस्थानस्वस्थान और विहारवत्स्वस्थान इन दोनों पदोंसे परिणत आहारकाययोगी प्रमत्तसंयत सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और मानुष्यक्षेत्रके संख्यातवें भागमें रहते हैं । मारणान्तिकसमुद्घातगत आहारकाययोगी सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । आहारकाययोगी प्रमत्तसंयतके उक्त तीन पदोंके सिवाय शेष सात पद नहीं होते हैं । स्वस्थानगत आहारकमिश्रकाययोगी प्रमत्तसंयत सामान्यलोक आदि चारों लोकोंके असंख्यातवें भागमें और मानुषक्षेत्रके संख्यातवें भागमें रहते हैं ।

कार्मणकाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव ओघमिथ्यादृष्टिके समान सर्व लोकमें रहते हैं ॥ ४० ॥

स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और उपपाद, इन पदोंको प्राप्त कार्मणकाययोगी मिथ्यादृष्टि जीव चूंकि सर्वत्र सर्वकालमें पाये जाते हैं, इसलिये वे सर्वलोकमें रहते हैं, ऐसा कहा गया है ।

कार्मणकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीव ओघके समान लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ४१ ॥

इन दोनों गुणस्थानोंको प्राप्त कार्मणकाययोगी राशियां चूंकि सामान्यलोक आदि चारों लोकोंके असंख्यातवें भागमें और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहती हैं, इसलिए सूत्रमें ' ओघ ' ऐसा पद कहा गया है ।

सजोगिकेवली केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जेसु भागेसु सव्वलोगे वा ॥ ४२ ॥

सुगममेदं सुत्तं ।

एवं जोगमग्गणा समत्ता ।

वेदाणुवादेण इत्थिवेद-पुरिसवेदेसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्टित्ति केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे[1] ॥ ४३ ॥

एदस्स अत्थो— सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्विय-समुग्घादगदा इत्थिवेदमिच्छाइट्ठी तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे, पहाणीकददेवित्थिवेदरासित्तादो। मारणंतिय-उववादगदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणे। एत्थ ओवट्टणा देवोघतुल्ला । सासणसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति ओघभंगो। णवरि असंजदसम्मादिट्ठिम्हि उववादो णत्थि । पमत्तसंजदे ण होंति तेजाहारा । सत्थाणसत्थाण - विहारवदिसत्थाण - वेदण - कसाय - वेउव्वियसमुग्घादगदा पुरिसवेद-

---

कार्मणकाययोगी सयोगिकेवली भगवान् कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यात बहु भागोंमें और सर्वलोकमें रहते हैं ॥ ४२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

इस प्रकार योगमार्गणा समाप्त हुई ।

वेदमार्गणाके अनुवादसे स्त्रीवेदी और पुरुषवेदियोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिगुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ४३ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं— स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घातगत स्त्रीवेदी मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, यहांपर देवगतिसम्बन्धी स्त्रीवेदराशिकी प्रधानता है । मारणान्तिक समुद्घात और उपपादगत स्त्रीवेदी मिथ्यादृष्टि सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें और मरलोक तथा तिर्यग्लोक, इन दोनों लोकोंसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । यहांपर अपवर्तना देवोंके ओघक्षेत्रके लिये कही गई अपवर्तनाके समान है । सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थानतकके स्त्रीवेदी जीवोंका क्षेत्र ओघके समान लोकका असंख्यातवां भाग है । विशेष बात यह है कि असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें स्त्रीवेदियोंके

---

१ वेदानुवादेन स्त्रीपुंवेदानां मिथ्यादृष्ट्याद्यनिवृत्तिबादरान्तानां लोकस्यासंख्येयभागः । स. सि. १, ८

मिच्छाविट्ठी तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणे खेत्ते अच्छंति । मारणंतिय-उववादगदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणे । सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्टि उवसामग-खवगा त्ति ओघभंगो ।

णवुंसयवेदेसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति ओघं[1] ॥ ४४ ॥

सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय-मारणंतिय-उववादगदणवुंसयवेदमिच्छादिट्ठी सव्वलोए । विहारवदिसत्थाण-वेउव्वियसमुग्घादगदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे । णवरि वेउव्वियसमुग्घादगदा तिरियलोगस्स असंखेज्जदिभागे । अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणे खेत्ते जेण अच्छंति तेण ओघमिदि

उपपादपद नहीं होता है। तथा प्रमत्तसंयत गुणस्थानमें तैजससमुद्घात और आहारकसमुद्घात नहीं होते हैं। स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घातको प्राप्त हुए पुरुषवेदी मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं। मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादको प्राप्त पुरुषवेदी मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, नरलोक और तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं। सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण उपशामक और अनिवृत्तिकरण क्षपक गुणस्थान तक पुरुषवेदी जीवोंके स्वस्थानादि पदोंका क्षेत्र ओघक्षेत्रके समान है।

नपुंसकवेदी जीवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका क्षेत्र ओघक्षेत्रके समान है ॥ ४४ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद इन पदोंको प्राप्त नपुंसकवेदी मिथ्यादृष्टि जीव सर्व लोकमें रहते हैं। विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकसमुद्घातगत वे ही जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें और तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें रहते हैं। विशेष बात यह है कि वैक्रियिकसमुद्घातगत नपुंसकवेदी मिथ्यादृष्टि जीव तिर्यग्लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं। तथा उक्त दोनों पदोंको प्राप्त नपुंसकवेदी मिथ्यादृष्टि जीव, चूंकि अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, इसलिये सूत्रमें कहा गया 'ओघ' यह पद घटित हो जाता है। सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक भी इन नपुंसकवेदी जीवोंकी क्षेत्रप्ररूपणा ओघवर्णित क्षेत्रप्ररूपणाके तुल्य है, इससे भी सूत्रमें 'ओघ' ऐसा पद कहा गया है।

---

१ नपुंसकवेदानां मिथ्यादृष्टयाद्यनिवृत्तिबादरान्तानां × × सामान्योक्तं क्षेत्रम् । स. सि. १, ८

घडदे। सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्टी त्ति एदेसिं पि परूवणा ओघतुल्ला त्ति ओघमिदि वुत्तं। णवरि पमत्ते तेजाहारपदं णत्थि।

अवगदवेदएसु अणियट्टिप्पहुडि जाव अजोगिकेवली केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ४५ ॥

एदस्स अत्थो— चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागे सत्थाणत्था अच्छंति। मारणंतियसमुग्घादगदा उवसामगा चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे अच्छंति त्ति वुत्तं होदि।

सजोगिकेवली ओघं ॥ ४६ ॥

पुव्वं परूविदत्थमिदं सुत्तमिदि एत्थ एदस्स अत्थो ण वुच्चदे।

एवं वेदमग्गणा समत्ता।

कसायाणुवादेण कोधकसाइ-माणकसाइ-मायकसाइ-लोभकसाईसु मिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ४७ ॥

विशेष बात यह है कि प्रमत्तसंयत गुणस्थानमें नपुंसकवेदियोंके तैजससमुद्घात और आहारकसमुद्घात, ये दो पद नहीं होते हैं।

अपगतवेदी जीवोंमें अनिवृत्तिकरण गुणस्थानके अवेदभागसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ४५ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं— स्वस्थानपदगत अपगतवेदी जीव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और मानुषक्षेत्रके संख्यातवें भागमें रहते है। मारणान्तिकसमुद्घातको प्राप्त उपशामक जीव सामान्यलोक आदि चारों लोकोंके असंख्यातवें भागमें और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, ऐसा कहा गया है।

अपगतवेदी सयोगिकेवलीका क्षेत्र ओघके समान है ॥ ४६ ॥

इस सूत्रका अर्थ पहले कहा जा चुका है, इसलिए यहांपर इसका अर्थ पुनः नहीं कहा जाता है।

इस प्रकार वेदमार्गणा समाप्त हुई।

कषायमार्गणाके अनुवादसे क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी और लोभकषायी जीवोंमें मिथ्यादृष्टियोंका क्षेत्र ओघके समान सर्वलोक है ॥ ४७ ॥

१ ×××अपगतवेदानां च सामान्योक्तं क्षेत्रम्। स. सि. १, ८.

चदुकसाइमिच्छाइट्ठिणो सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय-मारणंतिय-उववादगदा ओघमिच्छाविट्ठीहि सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय-मारणंतिय-उववादगदेहि सव्व-लोगम्हि अच्छणेण अणुहरंति । विहारवदिसत्थाण वेउव्वियसमुग्घादगदा वि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे खेत्ते अच्छणं पडि अणुहरंति । तदो चदुकसायमिच्छादिट्ठिणो दव्वट्ठियणएण ओघत्तमुवलभंते ।

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे[1] ॥ ४८ ॥

एत्थ सुत्ते ओघमिदि किण्ण वुत्तं ? ण एस दोसो, दव्वट्ठियणयावलंबणा-भावादो । सो वि किमिदि णावलंबिदो ? पज्जवट्ठियसिस्साणुग्गहट्ठं । जदि एवं, तो दव्वट्ठियसिस्सा अणणुग्गहिदा होंति ? ण, पुव्वसुत्तेण मिच्छादिट्ठिपडिबद्धेण दव्वट्ठिय-

स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद पदगत चारों कषायवाले मिथ्यादृष्टि जीव, स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद पदगत ओघमिथ्यादृष्टियोंके साथ सर्व लोकमें अवस्थानके द्वारा अनुकरण करते हैं । विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकसमुद्घातगत चारों कषायवाले मिथ्यादृष्टि जीव भी सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहनेकी अपेक्षा, विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकसमुद्घातगत ओघमिथ्यादृष्टियोंके क्षेत्रका अनुकरण करते हैं, इसलिए चारों कषायवाले मिथ्यादृष्टि जीव द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षा ओघक्षेत्रताको प्राप्त होते हैं ।

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती चारों कषायवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ४८ ॥

शंका– इस सूत्रमें 'लोकके असंख्यातवें भागमें' इतनेके स्थानपर 'ओघ' इतना ही पद क्यों नहीं कहा ?

समाधान– यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, यहांपर द्रव्यार्थिकनयका अवलम्बन नहीं किया गया है ।

शंका– यहांपर उस द्रव्यार्थिकनयका अवलम्बन क्यों नहीं किया गया ?

समाधान– पर्यायार्थिकनयी शिष्योंका अनुग्रह करनेके लिए यहां द्रव्यार्थिकनयका ग्रहण नहीं किया गया ।

शंका– यदि ऐसा है, तो द्रव्यार्थिकनयी शिष्य इस सूत्रसे अनुगृहीत नहीं किये गये हैं ?

१ कषायानुवादेन क्रोधमानमायाकषायाणां लोभकषायाणां च मिथ्यादृष्ट्यादीनिवृत्तिबादरान्तानां × × सामान्योक्तं क्षेत्रम् । स. सि. १, ८.

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

सिस्साणमणुग्गहकरणा। एदेण दव्व-पज्जवट्ठियणयपज्जायपरिणदजीवाणुग्गहकारिणो जिणा इदि जाणाविदं। सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्विय-मारणंतिय-उववादगदसासणसम्मादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठिणो चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे खेत्ते अच्छंति। 'लोगस्स असंखेज्जदिभागे' इदि सुत्ते वुत्तं, तेण माणुसखेत्तस्स वि असंखेज्जदिभागे, एदेहि होदव्वं, लोगत्तं पडि विसेसाभावादो? ण एस दोसो। होदि एस दोसो, जदि पज्जवट्ठियणयमस्सिदूण एस लोगसद्दो ट्ठिदो। किंतु दव्वट्ठियणयमवलंबिऊण ट्ठिदत्तादो सव्वलोगसमूहस्स अखंडस्स वाचगो, तेण 'लोगस्स असंखेज्जदिभागे' इदि सुत्तवयणं ण विरुज्झदे। जदि एवं, तो पज्जवट्ठियणयमवलंबिऊण ट्ठिदवक्खाणवयणं सुत्तेण असंबद्धं होदि त्ति? ण, विसेसवदिरित्तजादीए अभावादो। विसेसालिंगिदसामण्णलोगो जेण सुत्तम्मि वुत्तो तेण

समाधान— नहीं, क्योंकि, मिथ्यादृष्टियोंके क्षेत्रसे प्रतिबद्ध पूर्वोक्त सूत्रसे द्रव्यार्थिकनयी शिष्योंका अनुग्रह कर ही दिया गया है।

इस विवेचनसे यह बात बतलाई गई कि जिन भगवान् द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक, इन दोनों नयस्वरूप पर्यायोंसे परिणत जीवोंके अनुग्रह करनेवाले होते हैं।

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, वैक्रियिकसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद, इन पदोंको प्राप्त चारों कषायवाले सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं।

शंका— 'लोकके असंख्यातवें भागमें' इतना ही पद सूत्रमें कहा है, इसलिये उक्त पदवाले जीव 'मानुषक्षेत्रके भी असंख्यातवें भागमें रहते हैं' ऐसा अर्थ होना चाहिए, क्योंकि, लोकत्वकी अपेक्षा सामान्यलोक, ऊर्ध्वलोक, अधोलोक, तिर्यग्लोक और मनुष्यलोक, इन पांचों ही लोकोंमें विशेषताका अभाव है, अर्थात् समानता है?

समाधान— यह कोई दोष नहीं है। यह दोष होता, यदि केवल पर्यायार्थिकनयका ही आश्रय लेकर यह लोकशब्द स्थित होता। किन्तु यह लोकशब्द द्रव्यार्थिकनयका अवलम्बन करके स्थित है, अतएव अखंड सर्वलोकके समूहका वाचक है, इसलिये 'लोकके असंख्यातवें भागमें' इस प्रकारका यह सूत्र-वचन विरोधको प्राप्त नहीं होता है।

शंका— यदि ऐसा है, तो पर्यायार्थिकनयका अवलम्बन करके स्थित व्याख्यान-वचन सूत्रके साथ असंबद्ध होगा?

समाधान— नहीं, क्योंकि, विशेषसे व्यतिरिक्त जातिका अभाव पाया जाता है। चूंकि, विशेषसे आलिंगित सामान्यलोक सूत्रमें कहा है, इसलिये लोकके अवयवभूत ऊर्ध्वलोक आदि चार लोकोंका आश्रय करके जो व्याख्यान किया गया है, वह सूत्रसे विरुद्ध नहीं है, अपि तु संबद्ध है।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे अस्सिदूण जं वक्खाणं तण्ण सुत्तविरुद्धमिदि । एवं सम्मामिच्छाइट्ठीणं । णवरि मारणंतिय-उववादपदं णत्थि । एवं संजदासंजदाणं । णवरि उववादपदं णत्थि । सेसगुणट्ठाणाणि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागे । णवरि मारणंतियसमुग्घादगदा माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणे होंति ।

लोभकसायविसेसपदुप्पायणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि–

णवरि विसेसो, लोभकसाईसु सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदा उवसमा खवा केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे[1] ॥ ४९ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो सुगमो ।

अकसाईसु चदुट्ठाणमोघं[2] ॥ ५० ॥

एत्थ ट्ठाणसद्दो गुणट्ठाणवाचगो, 'अवयवेषु प्रवृत्ताः शब्दाः समुदायेष्वपि वर्तन्ते' इति न्यायात् । यथा सत्यभामा भामा, बलदेवो देवः, भीमसेनः सेन इति ।

इसी प्रकारसे चारों कषायवाले सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका क्षेत्र जानना चाहिए । विशेष बात यह है कि यहांपर मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद, ये दो पद नहीं होते हैं । इसी प्रकार चारों कषायवाले संयतासंयतोंका क्षेत्र होता है । विशेषता यह है कि इनके उपपाद पद नहीं है । शेष गुणस्थानवर्ती चारों कषायवाले जीव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और मानुषक्षेत्रके संख्यातवें भागमें रहते हैं । विशेषता यह है कि मारणान्तिकसमुद्घातगत चारों कषायवाले संयत जीव मानुषक्षेत्रसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं ।

अब लोभकषायकी विशेषता बतलानेके लिए उत्तर सूत्र कहते हैं–

विशेष बात यह है कि लोभकषायी जीवोंमें सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयत उपशमक और क्षपक जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ४९ ॥

इस सूत्रका अर्थ सुगम है ।

अकषायी जीवोंमें उपशान्तकषाय आदि चारों गुणस्थानोंका क्षेत्र ओघक्षेत्रके समान है ॥ ५० ॥

यहांपर 'स्थान' शब्द गुणस्थानका वाचक है, क्योंकि, 'अवयवोंमें प्रवृत्त हुए शब्द समुदायोंमें भी रहते हैं' ऐसा न्याय है । जैसे 'भामा' कहनेसे सत्यभामा 'देव' कहनेसे बलदेव और 'सेन' कहनेसे भीमसेनका ज्ञान होता है, इसी प्रकार यहां भी 'स्थान' शब्दसे गुणस्थानका बोध होता है ।

---

१ × × सूक्ष्मसाम्परायाणां सामान्योक्तं क्षेत्रम् । स. सि. १, ८.

२ × × अकषायाणां च सामान्योक्तं क्षेत्रम् । स. सि. १, ८.

कधमुवसंतकसाओ अकसाओ ? ण, भावकसायाभावं पेक्खिदूण तस्स वि अकसायत्त-सिद्धीदो । बहुब्बीहिसमासं कादूण 'अकसाएसु' त्ति णिद्देसो किण्ण कदो? ण, पज्जयपडिसेधे कदे कसायविरहिदधंभादीणं पि अकसायत्तप्पसंगादो । दव्वपडिसेहे कदे सो दोसो ण पावदे, एदेण णाएण ओसारिदपसज्जपडिसेहत्तादो । कस्स णयस्स एस ववहारो ? सद्दट्ठसंबंधस्स णिच्चत्तमिच्छंतसद्दणयस्स । 'अवगदवेदएसु' त्ति दव्वणिद्देसो वि एवं चेव वक्खाणेदव्वो । सेसं सुगमं ।

एवं कसायमग्गणा समत्ता ।

णाणाणुवादेण मदिअण्णाणि-सुदअण्णाणीसु मिच्छादिट्ठी ओघं[1] ॥ ५१ ॥

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

शंका– जहां कषायोंका उपशमन ही है, ऐसे उपशान्तकषाय गुणस्थानको अकषाय कैसे कहा ?

समाधान– नहीं, क्योंकि, यहांपर भावकषायके अभावकी विवक्षासे उपशान्तकषाय गुणस्थानके भी अकषायपनेकी सिद्धि हो जाती है ।

शंका– 'नहीं हैं कषाय जिनके' ऐसा बहुव्रीहि समास करके 'अकषायोंमें' इस प्रकारका निर्देश क्यों नहीं किया ?

समाधान– नहीं, क्योंकि, पर्यायका प्रतिषेध कर देनेपर कषायसे रहित जो स्तम्भादिक हैं उनमें भी अकषायताका प्रसंग प्राप्त हो जायगा । किन्तु द्रव्यका प्रतिषेध करनेपर वह अतिप्रसंग दोष नहीं प्राप्त होता है, क्योंकि, इसी न्यायके द्वारा पर्यायके सर्वथा अभावका प्रतिषेध कर दिया गया है ।

शंका– यह उक्त व्यवहार किस नयका है ?

समाधान– शब्द और अर्थके वाच्यवाचकसम्बन्धको नित्य माननेवाले शब्दनयका यह व्यवहार है ।

वेदमार्गणाके अन्तमें दिये हुए (नं. ४५ वें) सूत्रके 'अपगतवेदियोंमें' इस पदके द्रव्यनिर्देशका भी इसी प्रकारसे व्याख्यान करना चाहिये । शेष कथन सुगम है ।

इस प्रकार कषायमार्गणा समाप्त हुई ।

ज्ञानमार्गणाके अनुवादसे मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानियोंमें मिथ्यादृष्टियोंका क्षेत्र ओघके समान सर्वलोक है ॥ ५१ ॥

यहांपर 'मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानियोंमें' यह सप्तमी विभक्ति निर्द्धारणके अर्थमें है, क्योंकि, मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे व्यतिरिक्त सासादनगुणस्थानवर्ती भी मत्यज्ञानी और

---

१ ज्ञानानुवादेन मत्यज्ञानिश्रुताज्ञानिनां मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टीनां सामान्योक्तं क्षेत्रम् । स. सि. १,८.

एसा णिद्धारणे सत्तमी, मदि-सुदअण्णाणीणं मिच्छादिट्ठिविदिरित्ताणं सासणाणं पि संभवादो। सेसं पुव्वं पदुप्पाइदमिदि पुव्वुत्तट्ठावधारिदसिस्साणुरोहेण ण वुच्चदे।

सासणसम्मादिट्ठी ओघं ॥ ५२ ॥

एत्थ पुव्वसुत्तादो मदि-सुदअण्णाणीसु त्ति अणुवट्टदे ? कधं णिच्चेयणस्स खणखइणो सद्दस्स अविणट्ठरूवेण अणुवत्ती ? ण एस दोसो, एदस्स सुत्तस्स अवयवभावेण ट्ठिदअण्णसद्दस्स पुव्वसद्देण समाणत्तमवेक्खिय सो चेव एसो त्ति पच्चहिण्णाणपच्चयणिमित्तस्स अणुवत्तिविरोहाभावादो। सेसो गदट्ठो।

विभंगणाणीसु मिच्छादिट्ठी सासणसम्मादिट्ठी केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे[1] ॥ ५३ ॥

एदस्सत्थो- विभंगणाणी मिच्छाइट्ठी सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेयण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादगदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे। कुदो एदं ? पहाणीकदपज्जत्तदेवरासित्तादो।

श्रुताज्ञानी पाये जाते हैं। शेष व्याख्यान पहले कर आए हैं, अतः पूर्वोक्त अर्थके अवधारण करनेवाले शिष्योंके अनुरोधसे पुनः नहीं कहते हैं।

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानवर्ती मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानियोंका क्षेत्र ओघसासादनसम्यग्दृष्टिके समान लोकका असंख्यातवां भाग है ॥ ५२ ॥

यहांपर पूर्वसूत्रसे 'मति-श्रुताज्ञानियोंमें' इतने पदकी अनुवृत्ति होती है।

शंका- अचेतन और क्षण-क्षयी शब्दकी अविनष्टरूपसे अनुवृत्ति कैसे हो सकती है ?

समाधान- यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, इस सूत्रके अवयवरूपसे स्थित अन्य शब्दकी पूर्व शब्दके साथ समानता देखकर 'यह वही है' इस प्रकारके प्रत्यभिज्ञानकी प्रतीतिके निमित्तभूत शब्दकी अनुवृत्ति होनेमें कोई विरोध नहीं है।

शेष सूत्रका अर्थ पहले किया जा चुका है।

विभंगज्ञानियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव और सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानवर्ती जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ५३ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं- स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घातको प्राप्त विभंगज्ञानी मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं।

१ विभंगज्ञानिनां मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टीनां लोकस्यासंख्येयभागः। स. सि. १, ८.

मारणंतियसमुग्घादगदा एवं चेव । णवरि तिरियलोगादो असंखेज्जगुणे त्ति वत्तव्वं । उववादपदं णत्थि । सासणसम्मादिट्ठी सव्वेहि वि पदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे । एत्थ वि उववादो णत्थि ।

आभिणिबोहिय-सुद-ओहिणाणीसु असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे[1] ॥ ५४ ॥

एदं सुत्तं वुत्तत्थमिदि पुणो ण एदस्स अत्थो वुच्चदे ।

मणपज्जवणाणीसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था लोगस्स असंखेज्जदिभागे[2] ॥ ५५ ॥

शंका— स्वस्थानादि पदगत विभंगज्ञानी मिथ्यादृष्टि उक्त क्षेत्रमें रहते हैं यह कैसे है ?

समाधान— चूंकि, यहांपर पर्याप्त देवराशिकी प्रधानता है, इसलिए स्वस्थान आदि पदोंको प्राप्त विभंगज्ञानियोंका उक्त क्षेत्रमें रहना बन जाता है ।

मारणान्तिकसमुद्घातगत विभंगज्ञानियोंका क्षेत्र भी इसी प्रकार ही है । विशेषता केवल इतनी कहना चाहिए कि वे तिर्यग्लोकके असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । विभंगज्ञानी मिथ्यादृष्टि जीवोंके उपपादपद नहीं होता है, (क्योंकि, पर्याप्तावस्थामें ही विभंगज्ञान उत्पन्न होता है) । विभंगज्ञानी सासादनसम्यग्दृष्टि जीव स्वस्थानादि सभी संभव पदोंकी अपेक्षा सामान्यलोक आदि चारों लोकोंके असंख्यातवें भागमें और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । यहांपर भी उपपाद पद नहीं है । (कारण भी उपर्युक्त ही समझना चाहिए) ।

आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ५४ ॥

इस सूत्रका अर्थ पहले कह दिया गया है, इसलिए पुनः इसका अर्थ नहीं कहते हैं ।

मनःपर्ययज्ञानियोंमें प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीव लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥५५॥

---

१ आभिनिबोधिकश्रुतावधिज्ञानिनामसंयतसम्यग्दृष्ट्यादीनां क्षीणकषायान्तानां × × × सामान्योक्तं क्षेत्रम् । स. सि. १, ८.

२ × × मनःपर्ययज्ञानिनां च प्रमत्तादीनां क्षीणकषायान्तानां × × सामान्योक्तं क्षेत्रम् । स. सि. १, ८.

किमट्ठं एदेसु सुत्तेसु पज्जयणयदेसणा ? बहूणं जीवाणमणुग्गहट्ठं । दव्वट्ठिएहिंतो पज्जवट्ठियजीवाणं बहुत्तं कथमवगम्मदे ? ण, संगहरुइजीवेहिंतो बहूणं वित्थररुइजीवाणमुवलंभादो । सेसमवगदट्ठं ।

केवलणाणीसु सजोगिकेवली ओघं[1] ॥ ५६ ॥

आदाणं अवलंबदे सुत्तत्थ किमट्ठं दव्वट्ठियणओ अवलंबिदो ? ण, पज्जवट्ठियणयावलंबणे कारणाभावा । पज्जवट्ठियणओ अवलंबिज्जदे विसेसपदुप्पायणट्ठं, ण च एत्थ को वि विसेसो अत्थि । ण च पुव्वसुत्तेहि विसयहिचारो, पादेक्कं गुणट्ठाणेसु तत्थ णाणभेदोवलंभादो । सेसं सुगमं ।

अजोगिकेवली ओघं[2] ॥ ५७ ॥

शंका– इन अभी कहे गए तीनों सूत्रोंमें पर्यायार्थिकनयका उपदेश किस लिए दिया गया है ?

समाधान– बहुतसे जीवोंके अनुग्रह करनेके लिए पर्यायार्थिकनयका उपदेश दिया गया है।

शंका–द्रव्यार्थिकनयी जीवोंसे पर्यायार्थिकनयवाले जीव बहुत हैं, यह कैसे जाना जाता है?

समाधान– नहीं, क्योंकि, संक्षेपरुचिवाले जीवोंसे विस्ताररुचिवाले जीव बहुत पाये जाते हैं।

शेष सूत्रका अर्थ तो अवगत ही है।

केवलज्ञानियोंमें सयोगिकेवलीका क्षेत्र ओघक्षेत्रके समान है ॥ ५६ ॥

शंका– इस सूत्रमें किसलिए द्रव्यार्थिकनयका अवलम्बन किया गया है ?

समाधान– नहीं, क्योंकि, पर्यायार्थिकनयके अवलम्बन करनेका यहां कोई कारण नहीं है। पर्यायार्थिकनयका अवलम्बन विशेष प्रतिपादनके लिए किया जाता है। किन्तु यहांपर कोई भी विशेषता नहीं है, (जिसके बतलानेके लिए पर्यायार्थिकनयका अवलम्बन किया जाय) और न यहांपर पूर्व इस मार्गणासम्बन्धी सूत्रोंसे (जो कि पर्यायार्थिकनयी हैं) व्यभिचार दोष ही आता है, क्योंकि, इन गुणस्थानोंमेंसे प्रत्येक गुणस्थानमें ज्ञानभेद पाया जाता है।

शेष सूत्रका अर्थ सुगम है।

अयोगिकेवली भगवान् ओघके समान लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ५७

शंका– ये अयोगिकेवली भगवान् स्वस्थानादि नौ पदोंमेंसे किस पदमें रहते हैं ?

समाधान– अयोगिकेवलीके विहारवत्स्वस्थानादि शेष अशेष पद संभव न होनेसे वे स्वस्थानस्वस्थान पदमें रहते हैं।

१ × × केवलज्ञानिनां सयोगानां × सामान्योक्तं क्षेत्रम् । स. सि. १, ८.

२ × × केवलज्ञानिनां × अयोगानां च सामान्योक्तं क्षेत्रम् । स. सि. १, ८.

एसो णवसु पदेसु कत्थ वट्टदे ? सेसपदसंभवाभावादो सत्थाण-० पदे । ण उप्पण्णपदेसो घरं गामो देसो वा सत्थाणं, तस्स वि उवयारदंसणादो । ण च ममेदंबुद्धीए पडिगहिदपदेसो सत्थाणं, अजोगिम्हि खीणमोहम्हि ममेदंबुद्धीए अभावादो त्ति ? ण एस दोसो, वीदरागाणं अप्पणो अच्छिदपदेसस्सेव सत्थाणववएसादो । ण सरागाणमेस णाओ, तत्थ ममेदंभावसंभवादो । अधवा एस चेव णाओ सव्वत्थ घेप्पउ, विरोहाभावादो । जदि एवं सत्थाणस्स अत्थो वुच्चदि, तो सासणसत्थाणफोसणस्स अट्ठ चोद्दसभागा पावंति त्ति चे ण, फोसणे ममेदंबुद्धिपडिगहिदस्स सस्सामिसंबंधेण वारिदस्स चेव सत्थाणववदेसादो । सेसं सुगमं ।

एवं णाणमग्गणा समत्ता ।

संजमाणुवादेण संजदेसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवली ओघं ॥ ५८ ॥[1]

शंका— अपना जन्मस्थान घर, ग्राम, देश, स्वस्थान है सो यह कहना ठीक नहीं है, क्योंकि, यह स्वस्थानपद भी अयोगिकेवलीमें केवल उपचारसे ही देखा जाता है । 'यह मेरा है' इस प्रकारकी बुद्धिसे ग्रहण किया गया प्रदेश स्वस्थान है, यह भी नहीं कह सकते हैं, क्योंकि, क्षीणमोही अयोगी भगवानमें 'मम इदं' बुद्धि का अभाव है । इसलिये अयोगकेवलीके स्वस्थानपद नहीं बन सकता है ?

समाधान— यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, वीतरागियोंके अपने रहनेके प्रदेशको ही स्वस्थान नामसे कहा गया है । किन्तु सरागियोंके लिए यह न्याय नहीं है, क्योंकि, उनमें ममेदंभाव संभव है । अथवा, 'अपने रहनेके प्रदेशको स्वस्थान कहते हैं' यही न्याय सर्वत्र ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि, उसके माननेमें कोई विरोध नहीं है ।

शंका— यदि स्वस्थानका ऐसा अर्थ कहते हैं, तो सासादनसम्यग्दृष्टि जीवके स्वस्थानस्वस्थानपदके स्पर्शनका क्षेत्र आठ बटे चौदह $\frac{८}{१४}$ राजु प्रमाण प्राप्त होता है, (जो कि आगे स्पर्शनानुयोगद्वारमें बताया नहीं गया है) ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, स्पर्शनानुयोगद्वारमें, ममेदंबुद्धिसे प्रतिगृहीत और अपने स्वामित्वके सम्बन्धसे रोके हुए क्षेत्रको ही स्वस्थान संज्ञा प्राप्त है ।

शेष सूत्रका अर्थ सुगम ही है ।

इस प्रकार ज्ञानमार्गणा समाप्त हुई ।

संयममार्गणाके अनुवादसे संयतोंमें प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती संयत जीव ओघके समान लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ५८ ॥

१ संयमानुवादेन × × × संयतानां सामान्योक्तं क्षेत्रम् । स सि. १, ८.

एत्थ किमट्ठं दव्वट्ठियणयदेसणा कीरदे ? ण, संजमसामण्णे पहाणीकदे ओघं पडि विसेसाभावादो । पज्जवट्ठियणयपरूवणा एत्थ जाणिय वत्तव्वा ।

सजोगिकेवली ओघं ॥ ५९ ॥

एगजोगो किण्ण कवो ? ण, खेत्तं पडि सेसगुणट्ठाणेहिंतो सजोगिस्स विसेसोवलंभादो । जदि एवं, तो सेसगुणट्ठाणाणं पि णाणाविहभेयभिण्णाणं पुध पुध सुत्तकरणं पावेदि त्ति चे ण, तेसिं पहाणीकयखेत्तजणिदविसेसाभावादो । एत्थ सेसा पज्जवट्ठियणयपरूवणा सव्वा वत्तव्वा ।

सामाइय-च्छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदेसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति ओघं[1] ॥ ६० ॥

शंका– इस सूत्रमें द्रव्यार्थिकनयकी प्ररूपणा किस लिए की जा रही है ?

समाधान– नहीं, क्योंकि, संयमसामान्यके प्रधान करनेपर ओघक्षेत्रप्ररूपणाकी अपेक्षा संयममार्गणाके अनुवादसे क्षेत्रप्ररूपणामें कोई विशेषता नहीं है ।

यहांपर पर्यायार्थिकनयकी प्ररूपणा जान करके कहनी चाहिए ।

सयोगिकेवली भगवान् ओघके समान लोकके असंख्यातवें भागमें, लोकके असंख्यात बहुभागोंमें और सर्वलोकमें रहते हैं ॥ ५९ ॥

शंका– इन दोनों सूत्रोंका एक समास क्यों नहीं किया ?

समाधान– नहीं, क्योंकि, क्षेत्रकी अपेक्षा शेष गुणस्थानोंसे सयोगिकेवलीके क्षेत्रमें विशेषता पाई जाती है ।

शंका– यदि ऐसा है, तो नाना प्रकारके भेदोंसे भिन्नताको प्राप्त शेष गुणस्थानोंके भी पृथक् पृथक् सूत्रोंकी रचना प्राप्त होती है ?

समाधान– नहीं, क्योंकि, उनमें क्षेत्रजनित विशेषताकी प्रधानता नहीं की गई है ।

यहांपर सभी गुणस्थानसम्बन्धी शेष सर्व पर्यायार्थिकनयसम्बन्धी क्षेत्रप्ररूपणा कहनी चाहिए ।

सामायिक और छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयतोंमें प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती सामायिक और छेदोपस्थापना-शुद्धिसंयत ओघके समान लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ६० ॥

१ × सामायिकच्छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयतानां चतुर्णां × × × सामान्योक्तं क्षेत्रम् । स. सि. १, ८.

ओघपमत्तविरासीदो सामाइय-छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदपमत्तावओ समाणा त्ति एदेसिं परूवणा ओघं भवदि। ण च सामाइय-छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदेहिंतो पुधभूदा परिहारसुद्धिसंजदा अत्थि, जेण तदो भेदो होज्ज। किमिदि पुधभूदा णत्थि? दुण्णयविरिसछदुमत्थजीवाभावादो[1]। सेसं सुगमं।

परिहारसुद्धिसंजदेसु पमत्त-अप्पमत्तसंजदा केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे[2] ॥ ६१ ॥

एदस्स वि सुत्तस्स अत्थो पुव्वं परूविदो त्ति संपहि ण वुच्चदे। णवरि पमत्तसंजदे तेजाहारं णत्थि।

सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदेसु सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजद-उवसमा खवगा केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे[3] ॥ ६२ ॥

ओघमें कही गई प्रमत्तसंयतविराशिसे सामायिक और छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयमवाले प्रमत्तसंयतादिक समान हैं, इसलिए इनके क्षेत्रकी प्ररूपणा ओघोक्त क्षेत्रके समान बन जाती है और सामायिक तथा छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयतोंसे परिहारविशुद्धिसंयत पृथक् नहीं हैं, जिससे कि उनसे इनमें भेद हो जाय।

शंका— परिहारविशुद्धिसंयत, सामायिक और छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयतोंसे पृथग्भूत क्यों नहीं हैं?

समाधान— क्योंकि, द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक इन दोनों नयोंसे भिन्न छद्मस्थ जीवोंका अभाव है।

शेष सूत्रका अर्थ सुगम है।

परिहारविशुद्धिसंयतोंमें प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ६१ ॥

इस सूत्रका भी अर्थ पहले कहा जा चुका है, इसलिए अब नहीं कहते हैं। विशेष बात यह है कि प्रमत्तसंयत गुणस्थानवर्ती परिहारविशुद्धिसंयतके तैजससमुद्घात और आहारकसमुद्घात ये दो पद नहीं होते हैं।

सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयतोंमें सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयत उपशमक और क्षपक जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ६२ ॥

१ प्रतिषु 'दुण्णय' इति पाठः।
२ × × × परिहारविशुद्धिसंयतानां प्रमत्ताप्रमत्तानां × × × सामान्योक्तं क्षेत्रम्। स. सि. १, ८.
३ × × × सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयतानां × × × सामान्योक्तं क्षेत्रम्। स. सि. १, ८.

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदेसु त्ति आधारणिद्देसो। तत्थ सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदा दुविधा होंति उवसामगा खवगा चेदि। ते अप्पणो पदेसु वट्टमाणा चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागे होंति। णवरि मारणंतियपदे माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणे होंति।

जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदेसु चदुट्ठाणी ओघं[1] ॥ ६३ ॥

एत्थ ट्ठाणसद्दो पुव्वुत्तणाएण गुणट्ठाणवाची। चदुण्हं ठाणाणं समाहारो चदुट्ठाणी, सा ओघं होदि। उवसंतकसाय-खीणकसाय-सजोगि-अजोगिजिणाणं जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदाणं अप्पणो ओघपरूवणं होदि त्ति जं वुत्तं होदि।

संजदासंजदा केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे[2] ॥ ६४ ॥

एदस्स अत्थो पुव्वं परूविदो।

असंजदेसु मिच्छादिट्ठी ओघं[3] ॥ ६५ ॥

'सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयतोंमें' इस पदसे आधारका निर्देश किया गया। इस गुणस्थानमें सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयत दो प्रकारके होते हैं, उपशामक और क्षपक। वे दोनों ही प्रकारके सूक्ष्मसाम्परायिकसंयत अपने यथासंभव पदोंमें रहते हुए सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और मानुषक्षेत्रके संख्यातवें भागमें रहते हैं। विशेष बात यह है कि मारणान्तिकसमुद्घातपदमें उपशामक जीव मानुषक्षेत्रसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं।

यथाख्यातविहारशुद्धिसंयतोंमें उपशान्तकषाय गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक चारों गुणस्थानवाले संयतोंका क्षेत्र ओघके समान है ॥ ६३ ॥

इस सूत्रमें आया हुआ 'स्थान' शब्द पूर्वोक्त न्यायसे गुणस्थानका वाचक है। चार गुणस्थानोंके समुदायको 'चतुःस्थानी' कहते हैं। उनका क्षेत्र ओघके समान है। अर्थात्, उपशान्तकषाय, क्षीणकषाय, सयोगिजिन और अयोगिजिन गुणस्थानवर्ती यथाख्यातविहारशुद्धिसंयतोंका क्षेत्र अपने ओघक्षेत्रके समान होता है, ऐसा अर्थ कहा गया समझना चाहिए।

संयतासंयत जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ६४ ॥

इस सूत्रका अर्थ पहले कहा जा चुका है।

असंयतोंमें मिथ्यादृष्टि जीव ओघके समान सर्व लोकमें रहते हैं ॥ ६५ ॥

१ × × × यथाख्यातविहारशुद्धिसंयतानां चतुर्णां × × सामान्योक्तं क्षेत्रम्। सू. सि. १, ८.
२ × × × संयतासंयतानां × × सामान्योक्तं क्षेत्रम्। स. सि. १, ८.
३ × × असंयतानां च चतुर्णां सामान्योक्तं क्षेत्रम्। स. सि. १, ८.

ओघपरूवणा गुणट्ठाणभेदेण भेदेण च जा कदा, सा अत्थोघ-आदेसोघेहि दुविधा होदि। आदेसोघो वि गुणट्ठाणभेदेण चोद्दसविहो होदि। एत्थ ओघमिदि वुत्ते कदमस्स ओघस्स गहणं? आदेसोघस्स अवयवभूदमिच्छाविट्ठीणमोघस्स। कथमेदं लब्भदे? पच्चासत्तीदो। अण्णेहि वि ओघेहि सह कथंचि पच्चासत्ती अत्थि त्ति भणिदे ण, अण्णेहि सह मिच्छाविट्ठीहि जेम पयरिसेण पच्चासत्तीए अभावादो। एदमत्थपदं सव्वत्थ जोजेयव्वं। असंजदचदुगुणट्ठाणाणमेगजोगो किण्ण कदो? ण, मिच्छाविट्ठीणं सेसगुणट्ठाणेहि सह खेत्तेण पयरिसपच्चासत्तीए अभावादो।

सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी ओघं ॥ ६६ ॥

एदेसिं तिण्हं गुणट्ठाणाणं चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागत्तणेण माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणत्तणेण च पच्चासत्ती अत्थि त्ति एगजोगो कदो।

एवं संजममग्गणा समत्ता।

शंका– ओघप्ररूपणा गुणस्थानोंके अभेदसे और भेदसे जो की गई है, वह अर्थ- ओघ और आदेश-ओघके भेदसे दो प्रकारकी होती है। आदेश-ओघ भी गुणस्थानोंके भेदसे चौदह प्रकारका होता है। सो यहां 'ओघ' ऐसा सामान्यपद कहनेपर किस ओघका ग्रहण किया गया है?

समाधान– आदेश-ओघके अवयवभूत मिथ्यादृष्टियोंके ओघका ग्रहण किया गया है।

शंका– यह अर्थ कैसे प्राप्त होता है?

समाधान– प्रत्यासत्तिसे, अर्थात् सामीप्यसे, आदेश-ओघका ग्रहण किया गया है, यह जाना जाता है।

शंका– प्रत्यासत्ति तो कथंचित् अन्य भी ओघोंके साथ हो सकती है?

समाधान– ऐसी शंकापर उत्तर देते हैं कि नहीं, क्योंकि, अन्य ओघोंके साथ मिथ्यादृष्टियोंके समान प्रकर्षतासे प्रत्यासत्तिका अभाव है।

यह अर्थपद सर्वत्र लगाना चाहिए।

शंका– असंयत चारों गुणस्थानोंका एक योग (समास) क्यों नहीं किया?

समाधान– नहीं, क्योंकि, मिथ्यादृष्टियोंका शेष सासादनसम्यग्दृष्टि आदि गुणस्थानोंके साथ क्षेत्रकी अपेक्षा प्रकर्षतम प्रत्यासत्तिका अभाव है।

असंयतोंमें सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीव ओघके समान लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ६६ ॥

इन सूत्रोक्त तीनों ही गुणस्थानोंका सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागके साथ और मानुषक्षेत्रसे असंख्यातगुणे क्षेत्रके साथ प्रत्यासत्ति पाई जाती है, इसलिये उक्त तीनों गुणस्थानोंका एक योग इस सूत्रमें किया गया है।

इस प्रकार संयममार्गणा समाप्त हुई।

दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणीसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे[1] ॥ ६७ ॥

सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेयण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादगदा चक्खुदंसणी मिच्छादिट्ठी तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणे । एत्थ ओवट्टणा जाणिय कादव्वा । एवं मारणंतियसमुग्घादगदा । णवरि तिरियलोगादो असंखेज्जगुणे त्ति वत्तव्वं । एवं चेव उववादगदाणं पि वत्तव्वं । अपज्जत्तकाले चक्खुदंसणाभावादो उववादो णत्थि त्ति णासंकणिज्जं, अपज्जत्तकाले वि खओवसमं पडुच्च चक्खुदंसणुवलंभादो । जदि एवं, तो लद्धिअपज्जत्ताणं पि चक्खुदंसणित्तं पसज्जदे । तं च णत्थि, चक्खुदंसणिअवहारकालस्स पदरंगुलस्स असंखेज्जदिभागमेत्तपमाणप्पसंगादो ? ण एस दोसो, णिव्वत्ति-अपज्जत्ताणं चक्खुदंसणमत्थि; उत्तरकाले णिच्छएण चक्खुदंसणोवजोगसमुप्पत्तीए

दर्शनमार्गणाके अनुवादसे चक्षुदर्शनियोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ६७ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घातगत चक्षुदर्शनी मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें तिर्यग्लोकसे संख्यातवें भागमें और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । यहांपर अपवर्तना जानकर करना चाहिए । इसी प्रकार मारणान्तिकसमुद्घातगत मिथ्यादृष्टि चक्षुदर्शनियोंका क्षेत्र है । विशेष बात यह है कि मारणान्तिकसमुद्घातगत चक्षुदर्शनी मिथ्यादृष्टि जीव तिर्यग्लोकके असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, ऐसा कहना चाहिए । इसी प्रकारसे उपपादगत मिथ्यादृष्टि चक्षुदर्शनियोंका भी क्षेत्र कहना चाहिए । अपर्याप्तकालमें चक्षुदर्शनका अभाव होनेसे यहांपर उपपादपद नहीं है, ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि, अपर्याप्तकालमें भी क्षयोपशमकी अपेक्षा चक्षुदर्शन पाया जाता है ।

शंका– यदि ऐसा है, तो लब्ध्यपर्याप्त जीवोंके भी चक्षुदर्शनीपनेका प्रसंग प्राप्त होता है । किन्तु लब्ध्यपर्याप्त जीवोंके चक्षुदर्शन होता नहीं है । यदि लब्ध्यपर्याप्त जीवोंके भी चक्षुदर्शनका सद्भाव माना जायगा, तो चक्षुदर्शनी जीवोंके अवहारकाल प्रतरांगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होगा ?

समाधान– यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, निर्वृत्त्यपर्याप्त जीवोंके चक्षुदर्शन होता है, इसका कारण यह है कि उत्तरकालमें, अर्थात् अपर्याप्तकाल समाप्त होनेके पश्चात् निश्चयसे

१ दर्शनानुवादेन चक्षुर्दर्शनिनां मिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकषायान्तानां लोकस्यासंख्येयभागः । स. सि. १, ८.

अविणाभाविचक्खुदंसणखओवसमदंसणादो । चउरिंदिय-पंचिंदियलद्धिअपज्जत्ताणं चक्खुदंसणं णत्थि, तत्थ चक्खुदंसणोवओगसमुप्पत्तीए अविणाभाविचक्खुदंसणक्खओवसमाभावादो । सेसगुणट्ठाणाणं पज्जवट्ठियपरूवणा जाणिय वत्तव्वा ।

अचक्खुदंसणीसु मिच्छादिट्ठी ओघं[1] ॥ ६८ ॥

सुगममेदं सुत्तं ।

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था ओघं ॥ ६९ ॥

एदेसिमणंतरदोसुत्ताणमेगत्तं किण्ण कदं ? ण, मिच्छादिट्ठीहि सेसगुणट्ठाणाणं पच्चासत्तीए अभावादो ।

ओहिदंसणी ओहिणाणिभंगो[2] ॥ ७० ॥

केवलदंसणी केवलणाणिभंगो[3] ॥ ७१ ॥

चक्षुदर्शनोपयोगकी समुत्पत्तिका अविनाभावी चक्षुदर्शनका क्षयोपशम देखा जाता है । हां, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त जीवोंके चक्षुदर्शन नहीं होता है, क्योंकि, उनमें चक्षुदर्शनोपयोगकी समुत्पत्तिका अविनाभावी चक्षुदर्शनावरणकर्मके क्षयोपशमका अभाव है ।

इसी प्रकार सासादनसम्यग्दृष्टि आदि शेष गुणस्थानोंकी पर्यायार्थिकनयसम्बन्धी प्ररूपणा जान करके कहनी चाहिए ।

अचक्षुदर्शनियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव ओघके समान सर्वलोकमें रहते हैं ॥ ६८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती अचक्षुदर्शनी जीव ओघके समान लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ६९ ॥

शंका— इन अनन्तरोक्त दोनों सूत्रोंका एकसूत्र क्यों नहीं बनाया ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, क्षेत्रकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टि अचक्षुदर्शनी जीवोंके साथ शेष गुणस्थानवर्ती अचक्षुदर्शनी जीवोंकी प्रत्यासत्तिका अभाव है ।

अवधिदर्शनी जीवोंका क्षेत्र अवधिज्ञानियोंके क्षेत्रके समान लोकका असंख्यातवां भाग है ॥ ७० ॥

केवलदर्शनी जीवोंका क्षेत्र केवलज्ञानियोंके क्षेत्रके समान लोकका असंख्यातवां भाग, लोकका असंख्यात बहुभाग और सर्वलोक है ॥ ७१ ॥

---

१ अचक्षुदर्शनिनां मिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकषायान्तानां सामान्योक्तं क्षेत्रम् । स. सि. १, ८.

२ अवधिदर्शनिनामवधिज्ञानिवत् । स. सि. १, ८. ३ केवलदर्शनिनां केवलज्ञानिवत् । स. सि. १, ८.

एदाणि दो वि सुत्ताणि सुगमाणि त्ति पज्जवट्ठियपरूवणा ण कीरदे ।

एवं दंसणमग्गणा समत्ता ।

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय-णीललेस्सिय-काउलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठी ओघं[1] ॥ ७२ ॥

सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय-मारणंतिय-उववादपदेहि सव्वलोगच्छणेण, विहारवदिसत्थाण-वेउव्वियपदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे खेत्ते अच्छणेण च सरिसत्तमत्थि त्ति ओघमिदि भणिदं । णवरि वेउव्वियसमुग्घादगदा तिरियलोगस्स असंखेज्जदिभागे ।

सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी ओघं ॥ ७३ ॥

चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागत्तणेण माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणत्तणेण च सरिसत्तुवलंभादो सिद्धमोघत्तं । विसेसदो पुण मारणंतिय-उववादगदा किण्ह-णील-

ये दोनों ही सूत्र सुगम हैं, इसलिये पर्यायार्थिकनयकी प्ररूपणा नहीं की जाती है ।

इस प्रकार दर्शनमार्गणा समाप्त हुई ।

लेश्यामार्गणाके अनुवादसे कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले और कापोतलेश्यावाले जीवोंमें मिथ्यादृष्टि जीव ओघके समान सर्वलोकमें रहते हैं ॥ ७२ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद, इन पदोंके साथ सर्वलोकमें रहनेकी अपेक्षा, विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकपदके साथ सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहनेकी अपेक्षा तीनों अशुभ लेश्यावाले मिथ्यादृष्टि जीवोंके क्षेत्रकी ओघके साथ सदृशता है, इसलिए सूत्रमें 'ओघ' यह पद कहा । विशेष बात यह है कि वैक्रियिकसमुद्घातगत तीनों अशुभलेश्यावाले मिथ्यादृष्टि जीव तिर्यग्लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ।

तीनों अशुभलेश्यावाले सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीव ओघके समान लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ७३ ॥

तीनों अशुभलेश्यावाले उक्त तीनों गुणस्थानवर्ती जीवोंके स्वसंभव पदोंकी अपेक्षा सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें रहनेसे और मानुषक्षेत्रसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहनेसे ओघके साथ सदृशता पाई जाती है, इसलिए उनके क्षेत्रके ओघपना सिद्ध हुआ ।

१ लेश्यानुवादेन कृष्णनीलकापोतलेश्यानां मिथ्यादृष्टयादयोऽसंयतसम्यग्दृष्टयन्तानां सामान्योक्तं क्षेत्रम् । स. सि. १, ८.

काउलेस्सियअसंजदसम्मादिट्ठिणो संखेज्जा वि होदूण माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणे खेत्तेअच्छंति, असंखेज्जजोयणायामत्तादो ।

तेउलेस्सिय-पम्मलेस्सिएसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्त-संजदा केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे[1] ॥ ७४ ॥

तेउलेस्सियमिच्छादिट्ठी सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादगदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणे अच्छंति । मारणंतियसमुग्घादगदा एवं चेव । णवरि तिरियलोगादो असंखेज्जगुणे त्ति वत्तव्वं । एवं चेव उववादगदाणं । एत्थ ओवट्टणं ठविज्जमाणे सुधम्मरासिं ठविय अप्पणो उववक्कमणकालेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण भागे हिदे एगसमएण तत्थुववज्जमाणजीवा होंति । पुणो अवरमेगं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागं भागहारसरूवेण ट्ठविदे रज्जुआयामेण उववादगदरासी होदि । पुणो संखेज्जपदरंगुलेहि रज्जूहि गुणिदे उववादखेत्तं होदि । ओवट्टणा जाणिय कायव्वा । तेउलेस्सियगुणपडिवण्णाणं ओघभंगो । पम्मलेस्सियमिच्छादिट्ठी

किन्तु विशेष बात यह है कि मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद पदगत कृष्ण, नील और कापोतलेश्यावाले असंयतसम्यग्दृष्टि संख्यात हो करके भी मानुषक्षेत्रसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, उनके मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद पदगत दंडका आयाम असंख्यात योजन पाया जाता है ।

तेजोलेश्यावाले और पद्मलेश्यावाले जीवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ७४ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिक-समुद्घातगत तेजोलेश्यावाले मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । मारणान्तिकसमुद्घातगत तेजोलेश्यावाले मिथ्यादृष्टि जीवोंका क्षेत्र भी इसी प्रकार है । विशेष बात यह कहना चाहिए कि वे तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । इसी प्रकार उपपाद पदगत तेजोलेश्यावाले मिथ्यादृष्टि जीवोंका क्षेत्र जानना चाहिए । यहांपर अपवर्तनाके स्थापित करते समय सौधर्मकल्पकी जीवराशिको स्थापित कर उसमें पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण अपने उपक्रमणकालसे भाग देनेपर एक समयमें उनमें उत्पन्न होनेवाले जीव होते हैं । पुनः एक दूसरा पल्योपमका असंख्यातवां भाग भागहारस्वरूपसे स्थापित कर एक राजुप्रमाण

१ तेजःपद्मलेश्यानां मिथ्यादृष्ट्याद्यप्रमत्तान्तानां लोकस्यासंख्येयभागः । स. सि. १, ८.

सत्थाणसत्थाण - विहारवदिसत्थाण - वेदण-कसायसमुग्घादगदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे अच्छंति, पहाणीभूदतिरिक्खरासित्तादो। वेउव्विय-मारणंतिय-उववादगदा चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे, पधाणीकदसणक्कुमार-माहिंदरासीदो। सासणादिगुणपडिवण्णाणं अप्पमत्तसंजदंताणं ओघभंगो।

सुक्कलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदराग-छदुमत्था केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे[1] ॥ ७५ ॥

सुक्कलेस्सियमिच्छाइट्ठिणो जेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ता, तेण सत्थाणसत्थाण - विहारवदिसत्थाण - वेदण-कसाय-वेउव्विय - मारणंतिय-उववादपदेहि

आयामवाली उपपादपदकी प्राप्त जीवराशिका प्रमाण होता है। पुनः उसे संख्यात प्रतरांगुलप्रमाण राजुओंसे गुणित करनेपर उपपादक्षेत्रका प्रमाण होता है। यहांपर अपवर्तना जान करके करना चाहिए। गुणस्थानप्रतिपन्न तेजोलेश्यावाले जीवोंका क्षेत्र ओघक्षेत्रके समान है।

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घातगत पद्मलेश्यावाले मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, यहांपर तिर्यंचराशिकी प्रधानता है। वैक्रियिकसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपदकी प्राप्त पद्मलेश्यावाले मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, यहांपर सानत्कुमार-माहेन्द्र देवराशिकी प्रधानता है। सासादनसम्यग्दृष्टि आदि गुणस्थानप्रतिपन्न जीवोंसे लेकर अप्रमतसंयत गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती पद्मलेश्यावाले जीवोंका क्षेत्र ओघके समान है।

शुक्ललेश्यावाले जीवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषायवीतराग-छद्मस्थ गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती शुक्ललेश्यावाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ७५ ॥

चूंकि, शुक्ललेश्यावाले मिथ्यादृष्टि जीव पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं, इसलिये वे स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, वैक्रियिकसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपदकी अपेक्षा सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं। सासादनसम्यग्दृष्टि आदि शेष गुणस्थानवर्ती शुक्ललेश्यावाले जीवोंका क्षेत्र ओघके समान है। विशेष बात यह है कि

[1] शुक्ललेश्यानां मिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकषायान्तानां लोकस्यासंख्येयभागः। स. सि. १, ८.

चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे। सेसगुणट्ठाणाणमोघभंगो। णवरि मिच्छादिट्ठिप्पहुडि सव्वगुणट्ठाणेसु मारणंतिय-उववादपदेसु जीवा संखेज्जा चेव।

सजोगिकेवली ओघं[1] ॥ ७६ ॥

एदं सुत्तं सुगमं। जधा कसायमग्गणाए अकसाइया वुत्ता, तधा एत्थ लेस्सामग्गणाए अलेस्सिया किण्ण वुत्ता त्ति भणिदे वुच्चदे— जत्थ दव्वं पहाणीभूदं, तत्थ भणिदं होदि। जत्थ पुण पज्जवो पहाणो, तत्थ ण होदि। लेस्सामग्गणा पुण पज्जयपहाणा एत्थ कदा, तेण अलेस्सिया ण परूविदा।

एवं लेस्सामग्गणा समत्ता।

भवियाणुवादेण भवसिद्धिएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवली ओघं[2] ॥ ७७ ॥

एदं सुत्तं सव्वं पि मूलोघादो अविसिट्ठमिदि मूलोघपज्जवट्ठियपरूवणं लभदे।

मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषाय गुणस्थान तक सभी गुणस्थानोंमें मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद, इन दोनों पदोंमें शुक्ललेश्यावाले जीव संख्यात ही होते हैं।

शुक्ललेश्यावाले सयोगिकेवलीका क्षेत्र ओघके समान है ॥ ७६ ॥

यह सूत्र सुगम है।

शंका— जिस प्रकार कषायमार्गणामें क्षेत्रप्ररूपणा करते समय अकषायी जीव कहे गये हैं उसी प्रकार यहां लेश्यामार्गणामें अलेश्य जीवोंका कथन क्यों नहीं किया गया है?

समाधान— ऐसी आशंका करनेपर कहते हैं, जिस मार्गणामें द्रव्य प्रधान है उस मार्गणामें तो वैसा कहा गया है, किन्तु जिस मार्गणामें पर्याय प्रधान है उस मार्गणामें वैसा नहीं कहा गया है परन्तु लेश्यामार्गणा यहां पर्यायप्रधान कही गई है, इसलिए इस मार्गणामें अलेश्य जीव नहीं कहे गये हैं।

इस प्रकार लेश्यामार्गणा समाप्त हुई।

भव्यमार्गणाके अनुवादसे भव्यसिद्धिक जीवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका क्षेत्र ओघक्षेत्रके समान है ॥ ७७ ॥

यह सम्पूर्ण ही सूत्र मूल-ओघ प्ररूपणाके समान है, इसलिए मूल-ओघ-पर्यायार्थिकनयकी प्ररूपणाको प्राप्त होता है, अर्थात्, भव्यजीवोंका क्षेत्र ओघमें कहे गये क्षेत्रके समान ही है।

---

१ सयोगकेवलिनामलेश्यानां च सामान्योक्तं क्षेत्रम्। स. सि. १, ८.

२ भव्यानुवादेन भव्यानां चतुर्दशानां सामान्योक्तं क्षेत्रम्। स. सि. १, ८.

अभवसिद्धिएसु मिच्छादिट्ठी केवडि खेत्ते, सव्वलोए' ॥ ७८ ॥

सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय-मारणंतिय-उववादगदा अभवसिद्धिया सव्वलोगे। विहारवदिसत्थाण-वेउव्वियपदट्ठिदा चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे। कुदो? तसरासिमस्सिदूण बंधसंबंधप्पाबहुगसुत्तादो णज्जदे। तं जधा— सव्वत्थोवा धुवबंधगा। सादियबंधगा असंखेज्जगुणा। अणादियबंधगा असंखेज्जगुणा। अद्धुवबंधगा विसेसाहिया। केत्तियमेत्तेण? धुवबंधगेणूणसादियबंधगमेत्तेण। तसेसु पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ता चेव अभवसिद्धिया होंति त्ति एदं कुदो णव्वदे? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तसादियबंधगेहिंतो असंखेज्जगुणहीणत्तण्णहाणुववत्तीदो। सादियबंधगा पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ता त्ति कुदो णव्वदे?

अभव्यसिद्धिक जीवोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं? सर्व लोकमें रहते हैं ॥ ७८ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद पदको प्राप्त अभव्यसिद्धिक जीव सर्व लोकमें रहते हैं। विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिक पदस्थित अभव्यसिद्धिक जीव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं।

शंका— यह कैसे जाना कि विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकसमुद्घातगत अभव्यजीव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और मनुष्यलोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं?

समाधान— त्रसराशिका आश्रय करके कहे गये बंधसम्बन्धी अल्पबहुत्वानुयोगद्वारके सूत्रोंसे यह जाना जाता है। वह इस प्रकार है— 'ध्रुवबंधक जीव सबसे कम हैं। उनसे सादिबंधक जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे अनादिबंधक जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे अध्रुवबंधक जीव विशेष अधिक हैं। कितने मात्र विशेषसे अधिक हैं? ध्रुवबंधकोंसे हीन सादिबंधकोंकी राशिके प्रमाणसे अधिक हैं।

शंका— त्रसजीवोंमें पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र ही अभव्यसिद्धिक जीव होते हैं, यह कैसे जाना जाता है?

समाधान— पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र सादिबंधकोंसे ध्रुवबंधकोंकी असंख्यातगुणहीनता अन्यथा बन नहीं सकती है, इस अन्यथानुपपत्तिसे जाना जाता है कि त्रसराशिमें अभव्यसिद्धिक जीव पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र ही होते हैं।

शंका— सादिबंध करनेवाले जीव पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र होते हैं, यह कैसे जाना?

समाधान— युक्तिसे।

---

१ अभव्यानां सर्वलोकः। स. सि. १, ८.

वुत्तीदो । का वुत्ती ? वुच्चदे- तसेसु पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ता सादिय-बंधगा, वासपुधत्तंतरेण तसट्ठिदीए पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तुवक्कमणकालुव-लंभादो । एइंदिएसु संचिदअणंतसादियबंधगेहिंतो पदरस्स असंखेज्जदिभागमेत्ता सादियबंधगा तसेसु किण्ण उप्पज्जंती ? ण, सव्वगुण-मग्गणट्ठाणेसु आयाणुसारि-वओवलंभादो । जेण एइंदिएसु आओ संखेज्जो, तेण तेसिं वएण वि तत्तिएण चेव होदव्वं । तदो सिद्धं सादियबंधगा पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ता त्ति ।

एवं भवियमग्गणा समत्ता ।

सम्मत्ताणुवादेण सम्मादिट्ठि-खइयसम्मादिट्ठीसु असंजद सम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवली ओघं[1] ॥ ७९ ॥

दव्वट्ठियपरूवणं पडि विसेसो णत्थि त्ति ओघमिदि वुत्तं । पज्जवट्ठिय-परूवणाए वि णत्थि कोई विसेसो । णवरि खइयसम्मादिट्ठीसु संजदासंजदाणं

शंका— वह युक्ति कौनसी है ?

समाधान— कहते हैं— त्रसजीवोंमें पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र सादिबंधक जीव होते हैं, क्योंकि, वर्षपृथक्त्वके अन्तरसे त्रसकायकी स्थितिका पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र उपक्रमणकाल पाया जाता है ।

शंका— एकेन्द्रिय जीवोंमें संचयको प्राप्त अनन्त सादिकबंधकोंमेंसे जगत्प्रतरके असंख्यातवें भागप्रमाण सादिबंधक जीव त्रसजीवोंमें क्यों नहीं उत्पन्न होते हैं ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, सभी गुणस्थान और मार्गणास्थानोंमें आयके अनुसार ही व्यय पाया जाता है । चूंकि, एकेन्द्रियोंमें आयका प्रमाण संख्यात ही है, इसलिए उनका व्यय भी उतना अर्थात् संख्यात ही होना चाहिए । इसलिए सिद्ध हुआ कि त्रसराशिमें सादिबंधक जीव पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र ही होते हैं ।

इस प्रकार भव्यमार्गणा समाप्त हुई ।

सम्यक्त्वमार्गणाके अनुवादसे सम्यग्दृष्टि और क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थानतक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती सम्यग्दृष्टि और क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंका क्षेत्र ओघके समान है ॥ ७९ ॥

द्रव्यार्थिकनयके प्ररूपणकी अपेक्षा सूत्र-प्रतिपादित जीवोंके क्षेत्रमें ओघ क्षेत्रसे कोई विशेषता नहीं है, इसलिए सूत्रमें 'ओघ' ऐसा पद कहा है । पर्यायार्थिकनयकी प्ररूपणामें भी कोई विशेषता नहीं है । केवल क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें संयतासंयत गुणस्थानवर्ती जीवोंके

१ सम्यक्त्वानुवादेन क्षायिकसम्यग्दृष्टीनामसंयतसम्यग्दृष्ट्यादयोऽयोगकेवल्यन्तानां × × × सामान्योक्तं क्षेत्रम् । स. सि. १, ८.

मणुसपज्जत्तसंजदासंजदपरूवणाए कादव्वा । असंजदसम्माविट्ठी वि मारणंतिय-उववादपदेसु वट्टमाणा संखेज्जा । सेसं सुगमं ।

सजोगिकेवली ओघं ॥ ८० ॥

पुव्विल्लेहि सह खेत्तं पडि पयरिसेण पच्चाससीए अभावादो पुध सुत्तारंभो । सेसं सुगमं ।

वेदगसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अपमत्त-संजदा केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे[1] ॥ ८१ ॥

एत्थ ओघपज्जवट्ठियपरूवणा णिरवयवा सव्वगुणट्ठाणेसु परूवेदव्वा, विसेसाभावादो ।

उवसमसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव उवसंत-कसायवीदरागछदुमत्था केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे[2] ॥८२॥

मनुष्यपर्याप्त संयतासंयत तक ही होते हैं, अतः उनमें संभव पदोंकी अपेक्षा ही क्षेत्रप्ररूपणा करना चाहिए । मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद, इन दो पदोंमें वर्तमान असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानवर्ती क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यात ही होते हैं । शेष सूत्रका अर्थ सुगम है ।

सयोगिकेवली भगवान्‌का क्षेत्र ओघकथित क्षेत्रके समान है ॥ ८० ॥

सयोगिकेवली गुणस्थानकी पूर्ववर्ती गुणस्थानोंके साथ क्षेत्रकी अपेक्षा प्रकर्षतासे प्रत्यासत्तिका अभाव है, इसलिए यह पृथक् सूत्र बनाया गया है । शेष सूत्रका अर्थ सुगम है ।

वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती वेदकसम्यग्दृष्टि जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ८१ ॥

यहांपर ओघमें कही गई पर्यायार्थिकनयसम्बन्धी क्षेत्रप्ररूपणा सम्पूर्ण पदोंकी अपेक्षा सर्व गुणस्थानोंमें प्ररूपण करना चाहिए, क्योंकि, उससे इसमें कोई विशेषता नहीं है ।

उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर उपशान्त-कषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती उपशमसम्यग्दृष्टि जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ८२ ॥

---

१ क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टीनामसंयतसम्यग्दृष्टयाद्यप्रमत्तान्तानां × × × सामान्योक्तं क्षेत्रम् । स. सि. १,८.

२ औपशमिकसम्यग्दृष्टीनामसंयतसम्यग्दृष्टयाद्युपशान्तकषायान्तानां × × सामान्योक्तं क्षेत्रम् । स. सि. १,८

सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादगदा असंजद-सम्मादिट्ठी चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणे अच्छंति। मारणंतिय-उववादपदेसु एसो चेव आलावो। णवरि तेसु पदेसु[1] दिव्वजीवा संखेज्जा चेव होंति, उवसमसेढीदो ओदरिय उवसमसम्मत्तेण सह असंजमं पडिवण्णजीवाणं संखेज्जसुवलंभादो। सेसउवसमसम्मादिट्ठीणं किण्ण मरणमत्थि त्ति वुत्ते सभावादो[2]। एवं संजदासंजदाणं पि[3]। णवरि उववादपदं णत्थि। सेसाणमोघं। णवरि पमत्तसंजदस्स उवसमसम्मत्तेण तेजाहारं णत्थि।

सासणसम्मादिट्ठी ओघं[3] ॥ ८३ ॥

सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ८४ ॥

मिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ८५ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिक-समुद्घातको प्राप्त असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानवर्ती उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और मानुषक्षेत्रसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं। मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद इन दोनों पदोंमें भी यही उक्त क्षेत्र-आलाप जानना चाहिए। विशेष बात यह है कि उन दोनों पदोंमें वर्तमान जीव संख्यात ही होते हैं, क्योंकि, उपशमश्रेणीसे उतर कर उपशमसम्यक्त्वके साथ असंयमभावको प्राप्त होनेवाले जीवोंकी संख्या संख्यात ही पाई जाती है।

शंका— उपशमश्रेणीसे उतर कर मरनेवाले उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंके अतिरिक्त शेष अन्य उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंका मरण क्यों नहीं होता है?

समाधान— स्वभावसे ही नहीं होता है।

इसी प्रकारसे संयतासंयत गुणस्थानवर्ती उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंका क्षेत्र भी जानना चाहिए। विशेष बात यह है कि उनके उपपादपद नहीं होता है। शेष गुणस्थानवर्ती उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंका क्षेत्र ओघ-वर्णित क्षेत्रके समान है। विशेषता केवल इतनी है कि प्रमत्तसंयतके उपशमसम्यक्त्वके साथ तैजससमुद्घात और आहारकसमुद्घात नहीं होते हैं।

सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका क्षेत्र ओघके समान है ॥ ८३ ॥

सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका क्षेत्र ओघके समान है ॥ ८४ ॥

मिथ्यादृष्टि जीवोंका क्षेत्र ओघके समान है ॥ ८५ ॥

---

१ प्रतिषु 'पदेसेसु' इति पाठः।

२ प्रतिषु 'हि' इति पाठः।

३ ×××सासादनसम्यग्दृष्टीनां सम्यग्मिथ्यादृष्टीनां मिथ्यादृष्टीनां च सामान्योक्तं क्षेत्रम्।

एदाणि तिण्णि वि सुत्ताणि सुगमाणि त्ति एदेसिं परूवणा ण कीरदे ।

एवं सम्मत्तमग्गणा समत्ता ।

सण्णियाणुवादेण सण्णीसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे[1] ॥८६॥

सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादसदा सण्णिमिच्छादिट्ठी तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे अच्छंति । एवं मारणंतिय-उववादपदेसु वि वत्तव्वं । णवरि तिरियलोगादो असंखेज्जगुणे इदि भणिदव्वं । सेसगुणट्ठाणाणमोघभंगो, तदो विसेसाभावादो ।

असण्णी केवडि खेत्ते, सव्वलोगे[2] ॥ ८७ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो सुगमो ।

एवं सण्णिमग्गणा समत्ता ।

ये उक्त तीनों ही सूत्र सुगम हैं, इसलिए उनकी प्ररूपणा नहीं की जाती है ।

इस प्रकार सम्यक्त्वमार्गणा समाप्त हुई ।

संज्ञिमार्गणाके अनुवादसे संज्ञी जीवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती संज्ञी जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ८६ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घात, इन पांच पदोंको प्राप्त संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । इसी प्रकार मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद, इन दो पदोंमें वर्तमान संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीवोंका भी क्षेत्र कहना चाहिए । केवल इतनी बात विशेष कहनी चाहिए कि ये तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । सासादनादि शेष गुणस्थानवर्ती जीवोंका क्षेत्र ओघ-क्षेत्रके समान है, क्योंकि, ओघके क्षेत्रसे सासादनादि गुणस्थानोंके संज्ञी जीवोंके क्षेत्रमें कोई विशेषता नहीं है ।

असंज्ञी जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सर्व लोकमें रहते हैं ॥ ८७ ॥

इस सूत्रका अर्थ सुगम है ।

इस प्रकार संज्ञिमार्गणा समाप्त हुई ।

१ संज्ञानुवादेन संज्ञिनां चक्षुर्दर्शनिवत् । स. सि. १, ८.

२ असंज्ञिनां सर्वलोकः । स. सि. १, ८.

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

आहाराणुवादेण आहारएसु मिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ८८ ॥

सव्वपदेहि ओघपरूवणादो विसेसो णत्थि त्ति ओघत्तं जुज्जदे ।

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवली केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे[1] ॥ ८९ ॥

एदस्स सुत्तस्स पज्जवट्ठियपरूवणा ओघपरूवणाए तुल्ला । णवरि उववादो सरीरगहिदपढमसमए वत्तव्वो । सजोगिकेवलिस्स वि पदर-लोगपूरणसमुग्घादा वि णत्थि, तत्थ आहारित्ताभावादो ।

अणाहारएसु मिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ९० ॥

दव्वट्ठियपरूवणाए ओघं होदि । पज्जवट्ठियपरूवणाए पुण उववादपदमेक्कं चेव अत्थि । सेसं णत्थि । सेसं सुगमं ।

आहारमार्गणाके अनुवादसे आहारक जीवोंमें मिथ्यादृष्टियोंका क्षेत्र ओघके समान सर्व लोक है ॥ ८८ ॥

मिथ्यादृष्टि जीवोंमें स्वस्थान आदि सभी पदोंके साथ क्षेत्रसम्बन्धी ओघप्ररूपणासे विशेषता नहीं है, इसलिए उनके क्षेत्रके ओघपना बन जाता है ।

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती संज्ञी जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ८९ ॥

इस सूत्रकी पर्यायार्थिकनयसम्बन्धी क्षेत्रप्ररूपणा ओघक्षेत्रप्ररूपणाके समान है । विशेष बात यह है कि आहारक जीवोंके उपपादपद शरीर ग्रहण करनेके प्रथम समयमें कहना चाहिए, (क्योंकि, तभी जीव आहारक होता है) । आहारक सयोगिकेवलीके भी प्रतर और लोकपूरणसमुद्घात नहीं होते हैं, क्योंकि, इन दोनों अवस्थाओंमें केवलीके आहारकपनेका अभाव है, अर्थात् प्रतर और लोकपूरणसमुद्घातकी अवस्थामें सयोगिकेवली भगवान् अनाहारक रहते हैं ।

अनाहारकोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंका क्षेत्र ओघके समान सर्वलोक है ॥ ९० ॥

द्रव्यार्थिकनयकी प्ररूपणासे अनाहारक मिथ्यादृष्टि जीवोंका क्षेत्र ओघके समान होता है । किन्तु पर्यायार्थिकनयकी प्ररूपणाकी अपेक्षा तो एक उपपादपद ही होता है । शेष पद नहीं होते हैं, (क्योंकि, अनाहारक मिथ्यादृष्टि जीवोंमें स्वस्थानादि शेष सभी पद असंभव हैं) । शेष सूत्रका अर्थ सुगम है ।

---

१ आहारानुवादेन आहारकाणां मिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकषायान्तानां सामान्योक्तं क्षेत्रम् । सयोगकेवलिनां लोकस्यासंख्येयभाग. । स. सि. १, ८.

सासणसम्मादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी अजोगकेवली केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे[1] ॥ ९१ ॥

पज्जवट्ठियणएण उवक्कादगदा सासणसम्माविट्ठी चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अड्ढाईज्जादो असंखेज्जगुणे अच्छंति। असंजदसम्माविट्ठीणं परूवणा एवं चेव। अजोगिकेवली चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागे।

सजोगिकेवली केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जेसु वा भागेसु, सव्वलोगे वा[2] ॥ ९२ ॥

पयरगदो सजोगिकेवली लोगस्स असंखेज्जेसु भागेसु होदि, लोगपेरंतट्ठिदवादवलयवदिरित्तसयललोगखेत्तं समावूरिय ट्ठिदत्तादो। लोगपूरणे पुण सव्वलोगे भवदि, सव्वलोगमावूरिय ट्ठिदत्तादो।

(एवं आहारमग्गणा समत्ता)

एवं खेत्ताणिओगद्दारं समत्तं[3]।

अनाहारक सासादनसम्यग्दृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और अयोगिकेवली कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ९१ ॥

पर्यायार्थिकनयसम्बन्धी क्षेत्रप्ररूपणाकी अपेक्षा उपपादको प्राप्त अनाहारक सासादनसम्यग्दृष्टि जीव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं। अनाहारक असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंकी क्षेत्रप्ररूपणा भी इसी प्रकार जाननी चाहिए। अनाहारक अयोगिकेवली भगवान् सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और मनुष्यक्षेत्रके संख्यातवें भागमें रहते हैं।

अनाहारक सयोगिकेवली भगवान् कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यात बहुभागोंमें और सर्वलोकमें रहते हैं ॥ ९२ ॥

प्रतरसमुद्घातगत सयोगिकेवली जिन लोकके असंख्यात बहुभागोंमें रहते हैं, क्योंकि, वे लोकके चारों ओर स्थित वातवलयके क्षेत्रको छोड़कर शेष समान लोकके क्षेत्रको समापूरित करके स्थित होते हैं। पुनः लोकपूरणसमुद्घातमें वे ही सयोगकेवली जिन सर्व लोकमें रहते हैं, क्योंकि, उस समय वे सर्व लोकको आपूरण करके स्थित होते हैं।

(इस प्रकार आहारमार्गणा समाप्त हुई।)

इस प्रकार क्षेत्रानुयोगद्वार समाप्त हुआ।

---

१ अनाहारकाणां मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टयसंयतसम्यग्दृष्टययोगकेवलिनां सामान्योक्तं क्षेत्रम्। स. सि. १, ८.

२ सयोगिकेवलिनां लोकस्यासंख्येयभागाः सर्वलोको वा। स. सि. १, ८.

३ क्षेत्रनिर्णयः कृतः। स. सि. १, ८.

सिरि-भगवंत-पुप्फदंत-भूदबलि-पणीदो

छक्खंडागमो

सिरि-वीरसेणाइरिय-विरइय-धवला-टीका-समण्णिदो

तस्स

पढमखंडे जीवट्ठाणे

फोसणाणुगमो

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

णमिऊणेलाइरिए तिहुवणभवणेक्कमंगलप्पईवे ।
कलिकलुसफुसणघवसणे सुत्तं फोसासियं वोच्छं ॥

फोसणाणुगमेण दुविहो णिद्देसो, ओघेण आदेसेण य[1] ॥ १ ॥

णामफोसणं ठवणफोसणं दव्वफोसणं खेत्तफोसणं कालफोसणं भावफोसणं चेदि छव्विहं फोसणं । तत्थ णामफोसणं फोसणसद्दो । एसो दव्वट्ठियस्स णिक्खेवो, धुवत्तेण

त्रिभुवनरूपी भवनके प्रकाशित करनेके लिए अद्वितीय मंगलप्रदीप और कलिकालकी कलुषताके स्पर्शको मार्जन करनेमें समर्थ श्री एलाचार्यको नमस्कार करके स्पर्शनानुगमाश्रित सूत्रोंके अर्थको कहता हूं ॥

स्पर्शनानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है, ओघनिर्देश और आदेश-निर्देश ॥ १ ॥

नामस्पर्शन, स्थापनास्पर्शन, द्रव्यस्पर्शन, क्षेत्रस्पर्शन, कालस्पर्शन और भावस्पर्शनके भेदसे स्पर्शन छह प्रकारका है । उनमें 'स्पर्शन' यह शब्द नामस्पर्शन निक्षेप है । यह निक्षेप द्रव्यार्थिकनयका विषय है, क्योंकि, ध्रुवपनेके बिना वाच्य-वाचकभावरूप सम्बन्ध नहीं बन

१ स्पर्शनमुच्यते-तद् द्विविधम् । सामान्येन विशेषेण च ॥ स. सि. १, ८.

विणा वाचिय-वाचयभावाणुववत्तीदो। सोयमिदि बुद्धीए अण्णदव्वेण अजिवो अण्णदव्वस्स एयत्तकरणं ठवणफोसणं णाम। जहा, घड-पिढराविसु एसो उसहो अजिओ अहिणंदणो त्ति। एसो वि दव्वट्ठियस्स णिक्खेवो, दोण्हमेयत्त-धुवत्तेहि विणा ठवणाप-वुत्तीए असंभवादो। आगम-णोआगमभेदेण दुविहं दव्वफोसणं। तत्थ फोसणपाहुडजाणगो अणुवजुत्तो खओवसमसहिओ आगमदो दव्वफोसणं णाम। णोआगमदव्वफोसणं जाणुगसरीर-भविय-तव्वदिरित्तदव्वफोसणभेएण तिविहं। तत्थ जाणुगसरीरदव्वफोसणं भविय-वट्टमाण-समुज्झादभेएण तिविहं। कधमेदस्स तिविहसरीरस्स फोसणववदेसो? फोसणपाहुडसहचारादो। जहा, असिसहचरिदो असी, धणुसहचरिदो धणुहमिदि। भवियदव्वफोसणं भविस्सकाले फोसणपाहुडजाणओ। कधमेदस्स दव्वफोसणववएसो? पुव्वुत्तरावत्थाणं दव्वेण एगत्तादो। जहा, इंदट्ठमाणिदकट्ठस्स इंदो त्ति ववदेसो। तव्वदिरित्तदव्वफोसणं सचित्त-अचित्तमिस्सयभेदेण तिविहं। सचित्ताणं दव्वाणं जो

सकता है। 'यह वही है' इस प्रकारकी बुद्धिसे अन्य द्रव्यके साथ अन्य द्रव्यका एकत्व स्थापित करना स्थापना निक्षेप है। जैसे, घट, पिठर (पात्रविशेष) आदिकमें 'यह ऋषभ है, यह अजित है, यह अभिनन्दन है' इत्यादि। यह स्थापनानिक्षेप भी द्रव्यार्थिकनयका विषय है, क्योंकि, दो पदार्थोंकी एकता की ध्रुवताके विना स्थापनानिक्षेपकी प्रवृत्ति असंभव है। आगम और नोआगमके भेदसे द्रव्यस्पर्शननिक्षेप दो प्रकारका है। उनमें स्पर्शनविषयक शास्त्रका ज्ञायक, किन्तु वर्तमानमें अनुपयोगी और क्षयोपशमसहित जीव आगमद्रव्यस्पर्शननिक्षेप है। नोआगम-द्रव्यस्पर्शननिक्षेप ज्ञायकशरीर, भव्य और तद्व्यतिरिक्तनोआगमद्रव्यस्पर्शनके भेदसे तीन प्रकारका है। उनमें ज्ञायकशरीर द्रव्यस्पर्शन भावी, वर्तमान और समुज्झित (त्यक्त) के भेदसे तीन प्रकारका है।

शंका— इस तीन प्रकारके शरीरकी 'स्पर्शन' यह संज्ञा कैसे है?

समाधान— स्पर्शनप्राभृतके साहचर्यसे उक्त तीन प्रकारके शरीरको भी स्पर्शनसंज्ञा है। जैसे, असि (तलवार) से सहचरित पुरुषको असि और धनुषसे सहचरित पुरुषको धनुष संज्ञा प्राप्त हो जाती है।

भविष्यकालमें स्पर्शनविषयक शास्त्रके ज्ञायकको भव्यद्रव्यस्पर्शन कहते हैं।

शंका— इस भव्यशरीरवालेके 'द्रव्यस्पर्शन' यह संज्ञा कैसे है?

समाधान— विवक्षित द्रव्यकी पूर्व अवस्था और उत्तर अवस्थाका द्रव्यके साथ एकत्व पाया जाता है। जैसे, इन्द्र बनानेके लिये लाए गए काष्ठकी 'इन्द्र' यह संज्ञा देखी जाती है।

तद्व्यतिरिक्तनोआगमद्रव्यस्पर्शन सचित्त, अचित्त और मिश्रके भेदसे तीन प्रकारका है। जो सचित्त द्रव्योंका संयोग होता है, वह सचित्तद्रव्यस्पर्शन कहलाता है। अचित्त द्रव्योंका जो परस्परमें संयोग होता है, वह अचित्तद्रव्यस्पर्शन कहलाता है। मिश्रद्रव्यस्पर्शन चेतनअचेतनस्वरूप छहों द्रव्योंके संयोगसे उनसठ भेदवाला है।

संजोओ सो सचित्तदव्वफोसणं । अचित्ताणं दव्वाणं जो अण्णोण्णेण संजोओ सो अचित्तदव्वफोसणं । मिस्सयदव्वफोसणं छण्हं दव्वाणं संजोएण एगूणसट्ठिभेयभिण्णं । सेसदव्वाणमागासेण सह संजोओ खेत्तफोसणं । अमुत्तेण आगासेण सह सेसदव्वाणं मुत्ताणममुत्ताणं वा कधं फासो ? ण एस दोसो, अवगेज्झावगाहणभावस्सेव उवयारेण फासववएसादो, सत्त-पमेयत्ताविणा अण्णोण्णसमाणत्तणेण वा । कालदव्वस्स अण्णदव्वेहि जो संजोओ सो कालफोसणं णाम । एत्थ अमुत्तेण कालदव्वेण

. . . . . .

विशेषार्थ– किसी विवक्षित राशिके द्विसंयोगी, त्रिसंयोगी आदि भंग निकालनेके लिए विवक्षित राशिप्रमाणसे लेकर एक एक कम करते हुए एकके अंक तक अंक स्थापित करना चाहिए । पुनः दूसरी पंक्तिमें उनके नीचे एकसे लेकर विवक्षित राशि तक अंक लिखना चाहिए । पहली पंक्तिके अंकोंको अंश या भाज्य और दूसरी पंक्तिके अंकोंको हार या भागहार कहते हैं । यहां पहले भाज्योंके साथ अगले भाज्योंका और पहले भागहारोंके साथ अगले भागहारोंका गुणा करना चाहिए । पुनः भाज्योंके गुणनफलमें भागहारोंके गुणनफलका भाग देना चाहिए जो इस प्रकार प्रमाण आवे, उतने ही विवक्षित स्थानके भंग समझना चाहिए । इस करणसूत्र (गो. कर्मकांड गाथा नं. ७९९) के नियमानुसार छह द्रव्योंके संयोगी भंग इस प्रकार होंगे– द्विसंयोगी– $\frac{६\times५}{१\times२}=१५$ । त्रिसंयोगी $\frac{६\times५\times४}{१\times२\times३}=२०$ । चतुःसंयोगी $\frac{६\times५\times४\times३}{१\times२\times३\times४}=१५$ । पंचसंयोगी $\frac{६\times५\times४\times३\times२}{१\times२\times३\times४\times५}=६$ । षट्संयोगी $\frac{६\times५\times४\times३\times२\times१}{१\times२\times३\times४\times५\times६}=१$ । इन सब संयोगी भंगोंका योग १५+२०+१५+६+१=५७ सप्रमाण होता है । इन ५७ भंगोंके अतिरिक्त जीवका जीवके साथ, तथा पुद्गलका पुद्गलके साथ, इस प्रकार दो भंग और भी संभव हैं, जिन्हें मिलाकर ५९ संयोगी भंग हो जाते हैं । धर्मास्तिकाय आदि शेष चार द्रव्य अखंड एक एक ही होते हैं, अतः उनके इस प्रकारके एक ही द्रव्यके भीतर संयोगी भंग संभव नहीं हैं । जीव आदि छहों द्रव्योंके पृथक् पृथक् छह भंग और होते हैं, जो असंयोगी (एक संयोगी) होनेसे यहां ग्रहण नहीं किये गये ।

शेष द्रव्योंका आकाशद्रव्यके साथ जो संयोग है, वह क्षेत्रस्पर्शन कहलाता है ।

शंका– अमूर्त आकाशके साथ शेष अमूर्त और मूर्त द्रव्योंका स्पर्श कैसे संभव है ?

सेसदव्वाणं जदि वि पासो णत्थि, परिणामिज्जमाणाणि सेसदव्वाणि परिणामत्तेण कालेण पुसिदाणि त्ति उवयारेण कालफोसणं वुच्चदे । खेत्त-कालफोसणाणि दव्वफोसणम्हि किण्ण पदंति त्ति वुत्ते ण पदंति, दव्वादो दव्वेगदेसस्स कथंचि भेदुवलंभादो । भावफोसणं दुविहं आगम-णोआगमभेएण । फोसणपाहुडजाणओ उवजुत्तो आगमदो भावफोसणं । पासगुणपरिणदपोग्गलदव्वं णोआगमभावफोसणं ।

एदेसु फोसणेसु जीवखेत्तफोसणेण पयदं । अप्पर्शि स्पृश्यत इति स्पर्शनम् । फोसणस्स अणुगमो फोसणाणुगमो, तेण फोसणाणुगमेण । णिद्देसो कहणं वक्खाणमिदि एयट्ठो । सो दुविहो, जहा पयदं । ओघेण पिंडेण अभेदेणेत्ति एयट्ठो । आदेसेण भेदेण विसेसेणेत्ति समाणट्ठो । ओघणिद्देसो आदेसणिद्देसो त्ति दुविहो चेव णिद्देसो होदि, दव्वपज्जवट्ठियणए अणवलंबिय कहणोवयाभावादो । जदि एवं, तो

समाधान– यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, अवगाह्य-अवगाहकभावकी ही उपचारसे स्पर्शसंज्ञा है, अथवा, सत्त्व, प्रमेयत्व आदिके द्वारा मूर्त द्रव्यके साथ अमूर्त द्रव्योंकी परस्पर समानता होनेसे भी स्पर्शका व्यवहार बन जाता है ।

कालद्रव्यका अन्य द्रव्योंके साथ जो संयोग है, उसका नाम कालस्पर्शन है । यद्यपि अमूर्त कालद्रव्यके साथ शेष द्रव्योंका स्पर्शन नहीं है, तथापि परिणमित होनेवाले शेष द्रव्य परिणामत्वकी अपेक्षा कालसे स्पर्शित हैं, इस प्रकारके उपचारसे कालस्पर्शन कहा जाता है ।

शंका– क्षेत्रस्पर्शन और कालस्पर्शन ये दोनों स्पर्शन, द्रव्यस्पर्शनमें क्यों नहीं अन्तर्भूत होते हैं ?

समाधान– ऐसी शंकापर उत्तर देते हैं कि क्षेत्रस्पर्शन और कालस्पर्शन द्रव्यस्पर्शनमें अन्तर्भूत नहीं होते हैं, क्योंकि, द्रव्यसे द्रव्यके एक देशका कथंचित् भेद पाया जाता है ।

भावस्पर्शन आगम और नोआगमके भेदसे दो प्रकारका है । स्पर्शनविषयक शास्त्रके ज्ञायक और वर्तमानमें उसमें उपयुक्त जीवको आगमभावस्पर्शन कहते हैं । स्पर्शगुणसे परिणत पुद्गलद्रव्यको नोआगमभावस्पर्शन कहते हैं ।

इन उक्त छह प्रकारके स्पर्शनोंमेंसे यहांपर जीवद्रव्यसम्बन्धी क्षेत्रस्पर्शनसे प्रयोजन है । जो भूतकालमें स्पर्श किया गया और वर्तमानमें स्पर्श किया जा रहा है, वह स्पर्शन कहलाता है । स्पर्शनके अनुगमको स्पर्शनानुगम कहते हैं, उससे अर्थात् स्पर्शनानुगमसे । निर्देश, कथन और व्याख्यान, ये तीनों एकार्थक नाम हैं । वह निर्देश प्रकृतिके निर्देशके समान दो प्रकारका होता है । ओघ, पिंड और अभेद, ये सब एकार्थक नाम हैं । आदेश, भेद

पमाणवक्कस्स अभावो पसज्जदे इदि वुत्ते, होदु णाम अभावो, गुणप्पहाणभावमंतरेण कहणोवायाभावादो । अथवा, पमाणुप्पइदं वयणं पमाणवक्कमुवयारेण वुच्चदे ।

ओघेण मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, सव्वलोगो ॥२॥

'जहा उद्देसो तहा णिद्देसो' त्ति णायादो ताव ओघेण भणामि त्ति ओघेणेत्ति[2] वयणं । सेसगुणट्ठाणपडिसेहट्ठं मिच्छादिट्ठीहि त्ति वयणं । केवडियं खेत्तं फोसिदमिदि पुच्छासुत्तं सत्थस्स पमाणत्तपदुप्पायणफलं । खेत्ताणिओगद्दारे सव्वमग्गणट्ठाणाणि अस्सिदूण सव्वगुणट्ठाणाणं वट्टमाणकालविसिट्ठं खेत्तं परूविदं, संपदि फोसणाणिओगद्दारेण किं परूविज्जदे ? चोद्दस मग्गणट्ठाणाणि अस्सिदूण सव्वगुणट्ठाणाणं अदीदकालविसेसिदखेत्तं फोसणं वुच्चदे । एत्थ वट्टमाणखेत्तपरूवणं पि

आदेश और सूत्रनिर्देशका अर्थ भी यही है

और विशेष ये सब समानार्थक नाम हैं । ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश इस प्रकारसे निर्देश दो ही प्रकारका होता है, क्योंकि, द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिकनयोंके अवलम्बन किये बिना वस्तुस्वरूपके कथन करनेके उपायका अभाव है ।

शंका– यदि ऐसा है तो प्रमाणवाक्यका अभाव प्राप्त होता है ?

समाधान– उक्त शंकापर धवलाकार कहते हैं कि भले ही प्रमाणवाक्यका अभाव हो जावे, क्योंकि, गौणता और प्रधानताके बिना वस्तुस्वरूपके कथन करनेके उपायका भी अभाव है । अथवा, प्रमाणसे उत्पादित वचनको उपचारसे प्रमाणवाक्य कहते हैं ।

ओघसे मिथ्यादृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? सर्वलोक स्पर्श किया है ॥ २ ॥

'जिस प्रकारसे उद्देश होता है, उसी प्रकारसे निर्देश किया जाता है' इस न्यायके अनुसार सर्वप्रथम ओघका कथन करते हैं। इसलिए सूत्रमें पहले 'ओघसे' ऐसा वचन कहा । सासादनादि शेष गुणस्थानोंके प्रतिषेध करनेके लिए 'मिथ्यादृष्टियोंके द्वारा' यह वचन कहा । 'कितना क्षेत्र स्पर्श किया है' यह पृच्छासूत्र शास्त्रकी प्रमाणताका प्रतिपादन करनेके लिए कहा गया है ।

शंका– क्षेत्रानुयोगद्वारमें सर्व मार्गणास्थानोंका आश्रय लेकर सभी गुणस्थानोंके वर्तमानकालविशिष्ट क्षेत्रका प्रतिपादन कर दिया गया है । अब पुनः इस स्पर्शनानुयोगद्वारसे क्या प्ररूपण किया जाता है ?

समाधान– चौदह मार्गणास्थानोंका आश्रय लेकरके सभी गुणस्थानोंके अतीत (भूत) काल विशिष्ट क्षेत्रको स्पर्शन कहा गया है । (अतएव यहां उसीका प्ररूपण किया जाता है ।

१ सामान्येन तावत् मिथ्यादृष्टिभिः सर्वलोकः स्पृष्टः । स. सि. १, ८.

२ प्रतिषु 'ताव ओघं च णामित्ति त्ति ओघेणेत्ति' इति पाठः ।

सुत्तणिबद्धमेव दीसदि । तदो ण फोसणमदीदकालविसिट्ठखेत्तपदुप्पाइयं, किंतु वट्टमाणदीदकालविसेसिदखेत्तपदुप्पाइयमिदि ? एत्थ ण खेत्तपरूवणं, तं तं पुव्वं खेत्ताणिओगद्दारपरूविदवट्टमाणखेत्तं संभराविय अदीदकालविसिट्ठखेत्तपदुप्पायणट्ठं तस्सुवादाणं । तदो फोसणमदीदकालविसेसिदखेत्तपदुप्पाइयमेवेत्ति सिद्धं । सव्वलोगो, सव्वो लोगो मिच्छादिट्ठीहि छुत्तो त्ति जं वुत्तं होदि । एत्थ लोगपमाणं पुव्वं व आणेदव्वं । अधवा—

मुहसहिदमूलमज्झं छेत्तूणद्धेण सत्तवग्गेण ।
हंतूणमट्ठकदे घणरज्जू होंति लोगम्हि ॥ १ ॥

एदीए गाहाए आणेदव्वो । अधवा सत्तरज्जुविक्खंभ-चोद्दसरज्जुआयदखेत्तं ठविय आयामं चोद्दसखंडाई कादूण विक्खंभेण सत्त खंडे करिय लोगपमाणादो

शंका— यहां स्पर्शनानुयोगद्वारमें वर्तमानकालसम्बन्धी क्षेत्रकी प्ररूपणा भी सूत्रनिबद्ध ही देखी जाती है, इसलिए स्पर्शन अतीतकालविशिष्ट क्षेत्रका प्रतिपादन करनेवाला नहीं है, किन्तु वर्तमान और अतीतकालसे विशिष्ट क्षेत्रका प्रतिपादन करनेवाला है ?

समाधान— यहां स्पर्शनानुयोगद्वारमें वर्तमानक्षेत्रकी प्ररूपणा नहीं की जा रही है, किन्तु पहले क्षेत्रानुयोगद्वारमें प्ररूपित उस उस वर्तमानक्षेत्रको स्मरण कराकर अतीतकाल-विशिष्ट क्षेत्रके प्रतिपादनार्थ उसका ग्रहण किया गया है । अतएव स्पर्शनानुयोगद्वार अतीतकालसे विशिष्ट क्षेत्रका ही प्रतिपादन करनेवाला है, यह सिद्ध हुआ ।

'सर्वलोक' है अर्थात् सम्पूर्ण लोक मिथ्यादृष्टि जीवोंके द्वारा स्पर्श किया गया है, ऐसा कहा गया है । यहांपर लोकका प्रमाण पहले क्षेत्रप्ररूपणामें बताये गये नियमके अनुसार निकाल लेना चाहिए । अथवा—

लोकके मध्यको छेदकर अर्थात् मध्यलोकसे दो विभाग कर, दोनों विभागोंके पृथक् पृथक् मुखसहित मूलके विस्तारको आधा करके, पुनः सातके वर्गसे गुणा करके, उन दोनों राशियोंको जोड़ देनेपर, लोकसम्बन्धी घनराजु उत्पन्न होते हैं ॥ १ ॥

इस गाथाके अनुसार लोकका प्रमाण निकालना चाहिए ।

विशेषार्थ— लोकको मध्यसे विभक्त करनेपर दो भाग हो जाते हैं, ऊर्ध्वलोक और अधोलोक । इनमेंसे अधोलोकका मुख १ राजु और मूल ७ राजुप्रमाण है । अतएव इन दोनोंका योग ८ राजु हुआ । इससे आधे ४ को ७ के वर्ग (७ × ७ = ४९) से गुणा करनेपर (४ × ४९ =) १९६ राजु आते हैं । यही अधोलोकके घनराजुओंका प्रमाण है । इसी प्रकारसे ऊर्ध्वलोकका मुख १ राजु और मूल ५ राजुप्रमाण है, दोनोंका योग ६ राजु हुआ । इसके आधे ३ को ७ के वर्गसे गुणा करनेपर (३ × ४९ =) १४७ राजु आते हैं । यही ऊर्ध्वलोकके घनराजुओंका प्रमाण है । उक्त दोनों प्रमाणोंको एकत्रित करनेपर (१९६ + १४७ =) ३४३ लोकसम्बन्धी घनराजुओंका प्रमाण होता है ।

अधियखेत्तं फुसिय फेडिदे सगल-विगलावयवसहिदलोगखेत्तं परिप्फुडं होदूण दीसदि। तत्थ दुविदसुत्तवसेण सव्वाणि खेत्तखंडाणि आणिय मेलाविदे वि तं चेव लोगपमाणं होदि।

अथवा, सात राजुप्रमाण चौड़े और चौदह राजुप्रमाण लम्बे क्षेत्रको स्थापन करके आयाम कहा नहीं। चौदह खंड करके और विष्कम्भकी अपेक्षा सात खंड करके, पुनः उक्त लोकके प्रमाणसे अधिक क्षेत्रको लेकर उक्त विधिसे खंडित करनेपर, अपने सकल और विकल अवयवों सहित लोकरूप क्षेत्र परिस्फुट होकर दिखाई देता है। पुनः वहांपर बताये गए सूत्रके अनुसार समस्त क्षेत्रखंडोंको लाकर मिलानेपर भी वही तीनसौ तेतालीस घनराजु लोकका प्रमाण हो जाता है।

विशेषार्थ– उक्त कथनका अभिप्राय यह है कि पुरुषाकार लोकके आकारमें त्रसनाली तथा उसके आगे पीछे त्रसनालीके समान ही जो क्षेत्र है वह सब पूर्व-पश्चिम एक राजु चौड़ा, उत्तर-दक्षिण सात राजु मोटा और ऊपर-नीचे चौदह राजु लम्बा है। इस क्षेत्रको लम्बाईकी ओरसे एक एक राजु प्रमाणसे खंडित करके पुनः मोटाईकी ओरसे भी एक एक राजु प्रमाणसे खंडित करना चाहिए। इस प्रकारसे उक्त क्षेत्रके एक राजुप्रमाण लम्बे, चौड़े और मोटे अर्थात् घनात्मक खंड (१४ × ७ = ९८) अठ्यानवे होते हैं। पुनः लोकप्रमाणमेंसे इस क्षेत्रके (इन खंडोंके) अतिरिक्त जो अवशिष्ट क्षेत्र बचा है, उसे लेकर सब विभागोंको ऊपर-नीचे स्थापनकर पूर्वोक्त प्रमाणसे ही एक एक राजुप्रमाणके खंड करना चाहिए, जिसका क्रम इस प्रकार है– मध्यलोकसे नीचे अधोभागके जो शेष दोनों पार्श्ववर्ती दो भाग हैं, उन्हें एकके ऊपर दूसरेको विपर्यासक्रमसे रखना चाहिए। ऐसा करनेपर वह सात राजुप्रमाण लम्बा, चौड़ा समचतुरस्र क्षेत्र बन जाता है, जिसकी कि मोटाई सर्वत्र तीन राजुप्रमाण हो जाती है। इसके भी एक एक घनराजुप्रमाण खंड करनेपर (७ × ७ × ३ = १४७) एकसौ सैंतालीस खंड होते हैं। इसी प्रकारसे ऊर्ध्वलोकके अवशिष्ट क्षेत्रको ब्रह्मलोकके पाससे छिन्न कर देनेपर समान मापवाले चार भाग हो जाते हैं। इन्हें क्रमशः विपर्यासक्रमसे स्थापित करनेपर सात राजु लम्बे, साढ़े तीन राजु चौड़े और दो राजु मोटे, ऐसे दो आयत-चतुरस्र क्षेत्र हो जाते हैं। यदि इन दोनों भागोंको भी चौड़ाईकी ओरसे मिला दिया जाय, तो सात राजु प्रमाण लम्बा-चौड़ा एक समचतुरस्र क्षेत्र बन जाता है, जिसकी कि मोटाई सर्वत्र दो राजु होगी। इसके भी एक एक घनराजुप्रमाण खंड करनेपर (७ × ७ × २ = ९८) अठ्यानवे खंड होते हैं। इस प्रकारसे उत्पन्न हुए इन समस्त खंडोंको जोड़ देनेपर (९८ + १४७ + ९८ = ३४३) तीनसौ तेतालीस खंड हो जाते हैं, जो कि प्रत्येक एक एक घनराजुप्रमाण हैं। अतएव इस प्रकारसे भी लोकका प्रमाण ३४३ घनराजु निकल आता है।

एत्थ पज्जवट्ठियपरूवणा वुच्चदे । सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय-मारणंतिय-उववादगदमिच्छाइट्ठीहि अदीदेण वट्टमाणेण च सव्वलोगो फोसिदो । विहारवदि-[illegible]सगदेहि वट्टमाणे काले तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो फोसिदो । अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणमेत्तं खेत्तं फोसिदं । एत्थ ओवट्टणाए खेत्तभंगो । अदीदेण अट्ठ चोद्दसभागा देसूणा । तं जधा— लोगणालिं चोद्दस खंडे करिय मेरुमूलादो हेट्ठिम-दो-खंडाणि उवरिम-छ-खंडाणि च एगट्ठे कदे अट्ठ चोद्दसभागा होंति । ते च हेट्ठिमजोयणसहस्सेणूणा होंति ।

सासणसम्मादिट्ठीहिं केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो[1] ॥ ३ ॥

एदं सुत्तं मंदबुद्धिसिस्ससंभालणट्ठं खेत्ताणिओगद्दारे उत्तमेव पुणरवि उत्तं, अदीदाणागदवट्टमाणकालविसिट्ठखेत्तेसु चोद्दसगुणट्ठाणाणिबद्धेसु पुच्छिदेसु तस्सिस्ससंदेहविणासट्ठं वा दु-कालविसिट्ठखेत्तपरूवणं कीरदे । सत्थाणसत्थाण-

अब यहांपर पर्यायार्थिक नयसम्बन्धी प्ररूपणा कहते हैं— स्वस्थानस्वस्थान, वेदना-समुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद पदगत मिथ्यादृष्टि जीवोंने अतीतकाल और वर्तमानकालकी अपेक्षा सर्व लोक स्पर्श किया है । विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकसमुद्घातगत मिथ्यादृष्टि जीवोंने वर्तमानकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग और तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग स्पर्श किया है; तथा अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । यहांपर अपवर्तना क्षेत्रप्ररूपणाके समान जानना चाहिए । विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकसमुद्घातगत मिथ्यादृष्टि जीवोंने अतीतकालकी अपेक्षा देशोन (कुछ कम) आठ बटे चौदह ($\frac{८}{१४}$) राजु क्षेत्र स्पर्श किया है, वह इस प्रकारसे है— लोकनालीके चौदह खंड करके मेरुपर्वतके मूल भागसे नीचेके दो खंडोंको और ऊपरके छह खंडोंको एकत्रित करनेपर आठ बटे चौदह ($\frac{८}{१४}$) भाग हो जाते हैं । ये आठ बटे चौदह राजु तीसरी पृथिवीके नीचेके एक हजार योजनोंसे हीन प्रमाण होते हैं, इसीलिए इन्हें 'देशोन' कहा है ।

सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ३ ॥

क्षेत्रानुयोगद्वारमें कहा गया ही यह सूत्र मंदबुद्धि शिष्योंके संभालनेके लिए फिर भी कहा गया है । अथवा, चौदह गुणस्थानसे युक्त भूतकाल, भविष्यकाल और वर्तमानकाल विशिष्ट क्षेत्रोंके पूछने पर उस शिष्यके संदेह-विनाशनार्थ भूतकाल और वर्तमानकाल इन दो कालोंसे विशिष्ट क्षेत्रकी प्ररूपणा की जा रही है । स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान वेदनासमुद्घात,

१ सासादनसम्यग्दृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः अष्टौ द्वादश वा चतुर्दशभागा देशोनाः । स. सि. १, ८.

विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्विय-मारणंतिय-उववादगदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो फोसिदो । माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणं खेत्तं फोसिदं । एत्थ कारणं पुव्वं व वत्तव्वं ।

अट्ठ बारह चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ ४ ॥

सासणसम्मादिट्ठीहि त्ति पुव्वसुत्तादो अणुवट्टदे । अदीदकालखेत्तपदुप्पायणट्ठमिदं सुत्तमागदं । तं कथं णव्वदे ? अट्ठ बारह चोद्दसभागण्णहाणुववत्तीदो । जेणेदं देसामासियसुत्तं, तेणेदस्स पज्जवट्ठियपरूवणा पज्जवट्ठियजणाणुग्गहट्ठं कीरदे । तं जहा– सत्थाणसत्थाणगदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो फोसिदो । अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणं । अदीदसत्थाणखेत्तस्साणयणविधाणं वुच्चदे । तं जधा– तत्थ ताव तिरिक्खसासणसत्थाणखेत्तं भणिस्सामो । तसजीवा लोगणालीए अब्भंतरे चेव होंति, णो बहिद्धा[1] । तं कुदो णव्वदे ?

कषायसमुद्घात, वैक्रियिकसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद, इन पदोंको प्राप्त सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है । तथा मानुषक्षेत्रसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । यहांपर कारण पूर्वके समान ही कहना चाहिए ।

सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने अतीतकालकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग तथा कुछ कम बारह बटे चौदह भाग प्रमाण क्षेत्र स्पर्श किया है ॥ ४ ॥

इस सूत्रमें ' सासादनसम्यग्दृष्टियोंने ' इस पदकी पूर्व सूत्रसे अनुवृत्ति होती है । यह सूत्र अतीतकालसम्बन्धी क्षेत्रके प्रतिपादन करनेके लिए आया है ।

शंका– यह सूत्र अतीतकालसंबन्धी क्षेत्रकी प्ररूपणाके लिए आया है, यह कैसे जाना ?

समाधान– आठ बटे चौदह और बारह बटे चौदह भागोंकी प्ररूपणा अन्यथा बन नहीं सकती है, अतः इस अन्यथानुपपत्तिसे जाना जाता है कि यहांपर अतीतकालसम्बन्धी क्षेत्रका प्रतिपादन करना अभीष्ट है ।

चूंकि यह सूत्र देशामर्शक है, इसलिए इसकी पर्यायार्थिकनयसम्बन्धी प्ररूपणा पर्यायार्थिकनयवाले शिष्योंके अनुग्रहके लिए की जाती है । वह इस प्रकार है– स्वस्थानस्वस्थान पदको प्राप्त सासादनसम्यग्दृष्टियोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग और तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग स्पर्श किया है; तथा अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । अब अतीतकालसम्बन्धी स्वस्थानस्वस्थानक्षेत्रके निकालनेका विधान कहते हैं । वह इस प्रकार है– उसमेंसे पहले तिर्यंच सासादनसम्यग्दृष्टियोंके स्वस्थानस्वस्थानक्षेत्रको कहते हैं । त्रसजीव लोकनालीके भीतर ही होते हैं, बाहर नहीं ।

१ प्रतिषु ' बहिब्बा ' इति पाठः ।

'अट्ठ चोद्दसभागा देसूणा' त्ति वयणादो। तदो रज्जुपदरब्भंतरे सव्वत्थ सासणा संभवंति। तसजीवविरहिदेसु असंखेज्जेसु समुद्देसु णवरि सासणा णत्थि[1]। वेरियवेंतरदेवेहि घित्ताणमत्थि संभवो, णवरि ते सत्थाणत्था[2] ण होंति, विहारेण परिणदत्तादो। तं खेत्तं तिरियलोगपमाणेण कीरमाणे एगं जगपदरं पुरदो भण्णमाणपमाणेहि संखेज्जरूवेहि खंडिय लद्धं रज्जूपदरम्हि अवणिय संखेज्जंगुलेहि गुणिदे तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागं होदूण संखेज्जंगुलबाहल्लं जगपदरं होदि।

संपहि जोइसियसासणसम्माइट्ठिसत्थाणखेत्तं भणिस्सामो। तं जहा— जंबूदीवे दो चंदा, दो सूरा। लवणसमुद्दे चत्तारि चंदा, चत्तारि सूरा। धादइखंडे पुध पुध बारह चंदाइच्चा। कालोदयसमुद्दे बादाल चंदाइच्चा। पोक्खरदीवड्ढे बाहत्तरि चंदाइच्चा[3]। माणुसोत्तरसेलादो बाहिरपंतीए चोद्दालसदमेत्ता। तदो चत्तारि

शंका— यह कैसे जाना?

समाधान— 'सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने अतीतकालमें देशोन आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्र स्पर्श किया है' इस सूत्र-वचनसे जाना जाता है कि त्रसजीव लोकनालीके भीतर ही रहते हैं, बाहर नहीं।

इसलिए राजुप्रतरके भीतर सर्वत्र सासादनसम्यग्दृष्टि जीव संभव हैं। विशेषता केवल यह है कि त्रसजीवोंसे विरहित (मानुषोत्तर और स्वयंप्रभ पर्वतके मध्यवर्ती) असंख्यात समुद्रोंमें सासादनसम्यग्दृष्टि जीव नहीं होते हैं। यद्यपि वैरभाव रखनेवाले व्यन्तर देवोंके द्वारा हरण करके ले जाये गये जीवोंकी वहां संभावना है, किन्तु वे वहांपर स्वस्थानस्वस्थानस्थ नहीं कहलाते हैं, क्योंकि, उस समय वे विहारवत्स्वसे परिणत हो रहे हैं। इस क्षेत्रको तिर्यग्लोकके प्रमाणसे करनेपर, एक जगत्प्रतरको आगे कहे जानेवाले संख्यातरूप प्रमाणसे खंडित करके जो लब्ध आवे, उसे राजुप्रतरमेंसे निकाल कर पुनः संख्यात अंगुलोंसे गुणा करनेपर तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग होकर संख्यात अंगुल बाहल्यवाला जगत्प्रतर होता है।

अब सासादनसम्यग्दृष्टि ज्योतिषी देवोंके स्वस्थानस्वस्थानक्षेत्रको कहते हैं। वह इस प्रकार है— जम्बूद्वीपमें दो चन्द्र और दो सूर्य हैं। लवणसमुद्रमें चार चन्द्र और चार सूर्य हैं। धातकीखंडमें पृथक् पृथक् बारह चन्द्र और बारह सूर्य हैं। कालोदकसमुद्रमें ब्यालीस चन्द्र और ब्यालीस सूर्य हैं। पुष्करद्वीपार्धमें बहत्तर चन्द्र और बहत्तर सूर्य हैं। मानुषोत्तरशैलसे

१ लवणोदे कालोदे जीवा अंतिमसयंभुरमणम्मि। कम्ममहीसंबद्धे अत्थपरा होंति ण हु सेसे॥ ति. प. ५, ३१. अत्थपरजीवा लवणे कालेयंतिमसयंभुरमणे य। कम्ममहीपडिबद्धे ण हि सेसे अत्थरा जीवा॥ त्रि.सा.३२०

२ प्रतिषु 'सव्वाणट्ठा', म प्रतौ 'सव्वाणत्था' इति पाठः।

३ चत्तारो लवणजले धादइदीवम्मि बारस मियंका। बादाल कालसलिले बाहत्तरि पुक्खरद्धम्मि। ति. प. पत्र २२१-२२२. दो दोण्णं बारस बादाल बहत्तरिदुइणसंखा। पुक्खरदलो त्ति परदो अवट्ठिया सव्वजोइसिणा॥ त्रि. सा. ३४६.

रूवपक्खेवं कादूण णेदव्वं जाव बाहिरमट्ठ पंतीओ गदाओ त्ति । तदो समुद्दब्भंतर-पढमपंतीए वेसद-अट्ठासीदिमेत्ता । तदो चदुरूवभहियं कादूण णेदव्वं जाव एत्थतणबाहिरपंति त्ति[1] । एवं णेदव्वं जाव सयंभूरमणसमुद्दो त्ति । वुत्तं च–

चंदाइच्च-गहेहि चेवं णक्खत्त-तारारूवेहि ।
दुगुण-दुगुणेहि णीरंतरेहि दुवग्गो तिरियलोगो[2] ॥ २ ॥

एदाणि सव्वविमाणाणि मेलाविदे संखेज्जपदरंगुलेहि जगपदरम्हि भागे हिदे एगभागमेत्ताणि विमाणाणि होंति[3] । पुणो ताणि–

बाहिरी पंक्ति (वलय) में एकसौ चवालीस चन्द्र और इतने ही सूर्य हैं । इससे आगे चार संख्याको प्रक्षेप करके, अर्थात् चार चार बढ़ाते हुए बाहरी आठवीं पंक्ति आने तक ले जाना चाहिए ।

विशेषार्थ– पुष्करार्धद्वीपसे ५० हजार योजन आगे जाकर ज्योतिर्मंडलकी प्रथम पंक्ति या वलय है, वहांपर चन्द्र और सूर्यकी संख्या १४४, १४४ है । उससे आगे एक एक लाख योजन आगे आगे जाकर सात वलय और हैं, जिनपर कि चन्द्र और सूर्योंकी संख्या ४, ४ बढ़ती जाती है, अर्थात् वहांपर क्रमशः १४८, १५२, १५६, १६०, १६४, १६८, १७२ चन्द्र वा इतने ही सूर्योंकी संख्या हो जाती है । इस प्रकारके वलय स्वयम्भूरमणसमुद्र तक अवस्थित हैं ।

इससे आगेके समुद्रकी भीतरी पंक्तिमें दो सौ अठासी चन्द्र वा इतने ही सूर्य हैं । इससे आगे प्रत्येक वलयपर चार चार चन्द्र और सूर्यकी संख्या यहांकी बाहरी पंक्ति आने तक बढ़ाते हुए ले जाना चाहिए । इस प्रकारसे स्वयम्भूरमणसमुद्र तक चन्द्र और सूर्यकी संख्या बढ़ाते हुए ले जाना चाहिए । कहा भी है–

चन्द्र, आदित्य (सूर्य), ग्रह, नक्षत्र और ताराओंकी दूनी दूनी संख्याओंसे निरन्तर तिर्यग्लोक द्विवर्गात्मक है ॥ २ ॥

ये सर्व (चन्द्र या सूर्य) विमान एकट्ठे मिलानेपर संख्यात प्रतरांगुलोंसे जगत्प्रतरमें भाग देनेपर एक भागप्रमाण विमान होते हैं । पुनः इन्हें–

---

१ मणुसुत्तरसेलादो पण्णासजुदलक्खजोयणाणि गंतूण पढमवलयं होदि । तत्तो परं पत्तेक्कमेक्कलक्ख-जोयणाणि गंतूण विदियादिवलयाओ होंति जाव सयंभूरमणसमुद्दो त्ति । णवरि सयंभूरमणसमुद्दस्स वेदीए पण्णाससहस्सजोयणाणिमारुहिय तस्सि पदेसे चरिमवलयं होदि । ति. प. पत्र २२४. मणुसुत्तरसेलादो वेदियमूलादु दीवउवहीणं । पण्णाससहस्सेहि य लक्खे लक्खे तदो वलयं ॥ दोवड्ढपढमवलये चउदालसयं तु वलयवलयेसु । चउ चउ वड्ढी आदी आदीदो दुगुणदुगुणकमा ॥ ति. सा ३४५-३५० २ द्रव्यप्र. पृ ३६.

३ अट्ठ चउ दु ति ति सत्ता सत्त य ठाणेसु णवसु सुण्णाणि । छत्तीस सत्त दु णव अट्ठा तिवउक्का होंति अंककमा ॥ एदेहि गुणिदसंखेज्जरूवपदरंगुलेहि भजिदेण । सेढिकदीए लद्धं माणं चंदाण जोइसिंदाणं ॥ ति. प. ७, ११, १२.

(अट्ठासीदि च गहा अट्ठावीसं तु होंति नक्खत्ता ।
एगससीपरिवारो इत्तो तारा वोच्छामि[1] ॥)
छावट्ठि च सहस्सं णवयसदं पंचसत्तरि य होंति ।
एयससीपरिवारो तारणं कोडिकोडीओ[2] ॥ ३ ॥

एदाहि ताराहि सूदाइच्च-गह-णक्खत्तेहि य पंचट्ठाणट्ठिदं परिवाडीए गुणिय मेलाविदे जोदिसियसव्वविमाणाणि होंति[3] । तिरियलोगावट्ठिदसयलचंदाणं सपरिवाराणमाणयणविहाणं वत्तइस्सामो[4] । त जहा–जंबूदीवादिपंचदीवसमुद्दे मोत्तूण तदियसमुद्दादिं कादूण जाव सयंभूरमणसमुद्दो त्ति एदासिमाणयणकिरिया ताव

(एक चन्द्रके परिवारमें (एक सूर्यके अतिरिक्त) अठासी ग्रह और अट्ठाईस नक्षत्र होते हैं, तथा तारोंका परिमाण आगे कहते हैं ॥)

एक चन्द्रके परिवारमें छ्यासठ हजार नौ सौ पचहत्तर कोड़ाकोड़ी ६६९७५०००००००००००००० तारे होते हैं ॥ ३ ॥

इन ताराओंसे, तथा चन्द्र, सूर्य, ग्रह और नक्षत्रोंसे पांच स्थानपर अवस्थित विमानसंख्याको परिपाटी-क्रमसे गुणितकर मिला देनेपर ज्योतिषी देवोंके सर्व विमान हो जाते हैं ।

विशेषार्थ– अभी पूर्वमें जो चन्द्र बिम्बोंकी संख्या निकाल आए हैं, उसे पांच स्थानोंपर स्थापित करना चाहिए । पुनः चूंकि एक चन्द्रके परिवारमें एक सूर्य, अठासी ग्रह, अट्ठाईस नक्षत्र और अभी पहले बताये गए प्रमाणवाले तारे होते हैं, इसलिए इनसे क्रमशः पांच स्थानोंपर अवस्थित चन्द्र-संख्याको गुणित करनेपर उनका प्रमाण इस प्रकार आ जाता है–

चन्द्रसंख्या,	सूर्यसंख्या,	ग्रहसंख्या,	नक्षत्रसंख्या,	तारासंख्या
च× १;	च × १;	च × ८८;	च × २८;	च × ६६९७५००००००००००००

अब तिर्यग्लोकमें अवस्थित सपरिवार सकल चन्द्रोंके प्रमाणको निकालनेका विधान कहते हैं । वह इस प्रकार है जम्बूद्वीपादि तीन द्वीप और लवणसमुद्रादि दो समुद्र, इन पांच द्वीप समुद्रोंको छोड़कर तृतीय समुद्रको आदि करके स्वयम्भूरमणसमुद्र आने तक

१ एकस्यामपि ताडपत्रीयप्रतौ गाथेयं नोपलभ्यते, किन्तूत्तरगाथया सहास्या अविनाभावित्वादत्रोद्धृता । इयं गाथोत्तरगाथया सह सूर्यप्रज्ञप्तावुपलभ्यते । (अभि. रा. कोष, चन्द्रशब्दे)

२ अडसीदट्ठावीसा गहरिक्खा तार कोडकोडीणं । छयट्ठि सहस्साणि य णवसयपण्णत्तरिगि चंदे ॥ त्रि. सा. ३६२.

३ आणिय गुणसंकलिदं किंचूणं पंचठाणसंठविदं । चंदादिगुणं मिलिदे जोइसबिंबाणि सव्वाणि ॥ त्रि. सा. ३६१.

४ इत आरभ्याग्रेतनः संदर्भः अग्रतन-रूपोनमादिसंगुणेत्यादि आर्यासूत्रखंडाद्प्राक् तिलोयपण्णत्ति ज्योतिर्लोकाधिकारगतेनानेन प्रकरणेन प्रायः शब्दशः समानः ।

उच्चदे– तदियसमुद्दम्मि गच्छो बत्तीस, चउत्थदीवे गच्छो चउसट्ठी, उवरिमसमुद्दे गच्छो अट्ठावीसुत्तरसयं । एवं दुगुणगुणकमेण गच्छा गच्छंति जाव सयंभूरमणसमुद्दे त्ति । संपहि एदेहिं गच्छेहिं पुध पुध गुणिज्जमाणरासिपरूवणा कीरदे । तदियसमुद्दे वेसदमट्ठासीदी, उवरिमदीवे सत्तो दुगुणं । एवं दुगुण-दुगुणकमेण गुणिज्जमाणरासीओ गच्छंति जाव सयंभूरमणसमुद्दं पत्ताओ त्ति । संपहि अट्ठासीदि-वेसदेहि सव्वगुणिज्जमाणरासीओ ओवट्टिय लद्धेण सग-सगगच्छे गुणिय अट्ठासीदि-वेसदमेव सव्वगच्छाणं गुणिज्जमाणं कायव्वं । एवं कदे सव्वगच्छा अण्णोण्णं पेक्खदूण चदुगुणकमेण अवट्ठिदा जादा । संपहि चत्तारिमादिं कादूण चदुरुत्तरकमेण गदसंकलणाए आणयणे कीरमाणे पुव्विल्लगच्छेहिंतो संपहियगच्छा रूऊणा होंति, दुगुणजादट्ठाणे चत्तारि-

---

इनके विमानोंकी संख्या निकालनेकी प्रक्रिया पहले कहते हैं– तृतीय समुद्रमें गच्छका प्रमाण बत्तीस, चतुर्थ द्वीपमें गच्छका प्रमाण चौंसठ, इससे आगेके समुद्रमें गच्छका प्रमाण एकसौ अट्ठाईस होता है । इस प्रकार उत्तरोत्तर दूने दूने क्रमसे गच्छ स्वयम्भूरमणसमुद्र तक बढ़ते हुए चले जाते हैं । अब इन गच्छोंसे पृथक् पृथक् गुण्यमान (गुणा की जानेवाली) राशियोंकी प्ररूपणा करते हैं । तृतीय समुद्रमें गुण्यमानराशि दो सौ अठासी है, उससे उपरिम द्वीपमें गुण्यमानराशि इससे दूनी (२८८ × २ = ५७६) है । इस प्रकार दूने दूने क्रमसे गुण्यमान राशियां स्वयम्भूरमणसमुद्र प्राप्त होने तक दूनी होती हुई चली जाती हैं ।

उदाहरण– २८८, ५७६, ११५२, २३०४, ४६०८, ९२१६, १८४३२ इत्यादि ।

(गुण्यमानराशियां)

अब दो सौ अठासीसे सभी गुण्यमान राशियोंको अपवर्तित कर लब्धराशिसे अपने अपने गच्छोंको गुणित करके दो सौ अठासीको ही सर्व गच्छोंकी गुण्यमानराशि करनी चाहिए । ऐसा करनेपर सर्व गच्छ परस्परकी अपेक्षासे चतुर्गुण-क्रमसे अवस्थित हो जाते हैं ।

उदाहरण– (१) $\frac{२९८}{२२८} = १$; १ × ३२ = ३२; (२) $\frac{५७६}{२२८} = २$; २ × ६४ = १२८;

इत्यादि । यहांपर प्रथम गच्छ ३२ से द्वितीय गच्छ १२८ चौगुणा हो गया है । इसी प्रकार आगे भी जानना चाहिए ।

अब चारको आदि करके चार चारके उत्तरक्रमसे जो संकलन धन प्राप्त होता है उसके निकालनेपर पहलेके गच्छोंसे इस समयके गच्छ एक कम होते हैं, क्योंकि, दुगुणे हुए स्थानपर पहलेके समुद्र या द्वीपके प्रथम वलयके प्रमाणसे अगले द्वीपका समुद्रके प्रथम वलयका प्रमाण दूना हो जाता है, उसमें चार रूपकी वृद्धिका अभाव है । इन गच्छोंसे गुणा किये जानेवाले मध्यमधन, चौंसठको आदि करके दुगुण दुगुणक्रमसे स्वयम्भूरमणसमुद्र तक बढ़ते हुए चले जाते हैं ।

रूवपक्खेवाए अभावादो। एदेहि गच्छेहि गुणिज्जमाणमज्झिमधणाणि चउसट्ठिमादिं काऊण दुगुण-दुगुणकमेण गच्छंति जाव सयंभूरमणसमुद्दं ति। पुणो गच्छसमीकरणट्ठं सव्वगच्छेसु एगेगरूवपक्खेवणो[1] कायव्वो। एवं कादूण चउसट्ठिरूवेहि मज्झिमधणाणि ओवट्टिय लद्धेण सग-सगगच्छे गुणिय सव्वगच्छाणं चउसट्ठिरूवाणि गुणिज्जमाणत्तणेण ठवेदव्वाणि। एवं कदे वड्ढिदरासिस्स[2] पमाणं वुच्चदे– एगरूवमादिं कादूण गच्छं

विशेषार्थ– गच्छकी मध्यसंख्यापर जो वृद्धिका प्रमाण आता है, उसे मध्यमधन कहते हैं। यह धन उत्तरोत्तर दुगुणरूपसे बढ़नेवाले गच्छोंमें दुगुणा होता जाता है। तृतीय समुद्रका गच्छ ३२ है। प्रथम स्थानपर तो चारकी वृद्धि होती नहीं है, अतएव उसे छोड़कर जो शेष ३१ स्थान बचते हैं, उनमें सोलहवां स्थान मध्यम रहता है और उसकी वृद्धिका प्रमाण ६४ होता है। जैसे–

१,	२,	३,	४,	५,	६,	७,	८,	९,	१०,	११,	१२,	१३,	१४,	१५.		
४,	८,	१२,	१६,	२०,	२४,	२८,	३२,	३६,	४०,	४४,	४८,	५२,	५६,	६०,		१६
१२४,	१२०,	११६,	११२,	१०८,	१०४,	१००,	९६,	९२,	८८,	८४,	८०,	७६,	७२,	६८,		६४
३१,	३०,	२९,	२८,	२७,	२६,	२५,	२४,	२३,	२२,	२१,	२०,	१९,	१८,	१७,		

इस क्रमसे गच्छके मध्यवर्ती सोलहवें स्थानपर वृद्धिका प्रमाण ६४ आता है। इसलिए तृतीय समुद्रसम्बन्धी मध्यमधन ६४ है। इसी प्रकार आगेके द्वीपका गच्छ ६४ होनेसे उसका मध्यमधन १२८ होगा, जो अपने पूर्ववर्ती मध्यमधन ६४ के प्रमाणसे दुगुणा होता है। इस प्रकार आगे आगेके द्वीप और समुद्रोंका मध्यमधन दुगुण-प्रमाणसे बढ़ता जाता है।

पुनः गच्छोंके समीकरणके लिए सभी गच्छोंमें एक एक रूपकी हानि (कमी) करनी चाहिए। ऐसा करके चौंसठ रूपोंसे मध्यम धनोंको अपवर्तित कर लब्धराशिसे अपने अपने गच्छोंको गुणा करके चौंसठ संख्याको सर्व गच्छोंकी गुण्यमान राशिरूपसे स्थापित करनी चाहिए। ऐसा करने पर बढ़ी हुई राशिका प्रमाण कहते हैं– एक रूपको आदि करके, एक एक गच्छपर दुगुण दुगुण-क्रमसे स्वयम्भूरमणसमुद्र तक गच्छराशि बढ़ती हुई चली जाती है।

उदाहरण–मध्यमधन ६४,

(१) $\frac{६४}{६४} \times ३१ \times ६४ = १९८४$ उत्तरधन, अर्थात् कुल वृद्धिका प्रमाण। इस उत्तर-धनको २८८ × ३२ = ९२१६ में मिला देनेसे तृतीय समुद्रसम्बन्धी समस्त चन्द्रोंका प्रमाण हो जाता है– (९२१६ + १९८४ = ११२०० सर्वधन)

१ प्रतिषु 'पक्खेण' इति पाठः।

२ त्रिलोकप्रज्ञप्तौ अत्र अग्रतोऽपि च 'वड्ढिद' स्थाने 'रिण' इति पाठः।

पडि दुगुण-दुगुणकमेण सयंभूरमणसमुद्दो त्ति गच्छरासी वड्ढिदो होदि । संपहि एवं ट्ठिदसंकलणाणमाणयणं वुच्चदे–छरूवाहियजंबूदीवछेदणएहि[1] परिहीणरज्जुच्छेदणाओ गच्छं कादूण जदि संकलणा आणिज्जदि तो जोदिसियजोदरासी ण उप्पज्जदि, जगपदरस्स वेछप्पण्णंगुलसदवग्ग भागहाराणुववत्तीदो । तेण रज्जुच्छेदणासु अण्णेसिं पि तप्पाओग्गाणं संखेज्जरूवाणं हाणिं काऊण गच्छो ठवेदव्वो । एवं कदे तदियसमुद्दो आदी ण होदि त्ति णासंकणिज्जं, सो चेव आदी होदि, सयंभूरमणसमुद्दस्स परभाग-समुप्पण्णरज्जुच्छेदणयसलागाणमवणयण करणादो[2] ।

सयंभूरमणसमुद्दस्स परदो रज्जुच्छेदणया अत्थि त्ति कुदो णव्वदे ? वेछप्पण्णं-

---

(२) $\frac{१६}{२५६}$ × ६३ × ६४ = ८०६४ उत्तरधन । उस उत्तरधनको ५७६ × ६४ = ३६८६४ में मिला देनेसे चतुर्थ द्वीपसम्बन्धी समस्त चन्द्रोंका प्रमाण हो जाता है–

(३६८६४ + ८०६४ = ४४९२८ सर्वधन)

(३) $\frac{१६}{२५६}$ × १२७ × ६४ = ३२५१२ उत्तरधन । इस उत्तरधनको ११५२ × १२८ = १४७४५६ में मिला देनेसे चतुर्थ समुद्रसम्बन्धी समस्त चन्द्रोंका प्रमाण हो जाता है–

(१४७४५६ + ३२५१२ = १७९९६८ सर्वधन)

इसी क्रमसे आगेके प्रत्येक द्वीप और समुद्रका स्वयंभूरमणसमुद्र तक उत्तरधन एवं सर्वधन निकालते जाना चाहिए ।

अब इस प्रकारसे अवस्थित संकलनोंके निकालनेके प्रकारको कहते हैं–छह रूप अधिक जम्बूद्वीपके अर्धच्छेदोंसे परिहीन राजुके अर्धच्छेदोंको गच्छराशि बना करके यदि संकलनराशि निकाली जाती है, तो ज्योतिष्क जोवराशि नहीं उत्पन्न होती है, क्योंकि, ऐसा करनेपर जगत्प्रतरका दो सौ छप्पन सूच्यंगुलोंके वर्गप्रमाण भागहार नहीं उत्पन्न होता है । इसलिए राजुके अर्धच्छेदोंमें तत्प्रायोग्य अन्य भी संख्यात रूपोंकी हानि (कमी) करके गच्छ स्थापित करना चाहिए । ऐसा करनेपर तृतीय समुद्र आदि नहीं होता है, ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए, किन्तु वही, अर्थात् तृतीय समुद्रही आदि होता है, क्योंकि, स्वयम्भूरमणसमुद्रके परभागमें उत्पन्न होनेवाले राजुके अर्धच्छेदसम्बन्धी शलाकाओंका अपनयन किया गया है ।

शंका– स्वयम्भूरमणसमुद्रके परभागमें राजुके अर्धच्छेद होते हैं, यह कैसे जाना ?

समाधान– ज्योतिष्कदेवोंका प्रमाण निकालनेके लिए दो सौ छप्पन सूच्यंगुलके

---

१ लवणे दु पडिदेक्कं अंबूए देज्जमादिमा पंच । दीउदही मेरुसला पयदुवजोगी ण छच्चेदे ॥ तियहीण सेढिछेदणमेत्तो रज्जुच्छिदी हवे गच्छो । जंबूदीवच्छिदिणा छरूवजुत्तेण परिहीणा ॥ त्रि. सा. ३५८–३५९.

२ म. प्रतौ ' सलागाणमरणवयणकरणादो ' अन्यप्रतिषु ' सलागाणमरणाकरणादो ' इति पाठः ।

गुलसदवग्गसुत्तादो'। 'जत्तियाणि दीव-सागररूवाणि जंबूदीवछेदणाणि च रूवाहियाणि तत्तियाणि रज्जुछेदणाणि' त्ति परियम्मेण एवं वक्खाणं किण्ण विरुज्झदे ? एदेण सह विरुज्झदि, किंतु सुत्तेण सह ण विरुज्झदि। तेणेदस्स वक्खाणस्स गहणं कायव्वं, ण परियम्मस्स, तस्स सुत्तविरुद्धत्तादो। ण सुत्तविरुद्धं वक्खाणं होदि,

वर्गप्रमाण जगत्प्रतरका भागहार बतानेवाले सूत्रसे जाना जाता है कि स्वयम्भूरमणसमुद्रके परभागमें भी राजुके अर्धच्छेद होते हैं।

आचार्य श्री पुष्पदंतसागर जी महाराज

शंका– 'जितनी द्वीप और सागरोंकी संख्या है, तथा जितने जम्बूद्वीपके अर्धच्छेद होते हैं, एक अधिक उतने ही राजुके अर्धच्छेद होते हैं' इस प्रकारके परिकर्म-सूत्रके साथ यह उपर्युक्त व्याख्यान क्यों नहीं विरोधको प्राप्त होगा ?

समाधान– भले ही परिकर्म-सूत्रके साथ उक्त व्याख्यान विरोधको प्राप्त होवे, किन्तु प्रस्तुत सूत्रके साथ तो विरोधको प्राप्त नहीं होता है। इसलिए इस ग्रन्थके व्याख्यानको ग्रहण करना चाहिए, परिकर्मके व्याख्यानको नहीं, क्योंकि, वह व्याख्यान सूत्रसे विरुद्ध है। और व्याख्यान सूत्र-विरुद्ध होता नहीं, अन्यथा अतिप्रसंग दोष प्राप्त होता है।

छहसे अधिक संख्यात अंकोंके कम करनेमें धवलाकारने हेतु यह दिया है कि स्वयम्भूरमणसमुद्रसे परे जो पृथिवी है, वहां भी राजुके अर्धच्छेद पड़ते हैं, किन्तु वहां ज्योतिषी देव नहीं हैं। इसलिए वहांके संख्यात अर्धच्छेद भी उक्त गणनामें कम करना आवश्यक है। इस विधानसे परिकर्मके 'असियाणि दीवसागररूवाणि' आदि कथनमें जो विरोध पड़ता है, उसके विषयमें धवलाकारने यहां स्पष्ट कहा है कि उक्त कथन सूत्र-विरुद्ध होनेसे ग्राह्य नहीं है। किन्तु द्रव्यप्रमाणानुगममें उस विरोधका भी एक प्रकारसे परिहार किया है। (देखो सू. भाग सूत्र ४, पृ. ३२–३६)

शंका– वहां, अर्थात् स्वयम्भूरमणसमुद्रके परभागमें ज्योतिष्क देव नहीं है, यह कैसे जाना ?

समाधान– इसी ज्योतिषियोंका प्रमाण लानेके लिए कहे गये इसी भागहार प्ररूपक सूत्रसे जाना जाता है।

यह तत्प्रायोग्य संख्यात रूपाधिक जम्बूद्वीपके अर्धच्छेदोंसे सहित द्वीप-सागरोंके रूपप्रमाण राजुसम्बन्धी अर्धच्छेदोंके प्रमाणकी परीक्षा-विधि पूर्वाचार्योंकी उपदेश परम्पराका अनुसरण करनेवाली नहीं है, किन्तु केवल त्रिलोकप्रज्ञप्तिसूत्रका अनुसरण करनेवाली है, जो कि ज्योतिष्क देवोंके भागहारको उत्पन्न करनेवाले सूत्रसे अवलम्बित युक्तिके बलसे प्रकृत

१ छेदेण पयरस्स य छप्पण्णंगुलसयवग्गपडिभागेण। जी. द. सू. ५५, मज्झिमम्मि सेडिवग्गे छेदय-छप्पण्णंगुलकदीए। जं लद्धं सो रासी जोदिसियसुराण संखाणं॥ ति. प. ७, १०.

अइप्पसंगादो। तत्थ जोइसिया णत्थि त्ति कुदो णव्वदे ? एदम्हादो चेव सुत्तादो। एसा तप्पाओग्गसंखेज्जरूवाहियजंबूदीवछेदणयसहिददोवसायरुवमेत्तरज्जुच्छेदपमाणपरिक्खाविही ण पुव्वाइरिओवदेसपरंपराणुसारिणी, केवलं तु तिलोयपण्णत्तिसुत्ताणुसारी जोदिसियदेवभागहारपदुप्पाइयसुत्तावलंबिजुत्तिबलेण पयदगच्छसाहणट्ठमम्हेहि परूविदा, प्रतिनियतसूत्रावष्टम्भबलविजृंभितगुणप्रतिपन्नप्रतिबद्धासंख्येयावलिकाव्यवहारकालोपदेशवत् आयतचतुरस्रलोकसंस्थानोपदेशवद्वा। तदो ण एत्थ इदमित्थमेवेत्ति एयंतपरिग्गहेण असग्गाहो कायव्वो, परमगुरुपरंपरागओवएसस्स

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

गच्छके साधनार्थ, प्रतिनियत सूत्रके अवष्टम्भ-बलसे विजृम्भित अर्थात् तत्प्रतिपादक सूत्रके आश्रयसे गुणस्थान-प्रतिपन्न सासादनसम्यग्दृष्टि आदि जीवोंसे प्रतिबद्ध असंख्यात आवलियोंके व्यवहारकालके उपदेशके समान, तथा आयत-चतुष्कोण पुरुषाकार लोक-संस्थानके उपदेशके समान हमने निरूपण किया है।

विशेषार्थ— यहां धवलाकारने दृष्टान्तपूर्वक दार्ष्टान्तको सिद्ध करनेके लिए जिन विशेषताओंका उल्लेख किया है, उनके कहनेका अभिप्राय क्रमशः निम्न-प्रकार है।

(१) पहला दृष्टान्त प्रतिनियत सूत्राश्रयसे सासादनादि गुणस्थानवर्ती जीवोंके असंख्यात आवलिकात्मक अन्तर्मुहूर्तप्रमाण भागहारके उपदेशका दिया है, जिसका अभिप्राय समझनेके लिए द्रव्यप्रमाणानुगम तृतीय भाग पृ. ६९ के मूल पाठ और विशेषार्थको देखिए। यहांपर उल्लेख करनेका प्रयोजन यह है कि 'संख्यात आवलियोंका एक अन्तर्मुहूर्त होता है' इस प्रचलित एवं सर्वमान्य मान्यताको भी 'एदेहि पलिदोवममवहिरदि अंतोमुहुत्तेण कालेण' (द्रव्यप्र. सू. ६) इस सूत्रके आधारसे 'अन्तर्मुहूर्त' इस पदमें पड़े हुए मुहूर्तसे अधिक कालका ही लेना चाहिए।

(२) दूसरा दृष्टान्त आयत-चतुरस्र लोकसंस्थानके उपदेशका दिया है, जिसका अभिप्राय समझनेके लिए क्षेत्रानुगम (इसी चतुर्थ भाग) के पृष्ठ ११ से २२ तकका अंश देखिए। यहांपर उल्लेख करनेका प्रयोजन यह है कि धवलाकारके सामने विद्यमान करणानुयोगसम्बन्धी साहित्यमें आयत-चतुरस्र लोकके आकारका विधान या प्रतिषेध कुछ भी नहीं मिल रहा था, तो भी उन्होंने प्रतरसमुद्घातगत केवलीके क्षेत्रके साधनार्थ कही गई दो गाथाओंके (देखो क्षेत्रप्र. पृष्ठ २०, २१) आधारपर यह सिद्ध किया है कि लोकका आकार आयत-चतुष्कोण है, न कि अन्य आचार्योंसे प्ररूपित १६४$\frac{३२}{४९}$ घनराजुप्रमाण मृदंगके समान। यदि ऐसा न माना जायगा, तो उक्त दोनों गाथाओंको अप्रमाणता और लोकमें ३४३ घनराजुओंका अभाव प्राप्त होगा। इसलिए लोकका आकार आयत-चतुरस्र ही मानना चाहिए।

(३) धवलाकारने जिस प्रकार उक्त दोनों बातोंको तात्कालिक करणानुयोगसम्बन्धी शास्त्रोंमें उल्लेख अथवा, आचार्योंकी उपदेश-परम्पराके नहीं मिलनेपर भी उक्त प्रकारकी सूत्रावलम्बित युक्तियोंके बलसे उन्हें सिद्ध किया है, उसी प्रकारसे यहांपर भी करणानुयोगके

मूलिबलेण विहडावेदुमसक्किय[1]त्तादो, अदिंदिएसु पदत्थेसु छदुमत्थविय[1]प्पाणमवि-संवादणियमाभावादो । तम्हा चिरंतणाइरियववखाणापरिच्चाएण एसा वि दिसा हेदुवादाणुसारिउप्पण्णसिस्साणुरोहेण अउप्पण्णजणउप्पायणट्ठं च वरिसेवव्वा । तदो ण एत्थ संपदायविरोहासंका कायव्वा त्ति ।

ग्रन्थोंमें या आचार्य-उपदेशपरम्परामें उपलब्ध नहीं होनेपर भी प्रतिनियत सूत्राश्रित तर्कके बलसे वे यह सिद्ध कर रहे हैं कि स्वयम्भूरमणसमुद्रके परभागमें भी असंख्यात द्वीप-समुद्रोंके व्यास-सदृश योजनोंसे संख्यात हजारगुने योजन आगे जाकर तिर्यग्लोककी समाप्ति होती है, अर्थात् स्वयम्भूरमणसमुद्रकी बाह्यवेदिकाके परे भी पृथिवीका अस्तित्व है; वहां भी राजुके अर्धच्छेद उपलब्ध होते हैं, किन्तु वहांपर ज्योतिषी देवोंके विमान नहीं हैं ।

इसलिए यहांपर 'यह ऐसा ही है' इस प्रकार एकान्त हठ पकड़ करके असद् आग्रह नहीं करना चाहिए, क्योंकि, परम गुरुओंकी परम्परासे आये हुए उपदेशको युक्तिके बलसे यथार्थ सिद्ध करना अशक्य है, तथा अतीन्द्रिय पदार्थोंमें छद्मस्थ जीवोंके द्वारा उठाये गए विकल्पोंके अविसंवादी होनेका नियम नहीं है। अतएव पुरातन आचार्योंके व्याख्यानका परित्याग न करके यह भी दिशा हेतुवाद (तर्कवाद) के अनुसरण करनेवाले व्युत्पन्न शिष्योंके अनुरोधसे तथा अव्युत्पन्न शिष्य जनोंके व्युत्पादनके लिए दिखलाना चाहिए। इसलिए यहांपर सम्प्रदायके विरोधकी आशंका नहीं करनी चाहिए ।

ऊपर बताये गए इस विधानसे प्ररूपित गच्छको विरलन करके प्रत्येक एकेक ऊपर चार चारको देयरूपसे देकर परस्पर गुणा करके 'उनमेंसे एक कम करे, पुनः आदिधनसे संगुणित करे, पुनः एक कम गुणाकारका भाग दे, तब इच्छित राशि उत्पन्न होती है' इस गाथासूत्ररूप सूत्रकी संकलनराशियोंको निकालकर दोनों संकलनराशियोंका धन (जोड़) करके इस राशिमेंसे तीसरी संकलनराशिको घटा देनेपर चन्द्रबिम्बकी शलाकाएँ उत्पन्न हो जाती हैं ।

उदाहरण– गच्छ ३२; आदिधन ११२०० (तृतीय समुद्रका सर्वसंकलन), सर्व द्वीपसमुद्रोंकी संख्या असंख्यात = ३ (काल्पनिक) ।

प्रथम संकलन– $\frac{४}{१} \times \frac{४}{१} \times \frac{४}{१} = ६४$; $६४ - १ = ६३$; $\frac{६३ \times ११२००}{४-१} = २३५२००$ ।

द्वितीय संकलन– $\frac{४}{१} \times \frac{४}{१} \times \frac{४}{१} = ६४$; $६४ - १ = ६३$; $\frac{६३ \times ६४}{४-१} = १३४४$ ।

तृतीय संकलन– $\frac{२}{१} \times \frac{२}{१} \times \frac{२}{१} = ८$; $८ - १ = ७$; $\frac{७ \times ६४}{२-१} = ४४८$ ।

१ प्रतिषु 'विहदाविदु', म प्रतौ 'विहंवि' इति पाठः ।

एदेण विहाणेण परूविदगच्छं विरलिय रूवं पडि चत्तारि रूवाणि दादूण अण्णोण्णब्भत्थं करिय 'रूपोनमादिसंगुणसेढीगुणोत्तरविरलनाहतो' इदेण गाहाखंडेण संकलणाओ आणिय दोण्हं संकलणाणं घणं कादूण तदियसंकलणे अवणिदे चंदबिंबसलागाओ उप्पज्जंति[1]। ताओ अट्ठारससयसमहियताराहि गुणिदे जोदिसियाणं सयलबिंबसलागाओ होंति। ताओ संखेज्जघणंगुलेहि गुणिदाओ सत्थाणखेत्तं होदि। सत्थाणखेत्तं संखेज्जरूवेहि गुणिय संखेज्जघणंगुलेहि ओवट्टिदे जोइसियरासी होदि। एदाणि जोदिसियदेवुस्सेधगुणिदविमाणब्भंतरपदरंगुलेहि गुणिदे जोइसियसत्थाणखेत्तं तिरियलोगस्स संखेज्जविभागमेत्तं होदि। णवरि देवुस्सेधगुणिदविमाणब्भंतरपदरंगुलाणि उस्सेहंगुलाणि पमाणंगुलाणि कायव्वाणि। उस्सेहंगुलाणि त्ति कधं णव्वदे ?

प्रथम संकलन द्वितीय संकलन तृतीय संकलन समस्त चन्द्र-शलाकाएं।

२३५२०० + १३४४ − ४४८ = २३६०९६

इस प्रमाणमें पहले बताई हुई प्रथम पांच-द्वीप समुद्रोंसंबन्धी चंद्रोंकी संख्या सम्मिलित नहीं है।

ठीक यही संख्या प्रथम पांच द्वीप-समुद्रोंको छोडकर आगेके तीन समुद्र वा द्वीपोंके पृथक् पृथक् निकाले हुए चंद्रोंकी संख्याके योगसे आती है–

१ २ ३

११२०० + ४४९२८ + १७९९६८ = २३६०९६ (देखो पृ. १५४–१५५.)

उक्त प्रकारसे उत्पन्न हुई चन्द्रबिम्बकी शलाकाओंको एक सौ अठारहसे अधिक ताराओंके प्रमाणसे गुणा कर देनेपर ज्योतिष्क देवोंके सकल बिम्बोंकी शलाकाएं उत्पन्न हो जाती हैं।

विशेषार्थ– अभी पहले जो एक चन्द्रका परिवार बताया गया है, उसमेंसे एक चन्द्र, एक सूर्य, अठ्यासी ग्रह और अट्ठाईस नक्षत्र, इनको जोड़ देनेपर (१+१+८८+२८=११८) एक सौ अठारह होते हैं। इसमें ताराओंका प्रमाण जोड़कर उत्पन्न हुई राशिका चन्द्रबिम्बकी शलाकाओंसे गुणा कर देनेपर सर्व समस्त ज्योतिषी देवोंके विमानोंकी शलाकाएं निकल आती है।

उन्हें संख्यात घनांगुलोंसे गुणित करनेपर सर्व ज्योतिषी देवोंके विमानोंका स्वस्थान-क्षेत्र हो जाता है। स्वस्थानक्षेत्रको संख्यातरूपोंसे गुणा करके संख्यात घनांगुलोंसे अपवर्तित करनेपर ज्योतिष्क देवोंकी राशि हो जाती है। इस राशिको ज्योतिष्क देवोंके शरीरोत्सेधसे गुणित विमानोंके भीतरी प्रतरांगुलोंसे गुणा करनेपर ज्योतिष्क देवोंका स्वस्थानक्षेत्र हो जाता

१ पदमेत्ते गुणयारे अण्णोण्णं गुणिय रूवपरिहीणे। रूऊणगुणेणहिए मुहेण गुणियम्मि गुणगणियं ॥ त्रि. सा. २३१.

२ ति. प. पत्र २२६.

अण्णहा जंबूदीवब्भंतरे त्ति कट्टु जंबूदीवतारागणमोगासाभावादो। अथवा एदाणि पमाणंगुलाणि चेव। कधं पुण सम्भवंति ? ण, जंबूदीव-लवणसमुद्देहि वे[1] वि अस्सिदूण अवट्ठाणादो।

वेंतरदेवसासणसम्माइट्ठिसत्थाणखेत्तं पि तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागमेत्तं होदि। तं कधं ? वेंतरदेवरासिं दुविय एक्केक्कम्हि वेंतरावासे संखेज्जा चेव वेंतरदेवा होंति त्ति संखेज्जरूवेहि भागे हिदे वेंतरावासा होंति। ण एस कमो भवणवासिय-सोधम्मादीणं, तत्थ संखेज्जेसु भवणविमाणेसु असंखेज्जजोयणायामेसु असंखेज्जा देवा देवीओ होंति। कुदो ? तेसिमसंखेज्जत्तण्णहाणुववत्तीदो। पुणो वेंतरावासे अप्पणो विमाणब्भंतरसंखेज्जघणंगुलेहि गुणिदे वेंतरदेवसासणसम्माइट्ठि-सत्थाणखेत्तं होदि। एदाणि तिण्णि वि खेत्ताणि एगट्ठ मेलिदे तिरियलोगस्स

है, जो कि तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमात्र होता है। विशेष बात यह है कि देवोंके शरीरके उत्सेधसे गुणित विमानोंके भीतरी प्रतरांगुल, उत्सेधांगुल हैं, ऐसा समझ करके उनके प्रमाणांगुल करना चाहिए।

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

शंका— वे प्रतरांगुल उत्सेधांगुल हैं, यह कैसे जाना ?

समाधान— यदि उन प्रतरांगुलोंको उत्सेधांगुल न माना जायगा, तो जम्बूद्वीपके भीतर जम्बूद्वीपस्थ तारागणोंके रहनेको अवकाश न मिल सकेगा।

अथवा, ये प्रतरांगुल प्रमाणांगुल ही हैं।

शंका— तो फिर ये जम्बूद्वीपमें कैसे समाते हैं ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, जम्बूद्वीप और लवणसमुद्रकी अपेक्षा इन दोनोंको ही आश्रय करके वे ज्योतिष्क विमान अवस्थित हैं। अर्थात्, जम्बूद्वीप और लवणसमुद्र, इन दोनों क्षेत्रोंमें जम्बूद्वीपसम्बन्धी ज्योतिष्क-विमान रहते हैं।

विशेषार्थ— जम्बूद्वीपसम्बन्धी दोनों चन्द्रोंके परिवारमें तारोंकी संख्या एक लाख तेतीस हजार नौ सौ पचास कोड़ाकोड़ी है। एक तारेका जघन्य विष्कंभ $\frac{1}{4}$ कोशका और उत्कृष्ट १ कोशका कहा गया है, तथा उत्सेध विष्कंभसे आधा तथा आकार उत्तान गोलार्ध सदृश है। (त्रिलोकसार गाथा ३३७, ३३८) तदनुसार मध्यम विष्कंभ $\frac{3}{4}$ कोश लेकर एक तारेका स्थूल घनफल $= \frac{2}{3} \times \frac{3}{1} \times \frac{2}{12} \times \frac{2}{9} = \frac{2}{27}$; तथा जम्बूद्वीपके समस्त तारोंका घनफल स्थूल रूपसे $१३३९५ \times १०^{१५} \times \frac{2}{27} = ९९२२$ कोड़ाकोड़ी घनकोश हुआ।

---

१ प्रतिषु 'समुद्देहि वि' इति पाठः।

संखेज्जविभागो होदि । विहारवदिसत्थाण-वेदण कसाय-वेउव्वियसमुग्घादगदेहि अट्ठ चोद्दसभागा देसूणा फोसिदा । केत्तियमेत्तेणूणा ? तिरियपुढवीए हेट्ठिल्लजोयण-

ताराएण पृथिवीसे ७९० योजन ऊपरसे लगाकर ९०० योजन तक अर्थात् ११० योजन बाहल्य आकाशमें रहते हैं (देखो त्रिलोकसार गाथा ३३२-३३४) । अतः एक लाख योजन व्यासवाले जम्बूद्वीपके ऊपर ११० योजन क्षेत्रका घनफल निकालनेसे—

$१२ \times १०^{५} \times १०^{५} \times ४४० = ५२८ \times १०^{१२}$ घनकोश हुए । इस प्रकार तारोंके घनफलमें १८ अंक हैं, किन्तु जम्बूद्वीपसम्बन्धी उक्त क्षेत्रमें केवल १४ अंक आते हैं । इस प्रकार वे सब तारे उक्त क्षेत्रमें नहीं समा सकते । किन्तु यदि तारोंमें उत्सेधांगुलोंका प्रमाण स्वीकार किया जाय और उक्त क्षेत्रमें प्रमाणांगुलोंका, तो उक्त क्षेत्रके प्रमाणको $५००^{३}$ से गुणा कर देने पर वह क्षेत्र $५२८ \times १२५ \times १०^{१७} = ६६ \times १०^{२०}$ अर्थात् २२ अंक प्रमाण हो जाता है, जिससे उक्त तारोंको उस क्षेत्रके भीतर सावकाश रहनेके लिए स्थान मिल जाता है । इसलिये धवलाकारने कहा है कि विमानोंके प्रमाणमें उत्सेधांगुल ही ग्रहण करना चाहिए और यही बात त्रिलोकप्रज्ञप्ति आदि ग्रंथोंसे भी सिद्ध है ।

धवलाकारने जो दूसरे प्रकारसे उक्त वैषम्यका समाधान किया है कि विमानोंके प्रमाणमें प्रमाणांगुल ग्रहण करके भी जम्बूद्वीप और लवणसमुद्र, दोनोंके आश्रयसे उन विमानोंके अवस्थानके योग्य क्षेत्र बन जाता है, सो यह बात गणितमें ठीक नहीं उतरती, क्योंकि, जम्बूद्वीप और लवणसमुद्र दोनोंके ऊपरका ११० योजन बाहल्य क्षेत्र केवल—

$६ \times १०^{५} \times ५ \times १०^{५} \times ४४० = १३२ \times १०^{१२}$ घनकोश आता है । यह क्षेत्र केवल १६ अंक प्रमाण होनेसे केवल जम्बूद्वीपके तारोंके लिए भी पर्याप्त अवकाश नहीं प्रदान कर सकता । तिसपर लवणसमुद्रसम्बन्धी चार चन्द्रोंके परिवारके तारोंको भी वहां अवकाश प्राप्त होना है । इस प्रकार तारोंके विमानोंको प्रमाणांगुलोंके मापमें लेकर धवलाकारने उनको किस प्रकार अवकाश प्राप्त कराया है, यह समझमें नहीं आता ।

सासादनसम्यग्दृष्टि व्यन्तर देवोंका स्वस्थानक्षेत्र भी तिर्यग्लोकका संख्यातवां भागमात्र होता है ।

शंका— वह कैसे ?

समाधान— व्यन्तर देवोंकी राशिको स्थापित करके एक एक व्यन्तरावासमें संख्यात ही व्यन्तर देव होते हैं । इसलिए संख्यात रूपोंसे व्यन्तर देवोंकी राशिमें भाग देनेपर व्यन्तर देवोंके आवासोंकी संख्या हो जाती है । किन्तु यह क्रम भवनवासी और सौधर्मादि कल्पवासी देवोंके नहीं है, क्योंकि, उनमें असंख्यात योजन आयामवाले संख्यात भवनों और विमानोंमें असंख्यात देव और देवियां रहती हैं । कारण, यदि ऐसा न माना जाय, तो उनकी राशिके असंख्यातपना नहीं बन सकता है । पुनः व्यन्तरोंके आवासक्षेत्रको अपने विमानोंके भीतरी संख्यात घनांगुलोंसे गुणित करनेपर सासादनसम्यग्दृष्टि व्यन्तर देवोंका स्वस्थानक्षेत्र हो जाता

सहस्सेण । मारणंतियसमुग्घादगदेहि बारह चोद्दसभागा देसूणा फोसिदा । तं जहा– मेरुमूलादो उवरि जाव सोधम्मीसाणकप्पपुढवि त्ति सत्त रज्जू, हेट्ठा जाव छट्ठी पुढवि त्ति पंच रज्जू । एदाओ मेलिदे सासणमारणंतियखेत्तायामो होदि । णवरि हेट्ठिमजोयण-सहस्सेण ऊणो त्ति वत्तव्वो । जदि सासणा एइंदिएसु उपज्जंति, तो तत्थ वे गुणट्ठाणाणि होंति । ण च एवं संताणिओगद्दारे तत्थ एक्कमिच्छाइट्ठिगुणप्प-रूवणायणादो[1] दव्वाणिओगद्दारे वि तत्थ एगगुणट्ठाणदव्वस्स पमाणपरूवणादो च[2] । को एवं भणदि जधा सासणा एइंदिएसुप्पज्जंति त्ति । किंतु ते तत्थ मारणंतियं मेल्लंति त्ति अम्हाणं णिच्छओ । ण पुण ते तत्थ उप्पज्जंति छिण्णाऊअकाले तत्थ सासणगुणाणुवलंभादो । जत्थ सासणाणमुववादो णत्थि, तत्थ वि जदि सासणा

है । इन तीनों ही क्षेत्रोंको अर्थात् सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यंचोंके स्वस्थानक्षेत्रको, सासादन-सम्यग्दृष्टि ज्योतिष्क देवोंके स्वस्थानक्षेत्रको और सासादनसम्यग्दृष्टि व्यन्तर देवोंके स्वस्थान-क्षेत्रको इकट्ठे मिलानेपर तिर्यग्लोकका असंख्यातवां भाग होता है । विहारवत्स्वस्थान, वेदना-समुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घातगत सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने लोकनालीके चौदह भागोंमेंसे देशोन आठ भागप्रमाण क्षेत्रको स्पर्श किया है ।

शंका– यहां देशोनसे तात्पर्य कितने प्रमाण क्षेत्रसे न्यून है ?

समाधान– तीसरी पृथिवीके नीचेके एक हजार योजनप्रमाण क्षेत्रसे न्यून क्षेत्र देशोनसे अभीष्ट है ।

मारणान्तिकसमुद्घातगत सासादनसम्यग्दृष्टियोंने लोकनालीके चौदह राजुओंमेंसे देशोन बारह भागप्रमाण क्षेत्रको स्पर्श किया है । वह इस प्रकारसे जानना चाहिए– सुमेरुपर्वतके मूलभागसे लेकर ऊपर ईषत्प्राग्भारपृथिवी तक सात राजु होते हैं और नीचे छठी पृथिवी तक पांच राजु होते हैं । इन दोनोंको मिला देनेपर सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके मारणान्तिकक्षेत्रकी लम्बाई हो जाती है । विशेष बात यह है कि छठी पृथिवीके नीचेके एक हजार योजनसे न्यून क्षेत्र यहांपर भी कहना चाहिए ।

शंका– यदि सासादनसम्यग्दृष्टि जीव एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होते हैं तो उनमें (यहांपर) दो गुणस्थान प्राप्त होते हैं । किन्तु ऐसा नहीं है, क्योंकि, सत्प्ररूपणा अनुयोगद्वारमें, एकेन्द्रियोंमें एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान ही बताया गया है, तथा द्रव्यानुयोगद्वारमें भी उनमें एक ही गुणस्थानके द्रव्यका प्रमाण-प्ररूपण किया गया है ।

समाधान– कौन ऐसा कहता है कि सासादनसम्यग्दृष्टि जीव एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होते हैं ? किन्तु वे उस गुणस्थानमें मारणान्तिकसमुद्घातको करते हैं, ऐसा हमारा निश्चय है ।

१ एइंदिया बीइंदिया तीइंदिया चउरिंदिया असण्णिपंचिंदिया एक्कम्मि चेव मिच्छाइट्ठिट्ठाणे । जी. सं. सू. ३६.

२ जी. द. सू. ७४–७६.

मारणंतियं मेल्लंति, तो सत्तमपुढविणेरइया वि सासणगुणेण सह पंचिंदियतिरिक्खेसु मारणंतियं मेल्लंतु[1], सासणत्तं पडि विसेसाभावादो ? ण एस दोसो, भिण्णजादित्तादो। एदे सत्तमपुढविणेरइया पंचिंदियतिरिक्खेसु गब्भोवक्कंतिएसु चेव उप्पज्जणसहावा, ते पुण देवा पंचिंदिएसु एइंदिएसु य उप्पज्जणसहावा, तदो ण समाणजादीया। जं जाए जादीए पडिवण्णं, तं ताए चेव जादीए होदि त्ति पडिवज्जेदव्वं, अण्णहा अणवत्थापसंगादो। तम्हा सत्तमपुढविणेरइया सासणगुणेण सह देवा इव मारणंतियं ण करेंति त्ति सिद्धं। देवसासणा एइंदिएसु मारणंतियं करेमाणा सव्वलोगेइंदिएसु किण्ण मारणंतियं करेंति ? ण, तेसिं सासणगुणपाहुम्मेण लोगणालीए बाहिरमुप्पज्जण-

---

न कि वे उस गुणस्थानमें, अर्थात्, सासादनसम्यग्दृष्टियोंमें उत्पन्न होते हैं। क्योंकि, छिन्न हुई आयुके कालमें उनमें सासादनगुणस्थान नहीं पाया जाता है।

शंका— जहां पर सासादनसम्यग्दृष्टियोंका उत्पाद नहीं है, वहां पर भी यदि सासादनसम्यग्दृष्टि जीव मारणान्तिकसमुद्घातको करते हैं, तो सातवीं पृथिवीके नारकियोंको सासादनगुणस्थानके साथ पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंमें मारणान्तिकसमुद्घात करना चाहिए, क्योंकि, सासादनगुणस्थानत्वकी अपेक्षा दोनोंमें कोई विशेषता नहीं है, अर्थात् समानता है ?

समाधान— यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, देव और नारकी इन दोनोंकी भिन्न जाति है। ये सातवीं पृथिवीके नारकी गर्भजन्मवाले पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंमें ही उपजनेके स्वभाववाले हैं, और वे देव पंचेन्द्रियोंमें तथा एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होनेरूप स्वभाववाले हैं, इसलिए दोनों समान जातीय नहीं हैं। जो जिस जातिमें प्रतिपन्न है, अर्थात् स्वीकृत है, वह उसी ही जातिका माना जाता है, ऐसा स्वीकार करना चाहिए, अन्यथा अनवस्थादोषका प्रसंग आ जायगा। इसलिए सातवीं पृथिवीके नारकी सासादनगुणस्थानके साथ देवोंके समान मारणान्तिकसमुद्घात नहीं करते हैं, यह बात सिद्ध हुई।

शंका— सासादनसम्यग्दृष्टि देव, जबकि एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिकसमुद्घात करते हुए पाए जाते हैं, तो फिर सर्वलोकवर्ती एकेन्द्रियोंमें क्यों नहीं मारणान्तिकसमुद्घात करते हैं ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, उनके सासादनगुणस्थानकी प्रधानतासे लोकनालीके बाहर उत्पन्न होनेके स्वभावका अभाव है। और लोकनालीके भीतर मारणान्तिकसमुद्घातको करते हुए भी भवनवासी लोकके मूलभागसे ऊपर ही देव या तिर्यंच सासादनसम्यग्दृष्टि जीव मारणान्तिकसमुद्घातको करते हैं, उससे नीचे नहीं, क्योंकि, ऐसा वे सासादनगुणस्थानकी प्रधानता से ही करते हैं।

शंका— राजुप्रतरप्रमाण पृथिवी ऊपर नहीं है। देव भी सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवोंमें नहीं उत्पन्न होते हैं और वायुकायिक जीवोंको छोड़कर शेष बादर एकेन्द्रिय जीव पृथिवीके बिना अन्यत्र रहते नहीं हैं। इसलिए सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके मारणान्तिकक्षेत्रका बारह बटे चौदह ($\frac{१२}{१४}$) भागका उपदेश घटित नहीं होता है ?

---

१ प्रतिषु ' मेल्लंति ' इति पाठः।

सहावाभावादो। लोगणालीए अब्भंतरे मारणंतियं करेंता वि भवणवासियजगमूलादो-उवरि चेव देव-तिरिक्खसासणसम्मादिट्ठिणो मारणंतियं करेंति, णो हेट्ठा। कुदो? सासणगुणपाहुम्मादो चेव। रज्जुपदरमेत्तपुढवी उवरि णत्थि। देवा वि सुहुमेइंदिएसु ण उप्पज्जंति। ण च बादरेइंदिया वाउक्काइयवदिरित्ता पुढवीए विणा अण्णत्थ अच्छंति। तदो सासणमारणंतियखेत्तस्स बारह चोद्दसभागोवदेसो ण घडदि त्ति? ण एस दोसो, ईसिपब्भारपुढवीदो उवरि सासणाणमाउक्काइएसु मारणंतियसंभवादो, अट्ठमपुढवीए च एगरज्जुपदरब्भंतरं सव्वमावूरिय ट्ठिदाए तेसिं मारणंतियकरणं पडि विरोहाभावादो च। वाउक्काइएसु सासणा मारणंतियं किण्ण करेंति? ण, सयल-सासणाणं देवाणं व तेउ-वाउक्काइएसु मारणंतियाभावादो, पुढविपरिणाम-विमाण-तल-सिला-थंभ-थूलतल-उब्भसालहंजिया[1]-कुड्ड-तोरणादीणं तदुप्पत्तिजोगाणं दंसणादो च।

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

समाधान— यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, ईषत्प्राग्भार पृथिवीसे ऊपर सासादन-सम्यग्दृष्टियोंका अप्कायिक जीवोंमें मारणान्तिकसमुद्घात संभव है, तथा एक राजुप्रतरके भीतर सर्वक्षेत्रको व्याप्त करके स्थित आठवीं पृथिवीमें उन जीवोंके मारणान्तिकसमुद्घात करनेके प्रति कोई विरोध भी नहीं है।

शंका— सासादनसम्यग्दृष्टि जीव, वायुकायिक जीवोंमें मारणान्तिकसमुद्घातको क्यों नहीं करते हैं?

समाधान— नहीं, क्योंकि सकल सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका देवोंके समान तेजस्कायिक और वायुकायिक जीवोंमें मारणान्तिकसमुद्घातका अभाव माना गया है और पृथिवीके परिणामस्वरूप विमान, शय्या, शिला, स्तम्भ, स्थूल, तलभाग, तथा खड़ी हुई शालभंजिका (पुतली) भित्ति और तोरणादिक उनकी उत्पत्तिके योग्य देखे जाते हैं।

उपपादगत सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने लोकके कुछ कम ग्यारह बटे चौदह भाग ($\frac{११}{१४}$) स्पर्श किए हैं। वह इसप्रकार है— मेरुतलसे नीचे छठी पृथिवी तक पांच राजु होते हैं, ऊपर आरण-अच्युतकल्प तक छह राजु होते हैं तथा इसका आयाम और विस्तार एक राजु है इस प्रकार कुछ कम ग्यारह राजु उपपादक्षेत्रका प्रमाण है।

कितने ही आचार्य ऐसा कहते हैं कि देव नियमसे मूलशरीरमें प्रवेश करके ही मरते हैं। उनके अभिप्रायसे सासादनगुणस्थानवर्ती उपपादसम्बन्धी स्पर्शनक्षेत्र कुछ कम दस बटे चौदह भाग ($\frac{१०}{१४}$) प्रमाण होता है। किन्तु यह व्याख्यान यहींपर विग्रहगतिको प्राप्त कार्मणशरीरवाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके उपपाद-स्पर्शनके ग्यारह बटे चौदह ($\frac{११}{१४}$) भागके प्ररूपक सूत्रके साथ विरोधको प्राप्त होता है, इसलिए उसे नहीं ग्रहण करना चाहिए और जो ऐसा कहते हैं कि सासादनसम्यग्दृष्टि देव, एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होते हैं, उनके अभिप्रायसे कुछ कम बारह बटे चौदह ($\frac{१२}{१४}$) भाग उपपादका स्पर्शन होता है। किन्तु यह भी व्याख्यान सत्प्ररूपणा और द्रव्यानुयोगद्वारके सूत्रोंके विरुद्ध पड़ता है, इसलिए उसे नहीं ग्रहण करना चाहिए।

१ प्रतिषु 'थूलतलंभ' इति पाठः।

उववादगदेहि देसूणेक्कारह चोद्दसभागा फोसिदा। तं जहा– हेट्ठा जाव छट्ठी पुढवि त्ति पंच रज्जू, उवरि जाव आरण-अच्चुदकप्पो त्ति छ रज्जू, आयामो विक्खारो च एगरज्जू, एदं उववादखेत्तपमाणं। के वि आइरिया 'देवा णियमेण मूलसरीरं पविसिय मरंति' त्ति भणंति, तेसिमभिप्पाएण बस-चोद्दसभागा देसूणा। एदं वक्खाणमेत्थेव कम्मइयसरीरसासणउववादफोसणस्स एक्कारह-चोद्दसभागपरूवय-सुत्तेण विरुद्धं ति ण घेत्तव्वं। जे पुण देवसासणा एइंदिएसुप्पज्जंति त्ति भणंति, तेसिमभिप्पाएण बारह चोद्दसभागा देसूणा उववादफोसणं होदि[1], एदंपि वक्खाणं संत-दव्वसुत्तविरुद्धं[2] ति ण घेत्तव्वं।

सम्मामिच्छाइट्ठि-असंजदसम्माइट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोग्गस्स असंखेज्जदिभागो[3] ॥ ५ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो वुच्चदे। सम्मामिच्छाइट्ठीहि सत्थाणसत्थाण-विहारवदि-सत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादगदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदि-भागो फोसिदो। माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणो। कारणं खेत्तभंगो। असंजद-सम्माइट्ठीणं सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्विय-मारणंतिय-उववादगदाणं खेत्तम्हि वुत्तत्थो संभरिय[4] वत्तव्वो।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयत सम्यग्दृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ५ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं— स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घातगत सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मनुष्यक्षेत्रसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। इसका कारण क्षेत्रप्ररूपणाके समान ही जानना चाहिए। स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, वैक्रियिकसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपदको प्राप्त असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रप्ररूपणामें कहे गये अर्थको स्मरण करके कहना चाहिए।

१ अथवा येषां मते सासादन एकेन्द्रियेषु नोत्पद्यते तन्मतापेक्षया द्वादश भागा न वक्तव्याः।
२ जी. सं. सू. ३६। जी. द. सू. ७४–७६.
३ सम्यग्मिथ्यादृष्टयसंयतसम्यग्दृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः अष्टौ वा चतुर्दशभागा देशोनाः। स. सि. १, ८.
४ प्रतिषु 'संभविय' इति पाठः।

अट्ठ चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ ६ ॥

पुव्वसुत्तादो सम्मामिच्छाइट्ठि-असंजदसम्माइट्ठीहि केवडिय खेत्तं फोसिदमिदि अणुवट्टदे। अदीदकालेणेत्ति वयणस्स अज्झाहारो कायव्वो। कुदो ? एदेसिं दोण्हं गुणट्ठाणाणं वट्टमाणकालविसिट्ठखेत्तस्स पुव्वं परूविदत्तादो। सम्मामिच्छाइट्ठीहि सत्थाणेण तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो। एत्थ सत्थाणखेत्तमेलावणविहाणं पुव्वं व कायव्वं। विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्विय[illegible]समुग्घादगदेहि अट्ठ चोद्दसभागा देसूणा फोसिदा। एत्थ देसूण विधाणं पुव्वं व वत्तव्वं।

असंजदसम्माइट्ठीहि सत्थाणेण तिण्हं लोगाणम-संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो। तिरियलोगस्स संखेज्जदि-भागखेत्तुप्पायणे [illegible]रूवणभंगो। विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्विय-मारणंतिय-समुग्घादगदेहि अट्ठ चोद्दसभागा देसूणा फोसिदा, उवरि छ रज्जू, हेट्ठा दो रज्जु त्ति। उववादगदेहि छ चोद्दस[illegible] देसूणा फोसिदा। हेट्ठा [illegible]असंजदसम्माइट्ठीणं उववादखेत्ताणुवलंभादो।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने अतीतकालकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ ६ ॥

यहांपर पूर्वसूत्रसे 'सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है' इतने पदकी अनुवृत्ति होती है। तथा 'अतीतकालसे' इस वचन का भी अध्याहार करना चाहिए; क्योंकि, दोनों गुणस्थानोंके वर्तमानकालविशिष्ट क्षेत्रका पहले प्ररूपण किया जा चुका है। सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंने स्वस्थानकी अपेक्षा सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा तथा तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग स्पर्श किया है। यहांपर स्वस्थानक्षेत्रके मिलानेका विधान पूर्ववत् ही करना चाहिए। विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घातगत सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह ($\frac{८}{१४}$) भाग स्पर्श किया है। यहांपर देशोनका विधान पूर्वके समान ही कहना चाहिए।

असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने स्वस्थानकी अपेक्षा सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र और तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग स्पर्श किया है। तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागरूप क्षेत्रके उत्पन्न करनेमें सासादनगुणस्थानके स्पर्शनके समान ही वर्णन जानना चाहिए। विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, वैक्रियिकसमुद्घात और मारणान्तिकसमुद्घातगत उन्हीं असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह ($\frac{६}{१४}$) भाग स्पर्श किये हैं; क्योंकि, नीचे अर्थात् प्रथम नरकके ऊपरी भागको छोड़कर नीचे असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका उपपादक्षेत्र नहीं पाया जाता है।

संजदासंजदेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदि-भागो[1] ॥ ७ ॥

सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्विय-मारणंतियपदाणं पज्जवट्ठियपरूवणा खेत्ततुल्ला ।

छ चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ ८ ॥

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज पुव्वं वट्टमाणकालविसिट्ठखेत्तं परूविदमिदि कट्टु इदं सुत्तमदीदकालसंबंधीदि अवगम्मदे । अणागदकालसंबंधी ण होदि, तेण ववहाराभावादो । अधवा अदीदाणागदकालविसिट्ठखेत्ताणं परूवयाणि पच्छिमसव्वसुत्ताणि त्ति णिच्छओ कायव्वो, उभयत्थ विसेसाभावादो । सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादगदेहि संजदासंजदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जविभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । एत्थ सत्थाणसत्थाण-खेत्ताणयणविधाणं वुच्चदे—

संयतासंयत जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ७ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, वैक्रियिकसमुद्घात और मारणान्तिकसमुद्घात पदगत संयतासंयतोंकी पर्यायार्थिकनयसम्बन्धी स्पर्शनप्ररूपणा उन्हींकी क्षेत्रप्ररूपणाके तुल्य है ।

संयतासंयत जीवोंने अतीतकालकी अपेक्षा कुछ कम बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ ८ ॥

पूर्वमें वर्तमानकालविशिष्ट क्षेत्रका प्ररूपण किया जा चुका है, इसलिए यह सूत्र अतीतकालसम्बन्धी है, यह बात जानी जाती है । किन्तु यह अनागत (भविष्य) काल सम्बन्धी नहीं है, क्योंकि, उसके साथ व्यवहारका अभाव है । अथवा, पीछेके सभी सूत्र अतीत और अनागतकाल विशिष्ट क्षेत्रोंकी प्ररूपणा करनेवाले हैं, ऐसा निश्चय करना चाहिए, क्योंकि, भूतकाल और भविष्यकालमें स्पर्शनकी अपेक्षा कोई विशेषता नहीं है । स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घातगत संयतासंयतोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । अब यहांपर संयतासंयत जीवोंके स्वस्थान-स्वस्थानक्षेत्रके निकालनेका विधान कहते हैं—

१ संयतासंयतैर्लोकस्यासंख्येयभागः षट् चतुर्दशभागा वा देशोनाः । स. सि. १, ८.

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

सयंभूरमणसमुद्दविक्खंभो दोहि वि पासेहि सादिरेगमेगरज्जुअद्धपमाणं होदि। सयंपहपव्वदपरभागखेत्तं पि दोहि वि पासेहि एगरज्जु-अट्ठमभागमेत्तविक्खंभो होदि। तं दो वि मेलिदे पंचट्ठभागा होंति। एदे रज्जुविक्खंभम्हि अवणिदे तिण्णि अट्ठभागा होंति। एदम्हि खेत्ते सुज्जमंडलागारेण संट्ठिदे भोगभूमिपडिभागे णत्थि संजदासंजदा। बाहिरिल्लएसु पंचसु अट्ठभागेसु अड्ढाइज्जदीवेसु दोसु समुद्देसु च अत्थि, कम्मभूमित्तादो। 'व्यासार्धकृतिघ्निकं समस्तफलमिति' एदेण सुत्तेण मज्झिल्लखेत्त-फलमाणिदे सोलस-सत्तावीसभागब्भहियचदुसट्ठि-चदुसदरूवेहि जगपदरे भागे हिदे एगभागो आगच्छदि। तं रज्जुपदरम्हि अवणिय संखेज्जंगुलेहि गुणिदे संजदासंजद-सत्थाणखेत्तं तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागमेत्तं होदि। सेसपदाणं खेत्तमाणिज्जमाणे

स्वयम्भूरमणसमुद्रका विष्कम्भ दोनों ही पार्श्व भागोंकी अपेक्षा एक राजुका साधिक अर्धप्रमाण है। स्वयंप्रभपर्वतका परभागवर्ती क्षेत्र भी दोनों ही पार्श्व भागोंकी अपेक्षा एक राजुके अष्टमभागमात्र विष्कम्भवाला है। ये दोनों ही विष्कम्भ मिला देनेपर एक राजुके आठ भागोंमेंसे पांच भाग प्रमाण ($\frac{5}{8}$) क्षेत्र हो जाता है। ये पांच बटे आठ ($\frac{5}{8}$) भाग राजुके विष्कम्भमेंसे निकाल देनेपर तीन बटे आठ ($\frac{3}{8}$) भाग अवशिष्ट रहते हैं। इस तीन बटे आठ ($\frac{3}{8}$) भागवाले सूर्यमंडलके आकारसे संस्थित और भोगभूमिसे प्रतिबद्ध क्षेत्रमें संयतासंयत जीव नहीं होते हैं। किन्तु बाहरी पांच बटे आठ ($\frac{5}{8}$) भागोंमें जम्बूद्वीप धातकीखंड और पुष्करार्ध इन अढ़ाई द्वीपोंमें और लवणोदधि या कालोदधि इन दो समुद्रोंमें संयतासंयत जीव रहते हैं; क्योंकि, वहां पर कर्मभूमि है। 'व्यासके आधेका वर्ग करके उसका तिगुना कर देनेसे विवक्षित क्षेत्रका समस्त क्षेत्रफल निकल आता है' इस करणसूत्रसे मध्यवर्ती अर्थात् भोगभूमि-प्रतिबद्ध क्षेत्रका क्षेत्रफल निकालनेपर जो प्रमाण आता है वह सोलह बटे सत्ताईस भागसे अधिक चारसौ चौंसठ ४६४($\frac{16}{27}$) रूपोंसे जगत्प्रतरमें भाग देनेपर उपलब्ध एक भागके बराबर होता है।

उदाहरण— मध्यम क्षेत्रफलका व्यास $\frac{3}{4}$; $3\left(\frac{3}{4}\times\frac{1}{4}^2\right)=\frac{27}{256}$

$$\text{व}\ \frac{7^1}{464\frac{16}{27}}=\frac{1323}{125444}=\frac{27}{256}\ \text{जगत्प्रतर}$$

यह स्वयंप्रभाचलके आभ्यन्तर भागवर्ती मध्यमक्षेत्रका क्षेत्रफल है।

इसे एक राजुप्रतरमेंसे निकालकर संख्यात अंगुलोंसे गुणा करनेपर तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागप्रमाण संयतासंयतोंका स्वस्थानक्षेत्र हो जाता है। विहारवत्स्वस्थानादि शेष पदोंका क्षेत्र निकालनेपर— एक जगत्प्रतरको स्थापित करके संयतासंयत जीवोंके शरीरकी ऊंचाईके उत्सेधांगुल भागमात्र संख्यात सूच्यंगुलोंसे गुणा करनेपर तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमात्र क्षेत्र होता है।

शंका— मानुषोत्तरपर्वतसे परभागवर्ती और स्वयंप्रभाचलसे पूर्वभागवर्ती शेष द्वीप-समुद्रोंमें संयतासंयत जीवोंकी संभावना कैसे है?

एगं जगपदरं ठविय संखेज्जसूचिअंगुलेहि संजदासंजदखेत्तस्सेधस्स एगूणवंचासभागमेत्तेहि गुणिदे तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागमेत्तखेत्तं होदि। कधं संजदासंजदाणं सेसदीव-समुद्देसु संभवो ? ण, पुव्ववेरियदेवेहि तत्थ घित्ताणं संभवं पडि विरोधाभावा। कधमेसो अत्थो सुत्तेण अकहिदो अवगम्मदे ? ण एस दोसो, सुत्तट्ठिएण 'वा' सद्देण अवुत्तसमुच्चयट्ठेण सूचिदत्तादो। मारणंतियसमुग्घादगदेहि छ चोद्दसभागा देसूणा फोसिदा। कुदो ? सव्वत्थ लोगणालीए अब्भंतरे अच्छिय मारणंतियकरणं पडि विरोहाभावादो। केण ऊणा छ चोद्दसभागा ? हेट्ठिमेण जोयणसहस्सेण आरणच्चुद-विमाणाणमुवरिमभागेण च।

पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ९ ॥

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

दव्वट्ठियणयमस्सिदूण भण्णमाणे अदीद-वट्टमाणकालेसु 'लोगस्स असंखेज्जदि-भागो' इदि होदि। पज्जवट्ठियणए पुण अवलंबिज्जमाणे अत्थि विसेसो। वट्टमाणकाल-मस्सिदूण पज्जवट्ठियणयपरूवणाए खेत्तभंगो। संपदि अदीदकालमस्सिदूण पज्जवट्ठिय

समाधान— नहीं, क्योंकि, पूर्वभवके वैरी देवोंके द्वारा वहां ले जाये गये तिर्यंच संयतासंयत जीवोंकी संभावनाकी अपेक्षा कोई विरोध नहीं है।

शंका— सूत्रसे नहीं कहा गया यह अर्थ कैसे जाना जाता है ?

समाधान— यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, सूत्रमें स्थित और अनुक्तका अर्थात् नहीं कहे गये अर्थका समुच्चय करनेवाले 'वा' शब्दसे उक्त अकथित अर्थ सूचित किया गया है।

मारणान्तिकसमुद्घातगत संयतासंयत जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह ($\frac{६}{१४}$) भाग स्पर्श किये हैं; क्योंकि, लोकनालीके भीतर सर्वत्र रहकर मारणान्तिकसमुद्घात करनेके प्रति कोई विरोध नहीं है।

शंका— यहांपर यह छह बटे चौदह ($\frac{६}{१४}$) भाग किस क्षेत्रसे कम करना चाहिए ?

समाधान— चित्रा पृथिवीसम्बन्धी नीचेके एक हजार योजनसे और आरण-अच्युत विमानोंके उपरिम भागसे कम करना चाहिए।

प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ९ ॥

इन जीवोंका द्रव्यार्थिकनयका आश्रय लेकर स्पर्शनक्षेत्रके कहनेपर अतीत और वर्तमानकालमें लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही स्पर्शनका क्षेत्र होता है। किन्तु पर्यायार्थिक-

१ प्रमत्तसंयतादीनामयोगकेवल्यन्तानां क्षेत्रवत्स्पर्शनम्। स. सि. १, ८.

परूवणा कीरदे । तं जधा– सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्विय-तेजाहारसमुग्घादगदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो फोसिदो, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागो । विउव्वणादिइड्ढिपत्तेहि माणुसखेत्तब्भंतरे अप्पडिहयगमणेहि रिसीहि अदीदकाले सव्वं पि माणुसखेत्तं फुसिज्जदि त्ति 'माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागो' इदि वयणं ण घडदे ? ण एस दोसो, उवरि जोयणलक्खमेत्तगमणे संभवाभावादो । मेरुमत्थयचूडणसमत्थाणमिसीणं किमिदि जोयणलक्खुप्पायणे ण संभवो ? होदु णाम मेरुपव्वदुद्देसे[1] सा सत्ती, ण सव्वत्थ, 'माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागे' इति आइरिय-वयणण्णहाणुववत्तीदो । अधवा अदीदकाले लद्धिसंपण्णमुणिवरेहि सव्वं पि माणुसखेत्तं फुसिज्जदि, तस्स माणुसखेत्तववएसण्णहाणुववत्तीदो । सत्थाणे पुण माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागो चेव फोसिदो । जदि एवं, तो पंचिंदियतिरिक्खाणं पि पुव्ववेरियदेवाणं

नयका अवलम्बन करनेपर कुछ विशेषता है । उसमेंसे वर्तमानकालका आश्रय करके पर्यायार्थिक-नयसम्बन्धी स्पर्शनप्ररूपणा करनेपर क्षेत्रप्ररूपणाके समान ही स्पर्शनका क्षेत्र है । अब अतीत-कालका आश्रय लेकर पर्यायार्थिकनयसम्बन्धी स्पर्शनकी प्ररूपणा की जाती है । वह इस प्रकार है– स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, वैक्रियिकसमुद्घात, तैजससमुद्घात और आहारकसमुद्घातगत प्रमत्तसंयतादि गुणस्थानवर्ती जीवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है और मनुष्य क्षेत्रका संख्यातवां भाग स्पर्श किया है ।

शंका– मानुषक्षेत्रके भीतर अप्रतिहत गमनशील विक्रियादि ऋद्धिप्राप्त ऋषियोंने अतीतकालमें सम्पूर्ण मानुषक्षेत्र स्पर्श किया है, इसलिए 'मनुष्यक्षेत्रका संख्यातवां भाग स्पर्श किया है' यह वचन घटित नहीं होता है ?

समाधान– यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, उतने ऊपर एक लाख योजन प्रमाण गमन करनेकी संभावना नहीं है ।

शंका– सुमेरुपर्वतके मस्तक (शिखर) पर चढ़नेमें समर्थ ऋषियोंके एक लाख योजन ऊपर गमन करनेकी संभावना क्यों नहीं है ?

शंका– सुमेरुपर्वतके ऊर्ध्वप्रदेशमें ऋषियोंके गमन करनेकी वह शक्ति भलेही होवे, किन्तु मानुषक्षेत्रके भीतर एक लाख योजन ऊपर जानेकी वह शक्ति सर्वत्र नहीं है, अन्यथा 'मनुष्यक्षेत्रके संख्यातवें भागमें' ऐसा आचार्योंका वचन नहीं बन सकता है ।

अथवा, अतीतकालमें विक्रियादि लब्धिसम्पन्न मुनिवरोंने सर्व ही मनुष्यक्षेत्र स्पर्श किया है अन्यथा उसका 'मनुष्यक्षेत्र' यह नाम नहीं बन सकता है ।

स्वस्थानस्वस्थानकी अपेक्षा उक्त प्रमत्तादि संयतोंने मनुष्यक्षेत्रका संख्यातवां भाग ही स्पर्श किया है ।

---

१ म १ -प्रतौ 'वुद्धेसणसत्ती', म २ प्रतौ अन्यप्रतिषु च '-दुद्धेसे सा सत्ती' इति पाठः ।

पयोगादो जोयणलक्खुप्पायणं पावदि ? होदु, ण को वि[1] दोसो। मारणंतिय-समुग्घादगदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो फोसिदो, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणो। मारणंतियखेत्तं तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, तदो संखेज्जगुणमसंखेज्जगुणं वा किण्ण होदि त्ति वुत्ते ण होदि। ण ताव उड्ढवट्टाए[2] पणदालीसजोयणलक्ख-विक्खंभाए[2] समपरिमंडलसंट्ठिदाए[2] सत्तरज्जुआयदाए[2] खेत्तं तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो होदि, संखेज्जपदरंगुलमेत्तसेढिपमाणत्तादो। ण च पणदालीस-जोयणलक्खविक्खंभसंखेज्जंगुलबाहल्लं संखेज्जरज्जुआयदकप्पवासियविमाणमेत्त-तिरिच्छवट्टाणं खेत्तं पि तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो होदि, एवस्स पुव्वखेत्तादो संखेज्जगुणहीणस्स तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागत्तविरोधा। विमाणप्पडिट्ठिद-असंखेज्जजुवजावभवणसम्मुहवट्टखेत्तेसु समुदिदेसु किण्ण तं होइ ? ण, सेढीए असंखेज्जदि-भागासंखेज्जजोयणरुंदयखेत्तेसु[3] गहिदेसु वि तदसंभवादो।

शंका– यदि ऐसा है, तो पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंका भी पूर्वभवके वैरी देवोंके प्रयोगसे एक लाख योजन ऊपर तक जाना प्राप्त होता है ?

समाधान– यदि तिर्यंचोंका ऊपर एक लाख योजन तक जाना प्राप्त होता है, तो होवे, उसमें भी कोई दोष नहीं है।

मारणान्तिकसमुद्घातगत उन्हीं प्रमत्तसंयतादिकोंने [illegible] लोकों का असंख्यातवां भाग और मनुष्यक्षेत्रसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है।

शंका– मारणान्तिकसमुद्घातको प्राप्त प्रमत्तसंयतादि गुणस्थानवर्ती जीवोंका मारणा-न्तिक क्षेत्र तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकसे संख्यातगुणा अथवा असंख्यातगुणा क्यों नहीं होता है ?

समाधान– नहीं होता है, क्योंकि, उसके ऊर्ध्ववृत्त पैंतालीस लाख योजन विष्कम्भ-वाले, समपरिमंडल आकारसे संस्थित और सात राजु आयत होनेपर वह क्षेत्र तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग नहीं होता है, क्योंकि, वह क्षेत्र संख्यात प्रतरांगुलमात्र जगश्रेणी प्रमाण है और न संख्यात राजु आयत, तथा कल्पवासी विमानोंके प्रमाण तिर्यग्रूपसे प्रवर्तमान उक्त जीवोंका पैंतालीस लाख योजन विस्तार और संख्यात अंगुल बाहल्यवाला मारणान्तिकक्षेत्र भी तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग होता है, क्योंकि, पूर्वोक्त क्षेत्रसे संख्यातगुणे हीन इस क्षेत्रको तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग माननेमें विरोध आता है।

शंका– विमानोंमें प्रतिष्ठित असंख्यात उपपादशय्यावाले भवनोंके सम्मुख प्रवर्तमान उक्त जीवोंके समस्त मारणान्तिकक्षेत्र संयुक्त करने पर तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग क्यों नहीं हो जाता है ?

समाधान– नहीं, क्योंकि, श्रेणीके असंख्यातवें भाग तथा असंख्यात योजन विस्तृत क्षेत्रोंके ग्रहण करने पर भी तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग प्राप्त होना असंभव है।

१ म प्रतौ 'को छि', अन्यप्रतिषु 'को त्थि' इति पाठः। २ प्रतिषु 'णं' स्थाने 'ए' इति पाठः। ३ प्रतिषु 'खंदयंस' इति पाठः।

सजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जा वा भागा, सव्वलोगो वा ॥ १० ॥

एदस्स सुत्तस्स वट्टमाणकालमस्सिदूण पज्जवट्ठियपरूवणाए खेत्तभंगो। अदीदकालमस्सिदूण पज्जवट्ठियपरूवणाए वि खेत्तभंगो चेव। णवरि कवाडगदस्स पणदालीसजोयणसदसहस्सबाहल्लं जगपदरमेगं कवाडखेत्तं होदि। अवरं णवदिजोयणसदसहस्सबाहल्लं जगपदरं होदि। एवं दोण्णि कवाडखेत्ताणि मेलिदे तिरियलोगादो संखेज्जगुणाणि।

(आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज संघस्थ)

आदेसेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइएसु मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो[1] ॥ ११ ॥

सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्विय-मारणंतिय-उववादगदेहि मिच्छादिट्ठीहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो वट्टमाणकाले फोसिदो, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणो। सेसं खेत्तभंगो।

सयोगकेवली भगवन्तोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग, असंख्यात बहुभाग और सर्वलोक स्पर्श किया है ॥ १० ॥

इस सूत्रकी वर्तमानकालको आश्रय करके पर्यायार्थिकनयसम्बन्धी स्पर्शकी प्ररूपणा भी क्षेत्रके समान है। अतीतकालको आश्रय करके पर्यायार्थिकनयसम्बन्धी प्ररूपणा भी क्षेत्रके समान ही है। विशेष बात यह है कि कपाटसमुद्घातगत स्पर्शनक्षेत्र पैंतालीस लाख योजन बाहल्यवाला एक जगत्प्रतरप्रमाण कपाटक्षेत्र होता है। (यह कायोत्सर्गस्थ केवलीकी अपेक्षा जानना)। और दूसरा अर्थात् समुपविष्ट केवलीके कपाटसमुद्घातका क्षेत्र नब्बे लाख योजन बाहल्यवाले जगत्प्रतरप्रमाण कपाट समुद्घातसम्बन्धी स्पर्शनक्षेत्र होता है। इस प्रकार दोनों कपाटक्षेत्रोंको मिला देनेपर तिर्यग्लोकसे संख्यातगुणा क्षेत्र हो जाता है।

(इस प्रकार ओघप्ररूपणा समाप्त हुई।)

आदेशसे गतिमार्गणाके अनुवादसे नरकगतिमें नारकियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ११ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, वैक्रियिकसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपदगत मिथ्यादृष्टि जीवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मनुष्यक्षेत्रसे असंख्यातगुणा क्षेत्र वर्तमानकालमें स्पर्श किया है। शेष कथन क्षेत्रप्ररूपणाके समान जानना चाहिए।

१ विशेषेण गत्यनुवादेन नरकगतौ प्रथमायां पृथिव्यां नारकैश्चतुर्गुणस्थानैर्लोकस्यासंख्येयभाग स्पृष्टः। स. सि. १, ८.

छ चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ १२ ॥

सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादगदेहि मिच्छादिट्ठीहि अदीदकाले णेरइएहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणो फोसिदो। एसो अत्थो सुत्ते अबुत्तो कधं परूविज्जदे ? ण, सुत्तत्थेण 'वा' सद्देण समुच्चयट्ठेण सूचिदत्तादो। विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्विय-खेत्ताणि अदीदकाले तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागमेत्ताणि किण्ण होंति त्ति वुत्ते ण होंति, इंदय'-सेढीबद्ध-पइण्णएहि रुद्धसव्वखेत्तस्स तिरियलोगस्स असंखेज्जदिभागत्तादो। इंदय'-सेढीबद्ध पइण्णएसु संचरंतेहि णेरइयमिच्छाइट्ठीहि तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो किण्ण फुसिज्जदि त्ति वुत्ते ण फुसिज्जदि, णेरइयाणं परक्खेत्तगमणाभावादो। परक्खेत्तगमणाभावे विहारवदिसत्थाणस्स अभावो पसज्जदि त्ति वुत्ते ण पसज्जदे,

---

नारकी मिथ्यादृष्टि जीवोंने अतीतकालकी अपेक्षा कुछ कम छह बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ १२ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घातगत मिथ्यादृष्टि नारकी जीवोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मनुष्यक्षेत्र से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है।

शंका– सूत्रमें नहीं कहा गया यह अर्थ कैसे कहा जा रहा है ?

समाधान– नहीं, क्योंकि, सूत्रमें स्थित और समुच्चयार्थक 'वा' शब्दसे उक्त अर्थ सूचित किया गया है।

शंका– अतीतकालकी अपेक्षा नारकी मिथ्यादृष्टियोंके विहारवत्स्वस्थान वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घातसम्बन्धी क्षेत्र तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमात्र क्यों नहीं होते हैं ?

समाधान– नहीं होते हैं, क्योंकि, इन्द्रक, श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक नरकविलोंसे रुद्ध सर्वक्षेत्र तिर्यग्लोकका असंख्यातवां भागमात्र ही होता है।

शंका– इन्द्रक, श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक नरकोंमें संचार करनेवाले नारकी मिथ्यादृष्टियोंने तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग क्यों नहीं स्पर्श किया ?

समाधान– नहीं स्पर्श किया है, क्योंकि, नारकियोंका स्वक्षेत्रको छोड़कर परक्षेत्रमें गमन नहीं होता है।

शंका– नारकियोंका परक्षेत्रमें गमनका अभाव माननेपर विहारवत्स्वस्थानका अभाव प्राप्त होता है ?

---

१ प्रतिषु ' इंदिय ' इति पाठः ।

एक्कम्हि इंदए सेढीबद्धे पइण्णए च संठिदगामागारबहुविधबिलगमणसंभवादो। असंखेज्जजोयणमेत्तायामसेढीबद्ध-पइण्णया अत्थि त्ति तिरियलोगस्स संखेज्जविभागो होदि त्ति ण आसंकणिज्जं, असंखेज्जजोयणायामसेढीबद्ध-पइण्णयाणं पि तिरियलोगस्स असंखेज्जदिभागत्तादो। मारणंतिय-उववादपदेहि णेरइयमिच्छादिट्ठीहि अदीदकाले छ चोद्दसभागा देसूणा फोसिदा। ऊणपमाणं देसूणतिण्णिजोयणसहस्सं। तिरिक्ख-णेरइयाणं सव्वदिसासु गमणागमणसंभवो अत्थि त्ति छ चोद्दसभागा होंति, कधं देसूणत्तं? वुच्चदे— विग्गहो जीवाण किं सहेउओ, आहो अहेउओ त्ति? ण ताव अहेउओ, णिक्कारणकज्जाणुवलंभादो। विदिये कारणं वत्तव्वमिदि। कम्मं तक्कारणं, संसारिजीवसव्वावत्थाणं कम्मवदिरित्तकारणाणुवलंभादो। तत्थ वि

समाधान— विहारवत्स्वस्थानका अभाव नहीं प्राप्त होता है, क्योंकि, एक ही इन्द्रक, श्रेणीबद्ध या प्रकीर्णक नरकमें विद्यमान ग्रामोंके आकारवाले बहुत प्रकारके बिलोंमें गमन सम्भव होनेसे विहारवत्स्वस्थानपद बन जाता है।

शंका— असंख्यात योजनप्रमाण आयामवाले श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक नरक होते हैं, इसलिए तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग विहारवत्स्वस्थानका क्षेत्र बन जाता है।

समाधान— ऐसी भी आशंका नहीं करना चाहिए, क्योंकि, असंख्यात योजन आयामवाले श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक नरक भी तिर्यग्लोकके असंख्यातवें भागमात्र ही होते हैं।

मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपदवाले नारकी मिथ्यादृष्टियोंने अतीतकालमें कुछ कम छह बटे चौदह ($\frac{६}{१४}$) भाग स्पर्श किये हैं। यहांपर कुछ कमका प्रमाण देशोन तीन हजार योजन है।

शंका— तिर्यंच और नारकियोंका सर्व दिशाओंमें गमनागमन सम्भव है, इसलिए उक्त नारकियोंका पूरे छह बटे चौदह ($\frac{६}{१४}$) भाग ही स्पर्शन क्षेत्र होना चाहिए, फिर कुछ कम कैसे कहा?

समाधान— विग्रहगतिमें जीवोंके विग्रह क्या सहेतुक होते हैं, अथवा अहेतुक? अहेतुक तो माने नहीं जा सकते हैं, क्योंकि, विना कारणके कार्य पाया नहीं जाता। यदि दूसरा पक्ष ग्रहण किया जाता है, अर्थात् विग्रह सहेतुक होते हैं, तो उसमें कारण कहना चाहिए। विग्रहका कारण कर्म है, क्योंकि, संसारी जीवोंकी सर्व अवस्थाओंका कर्मको छोड़कर और कोई कारण पाया नहीं जाता है। उसमें भी आनुपूर्वीनामक नामकर्म ही विग्रहका कारण है; क्योंकि, अन्य सभी प्रकृतियोंके पृथक् पृथक् कार्य पाये जाते हैं, तथा पूर्वशरीरको छोड़नेके पश्चात् और उत्तरशरीरको ग्रहण करनेके पूर्व अन्तरालवर्ती क्षेत्रमें आनुपूर्वीनामकर्मका विपाक (उदय) होता है, ऐसा गुरुका उपदेश है। यदि कोई ऐसी आशंका करे कि आनुपूर्वीनामकर्मके उदयके नहीं होनेपर भी मारणान्तिकसमुद्घात करनेवाले जीवोंके विग्रह पाये जाते हैं, इसलिए

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

आणुपुव्विणामं चेव कारणं, अण्णासिं सव्वपयडीणं पुव्व पुव्व कज्जाणमुवलंभादो, पुव्वुत्तरसरीराणमंतरालखेत्ते आणुपुव्वीए विवागो होदि त्ति गुरूवदेसादो वा। आणुपुव्विउदयाभावे वि मुक्कमारणंतियजीवाणं वक्कस्सुवलंभादो णाणुपुव्विफलं विग्गहो त्ति णासंकणिज्जं, तस्स तित्थयरस्सेव पच्चासण्णविवागाणुपुव्विफलत्तादो। अंगुलस्स असंखेज्जदिभागमेत्तबाहल्लतिरियपदरम्हि सेढीए असंखेज्जदिभागमेत्तओगाहणवियप्पेहि गुणिदे तत्थ जत्तिओ रासी तत्तियमेत्ताओ णिरयगइपाओग्गाणुपुव्वीए पयडीओ। लोगे सेढीए असंखेज्जदिभागमेत्तओगाहणवियप्पेहि गुणिदे तिरिक्खगइपाओग्गाणुपुव्वीए पयडिवियप्पा होंति। पणवालीसजोयणलक्खबाहल्ले तिरियपदरे उड्ढकवाडछेदणयणिप्पण्णे[1] सेढीए असंखेज्जदिभागमेत्तओगाहणवियप्पेहि गुणिदे मणुसगदि-

विग्रह आनुपूर्वीनामकर्मका फल है, ऐसा नहीं माना जा सकता है सो उसे ऐसी आशंका नहीं करना चाहिए, क्योंकि, वह विग्रह तीर्थंकरप्रकृतिके समान निकट भविष्यमें उदय होनेवाले आनुपूर्वीनामकर्मका फल है।

यदि कोई ऐसी आशंका करे कि सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागमात्र बाहल्यवाले तिर्यग्प्रतरमें अर्थात् राजुके वर्गमें जगत्श्रेणीके असंख्यातवें भागमात्र अवगाहनाके भेदोंसे गुणा करनेपर वहां जो राशि अर्थात् आकाश प्रदेशोंकी संख्या आती है उतने प्रमाण नरकगति प्रायोग्यानुपूर्वीकी प्रकृतियां होती हैं। घनलोकमें जगत्श्रेणीके असंख्यातवें भागमात्र अवगाहनाके भेदोंसे गुणा करनेपर तिर्यंगतिप्रायोग्यानुपूर्वीके प्रकृति-विकल्प होते हैं। ऊर्ध्वकपाटके छेदनेसे निष्पन्न पैंतालीस लाख योजन बाहल्यवाले तिर्यग्प्रतरमें जगत्श्रेणीके असंख्यातवें भागमात्र अवगाहन-विकल्पोंसे गुणा करनेपर मनुष्यगति-प्रायोग्यानुपूर्वीके प्रकृति-विकल्प होते हैं। सौ सौ योजन बाहल्यवाले तिर्यग्प्रतरमें जगत्श्रेणीके असंख्यातवें भागमात्र अवगाहन-विकल्पोंसे गुणा

---

१ एदाणि पणदालीसजोयणसदसहस्सबाहल्लराणि तिरियपदराणि कधमुप्पण्णाणि त्ति भणिदे वुच्चदे– उड्ढं कवाडच्छेदणणिप्पण्णाणि त्ति इदरेसिमाणुपुव्विकम्माणं तिरियपदराणं घणलोगस्स य उप्पत्तिपरूविय एदेसिं चेव तिरियपदराणमुप्पत्ती किमट्ठं परूविज्जदे? लोगसंठाणपरूवणट्ठं; उड्ढकवाडमिदि एदेण लोगो णिद्दिट्ठो। कधमेसा लोगस्स सण्णा? वुच्चदे– ऊर्ध्वं च तत् कपाटं च ऊर्ध्वकपाटमिव लोकः। ऊर्ध्वकपाटं जेण लोगो सोद्दसरज्जुउस्सेहो सत्तरज्जुरुंदो मज्झे उवरिमपेरंतो च एगरज्जुबाहल्लो उवरि बह्मलोयुद्देसे पंचरज्जुबाहल्लो मूले सत्तरज्जुबाहल्लो; अण्णत्थ जहाणुवट्टी बाहल्लो। तेण उड्ढट्ठियकवाडोवमो। उड्ढकवाडस्स छेदणं उड्ढकवाडछेदणं तेण उड्ढकवाडछेदणेण णिप्पण्णाणि एदाणि पणदालीसजोयणसदसहस्सबाहल्लतिरियपदराणि। संपहि एत्थ उड्ढकवाडछेदणविहाणं वुच्चदे। तं जहा— सत्तरज्जुरुंदसम्मि दोसु वि पासेसु तिण्णि तिण्णिरज्जुआयामेण एगरज्जुविक्खंभेण उड्ढकवाडं छेत्तव्वं। पुणो पणदालीसजोयणलक्खुस्सेहं मोत्तूण हेट्ठा उवरि च मज्झिमप्पदेसे उड्ढकवाडं छिंदिदव्वं। पुणो मुह १ भूमि ५ विसेसा ४ उच्छेह ½ भजिदो वड्ढिपमाणं होदि ½। एदीए वड्ढीए पणदालीसजोयणलक्खेसु वड्ढिदखेत्तं दोसु वि पासेसु अवणेदव्वं। एवमुड्ढकवाडछेदणेण पणदालीसजोयणसदसहस्सबाहल्लाणि तिरियपदराणि णिप्पण्णाणि। धवला अ. प्र. पत्र १२०९ (वर्गणाखंड)

पाओग्गाणुपुव्वीए पयडिवियप्पा होंति । णवजोयणसदबाहल्लतिरियपदरे सेढीए असंखेज्जदिभागमेत्तओगाहणवियप्पेहि गुणिदे देवगदिपाओग्गाणुपुव्वीए पयडिवियप्पा-होंति त्ति वग्गणसुत्तादो आणुपुव्विणामं संट्ठाणविवाई चेवेत्ति णासंकणिज्जं, तिस्से खेत्त-संट्ठाणेसु वावादाए एकत्थेव वावारविरोहादो । ते च आगासपदेसा एत्थ चेव अच्छंति त्ति ण णियमो अत्थि, समयाविरोहेण तेसिमवट्ठाणादो । तदो णाणुपुव्वि-विवागापाओग्गखेत्ते अवट्ठाणं उप्पण्णपढम-विदिय-तदियसमयेसु णत्थि त्ति देसूणत्तं घडदे । एसो अत्थो उवरि सव्वत्थ जहावसरं परूवेदव्वो ।

सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १३ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो खेत्ताणिओगद्दारे जो वुत्तो, सो वत्तव्वो ।

पंच चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ १४ ॥

करनेपर देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वीके प्रकृति-विकल्प होते हैं । इन वर्गणाखंडके सूत्रोंके अनुसार आनुपूर्वीनामक नामकर्म संस्थान विपाकी ही है । तो उसे ऐसी भी आशंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि, क्षेत्र और संस्थानमें व्याप्त अर्थात् क्षेत्रविपाकी और पुद्गलविपाकी होते हुए भी उस आनुपूर्वीप्रकृतिका एक ही अर्थमें व्यापार मान लेनेमें विरोध है । दूसरी बात यह भी है कि वे आकाशके प्रदेशके इसी स्थान विशेषपर होते हैं, ऐसा नियम नहीं है, क्योंकि, उनका अवस्थान परमागमके अविरोधसे माना गया है । इसलिए आनुपूर्वीनामकर्मके उदयके अप्रायोग्य क्षेत्रमें उत्पन्न होनेके प्रथम, द्वितीय और तृतीय विग्रहोंमें अवस्थान नहीं है, अतः वेशोनता घटित हो जाती है । यह अर्थ ऊपर आगे सर्वत्र यथावसर कहना चाहिए ।

सासादनसम्यग्दृष्टि नारकियोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १३ ॥

इस सूत्रका अर्थ जो क्षेत्रानुयोगद्वारमें कहा है वही यहांपर कहना चाहिए ।

उन्हीं सासादनसम्यग्दृष्टि नारकियोंने अतीतकालकी अपेक्षा कुछ कम पांच बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ १४ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिक-समुद्घातगत सासादनसम्यग्दृष्टि नारकियोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । वह इस प्रकारसे है– नारकियोंके बिल संख्यात योजन विस्तृत भी हैं और असंख्यात योजन विस्तृत भी हैं । उनमें नारकियोंके चौरासी लाख आवास यदि असंख्यात योजन विस्तृत भी होते हैं, तो भी उन समस्त नारका-वासोंके क्षेत्रका योग तिर्यग्लोकका असंख्यातवां भाग जिस प्रकारसे होता है, उस प्रकारसे कहते हैं—

सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादगदेहि सासण-सम्मादिट्ठीहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो। तं जधा-- णेरइयाणं बिलाणि संखेज्जजोयणवित्थडाणि वि अत्थि, असंखेज्जजोयण-वित्थडाणि वि। तत्थ जदि वि चदुरासीदिलक्खणेरइयावासा असंखेज्जजोयणवित्थडा होंति, तो वि सव्वखेत्तसमासो तिरियलोगस्स असंखेज्जदिभागो चेव जधा होदि, तधा वत्तइस्सामो णिरयावासा के वि परिमंडलायारा, के वि चउरंसा, के वि तंसा, के वि पंचंसा, के वि छंसा। एदे सव्वे वि समीकरणे कदे चउरंसा असंखेज्जजोयणवित्थडा होंति। सयलणेरइयरासिणा घणंगुलस्स संखेज्जदिभागे गुणिदे वट्टमाणकाले णेरइएहि रुद्धखेत्तं होदि। वट्टमाणे णेरइयरुद्धणिरयबिलभागादो अरुद्धभागो संखेज्जगुणो त्ति संखेज्जरूवेहि गुणिदे णेरइयाणमदीदमत्थाणखेत्तं होदि। तेण तिरियलोगस्स असंखेज्जदिभागत्तं ण विरुज्झदे। एवं 'वा' सद्दसूचिदस्स अत्थस्स परूवणा कदा होदि। सासणस्स णिरयगदीए [illegible] सुत्तपडिसिद्धत्तादो। मारणंतिय-समुग्घादगदेहि देसूणा पंच चोद्दसभागा फोसिदा। कुदो? सत्तमपुढवीदो सासणाणं मारणंतियकरणसंभवाभावा। तं कुदो णव्वदे? एदम्हादो चेव सुत्तादो णव्वदे।

नारकियोंके आवास कितने ही तो गोल आकारवाले होते हैं, कितने ही त्रिकोण, कितने ही चतुष्कोण, कितने ही पंचकोण और कितने ही नारकावास षट्कोण होते हैं। इन सभी आकारोंवाले नारकावासोंके समीकरण करनेपर वे चतुरस्र और असंख्यात योजन विस्तृत हो जाते हैं। उसमेंसे, सम्पूर्ण नारकराशिसे घनांगुलके संख्यातवें भागको गुणित करनेपर प्राप्त हुआ क्षेत्र वर्तमानकालमें नारकियोंसे रुद्ध-क्षेत्र होता है। तथा वर्तमानकालमें नारकोंद्वारा रोके हुए नरकोंके बिल-भागसे अरुद्धभाग संख्यातगुणा होता है, इसलिए नारकियोंद्वारा रुद्ध क्षेत्रको संख्यात रूपोंसे गुणा करनेपर नारकोंका अतीतकालसम्बन्धी स्वस्थानक्षेत्रका प्रमाण हो जाता है। अतः तिर्यग्लोकका असंख्यातवां भाग (जो ऊपर स्पर्शन-क्षेत्र बताया गया है, वह) विरोधको नहीं प्राप्त होता है। इस प्रकार 'वा' शब्दसे सूचित अर्थकी प्ररूपणा की गई है।

सासादनसम्यग्दृष्टि जीवका नरकगतिमें उपपाद नहीं होता है, क्योंकि, उसका सूत्रमें प्रतिषेध किया गया है। मारणान्तिकसमुद्घातगत सासादनसम्यग्दृष्टियोंने कुछ कम पांच बटे चौदह ($\frac{5}{14}$) भाग स्पर्श किये हैं, क्योंकि, सातवीं पृथिवीके नारक सासादनसम्यग्दृष्टियोंका मारणान्तिकसमुद्घात करना संभव नहीं है।

शंका— यह कैसे जाना जाता है?

समाधान— इसी सूत्रसे जाना जाता है कि सातवीं पृथिवीके सासादनसम्यग्दृष्टि नारकी मारणान्तिकसमुद्घात नहीं करते। (यदि करते होते, तो सूत्रमें छह बटे चौदह ($\frac{6}{14}$) भागके स्पर्शका उल्लेख होता)।

सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १५ ॥

सत्थाण-सत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादगदेहि सम्मामिच्छाइट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीहि वट्टमाणकाले चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणो फोसिदो। कारणं खेत्तसिद्धं। अदीदकाले वि एदेहि दोहि वि गुणट्ठाणेहि एदेहि पदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो चेव फोसिदो, 'असंखेज्जजोयणवित्थडा णेरइयआवासा' इदि मणेण संकप्पिय एगावासखेत्तफलं चउरासीदिलक्खरूवेहि गुणिदे तिरियलोगस्स असंखेज्जदिभागमेत्तखेत्तफलोवलंभादो। सम्मामिच्छाइट्ठीणं मारणंतिय-उववादपदा णत्थि। असंजदसम्माइट्ठीहि मारणंतिय-उववादगदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणो वट्टमाणकाले फोसिदो। कारणं खेत्तसिद्धं। अदीदकाले मारणंतियसमुग्घादगदेहि असंजदसम्मादिट्ठीहि चतुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणो फोसिदो। कुदो? सव्वजीवाणं अवक्कमछक्कणियमदंसणादो, उड्ढं गच्छमाणजीवाणं वि अप्पणो

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घातगत सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि नारकी जीवोंने वर्तमानकालमें सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मनुष्यक्षेत्रसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। इसका कारण क्षेत्रप्ररूपणासे सिद्ध है। अतीतकालमें भी इन दोनों ही गुणस्थानवर्ती नारकी जीवोंने इन्हीं पदोंकी अपेक्षा सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग ही स्पर्श किया है, क्योंकि, नारकियोंके आवास 'असंख्यात योजन विस्तृत होते हैं' इस प्रकार मनसे संकल्प करके एक नारकावासके क्षेत्रफलको चौरासी लाख रूपोंसे गुणित करनेपर तिर्यग्लोकका असंख्यातवां भागमात्र क्षेत्रफल पाया जाता है। सम्यग्मिथ्यादृष्टि नारकियोंके मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद, ये दो पद नहीं होते हैं। मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादगत असंयतसम्यग्दृष्टि नारकोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मनुष्यलोकसे असंख्यातगुणा क्षेत्र वर्तमानकालमें स्पर्श किया है। इसका कारण क्षेत्रप्ररूपणासे सिद्ध है।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि नारकी जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १५ ॥

अतीतकालमें मारणान्तिकसमुद्घातगत असंयतसम्यग्दृष्टियोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मनुष्यलोकसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है, क्योंकि, सर्व जीवोंके अपक्रमषट्कका नियम देखा जाता है (देखो भाग २ पृ. १०१)। तथा ऊपर

उप्पत्तिखेत्तमपावेदूण अंतरकाले चेव विस-विदिसाणं गमणाभावादो। ण च उप्पत्ति-खेत्तसमाणखेत्तंतरट्ठियाणं पि जीवाणमणियदगमणमत्थि, एगदिसाए णियदगमणादो; आचारां [illegible] पि जीवाणमप्पणो उप्पज्जमाणदिसं मोत्तूण अण्णदिसाणं गमणाभावादो, उप्पज्जमाणदिसं गच्छंताणं पि जीवाणं अप्पणो उप्पज्जमाणखेत्तस-माणट्ठाणमपावेदूण सव्वत्थ अंतराले [1]उड्ढवलणाभावादो। तदो सव्वणिरयावासेहिंतो माणुसखेत्तमागच्छंताणं सम्मादिट्ठीणं णिरयावासप्पडिट्ठिदपडिणियदवट्ठाणं फोसणं चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो चेव। अधवा णेरइयसम्मादिट्ठीणं तत्थतण-मिच्छाइट्ठीणं व ण घणरज्जुपदरसव्वागासपदेसेहिंतो णिग्गमणमत्थि, माणुसो-ववादियत्तादो, णेरइयपडिबद्धाणं मणुसगइपाओग्गाणुपुव्वीणं तिरिक्खगइपाओग्गाणु-पुव्वीणं व पडिबद्धागासपदेसाणं रज्जुपदरम्हि सव्वत्थाभावादो। किं तदभावलिंगम्? एदं चेव फोसणसुत्तं। समीकरणे कदे जदि एक्कणेरइयावासविक्खंभो एगसेढि सेढिविदियवग्गमूलेण खंडियमेत्तो होदि, तो तस्स खेत्तफलं जगपदरं सेढिपढमवग्ग-

---

आनेवाले जीवोंके भी अपने उत्पत्ति-क्षेत्रको नहीं प्राप्त करके अंतरालकालमें ही निश्चित दिशाको छोड़कर अन्य दिशा या विदिशामें गमन करनेका अभाव है। और न उत्पत्तिक्षेत्रके समान अन्य क्षेत्र पर स्थित जीवोंके भी अनियत गमन होता है, क्योंकि, उनका गमन एक दिशामें ही, अर्थात् उत्पत्तिक्षेत्रकी ओर ही, नियत हो चुका है। तिरछे गमन करनेवाले भी जीवोंके अपनी उत्पन्न होनेवाली दिशाको छोड़कर अन्य दिशाको गमन नहीं होता है। उत्पन्न होनेकी दिशाको जाते हुए भी जीवोंके अपने उत्पन्न होनेके क्षेत्रके समान अन्य स्थानको नहीं प्राप्त करके अन्तरालमें सर्वत्र ऊपरकी ओर वलनका अभाव है। इसलिए सभी नारकावासोंसे मनुष्यक्षेत्रको आनेवाले और नारकावासमें प्रतिष्ठित होते हुए नियत क्षेत्रकी ओर प्रवर्तमान सम्यग्दृष्टि जीवोंका स्पर्शन सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग ही है।

अथवा, मनुष्योंमें उत्पन्न होनेके कारण नारकी सम्यग्दृष्टियोंका वहांके मिथ्यादृष्टियोंके समान घनराजुप्रतरके सर्व आकाशप्रदेशोंसे निर्गमन नहीं होता है, क्योंकि, नरकगतिसे प्रतिबद्ध मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वीवाले जीवोंके तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वीवाले जीवोंके समान प्रतिबद्ध आकाश-प्रदेशोंका राजुप्रतरमें सर्वत्र अभाव है।

शंका— इस सर्वत्र अभावका लिंग क्या है, अर्थात् यह किस आधारसे जाना?

समाधान— उक्त बातको बतानेवाला यही स्पर्शन-सूत्र है।

समीकरण करनेपर यदि एक नारकावासका विष्कम्भ एक जगश्रेणीको असंख्यातकी

---

१ प्रतिषु 'उड्ढ लणा' इ. प्रतौ 'उड्ढेलणा' इति पाठः।

मूलेण खंडियमेत्तं होदि । पुणो अदीदकाले तत्थ ट्ठाइदूण उड्ढं मारणंतियं मेल्लंताणं एदं खेत्तफलं मुहं होदि, संखेज्जरज्जुआयामो होदि । एत्थ उस्सेधेण खेत्तफलं गुणिदे तिरियलोगादो असंखेज्जगुणं मारणंतियखेत्तं होदि त्ति वुत्ते ण होदि, णिरयवासो ण एक्को वि एरिसविक्खंभसहिओ अत्थि । कथमेवं परिच्छिज्जदे ? 'णेरइया असंजद सम्मादिट्ठी सव्वपदेहि अदीदकाले तिरियलोगस्स असंखेज्जभागं फुसंति' त्ति सुत्त वयणादो । केत्तिओ पुण णेरइयावासाणं विक्खंभो होदि त्ति वुत्ते असंखेज्जजोयणमेत्तो होदि । तं जहा– सग-सगपत्थडखेत्तं ट्ठविय सग-सगबिल-संखाए ओवट्टिदे एगबिलेण रुद्धखेत्तमसंखेज्जजोयणविक्खंभायामं होदि । तं संखेज्जरज्जूहि गुणिदे एगबिल-मस्सिदूण मारणंतियखेत्तं होदि । एदं बिलसंखाए गुणिदे सयलं मारणंतियखेत्तं होदि । एदं तिरियलोगस्स असंखेज्जदिभागं होदि । सव्वणिरयावासाणं खादफलम-संखेज्जजोयणमेत्तं होदूण एगरज्जुपदरस्स असंखेज्जदिभागमेत्तं चेव होदि । कुदो ?

द्वितीय वर्गमूलसे खंडित करनेपर एक खंड मात्र होता है, तो उसका क्षेत्रफल जगत्श्रेणीके प्रथम वर्गमूलसे जगत्प्रतरको खंडित करनेपर एक खंड मात्र होता है । पुनः अतीतकालमें वहां रहकर ऊपरकी ओर मारणान्तिकसमुद्घात करनेवालोंका यह क्षेत्रफल मुखरूप हो जाता है और संख्यात राजुप्रमाण आयाम होता है ।

शंका– यहांपर अर्थात् उक्त क्षेत्रमें उत्सेधसे क्षेत्रफलको गुणा करने पर तो तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणा मारणान्तिकक्षेत्र हो जाता है ?

समाधान– नहीं होता है, क्योंकि, इस प्रकारके विष्कम्भसे सहित एक भी नारकावास नहीं है ।

शंका– यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान– 'नारकी असंयतसम्यग्दृष्टि सर्वपदोंकी अपेक्षा अतीतकालमें तिर्यग्लोकके असंख्यातवें भागमात्र क्षेत्रको स्पर्श करते हैं' इस प्रकारके सूत्र-वचनसे उक्त बात जानी जाती है ।

शंका– नारकोंके आवासोंका विष्कम्भ कितना होता है ?

समाधान– असंख्यात योजन प्रमाण होता है । वह इस प्रकारसे है– अपना अपना स्वस्थानक्षेत्र स्थापित करके अपने अपने बिलोंकी संख्याओंसे अपवर्तन करनेपर एक बिलसे रुद्धक्षेत्र असंख्यात योजन विष्कम्भ और आयामवाला हो जाता है । उसे संख्यात राजुओंसे गुणा करनेपर एक बिलका आश्रय करके मारणान्तिकसमुद्घातगत क्षेत्र हो जाता है । इस प्रमाणको बिलोंकी संख्यासे गुणा करनेपर सकल मारणान्तिकक्षेत्र हो जाता है । यह मारणान्तिकक्षेत्र तिर्यग्लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण होता है ।

सर्व नारकावासोंका घनफल असंख्यात योजनप्रमाण होकर भी एक राजुप्रतरका

'असंजदसम्मादिट्ठिमारणंतियफोसणं तिरियलोगस्स असंखेज्जदिभागो' त्ति वयणादो। जदि कहिं पि एक्कस्स बिलस्स खेत्तफलं रज्जुपदरस्स संखेज्जदिभागमेत्तं होदि, तो असंजदसम्मादिट्ठिमारणंतियफोसणं तिरियलोगादो असंखेज्जगुणं होइ, तिरियपदरबाहल्लादो मारणंतियखेत्तबाहल्लस्स असंखेज्जगुणत्तादो। पढमपुढविसत्थाणखेत्ते सेढीए संखेज्जदिभागेण गुणिदे असंजदसम्मादिट्ठिमारणंतियफोसणं तिरियलोगादो असंखेज्जगुणं होदि त्ति के वि पच्चवट्ठाणं कुणंति। तण्ण घडदे, सत्थाणखेत्तं बिलसलागाहि ओवट्टिय लद्धस्स वग्गमूलविक्खंभेण अद्धरज्जुआयामफोसणखेत्तुवलंभादो। ण उड्ढं गंतूण तिरिच्छं गच्छंताणं बहुफोसणं, तिरिच्छं गंतूण उड्ढं गच्छंताणं व, पुव्वुत्तेणेव विक्खंभेण गमणुवलंभादो। एवमुववादस्स वि वत्तव्वं।

पढमाए पुढवीए णेरइएसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥१६॥

सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्विय-मारणंतिय-उववाद-गद-मिच्छादिट्ठीणं परूवणा वट्टमाणकाले खेत्तसमाणा। सत्थाणसत्थाण-विहारवदि-

---

असंख्यातवां भागमात्र ही होता है, क्योंकि, 'असंयतसम्यग्दृष्टि नारकोंका मारणान्तिकस्पर्शन तिर्यग्लोकके असंख्यातवां भाग होता है' ऐसा सूत्र-वचन है। यदि कहीं भी एक बिलका क्षेत्रफल राजुप्रतरके संख्यातवें भागप्रमाण होता, तो असंयतसम्यग्दृष्टि नारकोंका मारणान्तिकस्पर्शनक्षेत्र तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणा होता, क्योंकि, तिर्यक्प्रतरके बाहल्यसे मारणान्तिकक्षेत्रका बाहल्य असंख्यातगुणा है।

प्रथम पृथिवीके स्वस्थानक्षेत्रमें जगत्श्रेणीके संख्यातवें भागसे गुणा करनेपर असंयतसम्यग्दृष्टि नारकोंका मारणान्तिकस्पर्शनक्षेत्र तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणा होता है, ऐसा कितने ही आचार्य समाधान करते हैं। किन्तु वह घटित नहीं होता है, क्योंकि, स्वस्थानक्षेत्रको बिलशलाकाओंसे अपवर्तितकर लब्धराशिके वर्गमूलप्रमाण विष्कम्भसे अर्धराजु आयामप्रमाण स्पर्शनक्षेत्र पाया जाता है। तथा, ऊपर जाकर तिरछे गमन करनेवाले जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र बहुत नहीं है, जैसा कि तिरछे जाकर ऊपर जानेवालोंका स्पर्शनक्षेत्र बहुत नहीं है; क्योंकि, पूर्ववत् ही विष्कम्भद्वारा गमन पाया जाता है।

इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि नारकोंके उपपादक्षेत्रका भी कथन करना चाहिए।

प्रथम पृथिवीमें नारकियोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि नारकी जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १६ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक और मारणान्तिकसमुद्घात तथा उपपादगत मिथ्यादृष्टि नारकोंकी वर्तमानकालिक स्पर्शन-प्ररूपणा क्षेत्र-प्ररूपणाके समान है। स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना कषाय, और वैक्रियिकसमुद्घातगत

सत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादगदेहि मिच्छादिट्ठीहि अदीदकाले चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । कुदो ? असंखेज्ज-जोयणविक्खंभणिरयावासखादफलं ठविय तप्पाओग्गसंखेज्जबिलसलागाहि गुणिदे तिरियलोगस्स असंखेज्जदिभागमेत्तखेत्तुवलंभादो । मारणंतिय-उववादगदेहि मिच्छा-दिट्ठीहि अदीदकाले तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । कधं तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागत्तं ? वुच्चदे– असीदिसहस्साहियजोयणलक्खपढमपुढवीबाहल्लम्मि हेट्ठिमजोयणसहस्सं णेरइएहि सव्वकालं ण छुप्पदि त्ति कट्टु जोयणसहस्समवणिय सेसबाहल्लं रज्जुपदरं

मिथ्यादृष्टि नारकोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है [illegible] है कि असंख्यात योजन विष्कम्भवाले नारकावासोंके घनफलको स्थापित करके तत्प्रायोग्य संख्यात बिलशला-काओंसे गुणा करनेपर तिर्यग्लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र उपलब्ध होता है। मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादगत मिथ्यादृष्टि नारकोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है।

शंका– यहांपर तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग कैसे कहा।

समाधान– एक लाख अस्सी हजार योजन प्रथम पृथिवीके बाहल्यमेंसे नीचेका एक योजन प्रमाण क्षेत्र प्रथम पृथिवीके नारकियोंने किसी भी समय नहीं छुआ है, ऐसा करके उक्त प्रमाणमेंसे एक हजार योजन निकालकर शेष एक लाख उन्यासी हजार बाहल्यवाले राजुप्रतरको स्थापित करके उत्सेधकी अपेक्षा उनंचास खंड करके प्रतराकारसे स्थापित करनेपर तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग हो जाता है, क्योंकि, 'एक राजु रुंदवाला, सात राजु लम्बा और एक लाख योजन बाहल्यवाला तिर्यग्लोक है' ऐसा उपदेश है। किन्तु जो आचार्य एक लाख योजन बाहल्यवाला और एक राजु गोलाईवाला तिर्यग्लोकका प्रमाण कहते हैं, उनके उपदेशानुसार प्रथम पृथिवीके नारकियोंका मारणान्तिक और उपपाद क्षेत्र तिर्यग्लोकसे साधिक होता है।

विशेषार्थ– यहां पर प्रथम नरकके मिथ्यादृष्टि जीवोंका मारणान्तिक और उपपाद क्षेत्र तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग इस प्रकार सिद्ध किया गया है– यदि हम तिर्यग्लोकके एक राजु लम्बे चौड़े व एक लाख योजन मोटाईके सप्तमांश प्रमाण मोटे खंड करें तो १४२८५७ योजन मोटाईवाले ४९ खंड होते हैं। अब यदि एक लाख अस्सी हजार योजन मोटी और एक राजु लम्बी चौड़ी प्रथम पृथिवीके प्रमाणमेंसे नारकियोंसे सर्वथा अस्पृष्ट एक हजार

ठविय उस्सेधेण एगूणवंचासमेत्तखंडाणि कादूण पयरागारेण ठइदे तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो होदि, 'एगरज्जुरुंदो सत्तरज्जुआयदो जोयणलक्खबाहल्लो तिरियलोगो' त्ति उवदेसादो। जे पुण जोयणलक्खबाहल्लरज्जुवट्टं तिरियलोगपमाणं

योजन मोटा अवस्थित [illegible] के क्षेत्र १७९००० योजनके एक राजु लम्बे चौड़े ४९ खंड करें तो प्रत्येक खंडकी मोटाई ३६५३$\frac{३}{४९}$ योजन प्रमाण होगी जो पूर्वोक्त तिर्यग्लोकके खंडोंकी मोटाईसे लगभग चतुर्थांश पड़ती है। इस प्रकार यह समस्त क्षेत्र तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग सिद्ध हो जाता है। किन्तु लोककी मृदंगाकार मान्यताके अनुसार उक्त क्षेत्र तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग नहीं, किन्तु तिर्यग्लोकसे भी अधिक पड़ जाता है, क्योंकि, यदि एक राजु व्यासवाले गोल तथा एक लाख मोटाईवाले तिर्यग्लोकके पूर्वप्रकार ४९ खंड करें तो प्रत्येक खंड एक राजु व्यासवाला गोल तथा २०४०$\frac{४}{४९}$ योजन मोटा होगा। इसी प्रकार वर्तुलाकार लोककी मान्यतासे उक्त मारणान्तिकक्षेत्रके खंड भी एक राजु व्यासवाले गोल तथा ३६५३$\frac{३}{४९}$ योजन मोटे होंगे और उनका समस्त घनफल वर्तुलाकार तिर्यग्लोकके घनफलसे हीन न रहकर अधिक हो जायगा।

उदाहरण—

रा. रा.

(१) आयत चतुरस्र तिर्यग्लोक १ × ७ × १००००० यो. = $१^{२} \times \frac{१००००० \times ४९}{७ \times १}$

(२) उक्त मारणान्तिकक्षेत्र १ × १ × १७९००० = $१^{१} \times \frac{१७९००० \times ४९}{४९ \times १}$

(३) वर्तुलाकार तिर्यग्लोक १ × ३ × $\frac{१}{४}$ × १००००० = $\frac{३}{४} \times \frac{१००००० \times ४९}{४९ \times १}$

(४) वर्तुलाकार लोककी मान्यतासे उक्त मारणान्तिकक्षेत्र—

$\frac{३}{४} \times १७९००० = \frac{३}{४} \times \frac{१७९००० \times ४९}{४९ \times १}$

इस प्रकारके उक्त क्षेत्रोंमें प्रथम दूसरेसे $\frac{४००}{१७९}$ = २$\frac{१६३}{१७९}$ = कुछ कम चौगुणा अर्थात् संख्यातगुणा सिद्ध होता है। तथा, चौथा तीसरेसे कुछ कम दुगुणा अर्थात् सातिरेक सिद्ध होता है।

किन्तु यह घटित नहीं होता है, क्योंकि, इस उपदेशके स्वीकार करनेपर लोकाकाशमें तीनसौ तेतालीस घनराजुओंकी उत्पत्ति नहीं होती है। दूसरे, 'राजुको सातसे गुणा करने पर जगत्श्रेणी होती है, जगत्श्रेणीको जगत्श्रेणीसे गुणा करने पर जगत्प्रतर होता है, और जगत्प्रतरको जगत्श्रेणीसे गुणा करने पर घनलोक होता है' इस सर्व आचार्योंसे सम्मत परिकर्म सूत्रसे विरोध भी प्राप्त होता है। पंचेन्द्रियतिर्यंच, पंचेन्द्रियतिर्यंचपर्याप्त,

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

भणंति तेसिमुवदेसेण तिरियलोगादो सादिरेयं मारणंतिय-उववादखेत्तं होदि। ण च एवं घडदे, उववादे एवम्हि पडिग्गहिदे लोगम्हि तिण्णिसद-तेदालमेत्तघण रज्जूणमणुप्पत्तीदो, 'रज्जू सत्तगुणिदा जगसेढी, सा वग्गिदा जगपदरं, सेढीए गुणिदजगपदरं घणलोगो [होदि' त्ति परियम्मसुत्तेण सव्वाइरियसम्मदेण विरोहुप्पत्तीदो च। कदजुम्मेहि पंचिंदियतिरिक्ख-पज्जत्त-जोणिणि-जोदिसिय-वेंतरदेवअवहारकालेहि खुद्दाबंधसुत्तसिद्धेहि[1] अकदजुम्मजगपुरे भागे हिदे एवाओ रासीओ सछेदाओ होज्ज ? ण च एवं, जीवाणं छेदाभावा। किं च दव्वाणियोगद्दारवक्खाणम्हि वुत्तहेट्ठिम-उवरिमवियप्पा अभावमुवदुक्कंते, अवग्गसमुट्ठिदलोगत्तादो। तिण्णिसदतेदालघण-रज्जुपमाणो उवमालोओ णाम। एदम्हादो अण्णो पंचदव्वाहारलोगो, तदो सव्वमेदं घडदि त्ति वुत्ते ण, उवमेयाभावे उवमाए अण्णत्थ अणुवलंभादो। तम्हा उवमेयेसु

पंचेन्द्रियतिर्यंचयोनिमती, ज्योतिष्क और व्यन्तरदेवोंके प्रमाण लानेके लिए कहे गये खुद्दाबंधसूत्र-सिद्ध, कृतयुग्मराशिवाले अवहारकालोंसे अकृतयुग्म जगत्प्रतरमें भाग देने पर ये उक्त राशियां सछेद हो जायेंगी, किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि, उन जीवोंके छेदका अभाव है। (कृतयुग्म आदि राशियोंके लिये देखो तीसरा भाग. पृ. २४९)।

दूसरी बात यह है कि उक्त कथनके माननेपर द्रव्यानुयोगद्वारके व्याख्यानमें कहे गये अधस्तन और उपरिम विकल्प अभावको प्राप्त होते हैं, क्योंकि, उक्त प्रकारसे लोक वर्गविहीन-राशिसे समुत्पन्न होता है।

शंका— तीन सौ तेतालीस घनराजुप्रमाण लोकका नाम उपमालोक है। इससे अन्य पांच द्रव्योंका आधारभूत लोक भिन्न है। यदि ऐसा माना जाय, तो यह सब पूर्वोक्त कथन घटित हो सकता है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, उपमेयके अभावमें उपमाकी अन्यत्र उपलब्धि नहीं होती है। अर्थात् यदि उपमाके योग्य किसी पदार्थका अस्तित्व न माना जायगा, तो फिर उपमाकी सार्थकता कहां पर होगी ? इसलिए उत्सेधांगुल और प्रमाणांगुल संज्ञिक क्षेत्ररूप उपमेयोंके तथा पल्योपम और सागरोपम संज्ञिक कालरूप उपमेयोंके विद्यमान होने पर उपमारूप उत्सेधांगुल, प्रमाणांगुल और सागरका अस्तित्व पाया जाता है। अतएव यहां पर भी उपमेयरूप लोकके साथ प्रमाणकी अपेक्षा उपमालोकका अनुसरण करनेवाला पांच द्रव्योंका आधारभूत लोक होना चाहिए, अन्यथा इसका नाम उपमालोक हो नहीं सकता।

---

१ खेत्तेण पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्त-पंचिंदियतिरिक्खजोणिणि-पंचिंदियतिरिक्ख-अपज्जत्तएहि पदरमवहिरदि देवअवहारकालादो असंखेज्जगुणहीणेण कालेण संखेज्जगुणहीणेण कालेण संखेज्जगुणेण कालेण असंखेज्जगुणहीणेण कालेण ॥ खुद्दाबंधसुत्तं, अ. प्र. प. ५१९ एदे अवहारकाले जहाकमेण सलागभूदे ठविय पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्त-पंचिंदियतिरिक्खजोणिणि-पंचिंदियतिरिक्ख-अपज्जत्तपमाणेण जगपदरे अवहिरिज्जमाणे सलागाओ जगपदरं च अुगवं समप्पंति। धवला. अ. प्र. प. ५१९.

उस्सेह-पमाणंगुलपलिदोवम-सागरोवमसण्णिदेसु खेत्त-कालेसु संतेसु उवमाभूवउस्सेह-पमाणंगुल-पल्ल-सागराणमत्थित्तमुवलब्भदे । तम्हा एत्थ वि उवमेएण लोगेण पमाणवो उवमालोगाणुसारिणा पंचदव्वाहारेण होदव्वं, अण्णहा एवस्स उवमालोगत्ताणुववत्तीदो।

सासणसम्माइट्ठि-सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्विय-मारणंतियसमुग्घादगदखेत्तपरूवणा वट्टमाणकाले खेत्तसमाणा । सत्थाणसत्थाण-

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

विशेषार्थ— यहां धवलाकारने लोककी वर्तुलाकार मान्यताके विरुद्ध पांच हेतु दिये हैं। जो इस प्रकार हैं—

(१) प्रथम पृथिवीके मिथ्यादृष्टि जीवोंका मारणान्तिकक्षेत्र तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग कहा गया है। किन्तु यदि लोकको आयतचतुरस्र न मानकर वर्तुलाकार माना जावे तो वह क्षेत्र तिर्यग्लोकसे हीन नहीं किन्तु साधिक हो जाता है। (देखो पृ. १८४)

(२) परिकर्ममें राजु, जगत्श्रेणी, जगत्प्रतर और लोकका सम्बन्ध बतलाकर घनलोकको ३४३ राजुप्रमाण सिद्ध किया है। यह प्रमाण व व्यवस्था वर्तुलाकार लोकमें नहीं पाई जाती।

(३) क्षुद्राबंधमें पंचेन्द्रियतिर्यंच, पंचेन्द्रियतिर्यंचपर्याप्त, पंचेन्द्रियतिर्यंच योनिनी, ज्योतिषी और व्यंतर देवोंके प्रमाणको लानेके लिए अवहारकालोंको कृतयुग्मराशि अर्थात् चारसे पूर्णतः भाजित होनेवाला कहा है, और इनसे जगत्प्रतर निरवशेष भाजित हो जाता है, जिससे जगत्प्रतर भी कृतयुग्मराशि सिद्ध हुआ। किन्तु वर्तुलाकार लोककी मान्यतामें जगत्प्रतर अकृतयुग्मरूप पड़ेगा जिससे उक्त अवहारकालोंद्वारा वह पूर्णतः भाजित नहीं होनेसे वे पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पर्याप्त, योनिनी आदि राशियां लब्ध ही आती हैं।

(४) द्रव्यानुयोगद्वारके व्याख्यानमें गुणस्थानों व मार्गणास्थानोंके भीतर जीवोंका प्रमाण उपरिमविकल्प और अधस्तनविकल्पों द्वारा भी समझाया गया है। किन्तु यदि लोकको उक्त प्रकार वर्तुलाकार मान लिया जाय तो उसमें वर्ग व वर्गमूल की व्यवस्था नहीं बननेसे वे विकल्प बन ही नहीं सकेंगे। (देखो तीसरा भाग, प्रस्तावना पृ. ४५)

(५) यदि यह कहा जाय कि तीन सौ तेतालीस राजुप्रमाणवाले लोकको द्रव्याधार लोक न मानकर केवल कल्पित उपमालोक ही माना जाय, तो यह भी ठीक नहीं है, क्योंकि, उपमेयके अभावमें उपमाका अस्तित्व ही नहीं रहता है। तथा अंगुल, पल्योपम, सागरोपम आदि जो अन्य उपमाप्रमाण माने गये हैं उन सबके आधाररूप उपमेय प्राप्त हैं। अतः प्रमाणलोकको भी काल्पनिक न मानकर सोपमेय ही स्वीकार करना आवश्यक है।

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक और मारणान्तिक-समुद्घातगत सासादनसम्यग्दृष्टि नारकी जीवोंके वर्तमानकालिक स्पर्शनक्षेत्रकी प्ररूपणा

विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादगदेहि सासणसम्मादिट्ठीहि अदीदकाले[1] चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणो फोसिदो। एत्थ पज्जवट्ठियपरूवणा मिच्छादिट्ठिसमाणा। मारणंतियसमुग्घादगदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणो फोसिदो। एत्थ कारणं मिच्छाइट्ठीणं व वत्तव्वं।

सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीणं अप्पणो सव्वपदाणं वट्टमाणकाले खेत्तभंगो,। एदेहि दोहि गुणट्ठाणेहि अदीदकाले सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादगदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो, एगणिरयावासस्स असंखेज्जघणंगुलाणि ठविय तप्पाओग्गाहि संखेज्जबिलसलागाहि गुणिदे तिरियलोगस्स असंखेज्जदिभागमेत्तदंसणादो। मारणंतिय-उववादगदेहि असंजदसम्मादिट्ठीहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो। कुदो? सदुक्खंभदुबाहाणं खादफलस्स तिरियलोगस्स

क्षेत्रप्ररूपणाके समान है। स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिक-समुद्घातगत सासादनसम्यग्दृष्टि नारकी जीवोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मनुष्यक्षेत्रसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। यहां पर पर्यायार्थिकनयसम्बन्धी स्पर्शनक्षेत्रकी प्ररूपणा मिथ्यादृष्टिगुणस्थानके समान है। मारणान्तिक-समुद्घातगत नारकी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने अतीतकालकी अपेक्षा सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और मनुष्यक्षेत्रसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। यहां पर कारण मिथ्यादृष्टियोंके समान कहना चाहिए।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि नारकी जीवोंके अपने सर्वपदोंकी स्पर्शन-प्ररूपणा वर्तमानकालमें क्षेत्रप्ररूपणाके समान है। स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकसमुद्घातगत उक्त दोनों ही गुणस्थानवाले जीवोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है, क्योंकि, एक नारकावासके असंख्यात घनांगुलोंको स्थापन करके तत्प्रायोग्य संख्यात बिलशलाकाओंसे गुणा करने पर तिर्यग्लोकका असंख्यातवां भागमात्र क्षेत्र देखा जाता है। मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादगत असंयतसम्यग्दृष्टि नारकी जीवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है, क्योंकि, (असंख्यात योजन विस्तृत श्रेणीबद्धादि बिलोंके मारणान्तिक व उपपादगत उक्त नारकियोंका) अपने दोनों ओरके दंडाकार व भुजाकार क्षेत्रोंका घनफल तिर्यग्लोकका असंख्यातवां भाग पाया जाता है।

१ अ. क. प्रत्योः 'अदीदकाले' इति पाठो नास्ति।

असंखेज्जदिभागत्तुवलंभादो । जदि वि उड्ढं गंतूण सगबिलवग्गमूलविक्खंभेण मणुसगइं गच्छंति, तो वि तिरियलोगस्सासंखेज्जदिभागो, तिरिच्छेण लद्धखेत्तस्स बिलखेत्तवग्गमूलगुणिदसेढीए संखेज्जदिभागपमाणत्तादो । एदमत्थपदं सव्वत्थ जहासंभवं जाणिऊण जोजेयव्वं ।

बिदियादि जाव छट्ठीए पुढवीए णेरइएसु मिच्छादिट्ठि-सासण-सम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥१७॥

सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदणाकसाय-वेउव्विय-मारणंतिय-उववाद-गदमिच्छादिट्ठीणं उववादविरहिदसेसपदट्ठिदसासणसम्मादिट्ठीणं च परूवणाए खेत्तभंगो, वट्टमाणकालपडिबद्धत्तादो ।

एग बे तिण्णि चत्तारि पंच चोद्दसभागा वा देसूणा[1] ॥ १८ ॥

यद्यपि ऊपर जाकर वर्गमूलप्रमाण अपने बिलके विष्कम्भसे नारकी मनुष्यगतिको जाते हैं, तो भी तिर्यग्लोकका असंख्यातवां भाग ही स्पर्शनक्षेत्र रहता है, क्योंकि, तिरछेरूपसे लब्ध उस क्षेत्रका प्रमाण, बिलसम्बन्धी क्षेत्रके वर्गमूलसे गुणित जगत्श्रेणीका संख्यातवां भाग ही होता है । यह अर्थपद सर्वत्र यथासंभव जान करके जोड़ना चाहिए ।

द्वितीय पृथिवीसे लेकर छठी पृथिवी तक प्रत्येक पृथिवीके नारकियोंमें मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १७ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक और मारणान्तिक समुद्घात तथा उपपादको प्राप्त मिथ्यादृष्टि नारकी जीवोंकी तथा उपपादविरहित और शेष पदप्रतिष्ठित सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंकी स्पर्शनसम्बन्धी क्षेत्रप्ररूपणा वर्तमानकालसे प्रतिबद्ध होनेसे क्षेत्रप्ररूपणाके समान है ।

उक्त जीवोंने अतीतकालकी अपेक्षा चौदह भागोंमेंसे कुछ कम एक, दो, तीन, चार और पांच भाग स्पर्श किये हैं ॥ १८ ॥

यहांपर पहले 'वा' शब्दसे सूचित अर्थको कहते हैं— स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकसमुद्घातगत द्वितीयादि पांच पृथिवीके मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि नारकियोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र अतीतकालमें स्पर्श किया है । यहांपर कारण पूर्वके समान ही कहना चाहिए । दूसरी पृथिवीमें मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादगत मिथ्यादृष्टि नारकी जीवोंने अतीतकालमें एक बटे चौदह ($\frac{1}{14}$) भाग स्पर्श किया है । तीसरी

[1] द्वितीयादिषु प्राक्सप्तम्या मिथ्यादृष्टिभिः सासादनसम्यग्दृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः, एकः द्वौ त्रयः चत्वारः पंच चतुर्दशभागा वा देशोनाः । स. सि. १, ८.

एत्थ 'वा' सद्दसूचिदत्थं ताव वत्तइस्सामो। सत्थाणसत्थाण-विहारवदि-सत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादगदेहि विदियादि पंचपुढविमिच्छादिट्ठि-सासण-सम्मादिट्ठीहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो अदीदकाले फोसिदो। एत्थ कारणं पुव्वं व वत्तव्वं। मारणंतिय-उववादगदेहि मिच्छादिट्ठीहि अदीदकाले एगो चोद्दसभागो बिदियाए पुढवीए फोसिदो। तदियाए वे चोद्दसभागा, चउत्थीए तिण्णि चोद्दसभागा, पंचमाए चत्तारि चोद्दसभागा, छट्ठीए पंच चोद्दसभागा, सव्वत्थ णेरइयाणमगम्मखेत्तेणूणा त्ति वत्तव्वं। एवं सासणसम्मादिट्ठीणं पि वत्तव्वं। णवरि उववादो णत्थि। किमट्ठमेदेसिमदीदकाले एत्तियं खेत्तं होदि? णिग्गमण-पवेसणं पडि सम्मादिट्ठीणं व णियमाभावा। भोगभूमिसंठाण-संठिदा असंखेज्जदीव-समुद्दा णेरइएहि कधं फुसिज्जंति? ण, तत्थ वि णेरइयाणं णिग्गमणपवेसं पडि विरोहाभावादो।

सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो[1] ॥ १९ ॥

पृथिवीके नारकी जीवोंने दो बटे चौदह ($\frac{२}{१४}$) भाग, चौथी पृथिवीके नारकियोंने तीन बटे चौदह ($\frac{३}{१४}$) भाग, पांचवी पृथिवीके नारकियोंने चार बटे चौदह ($\frac{४}{१४}$) भाग और छठी पृथिवीके नारकियोंने पांच बटे चौदह ($\frac{५}{१४}$) भाग प्रमाणक्षेत्र स्पर्श किया है। इन सभी पृथिवियोंके नारकियोंका यह क्षेत्र अगम्य क्षेत्रकी अपेक्षा देशोन कहना चाहिए। इसी प्रकारसे उक्त पृथिवियोंके सर्व पदगत सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका भी स्पर्शनक्षेत्र कहना चाहिए। विशेष बात यह है कि उनके उपपादपद नहीं होता है।

शंका– उक्त नारकियोंका अतीतकालमें इतना (सूत्रोक्त) स्पर्शनक्षेत्र क्यों होता है?

समाधान– इतना अधिक स्पर्शनक्षेत्र इसलिए होता है कि उक्त पृथिवियोंमें निर्गमन और प्रवेशनके प्रति अर्थात् जाने और आनेकी अपेक्षा सम्यग्दृष्टि जीवोंके समान मिथ्यादृष्टि जीवोंका नियम नहीं है।

शंका– भोगभूमिकी रचनासे संस्थित असंख्यात द्वीप-समुद्र नारकियोंने कैसे स्पर्श किये हैं?

समाधान– नहीं, क्योंकि, वहांपर भी नारकियोंका निर्गमन और प्रवेश होनेमें कोई विरोध नहीं है। अर्थात् मारणान्तिकसमुद्घातकी अपेक्षा नारकी जीवोंका उक्त क्षेत्रमें प्रवेश और निर्गमन बन जाता है।

द्वितीय पृथिवीसे लेकर छठी पृथिवी तक प्रत्येक पृथिवीके सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि नारकी जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १९ ॥

१ सम्यङ्मिथ्यादृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः। स. सि. १, ८.

एदेसिं दोण्हं गुणट्ठाणाणं वट्टमाणकाले सत्थाणविहारवदिसत्थाणं मारणंतिय-पदट्ठिय-असंजदसम्माविट्ठीणं च परूवणाए खेत्तभंगो। एदेहि चेव अदीदकाले सत्थाणविहारवत्सत्थाणमारणंतियपदट्ठिदअसंजदसम्माविट्ठीहि य विदियादि-छट्ठिपुढविविसेसिएहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो। कारणं पुव्वं व वत्तव्वं। विदियादि छसु पुढवीसु असंजदसम्माविट्ठीण-मुववादो णत्थि।

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

सत्तमाए पुढवीए णेरइएसु मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो[1] ॥ २० ॥

एदं सुत्तं वट्टमाणखेत्तपरूवयं,[2] उवरिमसुत्तेण अदीदाणागदकालविसिट्ठखेत्त-परूवणादो। एदस्स परूवणाए खेत्तभंगो।

छ चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ २१ ॥

सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादगदेहि मिच्छा-दिट्ठीहि तीदाणागदकालेसु चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्ज-

सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि इन दोनों गुणस्थानोंके स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकसमुद्घात, इन पांच पदोंपर स्थित नारकी जीवोंकी तथा मारणान्तिकपदस्थित असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंकी वर्तमानकालमें स्पर्शनकी प्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है। द्वितीय पृथिवीसे लेकर छठी पृथिवी तकके उक्त गुणस्थान-वर्ती स्वस्थानादि पांच पदस्थित जीवोंने और मारणान्तिकपदस्थित असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और अढाईद्वीपसे असंख्यात-गुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। इसका कारण पूर्वके समान ही कहना चाहिए। द्वितीयादि छह पृथिवियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका उपपाद नहीं होता है।

सातवीं पृथिवीमें नारकियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ २० ॥

यह सूत्र वर्तमानकालिक क्षेत्रकी प्ररूपणा करनेवाला है, क्योंकि, आगेके सूत्रद्वारा अतीत अनागत कालविशिष्ट क्षेत्रकी प्ररूपणा की गई है। इसकी अर्थात् वर्तमानकालके स्पर्शनक्षेत्रकी प्ररूपणा क्षेत्रके समान है।

सातवीं पृथिवीके मिथ्यादृष्टि नारकियोंने अतीतकालकी अपेक्षा कुछ कम छह बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ २१ ॥

---

१ सप्तम्यां पृथिव्यां मिथ्यादृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः षट् चतुर्दशभागा वा देशोनाः। स. सि. १, ८.

२ प्रतिषु 'परूवेयं' इति पाठः।

गुणो फोसिदो। एत्थ कारणं पुव्वं व वत्तव्वं। एसो 'वा' सद्दत्थो। मारणंतिय-उववादगदेहि मिच्छादिट्ठीहि तीदाणागदकालेसु छ चोद्दसभागा चित्ताए जोयण-सहस्सेणूणहेट्ठिमचदुहि सहस्सेहि ऊणा फोसिदा। ण केवलं हेट्ठिल्लजोयणेहि चेव ऊणा, किंतु अण्णो वि देसो लोगणालीए अब्भंतरे णेरइएहि अप्फुत्तो अत्थि। तं कधं णव्वदे ? 'विदियाए पुढवीए एगो चोद्दसभागो देसूणो' इदि सुत्तवयणादो। अण्णहा एदस्स देसूणस्स पिंडिदूण संपुण्णो एगो चोद्दसभागो होज्ज, चित्ताए जोयण-सहस्सबहलेसादो'। एत्थ पुणो केण खेत्तेणूणो एगो चोद्दसभागो त्ति वुत्ते वुच्चदे-णिरयगइपाओग्गाणुपुव्वि-पंचिंदियतिरिक्खगइपाओग्गाणुपुव्वीहि पडिबद्धखेत्तं मोत्तूण अण्णखेत्तेणूणो [illegible] चत्तारिरज्जुसव्वखेत्तेणूणत्तं किण्ण वुच्चदे ? ण, तत्थ वि आणुपुव्वि-विवागपाओग्गखेत्ताणं संभवं पडि विरोहाभावादो।

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकसमुद्घातगत मिथ्यादृष्टि नारकी जीवोंने अतीत और अनागत कालमें सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। यहां पर भी कारण पूर्वके समान कहना चाहिए। यही 'वा' शब्दका अर्थ है। मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद पदगत मिथ्यादृष्टि नारकी जीवोंने अतीत और अनागतकालमें चित्रा पृथिवीके एक हजार योजनसे कम जो सातवीं पृथिवीके नीचेके चार हजार योजन हैं उनसे कम छह बटे चौदह ($\frac{6}{14}$) भाग प्रमाण क्षेत्र स्पर्श किया है। किन्तु यहां पर लोकनालीके भीतर अन्य भी देश (क्षेत्र) नारकियोंसे अछूता (अस्पृष्ट) है।

शंका— यह कैसे जाना ?

समाधान— 'द्वितीय पृथिवीका स्पर्शन देशोन एक बटे चौदह भाग है' इस सूत्रवचनसे उक्त बात जानी जाती है। यदि ऐसा न माना जाय, तो इस पृथिवीका देशोन क्षेत्र पिंडित कर अर्थात् मिला देने पर सम्पूर्ण एक बटे चौदह ($\frac{1}{14}$) भाग हो जायगा, क्योंकि, दूसरी पृथिवीके नीचेके एक हजार योजन क्षेत्रको एक राजुमेंसे कम करने पर भी उसमें चित्रा पृथिवीका एक हजार योजन क्षेत्र प्रविष्ट हो जाता है।

शंका— यहां पर एक बटे भाग चौदह किस क्षेत्रसे कम कहा है ?

समाधान— ऐसी आशंका करनेपर उत्तर देते हैं कि नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी और पंचेन्द्रियतिर्यंचगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, इन दोनोंसे प्रतिबद्ध क्षेत्रको छोड़कर अन्य शेष क्षेत्रसे कम कहा है।

शंका— वायुसे रुके हुए सर्वक्षेत्रसे कम उक्त क्षेत्र क्यों नहीं कहा ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, वहांपर भी आनुपूर्वीनामकर्मके विपाकके प्रायोग्य क्षेत्रके संभव होनेमें कोई विरोध नहीं है।

---

१ म प्रतौ 'पवेहदो' इति पाठः।

सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो[1] ॥ २२ ॥

एदेसिं तिण्हं गुणट्ठाणाणं सत्तमाए पुढवीए मारणंतिय-उववादपदा णत्थि । सेसपंचपदट्ठिएहि तिण्णिगुणट्ठाणजीवेहि तीदाणागदवट्टमाणकालेसु चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । कारणं पुव्वं व वत्तव्वं ।

तिरिक्खगदीए तिरिक्खेसु मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, ओघं[2] ॥ २३ ॥

सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय-मारणंतिय-उववादगदेहि मिच्छादिट्ठीहि तीदाणागदवट्टमाणकालेसु सव्वलोगो फोसिदो । विहारवदिसत्थाणपरिणदेहि तीदाणागदवट्टमाणकालेसु तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । असंखेज्जेसु समुद्देसु तसजीवविरहिदेसु कधं

सातवीं पृथिवीके सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि नारकियोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ २२ ॥

इन तीनों ही गुणस्थानवर्ती जीवोंके सातवीं पृथिवीमें मारणान्तिक और उपपाद, ये दो पद नहीं होते हैं । शेष स्वस्थानादि पांच पदोंपर विद्यमान उक्त तीन गुणस्थानवर्ती जीवोंने अतीत अनागत और वर्तमान, इन तीनों कालोंमें सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मनुष्यलोकसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । इसका कारण पूर्वके समान ही कहना चाहिए ।

तिर्यंचगतिमें तिर्यंचोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? ओघके समान सर्वलोक किया है ॥ २३ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, कषाय, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादगत मिथ्यादृष्टि तिर्यंच जीवोंने भूत, भविष्य और वर्तमान, इन तीनों कालोंमें सर्वलोक स्पर्श किया है । विहारवत्स्वस्थानसे परिणत तिर्यंच मिथ्यादृष्टि जीवोंने अतीत, अनागत और वर्तमान इन तीनों कालोंमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है ।

---

१ शेषैस्त्रिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः । स. सि. १, ८.

२ तिर्यग्गतौ तिरश्चां तिर्यग्मिथ्यादृष्टिभिः सर्वलोकः स्पृष्टः । स. सि. १, ८.

आचार्य श्री सूर्यसागर जी महाराज

विहरंततिरिक्खाणं संभवो ? ण तत्थ पुव्ववेरियदेवाणं पयोगदो विहारविरोहाभावादो । अदीदकाले विहरंततिरिक्खेहि [1]छुत्तखेत्तायणविहाणं वुच्चदे-पुव्ववेरियदेवपयोगादो उवरि जोयणलक्खंचितमेरु-कुलसेल-कुंडल-रुजग-माणुसुत्तर-णगिंदवरपव्वदादिरुद्धखेत्तं मोत्तूण सव्वं फुसंति त्ति लक्खजोयणबाहल्लं रज्जुपदरं ठविय उड्ढमेगूणवंचासखंडाणि करिय पदरागारेण ठइदे तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागमेत्तखेत्तं होदि । वेउव्वियसमुग्घादगदाणं वट्टमाणकाले खेत्तभंगो । तीदाणागदकालेसु तिण्हं लोगाणं संखेज्जदिभागो, दोहि लोगेहिंतो असंखेज्जगुणो फोसिदो । कारणं, वाउकाइयजीवा पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ता विउव्वणक्खमा वट्टमाणकाले होंति[2], ते रज्जुपदरं पंचरज्जुबाहल्लं अदीदकाले फुसंति त्ति ।

सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं[3], लोगस्स असंखेज्जदिभागो[4] ॥ २४ ॥

शंका– त्रस जीवोंसे विरहित असंख्यात समुद्रोंमें विहारवत्स्वस्थानसे परिणत हुए तिर्यंचोंका अस्तित्व कैसे संभव है ?

समाधान– नहीं, क्योंकि, पूर्वभवके वैरी देवोंके प्रयोगसे विहार होनेमें कोई विरोध नहीं है, और इसलिए वहां पर उनका अस्तित्व भी संभव है ।

अब अतीतकालमें विहार करनेवाले तिर्यंचोंसे स्पर्श किये गए क्षेत्रके निकालनेके विधानको कहते हैं– पूर्वभवके वैरी देवोंके प्रयोगसे तिर्यञ्च ऊपर एक लाख योजन प्रमाण मेरु, कुलाचल, कुंडलगिरि, रुचकगिरि, मानुषोत्तर और नगेन्द्रवर पर्वतादिकोंसे रुद्ध क्षेत्रको छोड़कर सर्व द्वीप और समुद्रोंका स्पर्श करते हैं । इसलिए एक लाख योजन बाहल्यवाले राजुप्रतरको स्थापन कर ऊपरकी ओरसे उनंचास खंड करके प्रतराकारसे स्थापित करनेपर तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र हो जाता है । वैक्रियिकसमुद्घातगत तिर्यंचोंका स्पर्शन वर्तमानकालमें क्षेत्रप्ररूपणाके समान है । अतीत और अनागतकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका संख्यातवां भाग और तिर्यग्लोक तथा मनुष्यलोक, इन दोनों लोकोंसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । इसका कारण यह है कि पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र वायुकायिक जीव वर्तमानकालमें विक्रिया करनेमें समर्थ होते हैं और वे पांच राजु बाहल्यवाले एक राजुप्रतरप्रमाण क्षेत्रको अतीतकालमें स्पर्श करते हैं ।

सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यंच जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ २४ ॥

१ आ प्रतौ ' खुत्त ' इति पाठः ।
२ गो. जी. २५८. ३ प्रतिषु ' फोसिदं ' इति पाठो नास्ति ।
४ सासादनसम्यग्दृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः सप्त चतुर्दशभागा वा देशोनाः । स. सि. १, ८.

एदस्स सुत्तस्स अत्थो खेत्तम्हि परूविदो ।

सत्त चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ २५ ॥

एत्थ 'वा' सद्दट्ठो वुच्चदे— सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादगदसासणसम्मादिट्ठीहि तीदाणागदकालेसु तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । एत्थ ताव तिरिक्खसासणसत्थाणसत्थाणखेत्ताणविधाणं वुच्चदे— लवण-कालोदग-संयंभूरमणसमुद्दे मोत्तूण सेससमुद्देसु णत्थि सत्थाणसत्थाणसासणा, तत्थुप्पण्णतसजीवाणमभावादो । सव्वेसु दीवेसु अत्थि सत्थाणसत्थाणसासणा, तत्थ तसजीवाणमुप्पत्तिदंसणादो । सत्थाणसत्थाणसासणेहि सव्वे दीवा तिण्णि समुद्दा तीदकाले फुसिज्जंति त्ति तेसिमाणयणट्ठमिमा परूवणा कीरदे । जंबूदीवो खेत्तगणिदेण ।

सत्त णव सुण्ण पंच य छण्णव चदु एक्क पंच सुण्णं च ।
जंबूदीवस्सेदं गणिदफलं होइ णायव्वं[1] ॥ ४ ॥

इस सूत्रका अर्थ क्षेत्रप्ररूपणामें कहा जा चुका है ।

सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यंचोंने भूतकालकी अपेक्षा कुछ कम सात बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ २५ ॥

इस सूत्रमें स्थित 'वा' शब्दका अर्थ कहते हैं— स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकसमुद्घातगत सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने अतीत और अनागतकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । अब यहांपर तिर्यंच सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके स्वस्थानस्वस्थान क्षेत्रके निकालनेके विधानको कहते हैं—

लवणसमुद्र, कालोदकसमुद्र और स्वयम्भूरमणसमुद्रको छोड़कर शेष समुद्रोंमें स्वस्थानस्वस्थान पदवाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीव नहीं होते हैं, क्योंकि, उन समुद्रोंमें त्रस जीव नहीं उत्पन्न होते हैं । मात्र सर्वद्वीपोंमें स्वस्थानस्वस्थान पदवाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीव होते हैं, क्योंकि, वहांपर त्रसजीवोंकी उत्पत्ति देखी जाती है । स्वस्थानस्वस्थानपदविशिष्ट सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यंच जीवोंने सर्वद्वीप और तीन समुद्र अतीतकालमें स्पर्श किये हैं, इसलिए उनका प्रमाण लानेकेलिए यह प्ररूपणा की जाती है । जम्बूद्वीपके क्षेत्रका गणित करनेपर—

सात, नौ, शून्य, पांच, छह, नौ, चार, एक, पांच और शून्य अर्थात् ७९०५६९४१५० वर्गयोजन प्रमाण जम्बूद्वीपका क्षेत्रफल होता है, ऐसा जानना चाहिए ॥ ४ ॥

---

१ अवरपंचेक्कचउणव छ पण सुण्ण णवय सत्तो व । अंककमे जोयणया जंबूदीवस्स खेत्तफलं ॥५८॥ ७९०५६९४१५० । एक्को कोसो दंडा सहस्समेक्कं हुवेदि पंच सया । तेवण्णाए सहिदा किक्कू हत्थो समुप्पण्णो ॥ ५९ ॥ को. १ दंड १५५३।०।० एक्को होदि विहत्थी सुण्णं पादम्मि अंगुलं एक्कं । जव छ तिय जूका लिक्खाउ तिण्णि णादव्वा ॥ ६० ॥ १।०।१।६।३ कम्मक्खीणीए दुवे बालग्गा अवरभोगभूमीए । सत्त हुवंते मज्झिमभोगखिदीए वि तिण्णि पुढ ॥ ६१ ॥ २।७।३ सत्त य सण्णासण्णा ओसण्णासण्णया तहा एक्को । परमाणू अणंताणंता संखा इमा होदि ॥ ६२ ॥ ७।१ । अडतालसहस्साइं पणवण्णुत्तर चउस्सया अंसा । हारी एक्कं लक्खं पंच सहस्साणि चउ सया णवयं ॥ ६३ ॥ ४८५५५ लि. प. भाणुसलोया । पण्णासमेकदालं अब छप्पणास सुण्ण णव सदरी । साहियकोसं च हवे जंबूदीवस्स सुहुमफलं ॥ ३१३ ॥ क्षि. सा.

एदस्स एया सलागा होदि १ । एदेण पमाणेण लवणसमुद्दे कीरमाणे सो जंबूदीवादो खेत्तगणिदेण चउवीसगुणो होदि । वुत्तं च–

बाहिरसूईवग्गो अब्भंतरसूइवग्गपरिहीणो ।
जंबूदीवपमाणा खंडा ते होंति चउवीसा[3] ॥ ४ ॥

एदीए गाहाए सव्वेसिं दीव-समुद्दाणं पुध पुध खेत्तफलसलागाओ आणेदव्वाओ। तत्थ अट्ठण्हं खेत्तफलसलागाओ एदाओ–

१	२४	१४४	६७२	२८८०	११९०४	४८३८४	१९५०७२

लवणसमुद्दखेत्तफलमप्पणो पमाणेण एगं होदि । लवणसमुद्दपमाणेण धादइखंडम्हि कीरमाणे सो छग्गुणो होदि । कालोदयसमुद्दो अट्ठावीसगुणो होदि । पोक्खरदीवो वीसुत्तरसदगुणो होदि । पोक्खरसमुद्दो चदुसदछण्णउदिगुणो होदि ।

इसकी अर्थात् जम्बूद्वीपके उक्त क्षेत्रफलकी एक शलाका (१) होती है। इस प्रमाणसे लवणसमुद्रके क्षेत्रका गणित करनेपर वह जम्बूद्वीपके क्षेत्रफलसे चौबीस गुणा होता है । कहा भी है– लवणसमुद्रकी बाह्यसूचीके वर्गको उसीकी आभ्यन्तर सूचीके वर्गके प्रमाणसे कम करनेपर जम्बूद्वीपके क्षेत्रफलप्रमाण उसके चौबीस खंड होते हैं ॥ ५ ॥

इस गाथाके अनुसार समस्त द्वीप और समुद्रोंकी पृथक् पृथक् क्षेत्रफल शलाकाएं ले आना चाहिए । उनमेंसे आठ द्वीप-समुद्रोंकी क्षेत्रफल-शलाकाएं इस प्रकार होती हैं– १, २४, १४४, ६७२, २८८०, ११९०४, ४८३८४, १९५०७२.

उदाहरण– (१) लवणसमुद्र-बाह्यसूची ५ लाख, आभ्यन्तरसूची १ लाख योजन.
$५^२ - १^२ = २५ - १ = २४$.
(२) धातकीखंडद्वीप-बाह्यसूची १३ लाख, आभ्यन्तरसूची ५ लाख योजन.
$१३^२ - ५^२ = १६९ - २५ = १४४$.
(३) कालोदधि-बाह्यसूची २९ लाख, आभ्यन्तरसूची १३ लाख योजन.
$२९^२ - १३^२ = ८४१ - १६९ = ६७२$ । इत्यादि ।

लवणसमुद्रका क्षेत्रफल अपने प्रमाणकी अपेक्षा एक होता है । लवणसमुद्रके प्रमाणसे धातकीखंडका प्रमाण करनेपर धातकीखंड छह गुणा होता है । कालोदधिसमुद्र अट्ठाईसगुणा है । पुष्करद्वीप एक सौ बीस गुणा है । पुष्करवरसमुद्र चारसौ छयानवे गुणा है । इस प्रकारसे लवणसमुद्रकी जम्बूद्वीपप्रमाणशलाकाओंसे द्वीप और सागरोंसम्बन्धी जम्बूद्वीपप्रमाण शलाकाएं

[3] बाहिरसूईवग्गो अब्भंतरसूइवग्गपरिहीणो । लक्खस्स कदिम्मि हिदे इच्छियदीवद्धिखंडपमाणं ॥ ति. प. ५, ३६. बाहिरसूईवग्गं अब्भंतरसूइवग्गपरिहीणं । जंबूवासविभत्ते तत्तियमेत्ताणि खंडाणि । त्रि. सा. ३१६.

एवं लवणसमुद्दजंबूदीवसलागाहि दीव-सायरजंबूदीवसलागाओ ओवट्टिय गुणगारा उप्पादेदव्वा । १।६।२८।१२०।४९६।२०१६।८१२८ । एवं ठविदगुणगारसलागाहि लवणसमुद्दजंबूदीवसलागाओ गुणिय जंबूदीवजोयणपदराणि गुणिदे इच्छिददीव-सायराणं खेत्तफलं होदि । संपहि समुद्दाणं चेव खेत्तफलमाणेदुमिच्छामो त्ति अप्पणो इच्छिद-इच्छिदसमुद्दाणं लवणसमुद्दगुणगारसलागाणयणविधाणं वुच्चदे– लवणोदय-समुद्दादो कालोदयसमुद्दो खेत्तफलेण अट्ठावीसगुणो । तम्हि उप्पाइज्जमाणे दो रूवे ठविय पढमस्स वड्ढी णत्थि त्ति एगरूवमवणिय सेसेगरूवं विरलिय सोलस दादूण अण्णोण्णब्भासे कदे सोलस होंति । ते दुगुणिय चत्तारि अवणिदे कालोदयसमुद्दस्स अट्ठावीस गुणगारसलागा उप्पज्जंति । तेहि लवणोदयसमुद्दस्स खेत्तफले गुणिदे कालोदयसमुद्दस्स खेत्तफलं होदि । लवणसमुद्दादो पोक्खरसमुद्दो खेत्तगुणिदेण चत्तारिसदछण्णउदिमेत्तगुणो होदि । तम्हि गुणगारे आणिज्जमाणे तिण्णि समुद्दा त्ति

अपवर्तितकर गुणकार उत्पन्न करना चाहिए जो इस प्रकार आते हैं– १, ६, २८, १२०, ४९६, २०१६, ८१७८ ।

उदाहरण– (१) लवणसमुद्रकी जम्बूद्वीपशलाकाएं २४ । ल. स. की. प्रमाण शलाकाएं २४ । $\frac{२४}{२४}$ = १ लवणसमुद्रकी गुणकारशलाका ।

(२) धातकीखंडद्वीपकी प्रमाणशलाका १४४ । $\frac{१४४}{२४}$ = ६ गुणकारशलाकाएं।

(३) कालोदकसमुद्रकी प्रमाणशलाका ६७२ । $\frac{६७२}{२४}$ = २८ गुणकार-शलाकाएं । इत्यादि ।

इस प्रकार स्थापन की गई गुणकारशलाकाओंसे लवणसमुद्रकी जम्बूद्वीपप्रमाण शलाकाओंको गुणित करनेपर पुनः उसे जम्बूद्वीपके प्रतरात्मक योजनोंसे गुणा करनेपर इच्छित द्वीप और क्षेत्रफल आता है ।

उदाहरण– (१) धातकीद्वीप-गुणकारशलाका ६;

६ × २४ × ७९०५६९४१५० धातकीद्वीपका क्षेत्रफल ।

(२) कालोदधि-गुणकारशलाका २८;

२८ × २४ × ७९०५६९४१५० कालोदधिका क्षेत्रफल ।

(३) पुष्करद्वीप-गुणकारशलाका १२०;

१२० × २४ × ७९०५६९४१५० पुष्करद्वीपका क्षेत्रफल । इत्यादि ।

अब केवल समुद्रोंका ही क्षेत्रफल निकालना चाहते हैं, इसलिए अपने अपने इष्ट समुद्रोंकी लवणसमुद्रप्रमाण गुणकारशलाकाओंके निकालनेका विधान कहते हैं—

लवणोदकसमुद्रसे कालोदकसमुद्र क्षेत्रफलकी अपेक्षा अट्ठाईस गुणा है । उसे उत्पन्न करनेके लिए दो रूपको स्थापनकर प्रथमसमुद्रकी वृद्धि नहीं है, इसलिए एक रूप कम कर शेष एक रूपको विरलन कर उसके ऊपर सोलह देकर परस्परमें गुणित करनेपर सोलह ही होते

कट्टु रूवूणं करिय विरलिय रूवं पडि सोलस दादूण अण्णोण्णब्भासे कदे वेसदछप्पण्णा होंति। ते दुगुणिय पुध ट्ठविय पुणो पुव्विल्लविरलणमेव विरलिय रूवं पडि चत्तारि दादूण अण्णोण्णगुणं करिय उप्पण्णरासिं दुगुणरासीदो अवणिदे पोक्खरसमुद्दस्स गुणगारसलागा होंति। तेहि लवणसमुद्दखेत्तफले गुणिदे पोक्खरसमुद्दस्स खेत्तफलं होदि। पुणो चउत्थसमुद्दो लवणसमुद्दं दट्ठूणट्ठावीससदवाहिय अट्ठसहस्सगुणो होदि। एदस्स गुणगारस्स उप्पत्ती वुच्चदे– चत्तारि रूवूणे करिय विरलिय रूवं पडि सोलस दादूण अण्णोण्णगुणे कदे छण्णउदिरूवाहियचत्तारिसहस्साणि होंति। ते दुगुणिय पुध ट्ठविय पुव्विल्लविरलणरासिं विरलिय रूवं पडि चत्तारि दादूण अण्णोण्णगुणे कदे चउसट्ठी उप्पज्जदि। पुणो पुव्विल्लदुगुणिदरासिम्हि एदमवणिदे चउत्थसमुद्दस्स गुणगारसलागा होंति। एदाहि लवणसमुद्दखेत्तफले गुणिदे चउत्थसमुद्दखेत्तफलं होदि। एवमणेण बीजपदेण सव्वसमुद्दाणं खेत्तफलमाणेदव्वं।

.....

हैं। उन्हें दूना कर उसमेंसे एक कम करके शेष बचे दोका विरलनकर कालोदकसमुद्रकी अट्ठाईस गुणकारशलाकाएं उत्पन्न होती हैं।

उदाहरण– कालोदधि लवणसमुद्रसे दूसरा समुद्र है, अतः क्रमशलाका २.

१६

२ – १ = १; १ = १६; १६ × २ – ४ = २८. कालोदकसमुद्रकी गुणकारशलाका.

कालोदकसमुद्रकी गुणकारशलाकाओं द्वारा लवणसमुद्रके क्षेत्रफलको गुणा करने पर कालोदकसमुद्रका क्षेत्रफल हो जाता है। लवणसमुद्रकी अपेक्षा पुष्करसमुद्र क्षेत्रफलकी अपेक्षा चारसौ छयानवे गुणा है। उसका गुणकार निकालनेके लिए पुष्करसमुद्र तीसरा है, इसलिए तीनमेंसे एक कम करके शेष बचे दोका विरलनकर एक एक रूपके प्रति सोलह देकर परस्परमें गुणा करने परदो सौ छप्पन होते हैं। उन्हे दुगुणा करके पृथक् स्थापित कर पुनः पहिलेके विरलनको ही विरलित कर प्रत्येक रूपके प्रति चार देकर और परस्परमें गुणा करने पर जो राशि उत्पन्न हो उसे उसीकी दूनी राशिमेंसे घटाने पर पुष्करसमुद्रकी गुणकारशलाकाएं होती हैं।

उदाहरण– पुष्करसमुद्रकी क्रमशलाका ३.

१६ × १६

३ – १ = २; १ १ = २५६; २५६ × २ = ५१२.

४ × ४

विरलनराशि २; १ १ = १६; ५१२ – १६ = ४९६ पुष्करसमुद्रकी गुणकारशलाका.

इन गुणकारशलाकाओंसे लवणसमुद्रके क्षेत्रफलको गुणा करनेपर पुष्करसमुद्रका क्षेत्रफल हो जाता है। पुनः चौथा समुद्र लवणसमुद्रको देखते हुए आठ हजार एक सौ अट्ठाईस गुणा है। इस गुणकारकी उत्पत्ति कहते हैं—

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

तत्थ सव्वपच्छिमस्स सयंभुरमणसमुद्दस्स खेत्तफलाणयणं भण्णदे– वीव-सागररूवाणि अद्धिदे समुद्दसंखा होदि। ताओ समुद्दसलागाओ रूवूणाओ करिय विरलिय रूवं पडि सोलस दादूण अण्णोण्णब्भत्थे कदे जोयणलक्खवग्गेण छत्तीस-सदरूवाहियतिसहस्सप्पदुप्पण्णेण जगपदरम्हि भागे हिदे एगभागो आगच्छदि। पुणो एदं दुगुणिय पुध ट्ठविय पुव्विल्लविरलणं विरलिय रूवं पडि चत्तारि दादूण अण्णोण्णब्भत्थे कदे छप्पण्णजोयणलक्खाए सेढिं खंडेदूण एगखंडमागच्छदि। तं पुव्विल्लदुगुणिदरासिम्हि अवणिदे सयंभूरमणसमुद्दस्स गुणगारसलागा होंति। एदाहि लवणसमुद्दखेत्तफले गुणिदे सयंभूरमणसमुद्दस्स खेत्तफलं जगपदरस्स वासीदिभागो सादिरेगो होदि[1]। एत्थ करणगाहा–

चारमेंसे एक कम करके शेषको विरलनकर और प्रत्येक रूपके प्रति सोलह देकर परस्पर गुणा करनेपर चार हजार छ्यानवे होते हैं,। उन्हें दुगुणाकर पृथक् स्थापनकर पहलेकी विरलनराशिको विरलित कर रूपके प्रति चार देकर परस्पर गुणा करनेपर चौंसठ संख्या उत्पन्न होती है। पुनः पहलेकी दुगुणित राशिमेंसे इस राशिको कम कर देनेपर चौथे समुद्रकी गुणकारशलाकाएं हो जाती हैं।

उदाहरण– चतुर्थसमुद्रकी क्रमशलाका ४;

$$४-१=३;\ \overset{१६\times१६\times१६}{१\quad १\quad १}=४०९६;\ ४०९६\times२=८१९२;$$

$$\overset{४\times४\times४}{१\ १\ १}=६४;\ ८१९२-६४=८१२८$$ चतुर्थ समुद्रकी गुणकारशलाका.

इन गुणकारशलाकाओंसे लवणसमुद्रके क्षेत्रफलको गुणा करनेपर चौथे समुद्रका क्षेत्रफल हो जाता है। इस प्रकार इस उक्त बीजपदसे सभी समुद्रोंका क्षेत्रफल निकालना चाहिए।

उनमें सबसे अन्तिम जो स्वयम्भूरमणसमुद्र है, उसके क्षेत्रफलको निकालनेका विधान कहते हैं– सर्वद्वीप और समुद्रोंकी जितनी संख्या है, उसे आधा करने पर सर्व समुद्रोंकी संख्या हो जाती है। उन समुद्रशलाकाओंको एक कम करके विरलनकर और प्रत्येक रूपके प्रति सोलह देकर आपसमें गुणा करने पर तीन हजार एक सौ छत्तीससे गुणित एक लाख योजनके वर्गसे जगत्प्रतरमें भाग देने पर एक भाग आता है। पुनः इसे दूना करके पृथक् स्थापित कर पहलेके विरलनको विरलितकर प्रत्येक रूपके प्रति चार देकर आपसमें गुणा करने पर छप्पन्न लाख योजनके प्रमाणसे जगत्श्रेणीको खंडित करनेपर एक खंड आ जाता है। उसे पहले दूनी की गई राशिमेंसे घटा देनेपर स्वयंभूरमण समुद्रकी गुणकारशलाकाएं हो जाती हैं।

१ सयंभूरमणसमुद्दस्स खेत्तफलं जगसेढीए वग्गं णवरूवेहि गुणिय सत्तपदचउसीदिरूवेहि भजिदमेत्तं पुणो एक्कलक्खं बारससहस्सपंचसयजोयणेहि गुणिदरज्जूए अब्भहियं होदि। ति. प. पत्र १७१.

सोलह सोलसहि गुणे रूवूणोवट्टिसलागसंखा त्ति ।
दुगुणम्हि तम्हि सोहे चउक्कपहदं चउक्कं तु ॥ ६ ॥

संपदि सव्वसमुद्दाणं खेत्तफलसंकलणा वुच्चदे– लवणसमुद्दस्स एगा गुणगारसलागा, कालोदयसमुद्दस्स अट्ठावीसं एदेसिं संकलणमाणिज्जमाणे 'रूपोनमादिसंगुणमेकोनगुणोन्मथितमिच्छा' एदेण अज्जाखंडेण आणेदव्वं । एगमादिं कादूण सोलसगुणकमेण गदा त्ति कट्टु दो रूवे ठविय[1] अद्धिय पुध[2] ठविय उवरि एगरूवं दादव्वं । पुणो तं सोलसेहि गुणिय 'रूपेषु गुणमर्थेषु वर्गणं' एदेण अज्जाखंडेण

इन शलाकाओंसे लवणसमुद्रके क्षेत्रफलको गुणित करनेपर स्वयम्भूरमणसमुद्रका क्षेत्रफल जगत्प्रतरका साधिक ब्यासीवां भाग आता है । इस विषयमें करणगाथा इसप्रकार है–

विवक्षित समुद्रकी गुणशलाकाकी संख्यामेंसे एक कम करके शेष संख्या प्रमाण देवराशि सोलह सोलहको परस्पर गुणित कर जो राशि उपलब्ध हो उसे दूना कर दे और पूर्वोक्त विरलन राशिप्रमाण चार चारको परस्पर गुणाकर लब्धको उस द्विगुणित राशिमेंसे घटा देनेपर विवक्षित समुद्रकी गुणकारशलाकाएं आ जाती हैं ॥ ६ ॥

उदाहरण– सर्वद्वीप-समुद्रोंकी संख्या = २ अ; सर्वसमुद्रोंकी संख्या $\frac{२अ}{२} = अ$

$$१६^{अ} - १ = \frac{रू७^{२}\ (\text{जगत्प्रतर})}{१००००^{२} \times ३१३६} = ब;\quad ब \times २ = २ब;$$

$$४^{अ} - १ = \frac{रू७}{५६०००००} = स;\quad २ब - स = \text{स्वयंभूरमणसमुद्रकी गुणकारशलाकाएं ।}$$

$$(२ब - स) \times \text{ल. का क्षेत्रफल} = \text{स्वयंभूरमणसमुद्रका क्षेत्रफल} = \frac{रू७^{२}}{८२}$$

अब सर्व समुद्रोंके क्षेत्रफल का संकलन कहते हैं– लवणसमुद्रकी गुणकारशलाका एक है, कालोदक समुद्रकी गुणकार शलाकाएं अट्ठाईस हैं । इनका संकलन लाने हेतु प्राप्तशलाका मानमें से, 'एक कम शेषको आदिसे गुणित कर और एक कम गुणकारशलाका का भाग देकर इष्ट' इस आर्याखंडसे लाना चाहिए ।

चूंकि एक को आदि लेकर सोलह गुणकममें है, इसलिए दो रूपोंको स्थापित करते हैं आधितोंको पृथक् स्थापित [illegible] करते हैं और ऊपर एक रूप वे देते हैं । पुनः उसे सोलहसे गुणित कर, 'रूपोंमें गुणा और अर्थोंमें वर्गणा, इस आर्याखंडसे प्राप्त दो सौ छप्पन रूपोंमेंसे एक कम कर आदिसे संगुणित करने पर तथा एक कम गुणकारसे भाजित करने पर जो लब्ध राशि हो उसे दुगुणा कर पांच घटा देते हैं । इससे एक पक्षमें (समुद्रों मात्र संबंधी) शलाकाओंका ही संकलन आता है ।

१ प्रतिषु 'विय' इति पाठः । २ प्रतिषु 'सुवर्ण' इति पाठः ।

लद्धविसदछप्पण्णेसु रूवूणेसु आदिसंगुणेसु रूवूणगुणगारेण भाजिदेसु जं लद्धं तं दुगुणिय पंच अवणिदे पक्खे सलागसंकलणा होदि। कधं पंच समुप्पण्णा ? पुव्वपविखत्तएगादि-चदुगुणकमेण गदरासिं मेलाविदे अवणयणरासी आगच्छदि। एदाहि पुव्वुत्तसंकलण-सलागाहि लवणसमुद्दखेत्तफलं गुणिदे लवण-कालोदयसमुद्दाणं खेत्तफलं होदि। तिण्हं

उदाहरण— लवणोदक और कालोदक की गुणकार शलाकाओंका

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

संकलन— लवणोदक क्रम शलाका — १
कालोदक क्रम शलाका — २

रूप = १
अर्थात् या अर्थ } = १६

स्थापना १
१ १६
१ १६ १६

'रूपोंमें गुणा और अर्थोंमें वर्गणा' करने पर गुणकम गत श्रेणी १, १६, १६² रूपमें बनती है। अथवा १, १६, २५६ होती है, जिसका योग $\frac{१(२५६-१)}{१६-१} = \frac{२५५}{१५} = १७$ होता है। अब १७×२ = ३४ होता है, और ३४−५ = २९ होता है, जो उक्त दो समुद्रों संबंधी गुणकार शलाकाओंका योग होता है।

शंका— यहाँ पांचको कैसे उत्पन्न किया गया है ?

समाधान— पूर्वोक्त एकको आदि लेकर चतुर्गुणित क्रममें वृद्धिगत राशिको मिला देने पर अपनयन राशि (पांच) प्राप्त हो जाती है।

उदाहरण— दो समुद्रोंकी अपनयन शलाका राशि
= १ + ४ = ५

इन पूर्वोक्त संकलन शलाकाओंसे लवणसमुद्र संबंधी क्षेत्रफलको गुणित करने पर लवण और कालोदक समुद्रोंका संकलित क्षेत्रफल हो जाता है।

उदाहरण— लवणसमुद्रका क्षेत्रफल = ७९०५६९४१५० × २४;
लवणोदक और कालोदक की संकलित गुणकार
शलाका राशि = २९

इसलिए लवणोदक और कालोदकका संकलित क्षेत्रफल
= ७९०५६९४१५० × २४ × २९

विशेषार्थ— यदि अभ्यन्तरीपकी त्रिज्या र मान ली जाये तो लवणसमुद्रकी त्रिज्या ४ र + र अथवा ५ र होगी। कालोदककी त्रिज्या १६ र + ८ र + ४ र + र अथवा २९ र होगी। इन दोनोंके क्षेत्रफल क्रमशः २४ Πr^2 और ६७२ Πr^2 होंगे। इनका अनुपात १ और २८ होनेसे यही गुणकार शलाकाएं कहलाती हैं। अगले पुष्करवर समुद्रकी त्रिज्या १२५ र अथवा

समुट्ठाणं खेत्तफलसंकलणा वुच्चदे- तिसु रूवेसु एगरूवमवणिय पुध ट्ठविय सेसमद्धिय रूवस्सुवरि वग्गणं ठविय तस्सुवरि रूवं ठविय हेट्ठिम उवरिमरूवाणि सोलसेहि गुणिय 'रूपेषु गुणमर्थेषु वर्गणं' एदेण अज्जाखंडेण लद्धा चारि सहस्सा छण्णउदी। 'रूपोनमादिसंगुणमेकोनगुणोन्मथितमिच्छा' एदेण अज्जाखंडेण लद्धाणि वे सदाणि

६४ २ + ३२ + २ १६ २ + ८ २ + ४ २ + २ होती है। ये सभी बाह्य गोपी माप संबंधी है। इन तीन समुद्रोंके क्षेत्रफलोंका अनुपात क्रमशः १ : २८ : ४९६ होता है। इसी प्रकार चार समुद्रोंके क्षेत्रफलोंका अनुपात क्रमशः १ : २८ : ४९६ : ८१२८ होता है।

इस प्रकार संकलित गुणकार शलाका श्रेणी इस प्रकार बनती है– १, १ + २८, १ + २८ + ४९६, १ + २८ + ४९६ + ८१२८, ... इत्यादि। अथवा १, २९, ५२५, ८६५३..... इत्यादि।

मानलो इस श्रेणीका अंतिम पद अ न है जहाँ न पदोंकी संख्या है तथा योग स है।

∴ स = १ + २९ + ५२५ + ८६५३ + ... + अ न

अथवा स = ० + १ + २९ + ५२५ + ... + अ न

– – – – – –

इस प्रकार ० = १ + २८ + ४९६ + ८१२८ + ... – अ न

अंतिम पद अ न = १ + २८ + ४९६ + ८१२८ + ...

= १ + (१६^{१} × २ – ४) + (१६^{२} × २ – ४^{२})
+ (१६^{३} × २ – ४^{३}) + ... न वें पद तक

अथवा अ न = १ + (१६^{१} × २ + १६^{२} × २ + १६^{३} × २ + ...)
– (४^{१} + ४^{२} + ४^{३} + .) न वें पद तक

= २ + २ (१६^{१} + १६^{२} + ...)
– (१ + ४^{१} + ४^{२} + ...) न वें पद तक

= २ (१ + १६ + १६^{२} + ...)
– (१ + ४ + ४^{२} + ...) वें न पद तक

$$= २\left[\frac{१\,(\,१६^{न}-१\,)}{(\,१६-१\,)}\right]-\left[\frac{१\,(\,४^{न}-१\,)}{(\,४-१\,)}\right]$$

इसी सूत्रका उपयोग वीरसेनाचार्य द्वारा समुद्रों संबंधी संकलित गुणकार शलाकाओंके संकलनको प्राप्त करने हेतु किया है। उपर्युक्तमें दूसरा पद अपनयन राशि है।

स्पष्ट है कि न = २ रखने पर संकलित गुणकार शलाका राशि उपरोक्त सूत्रद्वारा २९ प्राप्त हो जाती है। लवणसमुद्रका क्षेत्रफल ७९०५६९४१५० × २४ होनेसे तथा संकलित गुणकार शलाका राशि २९ होनेसे संकलित क्षेत्रफल लवण तथा कालोदक समुद्रोंका दोनोंके गुणन फल स्वरूप ७९०५६९४१५० × २४ × २९ प्राप्त हो जाता है।

तेहत्तराणि, एदाणि दुगुणिय एक्कावीसमवणिदे गुणगारसलागासंकलणा होदि। कथमेक्कवीसस्स उप्पत्ती ? एगरूवं विरलिय चत्तारि दादूण अण्णोण्णब्भत्थं करिय पंचहि गुणिय एगादिचदुग्गुणसंकलणं पक्खित्ते अवणयणसलागपमाणं एक्कवीसं होदि। एत्थ करणगाहा—

इट्ठसलागाखुत्तो चत्तारि परोप्परेण संगुणिय।
पंचगुणे खित्तव्वा एगादिचदुगुणा संकलणा ॥ ७ ॥

एत्थ सव्वत्थ दुरूवूणगच्छं विरलेदव्वं ५। २१। ८५। ३४१। १३६५। ५४६१। एदाओ अवणयणधुवरासीओ अणंतरहेट्ठिमं चदुहि गुणिय रूवं पक्खित्ते

अब तीन समुद्रोंके क्षेत्रफलका संकलन कहते हैं— तीन रूपोंमेंसे एक रूपको घटाकर उसे पृथक् स्थापित करें। पुनः शेषको आधा कर रूपके ऊपर वर्गणराशिको स्थापितकर और उसके ऊपर रूपको स्थापितकर अधस्तन और उपरिम रूपोंको सोलहसे गुणाकर 'रूपोंमें गुणा और अर्थोंमें वर्गणा' आर्या छन्दके इस पादसे चार हजार छयानवे (४०९६) संख्या प्राप्त होती है। पुनः उक्त प्रकारसे प्राप्त शलाकाओंमेंसे 'एक कम करके शेषको आदिसे गुणा करें, पुनः एक कम गुणकारशलाकाका भाग दें, तो इष्टराशि उत्पन्न हो जाती है' आर्या छन्दके इस पादके अनुसार दो सौ तेहत्तर (२७३) संख्या प्राप्त होती है। इस संख्याको दूनाकर उसमेंसे इक्कीस घटा देनेपर गुणकारशलाकाओंका संकलन हो जाता है।

उदाहरण— प्रथम तीन समुद्रोंका संकलन— शलाका ३;

१ × १६
१ × १६ १६ × १६ × १६ = ४०९६;
१ × १६

$\frac{४०९६ - १}{१६ - १} = \frac{४०९५}{१५} = २७३$; २७३ × २ = ५४६; ५४६ − २१ = ५२५

तीन समुद्रोंकी संकलित गुणकारशलाका।

शंका— यहांपर घटाई जानेवाली इक्कीस संख्याकी उत्पत्ति कैसे हुई ?

समाधान— एकरूपको विरलित कर उसके ऊपर चारको देयरूपसे देकर अन्योन्याभ्यास करके उसे पांचसे गुणाकर एक आदि चतुर्गुणसंकलनको प्रक्षेप करने पर अपनयनशलाकाका प्रमाण इक्कीस हो जाता है।

उदाहरण— २१ की उत्पत्ति—३ − २ = १; १ = ४; ४ × ५ = २०; २० + १ = २१ तीन समुद्रोंकी अपनयनशलाका.

इस विषयमें यह करणगाथा है—

इष्ट शलाकाराशिका जो प्रमाण हो उतने बार चारको रखकर परस्परमें गुणा करें, पुनः उसे पांचसे गुणा करें और फिर एक आदि चतुर्गुणसंकलनराशिको प्रक्षेप करना चाहिए। ऐसा करनेपर अपनयनराशिका प्रमाण आ जाता है ॥ ७ ॥

उप्पज्जंति जाव सयंभुरमणसमुद्दो त्ति । संपहि सयंभुरमणसमुद्दविरहिदसव्वसमुद्द-खेत्तफलाणयणविधाणं वुच्चदे– दीव-सायररूवाणं अद्धं रूवूणं विरलिय रूवं पडि वेण्णि दादूण अण्णोण्णब्भासे कदे चोद्दसगुणिदजोयणलक्खमूलेण खंडिदसेढीए वग्गमूलस्स अद्धमागच्छदि । अध पुव्वविरलणाए रूवं पडि अदि चत्तारि रूवाणि दादूण अण्णोण्णब्भासे कीरदे, तो चोद्दसगुणजोयणलक्खेण खंडिदे सेढीए चदुभागो आगच्छदि । अध रूवं पडि सोलस दादूण अण्णोण्णब्भासो कीरदि, तो जोयण-लक्खवग्गेण तिसहस्सछत्तीससदरूवगुणिदेण जगपदरम्हि भागे हिदे एगभागो

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

यहांपर सर्वत्र दो रूप कम गच्छराशि का विरलन करना चाहिए। ५, २१, ८५, ३४१, १३६५, ५४६१, ये घटाई जानेवाली ध्रुवराशियां अनन्तर अधस्तन राशिको चारसे गुणाकर और उनमें एक प्रक्षेप करनेपर उत्पन्न होती है और इसी क्रमसे स्वयम्भूरमणसमुद्र तक उत्पन्न होती हुई चली जाती हैं।

४ × ४ = १६ १६ × ५ + ५ = ८५ चार स.

उदाहरण– (१) ४ − २ = २; १ १

४ × ४ × ४ × = ६४; ६४ × ५ + २१ = ३४१ पांच स.

(२) ५ − २ = ३; १ १ १

४ × ४ × ४ × ४ = २५६; २५६ × ५ + ८५ = १३६५ छह स.

(३) ६ − २ = ४; १ १ १ १

४ × ४ × ४ × ४ × ४ = १०२४; १०२४ × ५ + ३४१ = ५४६१

(४) ७ − २ = ५; १ १ १ १ १ सात स. इत्यादि.

अब स्वयम्भूरमणसमुद्रको छोड़कर शेष सर्व समुद्रोंके क्षेत्रफल निकालनेका विधान कहते हैं– द्वीप और समुद्रोंकी जितनी संख्या है उसे आधाकर उसमेंसे एक घटावें। पुनः शेष राशिका विरलनकर प्रत्येक रूपके प्रति देयरूपसे दो को देकर परस्पर गुणा करनेपर चतुर्दश-गुणित लक्ष योजनके वर्गमूलसे खंडित जगत्श्रेणीके वर्गमूलका आधा प्रमाण आता है। अब यदि पूर्व विरलनराशिमें प्रत्येक रूपके प्रति चार रूपोंको देयरूपसे देकर परस्पर गुणा किया जाता है, तो चतुर्दश-गुणित लक्ष योजनसे खंडित जगत्श्रेणीका चौथा भाग आता है और यदि उसी विरलनराशिमें प्रत्येक रूपके प्रति सोलहको देयरूपसे देकर परस्पर गुणा किया जाता है तो सौम हजार एक सौ छत्तीस (३१३६) रूपोंसे गुणित लक्ष योजनके वर्गसे भाजित जगत्प्रतरका एक भाग आता है।

उदाहरण– (१) $\frac{२^{अ}}{२} = अ;$ $२^{अ-१} = \frac{\sqrt{र७}}{२}$ $\sqrt{१४०००००यो.}$

(२) $४^{अ-१} = \frac{र७}{४}$ १४००००० यो.

(३) $१६^{अ-१} = \frac{र७^{२}}{१००००^{२} \times ३१३६}$

आगच्छदि । पुणो तं रूवूणं करिय एगेण आदिणा गुणिय पण्णारसरूवेहि भागे हिदे जोयणलक्खवग्गेण चालीसाहियसत्तेतालसहस्सरूवगुणिदेण जगपदरम्हि भागे हिदे एगभागो आगच्छदि । एदं दुगुणिय सेढिअसंखेज्जदिभागमेत्तमवणयणरासिं पुव्विल्ल-करणगाहाए अवणिदमवणिय लवणसमुद्दखेत्तफलेण गुणिदे सयंभूरमणविरहिदस-मुद्दाणं खेत्तफलं होदि । तं केत्तियमिदि भणिदे एगूण चालीसाहियबारससदरूवेहि जगपदरम्हि भागे हिदे एगभागपमाणं होदि । तत्थ मूलिल्लदोसमुद्दखेत्तफलं संखेज्जजोयणपदरमेत्तमवणिय रज्जुपदरम्हि अवणिदे एक्कदंचासरूवेहि सादिरेगेहि जगपदरम्हि खंडिदे एगखंडो आगच्छदि । तं संखेज्जसूचिअंगुलेहि गुणिदे तिरियलोगस्स

पुनः उसे, अर्थात् १६ के गुणितक्रमसे उपलब्ध राशिको, एक कम करके आदि स्थानवर्ती एकसे गुणितकर, पन्द्रह रूपोंसे भाग देनेपर चालीस अधिक सैंतालीस हजार अर्थात् सैंतालीस हजार चालीस (४७०४०) रूपोंसे गुणित लक्ष योजनके वर्गसे भाजित जगत्प्रतरका एक भाग आता है ।

उदाहरण– $\frac{१\left(\frac{(रा)^२}{१०००००^२ \times ३१३६}-१\right)}{१६-१} = \frac{(रा)^२}{१०००००^२ \times ४७०४०}$

इस प्रमाणको दुगुणाकर उसमेंसे पूर्वोक्त करणगाथासे निकाली हुई जगत्श्रेणीके असंख्यातवें भागप्रमाण अपनयनराशिको घटाकर लवणसमुद्रके क्षेत्रफलसे गुणा करनेपर स्वयम्भूरमणसमुद्रसे रहित शेष समस्त समुद्रोंका क्षेत्रफल हो जाता है । वह क्षेत्रफल कितना होता है, ऐसा पूछनेपर उत्तर देते हैं कि वह उनतालीस अधिक बारह सौ अर्थात् बारहसौ उनतालीस (१२३९) रूपोंसे भाजित जगत्प्रतरका एक भाग प्रमाण होता है ।

उदाहरण– $\left\{२\left(\frac{(रा)^२}{१०००००^२ \times ४७०४०}\right)-\frac{(रा)}{अ}\right\} \times ल = \frac{(रा)^२}{१२३९}$ स्वयम्भूरमणको छोड़ शेष समुद्रोंका क्षेत्रफल.

(इसी प्रमाणको उत्पन्न करनेकी प्रक्रियाके विस्तारके लिये देखो गोम्मटसार जीवकांड सं. टीका व हिन्दी अनुवाद गाथा ५४७, पृ. ९६४ आदि.)

स्वयम्भूरमणसमुद्रसे रहित शेष समुद्रोंके उक्त क्षेत्रफलमेंसे मूल अर्थात् आदिके लवणोदधि और कालोदधि इन दो समुद्रोंके प्रतरात्मक संख्यात योजनप्रमाण क्षेत्रफलको घटाकर पुनः शेष राशिको प्रतरात्मक राजुके प्रमाणमेंसे घटा देनेपर साधिक इकावन रूपोंसे जगत्प्रतरके खंडित करनेपर एक खंड आ जाता है ।

उदाहरण– $(रा)^२ - \left(\frac{(रा)^२}{१२३९} - २९ ल\right) = \frac{(रा)^२}{५१}$ (कुछ अधिक) तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग तिर्यंच सासादन जीवोंका स्वस्थानक्षेत्र.

संखेज्जदिभागमेत्तं तिरिक्खसासणसत्थाणखेत्तं होदि । सेसपदसासणसम्मादिट्ठीहि सव्वे दीव-समुद्दा पुव्ववेरियदेवसंबंधेण फुसिज्जंति त्ति कट्टु जोयणलक्खबाहल्लं तप्पाओग्गबाहल्लं वा रज्जुपदरमुड्ढमेगूणवंचासखंडाणि कग्गिय पदरागारेण ट्ठइदे तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो होदि । 'वा' सद्दस्स अत्थो गदो ।

मारणंतियसमुग्घादगदेहि सत्त चोद्दसभागा देसूणा फोसिदा । तिरिक्ख-सासणा मेरुमूलादो हेट्ठा किण्ण मारणंतियं करेंति त्ति वुत्ते णेरइएसु किण्ण उप्पज्जंति ? सभावादो । जदि एवं, तो हेट्ठा सभावादो चेव मारणंतियं ण मेलंति त्ति किण्ण घेप्पदे ? जदि सासणसम्मादिट्ठिणो हेट्ठा ण मारणंतियं मेलंति, तो तेसिं भवणवासियदेवेसु मेरुतलादो हेट्ठा ट्ठिदेसु उप्पत्ती ण पावदि त्ति वुत्ते ण एस दोसो, मेरुतलादो हेट्ठा सासणसम्मादिट्ठीणं मारणंतियं णत्थि त्ति एदं सामण्णवयणं ।

उक्त एक खंडको तिर्यंचोंके अवगाहनासम्बन्धी संख्यात सूच्यंगुलोंसे गुणा करनेपर तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागप्रमाण तिर्यंच सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका स्वस्थानक्षेत्र हो जाता है । चूंकि, विहारवत्स्वस्थानादि शेष पदस्थित तिर्यंच सासादनसम्यग्दृष्टियोंके द्वारा समस्त द्वीप और समुद्र पूर्वभवके वैरी देवोंके सम्बन्धसे स्पर्श किये गये हैं, इसलिए लक्ष योजन बाहल्यवाले अथवा तत्प्रायोग्य बाहल्यवाले राजुप्रतरके ऊपरकी ओरसे उनंचास खंड करके प्रतराकारसे स्थापित करनेपर तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग हो जाता है । इस प्रकारसे यह सूत्रपठित 'वा' शब्दका अर्थ हुआ ।

मारणान्तिकसमुद्घातको प्राप्त तिर्यंच सासादनसम्यग्दृष्टियोंने कुछ कम सात बटे चौदह ($\frac{7}{14}$) भाग स्पर्श किये हैं ।

शंका– तिर्यंच सासादनसम्यग्दृष्टि जीव सुमेरुपर्वतके मूलभागसे नीचे मारणान्तिक-समुद्घात क्यों नहीं करते हैं ?

प्रतिशंका– यदि ऐसी शंका करते हैं, तो आप ही बताइए कि तिर्यंच सासादन-सम्यग्दृष्टि जीव नारकियोंमें क्यों नहीं उत्पन्न होते हैं ?

समाधान– वे नारकियोंमें स्वभावसे ही उत्पन्न नहीं होते हैं ।

प्रतिसमाधान– यदि ऐसा है तो सुमेरुपर्वतके मूलभागसे नीचे भी वे स्वभावसे मारणान्तिकसमुद्घात नहीं करते हैं, ऐसा क्यों नहीं स्वीकार कर लेते हैं ?

शंका– यदि सासादनसम्यग्दृष्टि जीव मेरुतलसे नीचे मारणान्तिकसमुद्घात नहीं करते हैं तो मेरुतलसे नीचे स्थित भवनवासी देवोंमें उनकी उत्पत्ति भी नहीं प्राप्त होती है ?

समाधान– उक्त शंकापर धवलाकार उत्तर देते हैं कि यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, 'मेरुतलसे नीचे सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका मारणान्तिकसमुद्घात नहीं होता है' यह सामान्य अर्थात् द्रव्यार्थिकनयका वचन है । किन्तु विशेष अर्थात् पर्यायार्थिकनयकी

विसेसदो पुण भण्णमाणे णेरइएसु हेट्ठिमएइंदिएसु वा ण मारणंतियं मेलंति त्ति एस परमत्थो। कथमेत्थ देसूणत्तं ? ण ताव हेट्ठिमजोयणसहस्सेण ऊणा सत्त चोद्दसभागा, तिरिक्खसासणेहि भवणवासिएसु मारणंतियं मेल्लमाणेहि तस्स वि छुवणसंभवोवलंभादो। मेरुमूलादो हेट्ठा देसूणजोयणलक्खं फुसंताणं सासादणाणं सत्त-चोद्दसभागेहि सादिरेगेहि होदव्वमिदि ? ण एस दोसो, छमग्गपयट्टेहि पडिणियदउप्पत्तिट्ठाणेहि तसजीवेहि णिरंतरं ण सत्त रज्जू फुसिज्जंति, तधा संभवासंभवा। सो वि कधं णव्वदे ? देसूणत्तण्णहाणुववत्तीदो। उववादस्स एक्कारह चोद्दसभागा फोसिदा त्ति वत्तव्वं। सुत्ते अउत्तं। कथमेदं णव्वदे ? कम्मइयकायजोगिसासणाण-

विवक्षासे कथन करने पर तो वे नारकियोंमें अथवा मेरुतलसे अधोभागवर्ती एकेन्द्रिय जीवोंमें मारणान्तिकसमुद्घात नहीं करते हैं, यही परमार्थ है।

शंका– यहांपर अर्थात् मारणान्तिकसमुद्घातगत सासादनसम्यग्दृष्टियोंके क्षेत्रमें देशोनता अर्थात् कुछ कम सात बटे चौदह भागका कथन कैसे किया, क्योंकि, मेरुतलके अधोभागवर्ती एक हजार योजनसे कम सात बटे चौदह ($\frac{७}{१४}$) भाग तो माने नहीं जा सकते। इसका कारण यह है कि भवनवासियोंमें मारणान्तिकसमुद्घातको करनेवाले तिर्यंच सासादनसम्यग्दृष्टियोंके द्वारा उसके भी छुए जानेकी संभावना पाई जाती है। इसलिए मेरुतलसे नीचे कुछ कम एक लक्ष योजन प्रमाण क्षेत्रको स्पर्श करनेवाले तिर्यंच सासादनसम्यग्दृष्टियोंका मारणान्तिक स्पर्शनक्षेत्र साधिक सात बटे चौदह ($\frac{७}{१४}$) भाग होना चाहिए, न कि देशोन सात बटे चौदह भाग ?

समाधान– यह कोई दोष नहीं। इसका कारण यह है कि छहों भागोंसे प्रवृत्त, अर्थात् पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊर्ध्व और अधोदिशा सम्बन्धी छहों भागोंसे जानेवाले, एवं प्रतिनियत उत्पत्ति स्थानवाले त्रसजीवोंके द्वारा निरन्तर सात राजु स्पर्श नहीं किये जाते हैं, क्योंकि, उस प्रकारकी संभावनाका अभाव है।

शंका– यह भी कैसे जाना ?

समाधान– 'देशोन' वचनकी अन्यथा अनुपपत्तिसे। अर्थात् यदि मारणान्तिकसमुद्घात करनेवाले त्रसजीवोंके द्वारा निरन्तर सात राजु प्रमाण क्षेत्र स्पर्श किया जाता, तो सूत्र में 'देशोन' यह वचन नहीं दिया जाता। इस अन्यथानुपपत्तिसे जाना जाता है कि मारणान्तिकसमुद्घात करनेवाले त्रसजीवोंके द्वारा सात राजुके स्पर्श किये जानेकी निरन्तर संभावना नहीं है।

उपपादपदको प्राप्त तिर्यंच सासादनसम्यग्दृष्टियोंने ग्यारह बटे चौदह ($\frac{११}{१४}$) भाग स्पर्श किये हैं, ऐसा कहना चाहिए।

शंका– सूत्रमें नहीं कही गई यह बात कैसे जानी जाती है ?

मेक्कारह-चोद्दसभागफोसणपरूवयसुत्तादो[1], खुद्दाबंधम्मि उववादपरिणयसासण-मेक्कारह-चोद्दसभागफोसणपरूवयसुत्तादो च णव्वदे। एत्थ महंते उववादफोसणखेत्ते संते मारणंतियफोसणमेव किमट्ठं परूविदं ? ण[2], एत्थ उववादविवक्खाए अभावादो। तदविवक्खा किण्णिबंधणा[3], सासणाणमेइंदिएसु अणुप्पज्जमाणाणं तत्थ मारणंतिय-विहाणणिबंधणा। तेण उववादस्स एक्कारह चोद्दसभागा फोसणमुवलब्भदे।

सम्मामिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो[4] ॥ २६ ॥

एदस्स सुत्तस्स वट्टमाणकाले सव्वपदपरूवणाए खेत्तभंगो। सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियपदसम्मामिच्छादिट्ठीहि तीदाणागदकालेसु

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

समाधान— कार्मणकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके ग्यारह बटे चौदह ($\frac{११}{१४}$) भागप्रमाण स्पर्शनक्षेत्रके प्ररूपक आगे कहे जानेवाले इसी स्पर्शनप्ररूपणाके सूत्रसे, तथा खुद्दाबंधमें कहे गये उपपादपरिणत सासादनसम्यग्दृष्टियोंके ग्यारह बटे चौदह ($\frac{११}{१४}$) भागप्रमाण स्पर्शन करनेकी प्ररूपणा करनेवाले सूत्रसे जाना जाता है कि उपपादपदको प्राप्त तिर्यंच सासादन-सम्यग्दृष्टियोंने ग्यारह बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं।

शंका— उक्त प्रकारसे इतना अधिक उपपादपदका स्पर्शनक्षेत्र होते हुए भी यहां पर मारणान्तिक स्पर्शनक्षेत्र ही किसलिए प्ररूपण किया ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, यहां पर उपपादपदकी विवक्षाका अभाव है।

शंका— उपपादपदकी अविवक्षा किनिमित्तक है ?

समाधान— उपपादपदकी अविवक्षा एकेन्द्रियोंमें नहीं उत्पन्न होनेवाले सासादन-सम्यग्दृष्टि जीवोंके उनमें मारणान्तिकसमुद्घातके विधाननिमित्तक है। अर्थात् सासादनसम्यग्दृष्टि जीव एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न नहीं होते हैं, फिर भी वे उनमें मारणान्तिकसमुद्घात करते हैं। इसलिए यहां पर उपपादपदकी विवक्षा नहीं की गई और इसीलिए उपपादपदका ग्यारह बटे चौदह ($\frac{११}{१४}$) भाग प्रमाण स्पर्शनक्षेत्र प्राप्त हो जाता है।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि तिर्यंचोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ २६ ॥

इस सूत्रकी वर्तमानकालमें स्वस्थानादि सर्व पदसम्बन्धी स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है। स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकसमुद्घात, इन पांच पदोंवाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि तिर्यंचोंने भूत और भविष्य इन दोनों कालोंमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे

---

१ कम्मइयकायजोगीसु ×× सासणसम्मादिट्ठीहि ×× एक्कारह चोद्दसभागा देसूणा। जी. को. ९६-९८. २ म प्रतौ 'ण' इति पाठो नास्ति। ३ प्रतिषु 'किण्णबंधणा' इति पाठः।
४ सम्यग्मिथ्यादृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः। स. सि. १, ८.

तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो। एत्थ पज्जवट्ठियपरूवणा सासणपरूवणाए तुल्ला।

असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजदेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो[1] ॥ २७ ॥

तिरिक्खगदीए तिरिक्खेसु त्ति महाधिकारो अणुवट्टदे। एदं सुत्तं वट्टमाणकालविसिट्ठअसंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजदखेत्तं जदो परूवेदि, तदो एदस्स परूवणाए खेत्तभंगो।

छ चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ २८ ॥

असंजदसम्मादिट्ठीहि सत्थाणपदे वट्टमाणेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो अदीदकाले फोसिदो। एदे असंजदसम्मादिट्ठिणो सत्थाणपदे सव्वदीवेसु होंति, लवण-कालोदय-सयंभूरमणसमुद्देसु च। तम्हा सेससमुद्दखेत्तूणरज्जुपदरं एत्थ सत्थाणखेत्तं होदि। एदस्सणयणविधाणं पुव्वं व कादव्वं। विहार-वेदण-कसाय-वेउव्वियपदेसु वट्टंता अदीदकाले

असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। यहांपर पर्यायार्थिकनयकी स्पर्शनप्ररूपणा सासादन गुणस्थानकी स्पर्शनप्ररूपणाके तुल्य जानना चाहिए।

असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत गुणस्थानवर्ती तिर्यंचोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ २७ ॥

'तिर्यंचगतिमें तिर्यंचोंमें' इस महाधिकारकी यहांपर अनुवृत्ति होती है। चूंकि यह सूत्र वर्तमानकालविशिष्ट असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत तिर्यंचोंके स्पर्शनक्षेत्रका प्ररूपण करता है, इसलिए इसकी प्ररूपणा क्षेत्रके समान ही है।

उक्त दोनों गुणस्थानवर्ती तिर्यंच जीवोंने अतीत और अनागतकालकी अपेक्षा कुछ कम छह बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ २८ ॥

स्वस्थानपदपर वर्तमान असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्यंचोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र अतीतकालमें स्पर्श किया है। ये असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्यंच स्वस्थानस्वस्थानपदपर सर्व द्वीपोंमें होते हैं, तथा लवणसमुद्र, कालोदकसमुद्र और स्वयम्भूरमणसमुद्रमें भी होते हैं। इसलिए शेष समुद्रोंके क्षेत्रसे हीन राजुप्रतर यहांपर स्वस्थानक्षेत्र होता है। इसके निकालनेका विधान पूर्वके समान ही करना चाहिए। विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकसमुद्घात, इन पदोंपर वर्तमान जीवोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग,

१ असंयतसम्यग्दृष्टिभिः संयतासंयतैर्लोकस्यासंख्येयभागाः षट् चतुर्दशभागा वा देशोनाः। स. सि. १, ८.

तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागं, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागं, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणं फुसंति । कुदो ? पुव्ववेरियदेवपयोगदो जोयणलक्खबाहल्लं संखेज्ज-जोयणबाहल्लं वा रज्जुपदरं सव्वमदीदकाले फुसंति त्ति । मारणंतियपदे बट्टमाणेहि छ चोद्दसभागा देसूणा फोसिदा । कुदो ? अच्चुदकप्पादो उवरि तेसिमुप्पत्तीए अभावादो तत्थ गमणाभावा । ण च उप्पत्तिखेत्तमुल्लंघिय गमणं संभवदि, अइप्पसंगा । उवरि णवगेवेज्जेसु मिच्छादिट्ठिणो जदि उप्पज्जंति, तो असंजदसम्मादिट्ठीणं संजदासंजदाणं च उप्पत्ती किमिदि ण होज्ज ? मिच्छादिट्ठिणो दव्वलिंगेण उप्पज्जंति चे, एदे वि दव्वलिंगेण चेव उप्पज्जंतु, ण को वि दोसो । उप्पज्जंतु चे, ण, खेत्तस्स देसूणसत्त[1]-चोद्दसभागत्तप्पसंगादो ? ण एस दोसो, जदि वि णवगेवेज्जेसु दव्वलिंगिणो असंजद-सम्मादिट्ठि संजदासंजदा च उप्पज्जंति[2], तो वि सत्त चोद्दसभागा ण होंति,

---

तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है, क्योंकि, पूर्वभवके वैरी देवोंके प्रयोगसे एक लाख योजन बाहल्यवाला अथवा संख्यात योजन बाहल्यवाला राजुप्रतररूप सर्वक्षेत्र अतीतकालमें स्पर्श किया है । मारणान्तिकसमुद्घातपदपर वर्तमान जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह भाग ($\frac{६}{१४}$) स्पर्श किये हैं, क्योंकि, अच्युतकल्पसे ऊपर उनकी उत्पत्तिका अभाव होनेसे वहांपर गमनका अभाव है और उत्पत्तिक्षेत्रको उल्लंघन करके गमन संभव नहीं है, अन्यथा अतिप्रसंग दोष प्राप्त हो जायगा ।

शंका– अच्युतकल्पसे ऊपर यदि नवग्रैवेयकोंमें मिथ्यादृष्टि मनुष्य उत्पन्न होते हैं, तो असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत तिर्यंचोंकी उत्पत्ति क्यों नहीं होनी चाहिए ? यदि कहा जाय कि मिथ्यादृष्टि मनुष्य द्रव्यलिंगसे उत्पन्न होते हैं, तो ये भी द्रव्यलिंगसे ही उत्पन्न होवें, इसमें कोई दोष नहीं है । यदि कहा जाय कि वे नवग्रैवेयकोंमें उत्पन्न होवें, सो ऐसा भी नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि, फिर स्पर्शनक्षेत्रके देशोन सात बटे चौदह ($\frac{७}{१४}$) भाग प्रमाण होनेका प्रसंग प्राप्त होगा ?

समाधान– यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, यद्यपि नवग्रैवेयकोंमें द्रव्यलिंगी मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत जीव उत्पन्न होते हैं, तो भी सात बटे चौदह ($\frac{७}{१४}$) भागप्रमाण स्पर्शनक्षेत्र नहीं प्राप्त होता है, क्योंकि, उन नवग्रैवेयकोंमें मनुष्यक्षेत्रसे ही उत्पत्ति होती है । अर्थात् उनमें मनुष्य ही उत्पन्न होते हैं, तिर्यंच नहीं ।

उपपादगत असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानवर्ती तिर्यंच जीवोंने अतीतकालमें सामान्य-

---

१ प्रतिषु ' तस्स ' इति पाठः ।

२ णरतिरिय देस-अयदा उक्कस्सेणच्चुदो त्ति पिग्गंथा । णर अयद-देसँ-मिच्छा गेवेज्जंतो त्ति गच्छंति ॥ त्रि. सा. ५४५.

माणुसखेत्तादो चेव तप्पुप्पत्तीदो। उववादगदेहि अदीदकाले तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्डाईज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो। तं जहा– तिरिक्खेसु तिरिक्ख-देव-णेरइयसम्मादिट्ठिणो ण उप्पज्जंति त्ति। कुदो? सहावादो। मणुसखइयसम्मादिट्ठिणो चेव उप्पज्जंति, पुव्वं मिच्छत्तसंसिदेहि बद्धतिरिक्खाउअत्तादो। ते वि भोगभूमीसु चेव उप्पज्जंति, दाणादिसयलदसधम्मे विज्जमाणाणुमोदादो। तेण सयंपहपव्वदोवरिमभागो सव्वो चेव उववादपरिणदसम्मादिट्ठीहि फुसिज्जदि त्ति तस्साणयणविधाणं वुच्चदे– सयंपहपव्वदादो परभागो दोहि वि पासेहि रज्जुपंचट्ठभागो रज्जूए तप्पाओग्गा संखेज्जा भागा वा होंति। तेसु रज्जुविक्खंभम्हि फेडिदेसु अवसेसा तिण्णि अट्ठभागा रज्जूए संखेज्जदिभागो वा होदि। एदेण विक्खंभायामेण ट्ठिदसम्मादिट्ठिउववादखेत्तं––

विक्खंभवग्गदसगुणकरणी वट्टस्स परिरओ होदि॥
विक्खंभचउब्भागो परिरयगुणिदो हवे गणितं[1]॥ ८॥

एदीए गाहाए पदरागारेण कदे जगपदरं अट्ठसत्तावण्णभागब्भहियचालीसोत्तरचदुहि सदेहि खंडिद-एयभागो सादिरेगो आगच्छदि, तप्पाओग्गसंखेज्जरूवेहि छिण्णेग-

लोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। वह इस प्रकारसे है– तिर्यंचोंमें तिर्यंच, देव अथवा नारकी सम्यग्दृष्टि जीव नहीं उत्पन्न होते हैं, क्योंकि, ऐसा स्वभाव ही है। केवल क्षायिकसम्यग्दृष्टि मनुष्य ही उत्पन्न होते हैं, क्योंकि, उन्होंने पूर्वमें मिथ्यात्वसे संक्लिष्ट परिणामोंके द्वारा तिर्यंच आयुको बांध लिया है। सो वे भी जीव भोगभूमिके तिर्यंचोंमें ही उत्पन्न होते हैं, क्योंकि, सम्यग्दृष्टियोंको दान आदि समस्त दश धर्मोंमें अनुमोदना विद्यमान रहती ही है। इसलिए स्वयंप्रभ पर्वतका उपरिम सर्व भाग उपपादपरिणत असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्यंच जीवोंके द्वारा स्पर्श किया गया है, अतः उसके निकालनेके विधानको कहते हैं–

स्वयंप्रभ पर्वतसे परभागवर्ती क्षेत्र दोनों ही पार्श्वोंसे राजुके पांच बटे आठ (५/८) भाग अथवा राजुके तत्प्रायोग्य संख्यात बहुभाग प्रमाण होता है। उन भागोंको राजुके विष्कम्भमेंसे घटा देनेपर तीन बटे आठ (३/८) भाग अवशेष क्षेत्र अथवा राजुका संख्यातवां भागप्रमाण होता है। इस विष्कम्भ और आयामसे स्थित सम्यग्दृष्टिके उपपादक्षेत्रको–

विष्कम्भका वर्गकर उसे दशसे गुणा करके उसका वर्गमूल निकालें, वही वृत्त अर्थात् गोलाकृति क्षेत्रकी परिधिका प्रमाण हो जाता है। पुनः विष्कम्भके चतुर्भागसे परिधिको गुणा करनेपर क्षेत्रफल होता है॥ ८॥

इस गाथासूत्रके अनुसार प्रतराकारसे करनेपर आठ बटे सत्तावन भागसे अधिक चार सौ चालीस (४४०$\frac{८}{५७}$) भागोंसे खंडित सातिरेक एक भागप्रमाण जगत्प्रतर होता है।

१ त्रि. सा. ९३.

भागो वा। तं उस्सेधसंखेज्जंगुलेहि गुणिदे तिरिक्खसम्मादिट्ठिउववादखेत्तं होदि। संजदासंजदेहि सत्थाणपदट्ठिएहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो। एत्थ सत्थाणखेत्तमाणिज्जमाणे तिरिक्खसम्मादिट्ठिउववादपदरखेत्तमुस्सेधगुणगारवज्जिदं रज्जुपदरम्हि अवणिदे जगपदरं सादिरेयपंचपंचवासरूवेहि भजिदएगभागो आगच्छदि। तं संखेज्जुस्सेधंगुलेहि गुणिदं संजदासंजदसत्थाणखेत्तं तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागमेत्तं होदि। विहारवदि-सत्थाण-वेदण-कसाय वेउव्वियपरिणदेहि संजदासंजदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो,

उदाहरण– विष्कम्भ $\frac{३}{८}$; $\sqrt{\frac{३}{८}\times\frac{३}{८}\times\frac{१०}{१}\times\frac{३}{३२}\times\frac{१}{४९}}=\sqrt{\frac{९०}{६४}\times\frac{३}{३२}\times\frac{१}{४९}}$

$=\frac{१५}{१६}\times\frac{३}{३२}\times\frac{१}{४९}=\frac{५७}{२५०८८}$; $४४०\frac{\frac{२७^२}{८}}{५७}$ तिर्यंचसम्यग्दृष्टियोंके

उपपादका क्षेत्रफल.

विशेषार्थ– यहां उपलब्ध भागप्रमाणको सातिरेक कहनेका अभिप्राय यह है कि जो $\frac{१०}{३२}$ का वर्गमूल $\frac{५}{१६}$ ले लिया गया है वह यथार्थ वर्गमूलसे कुछ अधिक हो गया है जिससे भागहार कुछ बढ़ गया है। पहले इसी विष्कम्भको लेकर परिधिके भिन्न प्रमाण द्वारा भिन्न क्षेत्रफल निकाला गया है। (देखो प. १६९)

अथवा तत्प्रायोग्य संख्यात रूपोंसे भाजित जगत्प्रतरका एक भाग आता है। उसे संख्यात उत्सेधांगुलोंसे गुणा करनेपर तिर्यंच सम्यग्दृष्टि जीवोंका उपपादक्षेत्र हो जाता है।

स्वस्थानस्वस्थानपदस्थित संयतासंयत तिर्यंचोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। यहां स्वस्थानस्वस्थानक्षेत्रको निकालनेपर उत्सेधगुणकारसे रहित तिर्यंच असंयतसम्यग्दृष्टियोंके उपपाद प्रतरक्षेत्रको राजुप्रतरमेंसे घटा देनेपर साधिक पचपन रूपोंसे भाजित एक भाग जगत्प्रतर आता है।

उदाहरण– तिर्यंच सम्यग्दृष्टियोंका उपपादप्रतरक्षेत्र =

$$\frac{\frac{२७^२}{८}}{४४०\frac{}{५७}}=\frac{५७\times४९}{२५०८८};\quad १-\frac{५७\times४९}{२५०८८}=\frac{४५५}{५१२}=\frac{२७^२}{५५\frac{२}{६५}}$$

उसे संख्यात उत्सेधांगुलोंसे गुणा करनेपर तिर्यंच संयतासंयतोंका स्वस्थानक्षेत्र हो जाता है, जो कि तिर्यग्लोकका संख्यातवां भागमात्र होता है।

विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकसमुद्घात, इन पदोंसे परिणत तिर्यंच संयतासंयत जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका

तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो अदीवकाले फोसिदो ? कुदो ? संजदासंजदाणं वेरियदेवसंबंधेण जोयणलक्खबाहल्लं तिरियपदरस्स अदीवकाले फोसो अत्थि त्ति । मारणंतियसमुग्घादगदेहि संजदासंजदेहि छ चोद्दसभागा देसूणा फोसिदा, तिरिक्खसंजदासंजदाणमच्चुदकप्पो त्ति मारणंतिएण गमणसंभवादो ।

पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्त-पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीसु मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २९ ॥

एदं सुत्तं वट्टमाणकालसंबंधि त्ति एदस्स परूवणाए खेत्तभंगो ।

सव्वलोगो वा ॥ ३० ॥

परिसेसादो एदं सुत्तं तीदाणागदकालसंबंधी । एत्थ ताव 'वा' सद्दट्ठो उच्चदे– ति-विसेसणविसिट्ठसत्थाणतिरिक्खमिच्छादिट्ठीहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । एवं खेत्तमाणिज्जमाणे असंखेज्जेसु समुद्देसु भोगभूमिपडिभागदीवाणमंतरेसु ट्ठिदेसु

संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र अतीतकालमें स्पर्श किया है, क्योंकि, संयतासंयत तिर्यंचोंका वैरी देवोंके हरणसम्बन्धसे एक लाख योजन बाहल्यवाले तिर्यक्प्रतरका अतीतकालमें स्पर्श किया गया है । मारणान्तिकसमुद्घातगत तिर्यंच संयतासंयतोंने कुछ कम छह बटे चौदह ($\frac{६}{१४}$) भाग स्पर्श किये हैं, क्योंकि, तिर्यंच संयतासंयतोंका अच्युतकल्प तक मारणान्तिकसमुद्घातसे गमन संभव है ।

पंचेन्द्रियतिर्यंच, पंचेन्द्रियतिर्यंच पर्याप्त और पंचेन्द्रियतिर्यंच योनिमतियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ २९ ॥

यह सूत्र वर्तमानकालसम्बन्धी है, इसलिए इसकी स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान जानना चाहिए ।

उक्त तीनों प्रकारके तिर्यंच जीवोंने अतीत और अनागत कालमें सर्वलोक स्पर्श किया है ॥ ३० ॥

पारिशेष्यन्यायसे यह सूत्र भूत और भविष्यकालसम्बन्धी है । यहांपर पहले 'वा' शब्दका अर्थ कहते हैं– पंचेन्द्रियतिर्यंच, पंचेन्द्रियतिर्यंचपर्याप्त और योनिमती इन तीन विशेषणोंसे विशिष्ट स्वस्थानपदस्थित तिर्यंच मिथ्यादृष्टि जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । इस क्षेत्रको निकालनेपर असंख्यात समुद्रोंमें और भोगभूमिके प्रतिभागरूप द्वीपोंके अन्तरालोंमें स्थित क्षेत्रोंमें स्वस्थानपदस्थित उक्त तीन प्रकारके तिर्यंच नहीं हैं, इसलिए इस

सत्थाणपदट्ठिदतिविहातिरिक्खा णत्थि त्ति एवं खेत्तं पुव्वविहाणेणाणिय रज्जुपदरम्हि अवणिय संखेज्जसूचिअंगुलेहि गुणिदे तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागमेत्तं पंचिंदिय-तिरिक्खतिगमिच्छाविट्ठिसत्थाणखेत्तं होदि। विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्विय-पदपरिणदतिविहमिच्छाविट्ठीहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो। कुदो ? मित्तामित्तदेववसेण सव्वदीव-सागरेसु संचरणं पडि विरोहाभावादो। तेणेत्थ संखेज्जंगुलबाहल्लं तिरिय-पदरमुड्डमेगूणवंचासखंडाणि करिय पदरागारेण ठइदे पंचिंदियतिरिक्खतिगमिच्छा-दिट्ठिविहारवदिसत्थाणादिखेत्तं तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागमेत्तं होदि। 'वा' सद्दट्ठो गदो। मारणंतिय-उववादगदपंचिंदियतिरिक्खतिगमिच्छादिट्ठीहि सव्वलोगो फोसिदो। लोगणालीए बाहिं तसकाइयाणमसंभवादो सव्वलोगो त्ति वयणं कधं घडदे ? ण एस दोसो, मारणंतिय-उववादट्ठिदतसजीवे मोत्तूण सेसतसाणं बाहिरे अत्थित्तप्पडिसेहादो[1]।

क्षेत्रको पूर्वविधानसे लाकर और राजुप्रतरमेंसे घटाकर संख्यात सूच्यंगुलोंसे गुणा करनेपर तिर्यग्लोकका संख्यातवें भागप्रमाण पंचेन्द्रियतिर्यंच, पंचेन्द्रियतिर्यंचपर्याप्त और पञ्चेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिनी इन तीन प्रकारके मिथ्यादृष्टि तिर्यंचोंका स्वस्थानक्षेत्र हो जाता है। विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकसमुद्घात, इन पदोंसे परिणत उक्त तीन प्रकारके मिथ्यादृष्टि तिर्यंचोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है, क्योंकि, पूर्वभवके मित्र या शत्रुरूप देवोंके वशसे सर्व द्वीप और समुद्रोंमें संचार (विहार) करनेके प्रति कोई विरोध नहीं है। इसलिए यहांपर संख्यात अंगुल बाहल्यवाले तिर्यक्प्रतरको ऊपरसे उनंचास खंड करके प्रतराकारसे स्थापित करनेपर पंचेन्द्रिय तिर्यंच आदि तीन प्रकारके मिथ्यादृष्टि तिर्यंच जीवोंसम्बन्धी विहारवत्स्वस्थान आदिका क्षेत्र हो जाता है, जो कि तिर्यग्लोकका संख्यातवां भागमात्र होता है। इस प्रकारसे 'वा' शब्दका अर्थ हुआ।

मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपदगत पंचेन्द्रिय तिर्यंच आदि तीन प्रकारके मिथ्यादृष्टि तिर्यंच जीवोंने सर्वलोक स्पर्श किया है।

शंका— लोकनालीके बाहिर त्रसकायिक जीवोंके असंभव होनेसे 'सर्वलोक स्पर्श किया है' यह वचन कैसे घटित होता है ?

समाधान— यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपदस्थित त्रसजीवोंको छोड़कर शेष त्रसजीवोंका त्रसनालीके बाहिर अस्तित्वका प्रतिषेध किया गया है।

१ उववाद-मारणंतियपरिणदतसमुज्झिदूण सेसतसा। तसणालिबाहिरम्हि य णत्थि त्ति जिणेहि णिद्दिट्ठं ॥ गो. जी. १९९.

सेसाणं तिरिक्खगदीणं भंगो ॥ ३१ ॥

सेसाणमिदि उत्ते सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजदा घेत्तव्वा, अण्णेसिमसंभवादो । एक्किस्से तिरिक्खगदीए तिरिक्खगदीणमिदि बहुत्तणिद्देसो कधं घडदे ? ण एस दोसो, एक्किस्से वि तिरिक्खगदीए गुणट्ठाणादिभेएण बहुत्तविरोहाभावादो । एदेसिं चदुण्हं गुणट्ठाणाणं परूवणा वट्टमाणकाले खेत्तसमाणा । अदीदकाले एदेसिं तिरिक्खोघपरूवणाए तुल्ला । णवरि जोणिणीसु असंजदसम्मादिट्ठीणं उववादो णत्थि, एत्तिओ चेव विसेसो ।

पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तएहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ३२ ॥

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

वट्टमाणकाले सत्थाण-वेदण-कसायपदे वट्टमाणपंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तएहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । मारणंतिय-उववादपदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणो ।

शेष तिर्यंचगतिके जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ ३१ ॥

'शेष' ऐसा पद कहने पर सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत तिर्यंचोंको ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि, इनके अतिरिक्त अन्य तिर्यंचोंका ग्रहण करना असंभव है ।

शंका– एक ही तिर्यंचगतिके होने पर 'तिरिक्खगदीणं' यह बहुवचनका निर्देश कैसे घटित होता है ?

समाधान– यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, एक तिर्यंचगतिसामान्यके होने पर भी गुणस्थान आदिके भेदसे बहुत्वके होनेमें कोई विरोध नहीं है ।

इन उक्त चारों गुणस्थानोंकी स्पर्शनप्ररूपणा वर्तमानकालमें क्षेत्रके समान है और इन्हीं चार गुणस्थानवर्ती तिर्यंचोंकी अतीतकालिक स्पर्शनप्ररूपणा तिर्यंचोंकी ओघ-स्पर्शनप्ररूपणाके तुल्य है । किन्तु योनिमतियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका उपपाद नहीं होता है, इतनी मात्र ही विशेषता है ।

पंचेन्द्रियतिर्यंच लब्ध्यपर्याप्त जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ३२ ॥

वर्तमानकालमें स्वस्थानस्वस्थान, वेदना और कषायसमुद्घात, इन पदोंपर वर्तमान पंचेन्द्रियतिर्यंच अपर्याप्तकोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और अढ़ाई-द्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद पदवाले पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त तिर्यंचोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग मनुष्यलोक तथा तिर्यग्लोक, इन दोनों लोकोंसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है ।

सव्वलोगो वा ॥ ३३ ॥

पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तेसि अणुवट्टदे । एत्थ ताव 'वा' सद्दट्ठो उच्चदे– सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसायपदगदेहि पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तएहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । कुदो ? अड्ढाइज्जदीव-समुद्देसु कम्मभूमिपडिभागे सयंपहपव्वदपरभागे च तेसिं संभवादो । अदीदकाले सयंपहपव्वदपरभागं सव्वं ते फुसंति त्ति तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागमेत्तं खेत्तं होदि । तस्साणयणविधाणं वुच्चदे– सयंपहपव्वदब्भंतरखेत्तं जगपदरस्स संखेज्जदिभागं रज्जुपदरम्हि अवणिदे सेसं जगपदरस्स संखेज्जदिभागो होदि । तं संखेज्जसूचिअंगुलेहि गुणिदे[1] तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो होदि । अपज्जत्ताणमंगुलासंखेज्जदिभागोगाहणाणं कधं संखेज्जंगुलुस्सेधो लब्भदे ? ण, मुअपंचिंदियादितसकलेवरेसु अंगुलस्स संखेज्जदिभागादिं कादूण जाव संखेज्जजोयणाणि त्ति कमवड्ढीए ट्ठिदेसु उप्पज्जमाणाणमपज्जत्ताणं संखेज्जंगुलुस्सेधं पडि

पंचेन्द्रियतिर्यंच लब्ध्यपर्याप्त जीवोंने अतीत और अनागतकालकी अपेक्षा सर्वलोक स्पर्श किया है ॥ ३३ ॥

इस सूत्रमें 'पंचेन्द्रियतिर्यंचअपर्याप्त' इस पदकी अनुवृत्ति होती है । अब यहांपर 'वा' शब्दका अर्थ कहते हैं– स्वस्थानस्वस्थान, वेदना और कषायसमुद्घात, इन पदोंको प्राप्त पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है, क्योंकि, अढ़ाईद्वीप और दो समुद्रोंमें, तथा कर्मभूमिके प्रतिभागवाले स्वयंप्रभपर्वतके परभागमें पंचेन्द्रियतिर्यंच लब्ध्यपर्याप्त जीवोंका होना सम्भव है । अतीतकालमें स्वयंप्रभपर्वतके सम्पूर्ण परभागको वे जीव स्पर्श करते हैं, इसलिए वह क्षेत्र तिर्यग्लोकका संख्यातवां भागमात्र होता है । अब उस क्षेत्रके निकालनेके विधानको कहते हैं– स्वयंप्रभपर्वतका आभ्यन्तर क्षेत्र जगत्प्रतरके संख्यातवें भागप्रमाण है । उसे राजुप्रतरमेंसे घटा देनेपर शेष क्षेत्र जगत्प्रतरका संख्यातवां भाग होता है । उसे संख्यात सूच्यंगुलोंसे गुणा करनेपर तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग हो जाता है ।

शंका– अंगुलके असंख्यातवें भागमात्र अवगाहनवाले लब्ध्यपर्याप्तक जीवोंके संख्यात अंगुलप्रमाण उत्सेध कैसे पाया जा सकता है ?

समाधान– नहीं, क्योंकि, मृत पंचेन्द्रियादि त्रसजीवोंके अंगुलके संख्यातवें भागको आदि करके संख्यात योजनों तक क्रमवृद्धिसे स्थित शरीरोंमें उत्पन्न होनेवाले लब्ध्यपर्याप्त जीवोंके संख्यात अंगुल उत्सेधके प्रति कोई विरोध नहीं है ।

अथवा, सभी द्वीप और समुद्रोंमें पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्त जीव होते हैं, क्योंकि,

१ प्रतिषु 'गुणिदेहि' इति पाठः ।

विरोहाभावादो। अथवा सव्वेसु दीव-समुद्देसु पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्ता अत्थि। कुदो, पुव्ववेरियदेवसंबंधेण एगबंधणबद्धछज्जीवणिका ओगाढकम्मभूमिपडिभागुप्पण्ण-ओरालियदेहमहामच्छादीणं सव्वदीव-समुद्देसु संभवोवलंभादो। महामच्छोगाहणम्हि एगबंधणबद्धछज्जीवणिकायाणमत्थित्तं कधं णव्वदे ? वग्गणम्हि उत्तअप्पाबहुगादो। तं जहा– 'सव्वत्थोवा महामच्छसरीरे पदरस्स असंखेज्जभागमेत्ता तसकाइयजीवा। तेउकाइया जीवा असंखेज्जगुणा। को गुणगारो ? असंखेज्जा लोगा। पुढविकाइया जीवा विसेसाहिया। केत्तियमेत्तो विसेसो ? असंखेज्जलोगमेत्तो। तेसिं पडिभागो वि असंखेज्जलोगमेत्तो। एवं आउकाइया विसेसाहिया। वाउकाइया विसेसाहिया। वणप्फइकाइया अणंतगुणा त्ति'। ण च सव्वे ते पज्जत्ता चेव, तसअपज्जत्ताणं पि[1] तेउकाइयाणं च संभवादो। ण च मुदसरीरे चेव पंचिंदियअपज्जत्ताणं संभवो त्ति वोत्तुं जुत्तं, तस्स विधायगसुत्ताभावा। महामच्छादिदेहे तेसिमत्थित्तस्स सूचगं पुण

पूर्वभवके वैरी देवोंके सम्बन्धसे एक बंधनमें बद्ध षट्कायिक जीवोंके समूहसे व्याप्त और कर्मभूमिके प्रतिभागमें उत्पन्न हुए औदारिकदेहवाले महामच्छादिकोंकी सर्वद्वीप और समुद्रोंमें संभावना पाई जाती है।

शंका– महामच्छकी अवगाहनामें एक बन्धनसे बद्ध षट्कायिक जीवोंका अस्तित्व कैसे जाना जाता है ?

समाधान– वर्गणाखंडमें कहे गये अल्पबहुत्वानुयोगद्वारसे जाना जाता है। वह इस प्रकार है– 'महामत्स्यके शरीरमें सबसे कम जगत्प्रतरके असंख्यातवें भागमात्र त्रसकायिक जीव होते हैं। उन त्रसकायिक जीवोंसे तेजस्कायिक जीव असंख्यातगुणे होते हैं। गुणकार क्या है ? असंख्यात लोक गुणकार है। तेजस्कायिक जीवोंसे पृथिवीकायिक जीव विशेष अधिक होते हैं। कितने प्रमाण विशेषसे अधिक होते हैं ? असंख्यात लोकमात्र विशेषसे अधिक होते हैं। उनका प्रतिभाग भी असंख्यात लोकमात्र होता है। इसी प्रकारसे पृथिवीकायिक जीवोंसे अप्कायिक जीव विशेष अधिक होते हैं। अप्कायिक जीवोंसे वायुकायिक जीव विशेष अधिक होते हैं और वायुकायिक जीवोंसे वनस्पतिकायिक जीव अनन्तगुणे होते हैं'।

महामच्छके शरीरमें पूर्वमें कहे गये ये सब जीव केवल पर्याप्त ही नहीं होते हैं, किन्तु उसके शरीरमें त्रसकायिक लब्ध्यपर्याप्त जीव और तेजस्कायिक जीवोंका भी होना संभव है। तथा मृत शरीरमें ही पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त जीव संभव है ऐसा भी कहना युक्त नहीं है, क्योंकि, इस बातके विधायक सूत्रका अभाव है। किन्तु महामच्छादिके देहमें उनके अस्तित्वका सूचक यही उक्त अल्पबहुत्वसूत्र है। त्रसपर्याप्तराशिसे त्रसअपर्याप्तराशि असंख्यातगुणी होती है, इसलिए जहां पर त्रसजीवोंकी

१ 'प्रतिषु की हि' इति पाठः।

इदमप्पाबहुगसुत्तं होदि । तसपज्जत्तरासीदो तसअपज्जत्तरासी असंखेज्जगुणो । तेण जत्थ तसजीवाणं संभवो होदि, तत्थ सव्वत्थ वि पज्जत्तेहिंतो अपज्जत्ता असंखेज्जगुणा होंति । तम्हा संखेज्जंगुलबाहल्लं तिरियपदरमेगूणवंचासखंडाणि करिय पदरागारेण ठइदे तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागमेत्तं पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तसत्थाण-वेदण-कसायखेत्तं होदि । 'वा' सद्दट्ठो गदो । मारणंतिय-उववादगदेहि सव्वलोगो फोसिदो, सव्वत्थ गमणागमणं पडि विरोहाभावा ।

मणुसगदीए मणुस-मणुसपज्जत्त-मणुसिणी मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं लोगस्स असंखेज्जदिभागो[1] ॥ ३४ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो खेत्ताणिओगद्दारे परूविदो त्ति णेह परूविज्जदे ।

सव्वलोगो वा ॥ ३५ ॥ श्री सुविधिसागर जी महाराज

एत्थ ताव 'वा' सद्दट्ठो उच्चदे– सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियपरिणदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो फोसिदो, तीदाणागद-कालेसु वेरियदेवसंबंधेण वि माणुसोत्तरसेलादो परदो गमणाभावा । माणुसखेत्तस्स

संभावना होती है वहां पर सर्वत्र पर्याप्त जीवोंसे अपर्याप्त जीव असंख्यातगुणे होते हैं । अतएव संख्यात अंगुल बाहल्यवाले तिर्यक्प्रतरके उनंचास खंड करके प्रतराकारसे स्थापित करने पर तिर्यग्लोकके संख्यातवां भागमात्र पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्त जीवोंका स्वस्थान वेदना और कषायसमुद्घातगत क्षेत्र होता है । इस प्रकारसे 'वा' शब्दका अर्थ समाप्त हुआ ।

मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादगत पंचेन्द्रियतिर्यंच लब्ध्यपर्याप्त जीवोंने सर्वलोक स्पर्श किया है, क्योंकि, उनके सर्व लोकमें गमनागमनके प्रति विरोधका अभाव है ।

मनुष्यगतिमें मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ३४ ॥

इस सूत्रका अर्थ क्षेत्रानुयोगद्वारमें प्ररूपण किया जा चुका है, इसलिए यहांपर पुनः प्ररूपण नहीं किया जाता है ।

मिथ्यादृष्टि मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनियोंने अतीत और अनागत-कालकी अपेक्षा सर्वलोक स्पर्श किया है ॥ ३५ ॥

अब यहांपर पहिले 'वा' शब्दका अर्थ कहते हैं– स्वस्थानस्वस्थान, विहार-वत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकसमुद्घातसे परिणत उपर्युक्त जीवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है, क्योंकि, अतीत और अनागतकालमें वैरी देवोंके सम्बन्धसे भी मानुषोत्तर शैलसे परे मनुष्योंके गमनका अभाव है । किन्तु मनुष्यक्षेत्रका

१ मनुष्यगतौ मनुष्यैर्मिथ्यादृष्टिभिरेकस्यासंख्येयभागः सर्वलोको वा स्पृष्टः । स. सि. १, ८.

पुण संखेज्जदिभागो फोसिदो मिच्छाइट्ठीणं [illegible] जोयणलक्खबाहल्लेण फोसाभावादो। अथवा सव्वपदेहि माणुसलोगो देसूणो फोसिदो, पुव्ववेरियदेवसंबंधेण उड्ढं देसूणजोयणलक्खुप्पायणसंभवादो। एसो 'वा' सद्दट्ठो। मारणंतिय-उववादगदेहि सव्वलोगो फोसिदो, सव्वलोगे गमणागमणे विरोहाभावादो।

सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो[1] ॥ ३६ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो पुव्वं परूविदो।

सत्त चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ ३७ ॥

सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेयण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादगदेहि सासणसम्मादिट्ठीहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो फोसिदो। माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागो फोसिदो। अथवा विहारादि-उवरिमपदेहि माणुसखेत्तं देसूणं फोसिदं।

संख्यातवां भाग स्पर्श किया है, क्योंकि, आकाशगमनादि रूप विशेष शक्तिसे विरहित मिथ्यादृष्टि जीवोंके एक लाख योजनके बाहल्यसे सर्वत्र स्पर्शका अभाव है। अथवा, सर्व पदोंकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टि मनुष्योंने देशोन मनुष्यलोकका स्पर्श किया है, क्योंकि, पूर्वभवके वैरी देवोंके सम्बन्धसे ऊपर कुछ कम लाख योजन तक उनका जाना आना संभव है। इस प्रकार यह 'वा' शब्दका अर्थ समाप्त हुआ।

मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपदगत उक्त तीनों प्रकारके मनुष्य मिथ्यादृष्टि जीवोंने सर्वलोक स्पर्श किया है, क्योंकि, इन दोनों पदोंकी अपेक्षा सर्वलोकके भीतर आने आनेमें कोई विरोध नहीं है।

मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ३६ ॥

इस सूत्रका अर्थ पहले कहा जा चुका है।

मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने अतीत और अनागतकालकी अपेक्षा कुछ कम सात बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ ३७ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकसमुद्घातगत सासादनसम्यग्दृष्टि मनुष्योंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है, तथा मानुषक्षेत्रका संख्यातवां भाग स्पर्श किया है। अथवा, विहारवत्स्वस्थानादि ऊपरके पदोंकी अपेक्षा देशोन मनुष्यक्षेत्रको स्पर्श किया है।

शंका— यहां देशोन पदसे कितना कम क्षेत्र विवक्षित है?

---

[1] सासादनसम्यग्दृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः सप्त चतुर्दशभागा वा देशोनाः। स. सि. १, ८.

केण ऊणं ? चित्तकुलसेल-मेरुपव्वद-जोइसावासादिणा । माणुसेहि अगम्मपदेसस्स तस्स कथं माणुसखेत्तववएसो ? ण, लद्धिसंपण्णमुणीणमगम्मपदेसाभावा । मारणंतिय-समुग्घादगदेहि सत्त चोद्दसभागा देसूणा फोसिदा । किं कारणं ? सासणाणं मारणंतिएण भवणवासियलोगादो हेट्ठा गमणाभावादो, उवरि सव्वत्थ मारणंतिएण गमणसंभावादो । उववादगदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो फोसिदो; तिरिय-लोगस्स संखेज्जदिभागो फोसिदो । ण ताव णेरइय सासणाणं मणुसेसुप्पज्जमाणाणं फोसणं तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो होदि । दुक्खंभदुबाहुखेत्तफलस्स णेरइय-असंजदसम्मादिट्ठिमारणंतियखेत्तफलस्सेव तिरियलोगासंखेज्जदिभागत्तुवलंभादो । णादीदकाले अट्ठरज्जुमाऊरिय ट्ठिददेवसासणाणं मणुस्सेसुप्पज्जमाणाणमुववादफोसणं

समाधान– चित्रापृथिवी, कुलाचल, मेरुपर्वत और ज्योतिष्क आवास आदिसे हीन अपेक्षा विवक्षित है ।

शंका– मनुष्योंसे अगम्य प्रदेशवाले इस कुलाचल आदिके क्षेत्रको 'मनुष्यक्षेत्र' यह संज्ञा कैसे प्राप्त है ।

समाधान– नहीं, क्योंकि, लब्धिसम्पन्न मुनियोंके लिए (मनुष्यलोकके भीतर) अगम्य प्रदेशका अभाव है ।

मारणान्तिकसमुद्घातगत सासादनसम्यग्दृष्टि मनुष्योंने कुछ कम सात बटे चौदह ($\frac{७}{१४}$) भाग स्पर्श किये हैं । इसका कारण यह है कि सासादनसम्यग्दृष्टियोंका मारणान्तिक-समुद्घातके द्वारा भवनवासियोंके निवासलोकसे नीचे गमन नहीं होता है । किन्तु ऊपर सर्वत्र मारणान्तिकसमुद्घातके द्वारा गमन संभव है । उपपादगत उक्त तीनों प्रकारके सासादन-सम्यग्दृष्टि मनुष्योंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है और तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग स्पर्श किया है ।

शंका– मनुष्योंमें उत्पन्न होनेवाले नारकी सासादनसम्यग्दृष्टियोंका स्पर्शनक्षेत्र भी तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग नहीं होता, क्योंकि, (असंख्यात योजन विस्तृत श्रेणीबद्धादि बिलोंके) अपने दोनों ओरके वंशाकार व भुजाकार क्षेत्रोंका क्षेत्रफल[1], नारकी असंयतसम्यग्दृष्टि-योंके मारणान्तिकक्षेत्रफलके समान, तिर्यग्लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण पाया जाता है । और न अतीतकालमें ही आठ राजुप्रमाण क्षेत्रको व्याप्त करके स्थित और मनुष्योंमें उत्पन्न होनेवाले सासादनसम्यग्दृष्टि देवोंका उपपादसम्बन्धी स्पर्शनक्षेत्र तिर्यग्लोकका संख्यातवां

---

१ 'दुक्खंभदुबाहुखेत्तफलस्स' इस पदका अर्थ बहुत स्पष्ट नहीं हुआ । प्रायः यही पद पहले भी आ चुका है । (देखो पृ. १८७.) इस पदकी यथाशक्य सार्थकता निकालकर अर्थ कर दिया गया है । संभव है ये उक्त नरकके बडे से बडे बिलोंके नाम हों । त्रिलोकप्रज्ञप्तिमें बिलोंके नाम इस प्रकारके मिलते हैं, किन्तु ये नाम हमें अभी तक नहीं मिले ।

तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो होदि, छक्कावक्कमणियमबलेण पणदालीसजोयण-लक्खविक्खंभ-अट्ठरज्जुस्सेहचदुपाणद्धोसु मणुअलोगमागच्छंताणमुववादखेत्तफलस्स तिरियलोगादो संखेज्जगुणत्तुवलंभादो। ण तिरिक्खेहिंतो मणुस्सेसुप्पज्जमाणसासणाण-मुववादखेत्तं वि तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो होदि, तत्थ वि चदुहि चेव पंथेहि आगमणदंसणादो त्ति ? एत्थ परिहारो उच्चदे– ण ताव णेरइयसासणे अस्सिदूण उत्तदोसो, तण्णिबंधणुववादफोसणबलेण तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागत्ताणब्भुव-गमादो। ण देवसासणे अस्सिदूण उत्तदोसो वि, अट्ठरज्जुस्सेहलोगणालीए समचउ-रस्साए अंतोट्ठिददेवसासणाणं हेट्ठिम-उवरिमाणं च कंडुज्जुवाए गईए चदुणोयरण-वावारेण मणुवलोगपणिधिमागंतूण एग-दोविग्गहं करिय मणुस्सेसुप्पज्जमाणाणं तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागमेत्तफोसणस्सुवलंभादो। तिरिच्छं गंतूण विग्गहं करिय देवसासणा मणुसेसु किण्ण उप्पज्जंति ? मणुसगइविरहियदिसाए सहावदो चेव तेसिं गमणाभावादो। ण च मणुसगइसंमुहमागंतूण विग्गहं करिय मणुस्सेसुप्पण्णाणं खेत्तं

भाग होता है, क्योंकि, भवान्तरमें संक्रमणके समय पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊपर और नीचे, इसप्रकार छह दिशाओंमें गमनागमनरूप षट् अपक्रम-नियमके बलसे पैंतालीस लाख योजन विष्कम्भवाले व आठ राजु उत्सेधवाले क्षेत्रके चारों मार्गोंसे मनुष्यलोकको आनेवाले जीवोंका उपपादसम्बन्धी क्षेत्रफल, तिर्यग्लोकसे संख्यातगुणा पाया जाता है। और न तिर्यंचोंसे मनुष्योंमें उत्पन्न होनेवाले सासादनसम्यग्दृष्टियोंका उपपादक्षेत्र भी तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग होता है, क्योंकि, वहांपर भी चारों ही दिशाओंके मार्गोंसे आगमन देखा जाता है ?

समाधान– अब पूर्वोक्त आशंकाका परिहार करते हैं– न तो नारकी सासादन-सम्यग्दृष्टियोंको आश्रय करके उक्त दोष प्राप्त होता है, क्योंकि, तन्निमित्तक उपपादसम्बन्धी स्पर्शनके बलसे तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग नहीं स्वीकार किया गया है। और न देव सासादनसम्यग्दृष्टियोंका आश्रय करके भी उक्त दोष प्राप्त होता है, क्योंकि, आठ राजु उत्सेधवाली समचतुरस्र लोकनालीके अन्तःस्थित देव सासादनसम्यग्दृष्टियोंका और अधस्तन तथा उपरिम जीवोंका भी बाणकी तरह सीधी गतिसे बढ़ने और उतरनेरूप व्यापारसे मनुष्यलोककी प्रणिधि (तट) को आकर और एक या दो विग्रह करके मनुष्योंमें उत्पन्न होनेवाले जीवोंका तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमात्र स्पर्शन पाया जाता है।

शंका– तिरछे जाकर पुनः विग्रह करके सासादनसम्यग्दृष्टि देव, मनुष्योंमें क्यों नहीं उत्पन्न होते हैं ?

समाधान– मनुष्यगतिसे रहित दिशामें स्वभावसे ही उनका गमन नहीं होता है।

तथा, मनुष्यगतिके सन्मुख आकर और विग्रह करके मनुष्योंमें उत्पन्न होनेवाले जीवोंका भी क्षेत्र बहुत नहीं पाया जाता है, क्योंकि, वह क्षेत्रके तिर्यग्लोकके संख्यातवें

बहुअमुवलब्भइ, तक्खेत्तस्स तिरियलोयस्स संखेज्जदिभागपमाणत्तादो । तम्हा एवंविहणियमवसेण तलफोसणमेत्तस्सेव संगहो कायव्वो । मणुसोववादिणो देवसासणा मूलसरीरं पविसिय कालं करेंति त्ति भणंताणमभिप्पायेण च तिरियलोयस्स संखेज्जदिभागमेत्तमेदं फोसणं समत्थेयव्वं । तिरिक्खसासणेसु मणुस्सेसुप्पज्जमाणेसु वि तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो फोसणमुवलब्भइ, तिरिक्खसासणसम्माइट्ठीणं चउगईसुप्पज्जमाणाणं तिरिक्खभवाभिमुहसेसगइजीवाणं च तिरिच्छं गंतूण विग्गहं करिय उप्पत्तिदंसणादो । अतएव च ' तिरोऽञ्चन्तीति तिर्यञ्चः ' । एदेसिमेवंविहा गई अत्थि त्ति कुदो णव्वदे ? देवसासणोववादस्स पंच-चोद्दसभागफोसणपरूवणण्णहाणुववत्तीदो । तदो ण पुव्वुत्तदोसप्पसंगो त्ति सद्दहेयव्वं ।

सम्मामिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो' ॥ ३८ ॥

सम्मामिच्छाइट्ठीणं वट्टमाणकाले सगसव्वपदेहि खेत्तभंगो । सत्थाणपदट्ठिएहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागो फोसिदो । विहारवदि-

---

भागप्रमाण है । इसलिए इस प्रकारके नियमके वशसे मेरुके तलभागके स्पर्शनमात्रका ही संग्रह करना चाहिए । मनुष्योंमें उत्पन्न होनेवाले देव सासादनसम्यग्दृष्टि जीव मूलशरीरमें प्रवेश करके मरण करते हैं, ऐसा कहने वाले आचार्योंके अभिप्रायसे तिर्यग्लोकका संख्यातवां भागमात्र स्पर्शन होता है, ऐसा समर्थन करना चाहिए । तथा तिर्यंच सासादनसम्यग्दृष्टियोंमें और मनुष्योंमें भी उत्पन्न होने वाले जीवोंमें तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागप्रमाण स्पर्शनक्षेत्र पाया जाता है, क्योंकि, चारों गतियोंमें उत्पन्न होने वाले तिर्यंच सासादनसम्यग्दृष्टियोंके और तिर्यंचभवके अभिमुख शेष गतिके जीवोंके तिरछे जाकर और विग्रह करके उत्पत्ति देखी जाती है । और इसीलिए वे ' तिरछे जाते हैं अतएव तिर्यंच हैं ' ऐसी व्युत्पत्ति की गई है ।

शंका– इन तिर्यंचोंकी इस प्रकारकी तिरछी गति होती है, यह कैसे जाना जाता है ।

समाधान– अन्यथा देव सासनसम्यग्दृष्टियोंके उपपादसम्बन्धी पांच बटे चौदह ($\frac{५}{१४}$) भागप्रमाण स्पर्शनक्षेत्रकी प्ररूपणा नहीं हो सकती थी । इसलिए पूर्वोक्त दोष नहीं प्राप्त होता है, ऐसा श्रद्धान करना चाहिए ।

मनुष्योंमें सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ३८ ॥

सम्यग्मिथ्यादृष्टि मनुष्योंका वर्तमानकालमें स्पर्शनक्षेत्र अपने सर्व पदोंकी अपेक्षा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है । स्वस्थानस्वस्थान पदस्थित उक्त गुणस्थानवर्ती मनुष्योंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मानुष्यक्षेत्रका संख्यातवां भाग स्पर्श

---

१ सम्यग्मिथ्यादृष्ट्यादीनामयोगकेवल्यन्तानां क्षेत्रवत्स्पर्शनम् । स. सि. १, ८.

सत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियपदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागो[1] संखेज्जभागा वा फोसिदा। अदीदाणागदवट्टमाणकालेसु मणुस-असंजदसम्मादिट्ठीणं मणुससम्मामिच्छादिट्ठिभंगो। णवरि मारणंतियसमुग्घादगदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो फोसिदो। तं कधं? मणुससम्मादिट्ठिदेवेसु मारणंतियं करेंता संखेज्जपंथ-संखेज्जविमाणेसु चेव मारणंतियं करेंति, वाणवेंतर-जोदिसिएसु तेसिमुप्पत्तीए अभावादो। तत्थ एक्केक्किस्से वट्टाए जदि वि असंखेज्जदिजोयणलक्खबाहल्लं होदि, तो वि तिरियलोगस्स असंज्जदि-भागमेत्तं चेव खेत्तं फोसिदं होज्ज। तेणेदमप्पधाणं। मणुसा पुव्वं तिरिक्खेसु बद्धायुगा पच्छा सम्मत्तं घेत्तूण तिरिक्खेसु उप्पज्जंति, एदं खेत्तं पधाणं। कधमेदमाणिज्जदे? सयंपहपव्वदादो उवरिमखेत्तविक्खंभं ठविय—

व्यासं षोडशगुणितं षोडशसहितं त्रिरूपरूपहृतं
व्यासत्रिगुणितसहितं सूक्ष्मादपि तद्भवेत्सूक्ष्मम् ॥ ९ ॥

किया है। विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकसमुद्घात, इन पदोंकी अपेक्षा मनुष्योंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मनुष्यलोकका संख्यातवां भाग और संख्यात बहुभाग स्पर्श किया है। अतीत, अनागत और वर्तमान, इन तीनों कालोंमें मनुष्य असंयतसम्यग्दृष्टियोंकी स्पर्शनप्ररूपणा मनुष्य सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंके समान है। विशेष बात यह है कि मारणान्तिकसमुद्घातगत असंयत मनुष्योंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग और तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग स्पर्श किया है।

शंका— मारणान्तिकसमुद्घातगत असंयतसम्यग्दृष्टि मनुष्योंने तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग कैसे स्पर्श किया?

समाधान— देवोंमें मारणान्तिकसमुद्घात करने वाले सम्यग्दृष्टि मनुष्य संख्यात भाग वाले संख्यात विमानोंमें ही मारणान्तिकसमुद्घात करते हैं, क्योंकि, उनकी वानव्यन्तर और ज्योतिष्क देवोंमें उत्पत्ति नहीं होती है। उनमें एक एक मारणान्तिकसमुद्घातके मार्गका यद्यपि असंख्यात लाख लोक बाहल्य होता है, तो भी वह क्षेत्र (सब मिलकर) तिर्यग्लोकके असंख्यातवें भागमात्र ही स्पर्श किया गया होगा। इसलिए यह क्षेत्र यहां पर अप्रधान है। पहले तिर्यंचोंमें जिन्होंने आयु बांध ली है ऐसे मनुष्य पीछे सम्यक्त्वको ग्रहण करके तिर्यंचोंमें उत्पन्न होते हैं, यह क्षेत्र यहां पर प्रधान है।

शंका— बद्धायुष्क मनुष्योंका यह उपपादक्षेत्र कैसे निकाला जाता है?

समाधान— स्वयंप्रभ पर्वतसे उपरिम क्षेत्रके विष्कम्भको स्थापित करके—

व्यासको सोलहसे गुणा करें, पुनः सोलह जोड़ें, पुनः तीन, एक और एक अर्थात् एकसौ तेरह (११३) का भाग देवें। पुनः व्यासका तिगुणा जोड़ देवें, तो सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म परिधिका प्रमाण आ जाता है ॥ ९ ॥

---

१ आ-क प्रत्योः '-भागो संखेज्जभागो वा' इति पाठः।

एदीए गाहाए परिधिमाणीय विक्खंभचउब्भागेण गुणिय संखेज्जंगुलेहि गुणिदे तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो मारणंतियखेत्तं होदि । अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणं । उववादगदेहि असंजदसम्मादिट्ठीहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो । तं जहा-जदि वि अट्ठरज्जुखेत्तं रज्जुविक्खंभमदीदकाले चउव्विहा देवा आऊरिय ट्ठिदा असंजदसम्मादिट्ठिणो मणुसेसु उप्पज्जंति, तो वि तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो फोसणं, देवसासणाणं व तत्थतण असंजदसम्मादिट्ठीणं मणुसेसुप्पज्जमाणाणमागमणणियमोवलंभादो । एसो अत्थो अण्णत्थ वि वत्तव्वो । अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । संजदासंजदाणं वट्टमाणपरूवणा खेत्तभंगो । सत्थाणसत्थाणेण अदीदकाले संजदासंजदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागो फोसिदो । विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादगदेहि चदुण्हं

इस गाथाके अनुसार परिधिको निकालकर और विष्कम्भके चतुर्भागसे गुणाकर पुनः संख्यात अंगुलोंसे गुणा करने पर तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागप्रमाण मारणान्तिकक्षेत्र हो जाता है । यह क्षेत्र अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा होता है ।

उदाहरण– स्वयंप्रभ पर्वतसे उपरिम भाग अर्थात् भीतरी क्षेत्रका विष्कम्भ–

$$१ - \frac{५}{८} = \frac{३}{८}; \quad \frac{३}{८} \times \frac{१६}{१} + \frac{१६}{११३} + \frac{९}{८} \times \frac{३}{३२} = \frac{३५७१}{२९०५६} \text{ राजु प्रतर,}$$

यह मारणान्तिकसमुद्घातगत असंयतसम्यग्दृष्टि मनुष्योंका क्षेत्र है जो राजुप्रतरके अष्टमांशसे कुछ अधिक होनेके कारण तिर्यग्लोक अर्थात् ७×१ राजुका संख्यातवां भाग तथा पैंतालीस लाख योजन विष्कम्भ वाले अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा बड़ा है ।

उपपादपदगत असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग और तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग स्पर्श किया है । वह इसप्रकार है– यद्यपि अतीतकालमें आठ राजु आयत और एक राजु विस्तृत क्षेत्रको प्राप्त करके स्थित चारों प्रकारके असंयतसम्यग्दृष्टि देव, मनुष्योंमें उत्पन्न हैं तो भी वह स्पर्शनक्षेत्र तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग ही होता है, क्योंकि, सासादनसम्यग्दृष्टि देवोंके समान वहांके मनुष्योंमें उत्पन्न होने वाले असंयतसम्यग्दृष्टियोंके आगमनका नियम पाया जाता है । यह अर्थ अन्यत्र भी कहना चाहिए । उन्हीं जीवोंने अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है ।

संयतासंयत मनुष्योंकी वर्तमानकालिक स्पर्शनकी प्ररूपणा क्षेत्रके समान है । स्वस्थानस्वस्थानपदकी अपेक्षा संयतासंयत मनुष्योंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मनुष्यक्षेत्रका संख्यातवां भाग स्पर्श किया है । विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकसमुद्घातगत मनुष्य संयतासंयतोंने सामान्यलोक

लोगाणमसंज्जदिभागो, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागो, संखेज्जा भागा वा फोसिदा। मारणंतियसमुग्घादगदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो। कारणं चिंतिय वत्तव्वं। पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं।

सजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जा वा भागा, सव्वलोगो वा ॥ ३९ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो पुव्वं उत्तो त्ति संपदि ण उच्चदे। एवं पज्जत्तमणुसमणुसिणीसु। णवरि मणुसिणीसु असंजदसम्माइट्ठीणं उववादो णत्थि। पमत्ते तेजाहारं णत्थि।

मणुसअपज्जत्तेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ४० ॥

सत्थाण-वेदण-कसायसमुग्घादगदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागो फोसिदो। मारणंतिय-उववादगदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, दोलोगेहिंतो असंखेज्जगुणो फोसिदो।

आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मनुष्यक्षेत्रका संख्यातवां भाग अथवा संख्यात बहुभागप्रमाण क्षेत्र स्पर्श किया है। मारणान्तिकसमुद्घातगत संयतासंयत मनुष्योंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। इसका कारण विचार कर कहना चाहिए। प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लगाकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती मनुष्योंका स्पर्शनक्षेत्र ओघप्ररूपणाके समान लोकका असंख्यातवां भाग है।

सयोगिकेवली जिनोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोकका असंख्यातवां भाग, असंख्यात बहुभाग और सर्वलोक स्पर्श किया है ॥ ३९ ॥

इस सूत्रका अर्थ पहले कह आये हैं, इसलिए अब नहीं कहते हैं। इसी प्रकारसे पर्याप्तमनुष्य और मनुष्यनियोंका स्पर्शनक्षेत्र जानना चाहिए। विशेष बात यह है कि मनुष्यनियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका उपपाद नहीं होता है और प्रमत्तसंयतगुणस्थानमें तैजस एवं आहारकसमुद्घात नहीं होते हैं।

लब्ध्यपर्याप्त मनुष्योंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ४० ॥

स्वस्थानस्वस्थान, वेदना और कषायसमुद्घातगत लब्ध्यपर्याप्त मनुष्योंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मनुष्यक्षेत्रका संख्यातवां भाग स्पर्श किया है। मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपदगत उक्त जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग और मनुष्य तथा तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है।

सव्वलोगो वा ॥ ४१ ॥

सत्थाण-वेदण-कसायसमुग्घादगदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागो, संखेज्जा भागा वा अदीदकाले फोसिदा। मारणंतिय-उववादगदेहि सव्वलोगो फोसिदो, सव्वत्थ गमणागमणे विरोहाभावा।

देवगदीए देवेसु मिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो[1] ॥ ४२ ॥

आगमों की सुरक्षितलोकिक ओं पहलाओं

एत्थ ताव मिच्छाविट्ठीणं उच्चदे– सत्थाणसत्थाणपरिणदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो। एवं विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियपदाणं पि वत्तव्वं। मारणंतिय-उववादगदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणो फोसिदो। सासणसम्मादिट्ठिस्स सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-

लब्ध्यपर्याप्त मनुष्योंने अतीत और अनागतकालकी अपेक्षा सर्वलोक स्पर्श किया है ॥ ४१ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, वेदना और कषायसमुद्घातगत लब्ध्यपर्याप्त मनुष्योंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग, मनुष्यक्षेत्रका संख्यातवां भाग अथवा संख्यात बहुभाग अतीतकालमें स्पर्श किया है। मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादगत मनुष्योंने सर्वलोक स्पर्श किया है, क्योंकि, उनके सर्वत्र गमनागमनमें कोई विरोध नहीं।

देवगतिमें देवोंमें मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ४२ ॥

यहांपर पहले मिथ्यादृष्टि देवोंका स्पर्शनक्षेत्र कहते हैं - स्वस्थानस्वस्थानपदसे परिणत मिथ्यादृष्टि देवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। इसी प्रकारसे विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकसमुद्घात, इन पदोंको प्राप्त देवोंका भी स्पर्शनक्षेत्र कहना चाहिए। मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपदवाले मिथ्यादृष्टि देवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग और नरलोक तथा तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकपदवाले सासादनसम्यग्दृष्टि देवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघक्षेत्रकी प्ररूपणाके समान है। मारणान्तिक-

१ देवगतौ देवेषु मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः अष्टौ नव चतुर्दशभागा वा देशोनाः। स. सि. १, ८.

वेउव्वियपदाणं खेत्तोघं । मारणंतिय-उववादपदाणं पि खेत्तोघमेव होदि । एसा वट्टमाणपमाणपरूवणा । अदीदाणागदपरूवणट्ठमाह–

अट्ठ णव चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ ४३ ॥

सत्थाणसत्थाणमिच्छादिट्ठीहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । एत्थ ओघकारणं वत्तव्वं । सासणसम्मादिट्ठीहि सत्थाणसत्थाणपरिणदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । एत्थ वि ओघकारणं वत्तव्वं । विहारवदिसत्थाण–वेदण–कसाय–वेउव्वियपरिणदेहि दोगुणट्ठाणजीवेहि अदीदकाले अट्ठ चोद्दसभागा देसूणा फोसिदा । केण ऊणा ? तदियपुढविहेट्ठिमतलसहस्सजोयणेहि अण्णेहि वि देवाणमगम्मपदेसेहि । मारणंतियसमुग्घादगदेहि मिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठीहि णव चोद्दसभागा देसूणा फोसिदा । केण ऊणा ? [illegible] सत्त

समुद्घात और उपपादपदवाले जीवोंका भी स्पर्शनक्षेत्र ओघ क्षेत्रप्ररूपणाके समान ही होता है । इसप्रकार यह वर्तमानकालिक स्पर्शनक्षेत्रके प्रमाणकी प्ररूपणा समाप्त हुई । अब अतीत और अनागत कालसम्बन्धी स्पर्शनक्षेत्रके प्ररूपण करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं–

मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि देवोंने अतीत और अनागतकालकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग और कुछ कम नौ बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ ४३ ॥

स्वस्थानस्वस्थान पदवाले मिथ्यादृष्टि देवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । यहांपर कारण ओघके समान कहना चाहिए । स्वस्थानस्वस्थानपदपरिणत सासादनसम्यग्दृष्टि देवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । यहांपर भी कारण ओघके समान ही कहना चाहिए । विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकसमुद्घात, इन पदोंसे परिणत मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि, इन दो गुणस्थानवर्ती देवोंने अतीतकालमें कुछ कम आठ बटे चौदह ($\frac{८}{१४}$) भाग स्पर्श किये हैं ।

शंका– यहां आठ बटे चौदह भाग किस क्षेत्रसे कम है ?

समाधान– तृतीय पृथिवीके अधस्तन तलसम्बन्धी एक हजार योजनोंसे, तथा अन्य भी देवोंके अगम्य प्रदेशोंसे कम हैं ।

मारणान्तिकसमुद्घातगत मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि देवोंने मेरुतलसे नीचे दो राजु और ऊपर सात राजु, इस प्रकार कुछ कम नौ बटे चौदह ($\frac{९}{१४}$) भाग स्पर्श

रज्जु त्ति । उववादगदेहि मिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठीहि पंच चोद्दसभागा देसूणा फोसदा, सहस्सारकप्पादो उवरिमेदेसिमुववादाभावा । छक्कापक्कमणियमे संते पंचचोद्दसभागफोसणं ण जुज्जदि त्ति णासंकणिज्जं, चदुण्हं दिसाणं हेट्ठुवरिमदिसाणं च गच्छंतेहि तदाफोसणं पडि विरोहाभावादो ।

का दिसा णाम ? सगट्ठाणादो कंडुज्जुवा दिसा णाम । ताओ छच्चेव, अण्णेसिमसंभवादो । का विदिसा णाम ? सगट्ठाणादो कण्णायारेण ट्ठिदखेत्तं विदिसा । जेण सव्वे जीवा कण्णायारेण ण जांति तेण छक्कापक्कमणियमो जुज्जदे । ण च एगदंडेणेव उप्पत्तिट्ठाणेण उवरि सरिसा होंति त्ति णियमो, एगंगुलादिवियप्पेहि तिरिक्खेण आयदं पढमदंडं काऊण तिरिक्ख-मणुसाणं विदियदंडेण सगुप्पत्तिट्ठाणपावणे विरोहाभावादो । भवणवासिएसु उप्पज्जमाणतिरिक्खुववादखेत्ते गहिदे पंच रज्जू

किये हैं । उपपादपदगत मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि देवोंने कुछ कम पांच बटे चौदह ($\frac{५}{१४}$) भाग स्पर्श किये हैं, क्योंकि, सहस्रारकल्पसे ऊपर इन दोनों गुणस्थानवर्ती जीवोंका उपपाद नहीं होता है ।

शंका– छहों दिशाओंमें जाने आनेका नियम होनेपर सासादनगुणस्थानवर्ती देवोंका स्पर्शनक्षेत्र पांच बटे चौदह भागप्रमाण नहीं बनता है ?

समाधान– ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि, चारों विशाओंको और ऊपर तथा नीचेकी दिशाओंको गमन करनेवाले सासादनसम्यग्दृष्टि देवोंके पांच बटे चौदह भाग प्रमाण क्षेत्र स्पर्श करनेके प्रति कोई विरोध नहीं है ।

शंका– दिशा किसे कहते हैं ?

समाधान– अपने स्थानसे बाणकी तरह सीधे क्षेत्रको दिशा कहते हैं ।

ये दिशाएं छह ही होती हैं, क्योंकि, अन्य दिशाओंका होना असंभव है ।

शंका– विदिशा किसे कहते हैं ?

समाधान– अपने स्थानसे कर्णरेखाके आकारसे स्थित क्षेत्रको विदिशा कहते हैं ।

चूंकि मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद पदगत सभी जीव कर्णरेखाके आकारसे अर्थात् तिरछे मार्गसे नहीं जाते हैं, इसलिए छह दिशाओंके अपक्रम अर्थात् गमनागमनका नियम बन जाता है । तथा, एक दंडके द्वारा ही सब जीव ऊपर उत्पत्तिस्थानकी अपेक्षा समतलस्थ हो जाते हैं, ऐसा नियम भी नहीं है, क्योंकि, एक अंगुल आदिके विकल्पसे तिरछे रूपसे आयत प्रथम दंडको करके तिर्यंच और मनुष्योंका द्वितीय दंडके द्वारा अपने उत्पत्तिस्थानको पानेमें कोई विरोध नहीं है ।

शंका– भवनवासियोंमें उत्पन्न होनेवाले तिर्यंचोंके उपपादक्षेत्रको ग्रहण करने पर साधिक पांच राजु स्पर्शनक्षेत्र क्यों नहीं होता है ?

सादिरेया किण्ण होंति त्ति उत्ते ण होंति, अहियखेत्तादो ऊणखेत्तस्स बहुत्तुवदेसा। तं कधं णव्वदे ? हेट्ठा दंडायारेण ओयरिय विग्गहं काऊण भवणवासिएसुप्पण्णाणं पढम-बिदियदंडेहि अदीदकाले खुद्दखेत्तादो सहस्सारुवरिमभागस्स संखेज्जगुणत्ता। विमाणसिहरमुस्सेहजोयणपमाणं ति ण थोवो उवरिमभागो, सहस्सारुवरिमपज्जवसाणस्स लक्खपमाणजोयणेहिंतो बहुअत्तादो। तं कुदो णव्वदे ? देसूणपंच-चोद्दसभागफोसणण्णहाणुववत्तीदो।

सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो[1] ॥ ४४ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो खेत्तपरूवणाए उत्तो त्ति इह ण उच्चदे।

अट्ठ चोद्दसभागा वा ॥ ४५ ॥

समाधान– ऐसी शंका करनेपर उत्तर देते हैं कि नहीं होता है, क्योंकि, अधिक क्षेत्रकी अपेक्षा कम क्षेत्र बहुत है ऐसा उपदेश पाया जाता है।

शंका– यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान– नीचे दंडाकार आत्मप्रदेशोंसे उतरकर और विग्रह करके भवनवासियोंमें उत्पन्न होनेवाले जीवोंके प्रथम और द्वितीय दंडोंके द्वारा अतीतकालमें क्षुद्रक्षेत्रसे सहस्रार कल्पकी उपपादशय्याका उपरिम भाग संख्यातगुणा है, इसलिए जाना जाता है कि नीचेके अधिक क्षेत्रकी अपेक्षा ऊपरका हीन क्षेत्र प्रधानतया विवक्षित है। देवोंके विमानोंका माप उत्सेधयोजनके प्रमाणसे है, इसलिए उपपादशय्यासे ऊपरी भाग अर्थात् विमानशिखरसे लेकर उसी कल्पके अन्त तकका क्षेत्र स्तोक अर्थात् अल्प नहीं है, क्योंकि, मेरुतलसे नीचेके एक लाख प्रमाणयोजनोंकी अपेक्षा सहस्रारकल्पके विमानशिखरसे ऊपरीपर्यन्त भागका प्रमाण बहुत है।

शंका– यह कैसे जाना ?

समाधान– अन्यथा सासादनसम्यग्दृष्टि देवोंका देशोन पांच बटे चौदह (५/१४) भाग स्पर्शनक्षेत्र बन नहीं सकता है, इस अन्यथानुपपत्तिसे जाना जाता है कि भवनवासी देवोंके क्षेत्रकी अपेक्षा ऊपरके विमानवासी देवोंका क्षेत्र यहां पर प्रधानतासे ग्रहण किया गया है।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ४४ ॥

इस सूत्रका अर्थ क्षेत्रप्ररूपणामें कहा गया है, इसलिए यहां पर नहीं कहा जाता है।

सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंने अतीत और अनागत-कालमें कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ ४५ ॥

[1] सम्यग्मिथ्यादृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः अष्टौ चतुर्दशभागा वा देशोनाः। स. सि. १, ८.

सत्थाणसत्थाणपरिणदेहि सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो। एसो 'वा' सद्दट्ठो। विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्विय-मारणंतिय-समुग्घादगदेहि असंजदसम्मादिट्ठीहि अट्ठ चोद्दसभागा देसूणा फोसिदा। उववाद-गदेहि छ चोद्दसभागा फोसिदा, अच्चुदकप्पादो उवरि मणुसवदिरित्ताणमुववादाभावा। एवं सम्मामिच्छादिट्ठीणं पि। णवरि मारणंतिय-उववादगदा णत्थि।

भवणवासिय-वाणवेंतर-जोदिसियदेवेसु मिच्छादिट्ठि-सासण-सम्मादिट्ठी केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ४६ ॥

वाणवेंतर-जोदिसियमिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठीणं खेत्तभंगो। भवणवासिय-मिच्छादिट्ठीहि सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घाद-गदेहि वट्टमाणकाले चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो फोसिदो। अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो। उववादपरिणदाणं पि एवं चेव वत्तव्वं। जदि वि एदं दव्वमसंखेज्ज-

स्वस्थानस्वस्थानपदपरिणत सम्यग्मिथ्यादृष्टि और संयतसम्यग्दृष्टि देवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। यह 'वा' शब्दका अर्थ है। विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक और मारणान्तिकसमुद्घातगत असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह ($\frac{८}{१४}$) भाग स्पर्श किये हैं। उपपादगत असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंने छह बटे चौदह ($\frac{६}{१४}$) भाग स्पर्श किये हैं, क्योंकि, अच्युतकल्पसे ऊपर मनुष्योंको छोड़कर अन्य जीवोंके उत्पन्न होनेका अभाव है। इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवोंका भी स्पर्शन जानना चाहिए, विशेष बात यह है कि इनके मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद, ये दो पद नहीं होते हैं।

भवनवासी, वानव्यन्तर और ज्योतिष्क देवोंमें मिथ्यादृष्टि और सासादन-सम्यग्दृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ४६ ॥

वानव्यन्तर और ज्योतिष्क मिथ्यादृष्टि तथा सासादनसम्यग्दृष्टि देवोंका स्पर्शन क्षेत्रप्ररूपणाके समान है। स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिक-समुद्घातगत भवनवासी मिथ्यादृष्टि देवोंने वर्तमानकालमें सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है। तथा मनुष्यलोकसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। उपपादपदपरिणत उक्त देवोंका भी इसी प्रकारसे स्पर्शनक्षेत्र कहना चाहिए। यद्यपि यह संख्या असंख्यात जगत्श्रेणीप्रमाण प्राप्त होती है, तथापि अपने तिर्यग्लोकके असंख्यातवें

१ प्रतिषु इति पाठः।

सेढीमेत्तं, तो वि तिरियलोगस्स असंखेज्जदिभागं चेव उववादेण वट्टमाणकाले फुसदि, तिरियलोगमज्झम्मि लवसंखेज्जदिभागे चेव भवणावासाणमवट्ठाणादो, तदवट्ठिदविसं मोत्तूणण्णदिसाए गमणाभावादो, हेट्ठा ओयरिय उप्पज्जमाणाणं सुट्ठु थोवत्तादो। मारणंतियसमुग्घादगदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणो। भवणवासियसासणसम्मादिट्ठीणं खेत्तभंगो।

अद्धट्ठा वा, अट्ठ णव चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ ४७ ॥

भवणवासियमिच्छादिट्ठीहि सत्थाणसत्थाणपरिणदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो। विहारवदिसत्थाण-वेयण-कसाय-वेउव्वियपदेहि अद्धट्ठा वा अट्ठ चोद्दसभागा वा देसूणा। अद्धट्ठरज्जू सयमेव विहरंति। कथमाहट्ठरज्जू जादा? मंदरतलादो हेट्ठा दोण्णि, उवरि जाव सोधम्म-विमाणसिहरधजदंडो त्ति दिवड्ढरज्जू। उवरिमदेवपयोगेण अट्ठ रज्जू। मारणंतिय-

---

भागप्रमाण क्षेत्र का ही उपपादके द्वारा वर्तमानकालमें स्पर्श किया है, क्योंकि, तिर्यग्लोकके मध्य भागमें और उसके भी असंख्यातवें भागमें ही भवनवासी देवोंके आवासोंका अवस्थान है। तथा, जिस दिशामें विमान अवस्थित हैं उस दिशाको छोड़कर अन्य दिशामें गमन करनेका अभाव है, तथा, नीचे उतरकर उत्पन्न होनेवाले जीवोंका प्रमाण अत्यन्त कम है। मारणान्तिक-समुद्घातगत उक्त देवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग और मनुष्यलोक तथा तिर्यग्लोक, इन दोनों लोकोंसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। भवनवासी सासादन-सम्यग्दृष्टि देवोंका स्पर्शनक्षेत्र क्षेत्रप्ररूपणाके समान है।

मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि भवनत्रिक देवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा लोकनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम साढ़े तीन भाग, आठ भाग और नौ भाग स्पर्श किये हैं ॥ ४७ ॥

स्वस्थानस्वस्थानपरिणत भवनवासी मिथ्यादृष्टि देवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। विहार-वत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकसमुद्घातगतपदवाले उक्त देवोंने चौदह भागोंमेंसे देशोन साढ़े तीन भाग, ($\frac{३½}{१४}$) अथवा आठ भाग ($\frac{८}{१४}$) प्रमाण क्षेत्र स्पर्श किया है। भवनवासी देव साढ़े तीन राजु प्रमाण क्षेत्र स्वयं ही विहार करते हैं।

शंका— साढ़े तीन राजु कैसे हुए?

समाधान— मंदराचलके तलभागसे नीचे तीसरी पृथिवी तक दो राजु और ऊपर सौधर्मकल्पके विमानके शिखरपर स्थित ध्वजादंड तक डेढ़ राजु, इस प्रकार मिलाकर साढ़े तीन राजु हुए।

उपरिम अर्थात् ऊपरके आरण-अच्युत कल्पवासी देवोंके प्रयोगसे आठ राजुप्रमाण

समुग्घादगदेहि णव चोद्दसभागा देसूणा फोसिदा। उवरि सत्त, हेट्ठा दोण्णि एवं णव रज्जू। उववादपरिणदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो। जोयणलक्खबाहल्लं तिरियपदरमदीदकाले किण्ण फुसिज्जदि ? ण, तिरिच्छेण भवणट्ठिदपदेसं गंतूण हेट्ठा मुक्कमारणंतियाणमुववादेण हेट्ठुवरिमासेसखेत्तफुसणाभावादो। पुणो कधं तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागत्तं घडदे ? सासादणट्ठिदपदेसादो हेट्ठा गंतूण तिरिच्छेण पल्लट्ठिय सगभवणेसुप्पण्णाणं तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो उववादफोसणं होदि। अण्णहा किण्ण होदि ? भवणवासियओगाहणपुव्विल्लबद्धागासपदेसाणमवट्ठाणवसेण मारणंतियसंभवादो। भवणवासियसासणसम्मादिट्ठिसद्दपदाणं भवणवासियमिच्छादिट्ठिभंगो। वाणवेंतरमिच्छाइट्ठि-सासणसम्मादिट्ठीहि सत्थाणेण तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो। तं जहा– एगं जगपदरं

विहार करते हैं। मारणान्तिकसमुद्घातगत उन्हीं भवनवासी मिथ्यादृष्टि देवोंने नौ बटे चौदह ($\frac{९}{१४}$) भाग स्पर्श किये हैं। मंदराचलसे ऊपर लोकके अन्त तक सात राजु और नीचे तीसरी पृथिवी तक दो राजु, इस प्रकार नौ राजु होते हैं। उपपादपरिणत उक्त देवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है।

शंका– भवनवासी मिथ्यादृष्टि देवोंने अतीतकालमें एक लाख योजन बाहल्यवाला तिर्यक्प्रतरप्रमाण क्षेत्र क्यों नहीं स्पर्श किया है ?

समाधान– नहीं, क्योंकि, तिर्यग्रूपसे भवनस्थित प्रदेशको जाकर नीचे मारणान्तिकसमुद्घातको करनेवाले जीवोंके उपपादपदकी अपेक्षा नीचे और ऊपरके समस्त क्षेत्रको स्पर्शन करनेका अभाव है।

शंका– तो फिर भवनवासी देवोंके उपपादपदकी अपेक्षा तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग स्पर्शनक्षेत्र कैसे बन सकता है ?

समाधान– अपने रहनेके स्थानसे नीचे जाकर पुनः तिरछे रूपसे पलट करके अपने भवनोंमें उत्पन्न होनेवाले जीवोंका तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागप्रमाण उपपादपदसम्बन्धी स्पर्शनक्षेत्र हो जाता है।

शंका– यह स्पर्शनक्षेत्र अन्य प्रकारसे क्यों नहीं होता है ?

समाधान– क्योंकि, भवनवासी देवोंके योग्य आनुपूर्वीनामकर्मसे प्रतिबद्ध आकाशप्रदेशोंके अवस्थानके वशसे मारणान्तिकसमुद्घात होता है, इसलिए उक्त स्पर्शनक्षेत्र अन्य प्रकारसे नहीं बन सकता है।

भवनवासी सासादनसम्यग्दृष्टि देवोंके स्वस्थानादि सभी पदोंका स्पर्शनक्षेत्र भवनवासी मिथ्यादृष्टि देवोंके समान है। मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि वानव्यन्तर देवोंने स्वस्थानस्वस्थानकी अपेक्षा सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका

ठविय तप्पाओग्गसंखेज्जपदरंगुलेहि भागे हिदे वेंतरावासाण पमाणं होदि। तमेगावासोगाहणाए संखेज्जघणंगुलपमाणाए गुणिदे संखेज्जंगुलाणि बाहल्लं तिरिय-लोगस्स संखेज्जदिभागमेत्तं जगपदरं होदि। असंखेज्जजोयणवित्थडा वेंतरावासा अप्पधाणा त्ति कट्टु इदं भणिदं। अह जइ ते चेय पहाणा, जगपदरस्स असंखेज्जाणि पदरंगुलाणि भागहारं ठविय असंखेज्जघणंगुलेहि एगावासुप्पण्णेहि गुणिदे तिरिय-लोगस्स संखेज्जदिभागो होदि। विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियपदपरिणद-मिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठीहि सगपच्चएण अट्ठचोद्दसभागा देसूणा फोसिदा। परपच्चएण अट्ठ चोद्दसभागा देसूणा फोसिदा। मारणंतियसमुग्घादगदेहि णव चोद्दसभागा फोसिदा। उववादेण तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो। उववादेण तिरियलोगादो असंखेज्जगुणं खेत्तं वट्टमाणकाले अवरुंभिय ट्ठिदवेंतरा अदीदकाले कधं तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागं फुसंति त्ति उत्ते ण एस दोसो, खेत्तं णाम सव्वजीवाणमोगाहणाओ उववादविसिट्ठाओ एगट्ठं करिय गहिदे होदि। तेण तिरियलोगादो वेंतरमिच्छादिट्ठि-

संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। वह इस प्रकार है– एक जगत्प्रतरको स्थापित करके तत्प्रायोग्य संख्यात प्रतरांगुलोंसे भाग देनेपर संख्यात घनांगुलप्रमाण व्यन्तर देवोंके आवासोंका प्रमाण हो जाता है। उसे संख्यात अंगुलप्रमाण एक आवासकी अवगाहनासे गुणा करनेपर संख्यात घनांगुल बाहल्यवाला और तिर्यग्लोकके संख्यातवें भाग प्रमाण जगत्प्रतर होता है। यद्यपि असंख्यात योजन विस्तारवाले भी व्यन्तरोंके आवास होते हैं, किन्तु वे यहांपर प्रधानरूपसे विवक्षित नहीं हैं, इस अपेक्षासे यह उक्त स्पर्शनक्षेत्र कहा है। और यदि उन्हींसे अर्थात् असंख्यात योजन विस्तारवाले विमानोंको ही प्रधान माना जाय, तो जगत्प्रतरका असंख्यात प्रतरांगुलप्रमाण भागहार स्थापित करके एक आवासके क्षेत्रफलकी अपेक्षा उत्पन्न होनेवाले असंख्यात घनांगुलोंसे गुणा करने पर तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग हो जाता है।

विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकपदपरिणत मिथ्यादृष्टि और सासादन-सम्यग्दृष्टि भवनवासी देवोंने स्वप्रत्ययसे अर्थात् अपने आप कुछ कम साढ़े तीन बटे चौदह ($\frac{3\frac{1}{2}}{14}$) भाग स्पर्श किये हैं। किन्तु परप्रत्ययसे अर्थात् अन्य देवोंके प्रयोगसे कुछ कम आठ बटे चौदह ($\frac{8}{14}$) भाग स्पर्श किये हैं। मारणान्तिकसमुद्घातगत उक्त दोनों गुणस्थानवर्ती व्यन्तर देवोंने नौ बटे चौदह ($\frac{9}{14}$) भाग स्पर्श किये हैं। उपपादकी अपेक्षा उक्त जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है।

शंका– उपपादकी अपेक्षा तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणा क्षेत्र वर्तमानकालमें व्याप्त करके स्थित व्यन्तर देव अतीतकालमें कैसे तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागको स्पर्श करते हैं?

उववादखेत्तमसंखेज्जगुणं जादं। फोसणम्हि पुण जीवप्पडिट्ठिदओगाहणाओ ण घेप्पंति, किंतु तीदकाले उववादपरिणदमिच्छाविट्ठि-सासणसम्मादिट्ठिवेंतरेहि चिछत्त-खेत्तमेव घेप्पदि, वेंतरेसु वि ण देवा णेरइया वा उप्पज्जंति, ण च एइंदिया विगलिंदिया, किंतु सण्णि-असण्णिपंचिंदियतिरिक्ख-मणुसा चेव। ण च वेंतराणमावासा सोधम्मादिसु तिरियलोगबाहिरेसु कप्पेसु अत्थि, तधोवदेसाभावा। ण च लक्ख-जोयणबाहल्लतिरियपदरम्हि सव्वत्थ वेंतरावासा चेव, जोदिसियवासाणं वेलंधर-पण्णगादिआवासाणं च अभावप्पसंगा। ण च भूमीए चेव वेंतरावासा होंति त्ति णियमो अत्थि, आगासपदिट्ठियाणं पि वेंतरावासाणं संभवादो। ण च तिरियलोगे चेव वेंतरावासाणमत्थित्तणियमो, हेट्ठा पंकबहुलपुढवीए वि भूत-रक्खसावासाणमुवलंभादो। तम्हा किंचूणमजोएदूण वेलक्खबाहल्लतिरियपदरं ठविय सत्तकदीए ओवट्टिय पदरा-गारेण ठइदे तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागबाहल्लं जगपदरं होदि[1]। एवं चेव जोदिसियाणं पि वत्तव्वं, णवरि उवलद्धखेत्ते आणिज्जमाणे णवजोयणसदबाहल्लं

समाधान— यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, सर्व जीवोंकी उपपादविशिष्ट अवगाहनाओंको एकट्ठा करके ग्रहण करने पर 'क्षेत्र' यह नाम होता है, इसलिए मिथ्यादृष्टि व्यन्तरदेवोंका उपपादक्षेत्र तिर्यग्लोकसे असंख्यात गुणा हो जाता है। पर स्पर्शनमें जीवोंसे प्रतिष्ठित अवगाहनाएं नहीं ग्रहण की जाती हैं, किन्तु अतीतकालमें उपपादपरिणत मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि व्यन्तर देवोंसे स्पर्शित क्षेत्र ही ग्रहण किया जाता है। व्यन्तरोंमें भी न तो देव अथवा नारकी जीव उत्पन्न होते हैं और न एकेन्द्रिय व विकलेन्द्रिय जीव ही, वहां केवल संज्ञी व असंज्ञी पंचेन्द्रियतिर्यंच और मनुष्य ही उत्पन्न होते हैं। तथा तिर्यग्लोकसे बाहिर स्थित सौधर्मादि कल्पोंमें भी व्यन्तर देवोंके आवास नहीं होते हैं, क्योंकि, उस प्रकारसे उपदेशका अभाव है। और न लाख योजन बाहल्यवाले तिर्यक्प्रतरमें ही सर्वत्र व्यन्तर देवोंके आवास होते हैं, अन्यथा चन्द्र सूर्यादि ज्योतिष्क देवोंके आवासोंका और वेलंधर, पन्नग आदि भवनवासी देवोंके आवासोंके अभावका प्रसंग प्राप्त हो जायगा। तथा भूमिमें ही व्यन्तर देवोंके आवास होते हैं, ऐसा भी नियम नहीं है, क्योंकि, आकाशमें प्रतिष्ठित व्यन्तरोंके आवास सम्भव हैं। और न तिर्यग्लोकमें ही व्यन्तर देवोंके आवासोंके अस्तित्वका नियम है, क्योंकि, नीचे रत्नप्रभा पृथिवीके पंकबहुल भागमें भी भूत और राक्षस नामके व्यन्तर देवोंके आवास पाये जाते हैं। इसलिए कुछ कम क्षेत्रको नहीं जोड़कर दो लाख योजन बाहल्यवाले तिर्यक्प्रतरको स्थापित करके सातकी कृति अर्थात् वर्गसे अपवर्तित कर प्रतराकारसे स्थापित करने पर तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागप्रमाण बाहल्यवाला जगत्प्रतर हो जाता है।

इसी प्रकारसे ही ज्योतिष्क देवोंका भी स्पर्शनक्षेत्र कहना चाहिए। विशेष बात यह

१ रज्जुकदी गुणिदव्वा णवणउदिसहस्सा अधियलक्खेण। तम्मज्झे तिरियप्पा वेंतरदेवाण होंति पुरा॥ भवणं भवणपुराणि आवासा इय भणंति तिरियप्पा। जिणमुहकमलविणिग्गदवेंतरवण्णत्तिणामाए॥ रयणप्पह-पुढवीए भवणाणि दीव-उवहिउवरिम्मि। भवणपुराणि दहगिरिपहुदीणं उवरि आवासा॥ लि. प. पत्र १९६.

तिरियपदरं सत्तकदीए खंडिय पदरागारेण ट्ठइदे तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागबाहल्लं जगपदरं होदि[1] ।

सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ४८ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो– सत्थाणसत्थाण–विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियमारणंतियपदपरिणदेहि सम्मामिच्छादिट्ठि-संजदसम्मादिट्ठीहि भवणवासिय-वेंतर-जोदिसिएहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो ।

अधट्ठा वा अट्ठ चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ ४९ ॥

सत्थाणसत्थाणभवणवासिय–वाणवेंतर-जोदिसिय-सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजद-सम्मादिट्ठीहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । णवरि भवणवासिएसु चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो फोसिदो त्ति वत्तव्वं । विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्विय-

है कि उनके उपपादक्षेत्रको लाते समय नौ योजन बाहल्यवाले तिर्यक्प्रतरको सातके वर्गद्वारा खण्डितकर प्रतराकारसे स्थापित करनेपर तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागप्रमाण बाहल्यवाला जगत्प्रतर होता है ।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि भवनत्रिक देवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ४८ ॥

अब इस सूत्रका अर्थ कहते हैं– स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक और मारणान्तिकसमुद्घात, इन पदोंसे परिणत सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिष्क देवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है ।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि भवनत्रिक देवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा कुछ कम साढे तीन बटे चौदह भाग और कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ ४९ ॥

स्वस्थानस्वस्थानपदवाले भवनवासी, वानव्यन्तर और ज्योतिष्क सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । विशेष बात यह है कि भवनवासियोंमें सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है, ऐसा कहना चाहिए । विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक और मारणान्तिक-

[1] रज्जुकदी गुणिदव्वं एक्कसयबसुत्तरेहि भोयणए । तस्सि अगम्मवेसं सोधिय सेसम्मि जोदिसिया ॥ ति. प. ७, ५.

मारणंतियपदपरिणदेहि सम्मामिच्छाइट्ठि-असंजदसम्मामिच्छाइट्ठीहि अट्ठचोद्दसभागा देसूणा सगपच्चएण; परपच्चएण अट्ठ चोद्दसभागा देसूणा फोसिदा। णवरि सम्मामिच्छाइट्ठीणं मारणंतियपदं णत्थि।

सोधम्मीसाणकप्पवासियदेवेसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्माइट्ठि त्ति देवोघं ॥ ५० ॥

सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियपरिणदेहि मिच्छाइट्ठीहि वट्टमाणकाले चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो। मारणंतिय-उववादपरिणदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, णर-तिरिय-लोगेहिंतो असंखेज्जगुणो फोसिदो। सेसगुणट्ठाणजीवेहि अप्पप्पणो पदेसु वट्टमाणेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो। तीदे काले सोधम्मीसाणकप्पवासियमिच्छाइट्ठि-सासणसम्माइट्ठीहि सत्थाणसत्थाणपद-परिणदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो। तं जहा– सव्वे इंदया संखेज्जजोयणवित्थडा, सेढीबद्धा असंखेज्जजोयणवित्थडा,

---

समुद्घात, इन पदोंसे परिणत सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि भवनत्रिक देवोंने स्वप्रत्ययसे कुछ कम साढ़े तीन बटे चौदह ($\frac{३\frac{१}{२}}{१४}$) भाग स्पर्श किये हैं; तथा परप्रत्ययसे कुछ कम आठ बटे चौदह ($\frac{८}{१४}$) भाग स्पर्श किये हैं। विशेष बात यह है कि सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवोंके मारणान्तिकपद नहीं होता है।

सौधर्म और ईशान कल्पवासी देवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती देवोंका स्पर्शनक्षेत्र देवोंके ओघस्पर्शनके समान है ॥ ५० ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकपदपरिणत मिथ्यादृष्टि देवोंने वर्तमानकालमें सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपदसे परिणत सौधर्म-ऐशान देवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तथा नरलोक और तिर्यग्लोक, इन दोनों लोकोंसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। स्वस्थानस्वस्थान आदि अपने अपने पदोंमें वर्तमान सासादनादि शेष गुणस्थानवर्ती देवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। अतीतकालमें सौधर्म और ईशान कल्पवासी स्वस्थानस्वस्थानपदपरिणत मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि देवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। वह इस प्रकार है– सभी इन्द्रकविमान संख्यात योजन विस्तारवाले होते हैं, श्रेणीबद्धविमान असंख्यात योजन विस्तृत और

पइण्णया वा मिस्सा[1]। एत्थ जदि वि सव्वविमाणाणि संखेज्जजोयणवित्थडाणि त्ति घेप्पंति, तो वि सव्वविमाणखेत्तफलसमासो तिरियलोगस्स असंखेज्जदिभागो चेव होदि। तं जहा– एगविमाणायामो असंखेज्जजोयणमेत्तो त्ति कट्टु असंखेज्जजोयण-विक्खंभेणायामं गुणिय विमाणुस्सेहसंखेज्जंगुलेहि गुणिदे तिरियलोगस्स असंखेज्जदि-भागो होदि, एक्केक्कविमाणायाम-विक्खंभाणं सेढिपढमवग्गमूलादो असंखेज्जगुण-पमाणत्तादो[2]। तं सोधम्मीसाणविमाणसंखाए गुणिदे वि तिरियलोगस्स असंखेज्जदि-भागो होदि त्ति। एत्थ सव्वकप्पाणं कमेण विमाणसंखापरूवयगाहाओ–

बत्तीसं सोहम्मे अट्ठावीसं तहेव ईसाणे।
बारह सणक्कुमारे अट्ठेव य होंति माहिंदे ॥ १० ॥
बम्हे कप्पे बम्होत्तरे य चत्तारि सयसहस्साइं।
छसु कप्पेसु य एवं चउरासीदी सयसहस्सा ॥ ११ ॥
पण्णासं तु सहस्सा लंतव-काविट्ठएसु कप्पेसु।
सुक्क-महासुक्केसु य चत्तालीसं सहस्साइं ॥ १२ ॥

प्रकीर्णकविमान मिश्र अर्थात् संख्यात और असंख्यात योजन विस्तारवाले होते हैं। यहांपर यदि सभी विमान असंख्यात योजन विस्तारवाले हैं, ऐसा समझकर ग्रहण करते हैं तो भी सभी विमानोंके क्षेत्रफलका जोड़ तिर्यग्लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही होता। वह इस प्रकारसे है– एक विमानका आयाम असंख्यात योजनप्रमाण होता है। इसलिए असंख्यात योजन विष्कम्भसे आयामको गुणा करके विमानके उत्सेधसम्बन्धी संख्यात अंगुलोंसे गुणा करनेपर तिर्यग्लोकका असंख्यातवां भाग ही होता है, क्योंकि, एक एक विमानका आयाम और विष्कम्भ जगश्रेणीके प्रथम वर्गमूलसे असंख्यातगुणित (हीन) प्रमाण होता है। उसे सौधर्म ईशानकल्पकी विमानसंख्यासे गुणा करनेपर भी तिर्यग्लोकका असंख्यातवां भाग ही रहता है। यहांपर सभी कल्पोंके विमानोंकी क्रमसे संख्याओंकी प्ररूपणा करनेवाली गाथाएं इस प्रकार हैं–

सौधर्मकल्पमें बत्तीस लाख विमान हैं, उसी प्रकारसे ईशानकल्पमें अट्ठाईस लाख, सनत्कुमारकल्पमें बारह लाख तथा माहेन्द्रकल्पमें आठ लाख विमान होते हैं ॥ १० ॥

ब्रह्म और ब्रह्मोत्तर कल्पमें दोनों कल्पोंके मिलाकर चार लाख विमान हैं। इस प्रकार इन पूर्वमें बताए गये छह कल्पोंमें विमानोंकी संख्या चौरासी लाख होती है ॥ ११ ॥

जैसे– ३२००००० + २८००००० + १२००००० + ८००००० + ४००००० = ८४००००० सौधर्मादि छह स्वर्गोंकी विमानसंख्या.

लान्तव और कापिष्ठ इन दोनों कल्पोंमें पचास हजार विमान होते हैं। शुक्र और महाशुक्र कल्पमें चालीस हजार विमान हैं ॥ १२ ॥

---

१ इंदियसेढीबद्धप्पइण्णयाणं कमेण वित्थारा। संखेज्जमसंखेज्जं उभयं च य जोयणाण हवे। त्रि. सा. १६८

२ ' असंखेज्जगुणहीणपमाणत्तादो ' इति पाठः प्रतिभाति।

छच्चेव सहस्साइं सयारकप्पे तहा सहस्सारे ।
सत्तेव विमाणसया आरणकप्पच्चुदे चेय ॥ १३ ॥
एक्कारसयं तिसु हेट्ठिमेसु तिसु मज्झिमेसु सत्तहियं ।
एक्काणउदिविमाणा तिसु गेवज्जसुवरिमेसु ॥ १४ ॥
गेवज्जाणुवरिमया णव चेव अणुद्दिसा विमाणा ते ।
तह य अणुत्तरणामा पंचेव हवंति संखाए ॥ १५ ॥

विहार-वेदण-कसाय-वेउव्वियपदेहि अट्ठ चोद्दसभागा वेसूणा फोसिदा । मारणंतियपरिणदेहि मिच्छादिट्ठि-सासणेहि णव चोद्दसभागा फोसिदा । उववाद-परिणदेहि विवड्डचोद्दसभागा फोसिदा । सोधम्मकप्पो धरणीतलादो दिवड्डरज्जु-मोस्सरिय ट्ठिदो त्ति सम्मामिच्छादिट्ठीहि सत्थाणसत्थाणपरिणदेहि चदुण्हं लोगाणम-संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियपरिणदेहि अट्ठ चोद्दसभागा वेसूणा फोसिदा । एवं असंजदसम्मा-दिट्ठीणं पि । णवरि मारणंतिएण अट्ठ चोद्दसभागा, उववादेण दिवड्ड चोद्दसभागा

शतार और सहस्रार कल्पमें छह हजार विमान होते हैं । आनत, प्राणत, आरण और अच्युत, इन चार कल्पोंमें मिलाकर सातसौ विमान होते हैं ॥ १३ ॥

अधस्तन तीन ग्रैवेयकोंमें एक सौ ग्यारह विमान, मध्यम तीन ग्रैवेयकोंमें एक सौ सात विमान और उपरिम तीन ग्रैवेयकोंमें इक्यानवें विमान होते हैं ॥ १४ ॥

नव ग्रैवेयकोंके ऊपर अनुदिश संज्ञावाले नौ विमान होते हैं । उनके ऊपर अनुत्तर संज्ञावाले पांच विमान होते हैं ॥ १५ ॥

विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकसमुद्घात, इन पदोंको प्राप्त सौधर्म-ईशान कल्पके मिथ्यादृष्टि और सासादनगुणस्थानवर्ती देवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह ($\frac{८}{१४}$) भाग स्पर्श किये हैं । मारणान्तिकपदसे परिणत उक्त मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि देवोंने नौ बटे चौदह ($\frac{९}{१४}$) भाग स्पर्श किये हैं । उपपादपदपरिणत उन्हीं जीवोंने डेढ़ बटे चौदह ($\frac{३}{२८}$) भाग स्पर्श किये हैं, क्योंकि, सौधर्मकल्प धरणीतलसे डेढ़ राजु ऊपर जाकर स्थित है । स्वस्थानस्वस्थानपदपरिणत सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग, और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । विहार-वत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकसमुद्घात, इन पदोंसे परिणत उक्त देवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह ($\frac{८}{१४}$) भाग स्पर्श किये हैं ।

इसी प्रकारसे असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंका भी स्पर्शनक्षेत्र जानना चाहिए । विशेष बात यह है कि असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंने मारणान्तिकसमुद्घातकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह ($\frac{८}{१४}$) भाग और उपपादकी अपेक्षा कुछ कम डेढ़ बटे चौदह ($\frac{३}{२८}$) भाग स्पर्श किये हैं ।

देसूणा फोसिदा। जेणेवं देवोघादो सोधम्मकप्पे ण विसेसो अत्थि तेण देवोघमिदि सुत्तवयणं सुट्टु सुघडमिदि।

सणक्कुमारप्पहुडि जाव सदार-सहस्सारकप्पवासियदेवेसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥५१॥

एदेसिं पंचण्हं कप्पाणं चदुगुणट्ठाणजीवेहि जहासंभवं सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्विय-मारणंतिय-उववादपरिणदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अट्ठाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो। एसा वट्टमाणपरूवणा।

अट्ठ चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ ५२ ॥

पंचकप्पवासियचदुगुणट्ठाणजीवेहि सत्थाणसत्थाणपदपरिणदेहि अदीदकाले चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अट्ठाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो। विहारवदि-सत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्विय-मारणंतिय-पदपरिणदेहि अट्ठ चोद्दसभागा देसूणा फोसिदा। उववादपरिणदेहि सणक्कुमार-माहिंददेवेहि तिण्णि चोद्दसभागा देसूणा

चूंकि देवोंके ओघस्पर्शनसे सौधर्मकल्पमें कोई विशेषता नहीं है, इसलिए 'देवोघ' यह सूत्र-वचन भले प्रकार सुघटित होता है।

सनत्कुमारकल्पसे लेकर शतार सहस्रारकल्प तकके देवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती देवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ५१ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद, इन पदोंसे यथासंभव परिणत उक्त पांचों कल्पोंके चारों गुणस्थानोंमें रहनेवाले देवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। यह वर्तमानकालिक स्पर्शनके क्षेत्रकी प्ररूपणा है।

सनत्कुमारकल्पसे लेकर सहस्रारकल्प तकके मिथ्यादृष्टि आदि चारों गुणस्थानवर्ती देवोंने अतीत और अनागत कालमें कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ ५२ ॥

सनत्कुमारादि पांच कल्पोंके चारों गुणस्थानवर्ती स्वस्थानस्वस्थान पदपरिणत देवोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक और मारणान्तिकसमुद्घात, इन पदोंसे परिणत उक्त देवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह ($\frac{८}{१४}$) भाग स्पर्श किये हैं। उपपादपरिणत सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्पवासी देवोंने कुछ कम तीन बटे चौदह ($\frac{३}{१४}$) भाग स्पर्श किये हैं। ब्रह्म और ब्रह्मोत्तर कल्पवासी देवोंने कुछ कम साढ़े

फोसिदा। बम्ह-बम्हुत्तर-कप्पवासियदेवेहि आहुट्ठ-चोद्दसभागा देसूणा फोसिदा। लंतव-काविट्ठदेवेहि चत्तारि चोद्दसभागा देसूणा फोसिदा। सुक्क महासुक्कदेवेहि अद्धपंचम-चोद्दसभागा देसूणा फोसिदा। सदर-सहस्सारकप्पवासियदेवेहि पंच चोद्दसभागा देसूणा फोसिदा। णवरि सम्मामिच्छाइट्ठीणं मारणंतिय-उववादा णत्थि।

आणद जाव आरणच्चुदकप्पवासियदेवेसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदि-भागो ॥ ५३ ॥

एदस्स सुत्तस्स वट्टमाणखेत्तपरूवयस्स अत्थो पुव्वं परूविदो त्ति पुणो ण उच्चदे।

छ चोद्दसभागा वा देसूणा फोसिदा ॥ ५४ ॥

मिच्छाविट्ठि-सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीहि सत्थाण-सत्थाणपदपरिणदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो। एसो 'वा' सद्दट्ठो। विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्विय-मारणंतिय-

---

तीन बटे चौदह ($\frac{3}{14}$) भाग स्पर्श किये हैं। लान्तव और कापिष्ठ कल्पवासी देवोंने कुछ कम चार बटे चौदह ($\frac{4}{14}$) भाग स्पर्श किये हैं। शुक्र और महाशुक्र कल्पवासी देवोंने कुछ कम साढ़े चार बटे चौदह ($\frac{4\frac{1}{2}}{14}$) भाग स्पर्श किये हैं। शतार और सहस्रार कल्पवासी देवोंने कुछ कम पांच बटे चौदह ($\frac{5}{14}$) भाग स्पर्श किये हैं। विशेष बात यह है कि सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवोंके मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद, ये दो पद नहीं होते हैं।

आनतकल्पसे लेकर आरण-अच्युत तक कल्पवासी देवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती देवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ५३ ॥

वर्तमानकालिक स्पर्शनक्षेत्रके प्ररूपक इस सूत्रका अर्थ पहले कहा जा चुका है, इसलिए पुनः नहीं कहा जाता है।

चारों गुणस्थानवर्ती आनतादि चार कल्पवासी देवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा कुछ कम छह बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ ५४ ॥

स्वस्थानस्वस्थानपदपरिणत मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मनुष्य-लोकसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। यह 'वा' शब्दका अर्थ हुआ। विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक और मारणान्तिकसमुद्घात, इन पदोंसे परिणत उक्त जीवोंने कुछ कम

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

परिणदेहि छ चोद्दसभागा देसूणा फोसिदा, चित्ताए उवरिमतलादो हेट्ठा एदेसिं गमणाभावादो। मिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठीणं उववादो चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणो। कुदो? पणदालीसजोयणलक्ख-विक्खंभ संखेज्जरज्जुआयदमुववादखेत्तं तिरियलोगस्स असंखेज्जदिभागं ण पावेदि। त्ति। सम्मामिच्छाइट्ठीणं मारणंतिय-उववादपदं णत्थि। असंजदसम्माइट्ठीहि उववादपदपरिणदेहि अट्ठछक्क-चोद्दसभागा देसूणा फोसिदा। आरणच्चुदकप्पे छ चोद्दसभागा देसूणा फोसिदा। किं कारणं? तिरिक्खअसंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजदाणं वेरियदेवसंबंधेण सव्वदीव-सायरेसु दिट्ठाणं तत्थुववादोवलंभादो।

णवगेवज्जविमाणवासियदेवेसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥५५॥

एदस्स सुत्तस्स वट्टमाणपरूवणा खेत्तभंगो। अदीदपरूवणा वि खेत्तभंगो चेय। कुदो? चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागत्तेण, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणत्तेण च समाणत्तुवलंभादो।

छह बटे चौदह ($\frac{6}{14}$) भाग स्पर्श किये हैं, क्योंकि, चित्रा पृथिवीके उपरिम तलसे नीचे इनके गमनका अभाव है, उक्त मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि देवोंका उपपादकी अपेक्षा स्पर्शनक्षेत्र सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मनुष्यक्षेत्रसे असंख्यातगुणा है, क्योंकि, पैंतालीस लाख योजन विष्कम्भवाला और संख्यात राजुप्रमाण आयत उक्त देवोंका उपपादक्षेत्र भी तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागको नहीं प्राप्त होता है। सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवोंके मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपद नहीं होते हैं। आनत-प्राणत कल्पके उपपादपरिणत असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंने कुछ कम साढ़े पांच बटे चौदह ($\frac{5\frac{1}{2}}{14}$) भाग स्पर्श किये हैं। आरण और अच्युतकल्पमें उक्त पदपरिणत जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह ($\frac{6}{14}$) भाग स्पर्श किये हैं। इसका कारण यह है कि वैरी देवोंके सम्बन्धसे सर्व द्वीप और सागरोंमें विद्यमान तिर्यंच असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयतोंका आरण-अच्युतकल्पमें उपपाद पाया जाता है।

नवग्रैवेयक विमानवासी देवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक प्रत्येक विमानके गुणस्थानवर्ती देवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ५५ ॥

इस सूत्रकी वर्तमानकालिक स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान जानना चाहिए। तथा अतीतकालिक स्पर्शनप्ररूपणा भी क्षेत्रप्ररूपणाके समान ही है, क्योंकि, सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागसे तथा मनुष्यक्षेत्रसे असंख्यातगुणित क्षेत्रकी अपेक्षा समानता पाई जाती है।

अणुद्दिस जाव सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवेसु असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ५६ ॥

एदेसु ट्ठिदअसंजदसम्मादिट्ठीहि सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्विय-मारणंतिय-उववादपरिणदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणो, णवगेवज्जादिउवरिमदेवाणं तिरिक्खेसु चयणोववादाभावादो। णवरि। पंचपदपरिणदेहि सव्वट्ठसिद्धिदेवेहि माणुसलोगस्स संखेज्जदिभागो फोसिदो।

एवं गदिमग्गणा समत्ता।

इंदियाणुवादेण एइंदिय-बादर-सुहुम-पज्जत्तापज्जत्तएहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, सव्वलोगो[1] ॥ ५७ ॥

एइंदिएहि सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय-मारणंतिय-उववादपरिणदेहि तीद-वट्टमाणकालेसु सव्वलोगो फोसिदो। वेउव्वियपरिणदेहि वट्टमाणकाले चदुण्हं

नव अनुदिश विमानोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तक विमानवासी देवोंमें असंयत-सम्यग्दृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ५६ ॥

इन नव अनुदिश और पांच अनुत्तर विमानोंमें रहनेवाले स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपरिणत असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मानुषक्षेत्रसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है, क्योंकि, नवग्रैवेयकादि उपरिम कल्पवासी देवोंका च्यवन होकर तिर्यंचोंमें उपपाद होनेका अभाव है। विशेष बात यह है कि स्वस्थानादि पांच पदोंसे परिणत सर्वार्थसिद्धिके देवोंने मनुष्यलोकका संख्यातवां भाग स्पर्श किया है।

इस प्रकार गतिमार्गणा समाप्त हुई।

इन्द्रियमार्गणाके अनुवादसे एकेन्द्रिय, एकेन्द्रियपर्याप्त, एकेन्द्रियअपर्याप्त; बादर एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रियपर्याप्त, बादर एकेन्द्रियअपर्याप्त; सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रियपर्याप्त और सूक्ष्म एकेन्द्रियअपर्याप्त जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? सर्वलोक स्पर्श किया है ॥ ५७ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, कषाय, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद, इन पदोंसे परिणत एकेन्द्रिय जीवोंने अतीत और वर्तमानकालमें सर्वलोक स्पर्श किया है। वैक्रियिक-पदपरिणत एकेन्द्रिय जीवोंने वर्तमानकालमें सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां

---

१ इन्द्रियानुवादेन एकेन्द्रियैः सर्वलोकः स्पृष्टः। स. सि. १, ८.

लोगाणमसंखेज्जदिभागो फोसिदो। माणुसखेत्तं ण णव्वदे। अदीदकाले तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, णरतिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणो। अदीदकाले पंचरज्जु-बाहल्लं तिरियपदरं विउव्वमाणा वाउक्काइया फुसंति त्ति। बादरेइंदिय-बादरे-इंदियपज्जत्तेहि सत्थाण-वेदण-कसायपरिणदेहि वट्टमाणकाले तिण्हं लोगाणं संखेज्जदि-भागो, दोलोगेहिंतो असंखेज्जगुणो फोसिदो। किं कारणं? जेण पंचरज्जुबाहल्लं रज्जुपदरं वाउकाइयजीवावूरिदं बादरएइंदियजीवावूरिदअट्ठपुढवीओ च, तेसिं पुढवीणं हेट्ठा दुवेवीसवीसजोयणसहस्सबाहल्लं तिण्णि तिण्णि वादवलए लोगंतट्ठिदवाउकाइयखेत्तं च एगट्ठ कदे लोगस्स संखेज्जदिभागो होदि त्ति। एदेहि अदीदकाले वि एत्तियं चेव खेत्तं फोसिदं, विवक्खिदपदपरिणदाणमेदेसिं सव्वद्धमण्णत्थच्छणाभावादो। वेउव्वियपद-परिणदेहि वट्टमाणकाले चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तादो असंखिदविसेसो फोसिदो। तीदे काले तिण्हं लोगाणं संखेज्जदिभागो, दोलोगेहिंतो असंखेज्जगुणो

भाग स्पर्श किया है। इस विषयमें मनुष्यक्षेत्रका प्रमाण ज्ञात नहीं है। उन्हीं जीवोंने अतीत कालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग और नरलोक तथा तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है, क्योंकि, अतीतकालमें पांच राजु बाहल्यप्रमाण तिर्यक्प्रतरको विक्रिया करनेवाले वायुकायिक जीव निरन्तर स्पर्श करते हैं। स्वस्थान, वेदना और कषायसमुद्घात, इन पदोंसे परिणत बादर एकेन्द्रिय और बादर एकेन्द्रियपर्याप्त जीवोंने वर्तमानकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका संख्यातवां भाग और नरलोक तथा तिर्यग्लोक, इन दोनों लोकोंसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है।

शंका— बादर एकेन्द्रिय और बादर एकेन्द्रियपर्याप्त जीवोंका सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके संख्यातवें भाग प्रमाण स्पर्शनक्षेत्र होनेका क्या कारण है?

समाधान— इसका कारण यह है कि पांच राजु बाहल्यवाला राजुप्रतरप्रमाण क्षेत्र वायुकायिक जीवोंसे परिपूर्ण है और बादर एकेन्द्रिय जीवोंसे आठों पृथिवियां व्याप्त हैं। उन पृथिवियोंके नीचे स्थित बीस बीस हजार योजन बाहल्यवाले तीन तीन वातवलयोंको और लोकांतमें स्थित वायुकायिक जीवोंके क्षेत्रको एकत्रित करनेपर सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका संख्यातवां भाग हो जाता है।

इन्हीं उक्त जीवोंने अतीतकालमें भी इतना ही क्षेत्र स्पर्श किया है, क्योंकि, विवक्षित पदपरिणत इन उक्त जीवोंके सभी कालोंमें अन्यत्र रहनेका अभाव है। वैक्रियिकसमुद्घातसे परिणत बादरएकेन्द्रिय और बादरएकेन्द्रियपर्याप्त जीवोंने वर्तमानकालमें सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मानुषक्षेत्रसे अज्ञातविशेष प्रमाणक्षेत्र स्पर्श किया है। अतीतकालमें उन्हीं जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका संख्यातवां भाग और नरलोक तथा तिर्यग्लोक, इन दोनों लोकोंसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपदपरिणत उक्त जीवोंने अतीत और वर्तमानकालमें सर्वलोक स्पर्श किया है।

फोसिदो । मारणंतिय-उववादपरिणदेहि तीद-वट्टमाणकालेसु सव्वलोगो फोसिदो । एवं बादरेइंदियअपज्जत्ताणं पि वत्तव्वं । णवरि वेउव्वियं णत्थि । सुहुमेइंदिय-सुहुमेइंदिय-पज्जत्तापज्जत्तएहि सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय-मारणंतिय-उववादपरिणदेहि तिसु वि कालेसु सव्वलोगो फोसिदो, ' सुहुमा जल-थलागासे सव्वत्थ होंति ' त्ति वयणादो ।

बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-तस्सेव पज्जत्त-अपज्जत्त केवडिय खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो[1] ॥ ५८ ॥

एदस्सत्थो– बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदिएहि तेसिं पज्जत्तेहि य सत्थाणसत्थाण विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसायपरिणदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरिय-लोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । मारणंतिय-उववाद-परिणदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, दोलोगेहिंतो असंखेज्जगुणो फोसिदो । तेसिं चेव अपज्जत्तेहि सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसायपरिणदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो,

इसी प्रकारसे बादर एकेन्द्रियअपर्याप्त जीवोंका भी स्पर्शनक्षेत्र कहना चाहिए । विशेष बात यह है कि उनके वैक्रियिकसमुद्घात नहीं होता है । स्वस्थान स्वस्थान, वेदना, कषाय, मारणान्तिक-समुद्घात और उपपादपरिणत सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रियपर्याप्त और सूक्ष्म एकेन्द्रियअपर्याप्त जीवोंने तीनों ही कालोंमें सर्वलोक स्पर्श किया है, क्योंकि, ' सूक्ष्मकायिकजीव जल, स्थल और आकाशमें सर्वत्र होते हैं ' ऐसा आगमका वचन है ।

द्वीन्द्रिय, द्वीन्द्रियपर्याप्त, द्वीन्द्रियअपर्याप्त; त्रीन्द्रिय, त्रीन्द्रियपर्याप्त, त्रीन्द्रियअपर्याप्त; चतुरिन्द्रिय, चतुरिन्द्रियपर्याप्त और चतुरिन्द्रियअपर्याप्त जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ५८ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं–– स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना और कषाय-समुद्घातसे परिणत द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और उनके पर्याप्त जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपरिणत उक्त जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग और नरलोक तथा तिर्यग्लोक, इन दोनों लोकोंसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । स्वस्थानस्वस्थान, वेदना और कषायसमुद्घात-परिणत उन्हीं द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मानुषक्षेत्रसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । यह

१ विकलेन्द्रियैर्लोकस्यासंख्येयभागः सर्वलोको वा । स. सि. १, ८.

आचार्य श्री सूर्यसागर जी महाराज
माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणो फोसिदो। एसा वट्टमाणपरूवणा पुव्वुत्तरसंभालणणिमित्तं कदा।

सव्वलोगो वा ॥ ५९ ॥

एत्थ ताव 'वा' सद्दट्ठो उच्चदे— बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिएहि तेसिं चेव पज्जत्तेहि य सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसायपरिणदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणो अदीदकाले फोसिदो। विगलिंदियसत्थाणत्था सयंपहपव्वदस्स परभागे चेव होंति त्ति तदो परभागे पुव्वं व पदरागारेण ठइदे विगलिंदियसत्थाणसत्थाणखेत्तं तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागमेत्तं होदि। सेसपदेहि वइरिसंबंधेण विगलिंदिया सव्वत्थ तिरियपदरब्भंतरे होंति त्ति पदरागारेण ठइदे एदं पि खेत्तं तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागमेत्तं चेव होदि। मारणंतियउववादपरिणदेहि सव्वलोगो फोसिदो। तेसिं चेव अपज्जत्तेहि सत्थाण-वेदण-कसायपरिणदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो। मारणंतिय-

---

वर्तमानकालिक स्पर्शनक्षेत्रकी प्ररूपणा पूर्व और उत्तर अर्थके अर्थात् अतीत और अनागत कालसम्बन्धी स्पर्शनक्षेत्रके संभालनेके लिए की गई है।

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीव तथा उन्हींके पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा सर्वलोक स्पर्श किया है ॥ ५९ ॥

यहांपर पहले 'वा' शब्दका अर्थ कहते हैं— स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना और कषायसमुद्घातपरिणत द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और उनके ही पर्याप्त जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और मानुषक्षेत्रसे असंख्यातगुणा क्षेत्र अतीतकालमें स्पर्श किया है।

स्वस्थानस्वस्थानस्थ विकलेन्द्रिय जीव स्वयम्प्रभपर्वतके परभागमें ही होते हैं, इसलिए परभागवर्ती क्षेत्रको पूर्वके समान प्रतराकारसे स्थापित करनेपर विकलेन्द्रिय जीवोंका स्वस्थानस्वस्थानक्षेत्र तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमात्र होता है। शेष पदोंकी अपेक्षा वैरी जीवोंके सम्बन्धसे विकलेन्द्रिय जीव सर्वत्र तिर्यक्प्रतरके भीतर ही होते हैं, इसलिए प्रतराकारसे स्थापित करनेपर यह क्षेत्र भी तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमात्र ही होता है। मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपरिणत उक्त जीवोंने सर्वलोक स्पर्श किया है। उन्हीं जीवोंमेंसे स्वस्थानस्वस्थान, वेदना और कषायसमुद्घातपरिणत अपर्याप्त जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, तथा अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। मारणान्तिकसमुद्घात तथा उपपादपदपरिणत विकलेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंने सर्वलोक स्पर्श किया है। पंचेन्द्रियतिर्यंच अपर्याप्त जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र

उववादपरिणदेहि सव्वलोगो फोसिदो। पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्ताणं जधा कारणं उत्तं, तधा एत्थ वि पुध पुध विगलिंदियअपज्जत्ताणं वत्तव्वं।

पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्तएसु मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो[1] ॥ ६० ॥

एदस्स सुत्तस्स परूवणा खेत्तपंचिंदियदुगपरूवणाए तुल्ला, उभयत्थ वट्टमाणकालावलंबणं पडि साधम्मादो।

अट्ठ चोद्दसभागा देसूणा, सव्वलोगो वा ॥ ६१ ॥

दुविहपंचिंदियमिच्छादिट्ठीहि सत्थाणपरिणदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो। एत्थ पुव्वं व जोदिसियवेंतरावासरुद्धखेत्तं अदीदकाले पंचिंदियतिरिक्खेहि सत्थाणोकयखेत्तं च घेत्तूण तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो परिसेवव्वो। एसो 'वा' सद्दसूचिदत्थो। विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियपरिणदेहि अट्ठ चोद्दसभागा फोसिदा,

---

बतलाते समय जिस प्रकार (उक्त क्षेत्र होनेका जो) कारण कहा है, उसी प्रकारसे यहांपर भी पृथक् पृथक् द्वीन्द्रियादि विकलेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंका क्षेत्र बतलाते हुए उसी कारणको कहना चाहिए।

पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रियपर्याप्तोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ६० ॥

इस सूत्रकी प्ररूपणा पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रियपर्याप्त, इन दोनोंकी क्षेत्रप्ररूपणाके समान है, क्योंकि, दोनों ही स्थानोंपर वर्तमानकालके अवलम्बनके प्रति समानता है।

पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रियपर्याप्त जीवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग और सर्वलोक स्पर्श किया है ॥ ६१ ॥

स्वस्थानस्वस्थानपदपरिणत पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रियपर्याप्त, इन दोनों ही प्रकारके पंचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। यहांपर पूर्वके समान ही ज्योतिष्क और व्यन्तर देवोंके आवासोंसे रुद्ध क्षेत्रको तथा अतीतकालमें पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंके द्वारा स्वस्थानीकृत अर्थात् स्वस्थानस्वस्थानरूपसे परिणत क्षेत्रको लेकर तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग बिछाना चाहिए। यह 'वा' शब्दसे सूचित अर्थ है। विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकसमुद्घातपरिणत उक्त दोनों प्रकारके पंचेन्द्रिय जीवोंने आठ बटे चौदह ($\frac{८}{१४}$) भाग स्पर्श किये हैं, क्योंकि, मेरुपर्वतके मूलभागसे ऊपर छह राजु और नीचे दो राजु, इस प्रकार आठ राजु क्षेत्रके भीतर सर्वत्र पूर्वपदपरिणत

---

१ पंचेन्द्रियेषु मिथ्यादृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः अष्टौ चतुर्दशभागा वा देशोनाः सर्वलोको वा। स. सि. १, ८.

मेरुमूलादो उवरि छ, हेट्ठा दो रज्जुखेत्तब्भंतरे सव्वत्थ पुव्वपदपरिणदबादरपंचिंदियाणमुवलंभा। मारणंतिय-उववादपरिणदेहि सव्वलोगो फोसिदो, विवक्खिदादीदकालत्तादो।

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं[1] ॥६२॥

एदेसिं गुणट्ठाणाणं वट्टमाणकालविसिट्ठखेत्तपरूवणा एदेसिं चेव खेत्ताणिओगद्दारोघम्हि उत्तपरूवणाए तुल्ला। कुदो ? सासणप्पहुडि जाव संजदासंजदो त्ति सव्वपदाणं चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागमेत्तेण, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणत्तेण च एदेसिं चेव खेत्ताणिओगद्दारउत्तरपदेहि साधम्मुवलंभादो। सेसगुणट्ठाणाणं पि सव्वपदेहि सरिसत्तदंसणादो च। अदीदकालमस्सिदूण परूवणं कीरमाणे वि णत्थि भेदो, पंचिंदियवदिरित्तगुणपडिवण्णाणमभावा।

सजोगिकेवली ओघं ॥ ६३ ॥

एत्थ वि तिविधं कालमस्सिदूण ओघपरूवणा चेव कादव्वा, उभयत्थ पंचिंदियत्तं पडि भेदाभावा।

दोनों प्रकारके पंचेन्द्रिय जीव पाये जाते हैं। मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपदपरिणत उक्त दोनों प्रकारके जीवोंने सर्वलोक स्पर्श किया है, क्योंकि, अतीतकालकी यहां पर विवक्षा की गई है।

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रियपर्याप्त जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥६२॥

इन गुणस्थानोंकी वर्तमानकालविशिष्ट स्पर्शनकी प्ररूपणा, इन्हीं जीवोंके क्षेत्रानुयोगद्वारके ओघमें कही गई क्षेत्रप्ररूपणाके तुल्य है, क्योंकि, सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर संयतासंयत गुणस्थान तक सर्व पदोंका स्पर्शन सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागसे और मानुषक्षेत्रसे असंख्यातगुणे क्षेत्रसे इन्हीं पूर्वोक्त जीवोंके क्षेत्रानुयोगद्वारमें कहे गये पदोंके साथ साधर्म्य पाया जाता है; तथा प्रमत्तसंयतादि शेष गुणस्थानवर्ती जीवोंके भी सर्वपदोंके साथ सदृशता देखी जाती है। अतीतकालका आश्रय लेकरके स्पर्शनप्ररूपणाके करने पर भी कोई भेद नहीं है, क्योंकि, पंचेन्द्रिय जीवोंको छोड़कर गुणस्थानोंको प्राप्त हुए जीवोंका अभाव है।

सयोगिकेवली जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ ६३ ॥

यहां पर भी तीनों कालोंको आश्रय लेकर ओघ स्पर्शनप्ररूपणा ही करनी चाहिए, क्योंकि, दोनों ही स्थानों पर पंचेन्द्रियत्वके प्रति भेदका अभाव है।

---

१ शेषाणां सामान्योक्तं स्पर्शनम्। स. सि. १, ८.

पंचिंदियअपज्जत्तएहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ६४ ॥

एदस्स सुत्तस्स परूवणा खेत्तभंगा। उत्तमेव किमिदि पुणो वि उच्चदे, फलाभावा ? ण, मंदबुद्धिभवियजणसंभालणदुवारेण फलोवलंभादो।

सव्वलोगो वा ॥ ६५ ॥

सत्थाण-वेदण-कसायपरिणदेहि तीदे काले तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणो फोसिदो। एत्थ पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्ताणं व तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागत्तं वत्तिसेदव्वं। एसो 'वा' सद्दसूचिदत्थो। मारणंतिय उववादपरिणदेहि सव्वलोगो फोसिदो, सव्वलोगम्हि एदेहि पदेहि सह सव्वअपज्जत्ताणं गमणागमणपडिसेहाभावा।

एवमिंदियमग्गणा समत्ता।

लब्ध्यपर्याप्त पंचेन्द्रिय जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ६४ ॥

इस सूत्रकी स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है।

शंका– कही गई बात ही पुनः क्यों कही जाती है, क्योंकि, कहे हुएके पुनः कहनेमें कोई फल नहीं है ?

समाधान– नहीं, क्योंकि, मंदबुद्धि भव्यजनोंके संभालनेकी अपेक्षा पुनः कथन करनेका फल पाया जाता है।

लब्ध्यपर्याप्त पंचेन्द्रिय जीवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा सर्वलोक स्पर्श किया है ॥ ६५ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, वेदना और कषायसमुद्घातपरिणत उक्त लब्ध्यपर्याप्त पंचेन्द्रिय जीवोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और मनुष्यक्षेत्रसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। यहां पर लब्ध्यपर्याप्त पंचेन्द्रिय तिर्यंच जीवोंके समान ही तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग बतलाना चाहिए। यह सूत्रोक्त 'वा' शब्दसे सूचित अर्थ है। मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपरिणत लब्ध्यपर्याप्त पंचेन्द्रिय जीवोंने सर्वलोक स्पर्श किया है, क्योंकि, सम्पूर्ण लोकमें इन दोनों पदोंके साथ सभी पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त जीवोंके गमन और आगमनके प्रतिषेधका अभाव है।

इसप्रकार इन्द्रियमार्गणा समाप्त हुई।

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

कायाणुवादेण पुढविकाइय-आउकाइय-तेउकाइय-वाउकाइय-बादरपुढविकाइय-बादरआउकाइय-बादरतेउकाइय-बादरवाउकाइय-बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीर—तस्सेवअपज्जत्त—सुहुमपुढविकाइय-सुहुमआउकाइय—सुहुमतेउकाइय—सुहुमवाउकाइय—तस्सेवपज्जत्त—अपज्जत्तएहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, सव्वलोगो[1] ॥ ६६ ॥

पुढविकाइय-आउकाइय-तेसिं चेव सव्वसुहुमेहि सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय-मारणंतिय-उववादपरिणदेहि तिसु वि कालेसु सव्वलोगो फोसिदो। बादरपुढविकाइय-बादरआउकाइय-तेसिं चेव अपज्जत्त बादरतेउकाइय-तस्सेव अपज्जत्तवणप्फदिकाइय-पत्तेयसरीरबादरणिगोदपदिट्ठिद-तेसिं चेव अपज्जत्तएहि य सत्थाण-वेदण-कसाय-परिणदेहि तीदाणागदवट्टमाणकालेसु तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगादो संखेज्जगुणो, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणो फोसिदो। तिरियलोगादो संखेज्जगुणत्तं

कायमार्गणाके अनुवादसे पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक जीव तथा बादर पृथिवीकायिक, बादर जलकायिक, बादर अग्निकायिक, बादर वायुकायिक और बादर वनस्पतिकायिकप्रत्येकशरीर जीव तथा इन्हीं पांचोंके बादर कायसम्बन्धी अपर्याप्त जीव; सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक और इन्हीं सूक्ष्म जीवोंके पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? सर्वलोक स्पर्श किया है ॥ ६६ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, कषाय, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपदपरिणत पृथिवीकायिक और जलकायिक जीव और उन्हींके सर्व सूक्ष्मकायिक जीवोंने तीनों ही कालोंमें सर्वलोक स्पर्श किया है। स्वस्थान, वेदना और कषायपदपरिणत बादर पृथिवीकायिक, बादर जलकायिक और उन्हींके अपर्याप्त जीवोंने, बादर अग्निकायिक और उन्हींके अपर्याप्त जीवोंने, वनस्पतिकायिकप्रत्येकशरीर बादरनिगोदप्रतिष्ठित और उन्हींके अपर्याप्त जीवोंने अतीत, अनागत और वर्तमान, इन तीनों कालोंमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकसे संख्यातगुणा तथा मनुष्यक्षेत्रसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है।

शंका— उक्त जीवोंने तिर्यग्लोकसे संख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है, यह कैसे जाना ?

---

१ कायानुवादेन स्थावरकायिकैः सर्वलोकः स्पृष्टः। स. सि. १, ८.

कथं णव्वदे ? उच्चदे– एदे पुढवीओ चेव अस्सिदूण अच्छंति । सव्वपुढवीओ च सत्तरज्जुआयदाओ, पढमपुढवी सादिरेगएगरज्जुरुंदा | १ | । विदियपुढवी छहि सत्तभागेहि समहियएगरज्जुरुंदा | १$\frac{६}{७}$ | । तदियपुढवी पंच-सत्तभागाहिय वे रज्जुरुंदा | २$\frac{५}{७}$ | । चउत्थपुढवी चत्तारिसत्तभागाहिय-तिण्णिरज्जुरुंदा | ३$\frac{४}{७}$ | । पंचमपुढवी तिण्णिसत्तभागाहिय-चत्तारिरज्जुरुंदा | ४$\frac{३}{७}$ | । छट्ठपुढवी वे-सत्तभागाहियपंचरज्जुरुंदा | ५$\frac{२}{७}$ | । सत्तमपुढवी एग-सत्तभागाहिय-छरज्जुरुंदा | ६$\frac{१}{७}$ | । अट्ठमपुढवी सादिरेय-एगरज्जुरुंदा । पढमपुढविबाहल्लं असीदिसहस्साहियजोयणलक्खपमाणं होदि १८०००० । विदियपुढवी बत्तीसजोयणसहस्सबाहल्ला ३२००० । तदियपुढवी अट्ठावीसजोयणसहस्सबाहल्ला २८००० । चउत्थपुढवी चउवीसजोयणसहस्स-बाहल्ला २४००० । पंचमपुढवी वीसजोयणसहस्सबाहल्ला २०००० । छट्ठपुढवी सोलसजोयणसहस्सबाहल्ला १६००० । सत्तमपुढवी अट्ठजोयणसहस्सबाहल्ला ८००० । अट्ठमपुढवी अट्ठजोयणबाहल्ला ८ । एदाओ अट्ठपुढवीओ पदरागारेण ठइदे तिरियलोगबाहल्लादो संखेज्जगुणबाहल्लं जगपदरं होदि । मारणंतिय-उववादपरिणदेहि

.....

समाधान– ये बादर पृथिवीकायिक आदि जीव पृथिवियोंका ही आश्रय लेकरके रहते हैं और सभी पृथिवियां सात राजुप्रमाण आयत हैं । प्रथम पृथिवी साधिक एक राजु चौड़ी है (१) । द्वितीय पृथिवी छह बटे सात भागोंसे अधिक एक राजु चौड़ी है (१$\frac{६}{७}$) । तृतीय पृथिवी पांच बटे सात भागोंसे अधिक दो राजु चौड़ी है (२$\frac{५}{७}$) । चौथी पृथिवी चार बटे सात भागोंसे अधिक तीन राजु चौड़ी है (३$\frac{४}{७}$) । पांचवी पृथिवी तीन बटे सात भागोंसे अधिक चार राजु चौड़ी है (४$\frac{३}{७}$) । छठी पृथिवी दो बटे सात भागोंसे अधिक पांच राजु चौड़ी है (५$\frac{२}{७}$) । सातवीं पृथिवी एक बटे सात भागसे अधिक छह राजु चौड़ी है (६$\frac{१}{७}$) । आठवी पृथिवी कुछ अधिक एक राजु चौड़ी है (१) । प्रथम पृथिवीकी मोटाई एक लाख अस्सी हजार योजन प्रमाण है (१८००००) । द्वितीय पृथिवी बत्तीस हजार योजन मोटी है (३२०००) । तृतीय पृथिवी अट्ठाईस हजार योजन मोटी है (२८०००) । चौथी पृथिवी चौबीस हजार योजन मोटी है (२४०००) । पांचवी पृथिवी बीस हजार योजन मोटी है (२००००) । छठीं पृथिवी सोलह हजार योजन मोटी है (१६०००) । सातवी पृथिवी आठ हजार योजन मोटी है (८०००) । आठवी पृथिवी आठ योजन मोटी है (८) । इन आठों पृथिवियोंको प्रतराकारसे स्थापित करनेपर तिर्यग्लोकके बाहल्यसे संख्यातगुणा बाहल्यप्रमाण जगत्प्रतर होता है (देखो पृ. ९१) । इसलिए उक्त जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र तिर्यग्लोकसे संख्यातगुणा है, यह जाना जाता है ।

मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपदपरिणत उक्त जीवोंने भूत, भविष्य और वर्तमान

तीदाणागदवट्टमाणकालेसु सव्वलोगो फोसिदो। कुदो ? तस्सहावसादो। तेऊणं पुढविभंगो णवरि वेउव्वियपरिणदेहि वट्टमाणकाले पंचण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तीदे तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो। तं जधा—तेउक्काइया पज्जत्ता चेव वेउव्वियसरीरं उट्ठावेंति, अपज्जत्तेसु तदभावा। ते च पज्जत्ता कम्मभूमीसु चेव होंति त्ति : सयंपहपव्वदपरभागखेत्तं जगपदरे कदे तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो होदि त्ति। अधवा बादरतेउकाइयपज्जत्ता कम्मभूमीए उप्पण्णा वाउसंबंधेण संखेज्जजोयणबाहल्लं तिरियपदरं अदीदकाले सव्वमावूरिय विउव्वंति त्ति गहिदे तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो चेव होदि। बादरतेउकाइया बादरपुढविभंगो, बादरपुढविकाइया इव बादरतेउकाइया वि सव्वपुढवीसु अच्छंति त्ति। णवरि वेउव्वियपदस्स तेउकाइयवेउव्वियपदभंगो। वाउकाइयाणं तीदाणागदकालेसु तेउकाइयाणं भंगो। णवरि वेउव्वियस्स वट्टमाणकाले माणुसखेत्तगदविसेसो ण जाणिज्जदि। अदीदकाले वेउव्वियपरिणदेहि वाउक्काइएहि तिण्हं लोगाणं

इन तीनों कालोंमें सर्वलोक स्पर्श किया है, क्योंकि, उनका यह स्पर्शनक्षेत्र स्वभावसे ही है। अग्निकायिक जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र पृथिवीकायिक जीवोंके समान जानना चाहिए। विशेष बात यह है कि वैक्रियिकसमुद्घातपदपरिणत अग्निकायिक जीवोंने वर्तमानकालमें पांचों प्रकारके लोकोंका असंख्यातवां भाग तथा भूतकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग और तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग स्पर्श किया है। वह इस प्रकारसे है—

तेजस्कायिक पर्याप्त जीव ही वैक्रियिकशरीरको उत्पन्न करते हैं, क्योंकि, अपर्याप्त जीवोंमें वैक्रियिकशरीरके उत्पन्न करनेकी शक्तिका अभाव है। और वे पर्याप्त जीव कर्मभूमिमें ही होते हैं, इसलिए स्वयंप्रभपर्वतके परभागवर्ती क्षेत्रको जगप्रतररूपसे करनेपर तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग होता है। अथवा कर्मभूमिमें उत्पन्न हुए बादर तेजस्कायिक पर्याप्त जीव वायुके सम्बन्धसे अतीतकालमें संख्यात योजन बाहल्यवाले सर्व तिर्यक्-प्रतरको व्याप्त करके विक्रिया करते हैं, ऐसा अर्थ ग्रहण करनेपर तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग ही होता है। बादर तेजस्कायिक जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र बादर पृथिवीकायिक जीवोंके स्पर्शनक्षेत्रके समान है, क्योंकि, बादर पृथिवीकायिक जीवोंके समान बादर तेजस्कायिक जीव भी सभी पृथिवियोंमें रहते हैं। विशेष बात यह है कि वैक्रियिकपदका स्पर्शन तेजस्कायिक जीवोंके वैक्रियिकपदके समान जानना चाहिए। वायुकायिक जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र अतीत और अनागतकालमें तेजस्कायिक जीवोंके समान है। विशेष बात यह है कि वर्तमानकालमें वैक्रियिकपदकी मनुष्यक्षेत्रगत विशेषता नहीं जानी जाती है। अतीतकालमें वैक्रियिकपदपरिणत वायुकायिक जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका संख्यातवां भाग और मनुष्यलोक तथा तिर्यग्लोक, इन दोनों लोकोंसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। स्वस्थानस्वस्थान, वेदना और कषायसमुद्घातपरिणत बादरवायुकायिक जीवोंने अतीत, अनागत और वर्तमान, इन तीनों

संखेज्जदिभागो, दोलोगेहिंतो असंखेज्जगुणो फोसिदो। सत्थाण-वेदण-कसायपरिणदेहि बादरवाउक्काइएहि तीदाणागदवट्टमाणकालेसु तिण्हं लोगाणं संखेज्जदिभागो दोलोगेहिंतो असंखेज्जगुणो फोसिदो। वेउव्वियपदस्स वट्टमाणकाले खेत्तभंगो। तीदे काले वेउव्वियपदस्स वाउकाइयवेउव्वियभंगो। मारणंतिय-उववादपरिणदेहि बादर वाउक्काइएहि सव्वलोगो फोसिदो। एवं बादरवाउक्काइयअपज्जत्ताणं। णवरि वेउव्वियपदं णत्थि। सुहुमतेउक्काइय-सुहुमवाउक्काइय तेसिं पज्जत्त-अपज्जत्तएहि य सत्थाण-वेदण-कसाय-मारणंतिय-उववादपरिणदेहि तीदाणागदवट्टमाणकालेसु सव्वलोगो फोसिदो।

बादरपुढविकाइय-बादरआउकाइय-बादरतेउकाइय-बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्तएहि केवडिय खेत्त फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ६७ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो जधा खेत्ताणिओगद्दारे उत्तो तधा वत्तव्वो।

सव्वलोगो वा ॥ ६८ ॥

एत्थ ताव 'वा' सद्दट्ठो वुच्चदे- बादरपुढविकाइयपज्जत्त-बादरआउकाइय-पज्जत्त-बादरणिगोदपदिट्ठिदपज्जत्तएहि य सत्थाण-वेदण-कसायपरिणदेहि तिण्हं

कालोंमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका संख्यातवां भाग और मनुष्यलोक तथा तिर्यग्लोक, इन दोनों लोकोंसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। वैक्रियिकसमुद्घातपदका स्पर्शनक्षेत्र वर्तमानकालमें क्षेत्रप्ररूपणाके समान है। अतीतकालमें वैक्रियिकसमुद्घातपदका स्पर्शनक्षेत्र वायुकायिक जीवोंके वैक्रियिकपदके स्पर्शनके समान है। मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपद-परिणत बादरवायुकायिक जीवोंने सर्वलोक स्पर्श किया है। इसी प्रकारसे बादरवायुकायिक अपर्याप्त जीवोंका स्पर्शन जानना चाहिए। विशेष बात यह है कि इनके वैक्रियिकसमुद्घातपद नहीं होता है। स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, कषाय, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपदपरिणत सूक्ष्म तेजस्कायिक, सूक्ष्म वायुकायिक और उनके पर्याप्त तथा अपर्याप्त जीवोंने अतीत, अनागत और वर्तमान, इन तीनों कालोंमें सर्वलोक स्पर्श किया है।

बादर पृथिवीकायिक, बादर अप्कायिक, बादर तेजस्कायिक और बादर वनस्पतिकायिकप्रत्येकशरीर पर्याप्त जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ६७ ॥

इस सूत्रका अर्थ जैसा क्षेत्रानुयोगद्वारमें कहा गया है, उसी प्रकारसे कहना चाहिए।

उक्त जीवोंने अतीत और अनागतकालकी अपेक्षा सर्वलोक स्पर्श किया है ॥ ६८ ॥

यहांपर 'वा' शब्दका अर्थ कहते हैं- स्वस्थानस्वस्थान, वेदना और कषायसमुद्घात-परिणत बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर अप्कायिक पर्याप्त और बादरनिगोदप्रतिष्ठित

लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगादो संखेज्जगुणो, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणो फोसिदो। मारणंतियउववादपरिणदेहि सव्वलोगो फोसिदो। बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्तएहि य सत्थाण-वेदण-कसायपरिणदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो। किं कारणं? सव्वपुढवीसु बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्ता णत्थि, 'चित्ताए उवरिमभागे चेव अत्थि' त्ति आइरियवयणादो। अधवा, पत्तेयसरीरपज्जत्ता तिरियलोगादो संखेज्जगुणं खेत्तं फुसंति। कुदो? बादरणिगोदपदिट्ठिदपज्जत्ताणं तिरियलोगादो संखेज्जगुणफोसणखेत्तब्भुवगमादो। ण च पत्तेयसरीरपज्जत्तवदिरित्तबादरणिगोदपदिट्ठिदपज्जत्ता अत्थि। बादरणिगोदपदिट्ठिदा सव्वे पत्तेयसरीरा चेवेत्ति कधं णव्वदे?

बीजे जोणीभूदे जीवो वक्कमइ सो व अण्णो वा।
जे वि य मूलादीया ते पत्तेया पढमदाए ॥ १६ ॥

इदि सुत्तवयणादो णव्वदे।

पर्याप्त जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकसे संख्यातगुणा और मानुषक्षेत्रसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपदपरिणत जीवोंने सर्व लोक स्पर्श किया है। स्वस्थानस्वस्थान, वेदना और कषायसमुद्घातपदपरिणत बादर वनस्पतिकायिकप्रत्येकशरीर पर्याप्त जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग और तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग स्पर्श किया है।

शंका— बादर वनस्पतिकायिकप्रत्येकशरीर पर्याप्त जीवोंके तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमात्र स्पर्शनक्षेत्र होनेका क्या कारण है?

समाधान— सर्व पृथिवियोंमें बादरवनस्पतिकायिकप्रत्येकशरीर पर्याप्त जीव नहीं होते हैं, क्योंकि, 'चित्रापृथिवीके उपरिम भागमें ही बादरवनस्पतिकायिकप्रत्येकशरीर पर्याप्त जीव होते हैं' इस प्रकार आचार्योंका वचन है।

अथवा, प्रत्येकशरीर पर्याप्त जीव तिर्यग्लोकसे संख्यातगुणे क्षेत्रको स्पर्श करते हैं, क्योंकि, बादरनिगोदप्रतिष्ठित पर्याप्त जीवोंका तिर्यग्लोकसे संख्यातगुणा स्पर्शनक्षेत्र स्वीकार किया गया है। तथा प्रत्येकशरीर पर्याप्त जीवोंको छोड़कर बादरनिगोदप्रतिष्ठित पर्याप्त नामके कोई अन्य जीव नहीं होते हैं। इसलिए उनका स्पर्शनक्षेत्र तिर्यग्लोकसे संख्यातगुणा बन जाता है।

शंका— बादरनिगोदप्रतिष्ठित जीव सभी प्रत्येक शरीरी ही होते हैं, यह कैसे जाना?

समाधान— 'योनीभूत बीजमें वही पूर्व पर्यायवाला जीव अथवा अन्य दूसरा भी जीव संक्रमण करता है। और जो बीज मूलादिक बादरनिगोदप्रतिष्ठित वनस्पतिकायिक जीव हैं वे सब प्रथम अवस्थामें प्रत्येकशरीर ही होते हैं ॥ १६ ॥

इस सूत्रवचनसे जाना जाता है कि बादरनिगोदप्रतिष्ठित जीव सभी प्रत्येक शरीरी ही होते हैं।

बादरणिगोदपदिट्ठिदपज्जत्ता सव्वासु पुढवीसु अत्थि त्ति कधं णव्वदे ? सव्वपुढवीसु विज्जमाणपुढविकाइयपज्जत्तफोसणेण सह एगत्तेणुवविट्ठअसंखेज्जाणि तिरियपदराणि त्ति वक्खाणवयणादो णव्वदे । तम्हा पत्तेयसरीरपज्जत्तेहि फोसिदखेत्तेण तिरियलोगादो संखेज्जगुणेण होदव्वमिदि । जधा पत्तेयसरीरवणप्फदिकाइयपज्जत्ता सव्वासु पुढवीसु होंति, तधा बादरआउकाइयपज्जत्तेहि वि सव्वासु पुढवीसु होदव्वं । अधवा बादरणिगोदपदिट्ठिदपज्जत्तपत्तेगसरीरा चेव सव्वपुढवीसु होंति । बादरणिगोदाणमजोणीभूदपत्तेयसरीरपज्जत्ता चित्ताए उवरिमभागे चेव होंति त्ति [illegible] बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्ते बादरणिगोदाणमजोणीभूदे चेव घेत्तूण तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो त्ति घेत्तव्वं । मारणंतिय-उववादपरिणदेहि सव्वलोगो फोसिदो । एवं बादरतेउक्काइयपज्जत्ताणं पि वत्तव्वं । णवरि वेउव्वियस्स तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो वत्तव्वो ।

बादरवाउपज्जत्तएहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स संखेज्जदिभागो ॥ ६९ ॥

शंका— बादरनिगोदप्रतिष्ठित पर्याप्त जीव सर्व पृथिवियोंमें होते हैं, यह कैसे जाना ?

समाधान— 'सर्व पृथिवियोंमें विद्यमान पृथिवीकायिक पर्याप्त जीवोंके स्पर्शनके साथ एकत्वसे उपविष्ट असंख्यात तिर्यक् प्रतरप्रमाण स्पर्शनक्षेत्र होता है' इस प्रकारके व्याख्यानवचनसे जाना जाता है कि बादरनिगोदप्रतिष्ठित पर्याप्त जीव सर्व पृथिवियोंमें होते हैं ।

इसलिए प्रत्येकशरीर पर्याप्त जीवोंसे स्पृष्ट क्षेत्र तिर्यग्लोकसे संख्यातगुणा होना चाहिए । जिस प्रकारसे प्रत्येकशरीर वनस्पतिकायिक पर्याप्त जीव सभी पृथिवियोंमें होते हैं, उसी प्रकारसे बादर जलकायिक पर्याप्त जीव भी सभी पृथिवियोंमें होना चाहिए । अथवा, बादरनिगोदप्रतिष्ठित पर्याप्त प्रत्येकशरीरवाले जीव ही सर्व पृथिवियोंमें होते हैं । बादरनिगोदके अयोनीभूत प्रत्येक शरीर पर्याप्त जीव चित्रा पृथिवीके उपरिम भागमें ही होते हैं, इसलिए बादर निगोदोंके अयोनीभूत बादरवनस्पतिकायिकप्रत्येकशरीर जीव ही ग्रहण करके अर्थात् उनकी अपेक्षा 'तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग होता है' ऐसा अर्थ ग्रहण करना चाहिए । मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपरिणत जीवोंने सर्व लोक स्पर्श किया है । इसी प्रकारसे बादर तेजस्कायिक पर्याप्त जीवोंका भी स्पर्शनक्षेत्र कहना चाहिए । विशेष बात यह है कि तेजस्कायिक जीवोंके वैक्रियिकसमुद्घात पदका स्पर्शनक्षेत्र तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग होता है ऐसा कहना चाहिए ।

बादरवायुकायिक पर्याप्त जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका संख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ६९ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो जधा खेत्ताणिओगद्दारे उत्तो तधा वत्तव्वो, वट्टमाण-कालमस्सिदूण ट्ठिदत्तादो ।

सव्वलोगो वा ॥ ७० ॥

सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियपरिणदेहि तिण्हं लोगाणं संखेज्जदि-भागो, दोलोगेहिंतो असंखेज्जगुणो फोसिदो । मारणंतिय-उववादपदपरिणदेहि सव्वलोगो फोसिदो ।

वणप्फदिकाइयणिगोदजीववादरसुहुम—पज्जत्त—अपज्जत्तएहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, सव्वलोगो ॥ ७१ ॥

वणप्फदिकाइयणिगोदजीवसुहुमपज्जत्त-अपज्जत्तएहि सत्थाण-वेदण-कसाय-मारणंतिय-उववादपरिणदेहि तिसु वि कालेसु सव्वलोगो फोसिदो । बादरवणप्फदि-काइयबादरणिगोद-तेसिं पज्जत्त-अपज्जत्तएहि सत्थाण-वेदण-कसायपरिणदेहि तिसु

इस सूत्रका अर्थ जैसा क्षेत्रानुयोगद्वारमें कहा है, उसी प्रकारसे यहां पर कहना चाहिए, क्योंकि, वर्तमानकालको आश्रय करके यह सूत्र स्थित है अर्थात् कहा गया है ।

बादर वायुकायिक पर्याप्त जीवोंने अतीत और अनागतकालकी अपेक्षा सर्वलोक स्पर्श किया है ॥ ७० ॥

स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकसमुद्घातपरिणत उक्त जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका संख्यातवां भाग और मनुष्यलोक तथा तिर्यग्लोक, इन दोनों लोकोंसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपदपरिणत उक्त जीवोंने सर्वलोक स्पर्श किया है ।

वनस्पतिकायिक जीव, निगोद जीव, वनस्पतिकायिक बादर जीव, वनस्पतिकायिक सूक्ष्म जीव, वनस्पतिकायिक बादर पर्याप्त जीव, वनस्पतिकायिक बादर अपर्याप्त जीव, वनस्पतिकायिक सूक्ष्म पर्याप्त जीव, वनस्पतिकायिक सूक्ष्म अपर्याप्त जीव, निगोद बादर पर्याप्त जीव, निगोद बादर अपर्याप्त जीव, निगोद सूक्ष्म पर्याप्त जीव और निगोद सूक्ष्म अपर्याप्त जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? सर्वलोक स्पर्श किया है ॥ ७१ ॥

स्वस्थान, वेदना, कषाय, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद, इन पदोंसे परिणत वनस्पतिकायिक निगोद जीव और उनके सूक्ष्म तथा पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंने तीनों ही कालोंमें सर्वलोक स्पर्श किया है । स्वस्थान, वेदना और कषायसमुद्घातपदपरिणत बादर वन-स्पतिकायिक, बादर निगोद उनके पर्याप्त तथा अपर्याप्त जीवोंने तीनों ही कालोंमें सामान्य-

वि कालेसु तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगादो संखेज्जगुणो, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणो फोसिदो। मारणंतिय-उववादपरिणदेहि तिसु वि कालेसु सव्वलोगो फोसिदो।

तसकाइय-तसकाइयपज्जत्तएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं ॥ ७२ ॥

वट्टमाणकालमदीदकालं च अस्सिदूण जधा ओघम्हि सासणादिगुणाणं परूवणा कदा, तधा एत्थ वि कादव्वा। णवरि मिच्छाइट्ठीणं पंचिंदियमिच्छादिट्ठिभंगो, मारणंतियउववादपदे मोत्तूण अण्णत्थ सव्वलोगत्ताभावा।

तसकाइयअपज्जत्ताणं पंचिंदियपज्जत्ताणं भंगो ॥ ७३ ॥

वट्टमाणकालमस्सिदूण जधा पंचिंदियअपज्जत्ताणं परूवणा कदा, तधा एत्थ वि वट्टमाणकालमस्सिदूण परूवणा कादव्वा। जधा अदीदकालमस्सिदूण सत्थाण-वेदण-कसायपदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो,

---

लोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकसे संख्यातगुणा और मनुष्यक्षेत्रसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपदपरिणत उक्त जीवोंने तीनों ही कालोंमें सर्वलोक स्पर्श किया है।

त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्त जीवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ ७२ ॥

वर्तमानकाल और अतीतकालको आश्रय करके जैसी ओघ-स्पर्शनप्ररूपणामें सासादन आदि गुणस्थानोंकी प्ररूपणा की गई है, उसी प्रकारसे यहांपर भी करनी चाहिए। विशेष बात यह है कि त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्त मिथ्यादृष्टि जीवोंकी स्पर्शनप्ररूपणा पंचेन्द्रियमिथ्यादृष्टि जीवोंके समान जानना चाहिए, क्योंकि, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपदको छोड़कर अन्यत्र अर्थात् शेष पदोंमें सर्वलोकप्रमाण स्पर्शनक्षेत्रका अभाव है।

त्रसकायिक लब्ध्यपर्याप्त जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र पंचेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्त जीवोंके समान लोकका असंख्यातवां भाग है ॥ ७३ ॥

वर्तमानकालका आश्रय करके जिस प्रकारसे पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त जीवोंकी स्पर्शन-प्ररूपणा की गई है, उसी प्रकारसे यहांपर भी वर्तमानकालका आश्रय करके स्पर्शनप्ररूपणा करनी चाहिए। तथा जैसे अतीतकालका आश्रय करके स्वस्थान, वेदना और कषायसमुद्घात-परिणत जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां

---

१ त्रसकायिकानां पंचेन्द्रियवत्स्पर्शनम्। स. सि. १, ८.

अट्ठाइज्जादो असंखेज्जगुणो, मारणंतिय-उववादपदेहि सव्वलोगो फोसिदो त्ति पंचिंदियअपज्जत्ताणं परूवणा कदा, तधा एत्थ वि कायव्वा ।

एवं कायमग्गणा समत्ता ।

जोगाणुवादेण पंचमणजोगि पंचवचिजोगीसु मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो[1] ॥ ७४ ॥

एदं सुत्तं वट्टमाणकालमस्सिदूण ट्ठिदमिदि एदस्स परूवणं कीरमाणे जधा खेत्ताणिओगद्दारे पंचमण-वचिजोगिमिच्छादिट्ठीणं परूवणा कदा, तधा एत्थ वि मंदबुद्धिसिस्ससंभालण परूवणा कादव्वा ।

अट्ठ चोद्दसभागा देसूणा, सव्वलोगो वा ॥ ७५ ॥

पंचमण-पंचवचिजोगिमिच्छादिट्ठीहि सत्थाणसत्थाणपरिणदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । एत्थ सत्थाणखेत्ताणयणविधाणं जाणिय कादव्वं । एसो 'वा'

भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है, तथा मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपदपरिणत जीवोंने सर्वलोक स्पर्श किया है. इसप्रकारसे जैसी पंचेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्त जीवोंकी प्ररूपणा की गई है, उसी प्रकारसे यहांपर भी स्पर्शनप्ररूपणा करनी चाहिए ।

इसप्रकार कायमार्गणा समाप्त हुई ।

योगमार्गणाके अनुवादसे पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंने कितनाक्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥७४॥

यह सूत्र वर्तमानकालका आश्रय करके स्थित है, इसलिए इसकी प्ररूपणा करनेपर जैसी क्षेत्रानुयोगद्वारमें पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंकी प्ररूपणा की गई है, उसी प्रकारसे यहां पर भी मंदबुद्धि शिष्योंके संभालनेके लिए स्पर्शनप्ररूपणा करनी चाहिए ।

पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग और सर्वलोक स्पर्श किया है ॥ ७५ ॥

स्वस्थानस्वस्थानपदपरिणत पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और मनुष्यक्षेत्रसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । यहां पर स्वस्थानस्वस्थान क्षेत्रके निकालनेका विधान जान करके करना चाहिए । यह 'वा' शब्दसे सूचित अर्थ है । विहार-

---

१ योगानुवादेन वाङ्मानसयोगिमिथ्यादृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः अष्टौ चतुर्दशभागा वा देशोनाः सर्वलोको वा । स. सि. १, ८.

सट्ठसूचिदत्थो। विहार-वेदण-कसाय-वेउव्वियपरिणदेहि अट्ठ चोद्दसभागा देसूणा फोसिदा। घणलोगमट्ठभागूणतेदालीसरूवेहि छिण्णेगभागो, अधोलोगं साद्धचउव्वीसरूवेहि छिण्णेगभागो, उड्ढलोगमट्ठभागूणसाद्धट्ठारस रूवेहि छिण्णेगभागो, णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणो फोसिदो त्ति जं उत्तं होदि। मारणंतियपदेण सव्वलोगो फोसिदो।

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदा ओघं[1] ॥ ७६ ॥

वट्टमाणकालमस्सिदूण जधा खेत्ताणिओगद्दारस्स ओघम्हि एदेसिं चदुण्हं गुणट्ठाणाणं [illegible] तधा एत्थ वि सिस्ससंभालणट्ठं परूवणा कादव्वा; णत्थि कोइ विसेसो। अदीदकालमस्सिदूण जधा फोसणाणिओगद्दारस्स ओघम्हि

वस्त्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकपदपरिणत उक्त जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह ($\frac{८}{१४}$) भाग स्पर्श किये हैं, जो कि घनाकार लोकको आठवें भागसे कम तेतालीस (४२$\frac{७}{८}$) रूपोंसे विभक्त करने पर एक भाग, अथवा अधोलोकको साढ़े चौबीस (२४$\frac{१}{२}$) रूपोंसे विभक्त करने पर एक भाग, अथवा ऊर्ध्वलोकको आठवें भागसे कम साढ़े अठारह (१८$\frac{३}{८}$) रूपोंसे विभक्त करने पर एक भाग प्रमाण होता है। अर्थात् उक्त तीनों ही पद्धतियोंसे क्षेत्र निकालने पर वही देशोन आठ राजु प्रमाण आ जाता है।

उदाहरण– (१) घनलोक– $३४३ \div \frac{३४३}{८} = ८$ राजु.

(२) अधोलोक– $१९६ \div \frac{४९}{२} = ८$ राजु.

(३) ऊर्ध्वलोक– $१४७ \div \frac{१४७}{८} = ८$ राजु.

इसप्रकार सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका संख्यातवां भाग और नरलोक तथा तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। मारणान्तिकपदपरिणत जीवोंने सर्वलोक स्पर्श किया है।

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर संयतासंयत गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ ७६ ॥

वर्तमानकालका आश्रय करके जैसी क्षेत्रानुयोगद्वारके ओघमें इन चारों गुणस्थानोंकी क्षेत्रप्ररूपणा की गई है, उसी प्रकारसे यहांपर भी शिष्योंके संभालनेके लिए स्पर्शनप्ररूपणा करनी चाहिए। इसके अतिरिक्त अन्य कोई विशेषता नहीं है। अतीतकालका आश्रय करके जैसी स्पर्शनानुयोगद्वारके ओघमें अतीत और अनागत कालोंकी अपेक्षा इन चार गुणस्थानवर्ती

---

१ सासादनसम्यग्दृष्टयादीनां क्षणिकषायान्तानां सामान्योक्तं स्पर्शनम्। स. सि. १, ८.

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

तीदाणागदकालेसु एदेहि चदुगुणट्ठाणजीवेहि छुत्तखेत्तपरूवणा कदा, तधा एत्थ वि कादव्वा, विसेसाभावा। णवरि सासणसम्मादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीसु उववादो णत्थि, उववादेण पंचमण-वचिजोगाणं सहअणवट्ठाणलक्खणविरोहा।

पमत्तसंजदप्पहुडि जाव सजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो[1] ॥ ७७ ॥

एवेसिमट्ठण्हं गुणट्ठाणाणं जधा फोसणाणिओगद्दारस्स ओघम्हि तिण्णि काले अस्सिदूण परूवणा कदा, तधा एत्थ वि कादव्वा। जदि एवं, तो सुत्ते ओघमिदि किण्ण परूविदं ? ण, तधा परूवणाए कायजोगाविणाभाविसजोगिचउव्विहसमुग्घाद-खेत्तपडिसेहफलत्तादो।

जीवोंसे स्पर्शित क्षेत्रकी प्ररूपणा की गई है, उसी प्रकारसे यहां पर भी करनी चाहिए, क्योंकि, उसमें कोई विशेषता नहीं है। विशेष बात यह है कि सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टियोंमें उपपादपद नहीं होता है, क्योंकि, उपपादके साथ पांचों मनोयोग और पांचों वचनयोगोंका सहानवस्थानलक्षण विरोध है, अर्थात् उपपादमें उक्त योग संभव नहीं हैं।

प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती उक्त जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ७७ ॥

इन आठों गुणस्थानोंकी स्पर्शनानुयोगद्वारके ओघमें तीनों लोकोंका आश्रय करके जैसी स्पर्शनप्ररूपणा की गई है, उसी प्रकारसे यहां पर भी करनी चाहिए।

शंका– यदि ऐसा है, तो सूत्रमें 'ओघ' ऐसा पद क्यों, नहीं कहा ?

समाधान– नहीं, क्योंकि, उस प्रकारकी प्ररूपणा काययोगके अविनाभावी सयोगि-केवलीके चारों प्रकारके समुद्घातक्षेत्रके प्रतिषेध करनेके लिए है।

विशेषार्थ– यदि सूत्रमें 'असंखेज्जदिभागो' पदके स्थान पर 'ओघं' ऐसा पद दिया जाता तो केवल मनोयोगी और वचनयोगियोंका स्पर्शनक्षेत्र बताते समय, जो केवल काययोगके निमित्तसे ही केवलीके समुद्घात होता है जिसका कि स्पर्शनक्षेत्र लोकका असंख्यातवां भाग, असंख्यात बहुभाग और सर्वलोक है, उसका प्रतिषेध नहीं हो पाता; अर्थात् अनिष्ट प्रसंग उपस्थित हो जाता। उसी अनिष्टापत्तिके प्रतिषेधके लिए सूत्रमें 'ओघं' पद न देकर 'असंखेज्जदिभागो' पद दिया है।

---

१ सयोगकेवलिनां लोकस्यासंख्येयभागः। स. सि. १, ८.

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

कायजोगीसु मिच्छादिट्ठी ओघं[1] ॥ ७८ ॥

सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय-मारणंतिय-उववादपरिणदकायजोगिमिच्छादिट्ठीणं तिसु वि कालेसु सव्वलोगत्तुवलंभादो, विहारवदिसत्थाण-वेउव्वियपदेहि वट्टमाणकाले तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागत्तेण, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागत्तेण, माणुसखेत्तादो असंखेज्जदिगुणत्तेण; अदीदकाले अट्ठ-चोद्दसभागत्तेण च तुल्लत्तुवलंभादो, सुत्ते ओघमिदि उत्तं ।

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था ओघं ॥ ७९ ॥

एदेसिमेक्कारसण्हं गुणट्ठाणाणं तिविहं कालमस्सिदूण सत्थाणादिपदाणं परूवणा कीरमाणे फोसणाणिओगद्दारोघम्हि जधा तिविहकालमस्सिदूण एक्कारसण्हं गुणट्ठाणाणं सत्थाणादिपरूवणा कदा, तधा कादव्वा; णत्थि एत्थ को वि विसेसो ।

सजोगिकेवली ओघं ॥ ८० ॥

काययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान सर्वलोक है ॥७८॥

स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपद-परिणत काययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र तीनों ही कालोंमें सर्वलोक पाया जाता है । विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकपदपरिणत उक्त जीवोंने वर्तमानकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागसे, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागसे, और मनुष्यक्षेत्रसे असंख्यातगुणे क्षेत्रकी अपेक्षा, तथा अतीतकालमें आठ बटे चौदह ($\frac{८}{१४}$) भागप्रमाण स्पर्शनसे तुल्यता पाई जाती है, इसलिए सूत्रमें 'ओघ' ऐसा पद कहा है ।

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती काययोगी जीवोंका स्पर्शन ओघके समान है ॥ ७९ ॥

इन ग्यारह गुणस्थानोंकी तीनों कालोंको आश्रय करके स्वस्थानादि पदोंकी प्ररूपणा करने पर स्पर्शनानुयोगद्वारके ओघमें जिस प्रकारसे तीनों कालोंका आश्रय लेकर ग्यारह गुणस्थानोंकी स्वस्थानादि पदसम्बन्धी प्ररूपणा की गई है, उसी प्रकारसे यहां पर भी करनी चाहिए, क्योंकि, यहां पर कोई विशेषता नहीं है ।

काययोगी सयोगिकेवलीका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान लोकका असंख्यातवां भाग, असंख्यात बहुभाग और सर्वलोक है ॥ ८० ॥

---

१ काययोगिनां मिथ्यादृष्टयादीनां सयोगकेवल्यन्तानामयोगकेवलिनां च सामान्योक्तं स्पर्शनम् । स. सि. १, ८.

एवस्स सुत्तस्स पुधारंभो किफलो ? ण, सजोगिकेवलि-चत्तारिसमुग्घादा कायजोगाविणाभाविणो त्ति मंदमेहाविजणावबोहणफलत्तादो । एगजोगं काढूण ओघमिदि उत्ते वि ओघत्तण्णहाणुववत्तीदो कायजोगम्हि चदुण्हं समुग्घादाणमत्थित्तं परिछिज्जदे चे, ण एस दोसो, ओघमिदि उत्ते इमाणि पदाणि अत्थि, इमाणि च णत्थि त्ति ण णव्वदे । जाणि संभवंति पदाणि तेसिं परूवणा ओघपरूवणाए तुल्ला त्ति एत्तियमेत्तं चेव णव्वदे । तेण पुध सुत्तारंभो कायजोगिम्हि चउव्विहसमुग्घादाण-मत्थित्तपदुप्पायणफलो त्ति ।

ओरालियकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ८१ ॥

दव्वट्ठियपरूवणाए ओघत्तं जुज्जदे । पज्जवट्ठियपरूवणाए पुण ओघत्तं णत्थि, ओरालियजोगे णिरुद्धे विहार-वेउव्वियपदाणमट्ठ-चोद्दसभागत्ताणुवलंभादो । तदो एत्थ भेदपरूवणा कीरदे– सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय-मारणंतियपरिणदेहि तिसु वि कालेसु सव्वलोगो फोसिदो । उववादो णत्थि, दोण्हं सहाणवट्ठाणलक्खणविरोहा । वट्टमाणकाले

शंका– इस सूत्रके पृथक् आरम्भ करनेका क्या फल है ?

समाधान– ऐसा नहीं कहना, क्योंकि, सयोगिकेवलीमें दंड, कपाटादि चारों समुद्घात काययोगके अविनाभावी होते हैं, इस बातका मंदमेधावी जनोंको ज्ञान करानेके लिए इस सूत्रका पृथक् निर्माण किया गया है, और यही सूत्रके पृथक् निर्माणका फल है ।

शंका– पूर्वसूत्र और इस सूत्रका एक योग अर्थात् एक समास करके 'ओघ' ऐसा कहने पर भी ओघत्व-अन्यथानुपपत्तिसे काययोगी सयोगिकेवलीमें दंड-कपाटादि चारों समुद्घातोंका अस्तित्व जाना जाता है, फिर पृथक् सूत्र-निर्माणकी क्या उपयोगिता है ?

समाधान– यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, 'ओघ' ऐसा कहनेपर भी ये अमुक विवक्षित पद होते हैं, और ये अमुक पद नहीं होते हैं, ऐसा, विशेष नहीं जाना जाता है । किन्तु जो पद संभव हैं उनकी प्ररूपणाएं ओघप्ररूपणाके साथ समान होती हैं, इतना मात्र ही जाना जाता है । इसलिए पृथक् सूत्रका आरंभ काययोगी सयोगिकेवलीमें चारों प्रकारके समुद्घातोंका अस्तित्व प्रतिपादन करनेरूप फलके लिए है ।

औदारिककाययोगी जीवोंमें मिथ्यादृष्टियोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान सर्वलोक है ॥ ८१ ॥

द्रव्यार्थिकनयकी प्ररूपणामें तो ओघपना घटित होता है, किन्तु पर्यायार्थिकनयकी प्ररूपणामें ओघपना घटित नहीं होता है, क्योंकि, औदारिककाययोगके निरुद्ध करनेपर विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिक पदोंके स्पर्शनका क्षेत्र आठ बटे चौदह ($\frac{८}{१४}$) भाग नहीं पाया जाता है । इससे यहांपर भेदप्ररूपणा की जाती है । स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, कषाय और मारणान्तिकपदपरिणत औदारिककाययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंने तीनों ही कालोंमें सर्वलोक स्पर्श किया है । यहांपर उपपादपद नहीं है, क्योंकि, औदारिककाययोग और उपपादपद, इन दोनोंका सहानवस्थानलक्षण विरोध है । वर्तमानकालमें वैक्रियिकपदपरिणत

वेउव्वियपरिणदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । तीदाणागदेसु तिण्हं लोगाणं संखेज्जदिभागो, दोलोगेहिंतो असंखेज्जगुणो, वाउक्काइयवेउव्वियफोसणस्स पाधण्णविवक्खाए । विहारपरिणदेहि ओरालियकायजोगिमिच्छादिट्ठीहि वट्टमाणकाले तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । तीदाणागदकालेसु तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो ।

सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ८२ ॥

एदस्स वट्टमाणकालसंबंधिसुत्तस्स खेत्ताणिओगद्दारे ओरालियकायजोगिसासणसुत्तस्सेव परूवणा कादव्वा ।

सत्त चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ ८३ ॥

सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियपरिणदेहि सासण-

उक्त जीवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग, और मनुष्यक्षेत्रसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । अतीत और अनागत, इन दोनों कालोंमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका संख्यातवां भाग, और नरलोक तथा तिर्यग्लोक, इन दोनों लोकोंसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है, क्योंकि, यहां पर वायुकायिक जीवोंके वैक्रियिकपदसम्बन्धी स्पर्शनक्षेत्रकी प्रधानतासे विवक्षा की गई है । विहारवत्स्वस्थानपदसे परिणत औदारिककाययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंने वर्तमानकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । उन्हीं जीवोंने अतीतकाल और अनागतकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है ।

औदारिककाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ८२ ॥

इस वर्तमानकालसम्बन्धी सूत्रको क्षेत्रानुयोगद्वारमें कहे गये औदारिककाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टियोंकी क्षेत्रप्ररूपणा करनेवाले सूत्रके समान स्पर्शनप्ररूपणा करनी चाहिए ।

उक्त जीवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा कुछ कम सात बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ ८३ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकपदपरिणत

दिट्ठीहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणो फोसिदो। उववादो णत्थि। मारणंतियपरिणदेहि सत्त चोद्दसभागा देसूणा फोसिदा। केण ऊणा? इसिपब्भारपुढवीए उवरिमबाहल्लेण।

सम्मामिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ८४ ॥

एवस्स सुत्तस्स परूवणा खेत्ताणिओगद्दारोरालियकायजोगसम्मामिच्छादिट्ठिसुत्तपरूवणाए तुल्ला। सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियपरिणदेहि ओरालियसम्मामिच्छादिट्ठीहि तीदाणागदकालेसु तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो। मारणंतिय-उववादा णत्थि।

असंजदसम्मादिट्ठिहि-संजदासंजदेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंज्जदिभागो ॥ ८५ ॥

सासादनसम्यग्दृष्टियोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और मानुषक्षेत्रसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। इन जीवोंके उपपादपद नहीं होता है। मारणान्तिकपदपरिणत उक्त जीवोंने कुछ कम सात बटे चौदह ($\frac{७}{१४}$) भाग स्पर्श किये हैं।

शंका— यहांपर कुछ कमसे कितना कम क्षेत्र समझना चाहिए?

समाधान— ईषत्प्राग्भार पृथिवीके उपरिम भागके बाहल्यप्रमाणसे कुछ कम क्षेत्र समझना चाहिए।

औदारिककाययोगी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ८४ ॥

इस सूत्रकी प्ररूपणा क्षेत्रानुयोगद्वारमें वर्णित औदारिककाययोगी सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंके क्षेत्रका वर्णन करनेवाले सूत्रकी प्ररूपणाके तुल्य है। स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकपदपरिणत औदारिककाययोगी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंने अतीत और अनागतकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। औदारिककाययोगी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद, ये दो पद नहीं होते हैं।

औदारिककाययोगी, असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ८५ ॥

सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्विय-मारणंतियपरिणदेहि असंजदसम्मादिट्ठीहि संजदासंजदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणो वट्टमाणद्धाए फोसिदो ।

छ चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ ८६ ॥

सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियपरिणदेहि असंजदसम्मादिट्ठीहि संजदासंजदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो । एसो 'वा' सद्दसूचिदत्थो । मारणंतियपरिणदेहि छ चोद्दसभागा देसूणा फोसिदा, अच्चुदकप्पादो उवरि असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजदाणमुववादाभावादो ।

पमत्तसंजदप्पहुडि जाव सजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ८७ ॥

एदेसिमट्ठण्हं गुणट्ठाणाणं तिण्णि वि काले अस्सिदूण परूवणं कीरमाणे

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक और मारणान्तिकसमुद्घातपदपरिणत असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत जीवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग, और मनुष्यलोकसे असंख्यातगुणा क्षेत्र वर्तमानकालमें स्पर्श किया है ।

औदारिककाययोगी उक्त दोनों गुणस्थानवर्ती जीवोंने अतीत और अनागतकालकी अपेक्षा कुछ कम छह बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ ८६ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकसमुद्घात, इन पदोंसे परिणत औदारिककाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयतोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। यह 'वा' शब्दसे सूचित अर्थ है। मारणान्तिकसमुद्घात पदपरिणत उक्त जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह ($\frac{६}{१४}$) भाग स्पर्श किये हैं, क्योंकि, अच्युतकल्पसे ऊपर असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत जीवोंका उपपाद नहीं होता है ।

प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती औदारिककाययोगी जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ८७ ॥

इन आठों गुणस्थानोंकी तीनों ही कालोंका आश्रय करके स्पर्शनप्ररूपणा करनेपर

खेत्तफोसणाणं मूलोघपमत्तादिपरूवणाए समाणा परूवणा कादव्वा। णवरि सजोगिकेवलिम्हि कवाड-पदर-लोगपूरणाणि णत्थि[1]। तं कधं णव्वदे ? सजोगिकेवलीहि लोगस्स असंखेज्जा भागा सव्वलोगो वा फोसिदो त्ति सुत्तेण अणिद्दिट्ठत्तादो।

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

ओरालियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ८८ ॥

सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय-मारणंतिय-उववादपरिणदेहि ओरालियमिस्सकायजोगिमिच्छादिट्ठीहि तिसु वि कालेसु जेण सव्वलोगो फोसिदो, तेण ओघत्तमेदेसिं ण विरुज्झदे। विहारवदिसत्थाण-वेउव्वियपदाणमेत्थाभावा णोघत्तं जुज्जदे ? होदु णाम

क्षेत्र और स्पर्शन अनुयोगद्वारके मूलोघ प्रमत्तादि गुणस्थानोंकी प्ररूपणाके समान प्ररूपणा करनी चाहिए। विशेष बात यह है कि सयोगिकेवली गुणस्थानमें कपाट, प्रतर और लोकपूरणसमुद्घात नहीं होते हैं, (क्योंकि, औदारिककाययोगकी अवस्थामें केवल एक दंडसमुद्घात ही होता है।)

शंका— यह कैसे जानते हैं कि औदारिककाययोगी सयोगिकेवलीके कपाट आदि तीन समुद्घात नहीं होते हैं ?

समाधान— 'यह बात सयोगिकेवलियोंने लोकका असंख्यात बहुभाग और सर्वलोक स्पर्श किया है' इस सूत्रसे निर्दिष्ट नहीं की गई है। (अतः हम जानते हैं कि औदारिककाययोगी सयोगिजिनमें कपाटादि तीन समुद्घात नहीं होते हैं।)

विशेषार्थ— औदारिककाययोगकी अवस्थामें केवल एक दंडसमुद्घात ही होता है, कपाटसमुद्घात आदि नहीं। इसका कारण यह है कि कपाटसमुद्घातमें औदारिकमिश्रकाययोग, और प्रतर तथा लोकपूरणसमुद्घातमें कार्मणकाययोग होता है, ऐसा नियम है। इसलिए यहां, औदारिककाययोगकी प्ररूपणा करते समय सयोगिकेवलीमें कपाट, प्रतर और लोकपूरणसमुद्घात नहीं होते हैं, ऐसा कहा है।

औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान सर्वलोक है ॥ ८८ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, कषाय, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपदपरिणत औदारिकमिश्रककाययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंने तीनों ही कालोंमें चूंकि सर्वलोक स्पर्श किया है, इसलिए ओघपना इन पदोंवाले जीवोंसे विरोधको प्राप्त नहीं होता है।

शंका— औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकसमुद्घात, इन दो पदोंका अभाव होनेसे ओघपना नहीं बनता है, इसलिए सूत्रमें 'ओघ' पद नहीं देना चाहिए ?

समाधान— औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंके विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिक-

[1] ओरालं वंडदुगे कवाडजुगले य तस्स मिस्सं तु। पदरे य लोगपूरे कम्मेव य होदि णायव्वो ॥ गो. क. ५८७.

एदेसिं दोण्हं पि पदाणमभावो, तधावि पदसंखाविवक्खाभावा विज्जमाणपदाणं फोसणस्स ओघपदफोसणेण तुल्लत्तमत्थि त्ति ओघत्तं ण विरुज्झदे ।

सासणसम्माइट्ठि-असंजदसम्माइट्ठि-सजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ८९ ॥

एदेसिं तिण्हं गुणट्ठाणाणं वट्टमाणपरूवणा खेत्तभंगो । सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय-उववादपरिणदओरालियमिस्ससासणसम्मादिट्ठीहि अदीदकाले तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो । कधं तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागत्तं ? देव-णेरइयमणुस्स-तिरिक्खसासणसम्माइट्ठीहि तिरिक्खमणुस्सेसुप्पज्जिय सरीरं घेत्तूण ओरालियमिस्सकायजोगेण सह सासणगुणमुव्वहंतेहि अदीदकाले संखेज्जंगुलबाहल्लरज्जुपदरं मज्झिल्लसमुद्दवज्जं सव्वं जेण फुसिज्जदि तेण तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो त्ति वयणं जुज्जदे । एत्थ विहार-वेउव्विय-मारणंतिय-पदाणि णत्थि, एदेसिमोरालियमिस्सकायजोगेण सहअवट्ठाण-

समुद्घात, इन दो पदोंका अभाव भलेही रहा आवे, तथापि पदोंकी संख्याकी विवक्षा न करनेसे उनमें विद्यमान पदोंके स्पर्शनकी ओघपदके स्पर्शनके साथ तुल्यता है ही, इसलिए ओघपना विरोधको प्राप्त नहीं होता है ।

औदारिकमिश्रकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और सयोगिकेवली जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ८९ ॥

इन तीन ही गुणस्थानोंके स्पर्शनकी वर्तमानकालिक प्ररूपणा क्षेत्रके समान है । स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, कषायसमुद्घात और उपपादपदपरिणत औदारिकमिश्रकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है ।

शंका - तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग कैसे कहा ?

समाधान— चूंकि देव, नारकी, मनुष्य और तिर्यंच सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने (यथासंभव) तिर्यंच और मनुष्योंमें उत्पन्न होकर शरीरको ग्रहण करके औदारिकमिश्रकाययोगके साथ सासादनगुणस्थानको धारण करते हुए अतीतकालमें बीचके समुद्रको छोडकर संख्यात अंगुल बाहल्यवाले सम्पूर्ण राजुप्रतररूप क्षेत्रका स्पर्श किया है, इसलिए 'तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग' यह वचन युक्तियुक्त है ।

यहां पर विहारवत्स्वस्थान, वैक्रियिक और मारणान्तिक पद नहीं होते हैं, क्योंकि, इन पदोंका औदारिकमिश्रकाययोगके साथ अवस्थानका विरोध है । किन्तु उपपादपद होता है, क्योंकि, सासादनगुणस्थानके साथ अक्रमसे (युगपत्) उपात्त भवशरीरके प्रथम समयमें

विरोहा। उववादो पुण अत्थि, सासणगुणेण सह अवक्कमेण उववासभवसरीरपढमसमए उववादोवलंभा। मिच्छाविट्ठीणं पुण मारणंतिय-उववादपदाणि लब्भंति, अणंतो, ओरालियमिस्सेइंदियअपज्जत्तरासी सट्ठाणे परट्ठाणे च अवक्कमणोवक्कमणं परेमाणो लब्भदि त्ति। सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय-उववादपरिणदेहि असंजदसम्मादिट्ठीहि ओरालियमिस्सकायजोगीहि तीदे काले तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो। कधं तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागत्तं? ण, पुव्वं तिरिक्ख-मणुस्सेसु आउअं बंधिय पच्छा सम्मत्तं घेत्तूण दंसणमोहणीयं खविय बद्धाउवसेण भोगभूमिसंठाणअसंखेज्जदीवेसु उप्पण्णेहि भव-सरीरग्गहणपढमसमए वट्टमाणेहि ओरालियमिस्सकायजोगअसंजदसम्मादिट्ठीहि अदीदकाले फोसिदतिरियलोगस्स संखेज्जदिभागुवलंभा। कवाडगदेहि सजोगिकेवलीहि ओरालियमिस्सकायजोगे वट्टमाणेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो; अदीदेण तिरियलोगादो संखेज्जगुणो फोसिदो। एत्थ कवाडखेत्तादो जगपदरुप्पायणविधाणं जाणिय वत्तव्वं।

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

उपपाद पाया जाता है। मिथ्यादृष्टि जीवोंके भी मारणान्तिक और उपपादपद पाये जाते हैं, क्योंकि, अनन्तसंख्यक औदारिकमिश्रकाययोगी एकेन्द्रिय अपर्याप्त राशि, स्वस्थान और परस्थानमें अपक्रमण और उपक्रमण करती हुई, अर्थात् जाती आती, पाई जाती है। स्वस्थान-स्वस्थान, वेदना, कषायसमुद्घात और उपपादपदपरिणत औदारिकमिश्रकाययोगी असंयत-सम्यग्दृष्टि जीवोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है।

शंका- औदारिकमिश्रकाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टियोंके उपपादक्षेत्रको तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग कैसे कहा?

समाधान- नहीं, क्योंकि, पूर्वमें तिर्यंच और मनुष्योंमें आयुको बांधकर पीछे सम्यक्त्वको ग्रहण कर, और दर्शनमोहनीयका क्षय करके बांधी हुई आयुके वशसे भोगभूमिकी रचनावाले असंख्यात द्वीपोंमें उत्पन्न हुए, तथा, भव-शरीरके ग्रहण करनेके प्रथम समयमें वर्तमान, ऐसे औदारिकमिश्रकाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंके द्वारा अतीतकालमें स्पर्श किया गया क्षेत्र तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग पाया जाता है।

कपाटसमुद्घातको प्राप्त, औदारिकमिश्रकाययोगमें वर्तमान सयोगिकेवलियोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। अतीतकालकी अपेक्षासे तिर्यग्लोकसे संख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। यहां पर कपाटसमुद्घातगत क्षेत्रकी अपेक्षासे स्पर्शनक्षेत्र-सम्बन्धी जगत्प्रतरके उत्पादनका विधान जान करके कहना चाहिए। (इसके लिए देखो क्षेत्रप्ररूपणा पृ. ४९ आदि)।

वेउव्वियकायजोगीसु मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ९० ॥

एदं सुत्तं जेण वट्टमाणकालपडिबद्धं तेणेदस्स वक्खाणं कीरमाणे जधा खेत्ताणिओगद्दारे वेउव्वियकायजोगिमिच्छाइट्ठिपडिबद्धसुत्तस्स वक्खाणं कदं, तधा एत्थ वि कायव्वं ।

अट्ठ तेरह चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ ९१ ॥

सत्थाणसत्थाणपरिणद-वेउव्वियमिच्छादिट्ठीहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो। विहारवदिसत्थाण-वेयण-कसाय-वेउव्वियपरिणदेहि अट्ठ चोद्दसभागा फोसिदा। उववादो णत्थि। मारणंतियपरिणदेहि तेरह चोद्दसभागा फोसिदा, हेट्ठा छ, उवरि सत्त रज्जू। घणलोगमेगरूवस्स अट्ठतेरसभागूण-सत्तावीसरूवेहि खंडिदएगखंडं फोसंति त्ति वुत्तं होइ।

वैक्रियिककाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ९० ॥

चूंकि यह सूत्र वर्तमानकालसे सम्बद्ध है, इसलिए इसका व्याख्यान करने पर जिस प्रकारसे क्षेत्रानुयोगद्वारमें वैक्रियिककाययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंसे प्रतिबद्ध सूत्रका व्याख्यान किया है, उसी प्रकारसे यहां पर भी करना चाहिए।

वैक्रियिककाययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंने तीनों कालोंकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह, और कुछ कम तेरह बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ ९१ ॥

स्वस्थानस्वस्थानपदपरिणत वैक्रियिककाययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, और मनुष्यलोकसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, और वैक्रियिकसमुद्घातपदपरिणत उक्त जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह ($\frac{८}{१४}$) भाग स्पर्श किये हैं। यहां पर उपपादपद नहीं होता है, (क्योंकि, मिश्रयोग और कार्मणकाययोगके सिवाय अन्य योगोंके साथ उपपादपदका सहानवस्थानलक्षण विरोध है)। मारणान्तिकसमुद्घातपदपरिणत उक्त जीवोंने (कुछ कम) तेरह बटे चौदह ($\frac{१३}{१४}$) भाग स्पर्श किये हैं, जो कि मेरुतलसे नीचे छह राजु और ऊपर सात राजु जानना चाहिए। घनाकारलोकको एक रूपके आठ बटे तेरह ($\frac{८}{१३}$) भागसे कम सत्ताइस ($२६\frac{५}{१३}$) रूपोंसे खंडित (विभक्त) करने पर एक खंड प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श करते हैं, ऐसा अर्थ कहा गया समझना चाहिए।

सासणसम्मादिट्ठी ओघं ॥ ९२ ॥

एदस्स वट्टमाणपरूवणा खेत्तभंगो। सत्थाणसत्थाणपरिणदवेउव्वियकायजोगिसासणसम्मादिट्ठीहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो। एत्थ तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागत्तपरूवणं पुव्वं व वत्तव्वं विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियपरिणदेहि अट्ठ चोद्दसभागा फोसिदा। उववादो णत्थि। मारणंतियपरिणदेहि बारह चोद्दसभागा फोसिदा। तेणोघमिदि जुज्जदे।

सम्मामिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी ओघं ॥ ९३ ॥

जेणेदेसिं वट्टमाणपरूवणा खेत्तोघपरूवणाए तुल्ला, तेणोघं होदि। अदीदपरूवणा वि फोसणोघेण तुल्ला। तं जहा— सत्थाणसत्थाणपरिणदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो। विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्विय-मारणंतियपरिणदेहि अट्ठ चोद्दसभागा

वैक्रियिककाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघस्पर्शनके समान है ॥ ९२ ॥

इस सूत्रकी वर्तमान स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है। स्वस्थानस्वस्थानपद-परिणत वैक्रियिककाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। यहां पर तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागपनेकी प्ररूपणा पूर्वके समान ही करनी चाहिए। विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकसमुद्घात, इन पदोंसे परिणत वैक्रियिककाययोगी जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह ($\frac{८}{१४}$) भाग स्पर्श किये हैं। इनके उपपादपद नहीं होता है। मारणान्तिकसमुद्घातपदसे परिणत उक्त जीवोंने बारह बटे चौदह ($\frac{१२}{१४}$) भाग स्पर्श किये हैं। इसलिए सूत्रमें दिया गया 'ओघ' यह पद युक्तिसंगत है।

वैक्रियिककाययोगी सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका स्पर्शन ओघके समान है ॥ ९३ ॥

चूंकि इन दोनों गुणस्थानवर्ती जीवोंकी वर्तमानकालिक स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रसम्बन्धी ओघप्ररूपणाके तुल्य है, इसलिए उनकी स्पर्शनप्ररूपणा ओघके तुल्य होती है। अतीतकालिक स्पर्शनप्ररूपणा भी ओघस्पर्शनप्ररूपणाके समान है। वह इस प्रकारसे है— स्वस्थान-स्वस्थानपदपरिणत वैक्रियिककाययोगी सम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक और मारणान्तिकपदपरिणत उक्त जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह ($\frac{८}{१४}$) भाग स्पर्श किये हैं।

वेसूणा फोसिदा। असंजदसम्मादिट्ठिस्स उववादो णत्थि। सम्मामिच्छादिट्ठिस्स मारणंतिय-उववादो णत्थि। तेणेत्थ वि ओघसमेवासि जुज्जदे।

वेउव्वियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदि-भागो ॥ ९४ ॥

एदस्स सुत्तस्स वट्टमाणपरूवणा खेत्तभंगो। सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय उववादपरिणदवेउव्वियमिस्सकायजोगिमिच्छादिट्ठीहि अदीदकाले तिण्हं लोगाणम-संखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो। विहारवदिसत्थाण-वेउव्विय-मारणंतियपदाणि णत्थि। सासणसम्मादिट्ठिस्स वि एवं चेव वत्तव्वं, वाणवेंतरजोदिसियदेवाणमसंखेज्जावासेसु तिरियलोगस्स संखेज्जदि-भागमोट्ठहिय ट्ठिदे सासणाणमुप्पत्तिदंसणादो। असंजदसम्माइट्ठीहि सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय-उववादपरिणदेहि चउण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो, वाणवेंतर-जोदिसियभवणवासिएसु एदेसिमुववादाभावा;

वैक्रियिककाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंके उपपादपद नहीं होता है। वैक्रियिककाययोगी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद, ये दो पद नहीं होते हैं। इसलिए यहां पर भी ओघपना बन जाता है।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ९४ ॥

इस सूत्रकी वर्तमानकालिक स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रके समान है। स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, कषाय और उपपादपरिणत वैक्रियिकमिश्रकाययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंने अतीत-कालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंके विहारवत्स्वस्थान, वैक्रियिक और मारणान्तिकसमुद्घात, ये पद नहीं होते हैं। सासादन-सम्यग्दृष्टि गुणस्थानकी भी स्पर्शनप्ररूपणा इसी प्रकारसे कहनी चाहिए। तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागको व्याप्त करके स्थित वानव्यन्तर और ज्योतिष्क देवोंके असंख्यात आवासोंमें सासादन-सम्यग्दृष्टि जीवोंकी उत्पत्ति देखी जाती है। स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, कषाय और उपपाद-पदपरिणत वैक्रियिकमिश्रकाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है, क्योंकि,

सम्मादिट्ठिउववादपाओग्गसोधम्मादिउवरिमविमाणाणं तिरियलोगस्स असंखेज्जदि-भागो चेव अवट्ठाणादो ।

आहारकायजोगि–आहारमिस्सकायजोगीसु पमत्तसंजदेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ९५ ॥

एदस्स सुत्तस्स वट्टमाणपरूवणा खेत्तभंगा । सत्थाणसत्थाण-विहारवदि-सत्थाण-वेदण-कसायपरिणदेहि आहारकायजोगिपमत्तसंजदेहि तीदे काले चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागो फोसिदो । उववाद वेउव्वियं णत्थि । मारणंतियपरिणदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणो । आहारमिस्सकायजोगिपमत्तसंजदेहि सत्थाण-वेदण-कसायपरिणदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागो फोसिदो ।

कम्मइयकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ९६ ॥

सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसायसमुग्घादपरिणदेहि मिच्छादिट्ठीहि तिसु वि कालेसु

वानव्यन्तर, ज्योतिष्क और भवनवासी देवोंमें इनका, अर्थात् वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंका उपपाद नहीं होता है; सम्यग्दृष्टि जीवोंके उपपादके प्रायोग्य सौधर्मादि उपरिम विमानोंका तिर्यग्लोकके असंख्यातवें भागमें ही अवस्थान देखा जाता है ।

आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें प्रमत्तसंयतोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ९५ ॥

इस सूत्रकी वर्तमानकालिक स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है । स्वस्थान-स्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना और कषायसमुद्घातपरिणत आहारककाययोगी प्रमत्तसंयत जीवोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग, और मनुष्य क्षेत्रका संख्यातवां भाग स्पर्श किया है । आहारककाययोगियोंके उपपाद और वैक्रियिकपद नहीं होते हैं । मारणान्तिकपदपरिणत आहारककाययोगी जीवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मनुष्यक्षेत्रसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । स्वस्थान, वेदना और कषायसमुद्घात, इन पदोंसे परिणत आहारकमिश्रकाययोगी प्रमत्तसंयतोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मनुष्यक्षेत्रका संख्यातवां भाग स्पर्श किया है ।

कार्मणकाययोगी जीवोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंकी स्पर्शनप्ररूपणा ओघके समान है ॥ ९६ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, कषाय और उपपादपदपरिणत कार्मणकाययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंने तीनोंही कालोंमें चूंकि सर्वलोक स्पर्श किया है, इसलिए सूत्रमें 'ओघ' ऐसा

जेण सव्वलोगो फोसिदो, तेण सुत्ते ओघमिदि वुत्तं। एत्थ विहारवदिसत्थाण-वेउव्विय-मारणंतियपदाणि णत्थि।

सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ९७ ॥

एदस्स सुत्तस्स वट्टमाणपरूवणा खेत्तभंगा।

एक्कारह चोद्दसभागा देसूणा ॥ ९८ ॥

एत्थ उववादवदिरित्तसेसपदाणि णत्थि, कम्मइयकायजोगिविवक्खादो। उववादे वट्टमाणा सासणा हेट्ठा पंच, उवरि छ रज्जूओ फुसंति त्ति एक्कारह चोद्दसभागा फोसिदखेत्तं होदि।

असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ९९ ॥

एदस्स परूवणा खेत्तभंगो, वट्टमाणकालपडिबद्धत्तादो।

छ चोद्दसभागा देसूणा ॥ १०० ॥

पद कहा है। यहां, अर्थात् कार्मणकाययोगी मिथ्यादृष्टियोंके, विहारवत्स्वस्थान, वैक्रियिक और मारणान्तिकसमुद्घात, इतने पद नहीं होते हैं।

कार्मणकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टियोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ९७ ॥

इस सूत्रकी वर्तमानकालिक स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रके समान है।

कार्मणकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने तीनों कालोंकी अपेक्षा कुछ कम ग्यारह बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ ९८ ॥

यहांपर उपपादपदको छोड़कर शेष पद नहीं हैं, क्योंकि, कार्मणकाययोगकी विवक्षा की गई है। उपपादपदमें वर्तमान सासादनसम्यग्दृष्टि जीव मेरुके मूलभागसे नीचे पांच राजु और ऊपर अच्युतकल्पतक छह राजु प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन करते हैं, इसलिए ग्यारह बटे चौदह ($\frac{११}{१४}$) भाग प्रमाण स्पर्श किया हुआ क्षेत्र हो जाता है।

कार्मणकाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ९९ ॥

वर्तमानकालसे प्रतिसंबद्ध होनेसे इस सूत्र स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है।

कार्मणकाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने तीनों कालोंकी अपेक्षासे कुछ कम छह बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ १०० ॥

एत्थ वि उववादपदमेक्कं चेव। तिरिक्खासंजदसम्माइट्ठिणो जेणुवरि छ रज्जूओ गंतूणुप्पज्जंति, तेण फोसणखेत्तपरूवणं छ-चोद्दसभागमेत्तं होदि। हेट्ठा फोसणं पंचरज्जुपमाणं ण लब्भदे, णेरइयासंजदसम्मादिट्ठीणं तिरिक्खेसुववादाभावा।

सजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जा भागा सव्वलोगो वा ॥ १०१ ॥

पदरगदकेवलीहि लोगस्स असंखेज्जा भागा फोसिदा, लोगपेरंतट्ठिदवादवलएसु अपविट्ठजीवपदेसत्तादो। लोगपूरणे सव्वलोगो फोसिदो, वादवलएसु वि पविट्ठजीवपदेसत्तादो।

एवं जोगमग्गणा समत्ता।

वेदाणुवादेण इत्थिवेद-पुरिसवेदएसु मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो[1] ॥ १०२ ॥

एवस्स सुत्तस्स परूवणा खेत्तभंगो, वट्टमाणकालपडिबद्धत्तादो।

यहां पर भी केवल उपपादपद ही होता है। तिर्यंच असंयतसम्यग्दृष्टि जीव चूंकि मेरुतलसे ऊपर छह राजु जाकरके उत्पन्न होते हैं, इसलिए स्पर्शनक्षेत्रकी प्ररूपणा छह बटे चौदह ($\frac{६}{१४}$) भाग प्रमाण होती है। मेरुतलसे नीचे पांच राजु प्रमाण स्पर्शनक्षेत्र नहीं पाया जाता है, क्योंकि, नारकी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका तिर्यंचोंमें उपपाद नहीं होता है।

कार्मणकाययोगी सयोगिकेवलियोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां बहुभाग और सर्वलोक स्पर्श किया है ॥ १०१ ॥

प्रतरसमुद्घातको प्राप्त केवलियोंने लोकके असंख्यात बहुभाग स्पर्श किये हैं, क्योंकि, लोकपर्यंत स्थित वातवलयोंमें केवली भगवानके आत्मप्रदेश प्रतरसमुद्घातमें प्रवेश नहीं करते हैं। लोकपूरणसमुद्घातमें सर्वलोक स्पर्श किया है, क्योंकि, लोकके चारों ओर व्याप्त वातवलयोंमें भी केवली भगवानके आत्मप्रदेश प्रविष्ट हो जाते हैं।

इसप्रकार योगमार्गणा समाप्त हुई।

वेदमार्गणाके अनुवादसे स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी जीवोंमें मिथ्यादृष्टियोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १०२ ॥

वर्तमानकालसे सम्बद्ध होनेके कारण इस सूत्रकी प्ररूपणा क्षेत्रके समान है।

---

१ वेदानुवादेन-स्त्रीपुंवेदैर्मिथ्यादृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः स्पृष्टः अष्टौ नव चतुर्दशभागा वा देशोनाः सर्वलोको वा। स. सि. १, ८.

अट्ठ चोद्दसभागा देसूणा, सव्वलोगो वा ॥ १०३ ॥

सत्थाणत्थेहि मिच्छादिट्ठीहि अदीदकाले तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो। एत्थ वाणवेंतर-जोदिसियावासे संखेज्जजोयणबाहल्लं रज्जुपदरं च घेत्तूण तिरियलोगस्स संखेज्जदि-भागो साहेदव्वो। विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियपरिणदेहि अट्ठ चोद्दसभागा फोसिदा, अट्ठरज्जुबाहल्लं--रज्जुपदरपरिब्भमणसत्तिजुत्तदेवित्थि--पुरिसवेदमिच्छा-दिट्ठीणमुवलंभादो। मारणंतिय-उववाद-परिणदेहि सव्वलोगो फोसिदो, दुपदपरिणद-मिच्छादिट्ठीणमगम्मपदेसाभावादो।

सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखे-ज्जदिभागो[1] ॥ १०४ ॥

एदस्स सुत्तस्स परूवणा खेत्तभंगो, वट्टमाणकालपडिबद्धत्तादो।

अट्ठ णव चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ १०५ ॥

स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी मिथ्यादृष्टि जीवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग तथा सर्वलोक स्पर्श किया है ॥ १०३ ॥

स्वस्थानस्थ स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी मिथ्यादृष्टि जीवोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। यहां पर वानव्यन्तर और ज्योतिष्क देवोंके आवासोंको, तथा संख्यात योजन प्रमाण बाहल्यवाले राजुप्रतरको ग्रहण करके तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग साधलेना चाहिए। विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकसमुद्घातपरिणत उक्त जीवोंने आठ बटे चौदह ($\frac{८}{१४}$) भाग स्पर्श किये हैं, क्योंकि, आठ राजु बाहल्यवाले राजुप्रतरप्रमाण क्षेत्रमें परिभ्रमणकी शक्तिसे युक्त देव, स्त्री और पुरुषवेदी मिथ्यादृष्टि जीव पाये जाते हैं। मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपदपरिणत उक्त जीवोंने सर्वलोक स्पर्श किया है, क्योंकि, मारणान्तिक और उपपादपद, इन दोनों पदोंसे परिणत स्त्री और पुरुषवेदी मिथ्यादृष्टि जीवोंके अगम्यप्रदेशका अभाव है।

स्त्री और पुरुषवेदी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १०४ ॥

वर्तमानकालसे सम्बद्ध होनेके कारण इस सूत्रकी प्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है।

स्त्री और पुरुषवेदी सासादनसम्यग्दृष्टियोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह तथा नौ बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ १०५ ॥

१ सासादनसम्यग्दृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः अष्टौ नव चतुर्दशभागा वा देशोनाः। स. सि. १, ८.

सत्थाणत्थेहि सासणसम्माइट्ठीहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरिय-लोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो, अदीदकालविवक्खादो। एत्थ वि पुव्वं व तिण्णि खेत्ताणि घेत्तूण तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो दरिसेदव्वो। एसो 'वा' सद्दट्ठो। विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियपरिणदेहि अट्ठ चोद्दसभागा देसूणा फोसिदा, अट्ठरज्जुबाहल्लरज्जुपदरब्भंतरे देवित्थि-पुरिससासणाणं गमणागमणं पडि पडिसेहाभावा। मारणंतियपरिणदेहि णव चोद्दसभागा देसूणा फोसिदा। हेट्ठा पंच रज्जू फोसणं किण्ण लब्भदे? ण, णेरइएहिंतो इत्थि-पुरिसवेदे सासणाणं तिरिक्ख-मणुस्सेसु मारणंतियमेल्लमाणाणमभावादो, तिरिक्खित्थि-पुरिस-वेदसासणाणं णिरयगदिं मारणंतियं मेल्लमाणाणमभावादो च। उववादपरिणदेहि एक्कारह चोद्दसभागा देसूणा फोसिदा। सुत्ते उववादफोसणं किण्ण वुत्तं? ण, फोसणसुत्ते उववादविवक्खाभावा। णिरयादो आगच्छंतेहि पंच रज्जू, देवेहिंतो

उक्त दोनों वेदवाले स्वस्थानस्थ सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है, क्योंकि, यहांपर अतीतकालकी विवक्षा है। यहांपर भी पूर्वके समान तीनों क्षेत्रोंको ग्रहण करके तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग दर्शाना चाहिए। यही सूत्रपठित 'वा' शब्दका अर्थ है। विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकसमुद्घातपरिणत उक्त जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह ($\frac{८}{१४}$) भाग स्पर्श किये हैं; क्योंकि, आठ राजु बाहल्यवाले राजुप्रतरके भीतर देव-स्त्री और पुरुषवेदी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके गमनागमनके प्रति प्रतिषेधका अभाव है। मारणान्तिकसमुद्घातपरिणत उक्त जीवोंने कुछ कम नौ बटे चौदह ($\frac{९}{१४}$) भाग स्पर्श किये हैं।

शंका– मेरुतलसे नीचे पांच राजुप्रमाण स्पर्शनक्षेत्र क्यों नहीं पाया जाता है?

समाधान– नहीं, क्योंकि, नारकियोंसे स्त्री और पुरुषवेदी तिर्यंचों और मनुष्योंमें मारणान्तिकसमुद्घात करनेवाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका अभाव है; तथा नरकगतिके प्रति मारणान्तिकसमुद्घात करनेवाले स्त्री और पुरुषवेदी तिर्यंच सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका भी अभाव है।

उपपादपदपरिणत उक्त जीवोंने कुछ कम ग्यारह बटे चौदह ($\frac{११}{१४}$) भाग स्पर्श किये हैं।

शंका– सूत्रमें उपपादपदसम्बन्धी स्पर्शनका प्रमाण क्यों नहीं कहा?

समाधान– नहीं, क्योंकि, स्पर्शनानुगमसम्बन्धी सूत्रमें उपपादपदकी विवक्षाका अभाव है।

नरकगतिसे आनेवाले जीवोंकी अपेक्षा पांच राजु और देवगतिसे आनेवाले जीवोंकी

आगच्छंतेहि छ रज्जू फोसिदा त्ति एक्कारह चोद्दसभागा फोसणखेत्तं होदि ।

सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १०६ ॥

एदस्स सुत्तस्स परूवणा खेत्तभंगो, वट्टमाणकालविवक्खादो ।

अट्ठ चोद्दसभागा वा देसूणा फोसिदा ॥ १०७ ॥

सत्थाणत्थेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो, तीदकालविवक्खादो । विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्विय-मारणंतियपरिणदेहि अट्ठ चोद्दसभागा देसूणा फोसिदा । णवरि सम्मामिच्छाइट्ठीणं मारणंतियं णत्थि । उववादपरिणदेहि छ चोद्दसभागा देसूणा फोसिदा । णवरि सम्मामिच्छादिट्ठीणं उववादो णत्थि । इत्थिवेदेसु असंजदसम्मादिट्ठीणं उववादो णत्थि ।

संजदासंजदेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो[1] ॥ १०८ ॥

अपेक्षा छह राजु स्पर्श किये हैं। इस प्रकार ग्यारह बटे चौदह ($\frac{११}{१४}$) भाग उपपादका स्पर्शनक्षेत्र है ।

स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी सम्यग्मिथ्यादृष्टि तथा असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १०६ ॥

वर्तमानकालकी विवक्षा होनेसे इस सूत्रकी प्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान जानना चाहिए ।

उक्त जीवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ १०७ ॥

स्वस्थानस्थ स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी तृतीय व चतुर्थ गुणस्थानवर्ती जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और मनुष्यलोकसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है; क्योंकि, यहां पर अतीतकालकी विवक्षा की गई है । विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक और मारणान्तिकपदपरिणत उक्त जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह ($\frac{८}{१४}$) भाग स्पर्श किये हैं । विशेष बात यह है कि सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके मारणान्तिकसमुद्घातपद नहीं होता है । उपपादपदपरिणत उक्त जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह ($\frac{६}{१४}$) भाग स्पर्श किये हैं । विशेषतः यह है कि सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके उपपादपद नहीं होता है । स्त्रीवेदी जीवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंका उपपाद नहीं होता है ।

स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी संयतासंयत जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १०८ ॥

---

१ असंयतसम्यग्दृष्टिभिः संयतासंयतैर्लोकस्यासंख्येयभागः षट् चतुर्दशभागा वा देशोनाः । स. सि. १, ८.

एदस्स सुत्तस्स परूवणा खेत्तभंगो, विवक्खियवट्टमाणकालत्तादो ।

छ चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ १०९ ॥

सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियपरिणदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो, विवक्खिदातीदकालत्तादो । मारणंतियपरिणदेहि छ चोद्दसभागा देसूणा फोसिदा, अच्चुदकप्पादो उवरि तिरिक्खसंजदासंजदाणमुववादाभावा ।

पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अणियट्टिउवसामग-खवएहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो[1] ॥ ११० ॥

एदस्स सुत्तस्स वट्टमाणपरूवणा खेत्तभंगा । अदीदकाले एदेहि सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियपरिणदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागो फोसिदो । पमत्तसंजदे तेजाहारपदाणं पि एवं चेव

वर्तमानकालकी विवक्षा होनेसे इस सूत्रकी स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान जानना चाहिए ।

स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी संयतासंयत जीवोंने अतीत और अनागतकालकी विवक्षासे कुछ कम छह बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ १०९ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकपदपरिणत स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी संयतासंयत जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है; क्योंकि, यहांपर अतीतकालकी विवक्षा की गई है । मारणान्तिकपदपरिणत उक्त जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह ($\frac{६}{१४}$) भाग स्पर्श किये हैं, क्योंकि, अच्युतकल्पसे ऊपर तिर्यंच संयतासंयत जीवोंका उपपाद नहीं होता है ।

स्त्रीवेदी और पुरुषवेदियोंमें प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण उपशामक और क्षपक गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ११० ॥

इस सूत्रकी वर्तमानकालिक स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है । अतीतकालमें स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकसमुद्घातपरिणत इन्हीं उक्त जीवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मनुष्यक्षेत्रका संख्यातवां भाग स्पर्श किया है । प्रमत्तसंयत गुणस्थानमें तैजससमुद्घात और आहारकसमुद्घात, इन दोनों ही पदोंमें इसी प्रकारसे स्पर्शनक्षेत्र कहना चाहिए । विशेष बात यह है कि स्त्रीवेदमें

१ प्रमत्ताद्यनिवृत्तिबादरान्तानां सामान्योक्तं स्पर्शनम् । स. सि. १, ८.

वत्तव्वं । णवरि इत्थिवेदे तेजाहारं णत्थि । मारणंतिय-परिणदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो ।

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

णउंसयवेदएसु मिच्छादिट्ठी ओघं' ॥ १११ ॥

सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय-मारणंतिय-उववादपरिणदणवुंसयवेदमिच्छादिट्ठीहि तिसु वि कालेसु जेण सव्वलोगो फोसिदो; विहारपरिणदेहि तिसु वि कालेसु तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो त्ति; तेण ओघत्तं जुज्जदे । किंतु वेउव्वियपदस्स ओघभंगो ण होदि, तत्थ वेउव्वियपदं वट्टमाणकाले तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागमेत्तमदीदकाले उभयत्थ वि अट्ठ पंच चोद्दसभागा त्ति ? ण, पदविसेसविवक्खाभावेण ओघणिद्देसस्स विरोहाभावा ।

सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ११२ ॥

तैजस और आहारकसमुद्घात, ये दोनों पद नहीं होते हैं । मारणान्तिकपदपरिणत उक्त जीवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग, और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है ।

नपुंसकवेदी जीवोंमें मिथ्यादृष्टी जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान सर्वलोक है ॥ १११ ॥

शंका- स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, कषाय, मारणान्तिक और उपपाद, इन पदोंसे परिणत नपुंसकवेदी मिथ्यादृष्टि जीवोंने तीनों ही कालोंमें चूंकि सर्वलोक स्पर्श किया है; तथा विहारवत्स्वस्थानपदपरिणत उक्त जीवोंने तीनों ही कालोंमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है; इसलिए सूत्रमें कहा गया ओघपना घटित हो जाता है । किन्तु वैक्रियिकपदका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान घटित नहीं होता है, क्योंकि, वहां पर, अर्थात ओघप्ररूपणामें (देखो पृ. १४८), वैक्रियिकपदका वर्तमानकालमें तिर्यग्लोकका संख्यातवां भागमात्र है और यहांपर घनतिर्यग्लोकका असंख्यातवां भाग है । अतीतकालमें दोनों ही स्थलोंपर, अर्थात ओघप्ररूपणामें और आदेशप्ररूपणाके अन्तर्गत, वेदप्ररूपणामें आठ बटे चौदह ($\frac{८}{१४}$) तथा पांच बटे चौदह ($\frac{५}{१४}$) भागप्रमाण स्पर्शनक्षेत्र कहा है ?

समाधान- नहीं, क्योंकि, पदविशेषकी विवक्षाका अभाव होनेसे सूत्रमें ओघपदका निर्देश विरोधको प्राप्त नहीं होता है ।

नपुंसकवेदी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ११२ ॥

१ नपुंसकवेदेषु मिथ्यादृष्टीनां सासादनसम्यग्दृष्टीनां च सामान्योक्तं स्पर्शनम् । स. सि. १, ८.

एवस्स वट्टमाणपरूवणा खेत्तभंगो ।

बारह चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ ११३ ॥

सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियपरिणदेहि णवुंसय-सासणेहि तीदाणागदकालेसु तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो, पहाणीकदतिरिक्खसासण-रासित्तादो । उववादपरिणदेहि एक्कारह चोद्दसभागा देसूणा फोसिदा, णवुंसगवेद-तिरिक्खसासणेसुप्पज्जमाणदेव-णेरइयाणं छ-पंचरज्जुबाहल्लतिरियपदरफोसणो-वलंभादो । मारणंतियपरिणदेहि बारह चोद्दसभागा फोसिदा, णेरइय-तिरिक्खाणं पंच-सत्तरज्जुबाहल्लरज्जुपदरफोसणोवलंभादो ।

सम्मामिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ११४ ॥

एदस्स सुत्तस्स वट्टमाणपरूवणा खेत्तभंगो । सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियपरिणदेहि णवुंसयवेदसम्मामिच्छादिट्ठीहि तीदे काले तिण्हं

इस सूत्रकी वर्तमानकालिक स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है ।

नपुंसकवेदी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने अतीत और अनागतकालकी अपेक्षा कुछ कम बारह बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ ११३ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकपदपरिणत नपुंसकवेदी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने अतीत और अनागतकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है, क्योंकि, यहांपर तिर्यंच सासादन जीवराशिकी प्रधानता है । उपपादपदपरिणत उक्त जीवोंने कुछ कम ग्यारह बटे चौदह ($\frac{११}{१४}$) भाग स्पर्श किये हैं, क्योंकि, नपुंसकवेदी तिर्यंच सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंमें उत्पन्न होनेवाले देवोंकी अपेक्षा छह राजु और नारकियोंकी अपेक्षा पांच राजु, इसप्रकार मिलकर ग्यारह राजु बाहल्यवाले तिर्यक्प्रतरप्रमाण स्पर्शनक्षेत्र पाया जाता है । मारणान्तिकपदपरिणत उक्त जीवोंने बारह बटे चौदह ($\frac{१२}{१४}$) भाग स्पर्श किये हैं; क्योंकि, नारकियोंके पांच राजु और तिर्यंचोंके सात राजु इसप्रकार बारह राजु बाहल्यवाला राजुप्रतरप्रमाण स्पर्शनक्षेत्र पाया जाता है ।

नपुंसकवेदी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ११४ ॥

इस सूत्रकी वर्तमानकालिक स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रके समान है । स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकपदपरिणत नपुंसकवेदी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका

१ सम्यग्मिथ्यादृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः स्पृष्टः । स. सि. १, ८.

लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो, तिरियरासिस्स पाधण्णादो । मारणंतिय-उववादा णत्थि ।

असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजदेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ११५ ॥

Sohanlal Jain Dharma Pracharak Samiti Amritsar

एदस्स सुत्तस्स वट्टमाणपरूवणा खेत्तभंगा ।

छ चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ ११६ ॥

सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियपरिणदेहि णवुंसगवेद-असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो । एसो 'वा' सद्दट्ठो । मारणंतिय-परिणदेहि छ चोद्दसभागा देसूणा फोसिदा, अच्चुदकप्पादो उवरि तिरिक्खासंजद-सम्माइट्ठि-संजदासंजदाणं गमणाभावा । उववादपदं णत्थि । णवरि असंजदसम्मा-दिट्ठीहि उववादपरिणदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो ।

पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति ओघं ॥ ११७ ॥

संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है; क्योंकि, यहांपर तिर्यंचराशिकी प्रधानता है । यहांपर मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद, ये दो पद नहीं होते हैं ।

नपुंसकवेदी असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ११५ ॥

इस सूत्रकी वर्तमानकालिक स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है ।

उक्त जीवोंने अतीत और अनागतकालकी अपेक्षा कुछ कम छह बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ ११६ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकपदपरिणत नपुंसकवेदी असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । यह 'वा' शब्दका अर्थ है । मारणान्तिकपदपरिणत उक्त जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह ($\frac{६}{१४}$) भाग स्पर्श किये हैं; क्योंकि, अच्युतकल्पसे ऊपर असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत तिर्यंचोंके गमनका अभाव है । यहांपर उपपादपद नहीं होता है । विशेष बात यह है कि उपपादपदपरिणत असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है ।

उक्त नपुंसकवेदी जीवोंमें प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान लोकका असंख्यातवां भाग है ॥ ११७ ॥

पमत्ते तेजाहाराभावादो ओवत्तं ण जुज्जदे ? ण, सुत्ते पदविवक्खाए विणा सामण्णणिद्देसादो । सेसं चिंतिय वत्तव्वं ।

अपगदवेदएसु अणियट्टिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं' ॥ ११८ ॥

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

एदस्स सुत्तस्स वट्टमाणादीदकालपरूवणा ओघादो ण भिज्जदि त्ति सुत्ते ओघमिदि भणिदं ।

सजोगिकेवली ओघं ॥ ११९ ॥

एगजोगो किण्ण कदो ? ण, पुव्वखेत्तेण सजोगिखेत्तस्स अदीद-वट्टमाण-कालेसु तुल्लत्ताभावादो एगजोगसाणुववत्तीए । एदस्स वि सुत्तस्स अत्थो सुगमो त्ति ण किंचि वुच्चदे ।

एवं वेदमग्गणा समत्ता ।

शंका– प्रमत्त गुणस्थानमें नपुंसकवेदी जीवोंके तैजस और आहारकसमुद्घातका अभाव होनेसे सूत्रोक्त ओघपना नहीं घटित होता है ?

समाधान– नहीं, क्योंकि, सूत्रमें उक्त दोनों पदविशेषोंकी विवक्षाके विना सामान्य निर्देश किया गया है ।

शेष पदोंका स्पर्शनक्षेत्र विचार करके कहना चाहिए ।

अपगतवेदी जीवोंमें अनिवृत्तिकरण गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ ११८ ॥

इस सूत्रकी वर्तमान और अतीतकालसम्बन्धी स्पर्शनप्ररूपणा ओघस्पर्शनप्ररूपणासे भिन्न नहीं है, इसलिए सूत्रमें 'ओघ' यह पद कहा है ।

अपगतवेदी सयोगिकेवली जिनोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ ११९ ॥

शंका– ऊपरके सूत्रका और इस सूत्रका, अर्थात् दोनों सूत्रोंका, एक योग (समास) क्यों नहीं किया ?

समाधान– नहीं, क्योंकि, प्रमत्तसंयतादिके क्षेत्रसे सयोगिकेवलीके क्षेत्रके अतीत और वर्तमानकालमें समानताका अभाव होनेसे एकयोगपना नहीं बन सकता है ।

इस सूत्रका भी अर्थ सुगम है, इसलिए विशेष कुछ भी नहीं कहा जाता है ।

इसप्रकारसे वेदमार्गणा समाप्त हुई ।

---

१ अपगतवेदानां च सामान्योक्तं स्पर्शनम् । स. सि. १, ८.

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

कसायाणुवादेण कोधकसाइ-माणकसाइ-मायकसाइ-लोभकसाइसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति ओघं[1] ॥ १२० ॥

एदस्स सुत्तस्स अदीद-वट्टमाणकाले अस्सिदूण परूवणे कीरमाणे फोसणमूलोघादो ण केण वि अंसेण भिज्जदि त्ति ओघमिदि सुत्तवयणं सुट्ठु संबद्धं । तदो मूलोघपरूवणं सुट्ठु संभालिय एत्थ सिस्साणं पडिबोहो कायव्वो ।

लोहगयविसेसावबोहणट्ठमुत्तरसुत्तं भण्णदे-

णवरि लोभकसाईसु सुहुमसांपराइयउवसमा खवा ओघं ॥१२१॥

कुदो ? ओघसुहुमसांपराइयउवसम-खवगेहिंतो एदेसिं विसेसाभावा । सो च विसेसाभावो सिस्साणं सण्णिवरिसेयव्वो ।

अकसाईसु चदुट्ठाणमोघं[2] ॥ १२२ ॥

कषायमार्गणाके अनुवादसे क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी और लोभकषायी जीवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १२० ॥

इस सूत्रकी अतीत और वर्तमानकालको आश्रय करके प्ररूपणा करनेपर स्पर्शनानुयोगद्वारकी मूल ओघप्ररूपणासे किसी भी अंशसे भेद नहीं है, इसलिए 'ओघ' ऐसा सूत्रवचन सुसम्बद्ध है । अतएव मूल ओघप्ररूपणाको भले प्रकार संभाल करके यहांपर शिष्योंको प्रतिबोधित करना चाहिए ।

अब लोभकषायगत विशेषताके अवबोधनार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं-

विशेष बात यह है कि लोभकषायी जीवोंमें सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानवर्ती उपशामक और क्षपक जीवोंका क्षेत्र ओघके समान है ॥ १२१ ॥

क्योंकि, ओघनिरूपित सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानवर्ती उपशामक और क्षपकोंसे कषायमार्गणाकी दृष्टिसे प्ररूपित इन जीवोंके कोई विशेषता नहीं है । वह विशेषताका अभाव शिष्योंके लिए भलीभांति दिखाना चाहिए ।

अकषायी जीवोंमें उपशान्तकषाय आदि चार गुणस्थानवालोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १२२ ॥

---

१ कषायानुवादेन चतुष्कषायाणां सामान्योक्तं स्पर्शनम् । स. सि. १, ८.

२ अकषायाणां च सामान्योक्तं स्पर्शनम् । स. सि. १, ८.

णामेगदेसग्गहणे वि णामिल्लसंपच्चओ होदि त्ति चदुट्ठाणसद्देण वीदरागाणं चदुण्हं गुणट्ठाणाणं गहणं होदि । तेसिं परूवणा सुगमा, ओघसमाणत्तादो ।

एवं कसायमग्गणा समत्ता ।

णाणाणुवादेण मदिअण्णाणि-सुदअण्णाणीसु मिच्छादिट्ठी ओघं[1] ॥ १२३ ॥

जेण सत्थाण-वेदण-कसाय-मारणंतिय-उववादपरिणदमदि-सुदअण्णाणि-मिच्छादिट्ठीहि तिसु वि कालेसु सव्वलोगो, विहार-वेउव्वियपरिणदेहि अट्ठ चोद्दसभागा फोसिदा, तेण ओघमिदि जुज्जदे ।

सासणसम्मादिट्ठीहि ओघं ॥ १२४ ॥

ओघो जेण अणेयपयारो मिच्छादिट्ठिओघादिभेदेण, तेण कस्सोघस्स एत्थ गहणं होदि त्ति ण णव्वदे ? जेणोघेण सासणसम्मादिट्ठीणं पगरिसेण पच्चासत्ती

'किसी भी नामके एक देशके ग्रहण करनेपर भी नामवालोंका सम्प्रत्यय हो जाता है' इस न्यायके अनुसार 'चतुःस्थान' शब्दसे उपशान्तकषाय आदि वीतरागी चारों गुणस्थानोंका ग्रहण हो जाता है । उनके स्पर्शनकी प्ररूपणा ओघके समान होनेसे सुगम है ।

इसप्रकार कषायमार्गणा समाप्त हुई ।

ज्ञानमार्गणाके अनुवादसे मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १२३ ॥

चूंकि स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, कषाय, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपदपरिणत मत्यज्ञानी तथा श्रुताज्ञानी मिथ्यादृष्टि जीवोंने तीनों ही कालोंमें सर्वलोक स्पर्श किया है, तथा विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकसमुद्घातपदपरिणत जीवोंने आठ बटे चौदह ($\frac{८}{१४}$) भाग स्पर्श किये हैं, इसलिए सूत्रोक्त 'ओघ' यह वचन घटित हो जाता है ।

उक्त दोनों प्रकारके अज्ञानी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १२४ ॥

शंका— चूंकि, मिथ्यादृष्टि-ओघ, सासादनसम्यग्दृष्टि-ओघ, आदिके भेदसे ओघ अनेक प्रकारका है, इसलिए यहांपर किस ओघका ग्रहण किया जा रहा है, यह नहीं जाना जाता है ?

समाधान— जिस ओघके साथ सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंकी प्रकर्षतासे प्रत्यासत्ति है, उसका यहांपर ग्रहण किया जा रहा है ।

१ ज्ञानानुवादेन मत्यज्ञानिश्रुताज्ञानिनो मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टीनां सामान्योक्तं स्पर्शनम् । स. सि. १, ८.

अत्थि, तस्सेत्थ गहणं। केण सह एत्थ पुण पगरिसेण पच्चासत्ती विज्जदे ? सासणसम्मादिट्ठिस्स ओघेण । वट्टमाणकाले चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो सगसव्वपदखेत्तुवलंभादो। तीदे काले वि सत्थाणेण तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागस्स, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागस्स, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणस्स; विहारवदिसत्थाण-वेयण कसाय-वेउव्वियपदेसु अट्ठ चोद्दसभाग-मेत्तस्स, मारणंतिय-उववादपदेसु बारसेक्कारस-चोद्दसभागखेत्तस्सुवलंभादो। एवमत्थ-पदं सव्वत्थ वत्तव्वं।

विभंगणाणीसु मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो[1] ॥ १२५ ॥

एदस्स सुत्तस्स परूवणा खेत्तभंगा, वट्टमाणकालसंबंधित्तादो।

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

अट्ठ चोद्दसभागा देसूणा, सव्वलोगो वा ॥ १२६ ॥

सत्थाणपरिणदेहि विभंगणाणमिच्छादिट्ठीहि तीदे काले तिण्हं लोगाणम-संखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो।

शंका– तो यहांपर किस ओघके साथ प्रकर्षतासे प्रत्यासत्ति है।

समाधान– सासादनगुणस्थानके ओघके साथ प्रकर्षतासे प्रत्यासत्ति है, क्योंकि, वर्तमानकालमें सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा अपने सर्वपदोंका स्पर्शनक्षेत्र पाया जाता है। अतीतकालमें भी स्वस्थानपदकी अपेक्षा सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा; तथा विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकपदोंमें आठ बटे चौदह ($\frac{८}{१४}$) भागमात्र; तथा मारणान्तिक और उपपाद, इन दो पदोंमें क्रमशः बारह बटे चौदह ($\frac{१२}{१४}$) और ग्यारह बटे चौदह ($\frac{११}{१४}$) भागप्रमाण स्पर्शनका क्षेत्र पाया जाता है। यह अर्थपद सर्वत्र कहना चाहिए।

विभंगज्ञानियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १२५ ॥

वर्तमानकालसे सम्बन्ध होनेके कारण इस सूत्रकी स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रके समान है।

विभंगज्ञानी जीवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा आठ बटे चौदह भाग और सर्वलोक स्पर्श किया है ॥ १२६ ॥

स्वस्थानस्वस्थानपदसे परिणत विभंगज्ञानी मिथ्यादृष्टि जीवोंने अतीतकालमें सामान्य-लोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। यह 'वा' शब्दका अर्थ है। विहारवत्स्वस्थान, वेदना,

१ विभंगज्ञानिनां मिथ्यादृष्टीनां लोकस्यासंख्येयभागः अष्टौ चतुर्दशभागा वा देशोनाः, सर्वलोको वा। स. सि. १, ८.

एसो 'वा' सद्दट्ठो। विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियपरिणदेहि अट्ठ चोद्दस-भागा देसूणा; मारणंतियपरिणदेहि सव्वलोगो फोसिदो। सेसं सुगमं।

सासणसम्मादिट्ठी ओघं[1] ॥ १२७ ॥

कुदो ? वट्टमाणकाले सगसव्वपदाणं चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागत्तेण, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणत्तेण; तीदे काले सत्थाणस्स तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदि-भागत्तेण, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागत्तेण, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणत्तेण; विहार-वदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियपदाणं देसूणं-अट्ठ-चोद्दसभागत्तेण मारणंतियस्स देसूण-बारह-चोद्दसभागत्तेण, ओघसासणसम्मादिट्ठिखेत्तेण सरिसत्तुवलंभादो। कथं सारिच्छेएगत्तं ? ण, दव्वट्ठियणयणिबंधणववहाराणं सरिसे वि एगत्तालंबणाणमुवलंभा।

आभिणिबोहिय-सुद-ओधिणाणीसु असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था त्ति ओघं[2] ॥ १२८ ॥

कषाय और वैक्रियिकपदपरिणत उक्त जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह ($\frac{८}{१४}$) भाग स्पर्श किये हैं। मारणान्तिकसमुद्घातपदपरिणत उक्त जीवोंने सर्वलोक स्पर्श किया है। शेष अर्थ सुगम है।

विभंगज्ञानी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १२७ ॥

विभंगज्ञानी सासादनसम्यग्दृष्टियोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान होनेका कारण यह है कि वर्तमानकालमें स्वकीय सर्वपदोंके स्पर्शनक्षेत्रको सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागसे, तथा अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणितक्षेत्रसे; अतीतकालमें स्वस्थानस्वस्थान-पदका सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागसे, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागसे, तथा अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणित क्षेत्रसे, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकसमुद्घात, इन पदोंका कुछ कम आठ बटे चौदह ($\frac{८}{१४}$) भागसे और मारणान्तिकसमुद्घातका कुछ कम बारह बटे चौदह ($\frac{१२}{१४}$) भागकी अपेक्षा, ओघप्ररूपित सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानके स्पर्शन-क्षेत्रके साथ सदृशता पाई जाती है।

शंका– सादृश्यमात्र होनेपर सूत्रोंमें 'ओघ' पद द्वारा एकत्व कैसे कहा जा रहा है ?

समाधान– नहीं, क्योंकि, द्रव्यार्थिकनयनिबन्धनक व्यवहारोंकी सदृशता होनेपर भी एकत्वावलम्बी व्यवहार पाये जाते हैं।

आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १२८ ॥

१ सासादनसम्यग्दृष्टीनां सामान्योक्तं स्पर्शनम्। स. सि. १, ८.

२ आभिनिबोधिकश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलज्ञानिनां सामान्योक्तं स्पर्शनम्। स. सि. १, ८.

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

एदस्स सुत्तस्स अत्थो सुगमो, मूलोघम्हि वित्थरेण परूविदत्तादो। तत्थ णाणविसेसणेण विणा सामण्णेण परूविदमिदि चे ण, सामण्णेण परूविदे वि सा मदि-सुदणाणपरूवणा चेय, मदि-सुदणाणवदिरित्तछदुमत्थसम्मादिट्ठीणमणुवलंभा। ओधिणाणविरहिदसम्मादिट्ठीणमुवलंभा ओधिणाणस्स ओघत्तं ण जुज्जदे चे ण, एत्थ दव्वपमाणेण अहियाराभावा। ओघअसंजदसम्मादिट्ठिआदिफोसणेहि ओधिणाण-असंजदसम्मादिट्ठिआदिफोसणाणं सरिसत्तुवलंभादो ओधिणाणस्स ओघत्तं जुज्जदे चेय।

मणपज्जवणाणीसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव खीणकसायवीदराग-छदुमत्था त्ति ओघं ॥ १२९ ॥

अदीद-वट्टमाणकाले सव्वपदाणमोघसव्वपदेहि सरिसत्तुवलंभादो एत्थ वि ओघत्तं जुज्जदे।

केवलणाणीसु सजोगिकेवली ओघं ॥ १३० ॥

इस सूत्रका अर्थ सुगम है, क्योंकि, मूलोघमें विस्तारसे प्ररूपण किया जा चुका है।

शंका– उस मूलोघ स्पर्शनप्ररूपणामें तो ज्ञानमार्गणारूप विशेषणके विना सामान्यसे ही कथन किया गया है ?

समाधान– नहीं, क्योंकि, सामान्यसे प्ररूपित होनेपर भी वह मतिज्ञान और श्रुतज्ञानकी ही प्ररूपणा है, क्योंकि, मतिज्ञान और श्रुतज्ञानसे रहित छद्मस्थ सम्यग्दृष्टि जीव नहीं पाये जाते हैं।

शंका– अवधिज्ञानसे रहित सम्यग्दृष्टि जीव तो पाये जाते हैं; इसलिए अवधिज्ञानके ओघपना नहीं घटित होता है ?

समाधान– नहीं, क्योंकि, यहां पर द्रव्यप्रमाणके अधिकार या प्रकरणका अभाव है। ओघ असंयतसम्यग्दृष्टि आदि जीवोंके स्पर्शनक्षेत्रके साथ अवधिज्ञानी असंयतसम्यग्दृष्टि आदिकोंके स्पर्शनसम्बन्धी क्षेत्रोंकी सदृशता पाये जानेसे अवधिज्ञानके ओघपना घटित हो ही जाता है।

मनःपर्ययज्ञानियोंमें प्रमत्तसंयतगुणस्थानसे लेकर क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १२९ ॥

अतीत और वर्तमानकालमें मनःपर्ययज्ञानियोंमें संभावित सर्वपदोंके स्पर्शनको ओघवर्णित सर्वपदोंके स्पर्शनके साथ सदृशता पाई जानेसे यहां पर भी ओघपना युक्तिसंगत है।

केवलज्ञानियोंमें सयोगिकेवली जिनोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १३० ॥

एदस्स अत्थो सुगमो, ओघम्हि परूविदत्तादो, केवलणाणवदिरित्तसजोगि-केवलीणमभावा ओघसजोगिपरूवणाणं पडि सामण्णा ।

अजोगिकेवली ओघं ॥ १३१ ॥

एदस्स वि अत्थो सुगमो, ओघम्हि परूविदत्तादो । पुध सुत्तारंभो किमट्ठो ? ण, सजोगि-अजोगिकेवलीणं वट्टमाणादीदकालेण पच्चासत्तीए अभावादो एगजोग-त्ताणुववत्तीए

एवं णाणमग्गणा समत्ता ।

संजमाणुवादेण संजदेसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं[1] ॥ १३२ ॥

एत्थ ओघपरूवणादो ण को वि[2] भेदो अत्थि, विवक्खिदसंजमसामण्णादो । ण च संजमसामण्णविरहिदा संजदा अत्थि, तेसिमसंजदत्तप्पसंगादो ।

सजोगिकेवली ओघं ॥ १३३ ॥

इस सूत्रका अर्थ सुगम है, क्योंकि, ओघमें प्ररूपण किया जा चुका है । दूसरी बात यह भी है कि केवलज्ञानसे रहित सयोगिकेवलियोंके अभाव होनेसे ओघवर्णित सयोगिजिनोंकी प्ररूपणाओंके प्रति समानता है ।

केवलज्ञानियोंमें अयोगिकेवली जिनोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १३१ ॥

ओघमें प्ररूपित होनेसे इस सूत्रका भी अर्थ सुगम है ।

शंका— तो फिर पृथक् सूत्रका आरंभ किसलिए किया गया है ।

समाधान— नहीं, क्योंकि, सयोगि और अयोगिकेवलियोंके वर्तमान और अतीत-कालके साथ प्रत्यासत्तिका अभाव होनेसे एक योगपना बन नहीं सकता था, अतः पृथक् सूत्रारंभ किया गया है ।

इसप्रकार ज्ञानमार्गणा समाप्त हुई ।

संयममार्गणाके अनुवादसे संयतोंमें प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १३२ ॥

यहांपर ओघप्ररूपणासे कोई भी भेद नहीं है, क्योंकि, संयमसामान्यकी विवक्षा है और संयमसामान्यसे रहित संयत होते नहीं हैं । यदि संयमके विना भी संयमी होने लगें, तो फिर असंयतपनेका प्रसंग प्राप्त हो जायगा ।

संयतोंमें सयोगिकेवलीका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १३३ ॥

---

१ संयमानुवादेन संयतानां सर्वेषां × × सामान्योक्तं स्पर्शनम् । स. सि. १, ८.

२ प्रतिषु 'को त्थि' म प्रतौ 'को छि' इति पाठः ।

पुध सुत्तारंभो किमट्ठो ? ण, पुव्विल्लेहि सह फोसणेण पच्चासत्तिअभावप्पदंसणफलत्तादो । सेसं सुगमं ।

सामाइयच्छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदेसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति ओघं ॥ १३४ ॥

एवं पि सुत्तं सुगममिदि ण एत्थ किंचि वत्तव्वमत्थि ।

परिहारसुद्धिसंजदेसु पमत्त-अपमत्तसंजदेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १३५ ॥

एदस्स वट्टमाणपरूवणा खेत्तभंगा । सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियपरिणदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागो; मारणंतियपरिणदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणो तीदे काले फोसिदो । पमत्ते तेजाहारं णत्थि, लद्धीए उवरि लद्धीणमभावा ।

शंका— तो फिर पृथक् सूत्रका आरंभ किसलिए किया गया है ।

समाधान— नहीं, क्योंकि, पूर्वोक्त जीवोंके स्पर्शनके साथ सयोगिकेवलीके स्पर्शनसे प्रत्यासत्तिके अभावका प्रदर्शन करना ही पृथक् सूत्रका फल है ।

शेष अर्थ सुगम है ।

सामायिक और छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयतोंमें प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १३४ ॥

यह सूत्र भी सुगम है, इसलिए यहांपर कुछ भी वक्तव्य नहीं है ।

परिहारविशुद्धिसंयतोंमें प्रमत्त और अप्रमत्तसंयतोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १३५ ॥

इस सूत्रकी वर्तमानकालिक स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है । स्वस्थान-स्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकपदपरिणत उक्त जीवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मनुष्यक्षेत्रका संख्यातवां भाग; तथा मारणान्तिक-पदपरिणत उक्त जीवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मनुष्यक्षेत्रसे असंख्यातगुणा क्षेत्र अतीतकालमें स्पर्श किया है । विशेष बात यह है कि प्रमत्तगुणस्थानमें तैजससमुद्घात और आहारकसमुद्घात, ये दो पद नहीं होते हैं, क्योंकि, लब्धिके ऊपर दूसरी लब्धियां नहीं होती हैं ।

सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदेसु सुहुमसांपराइय-उवसमा खवा ओघं ॥ १३६ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो सुगमो, ओघम्हि परूविदत्तादो ।

जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदेसु चदुट्ठाणी ओघं ॥ १३७ ॥

चदुण्हं ट्ठाणाणं समाहारो चदुट्ठाणी; सा ओघं भवदि, जहाक्खादसंजद-चदुगुणट्ठाणाणं परूवणा ओघसरिसा त्ति जं वुत्तं होदि ।

संजदासंजदा ओघं[1] ॥ १३८ ॥

संजमाणुवादेण संजमासंजम-असंजमाणं कधं गहणं होदि ? ण, एसो संजमाणुवादो ण संजममेव परूवेदि, किंतु संजमं संजमासंजममसंजमं च । तेणेदेसिं पि गहणं होदि ? जदि एवं, तो एदिस्से मग्गणाए संजमाणुवादववदेसो ण, जुज्जदे ? ण, अंब-णिंबवणं व पाधण्णपदमासेज्ज संजमाणुवादववदेसजुत्तीए । सेसं सुगमं ।

आचार्य श्री सुविधिसागरजी महाराज

सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयतोंमें सूक्ष्मसाम्परायिक उपशमक और क्षपक जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १३६ ॥

ओघमें प्ररूपित होनेसे इस सूत्रका अर्थ सुगम है ।

यथाख्यातविहारविशुद्धिसंयतोंमें अन्तिम चार गुणस्थानवर्ती जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १३७ ॥

चार स्थानोंके समाहारको चतुःस्थानी कहते हैं । उन चारों गुणस्थानोंकी स्पर्शन-प्ररूपणा ओघके समान होती है । अर्थात्, यथाख्यात संयमवाले अन्तिम चार गुणस्थानोंकी प्ररूपणा ओघके सदृश होती है, ऐसा कहा गया समझना चाहिए ।

संयतासंयत जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १३८ ॥

शंका– संयममार्गणाके अनुवादसे संयमासंयम और असंयम, इन दोनोंका ग्रहण कैसे होता है ?

समाधान– नहीं. क्योंकि, संयममार्गणाके अनुवादसे न केवल संयमका ही ग्रहण होता है, किन्तु संयम, संयमासंयम और असंयम इन तीनोंका ग्रहण होता है ।

शंका– यदि ऐसा है तो इस मार्गणाको संयमानुवादका नाम देना युक्त नहीं है ?

समाधान– नहीं, क्योंकि, 'आम्रवन' वा 'निम्बवन' के समान प्राधान्यपदका आश्रय लेकर 'संयमानुवादसे' यह व्यपदेश करना युक्तियुक्त हो जाता है ।

शेष सूत्रका अर्थ सुगम ही है ।

१ ×× संयतासंयतानां ×× सामान्योक्तं स्पर्शनम् । स. सि. १, ८.

असंजदेसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठि त्ति ओघं[1] ॥ १३९ ॥

एदं पि सुत्तं सुगमं, ओघम्हि मिच्छादिट्ठिआदिचदुगुणट्ठाणपरूवणाए परूविदत्तादो ।

एवं संजममग्गणा समत्ता ।

दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणीसु मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो[2] ॥ १४० ॥

आचार्यश्री सुविधिसागर जी महाराज

एदं सुत्तं सुगमं खेत्ताणिओगद्दारे उत्तट्ठादो ।

अट्ठ चोद्दसभागा देसूणा सव्वलोगो वा ॥ १४१ ॥

सत्थाणत्थेहि चक्खुदंसणिमिच्छादिट्ठीहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो; विहार-वेदण-कसाय-वेउव्वियपरिणदेहि देसूणट्ठ चोद्दसभागा; मारणंतिय-उववादपरिणदेहि सव्वलोगो फोसिदो ।

असंयत जीवोंमें मिथ्यादृष्टिगुणस्थानसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती असंयत जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १३९ ॥

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि, ओघमें मिथ्यादृष्टि आदि चार गुणस्थानोंकी प्ररूपणाओंका निरूपण किया गया है ।

इस प्रकार संयममार्गणा समाप्त हुई ।

दर्शनमार्गणाके अनुवादसे चक्षुदर्शनियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १४० ॥

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि, क्षेत्रानुयोगद्वारमें इसका अर्थ कहा जा चुका है ।

चक्षुदर्शनी मिथ्यादृष्टि जीवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग और सर्वलोक स्पर्श किया है ॥ १४१ ॥

स्वस्थानस्थ चक्षुदर्शनी मिथ्यादृष्टि जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकपदपरिणत उक्त जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह ($\frac{८}{१४}$) भाग स्पर्श किये हैं । मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपदपरिणत उक्त जीवोंने सर्वलोक स्पर्श किया है ।

---

१ ×× असंयतानां च सामान्योक्तं स्पर्शनम् । स. सि. १, ८.

२ दर्शनानुवादेन चक्षुर्दर्शनिनां मिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकषायान्तानां पंचेन्द्रियवत् । स. सि. १, ८.

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था त्ति ओघं ॥ १४२ ॥

ओघसासणसम्मादिट्ठिआदिसयलगुणट्ठाणेहिंतो चक्खुदंसणिसासणसम्मादिट्ठि-आदिगुणट्ठाणाणं ण को वि[1] भेदो, चक्खुदंसणविरिससासणादिगुणट्ठाणाणमभावादो। तेण ओघमिदि सुट्ठु जुज्जदे।

अचक्खुदंसणीसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदराग-छदुमत्था त्ति ओघं[2] ॥ १४३ ॥

एदं पि सुत्तं सुगमं, ओघम्हि वित्थरेण परूविदत्तादो। ण च ओघपरूविद-मिच्छादिट्ठिआदिखीणकसायपज्जंतगुणट्ठाणाणि अचक्खुदंसणविरहिदाणि अत्थि, तधाणुवलंभादो। तेणेदेसिं पि ओघत्तं जुज्जदे।

ओधिदंसणी ओधिणाणिभंगो[3] ॥ १४४ ॥

सुगममेदं सुत्तं।

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती चक्षुदर्शनी जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १४२ ॥

ओघ सासादनसम्यग्दृष्टि आदि सकल गुणस्थानोंसे चक्षुदर्शनी सासादनसम्यग्दृष्टि आदि समस्त गुणस्थानोंके स्पर्शनसम्बन्धी क्षेत्रोंका कोई भेद नहीं है; क्योंकि, चक्षुदर्शनसे रहित सासादनादि गुणस्थानोंका अभाव है। इसलिए 'ओघ' यह पद भली भांति घटित हो जाता है।

अचक्षुदर्शनियोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती अचक्षुदर्शनी जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १४३ ॥

यह सूत्र भी सुगम है, क्योंकि, ओघप्ररूपणामें विस्तारसे प्ररूपण किया जा चुका है। और ओघप्ररूपित मिथ्यादृष्टि आदि क्षीणकषायपर्यंत गुणस्थान अचक्षुदर्शनसे विरहित हैं नहीं; क्योंकि, ऐसा देखनेमें नहीं आता। इसलिए इन सभी गुणस्थानोंके ओघपना युक्तिसंगत है।

अवधिदर्शनी जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र अवधिज्ञानियोंके समान है ॥ १४४ ॥

यह सूत्र सुगम है।

---

१ प्रतिषु 'कोवि' इति पाठः।

२ अचक्षुर्दर्शनिनां मिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकषायान्तानां × × सामान्योक्तं स्पर्शनम्। स. सि. १, ८.

३ अवधि-केवलदर्शनिनां च सामान्योक्तं स्पर्शनम्। स. सि. १, ८.

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

केवलदंसणी केवलणाणिभंगो ॥ १४५ ॥

एदं पि सुगमं ।

एवं दंसणमग्गणा समत्ता ।

लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय-णीललेस्सिय-काउलेस्सिय-मिच्छादिट्ठी ओघं[1] ॥ १४६ ॥

जेण सत्थाण-वेदण-कसाय-मारणंतिय-उववादपरिणदेहि किण्ह-णील-काउलेस्सियमिच्छादिट्ठीहि तिसु वि कालेसु सव्वलोगो, विहारपरिणदेहि अदीद-वट्टमाणेण तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो; वट्टमाणकाले वेउव्वियपरिणदेहि (तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो,) तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो; अदीदे पंच चोद्दसभागा फोसिदा; तेण ओघत्तं जुज्जदे । विहार-वेउव्वियपदेसु वेसूणट्ठ-चोद्दसभागफोसणखेत्ताभावा ओघत्तं ण घडदे इदि पच्चवट्ठाणं ण कायव्वं, सुत्ते पदविसेसाभावा । सव्वलोगसमेत्तेण सरिसत्तमालोचिय ओघत्तुववत्तीए ।

केवलदर्शनी जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र केवलज्ञानियोंके समान है ॥ १४५ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

इस प्रकार दर्शनमार्गणा समाप्त हुई ।

लेश्यामार्गणाके अनुवादसे कृष्णलेश्या, नीललेश्या और कापोतलेश्यावाले मिथ्यादृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १४६ ॥

चूंकि स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, कषाय, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपदपरिणत कृष्ण, नील और कापोतलेश्यावाले मिथ्यादृष्टि जीवोंने तीनों ही कालोंमें सर्व लोक स्पर्श किया है; विहारवत्स्वस्थानपदपरिणत उक्त जीवोंने अतीत और वर्तमानकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है, तथा वर्तमानकालमें वैक्रियिकपदपरिणत उक्त जीवोंने (सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग,) तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है; तथा अतीतकालमें उक्त जीवोंने पांच बटे चौदह ($\frac{५}{१४}$) भाग स्पर्श किये हैं; इसलिये ओघपना बन जाता है ।

शंका– विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकसमुद्घात, इन दो पदोंमें बेसोन आठ बटे चौदह ($\frac{८}{१४}$) भागप्रमाण स्पर्शनक्षेत्रके अभाव होनेसे ओघपना घटित नहीं होता है ?

समाधान– ऐसी शंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि, सूत्रमें पदविशेषकी विवक्षाका अभाव है । सर्वलोकप्रमाण क्षेत्रकी सदृशताको देखते हुए ओघपना बन जाता है ।

१ लेश्यानुवादेन कृष्णनीलकापोतलेश्यैर्मिथ्यादृष्टिभिः सर्वलोकः स्पृष्टः । स. सि. १, ८. काऊ सव्वं लोयं तिट्ठाणे असुहलेस्साणं । गो. जी. ५४५.

सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो[1] ॥ १४७ ॥

एदस्स सुत्तस्स परूवणा खेत्तभंगो, अल्लीणवट्टमाणत्तादो ।

पंच चत्तारि वे चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ १४८ ॥

सत्थाणसत्थाण-विहार-वेदण-कसाय-वेउव्वियपरिणदेहि किण्ह-णील-काउलेस्सिय-सासणेहि तीदे काले तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । देवे मोत्तूण णेरइय-अपज्जत्तभवणवासिय-वाणवेंतर-जोदिसिय-तिरिक्खेसु[2] चेव एदस्स खेत्तस्सुवलंभादो तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागत्तमुववण्णं । मारणंतिय-उववादपरिणदेहि किण्ह-णील-काउलेस्सिय-सासणेहि जहाकमेण देसूणा पंच चत्तारि वे चोद्दसभागा फोसिदा । णेरइएहिंतो तिरिक्खेसु उप्पज्जमाणसासणे पेक्खिदूण एसा फोसणपरूवणा कदा । देवेहिंतो

उक्त तीनों अशुभलेश्याओंवाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १४७ ॥

वर्तमानकालको व्याप्त करनेसे इस सूत्रकी प्ररूपणा क्षेत्रके समान है ।

आरोन्ती श्री सुधर्मास्वामिनं श्री महावीरा

तीनों अशुभलेश्याओंवाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा कुछ कम पांच बटे चौदह, चार बटे चौदह और दो बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ १३८ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकपदपरिणत कृष्ण, नील और कापोतलेश्यावाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । कल्पवासी देवोंको छोड़कर नारकी तथा अपर्याप्त भवनवासी, वानव्यंतर और ज्योतिष्कदेव तथा तिर्यंचोंमें ही यह उक्त क्षेत्र पाया जानेसे तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका कथन युक्तिसंगत है । मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपदपरिणत छठी पृथिवीके नारकी सासादनसम्यग्दृष्टि कृष्णलेश्यावाले जीवोंने कुछ कम पांच बटे चौदह ($\frac{५}{१४}$) भाग नीललेश्यावाले पांचवीं पृथिवीके नारकी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने कुछ कम चार बटे चौदह ($\frac{४}{१४}$) भाग और कापोतलेश्यावाले तीसरी पृथिवीके नारकी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने कुछ कम दो बटे चौदह ($\frac{२}{१४}$) भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । नारकियोंसे तिर्यंचोंमें उत्पन्न होनेवाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंको देखकर अर्थात् उनकी अपेक्षासे यह स्पर्शनप्ररूपणा की गई है ।

---

१ सासादनसम्यग्दृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः पंच चत्वारो द्वौ चतुर्दशभागा वा देशोनाः । स. सि. १, ८.

२ क प्रतौ ' तिरिय ' इति पाठो नास्ति ।

एइंदिएसु मारणंतियं मेल्लमाणसासणखेत्तं गहिदे पुव्विल्लखेत्तेण सह जहाकमेण बारस-एक्कारस णव-चोद्दसभागमेत्तं किण्ण लब्भदि त्ति उत्ते ण लब्भदि, देवाणमप्पणो आउवचरिमसमओ त्ति पुव्विल्लतेउ-पम्म-सुक्कलेस्साणं विणासाभावा। किण्ह-णील-काउलेस्सियतिरिक्ख-मणुससासणाणमेइंदिएसु मारणंतियं मेल्लमाणाणं सत्त चोद्दसभागा उवरि लब्भंति त्ति हेट्ठिल्लखेत्तेहि सह बारसेक्कारस-णव-चोद्दसभाग-मेत्तखेत्तं किण्ण लब्भदे ? ण, तिरिक्ख-मणुसउवसमसम्माइट्ठीणं उवसमसम्मत्त-कालब्भंतरे सुट्ठु संकिलिट्ठाणं पि संजदासंजदाणं व किण्ह-णील-काउलेस्साओ ण होंति त्ति गुरूवदेसंतरजाणावणट्ठं तहाणुवदेसादो। देवेसु तिरिक्खगईए उववण्णेसु उववादस्स एक्कारस-दसअट्ठ चोद्दसभागमेत्तखेत्तं किण्ण लब्भदे ? ण, किण्ह-णील

शंका– देवोंसे एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिकसमुद्घात करनेवाले जीवोंके सासादन गुणस्थानसम्बन्धी क्षेत्रके ग्रहण करनेपर पूर्वोक्त क्षेत्रके साथ यथाक्रमसे बारह बटे चौदह ($\frac{12}{14}$) भाग, ग्यारह बटे चौदह ($\frac{11}{14}$) भाग और नौ बटे चौदह ($\frac{9}{14}$) भागप्रमाण स्पर्शनक्षेत्र क्यों नहीं पाया जाता है ?

समाधान– ऐसी शंका पर उत्तर देते हैं कि नहीं पाया जाता है, क्योंकि, देवोंके अपनी आयुके अन्तिम समय पर्यन्त अपनी पूर्ववर्ती तेज, पद्म और शुक्ल लेश्याओंका विनाश नहीं होता है, इसलिए उक्त प्रकारका क्षेत्र नहीं कहा गया।

शंका– कृष्ण, नील और कापोत लेश्यावाले तथा एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिकसमुद्घात करनेवाले सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यंच और मनुष्योंके सात बटे चौदह ($\frac{7}{14}$) भाग तो ऊपर स्पर्शनक्षेत्र पाया जाता है, इसलिए उसे अधस्तन उक्त क्षेत्रोंके साथ ग्रहण करने पर बारह बटे चौदह ($\frac{12}{14}$) भाग, ग्यारह बटे चौदह ($\frac{11}{14}$) भाग और नौ बटे चौदह ($\frac{9}{14}$) भागप्रमाण क्षेत्र क्यों नहीं पाया जाता है ?

समाधान– नहीं, क्योंकि, उपशमसम्यक्त्वकालके भीतर अत्यन्त संक्लेशको प्राप्त हुई भी तिर्यंच और मनुष्य उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंके संयतासंयतोंके समान कृष्ण, नील और कापोत लेश्याएं नहीं होती हैं, इस प्रकारका एक दूसरा गुरुका उपदेश है, यह बात बतलानेके लिए वैसा उपदेश नहीं दिया है।

शंका– तिर्यंचगतिमें उत्पन्न होनेवाले देवोंमें उपपादपदका ग्यारह बटे चौदह, दश बटे चौदह और आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्र क्यों नहीं पाया जाता है ?

समाधान– नहीं, क्योंकि, कृष्ण, नील और कापोत लेश्याओंके साथ रहकर पीछे उन्हींके साथ उपपाद नहीं पाया जाता है।

विशेषार्थ– भवनत्रिकोंमें तीनों अशुभलेश्याएं अपर्याप्तकालमें ही होती हैं। पीछे

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

काउलेस्साहि सह अच्छिऊण पच्छा ताहि सह उववादाभावादो। ण च लेस्सा उववादसमाणकालभाविणी मग्गणा होइ आधेयपुव्वुत्तरकालेसु असंतीए आहार-त्तविरोहादो। तम्हा सुत्तुत्तमेव होदु, णिरवज्जत्तादो।

सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो[1] ॥ १४९ ॥

एदस्स वट्टमाणपरूवणा खेत्तभंगो। सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-

---

नियमसे शुभलेश्या हो जाती है। अतएव कृष्ण, नील और कापोतलेश्याके साथ रहनेवाले भवनत्रिक देवोंके उपपादका अभाव बतलाया, क्योंकि, देवोंका मरण न तो अपर्याप्तकालमें ही होता है और न पूरी आयुके समाप्त हुए विना हो। अतः यह कहना युक्तिसंगत ही है कि कृष्ण, नील और कापोत लेश्याओंके साथ रहकर पीछे उपपाद नहीं होता है।

दूसरी बात यह है कि लेश्यामार्गणा उपपाद-समान-कालभाविनी नहीं है, क्योंकि, आधेयरूप पूर्व और उत्तर कालोंमें अविद्यमान लेश्याके आधारपनेका विरोध है। इसलिए सूत्रोक्त ही स्पर्शनक्षेत्रका प्रमाण होना चाहिए, क्योंकि, वही प्रमाण निर्दोष पाया जाता है।

विशेषार्थ— यहांपर लेश्यामार्गणा उपपाद-समानकाल-भाविनी नहीं है, ऐसा कहनेका यह अभिप्राय है कि जिस प्रकारसे विवक्षित जीवके पूर्व भवको छोड़नेके पश्चात् उत्तर भवको ग्रहण करनेके साथ ही गति, योग, आहार आदि यथासंभव कितनी ही मार्गणाएं परिवर्तित हो जाती हैं, उस प्रकार लेश्यामार्गणा परिवर्तित नहीं होती है। इसका कारण यह है कि जीव जिस लेश्यासे मरण करता है उसी लेश्यासे ही उत्पन्न होता है, ऐसा एकान्त नियम है। और इसी नियमके कारण भवनत्रिक देवोंके अपर्याप्तकालमें तीन अशुभ लेश्याओंके अस्तित्व माना गया है। इसी बातको सिद्ध करनेके लिए जो हेतु दिया गया है, उसका भी अभिप्राय यही है कि यदि उपपाद होनेके साथ ही लेश्याके परिवर्तनका नियम अवश्यंभावी होता, तो मरण करनेके समय जो लेश्या है उसके उत्तर भवग्रहण करनेके प्रथम समयमें परिवर्तित हो जानेसे आधारआधेयपना बन जाता, अर्थात्, मरणकाल और उपपादकालरूप पूर्वोत्तरकाल आधेय बन जाते और उनमें होनेवाली लेश्या आधार बन जाती। किन्तु भवपरिवर्तनके हो जाने पर भी लेश्यापरिवर्तन होता नहीं है; इसलिए कहा गया है कि आधेयरूप पूर्व और उत्तर कालोंमें विवक्षित लेश्याका परिवर्तन न होनेसे आधारपना नहीं बन सकता है।

उक्त तीनों अशुभलेश्यावाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १४९ ॥

इस सूत्रकी वर्तमानकालिक स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है। स्वस्थान-स्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकपदपरिणत तीनों अशुभलेश्यावाले

---

१ सम्यङ्मिथ्यादृष्टयसंयतसम्यग्दृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः। स. सि. १. ८.

कसाय-वेउव्वियपरिणदेहि तिलेस्सियसम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, (तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो,) अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो। कुदो ? पहाणीकयतिरिक्खरासित्तादो। मारणंतिय-उववादपरिणदेहि किण्ह-णील[1]लेस्सियअसंजदसम्मादिट्ठीहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो, छट्ठ-पंचमपुढवीहिंतो माणुसेसु आगच्छमाणअसंजदसम्मादिट्ठीणं पणदालीसजोयणलक्खविक्खंभपंच-चत्तारिरज्जुआयदखेत्तुवलंभादो। मारणंतिय-उववादपरिणदकाउलेस्सियअसंजदसम्मादिट्ठीहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो, काउलेस्साए सह असंखेज्जेसु दीवेसु [illegible] ।

तेउलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो[2] ॥ १५० ॥

एदस्स परूवणा खेत्तभंगा, अल्लीणवट्टमाणत्तादो।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, (तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग,) और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है, क्योंकि, यहांपर तिर्यंच राशिकी प्रधानता है। मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपदपरिणत कृष्ण और नीललेश्यावाले असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है, क्योंकि, छठी और पांचवी पृथिवीसे मनुष्योंमें आनेवाले क्रमशः कृष्ण और नील लेश्याके धारक असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंके पैंतालीस लाख योजनप्रमाण विष्कम्भवाला, छठी पृथिवीकी अपेक्षा पांच राजु और पांचवी पृथिवीकी अपेक्षा चार राजु आयत (लम्बा) स्पर्शनक्षेत्र पाया जाता है। मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपदपरिणत कापोतलेश्यावाले असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। इसका कारण यह है कि यहांपर कापोतलेश्याके साथ असंख्यात द्वीपोंमें और प्रथम पृथिवीमें उत्पन्न होनेवाले क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंसे स्पर्शित क्षेत्रका ग्रहण किया गया है।

तेजोलेश्यावालोंमें मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १५० ॥

वर्तमानकालको ग्रहण करनेसे इस सूत्रकी प्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है।

---

१ म. प्रतौ ' णील-काउ ' इति पाठः।

२ तेजोलेश्यायां मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः अष्टौ नव चतुर्दशभागा वा देशोनाः। स. सि. १, ८.

अट्ठ णव चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ १५१ ॥

सत्थाणपदपरिणदेहि तेउलेस्सियमिच्छाविट्ठि-सासणसम्माविट्ठीहि तीदे काले तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो[1]। एसो 'वा' सद्दट्ठो। विहार-वेदण-कसाय-वेउव्विय-परिणदेहि अट्ठ-चोद्दसभागा, मारणंतिय-उववादपरिणदेहि णव-दिवड्ढ-चोद्दसभागा फोसिदा[2]।

सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो[3] ॥ १५२ ॥

एदस्स परूवणा खेत्तभंगा।

अट्ठ चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ १५३ ॥

सत्थाणपरिणदेहि दोगुणट्ठाणजीवेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरिय-

तेजोलेश्यावाले मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह और कुछ कम नौ बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ १५१ ॥

स्वस्थानस्वस्थानपदपरिणत तेजोलेश्यावाले मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। यह 'वा' शब्दका अर्थ है। विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकपदसे परिणत जीवोंने आठ बटे चौदह ($\frac{८}{१४}$) भाग, मारणान्तिकसमुद्घातपरिणत उक्त जीवोंने नौ बटे चौदह ($\frac{९}{१४}$) भाग और उपपादपदपरिणत उन्हीं जीवोंने डेढ़ बटे चौदह ($\frac{३}{२८}$) भाग स्पर्श किया है।

तेजोलेश्यावाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १५२ ॥

इस सूत्रकी प्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है।

उक्त जीवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ १५३ ॥

स्वस्थानपदपरिणत सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि, इन दोनों गुणस्थानवर्ती तेजोलेश्यावाले जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका

१ तेउस्स य सट्ठाणे लोगस्स असंखभागमेत्तु। अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा होंति णियमेण ॥ गो.जी.५४६.

२ एवं तु समुग्घादे णव चोद्दसभागयं च किंचूणं। उववादे पढमपदं दिवड्ढचोद्दस य किंचूणं ॥ गो.जी.५४७.

३ सम्यग्मिथ्यादृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः अष्टौ चतुर्दशभागा वा देशोनाः

लोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो। विहार-वेयण-कसाय-वेउव्विय-मारणंतियपरिणदेहि देसूण-अट्ठ-चोद्दसभागा। उववादपरिणदेहि दिवड्ढ-चोद्दसभागा देसूणा फोसिदा। णवरि सम्मामिच्छादिट्ठिस मारणंतिय-उववादा णत्थि। सणक्कुमार-माहिंदे तेउलेस्सा अत्थि त्ति उववादस्स देसूण-तिण्णि-चोद्दसभागा किण्ण होंति ? ण, सोधम्मीसाणादो संखेज्जाणि चेव जोयणाणि गंतूण सणक्कुमार-माहिंदकप्पारंभो होदूण दिवड्ढरज्जुम्हि परिसमत्तीदो। तस्सुवरिमपेरंते तेउलेस्सिया किण्ण होंति ? ण, तस्स हेट्ठिमविमाणे चेव तेउलेस्सासंभवोवदेसा।

संजदासंजदेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदि-भागो[1] ॥ १५४ ॥

एवस्स परूवणा खेत्तभंगा, वट्टमाणकालसंबंधादो।

दिवड्ढ चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ १५५ ॥

संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक और मारणान्तिकपदपरिणत उक्त जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह ($\frac{८}{१४}$) भाग स्पर्श किये हैं। उपपादपदपरिणत उक्त जीवोंने कुछ कम डेढ़ बटे चौदह ($\frac{३}{१४}$) भाग स्पर्श किये हैं। विशेष बात यह है कि सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपद, ये दो पद नहीं होते हैं।

शंका— सनत्कुमार और माहेन्द्रकल्पमें तेजोलेश्या होती है, इसलिए उपपादका देशोन तीन बटे चौदह ($\frac{३}{१४}$) भागप्रमाण स्पर्शनक्षेत्र क्यों नहीं होता है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, सौधर्म और ईशानकल्पसे संख्यात योजन ही ऊपर जाकर सानत्कुमार और माहेन्द्रकल्प प्रारम्भ होकर डेढ़ राजूपर समाप्त हो जाता है।

शंका— सानत्कुमार-माहेन्द्रकल्पके उपरिम विमानके अन्ततक तेजोलेश्यावाले जीव क्यों नहीं होते हैं ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, उस कल्पके अवस्तन विमानोंमें ही तेजोलेश्याके होनेका उपदेश पाया जाता है।

तेजोलेश्यावाले संयतासंयत जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १५४ ॥

वर्तमानकालसे सम्बद्ध होनेसे इस सूत्रकी प्ररूपणा क्षेत्रके समान है।

तेजोलेश्यावाले संयतासंयत जीवोंने कुछ कम डेढ़ बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ १५५ ॥

---

१ संयतासंयतैर्लोकस्यासंख्येयभागः अध्यर्धचतुर्दशभागा वा देशोनाः। स. सि. १, ८.

सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियपरिणदतेउलेस्सिय-संजदासंजदेहि तीदे काले तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदि-भागो, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो। मारणंतियपरिणदेहि दिवड्ड-चोद्दसभागा फोसिदा। उववादो णत्थि।

पमत्त-अप्पमत्तसंजदा ओघं[1] ॥ १५६ ॥

एदं सुत्तं सुगमं, ओघम्हि परूविदत्तादो।

पम्मलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो[2] ॥ १५७ ॥

सुगममेवं सुत्तं, खेत्तम्हि उत्तत्थादो।

अट्ठ चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ १५८ ॥

सत्थाणपरिणदपम्मलेस्सियमिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छाइट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीहि तीदे काले तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकपदपरिणत तेजोलेश्यावाले संयतासंयत जीवोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। मारणान्तिकसमुद्घातपदपरिणत उक्त जीवोंने (कुछ कम) डेढ़ बटे चौदह ($\frac{१}{१४}$) भाग स्पर्श किये हैं। इन जीवोंके उपपादपद नहीं होता है।

तेजोलेश्यावाले प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १५६ ॥

ओघमें प्ररूपित होनेसे यह सूत्र सुगम है।

पद्मलेश्यावालोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १५७ ॥

क्षेत्रप्ररूपणामें कहे जानेके कारण यह सूत्र सुगम है।

पद्मलेश्यावाले उक्त गुणस्थानवर्ती जीवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ १५८ ॥

स्वस्थानपदपरिणत पद्मलेश्यावाले मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग,

---

१ प्रमत्ताप्रमत्तैर्लोकस्यासंख्येयभागः। स. सि. १, ८.

२ पद्मलेश्यैर्मिथ्यादृष्ट्यादिभिरसंयतसम्यग्दृष्ट्यन्तैर्लोकस्यासंख्येयभागः अष्टौ चतुर्दशभागा वा देशोनाः स. सि. १, ८.

संखेज्जदिभागो, अट्ठाइज्जादो असंखेज्जगुणो; विहार-वेदण-कसाय-वेउव्विय-मारणंतियपरिणदेहि देसूणट्ठ चोद्दसभागा फोसिदा[1]। उववादपरिणदेहि देसूणपंच चोद्दसभागा फोसिदा[2]। णवरि सम्मामिच्छादिट्ठिस्स मारणंतियउववादा णत्थि।

संजदासंजदेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदि-भागो[3] ॥ १५९ ॥

एदं पि सुत्तं सुगमं, खेत्ताणिओगद्दारे उत्तत्थादो। उत्तमेव किमिदि पुणो उच्चदे ? ण, मंदबुद्धिसिस्सस्स संभालणट्ठं तप्परूवणादो।

पंच चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ १६० ॥

सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियपरिणदेहि पम्म-लेस्सियसंजदासंजदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्ठाइज्जादो असंखेज्जगुणो; मारणंतियपरिणदेहि देसूणा पंच चोद्दसभागा फोसिदा।

तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। विहार-वत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक और मारणान्तिकपदपरिणत पद्मलेश्यावाले उक्त जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह ($\frac{८}{१४}$) भाग स्पर्श किये हैं। उपपादपदपरिणत उक्त जीवोंने कुछ कम पांच बटे चौदह ($\frac{५}{१४}$) भाग स्पर्श किये हैं। विशेष बात यह है कि सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद, ये दो पद नहीं होते हैं।

पद्मलेश्यावाले संयतासंयत जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १५९ ॥

यह सूत्र भी सुगम है, क्योंकि, क्षेत्रानुयोगद्वारमें इसका अर्थ कहा जा चुका है।

शंका— पहले कही गई बात ही पुनः क्यों कही जाती है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, मंदबुद्धि शिष्योंके संभालनेके लिए पुनः उसका प्ररूपण किया गया है।

पद्मलेश्यावाले संयतासंयत जीवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा कुछ कम पांच बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ १६० ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकपदपरिणत पद्मलेश्यावाले संयतासंयतोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। मारणान्तिकसमुद्घात-पदपरिणत उक्त जीवोंने कुछ कम पांच बटे चौदह ($\frac{५}{१४}$) भाग स्पर्श किये हैं।

१ पम्मस्स य सट्ठाणसमुग्घाददुगेसु होदि पढमपदं। अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा होंति णियमेण ॥ गो. जी. ५४८.

२ उववादे पढमपदं पण चोद्दस भागयं च देसूणं। गो. जी. ५४९.

३ संयतासंयतैर्लोकस्यासंख्येयभागः पंच चतुर्दशभागा वा देशोनाः। स. सि. १, ८.

पमत्त-अप्पत्तसंजदा ओघं[1] ॥ १६१ ॥

सुगममेदं सुत्तं ।

सुक्कलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो[2] ॥ १६२ ॥

एदं सुत्तं सुगमं, खेत्ताणिओगद्दारे उत्तत्थादो ।

छ चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ १६३ ॥

सत्थाणपरिणदसुक्कलेस्सियमिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो; विहार-वेदण-कसाय-वेउव्विय-मारणंतियपरिणदेहि छ चोद्दसभागा देसूणा फोसिदा[3] । उववादपरिणदसुक्कलेस्सियमिच्छादिट्ठीहि सासण-सम्मादिट्ठीहि य चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो

पद्मलेश्यावाले प्रमत्त और अप्रमत्तसंयत जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १६१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

शुक्ललेश्यावालोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर संयतासंयत गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १६२ ॥

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि, क्षेत्रानुयोगद्वारमें इसका अर्थ कह दिया गया है ।

शुक्ललेश्यावाले उक्त जीवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा कुछ कम छह बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ १६३ ॥

स्वस्थानपदपरिणत शुक्ललेश्यावाले मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । विहार-वत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक और मारणान्तिकपदपरिणत जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह ($\frac{६}{१४}$) भाग स्पर्श किये हैं । उपपादपदपरिणत शुक्ललेश्यावाले मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । इसका कारण यह है कि तिर्यंच मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका शुक्ललेश्याके साथ देवोंमें उपपाद नहीं होता है । पैंतालीस

१ प्रमत्ताप्रमत्तौ लोकस्यासंख्येयभागः । स. सि.

२ शुक्ललेश्यैर्मिथ्यादृष्ट्यादिसंयतासंयतान्तैर्लोकस्यासंख्येयभागः षट् चतुर्दशभागा वा देशोनाः । स. सि. १, ८.

३ सुक्कस्स य तिट्ठाणे पढमो छप्पण्णदसा होणा ॥ गो. जी. ५४९.

फोसिदो; तिरिक्खमिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठीणं सुक्कलेस्साए सह देवेसु उववादाभावा। पणवालीसलक्खजोयणविक्खंभेण पंचरज्जुआयामेण ट्ठिदखेत्तमाऊरिय सुक्कलेस्सियमिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठिमणुसाणं चेव सुक्कलेस्सियदेवेसुववादुवलंभा। ते तत्थ ण उप्पज्जंति त्ति कधं णव्वदे? पंच चोद्दसभागुवदेसाभावादो। उववादपरिणदअसंजदसम्मादिट्ठीहि छ चोद्दसभागा फोसिदा, तिरिक्खअसंजदसम्मादिट्ठीणं सुक्कलेस्साए सह देवेसुववादुवलंभा। सत्थाण-विहार-वेदण-कसाय-वेउव्विय-परिणदसुक्कलेस्सियसंजदासंजदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो; मारणंतियपरिणदेहि छ चोद्दसभागा फोसिदा, तिरिक्खसंजदासंजदाणं सुक्कलेस्साए सह अच्चुदकप्पे उववादुवलंभा। सम्मामिच्छादिट्ठिस्स मारणंतिय-उववादा णत्थि।

पमत्तसंजदप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि[1] त्ति ओघं[2] ॥ १६४ ॥

लाख योजन विष्कम्भसे और पांच राजू आयामसे स्थित क्षेत्रको व्याप्त करके शुक्ललेश्यावाले मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि मनुष्योंका ही शुक्ललेश्यावाले देवोंमें उपपाद पाया जाता है।

शंका— शुक्ललेश्यावाले तिर्यंच, शुक्ललेश्यावाले देवोंमें नहीं उत्पन्न होते हैं, यह कैसे जाना?

समाधान— चूंकि, पांच बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शनक्षेत्रके उपदेशका अभाव है, इससे जाना जाता है कि शुक्ललेश्यावाले तिर्यंच जीव मरकर शुक्ललेश्यावाले देवोंमें नहीं उत्पन्न होते हैं।

उपपादपदपरिणत शुक्ललेश्यावाले असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह भाग ($\frac{६}{१४}$) स्पर्श किये हैं, क्योंकि, तिर्यंच असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका शुक्ललेश्याके साथ देवोंमें उपपाद पाया जाता है। स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकपदपरिणत शुक्ललेश्यावाले संयतासंयतोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। मारणान्तिकपदपरिणत उक्त जीवोंने छह बटे चौदह ($\frac{६}{१४}$) भाग स्पर्श किये हैं, क्योंकि, तिर्यंच संयतासंयतोंका शुक्ललेश्याके साथ अच्युतकल्पमें उपपाद पाया जाता है। सम्यग्मिथ्यादृष्टि शुक्ललेश्यावालोंके मारणान्तिक और उपपाद, ये दो पद नहीं होते हैं।

प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती शुक्ललेश्यावाले जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १६४ ॥

१ णवरि समुग्घादम्मि य संखातीदा हवंति भागा वा। सव्वो वा खलु लोगो फासो होदि त्ति णिद्दिट्ठो ॥ गो. जी. ५५० ॥

२ प्रमत्तादिसयोगकेवल्यन्तानां अलेश्यानां च सामान्योक्तं स्पर्शनम्। स. सि. १, ८.

एदं सुत्तं सुगमं, तदो ण किंचि वत्तव्वमत्थि ।

एवं लेस्सामग्गणा समत्ता ।

भवियाणुवादेण भवसिद्धिएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं[1] ॥ १६५ ॥

एदं सुत्तं सुगमं, वट्टमाणादीदकाले अस्सिदूण ओघम्हि परूविदत्तादो ।

अभवसिद्धिएहिं केवडियं खेत्तं फोसिदं, सव्वलोगो[2] ॥ १६६ ॥

सत्थाण-वेदण-कसाय-मारणंतिय-उववादपरिणदेहि तिसु वि कालेसु सव्वलोगो फोसिदो । विहार वेउव्वियपरिणदेहि वट्टमाणकाले तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स वि असंखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो; असंखेज्जरासीसु तेसिमसंखेज्जदिभागमेत्तो तत्थ तत्थ अभव्वरासी त्ति उवदेसादो । अदीदेण अट्ठ चोद्दसभागा फोसिदा ।

एवं भवियमग्गणा समत्ता ।

यह सूत्र सुगम है, इसलिए कुछ भी अन्य वक्तव्य नहीं है ।

इसप्रकार लेश्यामार्गणा समाप्त हुई ।

भव्यमार्गणाके अनुवादसे भव्यसिद्धिक जीवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १६५ ॥

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि, वर्तमान और अतीतकालको आश्रय करके ओघमें इसका प्ररूपण हो चुका है ।

अभव्यसिद्धिक जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? सर्वलोक स्पर्श किया है ॥ १६६ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, कषाय, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपदपरिणत अभव्यसिद्धिक जीवोंने तीनों ही कालोंमें सर्वलोक स्पर्श किया है । विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकपदपरिणत अभव्यसिद्धिक जीवोंने वर्तमानकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका भी असंख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है, क्योंकि, असंख्यात प्रमाणवाली पंचेन्द्रियादि राशियोंमें उन उनके असंख्यातवें भागप्रमाण वहां वहां पर अर्थात् उन उन विवक्षित राशियोंमें अभव्यराशि होती है, इस प्रकार आचार्योंका उपदेश पाया जाता है । उक्त जीवोंने अतीतकालमें आठ बटे चौदह ($\frac{८}{१४}$) भाग स्पर्श किये हैं ।

इसप्रकार भव्यमार्गणा समाप्त हुई ।

---

१ भव्यानुवादेन भव्यानां मिथ्यादृष्ट्याद्ययोगकेवल्यन्तानां सामान्योक्तं स्पर्शनम् । स. सि. १, ८.

२ अभव्यैः सर्वलोकः स्पृष्टः । स. सि. १, ८.

समत्ताणुवादेण सम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं[1] ॥ १६७ ॥

एवं सुत्तं सुगमं, ओघम्हि तिण्णि वि काले अस्सिदूण परूविदत्तादो ।

खइयसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठी ओघं ॥ १६८ ॥

एदस्स वट्टमाणपरूवणा खेत्तभंगा । सत्थाणपदिणदेहि खइयअसंजदसम्मादिट्ठीहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो; विहार-वेदण-कसाय-वेउव्विय-मारणंतियपरिणदेहि अट्ठ चोद्दसभागा फोसिदा । उववादपरिणदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो । तं कधं लब्भदे ? बद्धाउअमणुसखइयसम्मादिट्ठीसु तिरिक्खेसुप्पज्जमाणेसु असंखेज्जदीवेसु अच्छिय सोधम्मीसाणकप्पेसु उप्पज्जमाण-

---

सम्यक्त्वमार्गणाके अनुवादसे सम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १६७ ॥

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि, तीनों ही कालोंका आश्रय करके ओघमें प्ररूपण किया जा चुका है ।

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १६८ ॥

इस सूत्रकी वर्तमानकालिक स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रके समान है । स्वस्थानस्वस्थानपदपरिणत असंयत क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक और मारणान्तिकपदपरिणत उक्त जीवोंने आठ बटे चौदह ($\frac{८}{१४}$) भाग स्पर्श किये हैं । उपपादपदपरिणत असंयत क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा और तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग स्पर्श किया है ।

शंका— उपपादगत असंयत क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागप्रमाण कैसे पाया जाता है ।

समाधान— तिर्यंचोंमें उत्पन्न होनेवाले बद्धायुष्क क्षायिकसम्यग्दृष्टि मनुष्योंके असंख्यात द्वीपोंमें रह करके पुनः मरणकर सौधर्म और ईशानकल्पोंमें उत्पन्न होनेवाले

---

१ सम्यक्त्वानुवादेन क्षायिकसम्यग्दृष्टीनामसंयतसम्यग्दृष्ट्यादयोऽयोगकेवल्यन्तानां सामान्योक्तम् । किन्तु संयतासंयतानां लोकस्यासंख्येयभागः । स. सि. १, ८.

खइयसम्मादिट्ठिछुत्तखेत्तं मणुस्सेसुप्पज्जमाणखइयसम्मादिट्ठिफोसिदखेत्तं च घेत्तूण लब्भदे। एदम्हि खेत्ते आणिज्जमाणे देसूणजोयणलक्खबाहल्लं रज्जुपदरं उड्ढं सत्तछग्गेण छिदिय पदरागारेण ठइदे तिरियलोगस्स बाहल्लादो संखेज्जदिभागबाहल्लं जगपदरं होदि। एवं संजादे ओघत्तं कधं जुज्जदे ? ण, उववादविरहिदसेसपदखेत्तेहि तुल्लत्तमावेक्खिय ओघत्तुववत्तीए।

संजदासंजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १६९ ॥

एदस्स वट्टमाणपरूवणा खेत्तभंगा। सत्थाण-विहार-वेदण-कसाय-वेउव्वियपरिणदेहि खइयसम्मादिट्ठिसंजदासंजदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागो, संखेज्जा भागा वा फोसिदा; खइयसम्मादिट्ठिसंजदासंजदाणं तिरिक्खेसु असंभवादो। मारणंतियपरिणदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो तीदे काले फोसिदो, पणदालीसजोयणलक्खविक्खंभेण संखेज्जरज्जुआयदफोसणखेत्तुवलंभादो।

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे स्पर्शित क्षेत्रको, तथा वहांसे चयकर मनुष्योंमें उत्पन्न होनेवाले क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंके स्पर्शित क्षेत्रको ग्रहण करके तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागप्रमाण स्पर्शनक्षेत्र पाया जाता है।

इस उक्त क्षेत्रके निकालनेपर कुछ कम एक लाख योजन बाहल्यवाले राजुप्रतरको ऊपरसे सातके वर्ग (४९) द्वारा छेदकर प्रतराकारसे स्थापित करने पर तिर्यग्लोकके बाहल्यसे संख्यातवें भाग बाहल्यवाला जगत्प्रतर होता है।

शंका– ऐसा होने पर सूत्रोक्त ओघपना कैसे घटित होगा ?

समाधान– नहीं, क्योंकि, उपपादपदको छोड़ शेष पदोंके क्षेत्रोंके साथ समानता देखकर ओघपना बन जाता है।

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें संयतासंयत गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १६९ ॥

इस सूत्रकी वर्तमानकालिक स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है। स्वस्थान-स्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकपदपरिणत क्षायिकसम्यग्दृष्टि संयतासंयतोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मनुष्यक्षेत्रका संख्यातवां भाग, अथवा संख्यात बहुभाग स्पर्श किये हैं, क्योंकि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि संयतासंयत जीवोंका तिर्यंचोंमें होना असंभव है। मारणान्तिकपदपरिणत क्षायिकसम्यग्दृष्टि संयतासंयतोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मनुष्यलोकसे असंख्यातगुणा

पमत्तादिगुणट्ठाणाणं ओघभंगो, विसेसाभावा ।

सजोगिकेवली ओघं ॥ १७० ॥

एदं सुत्तं सुगमं, ओघम्हि परूविदत्तादो ।

वेदगसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्त-संजदा त्ति ओघं[1] ॥ १७१ ॥

एदस्स सुत्तस्स जेण अदीद-वट्टमाणपरूवणा मूलोघम्हि उत्तचदुगुणट्ठाण-अदीदवट्टमाणपरूवणाए तुल्ला, तेण ओघत्तं जुज्जदे ।

उवसमसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठी ओघं[2] ॥ १७२ ॥

वट्टमाणपरूवणाए सव्वपदाणं ओघत्तं होदु णाम, विसेसाभावा । अदीद-परूवणाए वि सत्थाणस्स तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागमेत्तखेत्तुवलंभादो । विहार-वेदण-कसाय-वेउव्वियपदाणं पि देसूणट्ठ-चोद्दसभागमेत्तखेत्तुवलंभादो ओघत्तं जुज्जदे । किंतु

क्षेत्र अतीतकालमें स्पर्श किया है, क्योंकि, पैंतालीस लाख योजन विष्कम्भके साथ संख्यात राजुप्रमाण आयत स्पर्शनक्षेत्र पाया जाता है । प्रमत्तादि गुणस्थानोंकी स्पर्शनप्ररूपणा ओघके समान है, क्योंकि, उसमें कोई विशेषता नहीं है ।

सयोगिकेवली जिनोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १७० ॥

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि, ओघमें इसका प्ररूपण किया जा चुका है ।

वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १७१ ॥

चूंकि, इस सूत्रकी अतीत और वर्तमानकालिक स्पर्शनप्ररूपणा मूलोघमें कही गई उक्त चारों गुणस्थानोंकी अतीत और वर्तमानकालिक प्ररूपणाके समान है, इसलिए ओघपना बन जाता है ।

औपशमिकसम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १७२ ॥

शंका— वर्तमानकालिक स्पर्शनकी प्ररूपणामें सर्व पदोंके ओघपना भले ही रहा आवे; क्योंकि, उसमें कोई विशेषता नहीं है । अतीतकालिक प्ररूपणामें भी सर्व पदोंके ओघपना रहा आवे; क्योंकि, अतीतप्ररूपणामें भी स्वस्थानपदका स्पर्शनक्षेत्र तिर्यग्लोकका संख्यातवां भागमात्र पाया जाता है । तथा, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकपदोंका स्पर्शनक्षेत्र भी कुछ कम आठ बटे चौदह ($\frac{८}{१४}$) भागप्रमाण पाये जानेसे ओघपना बन जाता है ।

---

१ क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टीनां सामान्योक्तम् । स. सि. १, ८.

२ औपशमिकसम्यक्त्वस्यासंयतसम्यग्दृष्टीनां सामान्योक्तम् । स. सि. १, ८.

मारणंतिय-उववादपरिणदाणमोघत्तं णत्थि, ओघम्हि उत्तं अट्ठ-चोद्दसभागमेत्तं मोत्तूण चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणमेत्तफोसणखेत्तुवलंभा। कुदो ? मणुसगदिं मोत्तूण अण्णत्थ उवसमसम्मत्तेण सह मरणाणुवलंभा ? ण एस दोसो, मारणंतिय-उववादे मोत्तूण सेसपदेहि सरिसत्तमत्थि त्ति ओघत्तुवत्तीदो।

संजदासंजदप्पहुडि जाव उवसंतकसायवीदरागछदुमत्थेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो[1] ॥ १७३ ॥

एदस्स सुत्तस्स वट्टमाणपरूवणा खेत्तभंगा। सत्थाण-विहार-वेदण-कसाय-वेउव्वियपरिणदउवसमसम्मादिट्ठि-संजदासंजदेहि तीदे काले तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो। मारणंतियपरिणदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो, मणुसगदीए चेव मारणंतियदंसणादो। सेससव्वगुणट्ठाणाणमोघभंगो।

किन्तु मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपदपरिणत जीवोंके ओघपना नहीं बनता है, क्योंकि, ओघमें कहा गया आठ बटे चौदह ($\frac{८}{१४}$) भागप्रमाण क्षेत्र छोड़कर सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मनुष्यक्षेत्रसे असंख्यातगुणे प्रमाणवाला स्पर्शनक्षेत्र पाया जाता है। और इसका कारण यह है कि मनुष्यगतिको छोड़कर अन्यत्र उपशमसम्यक्त्वके साथ मरण नहीं पाया जाता है ?

समाधान-- यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद, इन दोनों पदोंको छोड़कर पदोंके साथ सदृशता है, इसलिए ओघपना बन जाता है।

संयतासंयत गुणस्थानसे लेकर उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती उपशमसम्यग्दृष्टियोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १७३ ॥

इस सूत्रकी वर्तमानकालिक स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है। स्वस्थान-स्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकपदपरिणत उपशमसम्यग्दृष्टि संयतासंयत जीवोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। मारणान्तिक-समुद्घातपदपरिणत उक्त जीवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। इसका कारण यह है कि मनुष्यगतिमें ही उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंके मारणान्तिकसमुद्घात देखा जाता है। शेष सर्व गुणस्थानोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है।

[1] लोकस्यासंख्येयभागः। स. सि. १, ८.

सासणसम्मादिट्ठी ओघं[1] ॥ १७४ ॥

सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं ॥ १७५ ॥

मिच्छादिट्ठी ओघं ॥ १७६ ॥

एदाणि तिण्णि वि सुत्ताणि अवगदत्थाणि, ओघम्हि परूविदत्तादो । तदो एदेसिं परूवणा ण कीरदे ।

एवं सम्मत्तमग्गणा समत्ता ।

सण्णियाणुवादेण सण्णीसु मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो[2] ॥ १७७ ॥

एदस्स सुत्तस्स परूवणा खेत्तभंगा, समल्लीणवट्टमाणकालत्तादो ।

अट्ठ चोद्दसभागा देसूणा, सव्वलोगो वा ॥ १७८ ॥

सत्थाणपरिणदेहि सण्णिमिच्छादिट्ठीहि तीदे काले तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदि-

---

सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १७४ ॥

सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १७५ ॥

मिथ्यादृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १७६ ॥

ये उक्त तीनों ही सूत्र ओघमें प्ररूपित होनेसे अवगतार्थ हैं, अर्थात् इनका अर्थ जाना हुआ है । इसलिए इनकी प्ररूपणा नहीं की जाती है ।

इस प्रकार सम्यक्त्वमार्गणा समाप्त हुई ।

संज्ञीमार्गणाके अनुवादसे संज्ञी जीवोंमें मिथ्यादृष्टियोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १७७ ॥

वर्तमानकालको आश्रय करनेसे इस सूत्रकी स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है ।

संज्ञी जीवोंने अतीत और वर्तमानकालकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग और सर्वलोक स्पर्श किया है ॥ १७८ ॥

स्वस्थानस्वस्थानपरिणत संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीवोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा

---

१ सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्टिमिथ्यादृष्टीनां सामान्योक्तम् । स. सि. १, ८.

२ संज्ञानुवादेन संज्ञिनां चक्षुर्दर्शनिवत् । स. सि. १, ८.

भागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो। विहार-वेदण-कसाय वेउव्वियपरिणदेहि अट्ठचोद्दसभागा, मारणंतिय-उववादपरिणदेहि सव्वलोगो फोसिदो।

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था ओघं ॥ १७९ ॥

एदेसिमोघादो ण को वि[1] भेदो णत्थि, सण्णिरहिदसासणादीणमभावा।

असण्णीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, सव्वलोगो[2] ॥ १८० ॥

सत्थाण-वेदण-कसाय-मारणंतिय-उववादपरिणदेहि असण्णीहि तिसु वि अद्धासु सव्वलोगो फोसिदो। विहारपरिणदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो तिसु वि कालेसु फोसिदो। वेउव्विय-परिणदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणो वट्टमाणे फोसिदो। तीदे पंच चोद्दसभागा त्ति वत्तव्वं।

आगम श्री सुविहितसागर जी महाराज

एवं सण्णिमग्गणा समत्ता।

क्षेत्र स्पर्श किया है। विहारवत्स्वस्थान, कषाय और वैक्रियिकपदपरिणत संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीवोंने आठ बटे चौदह ($\frac{८}{१४}$) भाग स्पर्श किये हैं। मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपद-परिणत संज्ञी जीवोंने सर्वलोक स्पर्श किया है।

संज्ञी जीवोंमें सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १७९ ॥

इन गुणस्थानोंकी स्पर्शनप्ररूपणाका ओघस्पर्शनप्ररूपणासे कोई भेद नहीं है, क्योंकि, संज्ञित्वसे रहित सासादनादि गुणस्थानोंका अभाव है।

असंज्ञी जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? सर्वलोक स्पर्श किया है ॥ १८० ॥

स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, कषाय, मारणान्तिक और उपपादपदपरिणत असंज्ञी जीवोंने तीनों ही कालोंमें सर्वलोक स्पर्श किया है। विहारवत्स्वस्थानपदपरिणत जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और मनुष्यलोकसे असंख्यातगुणा क्षेत्र तीनों ही कालोंमें स्पर्श किया है। वैक्रियिकपदपरिणत असंज्ञी जीवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मनुष्यक्षेत्रसे असंख्यातगुणा क्षेत्र वर्तमानकालमें स्पर्श किया है। अतीतकालमें पांच बटे चौदह ($\frac{५}{१४}$) भाग स्पर्श किये हैं, ऐसा कहना चाहिए।

इस प्रकार संज्ञीमार्गणा समाप्त हुई।

---

१ प्रतिषु ' कोत्थि ' इति पाठः; म प्रतौ ' को त्ति ' इति पाठः।

२ असंज्ञिभिः सर्वलोकः स्पृष्टः। स. सि. १, ८.

आहाराणुवादेण आहारएसु मिच्छादिट्ठी ओघं[1] ॥ १८१ ॥

उववादस्स रज्जुआयामो आहारणिरुद्धे ण लब्भदि, तेण सव्वलोगफोसणाभावा णोघत्तं जुज्जदे ? ण, सरीरगहिदपढमसमए वट्टमाणजीवेहि आऊरिदसव्वलोगुवलंभादो । सेसं सुगमं ।

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदा ओघं ॥ १८२ ॥

एदस्स वट्टमाणपरूवणा खेत्तभंगा । तीदकालपरूवणं भण्णमाणे फोसणोघम्हि चदुण्हं गुणट्ठाणाणं जहा उत्तं तहा वत्तव्वं । णवरि सासणसम्मादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीहि उववादपरिणदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो ।

पमत्तसंजदप्पहुडि जाव सजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १८३ ॥

आहारमार्गणाके अनुवादसे आहारक जीवोंमें मिथ्यादृष्टियोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १८१ ॥

शंका– आहारमार्गणाकी अपेक्षा कथन करनेपर उपपादपदका राजुप्रमाण आयाम नहीं पाया जाता है, इसलिए सर्वलोकप्रमाण क्षेत्रके स्पर्शनका अभाव होनेसे ओघपना नहीं बनता है ?

समाधान– नहीं, क्योंकि, शरीर ग्रहण करनेके प्रथम समयमें वर्तमान जीवोंसे व्याप्त सर्वलोकके पाये जानेसे ओघपना बन जाता है ।

शेष अर्थ सुगम ही है ।

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर संयतासंयत गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती आहारक जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १८२ ॥

इस सूत्रकी वर्तमानकालिक स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रके समान है । अतीतकालकी प्ररूपणा कहनेपर स्पर्शनके ओघमें जैसा कि इन चारों गुणस्थानोंका स्पर्शनक्षेत्र कहा है, उसी प्रकारसे कहना चाहिए । विशेष बात यह है कि उपपादपरिणत सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है ।

आहारक जीवोंमें प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १८३ ॥

१ आहारानुवादेन आहारकाणां मिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकषायान्तानां सामान्योक्तम् । स. सि. १, ८.

२ सयोगकेवलिनां लोकस्यासंख्येयभागः । स. सि. १, ८.

एवस्स सुत्तस्स परूवणा अदीव-वट्टमाणेहि ओघतुल्ला । णवरि सजोगकेवली पदर-लोगपूरणपदा णत्थि ।

आहारएसु कम्मइयकायजोगिभंगो[1] ॥ १८४ ॥

कुदो ? कम्मइयकायजोगीसु सव्वेसु अणाहारियत्तुवलंभादो ।

अजोगिअणाहारपरूवणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि–

णवरि विसेसा, अजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो[2] ॥ १८५ ॥

एवं सुत्तं सुगमं ।

(एवं आहारमग्गणा समत्ता)

एवं फोसणाणुगमो त्ति सम्मत्तमणिओगद्दारं ।

इस सूत्रकी प्ररूपणा अतीत और वर्तमान इन, दोनों कालोंकी अपेक्षा ओघप्ररूपणाके समान है । विशेष बात यह है कि सयोगिकेवलीके प्रतर और लोकपूरणसमुद्घात, ये दो पद नहीं होते हैं ।

अनाहारक जीवोंमें संभवित गुणस्थानवर्ती जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र कार्मणकाय-योगियोंके क्षेत्रके समान है ॥ १८४ ॥

इसका कारण यह है कि सभी कार्मणकाययोगियोंके अनाहारकपना पाया जाता है ।

अनाहारी अयोगिजिनके स्पर्शनक्षेत्रके प्ररूपण करनेके लिए उत्तर सूत्र कहते हैं—

विशेष बात यह है कि अयोगिकेवलियोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १८५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

(इस प्रकार आहारमार्गणा समाप्त हुई ।)

इस प्रकार स्पर्शनानुगम नामक अनुयोगद्वार समाप्त हुआ ।

---

१ अनाहारकेषु मिथ्यादृष्टिभिः सर्वलोकः स्पृष्टः । सासादनसम्यग्दृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः एकादश; चतुर्दशभागा वा देशोनाः । सयोगिकेवलिनां लोकस्यासंख्येयभागः सर्वलोको वा । स. सि. १, ८.

२ अयोगिकेवलिनां लोकस्यासंख्येयभागः । स. सि. १, ८

सिरि-भगवंत-पुप्फदंत-भूदबलि-पणीदो
आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

छक्खंडागमो

सिरि-वीरसेणाइरिय-विरइय-धवला-टीका समण्णिदो

तस्स

पढमखंडे जीवट्ठाणे

कालाणुगमो

कम्मकलंकुत्तिण्णं[1] विसुद्धसव्वत्थमुत्त[2]वत्थमणं ।

णमिऊण उसहसेणं कालणिओगं भणिस्सामो ॥

कालाणुगमेण दुविहो णिद्देसो, ओघेण आदेसेण य[3] ॥ १ ॥

णामकालो ठवणकालो दव्वकालो भावकालो चेदि कालो चउव्विहो । तत्थ णामकालो णाम कालसद्दो । कधं सद्दो अप्पाणं पडिवज्जावेदि ण एस दोसो; स[4]-

---

कर्मरूप कलंकसे उत्तीर्ण, सर्व अर्थोंके जाननेवाले और अस्त रहित अर्थात् सदा उदित, ऐसे वृषभसेन गणधरको नमस्कार करके अब कालानुयोगद्वारको कहते हैं ।

कालानुगमसे दो प्रकारका निर्देश है, ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश ॥ १ ॥

नामकाल, स्थापनाकाल, द्रव्यकाल और भावकाल, इस प्रकारसे काल चार प्रकारका है । उनमेंसे 'काल' इस प्रकारका शब्द नामकाल कहलाता है ।

शंका— शब्द अपनेको कैसे स्वीकार कराता है ?

समाधान— यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, शब्दके स्व-परप्रकाशात्मक प्रमाणके

---

१ अ-आ-क.प्रतिषु 'तम्मकुलंकुल्लेणं' इति पाठः ।

२ म स प्रत्योः 'मुत्थ'; अ-आप्रत्योः 'मुद्धु'; क प्रतौ 'मद्धु' इति पाठः ।

३ कालः प्रस्तूयते । स द्विविधः सामान्येन विशेषेण च । स. सि. १, ८.

४ प्रतिषु 'सद्दस्स स-पर' इति पाठः । म प्रतौ तु 'सद्दस्स' इति पाठो नोपलभ्यते ।

परूवयासयपमाणपडिवादीण[1]मुवलंभा । सो एसो इदि अण्णम्हि बुद्धीए अण्णारोवणं ठवणा णाम । सा दुविहा, सब्भावासब्भावभेदेण । अणुहरंतए अणुहरंतस्स अण्णस्स बुद्धीए समारोवो सब्भावट्ठवणा । तव्विरित्ता असब्भावट्ठवणा । तत्थ सब्भावट्ठवणा कालो णाम[2] पल्लविय-कुरिय-कलिद-करलिद-फुल्लिद-मउलिद-कलकोइलपुण्णालावउलसंडुज्जोइयचित्तालिहियवसंतो । असब्भावट्ठवणकालो णाम गेरुअ-मट्टी-ठिक्करादिसु वसंतो त्ति बुद्धिबलेण ठविदो । दव्वकालो दुविहो, आगमदो णोआगमदो य । आगमदो कालपाहुडजाणगो अणुवजुत्तो । णोआगमदो दव्वकालो जाणुगसरीर-भविय-तव्वदिरित्तभेदेण तिविहो । तत्थ जाणुगसरीरणोआगमदव्वकालो भविय-वट्टमाण-समुज्झादभेदेण तिविहो । सो वि बहुसो पुव्वं परूविदो त्ति णेह वुच्चदे । भवियणोआगमदव्वकालो भविस्सकाले कालपाहुडजाणओ जीवो । ववगददोगंध-पंचरसट्ठफास-पंचवण्णो कुंभारचक्कहेट्ठिमसिलव्व वत्तणालक्खणो

प्रतिपादक शब्द पाये जाते हैं । 'वह यही है' इसप्रकारसे अन्य वस्तुमें बुद्धिके द्वारा अन्यका आरोपण करना स्थापना है । वह स्थापना सद्भाव और असद्भावके भेदसे दो प्रकारकी है । अनुकरण करनेवाली वस्तुमें अनुकरण करनेवाले अन्य पदार्थका बुद्धिके द्वारा समारोप करना सद्भावस्थापना है । उससे भिन्न या विपरीत असद्भावस्थापना होती है । उनमेंसे पल्लवित, अंकुरित, कलित, करलित, पुष्पित, मुकुलित तथा सुन्दर कोयलके कलकल आलापसे परिपूर्ण वनखंडसे उद्योतित, चित्रलिखित वसन्तकालको सद्भावस्थापनाकालनिक्षेप कहते हैं । गेरुक, मट्टी, ठीकरा इत्यादिकमें 'यह वसंत है' इसप्रकार बुद्धिके बलसे स्थापना करनेको असद्भाव-स्थापनाकाल कहते हैं ।

आगम और नोआगमके भेदसे द्रव्यकाल दो प्रकारका है । कालविषयक प्राभृतका ज्ञायक किन्तु वर्तमानमें उसके उपयोगसे रहित जीव आगमद्रव्यकाल है । ज्ञायकशरीर, भव्य और तद्व्यतिरिक्तके भेदसे नोआगमद्रव्यकाल तीन प्रकार है । उनमें ज्ञायकशरीर नोआगम-द्रव्यकाल भावी, वर्तमान और त्यक्तके भेदसे तीन प्रकारका है । वह भी पहले बहुत बार प्ररूपण किया जा चुका है, इसलिए यहांपर पुनः नहीं कहते हैं । भविष्यकालमें जो जीव कालप्राभृतका ज्ञायक होगा, उसे भावीनोआगमद्रव्यकाल कहते हैं ।

जो दो प्रकारके गंध, पांच प्रकारके रस, आठ प्रकारके स्पर्श और पांच प्रकारके वर्णसे रहित है, कुम्भकारके चक्रकी अधस्तन शिला या कीलके समान है, वर्तना ही जिसका

१ आ प्रतौ 'पइडिवादीण-'; क प्रतौ 'पकादीण' इति पाठः ।

२ अ-क प्रत्योः 'सब्भावट्ठवणा वर्णसंस्थानादिनानुकुर्वतः चित्रादावारोपितं कालो णाम' इति पाठः । अत्र संस्कृतवाक्यांशः केवलं सद्भावस्थापनायाः स्वरूपबोधकं टिप्पणकं प्रतिभाति, न तु मूलग्रंथांशः । क प्रतौ सब्भाव-शब्दे टिप्पणसूचकं ८ इति चिह्नमुपलभ्यते । तेन अस्यैवानुमानस्य पुष्टिर्जायते । आ प्रतौ स संस्कृत वाक्यांशो नोपलभ्यते ।

३ प्रतिषु 'मणिभेदः गेरुअ-' इति पाठः । म प्रतौ 'मणिभेदः' इति पाठो नोपलभ्यते ।

लोगागासपमाणो अत्थो तव्वदिरित्तणोआगमदव्वकालो[1] णाम। वुत्तं च पंचत्थिपाहुडे–

कालो त्ति य ववएसो सब्भावपरूवओ हवइ णिच्चो।
उप्पण्णप्पद्धंसी अवरो दीहंतरट्ठाई[2] ॥ १ ॥
कालो परिणामभवो परिणामो दव्वकालसंभूओ।
दोण्हं एस सहाओ कालो खणभंगुरो णियदो[3] ॥ २ ॥
ण य परिणमइ सयं सो ण य परिणामेइ अण्णमण्णेहिं।
विविहपरिणामियाणं हवइ हु हेऊ सयं कालो ॥ ३ ॥
लोयायासपदेसे एक्केक्के जे ट्ठिया हु एक्केक्का।
रयणाणं रासी इव ते कालाणू मुणेयव्वा[4] ॥ ४ ॥

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज जीवसमासाएवि उत्तं–

छप्पंचणवविहाणं अत्थाणं जिणवरोवइट्ठाणं।
आणाए अहिगमेण य सद्दहणं होइ सम्मत्तं[5] ॥ ५ ॥

लक्षण है और जो लोकाकाशप्रमाण है, ऐसे पदार्थको तद्व्यतिरिक्तनोआगमद्रव्यकाल कहते हैं। पंचास्तिकायप्राभृतमें कहा भी है–

'काल' इस प्रकारका यह नाम सत्तारूप निश्चयकालका प्ररूपक है; और वह निश्चयकालद्रव्य अविनाशी होता है। दूसरा व्यवहारकाल उत्पन्न और प्रध्वंस होनेवाला है; तथा आवली, पल्य, सागर आदिके रूपसे दीर्घकाल तक स्थायी है ॥ १ ॥

व्यवहारकाल पुद्गलोंके परिणमनसे उत्पन्न होता है और पुद्गलादिका परिणमन द्रव्यकालके द्वारा होता है, दोनोंका ऐसा स्वभाव है। यह व्यवहारकाल क्षणभंगुर है, परंतु निश्चयकाल नियत अर्थात् अविनाशी है ॥ २ ॥

वह कालनामक पदार्थ न तो स्वयं परिणमित होता है और न अन्यको अन्यरूपसे परिणमाता है। किन्तु स्वतः नाना प्रकारके परिणामोंको प्राप्त होनेवाले पदार्थोंका काल नियमसे स्वयं हेतु होता है ॥ ३ ॥

लोकाकाशके एक एक प्रदेशपर रत्नोंकी राशिके समान जो एक एक रूपसे स्थित हैं, वे कालाणु जानना चाहिए ॥ ४ ॥

जीवसमासमें भी कहा है–

जिनवरके द्वारा उपदिष्ट छह द्रव्य, अथवा पंच अस्तिकाय, अथवा नव पदार्थोंका आज्ञासे और अधिगमसे श्रद्धान करना सम्यक्त्व है ॥ ५ ॥

---

१ ववगदपणवण्णरसो ववगददोगंध अट्ठफासो य। अगुरुगलहुगो अमुत्तो वट्टणलक्खो य कालो त्ति ॥ पंचास्ति गा. २४. २ पंचास्ति. गा. १०१. ३ पंचास्ति. गा. १०.
४ गो. जी. ५८८. ५ गो. जी. ५६०.

तह आयारंगे वि वुत्तं--

पंचत्थिया य छज्जीवणिकायकालदव्वमण्णे य ।
आणागेज्झे भावे आणाविचएण विचिणादि[1] ॥ ६ ॥

तह गिद्धपिच्छाइरियप्पयासिदतच्चत्थसुत्ते वि 'वर्तनापरिणामक्रिया परत्वापरत्वे च कालस्य[2]' इदि दव्वकालो परूविदो । जीवट्ठाणादिसु दव्वकालो ण वुत्तो त्ति तस्साभावो ण वोत्तुं सक्किज्जदे, एत्थ छदव्वपदुप्पायणे अहियाराभावा । तम्हा दव्वकालो अत्थि त्ति घेत्तव्वो । जीवाजीवादिअट्ठभंगदव्वं वा णोआगमदव्वकालो । भावकालो दुविहो, आगमणोआगमदो । कालपाहुडजाणओ अवजुत्तो जीवो आगमभावकालो । दव्वकालजणिदपरिणामो णोआगमभावकालो भण्णदि । पोग्गलादि-

उसी प्रकारसे आचारांगमें भी कहा है--

पंच अस्तिकाय, षट्जीवनिकाय, कालद्रव्य तथा अन्य जो पदार्थ केवल आज्ञा अर्थात् जिनेन्द्रके उपदेशसे ही ग्राह्य हैं, उन्हें यह सम्यक्त्वी जीव आज्ञाविचय धर्मध्यानसे संचय करता है, अर्थात् श्रद्धान करता है ॥ ६ ॥

तथा गृद्धपिच्छाचार्यद्वारा प्रकाशित तत्त्वार्थसूत्रमें भी 'वर्तना, परिणाम, क्रिया, परत्व और अपरत्व, ये कालद्रव्यके उपकार हैं' इस प्रकारसे द्रव्यकाल प्ररूपित है । जीवस्थान आदि ग्रंथोंमें द्रव्यकाल नहीं कहा गया है, इसलिए उसका अभाव नहीं कह सकते हैं, क्योंकि, यहां जीवस्थानमें छह द्रव्योंके प्रतिपादनका अधिकार नहीं है । इसलिए 'द्रव्यकाल है' ऐसा स्वीकार करना चाहिए ।

अथवा, जीव और अजीव आदिके योगसे बने हुए आठ भंगरूप द्रव्यको नोआगमद्रव्यकाल कहते हैं ।

विशेषार्थ-- जीव और अजीवद्रव्यके संयोगसे कालके आठ भंग इस प्रकार होते हैं-- १ एक जीवकाल, २ एक अजीवकाल, ३ अनेक जीवकाल, ४ अनेक अजीवकाल, ५ एक जीव एक अजीवकाल, ६ अनेक जीव एक अजीवकाल, ७ एक जीव अनेक अजीवकाल ८ और अनेक जीव अनेक अजीवकाल । (देखो मंगलसम्बन्धी आठ आधार, सत्प्र. १, पृ. १९) कालके निमित्तसे होनेवाले एक जीवसम्बन्धी परिवर्तनको एक जीवकाल कहते हैं । इस प्रकारसे आठों भंगोंका स्वरूप जान लेना चाहिए ।

आगम और नोआगमके भेदसे भावकाल दो प्रकारका है । काल-विषयक प्राभृतका ज्ञायक और वर्तमानमें उपयुक्त जीव आगम भावकाल है । द्रव्यकालसे जनित परिणाम या परिणमन नोआगमभावकाल कहा जाता है ।

१ मूलाचा. ३९९. २ तत्त्वा. सू. ५, २२.

परिणामस्स कधं कालववएसो ? ण एस दोसो, कज्जे कारणोवयारणिबंधणत्तादो । वुत्तं च पंचत्थिपाहुडे ववहारकालस्स अत्थित्तं । तं जहा–

सब्भावसहावाणं जीवाणं तह य पोग्गलाणं च ।
परियट्टणसंभूदो कालो णियमेण पण्णत्तो[1] ॥ ७ ॥
समओ णिमिसो कट्ठा कला य णाली तदो दिवारत्ती ।
मास उडु अयण संवच्छरो त्ति कालो परायत्तो[2] ॥ ८ ॥
णत्थि चिरं वा खिप्पं वट्टारहिदं तु सा वि खलु वट्टा[3] ।
पोग्गलदव्वेण विणा तम्हा कालो पडुच्च भवो[4] ॥ ९ ॥

एत्थ केण कालेण पयदं ? णोआगमभावो आवकालेण । तस्स समय-आवलिय-खण-लव-मुहुत्त-दिवस-पक्ख-मास-उडु-अयण-संवच्छर-जुग-पुव्व-पव्व-पलिदोवम-सागरोव-[illegible] कालववएसो ? ण, कल्पन्ते संख्यायन्ते कर्म-भव-कायायु-

शंका– पुद्गल आदि द्रव्योंके परिणामके 'काल' यह संज्ञा कैसे संभव है ?

समाधान– यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, कार्यमें कारणके उपचारके निबंधनसे पुद्गलादि द्रव्योंके परिणामके भी 'काल' संज्ञाका व्यवहार हो सकता है ।

पंचास्तिकायप्राभृतमें व्यवहारकालका अस्तित्व कहा भी गया है–

सत्तास्वरूप स्वभाववाले जीवोंके, तथैव पुद्गलोंके और 'च' शब्दसे धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य और आकाशद्रव्यके परिवर्तनमें जो निमित्तकारण हो, वह नियमसे कालद्रव्य कहा गया है ॥ ७ ॥

समय, निमिष, काष्ठा, कला, नाली, तथा दिन और रात्रि, मास, ऋतु, अयन और संवत्सर इत्यादि काल परायत्त है; अर्थात् जीव, पुद्गल एवं धर्मादिक द्रव्योंके परिवर्तनाधीन है ॥ ८ ॥

वर्तनारहित चिर अथवा क्षिप्रकी, अर्थात् परत्व और अपरत्वकी, कोई सत्ता नहीं है । वह वर्तना भी पुद्गलद्रव्यके विना नहीं होती है, इसलिए कालद्रव्य पुद्गलके निमित्तसे हुआ कहा जाता है ॥ ९ ॥

शंका– ऊपर वर्णित अनेक प्रकारके कालोंमेंसे यहांपर किस कालसे प्रयोजन है ?

समाधान– नोआगमभावकालसे प्रयोजन है ।

वह काल-समय, आवली, क्षण, लव, मुहूर्त, दिवस, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, संवत्सर, युग, पूर्व, पर्व, पल्योपम, सागरोपम आदि रूप है ।

शंका– तो फिर इसके 'काल' ऐसा व्यपदेश कैसे हुआ ?

---

१ पंचास्ति. गा. २३.
२ पंचास्ति. गा. २५.
३ प्रतिषु 'उत्ता' इति पाठः ।
४ पंचास्ति. गा. २६.

स्थितयोऽनेनेति कालशब्दव्युत्पत्तेः । कालः समय अद्धा इत्येकोऽर्थः । समयादीनमत्थो वुच्चदे–

अणोरण्वंतरव्यतिक्रमकालः समयः । चोद्दसरज्जुआगासपदेसकमणमेत्तकालेण जो चोद्दसरज्जुकमणक्खमो परमाणू तस्स एगपरमाणुक्कमणकालो समओ णाम । असंखेज्जसमए घेत्तूण एया आवलिया होदि । तप्पाओग्गसंखेज्जावलियाहि एगो उस्सासणिस्सासो होदि । सत्तहि उस्सासेहि एगो थोवसण्णिदो कालो होदि । सत्तहि थोवेहि लवो णाम कालो होदि । साद्ध-अट्ठत्तीसलवेहि णाली णाम कालो होदि । बेहि णालियाहि मुहुत्तो होदि ।

उच्छ्वासानां सहस्राणि त्रीणि सप्त शतानि च ।
त्रिसप्ततिः पुनस्तेषां मुहूर्तो ह्येक इष्यते (३७७३) ॥ १० ॥
निमेषाणां सहस्राणि पंच भूयः शतं तथा ।
दश चैव निमेषाः स्युर्मुहूर्ते गणिताः बुधैः (५११०) ॥ ११ ॥

त्रिंशन्मुहूर्तो दिवसः । मुहूर्तानां नामानि–

रौद्रः श्वेतश्च मैत्रश्च ततः सारभटोऽपि च ।
दैत्यो वैरोचनश्चान्यो वैश्वदेवोऽभिजित्तथा ॥ १२ ॥
रोहणो बलनामा च विजयो नैऋतोऽपि च ।
वारुणश्चार्यमा च स्याद्भाग्यः पंचदशो दिने (१५) ॥ १३ ॥

आचार्य श्री सुविधिसागर

समाधान– नहीं, क्योंकि, 'जिसके द्वारा कर्म, भव, काय और आयुकी स्थितियां कल्पित या संख्यात की जाती हैं अर्थात् कही जाती हैं, उसे काल कहते हैं' इस प्रकारकी काल शब्दकी व्युत्पत्ति है । काल, समय और अद्धा, ये सब एकार्थवाची नाम हैं ।

समय आविभाग अर्थ कहते हैं । एक परमाणुका दूसरे परमाणुके व्यतिक्रम करनेमें जितना काल लगता है, उसे समय कहते हैं । अर्थात्, चौदह राजु आकाशप्रदेशोंके अतिक्रमण-मात्र कालसे जो चौदह राजु अतिक्रमण करनेमें समर्थ परमाणु है, उसके एक परमाणु अतिक्रमण करनेके कालका नाम समय है । असंख्यात समयोंको ग्रहण करके एक आवली होती है । तत्प्रायोग्य संख्यात आवलियोंसे एक उच्छ्वास-निःश्वास निष्पन्न होता है । सात उच्छ्वासोंसे एक स्तोकसंज्ञिक काल निष्पन्न होता है । सात स्तोकोंसे एक लव नामका काल निष्पन्न होता है । साढ़े अड़तीस लवोंसे एक नाली नामका काल निष्पन्न होता है । दो नालिकाओंसे एक मुहूर्त होता है ।

उन तीन हजार सात सौ तेहत्तर (३७७३) उच्छ्वासोंका एक मुहूर्त कहा जाता है ॥ १० ॥

विद्वानोंने एक मुहूर्तमें पांच हजार एक सौ दश (५११०) निमेष गिने हैं ॥ ११ ॥ तीस मुहूर्तोंका एक दिन अर्थात् अहोरात्र होता है । मुहूर्तोंके नाम इस प्रकार हैं–

१ रौद्र, २ श्वेत, ३ मैत्र, ४ सारभट, ५ दैत्य, ६ वैरोचन, ७ वैश्वदेव, ८ अभिजित,

सावित्रो धूर्यसंज्ञश्च दात्रको यम एव च ।
वायुर्हुताशनो भानुर्वैजयन्तोऽष्टमो निशि ॥ १४ ॥
सिद्धार्थः सिद्धसेनश्च विक्षोभो योग्य एव च ।
पुष्पदन्तः सुगन्धर्वो मुहूर्तोऽन्योऽरुणो मतः (१५) ॥ १५ ॥
समयो रात्रिदिनयोर्मुहूर्ताश्च समा स्मृताः ।
षण्मुहूर्ता दिनं यान्ति कदाचिच्च पुनर्निशा ॥ १६ ॥

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

पंचदश दिवसाः पक्षः । दिवसानां नामानि—

नन्दा भद्रा जया रिक्ता पूर्णा च तिथयः क्रमात् ।
देवताश्चन्द्रसूर्येन्द्रा आकाशो धर्म एव च ॥ १७ ॥

---

९ रोहण, १० बल, ११ विजय, १२ नैऋत्य, १३ वारुण, १४ अर्यमन् और १५ भाग्य । ये पंद्रह मुहूर्त दिनमें होते हैं ॥ १२–१३ ॥

१ सावित्र, २ धूर्य, ३ दात्रक, ४ यम, ५ वायु, ६ हुताशन, ७ भानु, ८ वैजयन्त, ९ सिद्धार्थ, १० सिद्धसेन, ११ विक्षोभ, १२ योग्य, १३ पुष्पदन्त, १४ सुगन्धर्व और १५ अरुण । ये पन्द्रह मुहूर्त रात्रिमें होते हैं, ऐसा माना गया है ॥ १४–१५ ॥

रात्रि और दिनका समय तथा मुहूर्त समान कहे गये हैं । हां, कभी दिनको छह मुहूर्त जाते हैं और कभी रात्रिको छह मुहूर्त जाते हैं ॥ १६ ॥

विशेषार्थ— समान दिन और रात्रिकी अपेक्षा तो पन्द्रह मुहूर्तका दिन और इतने ही मुहूर्तोंकी एक रात्रि होती है । किन्तु सूर्यके उत्तरायणकालमें अठारह मुहूर्तका दिन और बारह मुहूर्तकी रात्रि हो जाती है । तथा सूर्य के दक्षिणायनकालमें बारह मुहूर्तका दिन और अठारह मुहूर्तकी रात्रि हो जाती है । इसलिए श्लोकमें कहा है कि छह मुहूर्त कभी दिनको और कभी रात्रिको प्राप्त होते हैं । अर्थात् दिनके सीन और रात्रिके सीन, इस प्रकार छह मुहूर्त कभी दिनसे रात्रिमें और कभी रात्रिसे दिनकी गिनतीमें आते जाते रहते हैं ।

पन्द्रह दिनोंका एक पक्ष होता है । दिनोंके नाम इस प्रकार हैं—

नंदा, भद्रा, जया, रिक्ता और पूर्णा, इस प्रकार क्रमसे पांच तिथियां होती हैं । इनके देवता क्रमसे अग्नि, सूर्य, इन्द्र, आकाश और धर्म होते हैं ॥ १७ ॥

विशेषार्थ— नन्दा आदि तिथियोंके नाम प्रतिपदासे प्रारंभ करना चाहिए, अर्थात् प्रतिपदाका नाम नन्दातिथि है । द्वितीयका नाम भद्रातिथि है । तृतीयाका नाम जयातिथि है । चतुर्थीका नाम रिक्तातिथि है । पंचमीका नाम पूर्णातिथि है । पुनः षष्ठीका नाम नन्दातिथि है, इत्यादि । इस प्रकारसे प्रतिपदा, षष्ठी और एकादशीका नाम नन्दातिथि है । द्वितीया सप्तमी और द्वादशीका नाम भद्रातिथि है । तृतीया, अष्टमी और त्रयोदशीका नाम जयातिथि है । चतुर्थी, नवमी और चतुर्दशीका नाम रिक्तातिथि है । पंचमी, दशमी तथा पूर्णिमाका नाम पूर्णातिथि है । इसी क्रमसे इनके देवता भी समझ लेना चाहिए ।

द्वौ पक्षौ मासः । ते च श्रावणादयः प्रसिद्धाः । द्वादशमासं वर्षम् । पंचभिर्वर्षैर्युगः । एवमुवरि वि वत्तव्वं जाव कप्पो त्ति । एसो कालो णाम । कस्स इमो कालो ? जीव-पोग्गलाणं । कुदो ? तप्परिणामत्तादो । अधवा इमो सुज्जमंडलस्स परियट्टण-लक्खणस्स, तदुदयत्थमणेहिंतो दिण-रत्तादीणमुप्पत्तीए । केण कालो कीरदि ? परमट्ठ-कालेण । कत्थ कालो ? माणुसखेत्तेक्कसुज्जमंडले तियालगोयराणंतपज्जाएहि आवूरिदे[1]। जदि माणुसखेत्तेक्कसुज्जमंडले कालो ट्ठिदो होदि, कधं तेण सव्वपोग्गलाणमणंतगुणेण पदीवो व्व सपरप्पयासकारणेण जवरासि व्व समयभावेणावट्ठिदेण छद्दव्वपरिणामा पयासिज्जंते ? ण एस दोसो, भिण्णज्जमाणदव्वेहिंतो पुधभूदेण मागहपत्थेणेव मवणविरोहाभावा । ण चाणवत्था, पईवेण विउच्चारा । देवलोगे कालाभावे तत्थ

दो पक्षोंका एक मास होता है । वे मास श्रावण आदिकके नामसे प्रसिद्ध हैं । बारह मास का एक वर्ष होता है । पांच वर्षोंका एक युग होता है । इस प्रकार ऊपर ऊपर भी कल्प उत्पन्न होने तक कहते आना चाहिए । यह सब काल कहलाता है ।

शंका– यह काल किसका है, अर्थात् कालका स्वामी कौन है ?

समाधान– जीव और पुद्गलोंका, अर्थात् ये दोनों कालके स्वामी हैं, क्योंकि, काल तत्परिणामात्मक है ।

अथवा, परिवर्तन या प्रदक्षिणा लक्षणवाले इस सूर्यमंडलके उदय और अस्त होनेसे दिन और रात्रि आदिकी उत्पत्ति होती है ।

शंका– काल किससे किया जाता है, अर्थात् कालका साधन क्या है ?

समाधान– परमार्थकालसे काल, अर्थात् व्यवहारकाल निष्पन्न होता है ?

शंका– काल कहांपर है, अर्थात् कालका अधिकरण क्या है ?

समाधान– त्रिकालगोचर अनन्त पर्यायोंसे परिपूरित एकमात्र मानुषक्षेत्रसम्बन्धी सूर्यमंडलमें ही काल है; अर्थात् कालका आधार मनुष्यक्षेत्रसम्बन्धी सूर्यमंडल है ।

शंका– यदि एकमात्र मनुष्यक्षेत्रके सूर्यमंडलमें ही काल अवस्थित है, तो सर्व पुद्गलोंसे अनन्तगुणे तथा प्रदीपके समान स्व-परप्रकाशनके कारणरूप और यवराशिके समान समयरूपसे अवस्थित उस कालके द्वारा छह द्रव्योंके परिणाम कैसे प्रकाशित किये जाते हैं ?

समाधान– यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, मापे जानेवाले द्रव्योंसे पृथग्भूत मागध (देशीय) प्रस्थके समान मापनेमें कोई विरोध नहीं है । न इसमें कोई अनवस्था दोष ही आता है, क्योंकि, प्रदीपके साथ व्यभिचार आता है । अर्थात् जैसे दीपक, घट, पट आदि अन्य पदार्थोंका प्रकाशक होनेपर भी स्वयं अपने आपका प्रकाशक होता है, उसे प्रकाशित

---

१ मेरुप्रदक्षिणा नित्यगतयो नृलोके । तत्कृतः कालविभागः । तत्त्वा. सू. ४, १३–१४.

कधं कालववहारो ? ण, इहत्थेणेव कालेण तेसिं ववहारादो । जदि जीव-पोग्गल-परिणामो कालो होदि, तो सव्वेसु जीव-पोग्गलेसु संठिएण कालेण होदव्वं; तदो माणुसखेत्तेक्कसुज्जमंडलट्ठिदो कालो त्ति ण घडदे ? ण एस दोसो, णिरवज्जसादो । किंतु ण तहा लोगे समए वा संववहारो अत्थि; अणाइणिहणरूवेण सुज्जमंडल-किरियापरिणामेसु चेव कालसंववहारो पयट्टो । तम्हा एदस्सेव गहणं कायव्वं । केवचिरं कालो ? अणादिओ अपज्जवसिदो । कालस्स कालो किं तत्तो पुधभूदो अणण्णो वा ? ण ताव पुधभूदो अत्थि, अणवट्ठाणप्पसंगा । णाणण्णो वि, कालस्स कालाभावप्पसंगा । तदो कालस्स कालेण णिद्देसो ण घडदे ? ण, एस दोसो, ण ताव

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

करनेके लिए अन्य दीपककी आवश्यकता नहीं हुआ करती है, इसी प्रकारसे कालद्रव्य भी अन्य जीव पुद्गल, आदि द्रव्योंके परिवर्तनका निमित्तकारण होता हुआ भी अपने आपका परिवर्तन स्वयं ही करता है, उसके लिए किसी अन्य द्रव्यकी आवश्यकता नहीं पड़ती है । इसीलिए अनवस्था दोष भी नहीं आता है ।

शंका– देवलोकमें तो दिन-रात्रिरूप कालका अभाव है, फिर वहां पर कालका व्यवहार कैसे होता है ?

समाधान– नहीं, क्योंकि, यहांके कालसे द्रव्यलोकमें कालका व्यवहार होता है ।

शंका– यदि जीव और पुद्गलोंका परिणाम ही काल है, तो सभी जीव और पुद्गलोंमें कालको संस्थित होना चाहिए । तब ऐसी दशामें 'मनुष्यक्षेत्रके एक सूर्यमंडलमें ही काल स्थित है' यह बात घटित नहीं होती है ?

समाधान– यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, उक्त कथन निरवद्य (निर्दोष) है । किन्तु लोकमें या शास्त्रमें उस प्रकारसे संव्यवहार नहीं है, पर अनादिनिधनस्वरूपसे सूर्यमंडलकी क्रिया-परिणामोंमें ही कालका संव्यवहार प्रवृत्त है । इसलिए इसका ही ग्रहण करना चाहिए ।

शंका– काल कितने समय तक रहता है ?

समाधान– काल अनादि और अपर्यवसित है । अर्थात् कालका न आदि है, न अन्त है ।

शंका– कालका परिणमन करनेवाला काल क्या उससे पृथग्भूत है, अथवा अनन्य (अपृथग्भूत)? पृथग्भूत तो कहा नहीं जा सकता है, अन्यथा अनवस्थादोषका प्रसंग प्राप्त होगा । और न अनन्य (अपृथग्भूत) ही, क्योंकि, कालके कालका अभाव-प्रसंग आता है । इसलिए कालका कालसे निर्देश घटित नहीं होता है ?

समाधान– यह कोई दोष नहीं । इसका कारण यह है कि पृथक् पक्षमें कहा गया

पुधपक्खुत्तदोसो संभवदि, अणब्भुवगमा। णाणण्णपक्खदोसो वि, इट्ठत्तादो। ण च कालस्स कालेण णिद्देसो णत्थि, सुज्जमंडलंतरट्ठियकालेण तत्तो पुधभूदसुज्जमंडलट्ठियकालणिद्देसादो। अथवा, जधा घडस्स भावो, सिलापुत्तयस्स सरीरमिच्चादिसु एक्कम्हि वि भेदववहारो, तहा एत्थ वि एक्कम्हि काले भेदेण[1] ववहारो जुज्जदे। कदिविधो कालो? सामण्णेण एयविहो। तीदो अणागदो वट्टमाणो त्ति तिविहो[2]। अधवा गुणट्ठिदिकालो भवट्ठिदिकालो कम्मट्ठिदिकालो कालट्ठिदिकालो उवजादकालो भावट्ठिदिकालो त्ति छव्विहो। अहवा अणेयविहो परिणामेहिंतो पुधभूदकालाभावा, परिणामाणं च आणंतियोवलंभा। जहत्थमवबोहो अणुगमो। कालस्स अणुगमो कालाणुगमो, तेण कालाणुगमेण। णिद्देसो कहणं पयासणं अहिव्वत्तिजणणमिदि एयट्ठो। सो च दुविहो, ओघेण आदेसेण चेदि। तत्थ ओघणिद्देसो दव्वट्ठियणयपदुप्पायणो, संगहिदत्थादो। आदेसणिद्देसो पज्जवट्ठियणयपदुप्पायणो, अत्थभेदा-

दोष तो संभव है नहीं, क्योंकि, हम कालके कालको कालसे भिन्न मानते ही नहीं है। और न अनन्य या अभिन्न पक्षमें दिया गया दोष ही प्राप्त होता है, क्योंकि, वह तो हमें इष्ट ही है, (और इष्ट वस्तु उसीके लिए दोषदायी नहीं हुआ करती है)। तथा, कालका कालसे निर्देश नहीं होता हो, ऐसी भी बात नहीं है, क्योंकि, अन्य सूर्यमंडलमें स्थित कालद्वारा उससे पृथग्भूत सूर्यमंडलमें स्थित कालका निर्देश पाया जाता है। अथवा, जैसे घटका भाव, शिलापुत्रकका (पाषाणमूर्तिका) शरीर; इत्यादि लोकोक्तियोंमें एक या अभिन्नमें भी भेद व्यवहार होता है, उसी प्रकारसे यहां पर भी एक या अभिन्न कालमें भी भेदरूपसे व्यवहार बन जाता है।

शंका— काल कितने प्रकारका होता है?

समाधान— सामान्यसे एक प्रकारका काल होता है। अतीत, अनागत और वर्तमानकी अपेक्षा तीन प्रकारका होता है। अथवा गुणस्थितिकाल, भवस्थितिकाल, कर्मस्थितिकाल, कालस्थितिकाल, उपपादकाल और भावस्थितिकाल इस प्रकार कालके छह भेद हैं। अथवा काल अनेक प्रकारका है, क्योंकि, परिणामोंसे पृथग्भूत कालका अभाव है, तथा परिणाम अनन्त पाये जाते हैं।

यथार्थ अवबोधको अनुगम कहते हैं. कालके अनुगमको कालानुगम कहते हैं। उस कालानुगमसे। निर्देश, कथन, प्रकाशन, अभिव्यक्तिजनन, ये सब एकार्थक नाम हैं। वह निर्देश दो प्रकारका है, ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उक्त दोनों प्रकारके निर्देशोंमेंसे ओघनिर्देश-द्रव्यार्थिकनयका प्रतिपादन करनेवाला है, क्योंकि, उसमें समस्त अर्थ संगृहीत हैं। आदेशनिर्देश पर्यायार्थिकनयका प्रतिपादन करनेवाला है, क्योंकि, उसमें अर्थभेदका

१ अ प्रतौ 'कालभेदेण' इति पाठः। २ गो. जी. ५५७.

वलंबणादो। किमट्ठं दुविहो णिद्देसो उसहसेणादिगणहरदेवेहि कीरदे ? ण एस दोसो, उहयणयमवलंबिय ट्ठिदसत्ताणुग्गहट्ठं तधोवदेसादो।

ओघेण मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा[1] ॥ २ ॥

'जहा उद्देसो तहा णिद्देसो होदि' त्ति जाणावणट्ठं ओघणिद्देसो कदो। सेसगुणट्ठाणपडिसेहफलो मिच्छाइट्ठिणिद्देसो। कालादो कालेण णिहालिज्जमाणे केवचिरं होंति त्ति पुच्छा जिणपण्णत्तत्थमिदं सुत्तमिदि पदुप्पायणफला। बहुसु णाणाजीवमिदि एगवयणणिद्देसो जादिणिबंधणो त्ति ण वेसयरो। सव्वद्धा इदि कालविसिट्ठबहुजीवणिद्देसो। कुदो ? सव्वा अद्धा कालो जेसिं जीवाणमिदि बहुव्वीहिसमासवसेण वज्झट्ठप्पवुत्तीए। अधवा, सव्वद्धा इदि कालणिद्देसो। कधं ? मिच्छादिट्ठीणं कालत्तणण्णपरिणामिणो परिणामेहिंतो कथंचि अभेदमासेज्ज मिच्छादिट्ठीणं कालत्ताविरोहा। सव्वकालं णाणाजीवे पडुच्च मिच्छादिट्ठीणं वोच्छेदो णत्थि त्ति भणिदं होदि।

अवलंबन किया गया है।

शंका— वृषभसेनादि गणधरदेवोंने दो प्रकारका निर्देश किसलिए किया है ?

समाधान— यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक, इन दोनों नयोंको अवलम्बन करके स्थित प्राणियोंके अनुग्रहके लिए दो प्रकारके निर्देशका उपदेश किया है।

ओघसे मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ २ ॥

'जिस प्रकारसे उद्देश होता है, उसी प्रकारसे निर्देश किया जाता है' यह बात जतलानेके लिए सूत्रमें 'ओघ' पदका निर्देश किया। 'मिथ्यादृष्टि' पदका निर्देश, शेष गुणस्थानोंके प्रतिषेधके लिए है। 'कालसे' अर्थात् कालकी अपेक्षा जीवोंके संभालने पर 'कितने काल तक होते हैं' इस प्रकारकी यह पृच्छा 'यह सूत्र जिनप्रणप्त है' इस बातके बतानेके लिए है। जीवोंके बहुत होनेपर भी 'नाना जीव' इस प्रकारका यह एक वचनका निर्देश जातिनिबंधनक है, इसलिए कोई दोषोत्पादक नहीं है। 'सर्वाद्धा' यह पद कालविशिष्ट बहुतसे जीवोंका निर्देश करनेवाला है, क्योंकि, सर्व अद्धा अर्थात् काल जिन जीवोंके होता है, इस प्रकारसे 'व' समास अर्थात् बहुव्रीहिसमासके वशसे बाह्य अर्थकी प्रवृत्ति होती है। अथवा 'सर्वाद्धा' इस पदसे कालका निर्देश जानना चाहिए, क्योंकि, मिथ्यादृष्टियोंके कालत्वसे अभिन्न परिणामोंके परिणामोंसे कथंचित् अभेदका आश्रय करके मिथ्यादृष्टियोंके कालत्वका कोई भेद नहीं है। अर्थात् नाना जीवोंकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टि जीवोंका सर्वकाल व्युच्छेद नहीं होता है, यह कहा गया है।

---

१ मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। स. सि. १, ८.

एगजीवं पडुच्च अणादिओ अपज्जवसिदो, अणादिओ सपज्जवसिदो, सादिओ सपज्जवसिदो। जो सो सादिओ सपज्जवसिदो तस्स इमो णिद्देसो। जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[1] ॥ ३ ॥

अभवसिद्धियजीवमिच्छत्तं पडुच्च अणादिअपज्जवसिदमिदि भणिदं, अभव्वमिच्छत्तस्स आदिमज्झंताभावादो। भवसिद्धियमिच्छत्तकालो अणादिओ सपज्जवसिदो। जहा बद्धणकुमारस्स मिच्छत्तकालो। अण्णेगो भवसिद्धियमिच्छत्तकालो सादिओ सपज्जवसिदो। जहा कण्हादिमिच्छत्तकालो। तत्थ जो सो सादिओ सपज्जवसिदो मिच्छत्तकालो, तस्स इमो णिद्देसो। सो दुविहो, जहण्णो उक्कस्सो चेदि। तत्थ जहण्णकालपरूवणाजाणावणट्ठं जहण्णेणेत्ति वुत्तं। मुहुत्तस्संतो अंतोमुहुत्तं, एसो मिच्छत्तजहण्णकालणिद्देसो। तं जधा– सम्मामिच्छादिट्ठी वा असंजदसम्मादिट्ठी वा संजदासंजदो वा पमत्तसंजदो वा परिणामपच्चएण मिच्छत्तं गदो। सव्वजहण्णमंतोमुहुत्तं अच्छिय पुणरवि सम्मामिच्छत्तं वा असंजमेण सह सम्मत्तं वा

एक जीवकी अपेक्षा काल तीन प्रकार है, अनादि-अनन्त, अनादि-सान्त और सादि-सान्त। इनमें जो सादि और सान्त काल है, उसका निर्देश इस प्रकार है– एक जीवकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टि जीवोंका सादि-सान्तकाल जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३ ॥

अभव्यसिद्धिक जीवोंके मिथ्यात्वकी अपेक्षा 'काल अनादि-अनन्त है' ऐसा कहा गया है, क्योंकि, अभव्यके मिथ्यात्वका आदि, मध्य और अन्त नहीं होता है। भव्यसिद्धिक जीवके मिथ्यात्वका काल एक तो अनादि और सान्त होता है, जैसा कि बद्धनकुमारका मिथ्यात्वकाल। तथा एक और प्रकारका भव्यसिद्धिक जीवोंका मिथ्यात्वकाल है, जो कि सादि और सान्त होता है, जैसे कृष्ण आदिका मिथ्यात्वकाल। उनमेंसे जो सादि और सान्त मिथ्यात्वकाल होता है उसका यह निर्देश है। वह दो प्रकारका है, जघन्यकाल और उत्कृष्टकाल। उनमेंसे जघन्यकालकी प्ररूपणा की जाती है, यह बतलानेके लिए 'जघन्यसे' ऐसा पद कहा। मुहूर्तके भीतर जो काल होता है, उसे अन्तर्मुहूर्तकाल कहते है। इस पदसे मिथ्यात्वके जघन्यकालका निर्देश कहा गया है, जो कि इस प्रकार है–

कोई सम्यग्मिथ्यादृष्टि, अथवा असंयतसम्यग्दृष्टि, अथवा संयतासंयत, अथवा प्रमत्तसंयत जीव, परिणामोंके निमित्तसे मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ। सर्व जघन्य अन्तर्मुहूर्तकाल रह करके, फिर भी सम्यग्मिथ्यात्वको, अथवा असंयमके साथ सम्यक्त्वको, अथवा संयमासंयमको, अथवा अप्रमत्तभावके साथ संयमको प्राप्त हुआ। इस प्रकारसे प्राप्त होनेवाले जीवके

---

१ एकजीवापेक्षया त्रयो भङ्गाः-अनादिरपर्यवसानः अनादिसपर्यवसानः सादिसपर्यवसानश्चेति। तत्र सादिः सपर्यवसानो जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। स. सि. १, ८.

पडिवण्णस्स सव्वजहण्णो मिच्छत्तकालो होदि । सासणसम्मादिट्ठी मिच्छत्तं किण्ण पडिवज्जाविदो ? ण, सासणसम्मत्तपच्छायदमिच्छादिट्ठिस्स अइतिव्वसंकिलिट्ठस्स मिच्छत्ततण्हाविणडिअस्स[1] सव्वजहण्णकालेण गुणंतरसंकमणाभावा । उक्कस्सकाल-पदुप्पायणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि–

उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं[2] ॥ ४ ॥

अद्धपोग्गलपरियट्टं णाम किं ? वुच्चदे– अणाइसंसारे हिंडंताणं जीवाणं दव्वपरियट्टणं खेत्तपरियट्टणं कालपरियट्टणं भवपरियट्टणं भावपरियट्टणमिदि पंच परियट्टणाणि होंति । जं तं दव्वपरियट्टणं तं दुविहं, णोकम्मपोग्गलपरियट्टणं कम्म-पोग्गलपरियट्टणं चेदि । तत्थ णोकम्मपोग्गलपरियट्टं[3] वत्तइस्सामो । तं जहा– जहि

मिथ्यात्वका सर्वजघन्य काल होता है ।

शंका– सासादनसम्यग्दृष्टि जीव मिथ्यात्वको क्यों नहीं प्राप्त कराया गया ? अर्थात् सासादनसम्यग्दृष्टिको भी मिथ्यात्व गुणस्थानमें पहुंचाकर उसका जघन्यकाल क्यों नहीं बतलाया ?

समाधान– नहीं, क्योंकि, सासादनसम्यक्त्वसे पीछे आनेवाले, अतितीव्र संक्लेशवाले मिथ्यात्वरूपी तृष्णासे विडम्बित मिथ्यादृष्टि जीवके सर्व जघन्य कालसे गुणान्तरसंक्रमणका अभाव है, अर्थात् सासादन गुणस्थानसे आया हुआ मिथ्यादृष्टि अति शीघ्र अन्य गुणस्थानको प्राप्त नहीं हो सकता ।

अब मिथ्यात्वके उत्कृष्टकालके बतलानेके लिए उत्तरसूत्र कहते हैं–

एक जीवकी अपेक्षा सादि-सान्त मिथ्यात्वका उत्कृष्टकाल कुछ कम अर्ध-पुद्गलपरिवर्तन है ॥ ४ ॥

शंका– अर्धपुद्गलपरिवर्तन किसे कहते हैं ?

समाधान– इस अनादि संसारमें भ्रमण करते हुए जीवोंके द्रव्यपरिवर्तन, क्षेत्र-परिवर्तन, कालपरिवर्तन, भवपरिवर्तन और भावपरिवर्तन, इस प्रकार पांच परिवर्तन होते रहते हैं । इसमेंसे जो द्रव्यपरिवर्तन है, वह दो प्रकारका है– नोकर्मपुद्गलपरिवर्तन और कर्मपुद्गलपरिवर्तन । उनमेंसे पहले नोकर्मपुद्गलपरिवर्तनको कहते हैं । वह इस प्रकार है–

यद्यपि पुद्गलोंके गमनागमनके प्रति कोई विरोध नहीं है, तो भी बुद्धिसे (किसी

१ प्रतिषु ' विणदिअस्स ' इति पाठः । २ उत्कर्षेणार्धपुद्गलपरिवर्तो देशोनः । स. सि. १, ८.

३ तत्र नोकर्मद्रव्यपरिवर्तनं नाम त्रयाणां शरीराणां षण्णां पर्याप्तीनां योग्या ये पुद्गला एकेन जीवेन एकस्मिन् समये गृहीताः स्निग्धरूक्षवर्णगन्धादिमिस्तीव्रमन्दमध्यमभावेन च यथावस्थिता द्वितीयादिषु समयेषु निर्जीर्णा अगृहीतानन्तवारानतीत्य मिश्रकांश्चानन्तवारानतीत्य मध्ये गृहीतांश्चानन्तवारानतीत्य त एव तेनैव प्रकारेण तस्यैव जीवस्य नोकर्मभावमापद्यन्ते यावत्तावत्समुदितं नोकर्मद्रव्यपरिवर्तनम् । स. सि. २, १०. गो. जी. जी. प्र. ५६०.

वि पोग्गलाणं गमणागमणं पडि विरोहो णत्थि, तो वि बुद्धीए आदिं कादूण णोकम्म-पोग्गलपरियट्टे भण्णमाणे अप्पिदपोग्गलपरियट्टब्भंतरे सव्वपोग्गलरासिम्हि एक्को वि परमाणू ण भुत्तो त्ति सव्वपोग्गलाणमगहिदसण्णा पोग्गलपरियट्टपढमसमए कादव्वा। अदीदकाले वि सव्वजीवेहि सव्वपोग्गलाणमणंतिमभागो सव्वजीवरासीदो अणंतगुणो, सव्वजीवरासिउवरिमवग्गादो अणंतगुणहीणो पोग्गलपुंजो भुत्तुज्झिदो। कुदो ? अभवसिद्धिएहि अणंतगुणेण सिद्धाणमणंतिमभागेण गुणिदादीदकालमेत्तसव्वजीव-रासिसमाणभुत्तुज्झिदपोग्गलपरिमाणोवलंभा।

सव्वे वि पोग्गला खलु एगे[1] भुत्तुज्झिदा हु जीवेण।
असइं अणंतखुत्तो पोग्गलपरियट्टसंसारे[2] ॥ १८ ॥

एदीए सुत्तगाहाए सह विरोहो किण्ण होदि त्ति भणिदे ण होदि, सव्वेगदेसम्हि गाहत्थसव्वसद्दप्पवुत्तीदो। ण च सव्वम्हि पयट्टमाणस्स सद्दस्स एगदेसपउत्ती असिद्धा, गामो दड्ढो, पदो दड्ढो, इच्चादिसु गाम-पदाणमेगदेसपयट्टसद्दुवलंभादो। तेण

विवक्षित पुद्गलपरमाणुपुंजको) आदि करके नोकर्मपुद्गलपरिवर्तनके कहनेपर विवक्षित पुद्गलपरिवर्तनके भीतर सर्वपुद्गलराशिमेंसे एक भी परमाणु नहीं भोगा है, ऐसा समझकर पुद्गलपरिवर्तनके प्रथम समयमें सर्व पुद्गलोंकी अगृहीतसंज्ञा करना चाहिए। अतीतकालमें भी सर्व जीवोंके द्वारा सर्वपुद्गलोंका अनन्तवां भाग, सर्वराशिसे अनन्तगुणा और सर्वजीव-राशिके उपरिम वर्गसे अनन्तगुणहीन प्रमाणवाला पुद्गलपुंज भोगकर छोड़ा गया है। इसका कारण यह है कि अभव्यसिद्धों जीवोंसे अनन्तगुणे और सिद्धोंके अनन्तवें भागसे गुणित अतीतकालप्रमाण सर्वजीवराशिके समान भोग करके छोड़े गये पुद्गलोंका परिणाम पाया जाता है।

शंका— यदि जीवने आज तक भी समस्त पुद्गल भोगकर नहीं छोड़े हैं, तो—

इस पुद्गलपरिवर्तनरूप संसारमें समस्त पुद्गल इस जीवने एक एक करके पुनः पुनः अनन्तबार भोग करके छोड़े हैं ॥ १८ ॥

इस सूत्रगाथाके साथ विरोध क्यों नहीं होगा ?

समाधान— उक्त सूत्रगाथाके साथ विरोध प्राप्त नहीं होता है, क्योंकि, गाथामें स्थित सर्व शब्दकी प्रवृत्ति सर्वके एक भागमें की गई है। तथा, सर्वके अर्थमें प्रवर्तित होनेवाले शब्दकी एकदेशमें प्रवृत्ति होना असिद्ध भी नहीं है, क्योंकि, ग्राम जल गया, पद (अमपद) जल गया, इत्यादिक वाक्योंमें उक्त शब्द ग्राम और पदोंके एक देशमें प्रयुक्त हुए भी पाये जाते हैं।

---

१ प्रतिषु ' एगो ' इति पाठः।
२ स. सि. २, १०. गो. जी., जी. प्र. ५६०.

पोग्गलपरियट्टादिसमए अगहिदतग्गिदे चेव पोग्गले तिण्हमेक्कदरसरीरणिप्पायणट्ठम-भवसिद्धिएहि अणंतगुणे[1] सिद्धाणमणंतिमभागमेत्ते गेण्हदि। ते च गेण्हंतो अप्पणो ओगाढखेत्तट्ठिदे चेव गेण्हदि, णो पुध खेत्तट्ठिदे। वुत्तं च—

एयक्खेत्तोगाढं सव्वपदेसेहि कम्मणो जोग्गं।
बंधइ जहुत्तहेदू सादियमध णादियं चावि[2] ॥ १९ ॥

बिदियसमए वि अण्णेदपोग्गलपरियट्टब्भंतरे अगहिदे चेव गेण्हदि। एवमुवरिमसमएसु अणंतकालमगहिदे चेव गेण्हदि। जहण्णेण दोसमएसु चेव अगहिदे गेण्हदि, पढम-समयगहिदपोग्गलाणं बिदियसमए णिज्जरिय अकम्मभावं गदाणं पुणो तदियसमए तम्हि चेव जीवे णोकम्मपज्जाएण परिणदाणमुवलंभादो। तं कथं णव्वदे? णोकम्मस्स आबाधाए विणा उदयाबिणिसेगुवदेसा। एसो पोग्गलपरियट्टकालो तिविहो होदि,

अतएव पुद्गलपरिवर्तनके आदि समयमें औदारिक आदि तीन शरीरोंमेंसे किसी एक शरीरके निष्पादन करनेके लिए जीव अभव्यसिद्धोंसे अनन्तगुणे और सिद्धोंके अनन्तवें भागमात्र अगृहीत संज्ञावाले पुद्गलोंको ही ग्रहण करता है। उन पुद्गलोंको ग्रहण करता हुआ भी अपने आश्रित क्षेत्रमें स्थित पुद्गलोंको ही ग्रहण करता है, किन्तु पृथक् क्षेत्रमें स्थित पुद्गलोंको नहीं ग्रहण करता है। कहा भी है—

यह जीव एक क्षेत्रमें अवगाहरूपसे स्थित और कर्मरूप परिणमनके योग्य पुद्गल-परमाणुओंको यथोक्त (आगमोक्त मिथ्यात्व आदि) हेतुओंसे सर्व प्रदेशोंके द्वारा बांधता है। वे पुद्गलपरमाणु सादि भी होते हैं, अनादि भी होते हैं और उभयरूप भी होते हैं ॥ १९ ॥

द्वितीय समयमें भी विवक्षित पुद्गलपरिवर्तनके भीतर अगृहीत पुद्गलोंको ही ग्रहण करता है। इस प्रकार उत्कृष्टकालकी अपेक्षा अनन्तकाल तक अगृहीत पुद्गलोंको ही ग्रहण करता है। किन्तु जघन्यकालकी अपेक्षा दो समयोंमें ही अगृहीत पुद्गलोंको ग्रहण करता है, क्योंकि, प्रथम समयमें ग्रहण किये गये पुद्गलोंकी द्वितीय समयमें निर्जरा करके अकर्मभाव (कर्मरहित अवस्था) को प्राप्त हुए वे ही पुद्गल पुनः तृतीय समयमें उसी ही जीवमें नोकर्म पर्यायसे परिणत हुए पाये जाते हैं।

शंका— प्रथम समयमें गृहीत पुद्गलपुंज द्वितीय समयमें निर्जीर्ण हो, अकर्मरूप अवस्थाको धारण कर, पुनः तृतीय समयमें उसी ही जीवमें नोकर्मपर्यायसे परिणत हो जाता है, यह कैसे जाना?

समाधान— क्योंकि, आबाधाकालके विना ही नोकर्मके उदय आदिके निषेकोंका उपदेश पाया जाता है।

यह पुद्गलपरिवर्तनकाल तीन प्रकारका होता है— अगृहीतग्रहणकाल, गृहीतग्रहणकाल

१ प्रतिषु 'गुणो' इति पाठः। २ गो. क. १८५, परं तत्र 'जहुत्तहेदू' इति स्थाने 'सयहेदूहि य' इति पाठः।

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज
अगहिदगहणद्धा गहिदगहणद्धा मिस्सयगहणद्धा चेदि । अप्पिदपोग्गलपरियट्टब्भंतरे अगहिद[1]पोग्गलगहणकालो अगहिदगहणद्धा णाम । अप्पिदपोग्गलपरियट्टब्भंतरे गहिदपोग्गलाणं चेव गहणकालो गहिदगहणद्धा णाम । अप्पिदपोग्गलपरियट्टब्भंतरे गहिदागहिदपोग्गलाणमक्कमेण गहणकालो मिस्सयगहणद्धा णाम । एवं तीहि पयारेहि पोग्गलपरियट्टकालो जीवस्स गच्छदि । एत्थ तिण्हमद्धाणं परियट्टणकमो वुच्चदे । तं जहा– पोग्गलपरियट्टादिसमयप्पहुडि अणंतकालो अगहिदगहणद्धा भवदि, तत्थ सेसदोपयाराभावा । पुणो अगहिदगहणद्धावसाणे सइं मिस्सयगहणद्धा होदि । पुणो वि विदियवारे अगहिदगहणद्धाए अणंतकालं गंतूण सइं मिस्सयद्धा होदि । एवं तदियवारे वि अगहिदगहणद्धाए अणंतकालं गमिय सइं मिस्सयद्धाए परिणमदि । एदेण पयारेण मिस्सयद्धाओ वि अणंताओ जादाओ । पुणो णंतकालं अगहिदगहणद्धाए गमिय सइं गहिदगहणद्धाए परिणमदि । एदेण कमेण अणंतो कालो गच्छदि जाव गहिदगहणद्ध-

और मिश्रग्रहणकाल । विवक्षित पुद्गलपरिवर्तनके भीतर अगृहीत पुद्गलोंके ग्रहण करनेके कालका नाम अगृहीतग्रहणकाल है । विवक्षित पुद्गलपरिवर्तनके भीतर गृहीत पुद्गलोंके ही ग्रहण करनेके कालका नाम गृहीतग्रहणकाल है । तथा विवक्षित पुद्गलपरिवर्तनके भीतर गृहीत और अगृहीत, इन दोनों प्रकारके पुद्गलोंके अक्रमसे अर्थात् एक साथ ग्रहण करनेके कालका नाम मिश्रग्रहणकाल है । इस तरह उक्त तीनों प्रकारोंसे जीवका पुद्गलपरिवर्तनकाल व्यतीत होता है ।

विशेषार्थ– जिन पुद्गलपरमाणुओंके समुदायरूप समयप्रबद्धमें केवल पहले ग्रहण किये हुए परमाणु ही हों, उस पुद्गलपुंजको गृहीत कहते हैं । जिस समयप्रबद्धमें ऐसे परमाणु हों कि जिनका जीवने पहिले कभी ग्रहण नहीं किया हो उस पुद्गलपुंजको अगृहीत कहते हैं । जिस समयप्रबद्धमें दोनों प्रकारके परमाणु हों उस पुद्गलपुंजको मिश्र कहते हैं ।

अब यहांपर उक्त तीनों प्रकारके कालोंके परिवर्तनका क्रम कहते हैं । वह इस प्रकार है– पुद्गलपरिवर्तनके आदि समयसे लेकर अनन्तकाल तक अगृहीत-ग्रहणका काल होता है, क्योंकि, उसमें शेष दो प्रकारके कालोंका अभाव है । पुनः अगृहीतग्रहणकालके अन्तमें एक बार मिश्रपुद्गलपुंजके ग्रहण करनेका काल आता है । फिर भी द्वितीयबार अगृहीतग्रहणकालके द्वारा अनन्तकाल जाकर एकबार मिश्रपुद्गल-पुंजके ग्रहण करनेका काल आता है । इसी प्रकार तृतीयबार भी अगृहीतग्रहणकालके द्वारा अनन्तकाल जाकर एक बार मिश्रग्रहणकालरूपसे परिणमन होता है । इस प्रकारसे मिश्रग्रहण-कालकी भी शलाकाएं अनन्त हो जाती हैं । पुनः अनन्तकाल अगृहीतग्रहणकालके द्वारा बिता कर एकबार गृहीतग्रहणकालरूपसे परिणमन होता है । इस क्रमसे अनन्तकाल व्यतीत होता हुआ तब तक चला जाता है जब तक कि गृहीतग्रहणकालकी शलाकाएं भी

१ प्रतिषु ' जं गहिद– ' इति पाठः ।

सलागाओ वि अणंतत्तं पत्ताओ त्ति। पुणो उवरि अणंतं कालं मिस्सयगहणद्धाए गमेदूण[1] सइं अगहिदगहणद्धा परिणमदि। एवमेदाहि दोहि अद्धाहि अणंतकालं गमिय सइं गहिदगहणद्धा भवदि। एवमेदेण पयारेण जीवस्स कालो गच्छदि जाव एत्थतणगहिदगहणद्धासलागाओ अणंतत्तं पत्ताओ त्ति। एवं दो परियट्टणवारा गदा। पुणो णंतं कालं मिस्सयद्धाए गमिय सइं गहिदगहणद्धाए परिणमदि। एदेण पयारेण गहिदगहणद्धासलागाओ अणंतत्तं पत्ताओ। तदो सइमगहिदगहणद्धाए परिणमदि। एदेण वि पयारेण अणंतो कालो गच्छदि जाव एत्थतणअगहिदगहणद्धासलागाओ अणंतत्तं पत्ताओ त्ति। एसो तदियो परियट्टो। संपहि चउत्थपरियट्टं भणिस्सामो। तं जहा– अणंतकालं गहिदगहणद्धाए गमेदूण सइं मिस्सयगहणद्धाए परिणमदि। एवमेदाहि दोहि अद्धाहि अणंतकालं गमेदि जाव एत्थतणमिस्सयगहणद्धासलागाओ अणंतत्तं पत्ताओ त्ति। तदो सइमगहिदगहणद्धाए परिणमदि। पुणो उवरि एदेण चेव कमेण कालो गच्छदि जाव पोग्गलपरियट्टचरिमसमओ त्ति[2]। पोग्गलपरिट्टयआदिमसमए जे

अनन्तत्वको प्राप्त हो जाती है (इस प्रकार प्रथम परिवर्तनवार व्यतीत हुआ) पुनः इसके आगे अनन्तकाल मिश्रग्रहणकालकी अपेक्षा बिताकर एकवार अगृहीतग्रहणकाल परिणत होता है। इस प्रकार इन दोनों प्रकारके कालोंसे अनन्त काल बिताकर एकवार गृहीतग्रहणकाल होता है। इस तरह उक्त प्रकारसे जीवका काल तब तक व्यतीत होता हुआ चला जाता है। जब तक कि यहांकी गृहीतग्रहणकालसम्बन्धी शलाकाएं भी अनन्तताको प्राप्त हो जाती हैं। इस प्रकार दो परिवर्तनवार व्यतीत हुए। पुनः अनन्तकाल मिश्रग्रहणकालके द्वारा बिताकर एकवार गृहीतग्रहणकालका परिणमन होता है। इस प्रकारसे गृहीतग्रहणकालकी शलाकाएं अनन्तताको प्राप्त हो जाती हैं। तत्पश्चात् एकवार अगृहीतग्रहणकालरूपसे परिणमन होता है। पुनः इस प्रकारसे भी अनन्तकाल तब तक व्यतीत होता है जब तक कि यहां पर भी अगृहीत-ग्रहणकालसम्बन्धी शलाकाएं अनन्तताको प्राप्त होती हैं। यह तीसरा परिवर्तन है। अब चतुर्थ परिवर्तनको कहते हैं। वह इस प्रकार है– अनन्तकाल गृहीतग्रहणकालसम्बन्धी बिताकर एकवार मिश्रग्रहणकालका परिवर्तन होता है। इस प्रकार इन दोनों प्रकारके कालोंद्वारा अनन्तकाल बिताता है जब तक कि यहांकी मिश्रग्रहणकालसम्बन्धी शलाकाएं अनन्तताको प्राप्त होती हैं। इसके पश्चात् एकवार अगृहीतग्रहणकालरूपसे परिणमित होता है। इसके पश्चात् फिर भी इसके आगे इस ही क्रमसे पुद्गलपरिवर्तनके अन्तिम समय तक काल व्यतीत होता जाता है। (इस चतुर्थ परिवर्तनके समाप्त हो जानेपर) नोकर्मपुद्गलपरिवर्तनके

१ प्रतिषु ' गमेदूण ण सइं ' इति पाठः।

२ अगहिदमिस्सं गहिदं मिस्समगहिदं तहेव गहिदं च। मिस्सं गहिदमगहिदं गहिदं मिस्सं च अगहिदं च ॥ गो. जी. जी. प्र. ५६०.

जीवेण णोकम्मसरूवेण गहिदा पोग्गला ते विदियादिसमएसु अकम्मभावं गंतूण जम्हि काले ते चेव सुद्धा आगच्छंति सो कालो पोग्गलपरियट्टो त्ति भण्णदि ।

०	+	+	१
+	०	१	+
१	१	०	०

आदिम समयमें जीवके द्वारा नोकर्मस्वरूपसे जो पुद्गल ग्रहण किये थे वे ही पुद्गल द्वितीयादि समयोंमें अकर्मभावको प्राप्त होकरके जिस कालमें वे ही शुद्ध पुद्गल आने लगते हैं, वह काल 'पुद्गलपरिवर्तन' इस नामसे कहा जाता है ।

विशेषार्थ– परिवर्तन पांच प्रकारका है– द्रव्यपरिवर्तन, क्षेत्रपरिवर्तन, कालपरिवर्तन, भवपरिवर्तन और भावपरिवर्तन । इनमें से द्रव्यपरिवर्तनके दो भेद हैं– नोकर्मद्रव्यपरिवर्तन और कर्मद्रव्यपरिवर्तन । यहां नोकर्मद्रव्यपरिवर्तनका स्वरूप बतलाया गया है । उसी स्वरूपसे समझानेके लिए मूलमें संदृष्टि दी गई है । जिससे अगृहीतसूचक शून्य (०) पुनः मिश्रसूचक हंसपद (+) और गृहीतसूचक एकका अंक (१) दिया गया है । इसका अभिप्राय यह है कि अनन्तवार अगृहीत परमाणुपुंजके ग्रहण करनेके बाद एक बार मिश्र परमाणुपुंजका ग्रहण होता है । पुनः अनन्तवार उक्त क्रमसे मिश्रग्रहण करनेके बाद एक बार गृहीत परमाणुपुंजका ग्रहण होता है । इस प्रकार अनन्तवार गृहीतग्रहण हो जाने पर नोकर्मपुद्गलपरिवर्तनका प्रथम भेद समाप्त होता है । यह संदृष्टिकी प्रथम कोष्ठक-पंक्तिका अर्थ है । तत्पश्चात् अनन्तवार मिश्रका ग्रहण होने पर एकवार अगृहीतका ग्रहण होता है । और अनन्तवार अगृहीतका ग्रहण हो जाने पर एकवार गृहीतका ग्रहण होता है । इस प्रकारसे अनन्तवार गृहीतका ग्रहण हो जाने पर नोकर्मपुद्गलपरिवर्तनका दूसरा भेद समाप्त होता है । यही दूसरी कोष्ठक-पंक्तिका अभिप्राय है । पुनः अनन्तवार मिश्रका ग्रहण हो जाने पर एकवार गृहीतका और अनन्तवार गृहीतका ग्रहण हो जाने पर एकवार अगृहीतका ग्रहण होता है । इस प्रकारसे अनन्तवार अगृहीतग्रहण होने पर नोकर्मपुद्गलका तीसरा भेद समाप्त होता है । यही तीसरी कोष्ठक-पंक्तिका अर्थ है । पुनः अनन्तवार गृहीतका ग्रहण होनेके पश्चात् एकवार मिश्रका और अनन्तवार मिश्रका ग्रहण होने पर एकवार अगृहीतका ग्रहण होता है । इस प्रकारसे अनन्तवार अगृहीतका ग्रहण हो जाने पर नोकर्मपुद्गलपरिवर्तनका चौथा भेद समाप्त होता है । इस सबके समुदायको नोकर्मद्रव्यपरिवर्तन कहते हैं । तथा इसमें जितना समय लगता है उसको नोकर्मद्रव्यपरिवर्तनका काल कहते हैं ।

१ प्रतिषु

०	०	१	१
+	१	०	+
१	+	+	०

इति पाठः ।

एत्थ अप्पाबहुगं । सव्वत्थोवा अगहिदगहणद्धा । मिस्सयगहणद्धा अणंतगुणाओ । जहण्णिया गहिदगहणद्धा अणंतगुणा । जहण्णओ पोग्गलपरियट्टो विसेसाहिओ । उक्कस्सिया गहिदगहणद्धा अणंतगुणा । उक्कस्सओ पोग्गलपरियट्टो विसेसाहिओ । किं कारणमगहिदगहणद्धा थोवा जादा ? वुच्चदे– जे णोकम्मपज्जाएण परिणमिय अकम्मभावं गंतूण तेण अकम्मभावेण जे थोवकालमच्छिया ते बहुवारमागच्छंति, अविणट्ठचउव्विहपाओग्गादो[1] । जे पुण अप्पिदपोग्गलपरियट्टब्भंतरे ण गहिदा ते चिरेण आगच्छंति, अकम्मभावं गंतूण तत्थ चिरकालावट्ठाणेण विणट्ठचउव्विहपाओग्गसादो । भणिदं च–

सुहुमट्ठिदिसंजुत्तं आसण्णं कम्मणिज्जरामुक्कं ।
पाएण तदो गहणं दव्वमणिद्दिट्ठसंठाण[2] ॥ २० ॥

अब उक्त अगृहीत, मिश्र और गृहीतसंबन्धी तीनों प्रकारके कालोंका अल्पबहुत्व कहते हैं– सबसे कम अगृहीतग्रहणका काल है । अगृहीतग्रहणके कालसे मिश्रग्रहणका काल अनन्तगुणा है । मिश्रग्रहणके कालसे जघन्य गृहीतग्रहणका काल अनन्तगुणा है । जघन्य गृहीतग्रहणके कालसे जघन्य पुद्गलपरिवर्तनका काल विशेष अधिक है । जघन्य पुद्गल-परिवर्तनके कालसे उत्कृष्ट गृहीतग्रहणका काल अनन्तगुणा है । और उत्कृष्ट गृहीतग्रहणके कालसे उत्कृष्ट पुद्गलपरिवर्तनका काल विशेष अधिक है ।

शंका– अगृहीतग्रहणकालके सबसे कम होनेका कारण क्या है ?

समाधान– जो पुद्गल नोकर्मपर्यायसे परिणमित होकर पुनः अकर्मभावको प्राप्त हो, उस अकर्मभावसे अल्पकाल तक रहते हैं वे पुद्गल तो बहुतवार आते हैं; क्योंकि, उनकी द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावरूप चार प्रकारकी योग्यता नष्ट नहीं होती है । किन्तु जो पुद्गल विवक्षित पुद्गलपरिवर्तनके भीतर नहीं ग्रहण किये गये हैं, वे चिरकालके बाद आते हैं, क्योंकि, अकर्मभावको प्राप्त होकर उस अवस्थामें चिरकाल तक रहनेसे द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावरूप संस्कारका विनाश हो जाता है । कहा भी है–

जो कर्मपुद्गल पहले बद्धावस्थामें सूक्ष्म अर्थात् अल्प स्थितिसे संयुक्त थे, अतएव निर्जरा द्वारा कर्मरूप अवस्थासे मुक्त अर्थात् रहित हुए, किन्तु आसन्न अर्थात् जीवके प्रदेशोंके साथ जिनका एकक्षेत्रावगाह है, तथा जिनका आकार अनिर्दिष्ट अर्थात् कहा नहीं जा सकता है, इस प्रकारका पुद्गल द्रव्य बहुलतासे ग्रहणको प्राप्त होता है ॥ २० ॥

१ अत्रागृहीतग्रहणकालः अनन्तोऽपि सर्वतः स्तोकः । कुतः, विनष्टद्रव्यक्षेत्रकालभावसंस्कारपुद्गलानां बहुवारग्रहणाघटनात् । अनेन विवक्षितपुद्गलपरिवर्तनमध्ये बहुवारग्रहणं संभवतीत्युक्तं भवति । गो. जी., जी. प्र. ५६०.

२ अल्पस्थितिसंयुक्तं जीवप्रदेशेषु स्थितं निर्जरया विमोचितकर्मस्वरूपं पुद्गलद्रव्यं अनिर्दिष्टसंस्थानं विवक्षितपरावर्तनप्रथमसमयोक्तस्वरूपरहितं जीवेन प्रचुरवृत्त्या स्वीक्रियते । कुतः ? द्रव्यादिचतुर्विधसंस्कार-संपन्नत्वात् । गो. जी., जी. प्र. ५६०.

एदेण कारणेण अगहिदगहणद्धा थोवा जादा । एसो णोकम्मपोग्गलपरियट्टो णाम । जधा णोकम्मपोग्गलपरियट्टो वुत्तो, तधा चेव कम्मपोग्गलपरियट्टो[1] वत्तव्वो । णवरि विसेसो णोकम्मपोग्गला आहारवग्गणादो आगच्छंति । कम्मपोग्गला पुण कम्मइयवग्गणादो । णोकम्मपोग्गलाणं तदियसमए चेव मिस्सयगहणद्धा होदि । कम्मपोग्गलाणं पुण तिसमयाहियावलियाए । कुदो ? बंधावलियादीदाणं समयाहियावलियाए ओकड्डणवसेण पत्तोदयाणं दुसमयाहियावलियाए अकम्मभावं गदाणं कम्मपोग्गलाणं तिसमयाहियावलियाए कम्मपज्जाएण परिणमिय अण्णपोग्गलेहि सह जीवे बंधं गदाणमुवलंभा । णवरि दोसु वि पोग्गलपरियट्टेसु सुहुमणिगोदजीवअपज्जत्तएण पढमसमयतब्भवत्थेण पढमसमयआहारएण जहण्णुववादजोगेण गहिदकम्म-णोकम्मदव्वं घेत्तूण आदी कायव्वा । एत्थ उवउज्जंती गाहा–

गहणसमयम्हि जीवो उप्पादेदि हु गुणंसपच्चयदो ।
जीवेहि अणंतगुणं [illegible] ॥ २१ ॥

इस सूत्रोक्त कारणसे अगृहीतग्रहणका काल अल्प होता है ।

इस प्रकार इस सबका नाम नोकर्मपुद्गलपरिवर्तन है ।

जिस प्रकारसे नोकर्मपुद्गलपरिवर्तन कहा है, उसी प्रकारसे कर्मपुद्गलपरिवर्तन भी कहना चाहिए । विशेष बात यह है कि नोकर्मपुद्गल आहारवर्गणासे आते हैं । किन्तु कर्मपुद्गल कार्मणवर्गणासे आते हैं । नोकर्मपुद्गलोंके मिश्रग्रहणका काल तृतीय समयमें ही होता है । किन्तु कर्मपुद्गलोंके मिश्रग्रहणका काल तीन समय अधिक आवलीप्रमाण कालके व्यतीत होने पर होता है; क्योंकि, जो बन्धावलीसे अतीत हैं, एक समय अधिक आवलीके द्वारा अपकर्षणके वशसे जो उदयको प्राप्त हुए हैं, और दो समय अधिकआवलीके रहनेपर जो अकर्मभावको प्राप्त हुए हैं, ऐसे कर्मपुद्गलोंका तीन समय अधिक आवलीके द्वारा कर्मपर्यायसे परिणमन होकर अन्य पुद्गलोंके साथ जीवमें बंधको प्राप्त होना पाया जाता है । विशेष बात यह है कि दोनों ही पुद्गलपरिवर्तनोंमें प्रथम समयमें तद्भवस्थ अर्थात् उत्पन्न हुए, तथा प्रथम समयमें ही आहारक हुए सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्त जीवके द्वारा जघन्य उपपादयोगसे गृहीत कर्म और नोकर्मद्रव्यको ग्रहण करके आदि अर्थात् परिवर्तनका प्रारंभ करना चाहिए । यहां पर उपयुक्त गाथा इस प्रकार है–

कर्मग्रहणके समयमें जीव अपने गुणांश प्रत्ययोंसे, अर्थात् स्वयोग्य बंधकारणोंसे, जीवोंसे अनन्तगुणे कर्मोंको अपने सर्व प्रदेशोंमें उत्पादन करता है ॥ २१ ॥

१ कर्मद्रव्यपरिवर्तनमुच्यते– एकस्मिन् समये एकेन जीवेनाष्टविधकर्मभावेन पुद्गला ये गृहीताः समयाधिकामावलिकामतीत्य द्वितीयादिषु समयेषु निर्जीर्णाः पूर्वोक्तेनैव क्रमेण त एव तेनैव प्रकारेण तस्य जीवस्य कर्मभावमापद्यन्ते यावत्तावत्कर्मद्रव्यपरिवर्तनम् । स. सि. २, १०. २ प्रतिषु ' परियट्टे ' इति पाठः ।

एवं दव्वपोग्गलपरियट्टणं गदं । खेत्त-काल-भव-भावपोग्गलपरियट्टा भाणिदूण गेण्हिदव्वा । तेसिं गाहाओ–

सव्वे वि पोग्गला खलु एगे भुत्तुज्झिदा हु जीवेण ।
असई अणंतखुत्तो पोग्गलपरियट्टसंसारे[1] ॥ २२ ॥
सव्वम्हि लोगखेत्ते कमसो तण्णत्थि जण्ण ओच्छुण्णं ।
ओगाहणाओ बहुसो हिंडते खेत्तसंसारे[2] ॥ २३ ॥
ओसप्पिणि-उस्सप्पिणि-समयावलिया णिरंतरा सव्वा ।
जादो मुदो य बहुसो हिंडंतो कालसंसारे[3] ॥ २४ ॥
[4]णिरआउआ जहण्णा जाव दु उवरिल्लओ दु गेवज्जो ।
जीवो मिच्छत्तवसा भवट्ठिदिं हिंडिदो बहुसो[5] ॥ २५ ॥

इस प्रकार द्रव्यपुद्गलपरिवर्तन समाप्त हुआ । क्षेत्र, काल, भव और भावपुद्गल-परिवर्तनोंको कहलाकर ग्रहण करा देना चाहिए । उन परिवर्तनोंकी (संक्षेपसे अर्थ-प्रतिपादक) गाथाएं इस प्रकार हैं–

इस जीवने इस पुद्गलपरिवर्तनरूप संसारमें एक एक करके पुनः पुनः अनन्तवार सम्पूर्ण पुद्गल भोग करके छोड़े हैं ॥ २२ ॥

इस समस्त लोकरूप क्षेत्रमें एक प्रदेश भी ऐसा नहीं है जिसे कि क्षेत्रपरिवर्तनरूप संसारमें क्रमशः भ्रमण करते हुए बहुतवार नाना अवगाहनाओंसे इस जीवने न छुआ हो ॥२३॥

कालपरिवर्तनरूप संसारमें भ्रमण करता हुआ यह जीव उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी कालके सर्व समयोंकी आवलियोंमें निरंतर बहुतवार उत्पन्न हुआ और मरा है ॥ २४ ॥

भवपरिवर्तनरूप संसारमें भ्रमण करता हुआ यह जीव मिथ्यात्वके वशसे जघन्य नारकायुसे लगाकर (तिर्यंच, मनुष्य और) उपरिम ग्रैवेयक तककी भवस्थितिको बहुतवार प्राप्त हो चुका है ॥ २५ ॥

---

१ स. सि. २, २०. परं तत्र ' एगे ' इति स्थाने ' कमसो ' इति पाठः । सर्वेऽपि पुद्गलाः खलु एकेनात्तोज्झितताश्च जीवेन । ह्यसकृत्त्वनंतकृत्वः पुद्गलपरिवर्तसंसारे ॥ गो. जी. जी. प्र. ५६०.

२ स. सि. २, १०. परं तत्र ' ओच्छुण्णं ' इति स्थाने ' उच्छण्णं ' इति पाठः । सर्वत्र जगत्क्षेत्रे देशो न ह्यस्ति जंतुनाऽक्षुण्णः । अवगाहनानि बहुशो बंभ्रमता क्षेत्रसंसारे ॥ गो. जी. जी. प्र. ५६०.

३ स. सि. २, १०. परं तत्र द्वितीयचरणे ' समयावलियासु णिरवसेसासु ' इति पाठः । उत्सर्पणावसर्पण-समयावलिकासु निरवशेषासु । जातो मृतश्च बहुशः परिभ्रमन् कालसंसारे ॥ गो. जी. जी. प्र. ५६०.

४ प्रतिषु गाथेयं २६ तमांकितगाथायाः पश्चादुपलभ्यते ।

५ णिरयादिजहण्णादिसु जाव दु उवरिल्लया दु गेवेज्जा । मिच्छत्तसंसिदेण दु बहुसो वि भवट्ठिदी भमिदा ॥ स. सि. २, १०. नरकजघन्यायुष्यादुपरिमग्रैवेयकावसानेषु । मिथ्यात्वसंश्रितेन हि भवस्थितिर्भावितो बहुशः ॥ गो. जी. जी. प्र. ५६०.

सव्वासिं पयडीणं अणुभाग-पदेसबंधठाणाणि ।
जीवो मिच्छत्तवसा परिभमिदो भावसंसारे[1] ॥ २६ ॥
परियट्टिदाणि बहुसो पंच वि परियट्टणाणि जीवेण ।
जिणवयणमलभमाणेण दीदकाले अणंताणि[2] ॥ २७ ॥
जह गेण्हइ परियट्टं पुरिसो अच्छादणस्स विविहस्स ।
तह पोग्गलपरियट्टे गेण्हइ जीवो सरीराणि ॥ २८ ॥

अदीदकाले एगस्स जीवस्स सव्वत्थोवा भावपरियट्टवारा । भवपरियट्टवारा अणंतगुणा । कालपरियट्टवारा अणंतगुणा । खेत्तपरियट्टवारा अणंतगुणा । पोग्गलपरिट्टयवारा अणंतगुणा । सव्वत्थोवो पोग्गलपरियट्टकालो । खेत्तपरियट्टकालो अणंतगुणो । कालपरियट्टकालो अणंतगुणो । भवपरियट्टकालो अणंतगुणो । भावपरियट्टकालो अणंतगुणो[3] ।

यह जीव मिथ्यात्वके वशीभूत होकर भावपरिवर्तनरूप संसारमें परिभ्रमण करता हुआ सम्पूर्ण प्रकृतियोंके प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश बंधस्थानोंको अनेकबार प्राप्त हुआ है ॥ २६ ॥

जिन-वचनोंको नहीं पा करके इस जीवने अतीतकालमें पांचों ही परिवर्तन पुनः पुनः करके अनन्तवार परिवर्तित किये हैं ॥ २७ ॥

जिस प्रकार कोई पुरुष नाना प्रकारके वस्त्रोंके परिवर्तनको ग्रहण करता है अर्थात् उतारता है और पहनता है, उसी प्रकारसे यह जीव भी पुद्गलपरिवर्तनकालमें नाना शरीरोंको छोड़ता और ग्रहण करता है ॥ २८ ॥

अतीतकालमें एक जीवके सबसे कम भावपरिवर्तनके वार हैं । भवपरिवर्तनके वार भावपरिवर्तनके वारोंसे अनन्तगुणे हैं । कालपरिवर्तनके वार भवपरिवर्तनके वारोंसे अनन्तगुणे हैं । क्षेत्रपरिवर्तनके वार कालपरिवर्तनके वारोंसे अनन्तगुणे हैं । पुद्गलपरिवर्तनके वार क्षेत्रपरिवर्तनके वारोंसे अनन्तगुणे हैं ।

पुद्गलपरिवर्तनका काल सबसे कम है । क्षेत्रपरिवर्तनका काल पुद्गलपरिवर्तनके कालसे अनन्तगुणा है । कालपरिवर्तनका काल क्षेत्रपरिवर्तनके कालसे अनन्तगुणा है । भवपरिवर्तनका काल कालपरिवर्तनके कालसे अनन्तगुणा है । भावपरिवर्तनका काल भवपरिवर्तनके कालसे अनन्तगुणा है । (इन परिवर्तनोंकी विशेष जानकारीके लिये देखो सर्वार्थसिद्धि २, १०; व गोम्मटसार जीवकांड गाथा ५६० टीका)

१ सव्वा पयडिट्ठिदिओ अणुभागपदेसबंधठाणाणि । मिच्छत्तसंसिदेण य भमिदा पुण भावसंसारे । स. सि. २, १०. सर्वप्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशबंधयोग्यानि । स्थानान्यनुभूतानि भ्रमता भुवि भावसंसारे ॥ गो. जी. जी. प्र. ५६०.

२ पंचविधे संसारे कर्मवशाज्जैनदर्शितं मुक्तेः । मार्गमपश्यन् प्राणी नानादुःखाकुले भ्रमति । गो.जी. जी. प्र. ५६०.

३ गो. जी. जी. प्र. ५६०.

वेसु परियट्टेसु पोग्गलपरियट्टेण पयदं । कम्म-णोकम्मभेदेण दुविहो पोग्गलपरियट्टो, तत्थ केण पयदं ? दोहि वि पयदं, दोण्हं कालभेदाभावा । सो वि कुदो अवगम्मदे ? पोग्गलपरियट्टप्पाबहुगे दो वि पोग्गलपरियट्टे एक्कट्ठं कादूण कालप्पाबहुगविधाणादो। एदस्स पोग्गलपरियट्टकालस्स अद्धं देसूणं सादि-सणिहणमिच्छत्तस्स कालो होदि । तं कथं ? एगो अणादियमिच्छादिट्ठी अपरित्तसंसारो अधापवत्तकरणं अपुव्वकरणं अणियट्टिकरणमिदि एदाणि तिण्णि करणाणि कादूण सम्मत्तंगहिदपढमसमए चेव सम्मत्तगुणेण पुव्विल्लो अपरित्तो संसारो ओहट्टिदूण परित्तो पोग्गलपरियट्टस्स अद्धमेत्तो होदूण उक्कस्सेण चिट्ठदि । जहण्णेण अंतोमुहुत्तमेत्तो । एत्थ पुण जहण्ण-कालेण णत्थि कज्जं, उक्कस्सेण अधियारादो । सम्मत्तंगहिदपढमसमए णट्ठो मिच्छत्तपज्जाओ । कधमुप्पत्ति-विणासाणमेक्को समओ । ण, एक्कम्हि समए

इन ऊपर बतलाये गये पांचों परिवर्तनोंमेंसे यहां पर पुद्गलपरिवर्तनसे प्रयोजन है ।

शंका– कर्म और नोकर्मके भेदसे पुद्गलपरिवर्तन दो प्रकारका है, उनमेंसे यहांपर किससे प्रयोजन है ?

समाधान– यहां दोनों ही पुद्गलपरिवर्तनोंसे प्रयोजन है, क्योंकि, दोनोंके कालमें भेद नहीं है ।

शंका– यह भी कैसे जाना जाता है ?

समाधान– पुद्गलपरिवर्तनकालके अल्पबहुत्व बतलाते समय दोनों ही पुद्गल-परिवर्तनोंको इकट्ठा करके कालका अल्पबहुत्वविधान किया गया है । इससे जाना जाता है कि दोनों पुद्गलपरिवर्तनोंके कालमें भेद नहीं है ।

इस पुद्गलपरिवर्तनकालका कुछ कम अर्धभाग सादि-सान्त मिथ्यात्वका काल होता है ।

शंका– सादि-सान्त मिथ्यात्वका काल कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन कैसे होता है ?

समाधान– एक अनादि मिथ्यादृष्टि अपरीतसंसारी (जिसका संसार बहुत शेष है ऐसा) जीव, अधःप्रवृत्तकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, इस प्रकार इन तीनों ही करणोंको करके सम्यक्त्व ग्रहणके प्रथम समयमें ही सम्यक्त्वगुणके द्वारा पूर्ववर्ती अपरीत संसारीपना हटाकर व परीतसंसारी हो करके अधिकसे अधिक पुद्गलपरिवर्तनके आधे काल प्रमाण ही संसारमें ठहरता है । तथा, सादि-सान्त मिथ्यात्वका काल कम से कम अन्तर्मुहूर्तमात्र है । किन्तु यहां पर अघन्यकालसे प्रयोजन नहीं है, क्योंकि, उत्कृष्ट कालका अधिकार है । सम्यक्त्वके ग्रहण करनेके प्रथम समयमें ही मिथ्यात्व पर्याय नष्ट हो जाती है ।

शंका– सम्यक्त्वकी उत्पत्ति और मिथ्यात्वका विनाश इन दोनों विभिन्न कार्योंका एक समय कैसे हो सकता है ?

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

पिंडागारेण विणट्ठस्स-घडागारेणुप्पण्ण-मट्टियदव्वस्सुवलंभा। सव्वजहण्णमंतोमुहुत्त-मुवसमसम्मत्तद्धाए अच्छिदूण मिच्छत्तं गदो। तदो मिच्छत्तेण सादिओ जादो, विणट्ठो सम्मत्तपज्जाएण। तदो मिच्छत्तपज्जाएण उवड्ढपोग्गलपरियट्ट[1] परियट्टिदूण अपच्छिमे भवग्गहणे मणुस्सेसु उववण्णो। पुणो अंतोमुहुत्तावसेसे संसारे तिण्णि वि करणाणि कादूण पढमसम्मत्तं पडिवण्णो (२)। तदो वेदगसम्माइट्ठी जादो (३)। अंतो मुहुत्तेण अणंताणुबंधि विसंजोएदूण (४) तदो दंसणमोहणीयं खवेदूण (५) पुणो अप्पमत्तो जादो (६)। पमत्तापमत्तपरावत्तसहस्सं कादूण (७) खवगसेढिमारुहमाणो अप्पमत्तसंजदट्ठाणे अधापवत्तविसोहीए विसुज्झिदूण (८) अपुव्वकरणखवगो (९) अणियट्टिखवगो (१०) सुहुमखवगो (११) खीणकसाओ (१२) सजोगी (१३) अजोगी होदूण सिद्धो जादो (१४) एवमेदेहि चोद्दसेहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणमद्धपोग्गलपरियट्टं सादिसपज्जवसिदमिच्छत्तकालो होदि।

मिच्छत्तं णाम पज्जाओ। सो च उप्पाद-विणासलक्खणो, ट्ठिदीए अभावादो। अह जइ तस्स ट्ठिदी वि इच्छिज्जदि, तो मिच्छत्तस्स दव्वत्तं पसज्जदे; 'उप्पाद-ट्ठिदि-भंगा

समाधान– नहीं, क्योंकि, जैसे एक ही समयमें पिण्डरूप आकारसे विनष्ट हुआ और घटरूप आकारसे उत्पन्न हुआ मृत्तिकारूप द्रव्य पाया जाता है; उसी प्रकार कोई जीव सबसे कम अन्तर्मुहूर्तप्रमाण उपशमसम्यक्त्वके कालमें रहकर मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ। इसलिए मिथ्यात्वसे वह आदि सहित उत्पन्न हुआ और सम्यक्त्वपर्यायसे विनष्ट हुआ। तत्पश्चात् मिथ्यात्वपर्यायसे कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण संसारमें परिभ्रमण कर, अन्तिम भवके ग्रहण करने पर मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ। पुनः अन्तर्मुहूर्तकाल संसारके अवशेष रह जाने पर तीनों ही करणोंको करके प्रथमोपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (२)। पुनः वेदकसम्यग्दृष्टि हुआ (३)। पुनः अन्तर्मुहूर्तकालद्वारा अनंतानुबंधी कषायका विसंयोजन करके (४), उसके बाद दर्शनमोहनीयका क्षय करके (५), पुनः अप्रमत्तसंयत हुआ (६)। फिर प्रमत्त और अप्रमत्त, इन दोनों गुणस्थानोंसम्बन्धी सहस्रों परिवर्तनोंको करके (७), क्षपकश्रेणीपर चढ़ता हुआ अप्रमत्तसंयतगुणस्थानमें अधःप्रवृत्तकरणविशुद्धिसे शुद्ध होकर (८), अपूर्वकरण क्षपक (९), अनिवृत्तिकरण क्षपक (१०), सूक्ष्मसाम्पराय क्षपक (११), क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ (१२), सयोगिकेवली (१३), और अयोगिकेवली होता हुआ सिद्ध हो गया (१४)। इस प्रकार इन चौदह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण सादि और सान्त मिथ्यात्वका काल होता है।

शंका– मिथ्यात्वका नाम पर्यायका है। वह पर्याय उत्पाद और विनाश लक्षणवाला है, क्योंकि, उसमें स्थितिका अभाव है। और यदि उसकी स्थिति भी मानते हैं, तो मिथ्यात्वके द्रव्यपना प्राप्त होता है, क्योंकि, 'उत्पाद, स्थिति और भंग, अर्थात् व्यय, ही द्रव्यका लक्षण है'

---

१ देसूणमद्धपोग्गलपरियट्टमुवड्ढपोग्गलपरियट्टमिदि भण्णदे। जयध.

हंदि दवियलक्खणं[1] इच्चारिसादो त्ति ? ण एस दोसो, जमक्कमेण तिलक्खणं तं दव्वं; जं पुण कमेण उप्पाद-ट्ठिदि-भंगिल्लं सो पज्जाओ त्ति जिणोवदेसादो[2]। जदि एवं, तो पुढवि-आउतेउ-वाऊणं पि पज्जायत्तं पसज्जदि त्ति वुत्ते, होदु तेसिं पज्जायत्तं, इट्ठत्तादो। तेसु दव्ववहारो वि लोए दिस्सदीदि चे ण, तस्स दुणयणिबंधणणेगमणयणिबंधणत्तादो। सुद्धे दव्वट्ठियणए अवलंबिदे छच्चेव दव्वाणि; असुद्धे दव्वट्ठियणए अवलंबिदे पुढविआदीणि अणेयाणि दव्वाणि होंति, वंजणपज्जायस्स दव्वसब्भुवगमादो। सुद्धे पज्जायणए अप्पिदे पज्जायस्स उप्पाद-विणासा दो चेव लक्खणाणि। असुद्धे अप्पिदे कमेण तिण्णि वि लक्खणाणि, उप्पण्णपज्जयस्स वज्जसिलाथंभादिसु वंजणसण्णिदस्स अवट्ठाणुवलंभादो। मिच्छत्तं पि वंजणपज्जाओ, तम्हा एदस्स उप्पाद-ट्ठिदि-भंगा कमेण तिण्णि वि अविरुद्धा त्ति घेत्तव्व।

उप्पज्जंति वियंति य भावा णियमेण पज्जवणयस्स।
दव्वट्ठियस्स सव्वं सदा अणुप्पण्णमविणट्ठं[3] ॥ २१ ॥

इस प्रकार आर्ष वचन है ?

समाधान— यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, जो अक्रमसे (युगपत्) उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य, इन तीनों लक्षणोंवाला होता है, वह द्रव्य है। और जो क्रमसे उत्पाद, स्थिति और व्ययवाला होता है वह पर्याय है, इस प्रकारसे जिनेन्द्रका उपदेश है।

शंका— यदि ऐसा है तो पृथिवी, जल, तेज और वायुके पर्यायपना प्रसक्त होता है ?

समाधान— भले ही उनके पर्यायपना प्राप्त हो जावे, क्योंकि, वह हमें इष्ट है।

शंका— किन्तु उन पृथिवी आदिकोंमें तो द्रव्यका व्यवहार लोकमें दिखाई देता है ?

समाधान— नहीं, वह व्यवहार शुद्धाशुद्धात्मक संग्रह-व्यवहाररूप नयद्वय-निबंधनक नैगमनयके निमित्तसे होता है। शुद्ध द्रव्यार्थिकनयके अवलंबन करने पर छहों ही द्रव्य हैं। और अशुद्ध द्रव्यार्थिकनयके अवलम्बन करने पर पृथिवी, जल आदिक अनेक द्रव्य होते हैं, क्योंकि, व्यंजनपर्यायके द्रव्यपना माना गया है। किन्तु शुद्ध पर्यायार्थिकनयकी विवक्षा करने पर पर्यायके उत्पाद और विनाश, ये दो ही लक्षण होते हैं। अशुद्ध पर्यायार्थिकनयके आश्रय करने पर क्रमसे तीनों ही पर्यायके लक्षण होते हैं, क्योंकि, वज्रशिला, स्तम्भादिमें व्यंजनसंज्ञिक उत्पन्न हुई पर्यायका अवस्थान पाया जाता है। मिथ्यात्व भी व्यंजनपर्याय है, इसलिए इसके उत्पाद, स्थिति और भंग, ये तीनों ही लक्षण क्रमसे अविरुद्ध हैं, ऐसा जानना चाहिए।

पर्यायनयके नियमसे पदार्थ उत्पन्न भी होते हैं और व्ययको भी प्राप्त होते हैं। किन्तु द्रव्यार्थिकनयके नियमसे सर्व-वस्तु सदा अनुत्पन्न और अविनष्ट है, अर्थात् ध्रौव्यात्मक है ॥२१॥

१ दव्वं पज्जवविजयं दव्वविउत्ता य पज्जवा णत्थि। उप्पाय-ट्ठिइ-भंगा हंदि दवियलक्खणं एयं ॥ स. त. १, १२.

२ उप्पादट्ठिदिभंगा विज्जंते पज्जएसु पज्जाया। दव्वम्हि संति णियदं तम्हा दव्वं हवदि सव्वं ॥ प्रव. सा. २, ९.

३ स. त. १, ११.

इदि एसा वि गाहा ण विरुज्झदे, सुद्धदव्व-पज्जवट्ठियणए अवलंबिय ट्ठिदत्तादो। 'भविया सिद्धी जेसिं जीवाणं ते हवंति भवसिद्धा'[1] इदि वयणादो सव्वेसिं भव्वजीवाणं वोच्छेदेण होदव्वं, अण्णहा तल्लक्खणविरोहादो। ण च सव्वओ ण णिट्ठादि, अणंतत्थ तहाणुवलंभादो त्ति ? ण एस दोसो, तस्साणंतियादो। सो अणंतो वुच्चदि, जो संखेज्जासंखेज्जरासिव्वए संते अणंतेण वि कालेण ण णिट्ठदि। वुत्तं च–

संते वए ण णिट्ठादि कालेणाणंतएण वि।
जो रासी सो अणंतो त्ति विणिद्दिट्ठो महेसिणा ॥ ३० ॥

अदि एवं, तो अद्धपोग्गलपरियट्टादिरासीणं सव्ववयाणमणंतत्तं फिट्टदि त्ति वुत्ते फिट्टदु णाम, को दोसो ? तेसु अणंतववहारो सुत्ताइरियववखाणपसिद्धो उवलब्भदे चे ण, तस्स उवयारणिबंधणत्तादो। तं जहा– पच्चक्खेण पमाणेण उवलद्धो जो थंभो

यह उक्त गाथा भी विरोधको नहीं प्राप्त होती है, क्योंकि, इसमें किया गया व्याख्यान शुद्ध द्रव्यार्थिकनय और शुद्ध पर्यायार्थिकनयको अवलम्बन करके स्थित है।

शंका– 'जिन जीवोंकी सिद्धि भविष्यकालमें होनेवाली है, वे जीव भव्यसिद्ध कहलाते हैं' इस वचनके अनुसार सर्व भव्य जीवोंका व्युच्छेद होना चाहिए, अन्यथा भव्यसिद्धोंके लक्षणमें विरोध आता है। तथा, जो राशि व्ययसहित होती है, वह कभी नष्ट नहीं होती है, ऐसा माना नहीं जा सकता है, क्योंकि, अन्यत्र वैसा पाया नहीं जाता; अर्थात् सव्यय राशिका अवस्थान देखा नहीं जाता है ?

समाधान– यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, भव्यसिद्ध जीवोंका प्रमाण अनन्त है। और अनन्त वही कहलाता है जो संख्यात या असंख्यातप्रमाण राशिके व्यय होने पर भी अनन्तकालसे भी नहीं समाप्त होता है। कहा भी है–

व्ययके होते रहने पर भी अनन्तकालके द्वारा भी जो राशि समाप्त नहीं होती है, उसे महर्षियोंने 'अनन्त' इस नामसे विनिर्दिष्ट किया है ॥ ३० ॥

शंका– यदि ऐसा है, तो व्ययसहित अर्धपुद्गलपरिवर्तन आदि राशियोंका अनन्तत्व नष्ट हो जाता है ?

समाधान– उनका अनन्तपना नष्ट हो जाय, इसमें क्या दोष है ?

शंका– किन्तु उन अर्धपुद्गलपरिवर्तन आदिकोंमें अनन्तका व्यवहार सूत्र तथा आचार्योंके व्याख्यानसे प्रसिद्ध हुआ पाया जाता है ?

समाधान– नहीं, क्योंकि, उन पुद्गलपरिवर्तन आदिमें अनन्तत्वका व्यवहार उपचार-निबन्धनक है। अब इसी उपचारनिबन्धनताको स्पष्ट करते हैं– जो पाषाणादिका स्तम्भ

---

१ गो. जी. ५५७.

सो जहा उवयारेण पच्चक्खो त्ति लोए वुच्चदे, तहा ओहिणाणविसयमुल्लंघिय ट्ठिदरासीओ केवलस्स अणंतस्स विसओ त्ति उवयारेण ताओ अणंतओ वुच्चंति। तम्हा तेसु सुत्ताइरियवक्खाणपसिद्धेण अणंतववहारेण णेदं वक्खाणं विरुज्झदे। अहवा वए संते वि अक्खयो को वि रासी अत्थि, सव्वस्स सपडिवक्खस्सेवुवलंभादो। एसो वि भव्वरासी अणंतो, तम्हा संते वि वए अणंतेण वि कालेण ण णिट्ठिस्सइ त्ति सिद्धं।

सासादनसम्यग्दृष्टयः केचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ[1] ॥ ५ ॥

एवस्स सुत्तस्स अवयवत्थो पुव्वं परूविदो त्ति णेह वुच्चदे, पुणरुत्तभया। एत्थ एगसमयणिरूवणा कीरदे। तं जहा– दो वा तिण्णि वा एगुत्तरवड्ढीए जाव पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ता वा उवसमसम्मादिट्ठिणो उवसमसम्मत्तद्धाए एगो समओ अत्थि त्ति सासणत्तं पडिवण्णा एगसमयं दिट्ठा। विदियसमये सव्वे वि मिच्छत्तं गदा, तिसु वि लोएसु सासणाणमभावो जादो त्ति लद्धो एगसमओ।

प्रत्यक्ष प्रमाणके द्वारा उपलब्ध है, वह जिस प्रकार उपचारसे 'प्रत्यक्ष है' ऐसा लोकमें कहा जाता है, उसी प्रकारसे अवधिज्ञानके विषयका उल्लंघन करके जो राशियां स्थित हैं, वे सब अनन्त प्रमाणवाले केवलज्ञानके विषय हैं, इसलिए उपचारसे 'अनन्त हैं' इस प्रकारसे कही जाती हैं। अतएव सूत्र और आचार्योंके व्याख्यानसे प्रसिद्ध अनन्तके व्यवहारसे यह व्याख्यान विरोधको प्राप्त नहीं होता है। अथवा, व्ययके होते रहने पर भी सदा अक्षय रहनेवाली कोई राशि है कि क्षय होनेवाली सभी राशियोंके प्रतिपक्ष सहित पाई जाती है।

इसी प्रकार यह भव्यराशि भी अनन्त है, व्ययके होते रहनेपर भी अनन्तकालद्वारा भी यह नहीं समाप्त होगी, यह बात सिद्ध हुई।

सासादनसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय तक होते हैं ॥ ५ ॥

इस सूत्रका अवयवार्थ पहले कहा जा चुका है, इसलिए पुनरुक्त दोषके भयसे यहां पर नहीं कहते हैं। अब यहां पर एक समयकी प्ररूपणा की जाती है। वह इस प्रकारसे है– दो अथवा तीन, इस प्रकार एक अधिक वृद्धिसे बढ़ते हुए पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र उपशमसम्यग्दृष्टि जीव उपशमसम्यक्त्वके कालमें एक समयमात्र काल अवशिष्ट रह जाने पर एक साथ सासादनगुणस्थानको प्राप्त हुए एक समयमें दिखाई दिये। दूसरे समयमें सबके सब मिथ्यात्वको प्राप्त हो गये। उस समय तीनों ही लोकोंमें सासादनसम्यग्दृष्टियोंका अभाव हो गया। इस प्रकार एक समयप्रमाण सासादनगुणस्थानका नाना जीवोंकी अपेक्षा काल प्राप्त हुआ।

---

१ सासादनसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः। स. सि. १, ८.

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो[1] ॥ ६ ॥

दोण्णि वा तिण्णि वा एवं एगुत्तरवड्ढीए जाव पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ता वा उवसमसम्मादिट्ठिणो एगसमयमादिं कादूण जाउक्कस्सेण छ आवलियाओ उवसमसम्मत्तद्धाए अत्थि त्ति सासणत्तं पडिवण्णा। जाव ते मिच्छत्तं ण गच्छंति ताव अण्णे वि अण्णे वि उवसमसम्मादिट्ठिणो सासणत्तं पडिवज्जंति। एवं गिम्ह- आवार्य श्री [illegible] उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तं कालं जीवेहि असुण्णं होदूण सासणगुणट्ठाणं लब्भदि। केवडिओ सो पुण कालो? सगरासीदो असंखेज्जगुणो। तं जहा- सासणगुणस्स णिरंतरुवक्कमणकालो आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्ता। सांतरुवक्कमणवारा पुण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ता। एवं होंति त्ति कट्टु सासणुक्कस्सकालुप्पत्तिविहाणं वुच्चदे। तं जहा- एगस्स सासणगुणट्ठाणुवक्कमणवारस्स जदि मज्झिमपडिवत्तीए आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तो सासणगुणकालो लब्भदि, संखेज्जावलियमेत्तो वा, आवलियाए संखेज्जदिभागमेत्तो

सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा उत्कृष्टकाल पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है ॥ ६ ॥

दो, अथवा तीन, अथवा चार इस प्रकार एक एक अधिक वृद्धिद्वारा पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र तक उपशमसम्यग्दृष्टि जीव एक समयको आदि करके उत्कर्षसे छह आवलियां उपशमसम्यक्त्वका काल अवशिष्ट रहनेपर सासादनगुणस्थानको प्राप्त हुए। वे जब तक मिथ्यात्वको प्राप्त नहीं होते हैं, तबतक अन्य भी उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सासादनगुणस्थानको प्राप्त होते रहते हैं। इस प्रकारसे ग्रीष्मकालके वृक्षकी छायाके समान उत्कर्षसे पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र कालतक जीवोंसे अशून्य (परिपूर्ण) होकर, सासादनगुणस्थान पाया जाता है।

शंका- सो वह काल कितना है ?

समाधान- अपनी, अर्थात् सासादनगुणस्थानवर्ती राशिसे असंख्यातगुणा है। वह इस प्रकार है- सासादनगुणस्थानके निरन्तर उपक्रमणका काल आवलीके असंख्यातवें भागमात्र है। किन्तु सान्तर उपक्रमणके बार तो पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र हैं। ये बार इस प्रकार होते हैं, ऐसा मानकर सासादनगुणस्थानके उत्कृष्टकालकी उत्पत्तिका विधान कहते हैं। वह इस प्रकार है-

एक जीवके सासादनगुणस्थानके उपक्रमणवारका यदि मध्यम प्रतिपत्तिसे आवलीके असंख्यातवें भागमात्र सासादनगुणस्थानका काल पाया जाता है, अथवा संख्यात आवली मात्र, अथवा आवलीके संख्यातवें भागमात्र काल पाया जाता है; तो पल्योपमके असंख्यातवें

[1] उत्कर्षेण पल्योपमासंख्येयभागः। स. सि. १, ८.

वा, तो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तउवक्कमणवाराणं केत्तियं कालं लभामो त्ति इच्छागुणिदफलम्हि पमाणेणोवट्टिदे सगरासीदो असंखेज्जगुणो सासणकालो होदि त्ति घेत्तव्वं। जदि वि एत्थ सुत्तं णत्थि, तो वि एदं वक्खाणं सुत्तं व सद्दहेदव्वं।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ[1] ॥ ७ ॥

एदस्सत्थो- एक्को उवसमसम्मादिट्ठी उवसमसमत्तद्धाए एगसमओ अत्थि त्ति सासणं गदो। जदि उवसमसम्मत्तद्धा महंती होदि, तो को दोसो ? ण, सासणगुणद्धाए बहुत्तप्पसंगा। जेत्तियाए उवसमसम्मत्तद्धाए सेसाए जीवो सासणं पडिवज्जदि, तेत्तिओ चेव सासणगुणकालो होदि त्ति आइरियपरंपरागदुवदेसा। वुत्तं च-

उवसमसम्मत्तद्धा जत्तियमेत्ता हु होइ अवसिट्ठा।
पडिवज्जंता सासं तत्तियमेत्ता य तस्सद्धा ॥ ३१ ॥

भागमात्र उपशमसम्यक्त्वका काल शेष रहनेपर कितने काल प्राप्त होगा ? इस प्रकार इच्छाराशिसे गुणित फलराशिको प्रमाणराशिसे अपवर्तित करनेपर अपनी राशिसे असंख्यातगुणा सासादनगुणस्थानका काल होता है, ऐसा ग्रहण करना चाहिए। यद्यपि इस विषयमें कोई सूत्रप्रमाण उपलब्ध नहीं है, तो भी यह व्याख्यान सूत्रके समान श्रद्धान करने योग्य है।

एक जीवकी अपेक्षा सासादनसम्यग्दृष्टिका जघन्यकाल एक समय है ॥७॥

अब इस सूत्रका अर्थ कहते हैं- एक उपशमसम्यग्दृष्टि जीव उपशमसम्यक्त्वके कालमें एक समय अवशिष्ट रहनेपर सासादनगुणस्थानको प्राप्त हुआ।

शंका- यदि उपशमसम्यक्त्वका काल अधिक हो, तो क्या दोष है ?

समाधान- नहीं, क्योंकि, उपशमसम्यक्त्वका काल अधिक मानलेपर सासादनगुणस्थानकालके भी बहुत्वका प्रसंग प्राप्त होता है, अर्थात् सासादनगुणस्थानका काल बहुत मानना पड़ेगा। इसका कारण यह है कि जितने उपशमसम्यक्त्वकालके शेष रहनेपर जीव सासादनगुणस्थानको प्राप्त होता है, उतना ही सासादनगुणस्थानका काल होता है, ऐसा आचार्य परम्परागत उपदेश है। कहा भी है-

जितने प्रमाण उपशमसम्यक्त्वका काल अवशिष्ट रहता है, उस समय सासादनगुणस्थानको प्राप्त होनेवाले जीवोंका भी उतने प्रमाण ही उसका, अर्थात् सासादनगुणस्थानका, काल होता है ॥ ३१ ॥

---

१ एकजीवं प्रति जघन्येनैकः समयः। ष. खं. १, ८.

एगसमयं सासणगुणेण सह दिट्ठो, विदियसमए मिच्छत्तं गदो। एवं सासणगुणस्स लद्धो एगसमओ।

उक्कस्सेण छ आवलिआओ[1] ॥ ८ ॥

एदस्स अत्थो वुच्चदे- एक्को उवसमसम्माइट्ठी उवसमसम्मत्तद्धाए छ आवलियाओ अत्थि त्ति सासणं गदो। तत्थ सासणगुणम्हि छ आवलियाओ अच्छिदूण मिच्छत्तं गदो। कुदो ? साहियासु छसु आवलियासु सेसासु सासणगुण-पडिवज्जणाभावा। वुत्तं च-

उवसमसम्मत्तद्धा जइ छावलिया हवेज्ज अवसिट्ठा।
तो सासणं पवज्जइ णो हेट्ठुक्कट्ठकालेसु[2] ॥ ३२ ॥

सम्मामिच्छाइट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[3] ॥ ९ ॥

इस पूर्वमें बतलाए हुए प्रकारसे उक्त जीव एक समय मात्र सासादनगुणस्थानके साथ, अर्थात् उस गुणस्थानमें, दिखाई दिया, और द्वितीय समयमें मिथ्यात्वको प्राप्त हो गया। इस प्रकार सासादनगुणस्थानका एक जीवकी अपेक्षा जघन्यकाल एक समयप्रमाण उपलब्ध हुआ।

एक जीवकी अपेक्षा सासादनसम्यग्दृष्टिका उत्कृष्टकाल छह आवलीप्रमाण है ॥ ८ ॥

अब इस सूत्रका अर्थ कहते हैं- एक उपशमसम्यग्दृष्टि जीव उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलियोंके शेष रहनेपर सासादनगुणस्थानमें गया। उस सासादनगुणस्थानमें छह आवली रह करके मिथ्यात्वमें गया, क्योंकि, साधिक छह आवलियोंके शेष रहनेपर सासादन-गुणस्थानको प्राप्त होनेका अभाव है। कहा भी है-

यदि उपशमसम्यक्त्वका काल छह आवलीप्रमाण अवशिष्ट होवे, तो जीव सासादन गुणस्थानको प्राप्त होता है। यदि इससे अधिक काल अवशिष्ट रहे, तो सासदनगुणस्थानको नहीं प्राप्त होता है ॥ ३२ ॥

(इस प्रकार एक जीवकी अपेक्षा छह आवलीप्रमाण ही सासादनगुणस्थानका उत्कृष्टकाल है।)

सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त तक होते हैं ॥ ९ ॥

---

१ उत्कर्षेण षडावलिकाः। स. सि. १, ८.

२ उवसमसम्मत्तद्धा छावलिमेत्तो दु समयमेत्तो त्ति। अवसिट्ठे आसाणो अणअण्णदरुदयदो होदि ॥ लब्धि. १००.

३ सम्यग्मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। स. सि. १, ८.

एदस्स अत्थो- अट्ठावीससंतकम्मियमिच्छादिट्ठी वेदगसम्मत्तसहिदअसंजद-संजदासंजद-पमत्तसंजदा सत्तट्ठ जणा वा, आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्ता वा, पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ता वा परिणामपच्चएण सम्मामिच्छत्तं गदा। तत्थ सव्वलहुमंतोमुहुत्तमच्छिदूण मिच्छत्तं वा असंजमेण सह सम्मत्तं वा पडिवण्णा। णट्ठं सम्मामिच्छत्तं। एवं सम्मामिच्छत्तस्स अंतोमुहुत्तकालो सिद्धो। अप्पमत्तसंजदो किमिदि सम्मामिच्छत्तं ण णीदो ? ण, तस्स संकिलेस-विसोहीहि सह पमत्तापुव्वगुणे मोत्तूण गुणंतरगमणाभावा। मदस्स वि असंजदसम्मादिट्ठिदविरिससगुणंतरगमणाभावा। पच्छा सम्मामिच्छादिट्ठी संजमं संजमासंजमं वा किण्ण णीदो ? ण, तस्स मिच्छत्त-सम्मत्तसहिदासंजदगुणे मोत्तूण गुणंतरगमणाभावा। किं कारणं ? सहावदो चेय। ण हि सहाओ परपज्जणिओगारहो, विरोहा।

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं- मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्ता रखनेवाले मिथ्यादृष्टि, अथवा वेदकसम्यक्त्वसहित असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत तथा प्रमत्तसंयत गुणस्थानवाले सात आठ जन, अथवा आवलीके असंख्यातवें भागमात्र जीव, अथवा पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र जीव, परिणामोंके निमित्तसे सम्यग्मिथ्यात्वगुणस्थानको प्राप्त हुए। वहांपर सबसे कम अन्तर्मुहूर्तकालप्रमाण रह करके मिथ्यात्वको, अथवा असंयमके साथ सम्यक्त्वको प्राप्त हुए। तब सम्यग्मिथ्यात्व नष्ट हो गया। इस प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वका अन्तर्मुहूर्तप्रमाण काल सिद्ध हुआ।

शंका- यहां पर अप्रमत्तसंयत जीव, सम्यग्मिथ्यात्वगुणस्थानको क्यों नहीं प्राप्त कराया ?

समाधान- नहीं, क्योंकि, यदि अप्रमत्तसंयत जीवके संक्लेशकी वृद्धि हो, तो प्रमत्तसंयतगुणस्थानको, और यदि विशुद्धिकी वृद्धि हो, तो अपूर्वकरण गुणस्थानको छोड़कर दूसरे गुणस्थानमें गमनका अभाव है। यदि अप्रमत्तसंयत जीवका मरण भी हो, तो असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानको छोड़कर दूसरे गुणस्थानोंमें गमन नहीं होता है।

शंका- सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव अपना काल पूरा कर पीछे संयमको अथवा संयमासंयमको क्यों नहीं प्राप्त कराया गया ?

समाधान- नहीं, क्योंकि, उस सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवका मिथ्यात्वसहित मिथ्यादृष्टिगुणस्थानको, अथवा सम्यक्त्वसहित असंयतगुणस्थानको छोड़कर दूसरे गुणस्थानोंमें गमनका अभाव है।

शंका- अन्य गुणस्थानोंमें नहीं जानेका क्या कारण है ?

समाधान- ऐसा स्वभाव ही है। और स्वभाव दूसरेके प्रश्नके योग्य नहीं हुआ करता है, क्योंकि, उसमें विरोध आता है।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो[1] ॥ १० ॥

एदस्स अत्थो वुच्चदे– पुव्वुत्तजीवा सम्मामिच्छत्तं गंतूण तत्थंतोमुहुत्तमच्छिय जाव ते मिच्छत्तं वा सासंजमसम्मत्तं वा ण पडिवज्जंति, ताव अण्णे वि अण्णे वि पुव्वुत्तजीवा सम्मामिच्छत्तं पडिवज्जावेदव्वा जाव सव्वुक्कस्सो णाणाजीवावेक्खो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तकालो जादो त्ति। सो पुण सगरासीदो असंखेज्जगुणो। एदस्स वि कारणं पुव्वं व वत्तव्वं। तदो णियमेण अंतरं होदि।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[2] ॥ ११ ॥

एदस्सत्थो वुच्चदे– एक्को मिच्छाविट्ठी विसुज्झमाणो सम्मामिच्छत्तं पडिवण्णो। सव्वलहुमंतोमुहुत्तकालमच्छिदूण विसुज्झमाणो चेव सासंजमं सम्मत्तं पडिवण्णो। संकिलेसं पूरिय मिच्छत्तं किण्ण गदो? ण, विसोधिअद्धं संपुण्णमच्छिय संकिलेसं पूरिय मिच्छत्तं गच्छमाणसम्मामिच्छत्तकालस्स बहुत्तप्पसंगा। एक्किस्से

नाना जीवोंकी अपेक्षा सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका उत्कृष्टकाल पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है ॥ १० ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं– पूर्वोक्त गुणस्थानवर्ती जीव सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त होकर और वहांपर अन्तर्मुहूर्तकाल तक रहकर जबतक वे मिथ्यात्वको अथवा असंयमसहित सम्यक्त्वको नहीं प्राप्त होते हैं, जबतक अन्य अन्य भी पूर्वोक्त गुणस्थानवर्ती ही जीव सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त कराते जाना चाहिए, जबतक कि सर्वोत्कृष्ट नाना जीवोंकी अपेक्षा रखनेवाला पल्योपमका असंख्यातवां भागमात्र काल पूरा हो। वह काल अपने गुणस्थानवर्ती जीवराशिसे असंख्यातगुणा होता है। इसका भी कारण पूर्वके समान ही कहना चाहिए। उसके पश्चात् नियमसे अन्तर हो जाता है।

एक जीवकी अपेक्षा सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ११ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं– एक मिथ्यादृष्टि जीव विशुद्ध होता हुआ सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ। पुनः सर्वलघु अन्तर्मुहूर्तकाल रह कर विशुद्ध होता हुआ ही असंयमसहित सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ।

शंका– संक्लेशको पूरित करके, अर्थात् संक्लेशपरिणामी होकर, सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्वको क्यों नहीं प्राप्त हुआ?

समाधान– नहीं, क्योंकि, विशुद्धिके संपूर्ण काल तक अपने गुणस्थानमें रह करके और संक्लेशको धारण करके मिथ्यात्वको जानेवाले जीवके सम्यग्मिथ्यात्वसंबंधी कालके बहुत्वका प्रसंग हो जायगा। इसका कारण यह है कि एक भी विशुद्धिके कालसे संक्लेश

---

१ उत्कर्षेण पल्योपमासंख्येयभागः। स. सि. १, ८.

२ एकजीवं प्रति जघन्यः उत्कृष्टश्चान्तर्मुहूर्तः। स. सि. १, ८.

विसोहीए कालादो संकिलेसविसोहीणं दोण्हं पि कालो दोण्हं विच्चाले ट्ठिदपडिभाग-कालसहिदो णिच्छएण संखेज्जगुणो त्ति अहिप्पाएण मिच्छत्तं ण णीदो। अथवा वेदगसम्मादिट्ठी संकिलिस्समाणगो सम्मामिच्छत्तं गदो, सव्वलहुमंतोमुहुत्तकाल-मच्छिदूण अविणट्ठसंकिलेसो मिच्छत्तं गदो। एत्थ वि कारणं पुव्वं व वत्तव्वं। एवं दोहि पयारेहि सम्मामिच्छत्तस्स जहण्णकालपरूवणा गदा।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ १२ ॥

तं कधं ? एक्को विसुज्झमाणो मिच्छादिट्ठी सम्मामिच्छत्तं गदो, सव्व-उक्कस्सअंतोमुहुत्तमच्छिदूण संकिलिट्ठो होदूण मिच्छत्तं गदो। पुव्विल्लजहण्णकालादो एसो उक्कस्सकालो संखेज्जगुणो, सव्वुक्कस्सतिकालसमूहत्तादो। अथवा वेदग-सम्मादिट्ठी संकिलिस्समाणगो सम्मामिच्छत्तं गदो। सव्वुक्कस्समंतोमुहुत्तमच्छिदूण असंजदसम्मादिट्ठी जादो। एत्थ वि कारणं पुव्वं व वत्तव्वं।

असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा[1] ॥ १३ ॥

और विशुद्धि, इन दोनोंका ही काल, दोनोंके अन्तरालमें स्थित प्रतिभाग कालसहित निश्चयसे संख्यातगुणा होता है, इस प्रकारके अभिप्रायसे यह वर्धमान विशुद्धिवाला सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्वको नहीं प्राप्त कराया गया। अथवा, संक्लेशको प्राप्त होनेवाला वेदकसम्यग्दृष्टि जीव सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानको प्राप्त हुआ और वहां पर सर्वलघु अन्तर्मुहूर्तकाल रह करके अविनष्टसंक्लेशी हुआ ही मिथ्यात्वको चला गया। यहां पर भी कारण पूर्वके समान ही कहना चाहिए। इस तरह दो प्रकारोंसे सम्यग्मिथ्यात्वके जघन्यकालकी प्ररूपणा समाप्त हुई।

एक जीवकी अपेक्षा सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥१२॥

यह इस प्रकार है– एक विशुद्धिको प्राप्त होनेवाला मिथ्यादृष्टि जीव सम्यग्मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ। वहांपर सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल रहकर और संक्लेशयुक्त हो करके मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ। पहले बतलाये गए इसी गुणस्थानके जघन्य कालसे यह उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है, क्योंकि, वह सर्वोत्कृष्ट त्रिकालके समूहात्मक है। अथवा, संक्लेशको प्राप्त होनेवाला वेदकसम्यग्दृष्टि जीव सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ। वहांपर सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल रह करके असंयतसम्यग्दृष्टि हो गया। यहांपर भी कारण पूर्वके समान ही कहना चाहिए।

असंयतसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ १३ ॥

१ असंयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। स. सि. १, ८.

अदीदाणागद-वट्टमाणकालेसु असंजदसम्मादिट्ठिवोच्छेदो णत्थि । कुदो ? सहावदो । एसो सहाओ असंजदसम्मादिट्ठिरासिस्सत्थि त्ति कधं णव्वदे ? सव्वद्धा-वयणादो । कधं पक्खो चेव साहणत्तं पडिवज्जदे ? ण, उभयपक्खसत्तिजुत्तस्स जिणवयणस्स एक्कस्स वि पक्खसाहणसेहि विरोहाभावा । विवायरो सुओ उदेदि त्ति वयणस्सेव किरियाविसेसणत्तादो सव्वद्धमिदि पावेदि ? ण, तहा विवक्खाभावा । पुणो कथमेत्थतणविवक्खा ? वुच्चदे– सव्वा अद्धा जेसिं ते सव्वद्धा, सव्वकाल-संबंधिणो त्ति वुत्तं होदि ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[1] ॥ १४ ॥

तं कधं ? अट्ठावीससंतकम्मियमिच्छादिट्ठी वा सम्मामिच्छादिट्ठी वा संजदासंजदो वा पमत्तसंजदो वा पुव्वं सासंजमसम्मत्ते बहुवारं परियट्टंतो अच्छिदो

इसका कारण यह है कि अतीत, अनागत और वर्तमान, इन तीनों ही कालोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका व्युच्छेद नहीं है ।

शंका– त्रिकालमें भी असंयतसम्यग्दृष्टि राशिका व्युच्छेद क्यों नहीं होता ?

समाधान– ऐसा स्वभाव ही है ।

शंका– असंयतसम्यग्दृष्टि राशिका ऐसा स्वभाव है, यह कैसे जाना ।

समाधान– सूत्र-पठित 'सर्वाद्धा' अर्थात् सर्वकाल रहते हैं, इस वचनसे जाना ?

शंका– विवादस्थ पक्ष ही हेतुपनेको कैसे प्राप्त हो जायगा ?

समाधान– नहीं, क्योंकि, प्रत्येक जिनवचन साध्य-साधनरूप उभय पक्षकी शक्तिसे युक्त होता है, इसलिए वह एक ही जिनवचन विवक्षित पक्षके साधन करनेमें निश्चयसे समर्थ है इसमें उभय पक्षके भी कोई विरोध नहीं आता ।

शंका– 'दिवाकर स्वतः उदित होता है' इस वचनके समान क्रियाविशेषण होनेसे 'सव्वद्धं' ऐसा पाठ होना चाहिए ?

समाधान– नहीं, क्योंकि, उस प्रकारकी विवक्षाका अभाव है ।

शंका– तो यहां पर किस प्रकारकी विवक्षा है ?

समाधान– वह विवक्षा इस प्रकारकी है– सर्व काल जिन जीवोंके होता है, वे सर्वाद्धा कहलाते हैं, अर्थात् 'सर्वकालसम्बन्धी जीव' यह 'सर्वाद्धा' पदका अर्थ है ।

एक जीवकी अपेक्षा असंयतसम्यग्दृष्टि जीवका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १४ ॥

शंका– यह काल कैसे संभव है ?

समाधान– जिसने पहले असंयमसहित सम्यक्त्वमें बहुतवार परिवर्तन किया है, ऐसा कोई एक मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्ता रखनेवाला मिथ्यादृष्टि जीव, अथवा सम्यग्मिथ्यादृष्टि अथवा संयतासंयत अथवा प्रमत्तसंयत जीव असंयतसम्यग्दृष्टि हुआ ।

१ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

असंजदो जादो। सव्वलहुमंतोमुहुत्तद्धमच्छिय मिच्छत्तं वा सम्मामिच्छत्तं वा संजमासंजमं वा अप्पमत्तभावेण संजमं वा पडिवण्णो। उवरिमगुणट्ठाणेहिंतो संकिलेसेण जे असंजदसम्मत्तं पडिवण्णा, ते अविणट्ठेण तेण संकिलेसेण सह मिच्छत्तं सम्मामिच्छत्तं वा णेदव्वा। जे हेट्ठिमगुणट्ठाणेहिंतो विसोहीए सासंजमं सम्मत्तं पडिवण्णा, ते ताए चेव विसोहीए अविणट्ठाए सह संजमासंजमं अप्पमत्तभावेण संजमं वा णेदव्वा, अण्णहा जहण्णकालाणुववत्तीदो।

उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि सादिरेयाणि[1] ॥ १५ ॥

तं कधं ? एक्को पमत्तो अप्पमत्तो वा चदुण्हमुवसामगाणमेक्कदरो वा समऊणतेत्तीससागरोवमाउट्ठिदिएसु अणुत्तरविमाणवासियदेवेसु उववण्णो। सासंजमं सम्मत्तस्स आदी जादो। तदो चुदो पुव्वकोडाउएसु मणुसेसु उववण्णो। तत्थ असंजदसम्मादिट्ठी होदूण ताव ट्ठिदो जाव अंतोमुहुत्तमेत्ताउअं सेसं त्ति। तदो अप्पमत्तभावेण संजमं पडिवण्णो (१)। तदो पमत्तापमत्तपरावत्तसहस्सं कादूण (२) खवगसेढिपाओग्गविसोहीए विसुद्धो अप्पमत्तो जादो (३)। अपुव्वखवगो (४) अणियट्टिखवगो (५) सुहुमखवगो (६) खीणकसाओ (७) सजोगी (८) अजोगी

फिर वह सर्वलघु अन्तर्मुहूर्त काल रह करके मिथ्यात्वको अथवा सम्यग्मिथ्यात्वको अथवा संयमासंयमको अथवा अप्रमत्तभावके साथ संयमको प्राप्त हुआ। ऊपरके गुणस्थानोंसे संक्लेशके साथ जो असंयतसम्यक्त्वको प्राप्त हुए हैं वे जीव उसी अविनष्टसंक्लेशके साथ मिथ्यात्व अथवा सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त कराना चाहिए। जो अधस्तन गुणस्थानोंसे विशुद्धिके साथ असंयमसहित सम्यक्त्वको प्राप्त हुए हैं, वे जीव उसी अविनष्टविशुद्धिके साथ संयमासंयमको अथवा अप्रमत्तभावके साथ संयमको ले जाना चाहिए, अन्यथा असंयतसम्यक्त्वका जघन्य काल नहीं बन सकता है।

असंयतसम्यग्दृष्टि जीवका उत्कृष्ट काल सातिरेक तेतीस सागरोपम है ॥१५॥

शंका— यह सातिरेक तेतीस सागरोपमकाल कैसे संभव है ?

समाधान— एक प्रमत्तसंयत अथवा अप्रमत्तसंयत अथवा चारों उपशामकोंमेंसे कोई एक उपशामक जीव एक समय कम तेतीस सागरोपम आयुकर्मकी स्थितिवाले अनुत्तरविमानवासी देवोंमें उत्पन्न हुआ और इस प्रकार असंयमसहित सम्यक्त्वकी आदि हुई। इसके पश्चात् वहांसे च्युत होकर पूर्वकोटिवर्षकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ। वहांपर वह अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आयुके शेष रह जानेतक असंयतसम्यग्दृष्टि होकर रहा। तत्पश्चात् अप्रमत्तभावसे संयमको प्राप्त हुआ (१) पुनः प्रमत्त और अप्रमत्तगुणस्थानमें सहस्रों परिवर्तन करके (२), क्षपकश्रेणीके प्रायोग्य विशुद्धिसे विशुद्ध हो, अप्रमत्तसंयत हुआ (३)। पुनः अपूर्वकरणक्षपक (४), अनिवृत्तिकरणक्षपक (५), सूक्ष्मसाम्परायक्षपक (६), क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ (७), सयोगिकेवली (८), और अयोगिकेवली (९) होकरके सिद्ध हो गया।

[1] उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि सातिरेकाणि। स. सि. १, ८.

(९) होदूण सिद्धो जादो। एदेहि णवहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणपुव्वकोडीए अदिरित्ताणि समऊणतेत्तीससागरोवमाणि असंजदसम्मादिट्ठिस्स उक्कस्सकालो होदि। किमट्ठं समऊणतेत्तीससागरोवमाउट्ठिदिएसु देवेसुप्पादिदो? ण, अण्णहा असंजदद्धाए दीहत्ताणुवलंभा। कुदो? जदि तेत्तीससागरोवमाउट्ठिदिएसु देवेसु उप्पादिज्जदि, तो वासपुधत्तावसेसे आउए णिच्छएण संजमं पडिवज्जदि। जो पुण समऊणतेत्तीससागरोवमाउट्ठिदिएसु देवेसुववज्जिय मणुसेसु उववण्णो, सो अंतोमुहुत्तूणपुव्वकोडिसंजमेण सह अच्छिय पुणो णिच्छएण संजदो होदि, तेण समऊणतेत्तीससागरोवमाउट्ठिदिएसु देवेसुप्पादिदो।

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

संजदासंजदा केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा[1] ॥ १६ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो सुगमो, असंजदसम्मादिट्ठिम्हि परूविदत्तादो।

इन नौ अन्तर्मुहूर्तोंसे कम पूर्वकोटि कालसे अतिरिक्त तेतीस सागरोपम असंयतसम्यग्दृष्टिका उत्कृष्ट काल होता है।

शंका— ऊपर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानका उत्कृष्ट काल बतलाते हुए उक्त जीवको एक समय कम तेतीस सागरोपम आयुकी स्थितिवाले देवोंमें ही किसलिए उत्पन्न कराया गया है?

समाधान— नहीं, अन्यथा, अर्थात् एक समय कम तेतीस सागरोपमकी स्थितिवाले देवोंमें यदि उत्पन्न न कराया जाय तो, असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानके कालमें दीर्घता नहीं पाई जा सकती है, क्योंकि, यदि पूरे तेतीस सागरोपम आयुकी स्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न कराया जायगा तो, वर्षपृथक्त्वप्रमाण आयुके अवशेष रहने पर निश्चयसे वह संयमको प्राप्त हो जायगा। किन्तु जो एक समय कम तेतीस सागरोपम आयुकी स्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न होकर मनुष्योंमें उत्पन्न होगा, वह अन्तर्मुहूर्त कम पूर्वकोटि प्रमाणकाल असंयमके साथ रह कर पुनः निश्चयसे संयम होगा। इसलिए, अर्थात्, असंयतसम्यक्त्वके कालकी दीर्घता बतानेके लिए, एक समय कम तेतीस सागरोपम आयुकी स्थितिवाले अनुत्तरविमानवासी देवोंमें उत्पन्न कराया गया है।

संयतासंयत जीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ १६ ॥

इस सूत्रका अर्थ सुगम है, क्योंकि, असंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानके कालमें उसका प्ररूपण किया जा चुका है।

---

१ संयतासंयतस्य नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। स. सि. १, ८.

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

एगजीवं पडुच्च जहण्णेणंतोमुहुत्तं[1] ॥ १७ ॥

तं कधं ? एक्को अट्ठावीससंतकम्मियमिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी पमत्तसंजदो वा पुव्वं पि बहुसो संजमासंजमगुणट्ठाणं परियट्टिदो परिणामपच्चएण संजमासंजमं पडिवण्णो । सव्वलहुमंतोमुहुत्तद्धमच्छिदूण पमत्तसंजदचरो मिच्छत्तं वा सम्मामिच्छत्तं वा असंजदसम्मत्तं वा पडिवण्णो । पच्छाकदमिच्छत्ता सासंजमसम्मत्ता च अप्पमत्तभावेण संजमं पडिवण्णा । कुदो ? अण्णहा संजदासंजदद्धाए जहण्णत्ताणुववत्तीए । किमट्ठं सम्मामिच्छादिट्ठी संजमासंजमं गुणं ण, णीदो ? ण, तस्स देसविरदिपज्जाएण परिणमणसत्तीए असंभवा । वुत्तं च–

ण य मरइ णेव संजममुवेइ तह देससंजमं वावि ।
सम्मामिच्छादिट्ठी ण उ मरणंतं समुग्घाओ[2] ॥ ३३ ॥

एक जीवकी अपेक्षा संयतासंयतका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १७ ॥

वह काल इस प्रकार संभव है— जिसने पहले भी बहुतवार संयमासंयम गुणस्थानमें परिवर्तन किया है ऐसा कोई एक मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्ता रखनेवाला मिथ्यादृष्टि अथवा असंयतसम्यग्दृष्टि अथवा प्रमत्तसंयत जीव पुनः परिणामोंके निमित्तसे संयमासंयम गुणस्थानको प्राप्त हुआ । वहांपर सबसे कम अन्तर्मुहूर्त काल रह करके वह यदि प्रमत्तसंयतचर है, अर्थात् प्रमत्तसंयतगुणस्थानसे संयतासंयत गुणस्थानको प्राप्त हुआ है, तो मिथ्यात्वको अथवा सम्यग्मिथ्यात्वको अथवा असंयतसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । अथवा यदि वे पश्चात्कृत मिथ्यात्व या पश्चात्कृत असंयतसम्यक्त्ववाले हैं, अर्थात् संयतासंयत होनेके पूर्व मिथ्यादृष्टि या असंयतसम्यग्दृष्टि रहे हैं, तो अप्रमत्तभावके साथ संयमको प्राप्त हुए, क्योंकि, यदि ऐसा न माना जाय तो संयतासंयत गुणस्थानका जघन्य काल नहीं बन सकता ।

शंका— सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संयमासंयम गुणस्थानको किसलिए नहीं प्राप्त कराया गया ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवके देशविरतिरूप पर्यायसे परिणमनकी शक्तिका होना असंभव है । कहा भी है–

सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव न तो मरता है, न संयमको प्राप्त होता है, न देशसंयमको भी प्राप्त होता है । तथा उसके मारणान्तिकसमुद्घात भी नहीं होता है ॥ ३३ ॥

---

१ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

२ सो संजमं ण गिण्हदि देसजमं वा ण बंधदे आउं । सम्मं वा मिच्छं वा पडिवज्जिय मरदि णियमेण ॥ सम्मत्तमिच्छपरिणामेसु जहिं आउगं पुरा बद्धं । तहिं मरणं मरणंतसमुग्घादो वि य ण मिस्सम्मि ॥ गो. जी. २३–२४.

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणा[1] ॥ १८ ॥

तं कधं ? एक्को तिरिक्खो मणुस्सो वा अट्ठावीससंतकम्मिगो मिच्छाइट्ठी सण्णिपंचिंदियतिरिक्खसंमुच्छिमपज्जत्तएसु मच्छ-कच्छव-मंडूकादिसु उववण्णो । सव्वलहुएण अंतोमुहुत्तकालेण सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो जादो (१) । विस्संतो (२) विसुद्धो (३) होदूण संजमासंजमं पडिवण्णो । पुव्वकोडिकालं संजमासंजममणुपालिदूण मदो सोधम्मादि-आरणच्चुदंतेसु देवेसु उववण्णो । णट्ठो संजमासंजमो । एवमादिल्लेहि तीहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणा पुव्वकोडी संजमासंजमकालो होदि ।

पमत्त-अप्पमत्तसंजदा केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा[2] ॥ १९ ॥

जेण तिसु वि कालेसु पमत्तापमत्तसंजदेहि विरहिदो एगो वि समओ णत्थि, तेण सव्वद्धं हवंति ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं[3] ॥ २० ॥

संयतासंयत जीवका उत्कृष्ट काल कुछ कम पूर्वकोटि वर्षप्रमाण है ॥१८॥

वह काल इस प्रकार संभव है– मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्ता रखनेवाला एक तिर्यंच अथवा मनुष्य मिथ्यादृष्टि जीव, संज्ञी पंचेन्द्रिय और पर्याप्तक ऐसे संमूर्च्छन तिर्यंच मच्छ, कच्छप, मेंडकादिकोंमें उत्पन्न हुआ, सर्वलघु अन्तर्मुहूर्तकाल द्वारा सर्व पर्याप्तियोंसे पर्याप्तपनेको प्राप्त हुआ (१) । पुनः विश्राम लेता हुआ (२), विशुद्ध हो करके (३), संयमासंयम प्राप्त हुआ । वहां पर पूर्वकोटी काल तक संयमासंयमको पालन करके मरा और सौधर्मकल्पको आदि लेकर आरण अच्युतान्त कल्पोंके देवोंमें उत्पन्न हुआ । तब संयमासंयम नष्ट हो गया । इस प्रकार आदिके तीन अन्तर्मुहूर्तोंसे कम पूर्वकोटिप्रमाण संयमासंयमका काल होता है ।

प्रमत्त और अप्रमत्तसंयत कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ १९ ॥

चूंकि, तीनों ही कालोंमें प्रमत्त और अप्रमत्तसंयतोंसे विरहित एक भी समय नहीं है, इसलिए वे सर्वकाल होते हैं ।

एक जीवकी अपेक्षा प्रमत्त और अप्रमत्तसंयतका जघन्य काल एक समय है ॥ २० ॥

---

१ उत्कर्षेण पूर्वकोटी देशोना । स. सि. १, ८.

२ प्रमत्ताप्रमत्तयोर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । स. सि. १, ८.

३ एकजीवं प्रति जघन्येनैकः समयः । स. सि. १, ८.

तं जधा– पमत्तस्स ताव एगसमओ वुच्चदे। एक्को अप्पमत्तो अप्पमत्तद्धाए खीणाए एगसमयं जीविदमत्थि त्ति पमत्तो जादो। पमत्तगुणेण एगसमयं विट्ठो विदियसमए मदो देवो जादो। णट्ठो पमादविसिट्ठसंजमो। एवं पमत्तस्स एगसमयपरूवणा गदा। अप्पमत्तस्स वुच्चदे– एक्को पमत्तो पमत्तद्धाए खीणाए एगसमयं जीवियमत्थि त्ति अप्पमत्तो जादो। अप्पमत्तगुणेण एगसमयं विट्ठो विदियसमए मदो देवो जादो। णट्ठमप्पमत्तगुणट्ठाणं। अधवा उवसमसेढीदो ओदरमाणो अपुव्वकरणो एगसमयं जीविदमत्थि त्ति अप्पमत्तो जादो, विदियसमए मदो देवेसुववण्णो। एवं दोहि पयारेहि अप्पमत्तस्स एगसमयपरूवणा कदा।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं[1] ॥ २१ ॥

पमत्तस्स ताव वुच्चदे– एक्को अप्पमत्तो पमत्तपज्जाएण परिणमिय सव्वुक्कस्समंतोमुहुत्तमच्छिय मिच्छत्तं गदो। एवं पमत्तस्स उक्कस्सकालपरूवणा गदा। अप्पमत्तस्स वुच्चदे– एक्को पमत्तो होदूण सव्वुक्कस्समंतोमुहुत्तमच्छिय पमत्तो जादो। एसा अप्पमत्तस्स वुक्कस्सकालपरूवणा।

वह इस प्रकार है–– पहले प्रमत्तसंयतका एक समय कहते हैं। एक अप्रमत्तसंयत जीव, अप्रमत्तकालके क्षीण हो जाने पर तथा एक समयमात्र जीवित शेष रहनेपर प्रमत्तसंयत हो गया। प्रमत्तगुणस्थानके साथ एक समय बिता और दूसरे समयमें मरकर देव उत्पन्न हो गया। तब प्रमादविशिष्ट संयम नष्ट हो गया। इस प्रकारसे प्रमत्तसंयतके एक समयकी प्ररूपणा हुई। अब अप्रमत्तसंयतके एक समयकी प्ररूपणा करते हैं–– एक प्रमत्तसंयत जीव प्रमत्तकालके क्षीण हो जाने पर, तथा एक समयमात्र जीवनके शेष रह जाने पर अप्रमत्तसंयत हो गया। तब अप्रमत्तगुणस्थानके साथ एक समय बिता और दूसरे समयमें मरकर देव हो गया। पुनः अप्रमत्तगुणस्थान नष्ट हो गया। अथवा, उपशमश्रेणीसे उतरता हुआ अपूर्वकरणसंयत एक समयमात्र जीवनके शेष रहनेपर अप्रमत्त हुआ और द्वितीय समयमें मरकर देवोंमें उत्पन्न हो गया। इस तरह दोनों प्रकारोंसे अप्रमत्तसंयतके एक समयकी प्ररूपणा की गई।

प्रमत्त और अप्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २१ ॥

पहले प्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट काल कहते हैं–– एक अप्रमत्तसंयत, प्रमत्तसंयतपर्यायसे परिणत होकर और सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कालप्रमाण रह करके मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ। इस प्रकार प्रमत्तसंयतके उत्कृष्ट कालकी प्ररूपणा हुई। अब अप्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट काल कहते हैं–– एक प्रमत्तसंयतजीव, अप्रमत्तसंयत होकर, वहांपर सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल तक रह करके प्रमत्तसंयतजीव हो गया। यह अप्रमत्तसंयतके उत्कृष्ट कालकी प्ररूपणा है।

---

१ उत्कर्षेणान्तर्मुहूर्तः। स. सि. १, ८.

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

चउण्हं उवसमा केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं[1] ॥ २२ ॥

तं कधं ? दो वा तिण्णि वा अणियट्टिउवसामगा सेढीदो ओदरमाणा एगसमयं जीविदमत्थि त्ति अपुव्वकरणउवसामगा जादा । एगसमयमपुव्वकरणेण सह दिट्ठा विदियसमए मदा देवा जादा । एवमपुव्वकरणस्स एगसमयपरूवणा कदा । अप्पमत्तमपुव्वकरणं करिय विदियसमए कालं करावियं अपुव्वकरणस्स एगसमयपरूवणा किण्ण कदेत्ति वुत्ते ण, अपुव्वकरणपढमसमयादो जाव णिद्दा-पयलाणं बंधो ण वोच्छिज्जदि ताव अपुव्वकरणाणं मरणाभावा । एवं चेव तिण्हमुवसामगाणमेगसमयपरूवणा णाणाजीवे अस्सिदूण कायव्वा । णवरि अणियट्टि-सुहुमउवसामगाणं चढंत-ओवरंतजीवे अस्सिदूण दोहि पयारेहि एगसमयपरूवणा कादव्वा । उवसंतकसायस्स चढंतजीवे चेव अस्सिदूण एगसमयपरूवणा कादव्वा ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं[2] ॥ २३ ॥

चारों उपशामक जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय होते हैं ॥ २२ ॥

वह इस प्रकार है— उपशमश्रेणीसे उतरनेवाले दो, अथवा तीन अनिवृत्तिकरण उपशामक जीव एक समयमात्र जीवनके शेष रहनेपर अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती उपशामक हुए । तब एक समयमात्र अपूर्वकरणगुणस्थानके साथ दिखे । पुनः द्वितीय समयमें मरे और देव हो गये । इस प्रकार अपूर्वकरण उपशामकके एक समयकी प्ररूपणा की ।

शंका— अप्रमत्तसंयतको अपूर्वकरणगुणस्थानमें ले जा करके और द्वितीय समयमें मरण कराके अपूर्वकरणगुणस्थानके एक समयकी प्ररूपणा क्यों नहीं की ?

समाधान— इस लिए नहीं की, कि अपूर्वकरणगुणस्थानके प्रथम समयसे लेकर जब तक निद्रा और प्रचला, इन दो प्रकृतियोंका बंध व्युच्छिन्न नहीं हो जाता है, तब तक अपूर्वकरणगुणस्थानवर्ती संयतोंका मरण नहीं होता है ।

इसी प्रकार शेष तीन उपशामकोंके एक समयकी प्ररूपणा नाना जीवोंका आश्रय करके करना चाहिए । विशेष बात यह है कि अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानवर्ती उपशामक जीवोंके एक समयकी प्ररूपणा उपशमश्रेणी चढ़ते हुए और उतरते हुए जीवोंको आश्रय करके दोनों प्रकारोंसे करना चाहिए । किन्तु उपशान्तकषाय उपशामकके एक समयकी प्ररूपणा चढ़ते हुए जीवोंको ही आश्रय करके करना चाहिए ।

चारों उपशामकोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २३ ॥

१ चतुर्णामुपशमकानां नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः । स. सि. १, ८.

२ उत्कर्षेणान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

तं कधं ? सत्तट्ठ वा चउवण्णा वा अप्पमत्ता अपुव्वकरणउवसामगा जावा जाव ते अणियट्टिट्ठाणं ण पावेंति ताव अण्णे वि अण्णे वि अप्पमत्ता अपुव्वकरण-गुणट्ठाणं पडिवज्जावेदव्वा। ओयरमाणअणियट्टिणो वि अपुव्वकरणं पडिवज्जावेदव्वा। एवं चढंतओयरंतजीवेहि असुण्णं होदूण अपुव्वकरणगुणट्ठाणं अच्छदि जाव तप्पा-ओग्गउक्कस्संतोमुहुत्तं त्ति। तदो णिच्छएण विरहो। एवं चेव तिण्हमुवसामगाण-मुक्कस्सकालपरूवणा कादव्वा। णवरि उवसंतकसायस्स उक्कस्सकाले भण्णमाणे एगो उवसंतकसाओ चडिय जाव णोअरदि ताव अण्णे सुहुमसांपराइया उवसंतकसाय-गुणट्ठाणं चडावेदव्वा। एवं पुणो पुणो संखेज्जवारं चडाविय उवसंतकालो वड्ढावेदव्वो जाव तप्पाओग्गुक्कस्सअंतोमुहुत्तं पत्तो त्ति।

अजदासं श्री सुविधि[illegible] **एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं'** ॥ २४ ॥

तं कधं ? एक्को अणियट्टिउवसामगो एगसमयं जीविदमत्थि त्ति अपुव्व-उवसामगो जादो एगसमयं दिट्ठो विदियसमए मदो लयसत्तमो देवो जादो। एवं तिण्हमुवसामगाणमेगसमयपरूवणा वत्तव्वा। णवरि अणियट्टि-सुहुमउवसामगाणं चढणो-

यह इस प्रकार है— सात आठसे लेकर चौपन तक अप्रमत्तसंयत जीव एकसाथ अपूर्वकरणगुणस्थानी उपशामक हुए। जब तक वे अनिवृत्तिकरणगुणस्थानको नहीं प्राप्त होते हैं, तब तक अन्य अन्य भी अप्रमत्तसंयत जीव अपूर्वकरणगुणस्थानको प्राप्त करना चाहिए। इसी प्रकारसे उपशमश्रेणीसे उतरनेवाले अनिवृत्तिकरणगुणस्थानी उपशामक भी अपूर्वकरण-गुणस्थानको प्राप्त करना चाहिए। इस प्रकार चढ़ते और उतरते हुए जीवोंसे अशून्य (परिपूर्ण) होकर अपूर्वकरणगुणस्थान उसके योग्य उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्तकाल पूरा होने तक रहता है। इसके पश्चात् निश्चयसे विरह (अन्तराल) हो जाता है। इसी प्रकारसे तीनों ही उपशामकोंके उत्कृष्ट कालकी प्ररूपणा करना चाहिए। विशेष बात यह है कि उपशान्तकषाय उपशामकके उत्कृष्ट कालको कहनेपर एक उपशान्तकषाय जीव चढ़ करके जब तक नहीं उतरता है, तब तक अन्य अन्य सूक्ष्मसाम्परायिक संयत उपशान्तकषायगुणस्थानको चढ़ाना चाहिए। इस प्रकारसे पुनः पुनः संख्यातवार जीवोंको चढ़ाकर उपशान्तकाल उसके योग्य अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होने तक बढ़ाना चाहिए।

एक जीवकी अपेक्षा चारों उपशामकोंका जघन्य काल एक समय है ॥२४॥

यह इस प्रकार है— एक अनिवृत्तिकरण उपशामक जीव एक समयमात्र जीवन शेष रहने पर अपूर्वकरण उपशामक हुआ, एक समय विक्षा और द्वितीय समयमें मरणको प्राप्त हुआ, तथा उत्तम जातिका अनुत्तरविमानवासी देव हो गया। इसी प्रकार शेष तीनों उपशामकोंके एक समयकी प्ररूपणा करना चाहिए। विशेष बात यह है कि अनिवृत्तिकरण

१ एकजीवापेक्षया च जघन्येनैकः। स. सि. १, ८.

यरणविहाणेण वेहि पयारेहि, चढणमस्सिदूण उवसंतकसायस्स एगपयारेण एगसमय-परूवणा कायव्वा ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं[1] ॥ २५ ॥

तं जहा- एक्को अप्पमत्तो अपुव्वउवसामगो जादो । तत्थ सव्वुक्कस्समंतोमुहुत्तमच्छिय अणियट्टिट्ठाणं पडिवण्णो । एवं तिण्णमुवसामगाणं वत्तव्वं ।

चदुण्हं खवगा अजोगिकेवली केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २६ ॥

तं कधं ? सत्तट्ठ जणा अट्ठुत्तरसयं वा अप्पमत्ता अप्पमत्तद्धाए खीणाए अपुव्वकरणखवगा जादा । अंतोमुहुत्तमच्छिय अणियट्टिट्ठाणं गदा । एवं चेव चदुण्हं खवगाणं जाणिदूण भाणिदव्वं ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ २७ ॥

तं जधा- सत्तट्ठ जणा वा बहुगा वा अप्पमत्तसंजदा अपुव्वखवगा जादा ।

और सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानी उपशामकोंके चढ़ने और उतरनेके विधानकी अपेक्षा दोनों प्रकारोंसे तथा आरोहणका आश्रय करके उपशान्तकषाय उपशामककी एक प्रकारसे एक समयकी प्ररूपणा करना चाहिए ।

एक जीवकी अपेक्षा चारों उपशामकोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥२५॥

वह इस प्रकार है— एक अप्रमत्तसंयत जीव अपूर्वकरण गुणस्थानी उपशामक हुआ । वहां पर सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त रहकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थानको प्राप्त हुआ । इसी प्रकारसे तीनों उपशामकोंके एक समयकी प्ररूपणा कहना चाहिए ।

अपूर्वकरण आदि चारों क्षपक और अयोगिकेवली कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त तक होते हैं ॥ २६ ॥

वह इस प्रकार है— सात आठ जन अथवा अधिकसे अधिक एक सौ आठ, अप्रमत्तसंयत जीव, अप्रमत्तकालके क्षीण हो जाने पर, अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती क्षपक हुए । वहां पर अन्तर्मुहूर्त काल रह करके अनिवृत्तिकरण गुणस्थानको प्राप्त हुए । इसी प्रकारसे अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसाम्पराय, क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ और अयोगिकेवली, इन चारों क्षपकोंके जघन्य कालकी प्ररूपणा जान करके कहलाना चाहिए ।

चारों क्षपकोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २७ ॥

वह इस प्रकारसे है— सात आठ जन अथवा बहुतसे अप्रमत्तसंयत जीव अपूर्वकरण

---

१ उत्कर्षेणान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

२ चतुर्णां क्षपकाणामयोगकेवलिनां च नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च जघन्योत्कृष्टभेदात्तन्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

से तत्थ अंतोमुहुत्तमच्छिय अणियट्टिणो जादा। तम्हि चेव समए अण्णो अप्पमत्तो अपुव्वखवगो जादो। एवं पुणो पुणो संखेज्जवारं चढणकिरियाए कदाए णाणाजीवे अस्सिदूण अपुव्वकरणुक्कस्सकालो होदि। एवं चेव चदुण्हं खवगाणं जाणिदूण वत्तव्वं।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २८ ॥

तं जहा– एक्को अप्पमत्तो अपुव्वकरणो खवगो जादो अंतोमुहुत्तमच्छिदूण अणियट्टिखवगो जादो। एवं चेव चदुण्हं खवगाणं जहण्णकालपरूवणा कादव्वा।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ २९ ॥

एक्को अप्पमत्तो अपुव्वखवगो जादो। तत्थ सव्वुक्कस्समंतोमुहुत्तमच्छिदूण अणियट्टिगुणट्ठाणं पडिवण्णो। एगजीवमस्सिदूण अपुव्वकरणुक्कस्सकालो जादो। एवं चेव चदुण्हं खवगाणं जाणिदूण वत्तव्वं। एत्थ जहण्णुक्कस्सकाला वे वि सरिसा, अपुव्वादिपरिणामाणमणुक्कट्टीए[1] अभावादो।

गुणस्थानी क्षपक हुए। वे वहां पर अन्तर्मुहूर्त रह करके अनिवृत्तिकरण गुणस्थानी हो गये। उसी ही समयमें अन्य अप्रमत्तसंयत जीव अपूर्वकरण क्षपक हुए। इस प्रकार पुनः पुनः संख्यातवार आरोहणक्रियाके करने पर नाना जीवोंका आश्रय करके अपूर्वकरण क्षपकका उत्कृष्ट काल होता है। इसी प्रकारसे चारों क्षपकोंका काल जान करके कहना चाहिए।

एक जीवकी अपेक्षा चारों क्षपकोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २८ ॥

वह इस प्रकार है— एक अप्रमत्तसंयत जीव अपूर्वकरण गुणस्थानी क्षपक हुआ और अन्तर्मुहूर्त रह करके अनिवृत्तिकरण क्षपक हुआ। इसी प्रकारसे चारों क्षपकोंके जघन्य कालकी प्ररूपणा करना चाहिए।

एक जीवकी अपेक्षा चारों क्षपकोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २९ ॥

एक अप्रमत्तसंयत जीव अपूर्वकरण क्षपक हुआ। वहां पर सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल तक रह करके अनिवृत्तिकरण गुणस्थानको प्राप्त हुआ। यह एक जीवको आश्रय करके अपूर्वकरणका उत्कृष्ट काल हुआ। इसी प्रकारसे चारों क्षपकोंका काल जान करके कहना चाहिए। यहां पर जघन्य और उत्कृष्ट, ये दोनों ही काल सदृश हैं, क्योंकि, अपूर्वकरण आदिके परिणामोंकी अनुकृष्टिका अभाव होता है।

विशेषार्थ– यहां पर अपूर्वकरण आदिके परिणामोंकी अनुकृष्टिके अभाव कहनेका

---

१ अंतोमुहुत्तमेत्ते पढमसमयसंठाणेणपरिणामा। कमउड्ढापुव्वगुणे अणुकट्टी णत्थि णियमेण ॥ गो. जी. ५३. जम्हा उवरिमभावा हेट्ठिमभावेहिं सरिसगा णत्थि। तम्हा विदियं करणं अपुव्वकरणं ति णिद्दिट्ठं ॥ लब्धि. ५१. तत्र अनुकृष्टिर्नाम अधस्तनसमयपरिणामखंडानां उपरितनसमयपरिणामखंडैः सादृश्यं भवति। गो. जी. जी. प्र. ४९. अपूर्वकरणगुणस्थाने नियमेन अवश्यंभावेन अनुकृष्टिर्नास्ति, तत एव प्रतिसमयपरिणामानां बहुखंडविधानाभाव; । गो. जी. मं. प्र. ५३.

सजोगिकेवली केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा[1] ॥ ३० ॥

तिसु वि कालेसु जेण एक्को वि समओ सजोगिविरहिदो णत्थि तेण सव्वद्धत्तणं जुज्जदे ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[2] ॥ ३१ ॥

तं कधं ? एक्को खीणकसाओ सजोगी होदूण अंतोमुहुत्तमच्छिदूण समुग्घादं करिय पच्छा जोगनिरोहं किच्चा अजोगी जादो । एवं सजोगिस्स जहण्णकालपरूवणा एगजीवमल्लीणा गदा ।

उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणा[3] ॥ ३२ ॥

अभिप्राय इस प्रकार है-- विवक्षित समयमें विद्यमान जीवके अधस्तन समयवर्ती जीवोंके परिणामोंके साथ सदृशता होनेको अनुकृष्टि कहते हैं । अधःप्रवृत्तिकरणमें भिन्न समयवर्ती जीवोंके परिणामोंमें सदृशता पाई जाती है, इसलिए वहां पर अनुकृष्टि रचना बतलाई गई है । किन्तु अपूर्वकरण आदिमें उपरितन समयवर्ती जीवोंके परिणामोंकी अधस्तन समयवर्ती जीवोंके परिणामोंके साथ सदृशता नहीं पाई जाती है, इसलिए अपूर्वकरण आदिमें अनुकृष्टि रचनाका अभाव होता है । इसी कारण अपूर्वकरण आदि गुणस्थानोंके जघन्य काल और उत्कृष्ट काल सदृश बतलाये गये हैं ।

सयोगिकेवली जिन कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ ३० ॥

चूंकि, तीनों ही कालोंमें एक भी समय सयोगिकेवली भगवान्‌से विरहित नहीं है, इसलिए सर्व कालपना बन जाता है ।

एक जीवकी अपेक्षा सयोगिकेवलीका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३१ ॥

वह इस प्रकार है-- एक क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ संयत जीव सयोगिकेवली हो, अन्तर्मुहूर्त काल रह, समुद्घात कर, पीछे योगनिरोध करके अयोगिकेवली हुआ । इस प्रकार सयोगिजिनके जघन्य कालकी प्ररूपणा एक जीवका आश्रय करके कही गई ।

एक जीवकी अपेक्षा सयोगिकेवलीका उत्कृष्ट काल कुछ कम पूर्वकोटी है ॥ ३२ ॥

---

१ सयोगिकेवलिनां नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । स. सि. १, ८.

२ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

३ उत्कर्षेण पूर्वकोटी देशोना । स. सि. १, ८.

तं जधा– एक्को खइयसम्मादिट्ठी देवो वा णेरइओ वा पुव्वकोडाउएसु-मणुसेसु उववण्णो। सत्त मासे गब्भे अच्छिदूण गब्भणिक्खमणजम्मेण अट्ठवस्सिओ जादो (८)। अपमत्तभावेण संजमं पडिवण्णो (१)। पुणो पमत्तापमत्तपरावत्त सहस्सं कादूण (२) अपमत्तद्धाए अधापमत्तकरणं कादूण (३) अपुव्वकरणो (४) अणियट्टिकरणो (५) सुहुमसवगो (६) खीणकसाओ (७) होदूण सजोगी जादो। अट्ठहि वस्सेहि सत्तहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणपुव्वकोडिकालं विहरित्ता अजोगी जादो (८)। एवं अट्ठहि वस्सेहि अट्ठहि अंतोमुहुत्तेहि य ऊणपुव्वकोडी सजोगिकेवलिकालो होदि।

(ओघपरूवणा समत्ता)

आदेसेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइएसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा[1] ॥ ३३ ॥

कुदो ? णिरयगदिम्हि सव्वकालं मिच्छाविट्ठिवोच्छेदाभावा।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[2] ॥ ३४ ॥

वह इस प्रकार है— एक क्षायिकसम्यग्दृष्टि देव अथवा नारकी जीव पूर्वकोटीकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ। सात मास गर्भमें रह करके गर्भसे निकलने रूप जन्मसे आठ वर्षका हुआ (८)। आठ वर्षका होने पर अप्रमत्तभावसे संयमको प्राप्त हुआ (१)। पुनः प्रमत्त और अप्रमत्तसंयतगुणस्थान सम्बन्धी सहस्रों परिवर्तनोंको करके (२) अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें अधःप्रवृत्तकरणको करके (३) क्रमशः अपूर्वकरण (४) अनिवृत्तिकरण (५) सूक्ष्म-साम्पराय क्षपक (६) और क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ होकर (७), सयोगिकेवली हुआ। पुनः वहां पर उक्त आठ वर्ष और सात अन्तर्मुहूर्तोंसे कम पूर्वकोटी कालप्रमाण विहार करके अयोगिकेवली हुआ (८)। इस प्रकार आठ वर्ष और आठ अन्तर्मुहूर्तोंसे कम पूर्वकोटी वर्षप्रमाण सयोगिकेवलीका काल होता है।

(इस प्रकार ओघ प्ररूपणा समाप्त हुई)

आदेशकी अपेक्षा गतिमार्गणाके अनुवादसे नरकगतिमें नारकियोंमें मिथ्या-दृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥३३॥

क्योंकि, नरकगतिमें सर्वकाल मिथ्यादृष्टियोंके व्युच्छेदका अभाव है।

एक जीवकी अपेक्षा नारकी मिथ्यादृष्टिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥३४॥

१ विशेषेण गत्यनुवादेन नरकगतौ नारकेषु सप्तसु पृथिवीषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। स. सि. १, ८.

२ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। स. सि. १, ८.

तं जधा– एक्को सम्मामिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी वा पुव्वं पि बहुवारपरिणमिदमिच्छत्तो संकिलेसं पूरेदूण मिच्छादिट्ठी जादो। सव्वजहण्णमंतोमुहुत्तकालमच्छिय विसुद्धो होदूण सम्मत्तं सम्मा मिच्छत्तंवा पडिवण्णो। एवं मिच्छादिट्ठिस्स जहण्णकालपरूवणा गदा।

उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि ॥ ३५ ॥

तं जहा– एक्को तिरिक्खो मणुसो वा सत्तमाए पुढवीए उववण्णो। तत्थ मिच्छत्तेण सह तेत्तीसं सागरोवमाणि अच्छिय उवट्टिदो। लद्धाणि णेरइयमिच्छादिट्ठिस्स तेत्तीसं सागरोवमाणि।

सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं[1] ॥ ३६ ॥

कुदो ? णिरयगदिम्हि एदेसिं दोण्हं गुणट्ठाणाणं णाणेगजीवजहण्णुक्कस्सपरूवणाणं एदेसिं चेव ओघणाणेगजीवजहण्णुक्कस्सपरूवणाहिंतो भेदाभावा।

असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा[2] ॥ ३७ ॥

यह इस प्रकार है— एक सम्यग्मिथ्यादृष्टि अथवा असंयतसम्यग्दृष्टि जीव, जो कि पहले भी बहुत बार मिथ्यात्वको परिणत हो चुका है, संक्लेशको पूरित करके मिथ्यादृष्टि हो गया। वहां पर सर्व जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल रह कर, विशुद्ध होकर, सम्यक्त्वको अथवा सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ। इस प्रकारसे मिथ्यादृष्टिके जघन्य कालकी प्ररूपणा हुई।

एक जीवकी अपेक्षा नारकी मिथ्यादृष्टिका उत्कृष्ट काल तेतीस सागरोपम है ॥ ३५ ॥

यह इस प्रकार है— एक तिर्यंच अथवा मनुष्य सातवीं पृथिवीमें उत्पन्न हुआ। वहां पर मिथ्यात्वके साथ तेतीस सागरोपम काल रह कर बाहर निकला। इस प्रकार नारकी मिथ्यादृष्टिके तेतीस सागरोपम उपलब्ध हुए।

सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि नारकी जीवोंका एक और नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल ओघके समान है ॥ ३६ ॥

क्योंकि, नरकगतिमें इन दोनों गुणस्थानोंके नाना जीव और एक जीवसम्बन्धी जघन्य काल और उत्कृष्ट कालकी प्ररूपणाओंका इन्हीं दोनों गुणस्थानोंकी ओघगत नाना जीव और एक जीवसम्बन्धी जघन्य और उत्कृष्ट कालकी प्ररूपणाओंसे भेद नहीं है।

असंयतसम्यग्दृष्टि नारकी कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ ३७ ॥

१ सासादनसम्यग्दृष्टेः सम्यग्मिथ्यादृष्टेश्च सामान्योक्तः कालः। स. सि. १, ८.

२ असंयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। स. सि. १, ८.

कुदो ? णिरयगदिम्हि असंजदसम्मादिट्ठिविरहिदकालाभावा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[1] ॥ ३८ ॥

तं जहा– एगो मिच्छादिट्ठी वा सम्मामिच्छादिट्ठी वा सम्मत्ते बहुवारं पुव्वं परियट्टिदूण अच्छिदो विसुद्धो होदूण सम्मत्तं पडिवण्णो । तत्थ सव्वलहुमंतोमुहुत्तमच्छिय सम्मामिच्छत्तं मिच्छत्तं वा गदो । एवं णिरयगदिअसंजदसम्मादिट्ठिस्स जहण्णकालपरूवणा गदा ।

उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि ॥ ३९ ॥

तं जधा– एक्को तिरिक्खो मणुस्सो वा अट्ठावीससंतकम्मिओ मिच्छादिट्ठी सत्तमाए पुढवीए उववण्णो । छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो (३) वेदगसम्मत्तं पडिवण्णो । पुणो अंतोमुहुत्तावसेसआउट्ठिदीए मिच्छत्तं गदो (४) आउगं बंधिदूण (५) अंतोमुहुत्तं विस्समिय (६) उव्वट्टिदो । एवं छहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणाणि तेत्तीसं सागरोवमाणि असंजदसम्मादिट्ठिस्स उक्कस्सकालो ।

क्योंकि, नरकगतिमें असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंसे विरहित कालका अभाव है ।

एक जीवकी अपेक्षा असंयतसम्यग्दृष्टि नारकीका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३८ ॥

वह इस प्रकार है– एक मिथ्यादृष्टि अथवा सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव, जो कि सम्यक्त्वमें पहले बहुतबार परिवर्तन कर चुका है, पुनः विशुद्ध हो करके सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । वहां पर सर्वलघु अन्तर्मुहूर्त काल रह करके सम्यग्मिथ्यात्वको अथवा मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । इस प्रकारसे नरकगतिमें असंयतसम्यग्दृष्टिके जघन्य कालकी प्ररूपणा हुई ।

असंयतसम्यग्दृष्टि नारकीका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागरोपम है ॥ ३९ ॥

वह इस प्रकार है– मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्ता रखनेवाला एक तिर्यंच अथवा मनुष्य मिथ्यादृष्टि जीव सातवीं पृथिवीमें उत्पन्न हुआ । पुनः छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१), विश्राम लेता हुआ (२), विशुद्ध होकर (३), वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । पुनः अन्तर्मुहूर्त कालप्रमाण आयुकर्मकी स्थितिके अवशेष रहने पर मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ (४) । वहां आगामी भवकी आयुको बांधकर (५), अन्तर्मुहूर्त काल विश्राम लेकर (६), निकला । इस प्रकार छह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम तेतीस सागरोपम प्रमाण असंयतसम्यग्दृष्टिका उत्कृष्ट काल होता है ।

१ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

पढमाए जाव सत्तमाए पुढवीए णेरइएसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ ४० ॥

कुदो ? मिच्छादिट्ठिविरहिदसत्तण्हं पुढवीणं सव्वद्धा अभावादो ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ४१ ॥

तं जहा– अप्पप्पणो पुढवीसु दुवअसंजदसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी वा बहुसो मिच्छत्तचरो परिणामपच्चएण मिच्छत्तं गदो । सव्वजहण्णमंतोमुहुत्तमच्छिय पुव्विल्लगुणेसु अण्णदरगुणं गदो । एवं सत्तण्हं पुढवीणं मिच्छादिट्ठिपादेक्कमंतोमुहुत्त-परूवणा कदा ।

उक्कस्सेण सागरोवमं तिण्णि सत्त दस सत्तारस बावीस तेत्तीसं सागरोवमाणि[1] ॥ ४२ ॥

पढमाए पुढवीए एक्कं सागरोवमं, विदियाए पुढवीए तिण्णि सागरोवमं, तदियाए पुढवीए सत्त सागरोवमाणि, चउत्थीए पुढवीए दस सागरोवमाणि, पंचमीए पुढवीए सत्तारस सागरोवमाणि, छट्ठीए पुढवीए बावीस सागरोवमाणि, सत्तमीए

प्रथम पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक नारकियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ ४० ॥

क्योंकि, मिथ्यादृष्टि जीवोंसे रहित सातों पृथिवियोंके नारकियोंका सर्वकाल अभाव है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त पृथिवियोंके नारकी मिथ्यादृष्टि जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ४१ ॥

वह इस प्रकार है— अपनी अपनी पृथिवियोंमें स्थित तथा जिसने पहले भी बहुतवार मिथ्यात्वको प्राप्त किया है ऐसा कोई असंयतसम्यग्दृष्टि अथवा सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव, परिणामोंके निमित्तसे मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । वहां पर सर्व जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल रह करके पूर्वोक्त दोनों गुणस्थानोंमेंसे किसी एक गुणस्थानको प्राप्त हुआ । इस प्रकारसे सातों पृथिवियोंके प्रत्येक मिथ्यादृष्टि जीवके अन्तर्मुहूर्त कालकी प्ररूपणा की गई ।

उक्त सातों पृथिवियोंके मिथ्यादृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट काल क्रमशः एक सागरोपम, तीन, सात, दस, सत्तरह, बाईस और तेतीस सागरोपमप्रमाण है ॥४२॥

प्रथम पृथिवीमें एक सागरोपम, द्वितीय पृथिवीमें तीन सागरोपम, तृतीय पृथिवीमें सात सागरोपम, चौथी पृथिवीमें दश सागरोपम, पांचवी पृथिवीमें सत्तरह सागरोपम, छठी पृथिवीमें बाईस सागरोपम और सातवीं पृथिवीमें तेतीस सागरोपम मिथ्यादृष्टि नारकोंका

१ तेष्वेकत्रिसप्तदशसप्तदशद्वाविंशतित्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा सत्त्वानां परा स्थितिः । तत्त्वार्थसू. ३, ६. उत्कर्षेण यथासंख्यं एक-त्रि-सप्त-दश-सप्तदश-द्वाविंशति-त्रयस्त्रिंशत् सागरोपमाणि । स. सि. १, ८.

पुढवीए तेत्तीस सागरोवमाणि मिच्छादिट्ठिस्स उक्कस्सकालो । कुदो ? एदेहिंतो अधिगबंधाभावा । तं पि कुदो णव्वदे ?

एक्क तिय[1] सत्त दस तह सत्तारह दु-तिण्हदेक्कअधिय कम ।
उवही उक्कस्सट्ठिदी सत्तण्हं होइ पुढवीण ॥ ३४ ॥

आइरिय णिरयाउबंधपुत्तदो ण्णायदे

सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ४३ ॥

कुदो ? दोण्हं गुणट्ठाणाणं णाणाजीवे पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, अंतोमुहुत्तं। उक्कस्सेण दोण्हं पि पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, अंतोमुहुत्तं । उक्कस्सेण छ आवलियाओ अंतोमुहुत्तमेत्तमादिणा भेदाभावा ।

असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ ४४ ॥

तं जहा– सत्तण्हं पुढवीणं असंजदसम्मादिट्ठिविरहिदाणं सव्वद्धाणुवलंभादो ।

उत्कृष्ट काल है, क्योंकि, इनसे अधिक आयुबंधका अभाव है ।

शंका– यह कैसे जाना जाता है कि सूत्रोक्त कालसे अधिक नारकायुके बंधका अभाव है?

समाधान– एक, तीन, सात, दश, तथा सत्तरह सागरोपम, तथा दोसे गुणित एक अधिक दश (२×११=२२) अर्थात् बाईस सागरोपम, तथा तीनसे गुणित ग्यारह (३×११=३३) अर्थात् तेतीस सागरोपम, इस प्रकार सातों पृथिवियोंकी उत्कृष्ट स्थिति होती है ॥ ३४ ॥

इस नारकायुके बंधप्रदर्शक सूत्रसे जाना जाता है कि सूत्रोक्त कालसे अधिक नारकायुके बंधका अभाव है ।

सातों पृथिवियोंके सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका नाना और एक जीव सम्बन्धी जघन्य और उत्कृष्ट काल ओघके समान है ॥ ४३ ॥

क्योंकि, उक्त दोनों गुणस्थानोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य काल क्रमशः एक समय और अन्तर्मुहूर्त है । तथा उत्कृष्ट काल दोनों गुणस्थानोंका पल्योपमके असंख्यातवें भाग है । एक जीवकी अपेक्षा दोनों गुणस्थानोंका क्रमशः जघन्य काल एक समय और अन्तर्मुहूर्त है । तथा उत्कृष्ट काल छह आवलियां और अन्तर्मुहूर्त है । इत्यादि रूपसे कोई भेद नहीं है ।

सातों पृथिवियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि जीव कितने कालतक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल होते हैं ॥ ४४ ॥

वह काल इस प्रकार संभव है— कि सातों पृथिवियां किसी भी कालमें असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंसे रहित नहीं पाई जाती हैं ।

१ ता क प्रत्योः 'एक्कट्ठिदा' अप्रतौ 'एक्कट्ठिय' इति पाठः ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ४५ ॥

तं जधा– सत्तसु पुढवीसु दिट्ठबहुसो सम्मत्तचरअट्ठावीससंतकम्मियमिच्छादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी वा सम्मत्तं पडिवज्जय अंतोमुहुत्तमच्छिय मिच्छत्तं सम्मामिच्छत्तं वा पडिवण्णो। एसो सत्तसु पुढवीसु असंजदसम्मादिट्ठिजहण्णकालो परूविदो।

उक्कस्सं सागरोपमं तिण्णि सत्त दस सत्तारस वावीस तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि ॥ ४६ ॥

तं जधा– एक्केको तिरिक्खो मणुसो वा अट्ठावीससंतकम्मिओ मिच्छादिट्ठी पढमाए पुढवीए वा एवं जाव सत्तमीए वा उववण्णो। छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो (३) वेदगसम्मत्तं पडिवण्णो (४)। सम्मत्तेण अप्पप्पणो उक्कस्साउट्ठिदिमच्छिय णिप्फिडिदूण मणुसेसु उववण्णो। एवं तीहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणा अप्पप्पणो उक्कस्साउट्ठिदी असंजदसम्मादिट्ठिउक्कस्सकालो होदि। णवरि सत्तमाए छहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणा उक्कस्सट्ठिदि त्ति वत्तव्वं, तत्थ

एक जीवकी अपेक्षा सातों पृथिवियोंके असंयतसम्यग्दृष्टि नारकी जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ४५ ॥

वह इस प्रकार है–– सातों ही पृथिवियोंमें स्थित पूर्वमें अनेकवार सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला मिथ्यादृष्टि अथवा सम्यग्दृष्टि जीव सम्यक्त्वको प्राप्त हो कर और अन्तर्मुहूर्त काल रह कर पुनः मिथ्यात्वको अथवा सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ। यह सातों ही पृथिवियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टिका जघन्य काल प्ररूपण किया गया।

सातों पृथिवियोंके असंयतसम्यग्दृष्टि नारकी जीवोंका उत्कृष्ट काल क्रमशः कुछ कम एक सागरोपम, तीन, सात, दश, सत्तरह, बाईस और तेतीस सागरोपम है ॥ ४६ ॥

वह इस प्रकार है–– मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्ता रखनेवाला एक तिर्यंच अथवा मनुष्य मिथ्यादृष्टि जीव पहिली पृथिवीमें अथवा दूसरी पृथिवीमें, इस प्रकारसे लगा कर सातवीं पृथिवीमें उत्पन्न हुआ। छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१), विश्राम लेता हुआ (२), विशुद्ध होकर (३), वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (४), सम्यक्त्वके साथ अपनी अपनी पृथिवीकी उत्कृष्ट आयुकर्मकी स्थितिप्रमाण रह करके वहांसे निकलकर मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ। इस प्रकारसे तीन अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अपनी अपनी पृथिवीकी उत्कृष्ट आयुस्थिति ही उस उस पृथिवीके असंयतसम्यग्दृष्टिका उत्कृष्ट काल होता है। विशेष बात यह है कि सातवीं पृथिवीमें छह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम उत्कृष्ट स्थिति होती है, ऐसा कहना चाहिए, क्योंकि, वहांसे मिथ्यात्वगुणस्थानके विना निर्गमनका अभाव है, अर्थात् मिथ्यात्वके अतिरिक्त अन्य गुणस्था-

मिच्छत्तगुणेण विणा णिग्गमाभावा। असंजदसम्मादिट्ठिम्मि आउअं बंधिय विस्संतो होदूण मिच्छत्तं गंतूण सत्तमपुढवीदो णिस्सरिदे सम्मत्तकालो बहुगो लब्भदि त्ति वुत्तं ण, सत्तमपुढविणेरइयाणं मणुसेसुववादाभावा। असंजदसम्माविट्ठीणं पि णिरय-तिरिक्खाउबंधाभावा। जेण गुणेण आउअबंधस्स संभवो अत्थि, तेणेव गुणेण णिग्गमादो च।

तिरिक्खगदीए तिरिक्खेसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा[1] ॥ ४७ ॥

कुदो ? मिच्छादिट्ठीहि विणा सव्वद्धा तिरिक्खगदीए अणुवलंभा।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[2] ॥ ४८ ॥

तं जहा– एक्को सम्मामिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी संजदासंजदो वा बहुसो मिच्छत्तचरो मिच्छत्तं पडिवण्णो। सव्वजहण्णमंतोमुहुत्तमच्छिय पुव्वुत्तगुणेसु

नोंसे निकलना नहीं हो सकता है।

शंका– असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें आगामी भवकी आयुको बांधकर विश्राम्त होता हुआ मिथ्यात्वको प्राप्त होकर सातवीं पृथिवीसे निकलने पर सम्यक्त्वका काल बहुत प्राप्त होता है ?

समाधान– नहीं, क्योंकि, सातवीं पृथिवीके नारकोंका मनुष्योंमें उपपाद नहीं होता है। तथा, असंयतसम्यग्दृष्टियोंके भी नारक और तिर्यंच आयुके बंधका अभाव है। दूसरी बात यह भी है कि जिस गुणस्थानसे आयुका बंध संभव है, उस ही गुणस्थानसे उसका निर्गमन भी होता है।

तिर्यंचगतिमें, तिर्यंचोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने कालतक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ ४७ ॥

क्योंकि, मिथ्यादृष्टि जीवोंके बिना किसी कालमें तिर्यंचगति नहीं पाई जाती है।

एक जीवकी अपेक्षा तिर्यंच मिथ्यादृष्टि जीवका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ४८ ॥

वह इस प्रकार है– पहले बहुतवार मिथ्यात्वमें भ्रमण किया हुआ एक सम्य-ग्मिथ्यादृष्टि अथवा असंयतसम्यग्दृष्टि अथवा संयतासंयत जीव मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ। वहां पर सबसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल रह करके पूर्वोक्त गुणस्थानोंमेंसे किसी एक गुणस्थानको

---

१ तिर्यग्गतौ तिरश्चां मिथ्यादृष्टीनां नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। स. सि. १, ८.

२ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। स. सि. १, ८.

अण्णदरगुणं गदो । एवं जहण्णकालपरूवणा गदा ।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टं[1] ॥ ४९ ॥

एक्को मणुसो देवो णेरइओ वा अणादियछव्वीससंतकम्मिओ मिच्छाविट्ठी तिरिक्खेसु उववण्णो । आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्ताणि पोग्गलपरियट्टाणि परियट्टिदूण अण्णगदिं गदो । असंखेज्जपोग्गलपरियट्टाणि त्ति वयणादो अणंतोवलद्धी होदि त्ति अणंतग्गहणं किण्णावणिज्जदे ? ण, अणंतग्गहणमंतरेण पोग्गलपरियट्टस्स अणंतत्तुवलद्धीए उवायाभावादो । पोग्गलपरियट्टाणि आवलियाए असंखेज्जभागमेत्ताणि चेवेत्ति कधं णव्वदे ? ण, आइरियपरंपरागद वक्खाणा तदवगमादो ।

सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं[2] ॥ ५० ॥

कुदो ? णाणेगजीवजहण्णुक्कस्सपरूवणाहि विसेसाभावा ।

प्राप्त हुआ । इस प्रकारसे तिर्यंच मिथ्यादृष्टिके जघन्य कालकी प्ररूपणा हुई ।

एक जीवकी अपेक्षा तिर्यंच मिथ्यादृष्टि जीवका उत्कृष्ट काल अनन्त कालप्रमाण असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन है ॥ ४९ ॥

मोहकर्मकी छब्बीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला एक मनुष्य, देव अथवा नारकी अनादि-मिथ्यादृष्टि जीव तिर्यंचोंमें उत्पन्न हुआ । वहांपर आवलीके असंख्यातवें भागमात्र पुद्गलपरिवर्तनोंको परिवर्तित करके अन्य गतिको चला गया ।

शंका— 'असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन' इस प्रकारसे वचनसे अनन्तताकी उपलब्धि होती है, इसलिये सूत्रमेंसे 'अनन्त' पदका ग्रहण क्यों नहीं निकाल दिया जाय ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, अनन्तपदके ग्रहण किए विना पुद्गलपरिवर्तनके अनन्तताकी उपलब्धिका और कोई उपाय नहीं है ।

शंका— तिर्यंच मिथ्यादृष्टिके बताये गये उक्त पुद्गलपरिवर्तन, 'आवलीके असंख्यातवें भागमात्र ही होते हैं,' यह कैसे जाना ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, आचार्य-परम्परागत व्याख्यानसे उक्त बातका ज्ञान होता है ।

सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि तिर्यंचोंका काल ओघके समान है ॥ ५० ॥

क्योंकि, नाना और एक जीवसम्बन्धी जघन्य और उत्कृष्ट कालकी प्ररूपणाओंके साथ इन दोनोंकी कालप्ररूपणाओंमें कोई विशेषता नहीं है ।

---

१ उत्कर्षेणानन्ताः कालोऽसंख्येयाः पुद्गलपरिवर्ताः । स. सि. १, ८.

२ सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्टिसंयतासंयतानां सामान्योक्तः कालः । स. सि. १, ८.

असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा[1] ॥ ५१ ॥

कुदो ? तीदाणागद-वट्टमाणकालेसु असंजदसम्मादिट्ठिविरहिदतिरिक्खगदीए अभावा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[2] ॥ ५२ ॥

तं जधा– एक्को मिच्छादिट्ठी वा सम्मामिच्छादिट्ठी वा संजदासंजदो वा परिणामपच्चएण असंजदसम्मादिट्ठी जादो । सव्वलहुमंतोमुहुत्तमच्छिय विसोहीए ढुक्कओ संजमासंजमं गदो, संकिलेसेण ढुक्कओ मिच्छत्तं सम्मामिच्छत्तं वा गदो । एवं जहण्णकालपरूवणा गदा ।

उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि[3] ॥ ५३ ॥

तं जधा– एक्को मणुस्सो बद्धतिरिक्खाउओ सम्मत्तं घेत्तूण दंसणमोहणीयं खविय देवुत्तरकुरुतिरिक्खेसु उववण्णो । तिण्णि पलिदोवमाणि तत्थ सम्मत्तेण सह

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्यंच जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ ५१ ॥

क्योंकि, अतीत, अनागत और वर्तमान, इन तीनों ही कालोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंसे रहित तिर्यंचगति नहीं पाई जाती है ।

एक जीवकी अपेक्षा असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्यंचोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ५२ ॥

वह इस प्रकार है– एक मिथ्यादृष्टि अथवा सम्यग्मिथ्यादृष्टि अथवा संयतासंयत तिर्यंच जीव परिणामोंके निमित्तसे असंयतसम्यग्दृष्टि हुआ । वहां सर्वलघु अन्तर्मुहूर्त काल रह करके विशुद्धिसे बढ़ता हुआ संयमासंयमको प्राप्त हो गया । पुनः संक्लेशसे बढ़ता हुआ मिथ्यात्वको अथवा सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । इस प्रकार जघन्य कालकी प्ररूपणा हुई ।

असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्यंचका उत्कृष्ट काल तीन पल्योपम है ॥ ५३ ॥

वह इस प्रकार है– बद्धतिर्यगायुष्क एक मनुष्य सम्यक्त्वको ग्रहण करके और दर्शनमोहनीयका क्षय कर, देवकुरु या उत्तरकुरुके तिर्यंचोंमें उत्पन्न हुआ । वहां पर तीन पल्योपम कालप्रमाण सम्यक्त्वके साथ रह कर मरा और देव हो गया । इस प्रकारसे

१ असंयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । स. सि. १, ८.

२ एकजीवं प्रति जघन्यमन्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

३ उत्कर्षेण त्रीणि पल्योपमानि । स. सि. १, ८.

अच्छिय मदो देवो जादो। एवं तिरिक्खेसु असंजदसम्मादिट्ठिस्स उक्कस्सकालो परूविदो।

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

संजदासंजदा केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ ५४ ॥

कुदो ? तिसु वि कालेसु संजदासंजदविरहिदतिरिक्खाभावा।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ५५ ॥

तं जहा– अट्ठावीससंतकम्मियमिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी वा परिणामपच्चएण संजमासंजमं गदो। सव्वलहुमंतोमुहुत्तमच्छिय पुव्वुत्ताणमेक्कदरं गदो।

उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणा ॥ ५६ ॥

एक्को तिरिक्खो मणुसो वा मिच्छादिट्ठी अट्ठावीससंतकम्मिओ सण्णिपंचिंदियतिरिक्खसंमुच्छिमपज्जत्तमंडूक-मच्छ-कच्छपादीसु उववण्णो। छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो (३) संजमासंजमं पडिवण्णो। एदेहि तीहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणपुव्वकोडिकालं संजमासंजममणुपालिदूण मदो देवो जादो।

तिर्यंचोंमें असंयतसम्यग्दृष्टिका उत्कृष्ट काल कहा।

संयतासंयत तिर्यंच कितने काल होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ ५४ ॥

क्योंकि, तीनों ही कालोंमें संयतासंयतोंसे रहित तिर्यंचोंका अभाव है।

एक जीवकी अपेक्षा संयतासंयत तिर्यंचका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥५५॥

वह इस प्रकार है– मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला मिथ्यादृष्टि अथवा असंयतसम्यग्दृष्टि जीव परिणामोंके निमित्तसे संयमासंयमको प्राप्त हुआ। वहां पर सर्वलघु अन्तर्मुहूर्त काल रह करके पूर्वोक्त गुणस्थानोंमेंसे किसी एक गुणस्थानको प्राप्त हो गया। (इस प्रकार अन्तर्मुहूर्त काल सिद्ध हुआ।)

एक जीवकी अपेक्षा संयतासंयत तिर्यंचका उत्कृष्ट काल तक कुछ कम पूर्वकोटि वर्षप्रमाण है ॥ ५६ ॥

मोहकर्मकी अट्ठाईस कर्मप्रकृतियोंकी सत्तावाला एक तिर्यंच या मनुष्य मिथ्यादृष्टि, संज्ञी पंचेन्द्रिय सम्मूर्छिम पर्याप्त मंडूक, मत्स्य कच्छप आदि तिर्यंचोंमें उत्पन्न हुआ। छहों पर्याप्तियोंमें पर्याप्त होता हुआ (१), विश्राम लेकर (२), और विशुद्ध होकर (३) संयमासंयमको प्राप्त हुआ। इन तीन अन्तर्मुहूर्तोंसे कम पूर्वकोटि कालप्रमाण संयमासंयमको परिपालन करके मरा और देव हो गया। (इस प्रकार सूत्रोक्त काल सिद्ध हुआ।)

पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खपज्ज-पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ ५७ ॥

कुदो ? तिसु वि कालेसु पंचिंदियतिरिक्खतियमिच्छादिट्ठिविरहिदपंचिंदियतिरिक्खतियाणुवलंभा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ५८ ॥

एक्को सम्मामिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी संजदासंजदो वा दिट्ठमग्गो मिच्छत्तं पडिवण्णो । सव्वलहुमंतोमुहुत्तमच्छिय पुध्वुत्ताणमण्णदरं गुणं गदो । तेण अंतोमुहुत्तमिदि सुत्ते वुत्तं ।

उक्कस्सं तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेण अब्भहियाणि ॥ ५९ ॥

तं जधा- एक्को देवो णेरइओ मणुस्सो वा अप्पिदपंचिंदियतिरिक्खवदिरित्ततिरिक्खो वा अप्पिदपंचिंदियतिरिक्खेसु उववण्णो । सण्णि-इत्थि-पुरिस-णवुंसगवेदेसु

पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त और पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिनियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ ५७ ॥

क्योंकि, तीनों ही कालोंमें तीनों प्रकारके पंचेन्द्रिय तिर्यंच मिथ्यादृष्टियोंसे रहित उक्त तीनों प्रकारके पंचेन्द्रिय तिर्यंच नहीं पाये जाते हैं ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त तीनों प्रकारके तिर्यंच मिथ्यादृष्टि जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ५८ ॥

जिसने मिथ्यात्वका मार्ग पहले कई बार देखा है ऐसा एक सम्यग्मिथ्यादृष्टि अथवा असंयतसम्यग्दृष्टि अथवा संयतासंयत तिर्यंच मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । वहां पर सर्वलघु अन्तर्मुहूर्त काल रह कर पूर्वोक्त गुणस्थानोंमेंसे किसी एक गुणस्थानको प्राप्त हुआ इस लिए सूत्रमें 'अन्तर्मुहूर्तकाल' ऐसा कहा है ।

उक्त तीनों प्रकारके पंचेन्द्रिय तिर्यंच मिथ्यादृष्टियोंका उत्कृष्ट काल पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक तीन पल्योपम है ॥ ५९ ॥

जैसे, एक देव, नारकी, मनुष्य अथवा विवक्षित पंचेन्द्रिय तिर्यंचसे विभिन्न अन्य तिर्यंच जीव, विवक्षित पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंमें उत्पन्न हुआ । वहां पर संज्ञी स्त्री, पुरुष और

कमेण अट्ठट्ठपुव्वकोडीओ हिंडिदूण असण्णि-इत्थि-पुरिस-णवुंसयवेदेसु वि एवं चेव अट्ठट्ठपुव्वकोडीओ परिभमिय तदो पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तएसु उववण्णो। तत्थ-अंतोमुहुत्तमच्छिय पुणो पंचिंदियतिरिक्खअसण्णिपज्जत्तएसु उववज्जिय तत्थतणइत्थि-पुरिस-णवुंसयवेदएसु पुणो वि अट्ठट्ठपुव्वकोडीओ परिभमिय पच्छा सण्णिपंचिंदिय-तिरिक्खअपज्जत्तइत्थि[1]णवुंसयवेदेसु अट्ठट्ठपुव्वकोडीओ पुरिसवेदेसु सत्त पुव्वकोडीओ हिंडिदूण तदो देवकुरुतिरिक्खेसु पुव्विल्लाउअवसेण इत्थिवेदेसु वा पुरिसवेदेसु वा उववण्णो। तत्थ-तिण्णि पलिदोवमाणि जीविदूण मदो देवो जादो। एदाओ पंचाणउदि पुव्वकोडीओ पुव्वकोडिवारसपुधत्तसण्णिदाओ त्ति एदासिं पुव्वकोडि-पुधत्तसद्दादेसो सुत्तण्णिद्दिट्ठो ण जुज्जदे ? ण एस दोसो, तस्स बहुउल्लवाइत्तादो। वारसण्हं पुव्वकोडिपुधत्ताणं कधमेगत्तं ? ण, जाइमुहेण सहस्साण वि एगत्तविरोहा-भावा। णवरि पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्तएसु सत्तेतालीसपुव्वकोडीओ हिंडाविय पच्छा

नपुंसक वेदोंमें क्रमसे आठ आठ पूर्वकोटि कालप्रमाण भ्रमण करके, असंज्ञी स्त्री, पुरुष और नपुंसक वेदोंमें भी इसी प्रकारसे आठ आठ पूर्वकोटि कालप्रमाण परिभ्रमण करके, इसके पश्चात् पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंमें उत्पन्न हुआ। वहां पर अन्तर्मुहूर्त रह कर, पुनः पंचेन्द्रिय तिर्यंच असंज्ञी पर्याप्तकोंमें उत्पन्न होकर, स्त्री, पुरुष और नपुंसक वेदी उन तिर्यञ्चोंमें फिर भी आठ आठ पूर्वकोटियों तक परिभ्रमण करके, पीछे संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्तक स्त्री और नपुंसक वेदियोंमें आठ आठ पूर्वकोटियां, तथा पुरुषवेदियोंमें सात पूर्वकोटियां भ्रमण करके उसके पश्चात् देवकुरु अथवा उत्तरकुरुके तिर्यंचोंमें पूर्वली आयुके वशसे स्त्रीवेदियोंमें अथवा पुरुषवेदियोंमें उत्पन्न हुआ। वहां पर तीन पल्योपम तक जीवित रहकर मरा और देव हो गया।

शंका— ये पूर्वमें कही गई पंचानवे पूर्वकोटियां पूर्वकोटिबारहपृथक्त्व संज्ञारूप हैं; इसलिए, इनकी सूत्रनिर्दिष्ट पूर्वकोटिपृथक्त्व ऐसी संज्ञा नहीं बनती है ?

समाधान— यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, यह पृथक्त्व शब्द बहुत्वका भी है, (इसलिए कोटिपृथक्त्वसे यथासंभव विवक्षित अनेक कोटियां ग्रहण की जा सकती हैं।)

शंका— बारह पूर्वकोटिपृथक्त्वोंमें एकपना कैसे बन सकता है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, जातिके मुखसे, अर्थात् जातिकी अपेक्षा, सहस्रोंके भी एकत्व होनेमें विरोधका अभाव है।

विशेष बात यह है कि पंचेन्द्रिय तिर्यंचपर्याप्तकोंमें सैंतालीस पूर्वकोटियों तक भ्रमण कराके पीछे तीन पल्योपमवाले तिर्यंचोंमें उत्पन्न कराना चाहिए; क्योंकि, अपर्याप्तकताके

१ प्रतिषु ' दसपुधत्त ' इति पाठः।

तिपलिदोवमिएसु तिरिक्खेसु उप्पादेदव्वो । कुदो ? अपज्जत्तत्तेण एदेसिमपरिणदाणं पच्छा सेसपुव्वकोडीओ परिब्भमणे संभवाभावा । अपज्जत्तएसु कधमित्थिवेदस्स संभवो ? ण, अपज्जत्तित्थिवेदाणमण्णोण्णविरोहाभावा । पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीसु पण्णारस पुव्वकोडीओ भमाविय पच्छा देवुत्तरकुरवेसु उप्पादेदव्वो । कुदो ? वेदंतरसंकंतीए अभावादो । णत्थि अण्णो कोइ विसेसो ।

सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ६० ॥

कुदो ? तिसु वि पंचिंदियतिरिक्खेसु ट्ठिदजोगुणट्ठाणाणं णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, अंतोमुहुत्तं । उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ अंतोमुहुत्तं । उक्कस्सेण छावलियाओ अंतोमुहुत्तमिदि एदेहि विसेसाभावा ।

असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ ६१ ॥

कुदो ? तिसु वि पंचिंदियतिरिक्खेसु असंजदसम्मादिट्ठिविरहिदकालाभावा ।

साथ अपरिणत हुए, अर्थात् लब्ध्यपर्याप्तक हुए बिना, उक्त जीवोंका पश्चात् शेष पूर्वकोटियों प्रमाण परिभ्रमण करना नहीं है ।

शंका- लब्ध्यपर्याप्तकोंमें स्त्रीवेद कैसे संभव है ?

समाधान- नहीं, क्योंकि, लब्ध्यपर्याप्त और स्त्रीवेद, इन दोनों अवस्थाओंमें परस्पर कोई विरोध नहीं है ।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिनियोंमें पन्द्रह पूर्वकोटियों तक भ्रमण कराके पश्चात् देवकुरु और उत्तरकुरुमें उत्पन्न कराना चाहिए, क्योंकि, वेद-परिवर्तनका अभाव है । इसके सिवाय अन्य कोई विशेष नहीं है ।

उक्त तीनों प्रकारके तिर्यंच सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका काल ओघके समान है ॥ ६० ॥

क्योंकि, तीनों ही पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंमें स्थित उक्त दोनों गुणस्थानोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय और अन्तर्मुहूर्त है । तथा उत्कृष्ट काल पल्योपमका असंख्यातवां भाग है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय और अन्तर्मुहूर्त, तथा उत्कृष्ट काल छह आवलियां और अन्तर्मुहूर्त है । इस प्रकार इन दोनों गुणस्थानोंसे उक्त तीनों पंचेन्द्रिय जीवोंके कालोंमें कोई विशेषता नहीं है ।

उक्त तीनों प्रकारके तिर्यंच असंयतसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल होते हैं ॥ ६१ ॥

क्योंकि, तीनों ही प्रकारके पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंसे रहित कालका अभाव है ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ६२ ॥

कुदो ? मिच्छादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी संजदासंजदो वा विसोहि-संकिलेसवसेण असंजदसम्मादिट्ठी होदूण सव्वजहण्णमंतोमुहुत्तमच्छिय अविणट्ठ-संकिलेस-विसोहीहि पडिवण्णगुणंतरस्स अंतोमुहुत्तमेत्तकालुवलंभादो ।

उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि, तिण्णि पलिदोवमाणि, तिण्णि पलिदोवमाणि देसूणाणि ॥ ६३ ॥

पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्ताणं संपुण्णाणि तिण्णि पलिदोव-माणि । कुदो ? मणुस्सस्स बद्धतिरिक्खाउअस्स सम्मत्तं घेत्तूण दंसणमोहणीयं खविय देवुत्तरकुरुपंचिंदियतिरिक्खेसुववज्जिय अप्पणो आउट्ठिदिमणुपालिय देवेसु-प्पण्णस्स संपुण्णतिण्णिपलिदोवममेत्तसासंजमसम्मत्तकालुवलंभादो । पंचिंदियतिरिक्ख-जोणिणीसु देसूणतिण्णिपलिदोवमाणि । कुदो ? तिरिक्खस्स मणुस्सस्स वा अट्ठावीस-संतकम्मियमिच्छादिट्ठिस्स देवुत्तरकुरुपंचिंदियतिरिक्खजोणिणीसु उप्पज्जिय वे मासे गब्भे अच्छिदूण णिक्खंतस्स मुहुत्तपुधत्तेण विसुद्धो होदूण वेदगसम्मत्तं पडिवज्जिय

एक जीवकी अपेक्षा उक्त तीनों प्रकारके पंचेन्द्रिय तिर्यंच असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ६२ ॥

क्योंकि, कोई मिथ्यादृष्टि अथवा सम्यग्मिथ्यादृष्टि अथवा संयतासंयत तिर्यंच यथाक्रमसे विशुद्धि अथवा संक्लेशके वशसे असंयतसम्यग्दृष्टि होकर सबसे कम अन्तर्मुहूर्त काल रह कर, अविनष्ट संक्लेश और विशुद्धिके साथ यथाक्रमसे दूसरे गुणस्थानको प्राप्त हुआ, ऐसे जीवके अन्तर्मुहूर्त काल पाया जाता है ।

उक्त तीनों पंचेन्द्रिय तिर्यंच असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट काल यथाक्रमसे तीन पल्योपम, तीन पल्योपम और कुछ कम तीन पल्योपम है ॥ ६३ ॥

पंचेन्द्रिय तिर्यंच और पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्तकोंका सम्पूर्ण तीन पल्योपम उत्कृष्ट काल है, क्योंकि, बद्धतिर्यगायुष्क मनुष्यके, सम्यक्त्वको ग्रहण करके, दर्शनमोहनीयका क्षपण कर, देवकुरु या उत्तरकुरुके पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंमें उत्पन्न होकर, अपनी आयुस्थितिको परिपालन कर, देवोंमें उत्पन्न होनेवाले जीवके तो संपूर्ण तीन पल्योपममात्र असंयमसहित सम्यक्त्वका काल पाया जाता है । पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिनियोंमें कुछ कम तीन पल्योपम काल है । क्योंकि, मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाले तिर्यंच अथवा मनुष्य मिथ्यादृष्टि जीवके देवकुरु अथवा उत्तरकुरुके पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिनियोंमें उत्पन्न होकर और दो मास गर्भमें रहकर, जन्म लेनेवाले और मुहूर्तपृथक्त्वसे विशुद्ध होकर वेदकसम्यक्त्वको

मुहुत्तपुधत्तब्भहिय-बे-मासूणतिण्णि पलिदोवमाणि सम्मत्तमणुपालिय देवेसुववण्णस्स देसूणतिण्णिपलिदोवममेत्तसम्मत्तकालुवलंभादो ।

संजदासंजदा ओघं ॥ ६४ ॥

कुदो ? तिसु वि पंचिंदियतिरिक्खेसु णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा, एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणा इच्चाइणा भेदाभावा । णवरि जोणिणीसु बे मासे अंतोमुहुत्तेहि ऊणिया त्ति वत्तव्वं ।

पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ ६५ ॥

कुदो ? पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तविरहिदकालाणुवलंभा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ ६६ ॥

कुदो ? एइंदिय-बेइंदिय-तेइंदिय-चउइंदियपज्जत्त-अपज्जत्त-पंचिंदियतिरिक्ख-पज्जत्त मणुसपज्जत्तापज्जत्तएसु अण्णदरस्स खुद्दाभवग्गहणावेइदपंचिंदियतिरिक्ख-

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

प्राप्त करके मुहूर्तपृथक्त्वसे अधिक दो मास कम तीन पल्योपम तक सम्यक्त्वको अनुपालन करके देवोंमें उत्पन्न होनेवाले जीवके कुछ कम तीन पल्योपमप्रमाण सम्यक्त्वका काल पाया जाता है ।

उक्त तीनों प्रकारके पंचेन्द्रिय संयतासंयत तिर्यंचोंका काल ओघके समान है ॥ ६४ ॥

क्योंकि, तीनों ही प्रकारके पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंमें नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल, एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ कम पूर्वकोटिप्रमाण होता है, इत्यादि रूपसे भेदका अभाव है । विशेष बात यह है कि योनिनियोंमें दो मास और कुछ अन्तर्मुहूर्तोंसे कम, काल कहना चाहिए ।

पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक तिर्यंच कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ ६५ ॥

क्योंकि, पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक तिर्यंच जीवोंसे रहित कोई भी काल नहीं पाया जाता ।

एक जीवकी अपेक्षा पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त तिर्यंचोंका जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है ॥ ६६ ॥

क्योंकि, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय पर्याप्तक और अपर्याप्तक, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्तक, तथा मनुष्य पर्याप्तक और अपर्याप्तकोंमेंसे किसी एक जीवके क्षुद्रभवग्रहणसे युक्त पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तक जीवोंमें उत्पन्न होकर, और वहां पर सर्व जघन्य काल

अपज्जत्तएसु उववज्जिय सव्वजहण्णकालमच्छिय पुव्वुत्ताणमण्णदरं गदस्स खुद्दाभवग्गहणमेत्तअपज्जत्तकालुवलंभा ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ६७ ॥

कुदो ? पुव्वुत्ताणमण्णदरस्स पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तएसु उववज्जिय सण्णिअसण्णि-अपज्जत्तएसु अट्ठट्ठवारमुववज्जिय णिस्सरिदूण पुव्वुत्ताणमण्णदरं गदस्स अंतोमुहुत्तमेत्तुवक्कस्सकालुवलंभा ।

मणुसगदीए मणुस-मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा[1] ॥ ६८ ॥

कुदो ? तिविधेसु वि मणुस्सेसु मिच्छादिट्ठि-विरहिदकालाणुवलंभा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[2] ॥ ६९ ॥

कुदो ? सम्मामिच्छादिट्ठिस्स असंजदसम्मादिट्ठिस्स संजदासंजदस्स वा

आचार्य श्री सुविधिसागर

रह कर, पूर्वोक्त एकेन्द्रियादिकोंमेंसे किसी एकको प्राप्त हुए जीवके क्षुद्रभवग्रहणमात्र अपर्याप्तकाल पाया जाता है ।

एक जीवकी अपेक्षा पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक तिर्यंचका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ६७ ॥

क्योंकि, पूर्वमें कहे गये एकेन्द्रियादिकोंमेंसे किसी एकके पंचेन्द्रियतिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंमें उत्पन्न होकर, संज्ञी और असंज्ञी लब्ध्यपर्याप्तकोंमें आठ आठ बार उत्पन्न होकर, और उनमेंसे निकलकर, पूर्वोक्त जीवोंमेंसे किसी एक जीवकी पर्यायको प्राप्त हुए जीवके अन्तर्मुहूर्तप्रमाण उत्कृष्ट काल पाया जाता है ।

मनुष्यगतिमें, मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ ६८ ॥

क्योंकि, तीनों ही प्रकारके मनुष्योंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंसे रहित कोई काल नहीं पाया जाता है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त तीनों प्रकारके मिथ्यादृष्टि मनुष्योंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ६९ ॥

क्योंकि, सम्यग्मिथ्यादृष्टिके अथवा असंयतसम्यग्दृष्टिके अथवा संयतासंयतके

---

१ मनुष्यगतौ मनुष्येषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । स. सि. १, ८.

२ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

संकिलेसवसेण मिच्छत्तं गंतूण सव्वजहण्णमंतोमुहुत्तमच्छिय पुव्वुत्ताणमण्णदरं गदस्स तिसु वि मणुस्सेसु अंतोमुहुत्तमेत्तमिच्छत्तकालुवलंभो ।

उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि[1] ॥ ७० ॥

कुदो ? अणप्पिदजीवस्स अप्पिदमणुसेसुववज्जिय इत्थि-पुरिस-णवुंसयवेदेसु अट्ठट्ठपुव्वकोडीओ परिभमिय अपज्जत्तएसुववज्जिय तत्थ अंतोमुहुत्तमच्छिय पुणो इत्थिणवुंसयवेदेसु अट्ठट्ठपुव्वकोडीओ, पुरिसवेदेसु सत्त पुव्वकोडीओ हिंडिय देवुत्तर-कुरवेसु तिण्णि पलिदोवमाणि अच्छिय देवेसुववण्णस्स पुव्वकोडिपुधत्तब्भहियतिण्णि-पलिदोवममुवलंभा । णवरि मणुसमिच्छादिट्ठिस्स चेय सत्तेत्तालीसपुव्वकोडीओ अहिया होंति, ण सेसाणं । पज्जत्तमिच्छादिट्ठीणं तेवीसपुव्वकोडीओ, मणुस-अपज्जत्तएसु तेसिमुप्पत्तीए अभावादो । मणुसिणीमिच्छादिट्ठीसु सत्तपुव्वकोडीओ अहियाओ, वेदंतरसंकंतीए अभावादो ।

संक्लेशके वशसे मिथ्यात्वको प्राप्त होकर, सर्व जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल रह कर, पूर्वोक्त गुणस्थानोंमेंसे किसी एक गुणस्थानको प्राप्त हुए जीवके तीनों ही प्रकारके मनुष्योंमें अन्तर्मुहूर्त-मात्र मिथ्यात्वका काल पाया जाता है ।

एक जीवकी अपेक्षा तीनों प्रकारके मिथ्यादृष्टि मनुष्योंका उत्कृष्ट काल पूर्वकोटिपृथक्त्ववर्षसे अधिक तीन पल्योपमप्रमाण है ॥ ७० ॥

क्योंकि, अविवक्षित जीवके विवक्षित मनुष्योंमें उत्पन्न होकर स्त्री, पुरुष और नपुंसकवेदियोंमें क्रमशः आठ आठ पूर्वकोटियों तक परिभ्रमण करके, लब्ध्यपर्याप्तकोंमें उत्पन्न होकर, वहां पर अन्तर्मुहूर्त काल रह करके, पुनः स्त्री और नपुंसक वेदियोंमें आठ आठ पूर्वकोटियां तथा पुरुषवेदियोंमें सात पूर्वकोटियां भ्रमण करके, देवकुरु अथवा उत्तरकुरुमें तीन तीन पल्योपमों तक रह करके, देवोंमें उत्पन्न होनेवाले जीवके पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक तीन पल्योपम पाये जाते हैं । विशेष बात यह है कि मनुष्य मिथ्यादृष्टिके ही तीन पल्योपमोंसे अधिक सैंतालीस पूर्वकोटियां होती हैं; शेष मनुष्योंके नहीं । पर्याप्त मिथ्यादृष्टि मनुष्योंके तेईस पूर्वकोटियां अधिक होती हैं; क्योंकि, मनुष्यलब्ध्यपर्याप्तकोंमें उनकी उत्पत्ति नहीं होती है । मनुष्यनी मिथ्यादृष्टियोंमें सात पूर्वकोटियां अधिक होती हैं; क्योंकि, उनके वेदपरिवर्तन नहीं होता ।

१ उत्कर्षेण त्रीणि पल्योपमानि पूर्वकोटीपृथक्त्वैरभ्यधिकानि । स. सि. १, ८.

सासणसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं[1] ॥ ७१ ॥

कुदो ? उवसमसम्मादिट्ठीणं सत्तट्ठजणाणं उवसमसम्मत्तद्धाए एगसमओ अत्थि त्ति सासणगुणं[2] गदाणं तत्थेगसमयमच्छिय मिच्छत्तं पडिवण्णाणमेगसमओवलंभादो ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं[3] ॥ ७२ ॥

कुदो ? संखेज्जाणं उवसमसम्मादिट्ठीणमुवसमसम्मत्तद्धाए एगसमयमादिं कादूण जावुक्कस्सेण छ आवलियाओ अत्थि त्ति सासणं पडिवण्णाणं संखेज्जवाराणुसंचिदसासणद्धाणमंतोमुहुत्तत्तुवलंभा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं[4] ॥ ७२ ॥

कुदो ? उवसमसम्माइट्ठिस्स उवसमसम्मत्तद्धाए एगसमओ अत्थि त्ति सासणं पडिवज्जिय विदियसमए चेव मिच्छत्तं पडिवण्णसासणस्स एगसमयदंसणादो ।

उक्त तीनों प्रकारके मनुष्योंमें सासादनसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय होते हैं ॥ ७१ ॥

क्योंकि, उपशमसम्यग्दृष्टि सात आठ जनोंके उपशमसम्यक्त्वके कालमें एक समय शेष रहने पर सासादनगुणस्थानको प्राप्त हुए, तथा वहां पर एक समय रह कर मिथ्यात्वको प्राप्त होनेवाले जीवोंके एक समयप्रमाण काल पाया जाता है ।

उक्त तीनों प्रकारके मनुष्योंमें सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ७२ ॥

क्योंकि, संख्यात उपशमसम्यग्दृष्टियोंके उपशमसम्यक्त्वके कालमें एक समयको आदि करके उत्कर्षसे छ आवलियां शेष रहने पर सासादनगुणस्थानको प्राप्त हुए जीवोंका संख्यात बारोंमें संचित हुआ सासादनगुणस्थानसम्बन्धी काल अन्तर्मुहूर्त पाया जाता है ।

उक्त तीनों प्रकारके सासादनसम्यग्दृष्टि मनुष्योंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्यकाल एक समय है ॥ ७३ ॥

क्योंकि, उपशमसम्यग्दृष्टि जीवके उपशमसम्यक्त्वके कालमें एक समय शेष रहने पर सासादनगुणस्थानको प्राप्त होकर, दूसरे समयमें ही मिथ्यात्वगुणस्थानको प्राप्त हुए सासादनसम्यग्दृष्टि जीवके एक समयप्रमाण काल देखा जाता है ।

१ सासादनसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः । स. सि. १, ८.
२ प्रतिषु ' सासाणाण ' इति पाठः ।
३ उत्कर्षेणान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.
४ एकजीवं प्रति जघन्येनैकः समयः । स. सि. १, ८.

उक्कस्सं छ आवलियाओ[1] ॥ ७४ ॥

कुदो ? उवसमसम्मादिट्ठिस्स उवसमसम्मत्तद्धाए छ आवलियाओ अत्थि त्ति सासणं पडिवज्जिय छ आवलियाओ तत्थ गमिय मिच्छत्तं पडिवण्णस्स छ-आवलिओवलंभा । आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

सम्मामिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[2] ॥ ७५ ॥

पमत्तसंजम-संजदासंजम-अट्ठावीसमोहसंतकम्मियमिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठिपच्छायदाणं संखेज्जसम्मामिच्छादिट्ठीणं सव्वजहण्णमंतोमुहुत्तमच्छिय विसोहिसंकिलेसवसेण सम्मत्त-मिच्छत्ताणि उवगदाणं सव्वजहण्णंतोमुहुत्तुवलंभा ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ७६ ॥

सम्मामिच्छादिट्ठीणं सव्वुक्कस्ससम्मामिच्छत्तद्धाणं मिच्छाइट्ठि-असंजद-

---

उक्त तीनों प्रकारके सासादनसम्यग्दृष्टि मनुष्योंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट काल छह आवलीप्रमाण है ॥ ७४ ॥

क्योंकि, उपशमसम्यग्दृष्टि जीवके उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलियां शेष रहने पर सासादनगुणस्थानको प्राप्त होकर छह आवलीप्रमाण काल वहां पर बिताकर मिथ्यात्वगुणस्थानको प्राप्त होनेवाले जीवके छह आवलीप्रमाण काल पाया जाता है ।

उक्त तीनों प्रकारके सम्यग्मिथ्यादृष्टि मनुष्य कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त तक होते हैं ॥ ७५ ॥

क्योंकि, प्रमत्तसंयम अथवा संयतासंयम अथवा मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्ता रखनेवाले मिथ्यादृष्टि अथवा असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे पीछे आये हुए संख्यात सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके सर्व जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल रह करके विशुद्धि और संक्लेशके वशसे यथाक्रमसे सम्यक्त्व अथवा मिथ्यात्वको प्राप्त हुए जीवोंके सर्व जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल पाया जाता है ।

उक्त तीनों प्रकारके सम्यग्मिथ्यादृष्टि मनुष्योंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ७६ ॥

मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत और प्रमत्तसंयत जीवोंसे संख्यात गुणे

---

१ उत्कर्षेण षडावलिकाः । स. सि. १, ८.

२ सम्यग्मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च जघन्यमुत्कृष्टमप्यन्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

सम्माइट्ठि-संजदासंजद-पमत्तसंजदेहि संखेज्जवारमणुसंचिदद्धाणमंतोमुहुत्तुवलंभा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ७७ ॥

सम्मामिच्छादिट्ठिस्स दिट्ठमग्गस्स पुव्वुत्तचदुगुणट्ठाणेसु एगजीवेणदरगुण-पच्छायदस्स सव्वजहण्णद्धमच्छिदूण संकिलेस-विसोहिवसेण मिच्छादिट्ठि-असंजद-सम्मादिट्ठिगुणे पडिवण्णस्स सव्वजहण्णंतोमुहुत्तमेत्तकालुवलंभा ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ७८ ॥

पुव्वुत्तचदुगुणट्ठाणेसु अदिट्ठमग्गेगजीवेणदरगुणपच्छायदसम्मामिच्छादिट्ठिस्स दीहद्धमच्छिय देस-सयलसंजमविरहिददोगुणट्ठाणे गदस्स सव्वुक्कस्संतोमुहुत्तुवलंभा ।

असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीव पडुच्च सव्वद्धा[1] ॥ ७९ ॥

कुदो ? असंजदसम्मादिट्ठिविरहिदमणुस्साणं सव्वकालमणुवलंभा ।

संचित हुए सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके सर्वोत्कृष्ट सम्यग्मिथ्यात्वका काल अन्तर्मुहूर्त पाया जाता है ।

उक्त तीनों प्रकारके सम्यग्मिथ्यादृष्टि मनुष्योंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ७७ ॥

क्योंकि, जिसने पूर्वमें मार्ग देखा है, ऐसे पूर्वोक्त चार गुणस्थानोंमेंसे किसी एक गुणस्थानसे पीछे आये हुए सम्यग्मिथ्यादृष्टिके सर्व जघन्य काल रह कर संक्लेश और विशुद्धिके वशसे मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानको प्राप्त हुए जीवके सर्व जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल पाया जाता है ।

उक्त तीनों प्रकारके सम्यग्दृष्टि मनुष्योंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ७८ ।

क्योंकि, पूर्वोक्त चार गुणस्थानोंमेंसे नहीं देखा है मार्ग को जिसने, ऐसे जीवके किसी एक गुणस्थानसे पीछे आये हुए सम्यग्मिथ्यादृष्टिके दीर्घ काल तक रह करके देशसंयम और सकलसंयमसे रहित दो गुणस्थानोंमें अर्थात् मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानोंमें गये हुए जीवके सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल पाया जाता है ।

उक्त तीनों प्रकारके असंयतसम्यग्दृष्टि मनुष्य कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ ७९ ॥

क्योंकि, असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे रहित मनुष्योंका कोई भी काल नहीं पाया जाता ।

---

१ असंयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । स. सि. १, ८.

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[1] ॥ ८० ॥

विदुमग्गमिच्छादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठि-संजदासंजद-पमत्तसंजदगुणट्ठाणेहिंतो आगदस्स सव्वजहण्णमंतोमुहुत्तद्धमच्छिय जहण्णकालाविरोहेण गुणंतरं गदस्स जहण्णंतोमुहुत्तमेत्तकालुवलंभा ।

उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि, तिण्णि पलिदोवमाणि सादिरेयाणि, तिण्णि पलिदोवमाणि देसूणाणि[2] ॥ ८१ ॥

एत्थ सादिरेयसद्दो दोसु वि तिपलिदोवमेसु संबंधणिज्जो, दोण्हं पच्चासत्ति-बसेण एगत्तमुवगयाणं विसेसणरूवेण पयट्टत्तादो । तम्हा मणुस-मणुसपज्जत्तएसु सादिरेयाणि तिण्णि पलिदोवमाणि, अण्णत्थ देसूणाणि । कुदो ? 'जहा उद्देसो तहा णिद्देसो' त्ति णायादो । कधं सादिरेयत्तं ? अट्ठावीससंतकम्मियमिच्छादिट्ठिस्स पुव्वकोडितिहाए सेसे बद्धमणुसाउअस्स तदो अंतोमुहुत्तं गंतूण सम्मत्तं घेत्तूण

एक जीवकी अपेक्षा तीनों प्रकारके असंयतसम्यग्दृष्टि मनुष्योंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ८० ॥

क्योंकि, वेदक है मार्गको जिसने ऐसे, मिथ्यादृष्टि अथवा सम्यग्मिथ्यादृष्टि अथवा संयतासंयत अथवा प्रमत्तसंयत गुणस्थानोंसे आये हुए, तथा सर्व जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल रह करके जघन्य कालके अविरोधसे गुणस्थानान्तरको प्राप्त हुए जीवके जघन्य अन्तर्मुहूर्तप्रमाण काल पाया जाता है ।

तीनों प्रकारके असंयतसम्यग्दृष्टि मनुष्योंका यथाक्रमसे उत्कृष्ट काल तीन पल्योपम, तीन पल्योपम सातिरेक और देशोन तीन पल्योपम है ॥ ८१ ॥

यहां पर सातिरेक शब्द दोनों ही त्रिपल्योपमों पर संबद्ध करना चाहिए, क्योंकि प्रत्यासत्तिके बशसे एकत्वको प्राप्त हुए दोनों पदोंके विशेषणरूपसे यह शब्द प्रयुक्त हुआ है । इसलिए मनुष्य और मनुष्यपर्याप्तकोंमें तो साधिक तीन पल्योपम उत्कृष्ट काल है । और अन्यत्र अर्थात् मनुष्यनियोंमें, देशोन तीन पल्योपम उत्कृष्ट काल है । क्योंकि, 'जिस प्रकारसे उद्देश होता है, उसी प्रकारसे निर्देश होता है' ऐसा न्याय है ।

शंका– तीन पल्योपमसे सातिरेक अर्थात् अधिक काल कैसे संभव है ?

समाधान– मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्ता रखनेवाले तथा पूर्वकोटीके त्रिभाग शेष रहने पर बांधी है मनुष्य आयुको जिसने ऐसे मिथ्यादृष्टि मनुष्यके तत्पश्चात् अन्तर्मुहूर्त आकर सम्यक्त्वको ग्रहण करके दर्शनमोहनीयका क्षपण कर सम्यक्त्वके साथ देशोन

१ एकं जीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

२ उत्कर्षेण त्रीणि पल्योपमानि सातिरेकाणि । स. सि. १, ८.

वंसणमोहणीयं खविय सम्मत्तेण सह देसूणपुव्वकोडितिभागं गमिय तिपलिदोवमाउट्ठिदिदेवुत्तरकुरुवेसुप्पज्जिय अप्पणो आउट्ठिदिमणुपालिय देवेसुप्पण्णस्स तिण्णिपलिदोवमाणमुवरि देसूणपुव्वकोडितिभागुवलंभा। मणुसिणीसु देसूणतिण्णि पलिदोवमाणि, अण्णवरअट्ठावीससंतकम्मियमिच्छाइट्ठिस्स तिपलिदोवमिएसु मणुसेसुववज्जिय णव मासे गब्भे अच्छिदूण णिक्खंतस्स उत्ताणसेज्जाए अंगुलिआहारेण सत्त दिवसे, रंगंतो सत्त दिवसे, अथिरगमणेण सत्त दिवसे, थिरगमणेण सत्त दिवसे, कलासु सत्त दिवसे, गुणेसु सत्त दिवसे, अण्णे वि सत्त दिवसे गमिय विसुद्धो होदूण सम्मत्तं पडिवज्जिय अप्पणो आउट्ठिदिं जीविदूण देवेसु उववण्णस्स एगूणवण्णदिवसेहि अहियणवमासूणतिण्णिपलिदोवमुवलंभा।

संजदासंजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं[1] ॥ ८२ ॥

कुदो ? ओघम्मि [illegible] संजदासंजदाणं सव्वलहुं जोणिणिक्खमणजम्मणुब्भवट्ठवस्सेहि ऊणा पुव्वकोडी संजमासंजमकालो वत्तव्वो, तिरिक्खाणं व मणुस्साणं अंतोमुहुत्तकालेण अणुव्वयगहणाभावा।

पूर्वकोटीका त्रिभाग बिताकर तीन पल्योपमप्रमाण आयुकर्मकी स्थितिवाले देवकुरु और उत्तरकुरुओंमें उत्पन्न होकर, अपनी आयुस्थितिको अनुपालन करके देवोंमें उत्पन्न हुए जीवके तीन पल्योपमोंके ऊपर देशोन पूर्वकोटीका त्रिभाग अधिक पाया जाता है।

मनुष्यनियोंमें देशोन तीन पल्योपम उत्कृष्ट काल है। वह इस प्रकारसे है-मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्ता रखनेवाला कोई एक मिथ्यादृष्टि मनुष्य तीन पल्योपमकी आयुवाले भोगभूमियां मनुष्योंमें उत्पन्न होकर और नौ मास गर्भमें रह कर निकलता हुआ उत्तानशय्या पर अंगुष्ठ चूसनेरूप आहारसे सात दिन, रेंगते हुए सात दिन, अस्थिर गमनसे सात दिन, स्थिर गमनसे सात दिन, कलाओंमें सात दिन, गुणोंमें सात दिन, तथा अन्य भी सात दिन बिताकर, विशुद्ध होकरके सम्यक्त्वको प्राप्त हो, अपनी आयुस्थिति प्रमाण जीवित रह कर देवोंमें उत्पन्न हुए जीवके उनंचास दिवसोंसे अधिक नव मासोंसे कम तीन पल्योपम काल पाया जाता है।

संयतासंयत गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली तक तीनों प्रकारके मनुष्योंका उत्कृष्ट या जघन्य काल ओघके समान है ॥ ८२ ॥

क्योंकि, ओघवर्णित कालसे इनमें कोई भेद नहीं है। विशेष बात यह है कि संयतासंयतोंसे सर्वलघु योनि-निष्क्रमणरूप जन्मसे उत्पन्न हुए जीवके आठ वर्षोंसे कम पूर्वकोटिप्रमाण संयमासंयमका काल कहना चाहिए, क्योंकि, तिर्यंचोंके समान मनुष्योंके जन्म लेनेके पश्चात् अन्तर्मुहूर्त कालसे ही अणुव्रतोंके ग्रहण करनेका अभाव है।

---

१ शेषाणां सामान्योक्तः कालः। स. सि. १, ८.

आगमोदय समिति और सुविधिसागर जी महाराज

मणुसअपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ ८३ ॥

एइंदियबादर-सुहुम-बि-ति-चउरिंदिय-सण्णि-असण्णिपंचिंदियपज्जत्तापज्जत्ताणं मणुसपज्जत्ताणं वा मणुसअपज्जत्तएसु उववज्जिय खुद्दाभवग्गहणमेत्ताउट्ठिदिं गमिय पुध्वुत्तजीवेसुप्पण्णाणं तक्कालुवलंभा ।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ८४ ॥

पुव्वुप्पण्णमणुसअपज्जत्तएसु मदेसु तक्काले चेव अण्णण्णे जीवे मणुसअपज्जत्तेसुप्पादिय उप्पादिय अणुसंधिज्जमाणे पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तअणुसंधाणवारसलागुवलंभादो ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ ८५ ॥

पुव्वुत्तजीवेहिंतो आगंतूण मणुसअपज्जत्तएसु उववण्णस्स खुद्दाभवग्गहणमेत्तजहण्णाउट्ठिदिकालदंसणादो ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ८६ ॥

लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण काल तक होते हैं ॥ ८३ ॥

क्योंकि, एकेन्द्रिय, बादर और सूक्ष्म, तथा द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी और संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक और अपर्याप्तकोंके अथवा मनुष्यपर्याप्तक जीवोंके, लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्योंमें उत्पन्न होकर क्षुद्रभवग्रहणमात्र आयुस्थितिको बिताकर पूर्वोक्त जीवोंमें उत्पन्न होनेवाले जीवोंके उक्त काल, अर्थात् क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण काल पाया जाता है ।

लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्योंका उत्कृष्ट काल पल्योपमका असंख्यातवां भाग है ॥ ८४ ॥

क्योंकि, पूर्वोत्पन्न लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्योंके मर जाने पर उसी कालमें ही अन्य अन्य जीवोंको लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्योंमें उत्पन्न करा कराके उनके सब कालोंके मिला देने पर पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र अनुसंधानवार शलाकाएं पाई जाती हैं ।

लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्योंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है ॥ ८५ ॥

क्योंकि, पूर्वोक्त एकेन्द्रियादि जीवोंसे आकर लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्योंमें उत्पन्न होनेवाले जीवके क्षुद्रभवग्रहणमात्र जघन्य आयुस्थितिकाल देखा जाता है ।

उक्त लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्योंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ८६ ॥

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

पुव्वुत्तजीवेहिंतो आगंतूण मणुसअपज्जत्तएसु उप्पण्णस्स अंतोमुहुत्तादो उवरिमकालवियप्पाणमुक्कस्साउट्ठिदिअपज्जत्तस्स वि अणुवलंभा ।

देवगदीए देवेसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा[1] ॥ ८७ ॥

देवमिच्छादिट्ठिविरहिदकालाभावा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[2] ॥ ८८ ॥

असंजदसम्मादिट्ठिस्स सम्मामिच्छादिट्ठिस्स वा संकिलेसेण मिच्छत्तं गंतूण सव्वजहण्णकालमच्छिय पुव्वुत्तदोगुणट्ठाणाणमण्णदरं गदस्स अंतोमुहुत्तमेत्तकालुवलंभा।

उक्कस्सेण एक्कत्तीसं सागरोवमाणि[3] ॥ ८९ ॥

मणुसमिच्छादिट्ठिस्स दव्वसंजमबलेण एक्कत्तीससागरोवमाउट्ठिदिदेवेसुप्पज्जिय मिच्छत्तेण सह अप्पणो आउट्ठिदिमणुपालिय मणुसेसुववण्णस्स एक्कत्तीससागरोवममेत्तदेवमिच्छादिट्ठिकालदंसणादो ।

क्योंकि, पूर्वोक्त जीवोंसे आकर लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्योंमें उत्पन्न हुए जीवके अन्तर्मुहूर्त काल पाया जाता है, तथा अन्तर्मुहूर्तसे उपरिम कालके विकल्प उत्कृष्ट आयुस्थितिवाले लब्ध्यपर्याप्तक जीवके भी नहीं पाये जाते हैं ।

देवगतिमें, देवोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ ८७ ॥

क्योंकि, देवोंमें मिथ्यादृष्टियोंसे रहित कोई काल नहीं पाया जाता ।

एक जीवकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टि देवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥८८॥

असंयतसम्यग्दृष्टिके अथवा सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवके, संक्लेशसे मिथ्यात्वको प्राप्त होकर, वहां पर सर्व जघन्य काल रह कर पूर्वोक्त दो गुणस्थानोंमेंसे किसी एकको प्राप्त हुए जीवके अन्तर्मुहूर्त काल पाया जाता है ।

एक जीवकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टि देवोंका उत्कृष्ट काल एकतीस सागरोपम है ॥ ८९ ॥

मिथ्यादृष्टि मनुष्यके द्रव्यसंयमके बलसे एकतीस सागरोपमकी आयुस्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न होकर मिथ्यात्वके साथ अपनी आयुस्थितिको अनुपालन करके मनुष्योंमें उत्पन्न होनेवाले जीवके एकतीस सागरोपमप्रमाण देवोंके मिथ्यादृष्टि गुणस्थानका काल देखा जाता है ।

१ देवगतौ देवेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । स. सि. १, ८.

२ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

३ उत्कर्षेणैकत्रिंशत्सागरोपमाणि । स. सि. १, ८.

सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं[1] ॥ ९० ॥

सव्वपयारेण ओघादो भेदाभावा ।

असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा[2] ॥ ९१ ॥

देवेसु असंजदसम्मादिट्ठिविरहिदकालाभावा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[3] ॥ ९२ ॥

मिच्छादिट्ठिस्स सम्मामिच्छादिट्ठिस्स वा विसोहिवसेण सम्मत्तं पडिवज्जिय सव्वजहण्णसम्मत्तद्धमच्छिय मिच्छत्त-सम्मामिच्छत्ताणमण्णदरं गदस्स अंतोमुहुत्त-कालुवलंभणादो ।

उक्कस्सं तेत्तीसं सागरोवमाणि[4] ॥ ९३ ॥

उक्कस्साउट्ठिदिदेवेसुप्पण्णसंजदस्स भुंजमाणाउअस्स घादाभावादो अप्पणो उक्कस्सट्ठिदिं जीविय मणुसेसु उप्पण्णदेवअसंजदसम्मादिट्ठिस्स तेत्तीसं सागरोवममेत्त-कालुवलद्धीए ।

सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवोंका काल ओघके समान है ॥ ९० ॥

क्योंकि, सर्व प्रकारसे, अर्थात् एक और नाना जीवोंकी अपेक्षा, जघन्य और उत्कृष्ट कालसे ओघप्ररूपणाके साथ कोई भेद नहीं है ।

असंयतसम्यग्दृष्टि देव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ ९१ ॥

क्योंकि, देवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंसे रहित कालका अभाव है ।

एक जीवकी अपेक्षा असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ९२ ॥

क्योंकि, मिथ्यादृष्टि अथवा सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवके विशुद्धिके वशसे सम्यक्त्वको प्राप्त होकर, वहां सर्व जघन्य सम्यक्त्वके कालप्रमाण रह करके, पश्चात् मिथ्यात्व अथवा सम्यग्मिथ्यात्वमेंसे किसी एक गुणस्थानको प्राप्त होनेवाले जीवके अन्तर्मुहूर्त काल देखा जाता है ।

एक जीवकी अपेक्षा असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंका उत्कृष्ट काल तेतीस सागरोपम है ॥ ९३ ॥

उत्कृष्ट आयुकी स्थितिधारक देवोंमें उत्पन्न हुए संयतके भुज्यमान आयुके घातका अभाव होनेसे अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण जीवित रह कर, मनुष्योंमें उत्पन्न होनेवाले असंयतसम्यग्दृष्टि देवके तेतीस सागरोपममात्र काल पाया जाता है ।

१ सासादनसम्यग्दृष्टेः सम्यग्मिथ्यादृष्टेश्च सामान्योक्तः कालः । स. सि. १, ८.

२ असंयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः स. । सि. १, ८.

३ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

४ उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि । स. सि. १, ८.

भवणवासियप्पहुडि जाव सदार-सहस्सारकप्पवासियदेवेसु मिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ ९४ ॥

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

तिण्हं पि कालाणं देवमिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठिविरहिदाणमभावा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ९५ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो जधा देवोघम्मि एदेसिं दोण्हं गुणट्ठाणाणं जहण्णकाल-परूवणा कदा, तहा भवणवासियप्पहुडि जाव सदार-सहस्सारकप्पो त्ति मिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीणं जहण्णकालपरूवणा कादव्वा ।

उक्कस्सेण सागरोवमं पलिदोवमं सादिरेयं वे सत्त दस चोद्दस सोलस अट्ठारस सागरोवमाणि सादिरेयाणि ॥ ९६ ॥

एदस्सुदाहरणं- एक्को तिरिक्खो मणुस्सो वा मिच्छादिट्ठी भवणवासियदेवेसु उववण्णो । पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागब्भहियं सागरोवमं जीविदूण मिच्छत्तेणेव

भवनवासी देवोंसे लेकर शतार सहस्रार कल्पवासी देवों तक मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि देव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ ९४ ॥

क्योंकि, मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंसे विरहित तीनों ही कालोंका अभाव है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ९५ ॥

इस सूत्रका अर्थ, जैसा देवोंके ओघमें इन दोनों गुणस्थानोंकी जघन्य कालप्ररूपणा कही है उसी प्रकारसे भवनवासीकी आदि लेकर शतार सहस्रारकल्प तकके मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंकी भी जघन्य कालकी प्ररूपणा करना चाहिए ।

उक्त मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंका उत्कृष्ट काल साधिक सागरोपम, साधिक पल्योपम, साधिक दो सागरोपम, साधिक सात सागरोपम, साधिक दश सागरोपम, साधिक चौदह सागरोपम, साधिक सोलह सागरोपम और साधिक अठारह सागरोपम है ॥ ९६ ॥

इसका उदाहरण- एक तिर्यंच अथवा मनुष्य मिथ्यादृष्टि जीव भवनवासी देवोंमें उत्पन्न हुआ । वहां पर पल्योपमके असंख्यातवें भागसे अधिक एक सागरोपम तक जीवित रह कर

उव्वट्टिदो। एसो मिच्छादिट्ठिणो बद्धआउअघादं पडुच्च कालो वुत्तो। अथवा, अंतोमुहुत्तूणअद्धसागरोवमेण सादिरेगं सागरोवमं जीविदूण उव्वट्टिदो। एसो सम्मादिट्ठिणो बद्धआउअघादं पडुच्च उत्तो। एसो भवणवासियमिच्छादिट्ठि-उक्कस्सकालो। एक्को विराहियसंजदो वेमाणियदेवेसु आउअं बंधिदूण तमोवट्टणाघादेण घादिय भवणवासियदेवेसु उववण्णो। छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो (३) सम्मत्तं पडिवण्णो। अंतोमुहुत्तणसागरोवमद्धेण अहियं सागरोवमं तीहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणयं सम्मत्तेण सह जीविदूण उव्वट्टिय मणुसो जादो। एसो भवणवासियअसंजदसम्मादिट्ठिस्स उक्कस्सकालो। वाणवेंतर-जोदिसियाणं पि एवं चेव वत्तव्वं। णवरि अंतोमुहुत्तूणपलिदोवमद्धेण अहियं पलिदोवमं मिच्छत्तुक्कस्सकालो होदि। एसो चेव कालो तीहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणओ असंजदसम्मादिट्ठिस्स उक्कस्सकालो होदि[1]। सोधम्मीसाणे मिच्छादिट्ठिस्स उक्कस्सकालो बे सागरोवमाणि पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण अब्भहियाणि। एसो मिच्छादिट्ठिणा बद्धाउअस्स घादं पडुच्च कालो वुत्तो। सम्मादिट्ठिणो बद्धदेवाउअघादं पडुच्च अंतोमुहुत्तूण-

मिथ्यात्वके साथ ही उस पर्यायसे च्युत हुआ। यह मिथ्यादृष्टि जीवका बद्ध आयुष्कघातकी अपेक्षा काल कहा। अथवा अन्तर्मुहूर्त कम आधे सागरोपमसे अधिक एक सागरोपम तक जीवित रह कर उस पर्यायसे च्युत हुआ। यह सम्यग्दृष्टि जीवकेद्वारा बद्धायुष्कघातकी अपेक्षा काल कहा। इस प्रकार यह भवनवासी मिथ्यादृष्टि देवोंका उत्कृष्ट काल है। विराधना की है संयमकी जिसने ऐसा कोई संयत मनुष्य वैमानिक देवोंमें आयुको बांध करके उसे उद्वर्तनाघातसे घात करके भवनवासी देवोंमें उत्पन्न हुआ। और छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त होता हुआ (१), विश्रान्त हो (२), विशुद्ध होकर (३), सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ। पुनः अन्तर्मुहूर्त कम आधे सागरोपमसे अधिक तथा तीन अन्तर्मुहूर्तोंसे कम एक सागरोपम काल सम्यक्त्वके साथ जीवित रह कर पर्यायसे च्युत हो मनुष्य हुआ। यह भवनवासी असंयतसम्यग्दृष्टिका उत्कृष्ट काल है। वानव्यन्तर और ज्योतिष्क देवोंका भी इसी प्रकारसे काल कहना चाहिए। विशेषता यह है कि एक अन्तर्मुहूर्त कम आधे पल्योपमसे अधिक एक पल्योपम व्यन्तर और ज्योतिष्क देवोंमें मिथ्यात्वका उत्कृष्ट काल होता है। यह उपर्युक्त काल ही तीन अन्तर्मुहूर्तोंसे कम करने पर असंयतसम्यग्दृष्टि व्यन्तर और ज्योतिष्क देवोंका उत्कृष्ट काल हो जाता है। सौधर्म और ईशानकल्पमें मिथ्यादृष्टि देवका उत्कृष्ट काल पल्योपमके असंख्यातवें भागसे अधिक दो सागरोपम है। यह मिथ्यादृष्टिके द्वारा बद्धायुके घातकी अपेक्षा काल कहा। सम्यग्दृष्टि जीवके बद्धदेवायुके घातकी अपेक्षा अन्तर्मुहूर्त कम आधे सागरोपमसे अधिक दो सागरोपम मिथ्यात्वका उत्कृष्ट काल होता है।

१ उवहिदलं पल्लद्धं भवणे विंतरदुगे कमेणहियं। सम्मे मिच्छे घादे पल्लासंखं तु सम्मत्ते ॥ त्रि. सा. ५४१.

अद्धसागरोवमेण अब्भहियाणि वे सागरोवमाणि मिच्छत्तुक्कस्सकालो होदि । 'वे सत्त दस' चोद्दस सोलसट्ठारस य वीस बावीसा[1]' एदीए गाहाए सह एदस्स सुत्तस्स किण्ण विरोहो होदि ? ण होदि विरोहो, भिण्णविसयत्तादो । तं जहा– वुत्तं सुत्तं बंधप्पडिबद्धं, कालसुत्तं पुण संतमपेक्खिय ट्ठिदमिदि[2] । सणक्कुमार-माहिंदे सत्त सागरोवमाणि सादिरेयाणि । बम्ह-बम्हुत्तरकप्पे दस सागरोवमाणि सादिरेयाणि । लंतव-काविट्ठकप्पे चोद्दस सागरोवमाणि सादिरेयाणि । सुक्क-महासुक्केसु सोलस सागरोवमाणि सादिरेयाणि । सदर-सहस्सारकप्पेसु अट्ठारस सागरोवमाणि सादिरेयाणि । जधा दोहि पयारेहि सोधम्मीसाणे सादिरेयत्तं परूविदं, तधा एत्थ वि वत्तव्वं । सोधम्मादि जाव सहस्सारो त्ति असंजदसम्मादिट्ठिस्स उक्कस्सकालो वे सत्त दस चोद्दस सोलस अट्ठारस सागरोवमाणि अंतोमुहुत्तूणअद्धसागरोवमेण सादिरेयाणि होंति[3], एवस्स हेदुदो सम्मादिट्ठिसुववादाभावा ।

शंका– 'सौधर्म-ईशानकल्पसे लगाकर आरण अच्युत कल्प तक क्रमशः ' दो, सात, दश, चौदह, सोलह, अठारह, बीस और बाईस सागरोपमकी स्थिति होती है ' इस गाथाके साथ, इस उक्त सूत्रका विरोध क्यों नहीं होगा ?

समाधान– विरोध नहीं होगा, क्योंकि, सूत्र और गाथा, इन दोनोंका विषय भिन्न भिन्न है । वह इस प्रकारसे है कि उक्त गाथासूत्र तो बंधकी अपेक्षा है, किन्तु कालसूत्र विद्यमान आयुकी अपेक्षा स्थित है ।

सानत्कुमार-माहेन्द्र कल्पमें कुछ अधिक सात सागरोपम, ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर कल्पमें साधिक दश सागरोपम, लान्तव-कापिष्ठ कल्पमें साधिक चौदह सागरोपम, शुक्र-महाशुक्र कल्पमें साधिक सोलह सागरोपम, और शतार-सहस्रार कल्पमें साधिक अठारह सागरोपम मिथ्यादृष्टियोंका उत्कृष्ट काल है । जिस तरह दोनों प्रकारोंसे सौधर्म और ईशान कल्पमें आयुकी साधिकता प्ररूपण की है, उसी प्रकार यहां पर भी कहना चाहिए । सौधर्म कल्पको आदि लेकर सहस्रार कल्प तक असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंका उत्कृष्ट काल क्रमशः एक अन्तर्मुहूर्त कम आधे सागरोपमसे अधिक दो सागरोपम, सात सागरोपम, दश सागरोपम, चौदह सागरोपम, सोलह सागरोपम और अठारह सागरोपम प्रमाण होता है, क्योंकि, इस कालके नीचे सम्यग्दृष्टि जीवके उपपादका अभाव है ।

१ प्रतिषु ' दस ' इति पाठो नास्ति ।

२ पढमे विदिए जुगले बम्हादिसु चउसु आणददुगम्मि । आरणदुगे सुदंसणपहुदिसु एक्कारसेसु कमे ॥ दुग सत्त दसं चउदस सोलस अट्ठरस वीस बावीसा । तत्तो एक्केक्कजुदा उक्कस्साऊ समुद्दिसमाणा ॥ ति. प. ८, ४५८-४५९.

३ बद्धाउं पडि भणिदं उक्कस्सं मज्झिमं जहण्णाणि । भोगाउवमासेज्ज अण्णसरूवं पहवेमो ॥ ति. प. ८, ४९१.

४ सग्गे साहेऊणं सायरदलमहियमासहस्सारा । जलहिदलमुडुवराऊ पल्लं पडि जाण हाणिचयं । त्रि. सा. ५३३.

सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ९७ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो सुगमो, बहुसो पख्वित्तादो ।

आणद जाव णवगेवज्जविमाणवासियदेवेसु मिच्छादिट्ठी असंजद-सम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥९८॥

कुदो ? एदेसु मिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठिविरहिदकालाभावा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ९९ ॥

विशेषार्थ– यहां पर जो बद्ध-आयुघातकी अपेक्षा सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि देवोंके दो प्रकारके कालकी प्ररूपणा की है, उसका अभिप्राय यह है कि किसी मनुष्यने अपनी संयम-अवस्थामें देवायुका बंध किया । पीछे उसने संक्लेश परिणामोंके निमित्तसे संयमकी विराधना कर दी और इसीलिए अपवर्तनाघातके द्वारा आयुका घात भी कर दिया । संयमकी विराधना कर देने पर भी यदि वह सम्यग्दृष्टि है, तो मर कर जिस कल्पमें उत्पन्न होगा, वहांकी साधारणतः निश्चित आयुसे अन्तर्मुहूर्त कम अर्ध सागरोपमप्रमाण अधिक आयुका धारक होगा । कल्पना कीजिए– किसी मनुष्यने संयत अवस्थामें अच्युतकल्पमें संभव बाईस सागरप्रमाण आयुका बंध किया । पीछे संयमकी विराधना और बांधी हुई आयुकी अपवर्तना कर असंयतसम्यग्दृष्टि हो गया । पीछे मरण कर यदि सहस्रारकल्पमें उत्पन्न हुआ, तो वहांकी साधारण आयु जो अठारह सागरकी है, उससे घातायुष्क सम्यग्दृष्टि देवकी आयु अन्तर्मुहूर्त कम आधा सागर अधिक होगी । यदि वही पुरुष संयमकी विराधनाके साथ ही सम्यक्त्वकी भी विराधना कर मिथ्यादृष्टि हो जाता है और पीछे मरण कर उसी सहस्रारकल्पमें उत्पन्न होता है, तो उसकी आयु वहां की निश्चित अठारह सागरकी आयुसे पल्योपमके असंख्यातवें भागसे अधिक होगी । ऐसे जीवको घातायुष्क मिथ्यादृष्टि कहते हैं ।

भवनवासीसे लेकर सहस्रारकल्प तकके सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्य-ग्मिथ्यादृष्टि देवोंका काल ओघके समान है ॥ ९७ ॥

इस सूत्रका अर्थ सुगम है । क्योंकि बहुतवार प्ररूपित किया जा चुका है ।

आनत-प्राणतकल्पसे लेकर नव ग्रैवेयक विमानवासी देवोंमें मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि देव कितने तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ ९८ ॥

क्योंकि, इन कल्पोंमें मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंसे रहित कालका अभाव है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त दोनों गुणस्थानवर्ती देवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ९९ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो सुगमो, बहुसो परूविदत्तादो ।

उक्कस्सेण वीसं बावीसं तेवीसं चउवीसं पणवीसं छव्वीसं सत्तावीसं अट्ठावीसं एगूणतीसं तीसं एक्कत्तीसं सागरोवमाणि ॥ १०० ॥

एदेसु एक्कारससु उक्कस्साउअं बंधिय अप्पप्पणो देवेसुप्पज्जिय आउट्ठिदिमणुपालिय मणुसेसुप्पण्णमिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीणमप्पप्पणो वुत्तुक्कस्सकालुवलंभा ।

सासणसम्मामिच्छादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं ॥ १०१ ॥

ओघादो णाणेगजीवं पडुच्च भेदाभावा ।

अणुद्दिस-अणुत्तरविजय-वइजयंत-जयंत-अवराजिदविमाणवासियदेवेसु असंजदसम्मामिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ १०२ ॥

कुदो ? असंजदसम्मादिट्ठिविरहिदतेरसण्हं विमाणाणं सव्वकालमणुवलंभा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एक्कत्तीसं, बत्तीसं सागरोवमाणि सादिरेयाणि ॥ १०३ ॥

इस सूत्रका सुगम है, क्योंकि. बहुतवार पहले प्ररूपणा किया जा चुका है ।

उक्त कल्पवासी देवोंका उत्कृष्ट काल यथाक्रमसे बीस, बाईस, तेईस, चौबीस, पच्चीस, छब्बीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस और एकतीस सागरोपम है ॥ १०० ॥

इन सूत्रोक्त आरण-अच्युतादि ग्यारह कल्पोंमें उत्कृष्ट आयुको बांधकर और देवोंमें उत्पन्न होकर, अपनी अपनी आयुस्थितिको परिपालन करके मनुष्योंमें उत्पन्न होनेवाले मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंके अपने अपने कल्पका कहा गया उत्कृष्ट काल पाया जाता है ।

उक्त ग्यारह कल्पोंमें सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवोंका काल ओघके समान है ॥ १०१ ॥

क्योंकि, ओघके नाना जीव और एक जीवकी अपेक्षा इनके कालमें कोई भेद नहीं है।

अनुदिश विमानवासी देवोंमें तथा अनुत्तरनामक विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित विमानवासी देवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि देव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल होते हैं ॥ १०२ ॥

क्योंकि, असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंसे विरहित उक्त तेरह विमान किसी भी कालमें नहीं पाये जाते हैं ।

नौ अनुदिश विमानोंमें एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल सातिरेक एकतीस सागरोपम और चार अनुत्तर विमानोंमें साधिक बत्तीस सागरोपम है ॥ १०३ ॥

कुदो ? गुणंतरं संकंतीए अभावादो। एत्थ सादिरेयपमाणमेगो समओ, हेट्ठिल्लुक्कस्सट्ठिदी समयाहिया उवरिल्लाणं जहण्णट्ठिदी होदि त्ति आइरियपरंपरागदुवदेसादो।

उक्कस्सेण बत्तीस, तेत्तीस सागरोवमाणि ॥ १०४ ॥

णवसु हेट्ठिमेसु अणुद्दिसविमाणेसु बत्तीसं सागरोवमाणि। चदुसु अणुत्तरविमाणेसु तेत्तीसं सागरोवमाणि संपुण्णाणि, सुत्ते हि ऊणाहियवयणाभावा।

सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवेसु असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ १०५ ॥

तिसु वि कालेसु तत्थ असंजदसम्मादिट्ठिविरहाभावा।

एगजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि ॥१०६॥

पुध सुत्तारंभादो चेव णव्वदे सव्वट्ठसिद्धिम्हि जहण्णुक्कस्सट्ठिदी सरिसा त्ति। पुणो जहण्णुक्कस्सग्गहणं किमट्ठं कीरदे ? ण तस्स मंदबुद्धिजणाणुग्गहट्ठत्तादो।

एवं गदिमग्गणा समत्ता।

क्योंकि, इन विमानोंमें अन्य गुणस्थानके संक्रमणका अभाव है। यहां पर सातिरेक (साधिक) का प्रमाण एक समय है, क्योंकि, एक समय अधिक नीचेके विमानकी उत्कृष्ट स्थिति ही ऊपरके विमानकी जघन्य स्थिति होती है, ऐसा आचार्य-परम्परागत उपदेशसे जाना जाता है।

उक्त विमानोंमें उत्कृष्ट काल यथाक्रमसे बत्तीस सागरोपम और तेतीस सागरोपम है ॥ १०४ ॥

अधस्तन नौ अनुदिश विमानोंमें पूरे बत्तीस सागरोपमप्रमाण उत्कृष्ट काल है। चारों अनुत्तरविमानोंमें पूरे तेतीस सागरोपमप्रमाण उत्कृष्ट काल है, क्योंकि, सूत्रमें हीन और अधिकताके प्रतिपादक वचनका अभाव है।

सर्वार्थसिद्धिविमानवासी देवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि देव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ १०५ ॥

क्योंकि, तीनों ही कालोंमें वहां, अर्थात् सर्वार्थसिद्धिमें, असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंके विरहका अभाव है।

सर्वार्थसिद्धिमें एक जीवकी अपेक्षा जघन्य तथा उत्कृष्ट काल तेतीस सागरोपम है ॥ १०६ ॥

शंका— पृथक् सूत्रके आरम्भसे ही जाना जाता है कि सर्वार्थसिद्धिमें जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति सदृश है। फिर भी सूत्रमें जघन्य और उत्कृष्ट पदका ग्रहण किस लिए किया ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, उस पदका ग्रहण मन्दबुद्धि जनोंके अनुग्रहके लिए किया गया है।

इस प्रकार गतिमार्गणा समाप्त हुई।

१ अ-कप्रत्योः 'मंदबुद्धिजइण्णाणु-' इति पाठः।

इंदियाणुवादेण एइंदिया केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा[1] ॥ १०७ ॥

तिसु वि कालेसु एइंदियाणं विरहाभावादो ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं[2] ॥ १०८ ॥

अणेइंदियस्स एइंदिएसुप्पज्जिय सव्वजहण्णमेइंदियद्धमच्छिय अणेइंदिए उप्पण्णस्स खुद्दाभवग्गहणमेत्तएइंदियकालुवलंभा ।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं[3] ॥ १०९ ॥

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

अणेइंदिओ एइंदिएसुप्पज्जिय अधिबहुअं कालं जदि अच्छदि तो आवलियाए असंखेज्जविभागमेत्ताणि चेव पोग्गलपरियट्टाणि अच्छदि । कुदो ? एदम्हादो उवरि अच्छणसत्तीए अभावा ।

इन्द्रियमार्गणाके अनुवादसे एकेन्द्रिय जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ १०७ ॥

क्योंकि, तीनों कालोंमें एकेन्द्रिय जीवोंके विरहका अभाव है ।

एक जीवकी अपेक्षा एकेन्द्रिय जीवोंका जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है ॥ १०८ ॥

क्योंकि, एकेन्द्रियसे रहित अन्य द्वीन्द्रियादिक जीवका एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होकर, सर्वजघन्य एकेन्द्रिय जीवकी आयुके कालप्रमाण रह करके, पुनः एकेन्द्रियोंसे भिन्न अन्य द्वीन्द्रियादि जीवमें उत्पन्न होनेवाले जीवके क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण एकेन्द्रिय जीवका काल पाया जाता है ।

एक जीवकी अपेक्षा एकेन्द्रिय जीवोंका उत्कृष्ट काल अनन्तकालात्मक असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन है ॥ १०९ ॥

एकेन्द्रियोंसे भिन्न अन्य कोई जीव एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होकर यदि अत्यधिक काल रहता है, तो आवलीके असंख्यातवें भागमात्र ही पुद्गलपरिवर्तन रहता है, क्योंकि, इस उक्त कालसे ऊपर एकेन्द्रियोंमें रहनेकी शक्तिका अभाव है ।

---

१ इन्द्रियानुवादेन एकेन्द्रियाणां नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । स. सि. १, ८.

२ एकजीवं प्रति जघन्येन क्षुद्रभवग्रहणम् । स. सि. १, ८.

३ उत्कर्षेणानन्तः कालोऽसंख्येयाः पुद्गलपरिवर्ताः । स. सि. १, ८.

बादरएइंदिया केवचिरं कालादो होंति णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ ११० ॥

बादरेइंदियविरहिदकालाभावादो। किमट्ठं तेसिं णत्थि विरहो ? सहावदो।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ १११ ॥

अण्णेइंदियस्स सुहुमेइंदियस्स वा बादरेइंदिएसु सव्वजहण्णाउवएसुप्पज्जिय अविणदियं गदस्स खुद्दाभवग्गहणमेत्तबादरेइंदियभवट्ठिदीए उवलंभा।

उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जासंखेज्जाओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणिओ ॥ ११२ ॥

अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो अणेयवियप्पो त्ति कट्टु 'पदरावलियादिहेट्ठिम-वियप्पाणं पडिसेहं काढूण उवरिमवियप्पगहणट्ठं असंखेज्जासंखेज्जाणि त्ति णिद्देसो कदो। पदर पल्लादिउवरिमवियप्पपडिसेहट्ठं ओसप्पिणि-उस्सप्पिणिणिद्देसो कदो। अणेइंदिओ सुहुमेइंदिओ वा बादरेइंदिएसु उप्पज्जिय तत्थ जदि सुट्ठु महल्लं

बादर एकेन्द्रिय जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ १११ ॥

श्री सुविधिसागर जी महाराज

क्योंकि, बादर एकेन्द्रिय जीवोंसे रहित कालका अभाव है।

शंका– उनका विरह क्यों नहीं होता है ?

समाधान– क्योंकि, ऐसा स्वभाव है।

एक जीवकी अपेक्षा बादर एकेन्द्रिय जीवोंका जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहण-प्रमाण है ॥ १११ ॥

क्योंकि, किसी अन्य द्वीन्द्रियादि जीवका अथवा सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवका सर्व जघन्य आयुवाले बादर एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होकर पुनः अन्य द्वीन्द्रियादिमें उत्पन्न हुए जीवके क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण बादर एकेन्द्रिय जीवोंकी भवस्थिति पाई जाती है।

एक जीवकी अपेक्षा बादर एकेन्द्रिय जीवोंका उत्कृष्ट काल अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी प्रमाण है ॥ ११२ ॥

अंगुलका असंख्यातवां भाग अनेक विकल्परूप है, इसलिए प्रतरावली आदि अधस्तन विकल्पोंका प्रतिषेध करके उपरिम विकल्पोंके ग्रहण करनेके लिए सूत्रमें 'असंख्याता-संख्यात' ऐसा निर्देश किया। प्रतर, पल्य आदि उपरिम 'विकल्पोंके प्रतिषेध करनेके लिए अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी' इस पदका निर्देश किया है। अन्य द्वीन्द्रियादि अथवा सूक्ष्म एकेन्द्रिय कोई जीव बादर एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होकर, वहां पर यदि अति दीर्घकाल

१ प्रतिषु 'पदरावलियाओ' इति पाठः।

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

कालमच्छदि तो असंखेज्जासंखेज्जाओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ अच्छदि । पुणो णिच्छएण अण्णत्थ गच्छदि त्ति जं वुत्तं होदि । कम्मट्ठिदिमावलियाए असंखेज्जदि-भागेण गुणिदे बादरट्ठिदी जादा त्ति परियम्मवयणेण सह एदं सुत्तं विरुज्झदि त्ति णेदस्स ओकड्डत्तं, सुत्ताणुसारि परियम्मवयणं ण होदि त्ति तस्सेव ओकड्डप्पसंगा ।

बादरेइंदियपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ ११३ ॥

कुदो ? बादरेइंदियपज्जत्ताणं तिसु वि कालेसु विरहाभावा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ११४ ॥

खुद्दाभवग्गहणं संखेज्जावलियमेत्तं, एगं मुहुत्तं छासट्ठिसहस्स-तिसद-छत्तीस-खंडमेत्तखंडाणि कादूण एगखंडमेत्तत्तादो । एदं पि कधं णव्वदे ?

तिण्णि सया छत्तीसा छावट्ठि सहस्स चेव मरणाइं ।
अंतोमुहुत्तकाले तावदिया होंति खुद्दभवा[1] ॥ ३५ ॥

तक रहता है, तो असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी तक रहता है । पुनः निश्चयसे अन्यत्र चला जाता है, ऐसा अर्थ कहा गया समझना चाहिए ।

शंका– 'कर्मस्थितिको आवलीके असंख्यातवें भागसे गुणा करने पर बादर स्थिति होती है' इस प्रकारके परिकर्म-वचनके साथ यह सूत्र विरोधको प्राप्त होता है ?

समाधान– परिकर्मके साथ विरोध होनेसे इस सूत्रके अवक्षिप्तता (विरुद्धता) नहीं प्राप्त होती है; किन्तु परिकर्मका उक्त वचन सूत्रका अनुसरण करनेवाला नहीं है, इसलिए उसके ही अवक्षिप्तताका प्रसंग आता है ।

बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ ११३ ॥

क्योंकि, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंका तीनों ही कालोंमें विरह नहीं होता है ।

एक जीवकी अपेक्षा बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ११४ ॥

क्षुद्रभवग्रहणका काल संख्यात आवलीप्रमाण होता है, क्योंकि, एक मुहूर्तके छ्यासठ हजार तीन सौ छत्तीस खण्डप्रमाण खंड करने पर एक खंडप्रमाण क्षुद्रभवका काल होता है ।

शंका– यह भी कैसे जाना है ?

समाधान– एक अन्तर्मुहूर्त कालमें छ्यासठ हजार तीन सौ छत्तीस मरण होते हैं, और इतने ही क्षुद्रभव होते हैं ॥ ३५ ॥

१ छत्तीस तिण्णि सया छावट्ठिसहस्सवारमरणाणि । अंतोमुहुत्तमज्झे पत्तोसि निगोयवासम्मि ॥ भावपा २८

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

त्ति गाहासुत्तादो। मुहुत्तस्स एवदियभागो संखेज्जावलियमेत्तो त्ति कधं णव्वदे ?

आवलिय अणागारे चक्खिंदिय-सोद-घाण-जिब्भाए।
मण-वयण-कायफासे अवाय-ईहासुदुस्सासे ॥ ३६ ॥

केवलदंसण-णाणे कसायसुक्केक्कए पुधत्ते य।
पडिवादुवसामेंतय खवेंतए संपराए य ॥ ३७ ॥

माणद्धा कोधद्धा मायद्धा तह चेव लोभद्धा।
खुद्दभवग्गहणं पुण किट्टीकरणं च बोद्धव्वं[1] ॥ ३८ ॥

इस गाथासूत्रसे जाना जाता है कि क्षुद्रभवका काल अन्तर्मुहूर्तका छ्यासठ हजार तीन सौ छत्तीसवां भाग है।

शंका– मुहूर्तका छ्यासठ हजार तीन सौ छत्तीसवां भाग संख्यात आवलीप्रमाण होता है, यह कैसे जाना ?

समाधान– अनाकार दर्शनोपयोगका जघन्य काल आगे कहे जानेवाले सभी पदोंकी अपेक्षा सबसे कम है। (तथापि वह संख्यात आवलीप्रमाण है।) इससे चक्षुरिन्द्रियसम्बन्धी अवग्रहज्ञानका जघन्य काल विशेष अधिक है। इससे, श्रोत्रेन्द्रियजनित अवग्रहज्ञान, इससे घ्राणेन्द्रियजनित अवग्रहज्ञान, इससे जिह्वेन्द्रियजनित अवग्रहज्ञान, इससे मनोयोग, इससे वचनयोग, इससे काययोग, इससे स्पर्शनेन्द्रियजनित अवग्रहज्ञान, इससे अवायज्ञान, इससे ईहाज्ञान, इससे श्रुतज्ञान और इससे उच्छ्वास, इन सबका जघन्य काल क्रमशः उत्तरोत्तर विशेष विशेष अधिक है ॥ ३६ ॥

तद्भवस्थ केवलीके केवलज्ञान और केवलदर्शन, तथा सकषाय जीवके शुक्ललेश्या, इन तीनोंका जघन्य काल (परस्पर सदृश होते हुए भी) उच्छ्वासके कालसे विशेष अधिक है। इससे एकत्ववितर्कअवीचारशुक्लध्यान, इससे पृथक्त्ववितर्कवीचारशुक्लध्यान, इससे उपशमश्रेणीसे गिरनेवाले सूक्ष्मसाम्परायसंयत, इससे उपशमश्रेणीपर चढ़नेवाले सूक्ष्मसाम्पराय-संयत और इससे क्षपकश्रेणीपर चढ़नेवाले सूक्ष्मसाम्परायसंयत, इन सबका जघन्य काल क्रमशः उत्तरोत्तर विशेष विशेष अधिक है ॥ ३७ ॥

क्षपक सूक्ष्मसाम्परायके जघन्य कालसे मानकषाय, इससे क्रोधकषाय, इससे मायाकषाय, इससे लोभकषाय और इससे लब्ध्यपर्याप्त जीवके क्षुद्रभवग्रहणका जघन्य काल क्रमशः उत्तरोत्तर विशेष विशेष अधिक है। क्षुद्रभवग्रहणके जघन्य कालसे कृष्टीकरणका जघन्य काल विशेष अधिक है, ऐसा जानना चाहिए ॥ ३८ ॥

१ कसायपाहुडे अद्धापरिमाणाधिकारे १-३.

इदि गाहासुत्तादो। अंतोमुहुत्तं पि संखेज्जावलियमेत्तं चेव, तदो एदेसिं दोण्हं विसेसो णत्थि त्ति अंतोमुहुत्तवयणं सुत्तत्थं संदेहमुप्पादेदि त्ति[1] वुत्ते णत्थि संदेहो, खुद्दाभवग्गहणमभणिय अंतोमुहुत्तमिदि भणिदजिणाणादो ताणं विसेसो अत्थि त्ति अवगम्मदे। घादखुद्दाभवग्गहणादो बादरेइंदियपज्जत्तजहण्णाउअं[2] संखेज्जगुणमिदि भणिदवेअणकालविहाणअप्पाबहुगादो य। बादरेइंदियपज्जत्तवदिरित्तो सव्वजहण्णाउअबादरेइंदियपज्जत्तएसु उप्पज्जिय अण्णत्थ गदे बादरेइंदियपज्जत्तस्स जहण्णकालो लब्भदि त्ति भणिदं होदि।

उक्कस्सेण संखेज्जाणि वाससहस्साणि ॥ ११५ ॥

पुढविकाइएसु बावीस वाससहस्साणि उक्कस्साउअं सुत्तसिद्ध[3]मत्थि। बादरेइंदियपज्जत्तभवट्ठिदी असंखेज्जवाससमेत्ता किण्ण होदि त्ति वुत्ते ण होदि,

इन गाथासूत्रोंसे जाना जाता है कि क्षुद्रभवका काल भी संख्यात आवलीप्रमाण होता है।

शंका– अन्तर्मुहूर्त भी तो संख्यात आवलीप्रमाण ही होता है, इसलिए अन्तर्मुहूर्त और क्षुद्रभवग्रहण काल, इन दोनोंमें कोई भेद नहीं है। अतएव यह अन्तर्मुहूर्तका वचनरूप सूत्रार्थ सन्देहको उत्पन्न करता है?

समाधान– इसमें कोई सन्देह नहीं है, क्योंकि, सूत्रमें 'क्षुद्रभवग्रहण' ऐसा पाठ न करके 'अन्तर्मुहूर्त' ऐसा वचन कहनेवाली जिन-आज्ञासे उन दोनोंमें भेद जाना जाता है। तथा, 'घातक्षुद्रभवग्रहणकालसे बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीवकी जघन्य आयु संख्यातगुणी है' इस प्रकारके कहे गये वेदनाकालविधानसम्बन्धी अल्पबहुत्वद्वारसे भी जाना जाता है।

बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकसे व्यतिरिक्त किसी जीवके सर्व जघन्य आयुवाले बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें उत्पन्न होकर, पुनः अन्य पर्यायमें चले जाने पर, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तका जघन्य काल पाया जाता है, ऐसा अर्थ कहा गया समझना चाहिए।

एक जीवकी अपेक्षा बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीवोंका उत्कृष्ट काल संख्यात हजार वर्ष है ॥ ११५ ॥

पृथिवीकायिक जीवोंमें बाईस हजार वर्षकी उत्कृष्ट आयु सूत्रसिद्ध है।

शंका– बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीवोंकी भवस्थिति असंख्यात वर्षप्रमाण क्यों नहीं होती है?

समाधान– नहीं होती है, क्योंकि, उनमें असंख्यातवार एक जीवकी उत्पत्ति

१ प्रतिषु 'मुप्पादेसि' इति पाठः। २ प्रतिषु 'जहण्णाउअ-' इति पाठः।
३ प्रतिषु 'सुप्पसिद्ध-' इति पाठः।

तत्थासंखेज्जवारमेगजीवस्स उप्पत्तीए असंभवा । उक्कस्ससंखेज्जमेत्तं तस्स संखेज्ज-भागमेत्तं वा वारं जदि उप्पज्जदि तो वि असंखेज्जाणि वस्साणि होंति त्ति घुत्ते ण होंति, संखेज्जाणि वाससहस्साणि त्ति सुत्तण्णहाणुववत्तीदो तप्पाओग्गसंखेज्ज-वारुप्पत्तिसिद्धीए । अणप्पिदो बादरेइंदियपज्जत्तएसु संखेज्जाणि वाससहस्साणि उक्कस्सेण तत्थ परिभमिय पुणो अणप्पिदेसु णिच्छएण उप्पज्जदि त्ति भणिदं होदि ।

बादरेइंदियअपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ ११६ ॥

कुदो ? एदेसि सव्वद्धासु विरहाभावादो ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ ११७ ॥

कुदो ? अपज्जत्तएसु जहण्णियाए आउट्ठिदीए तत्तियमेत्ताए[1] उवलंभा ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ११८ ॥

कुदो ? अणप्पिंविदिओ बादरेइंदियअपज्जत्तएसु उप्पज्जिय जदि वि संखेज्ज-

असंभव है ।

शंका– यदि कोई जीव बादर एकेन्द्रियोंमें उत्कृष्ट संख्यातप्रमाण बार, अथवा उसके संख्यातवें भागप्रमाण बार उत्पन्न होता है, तो भी असंख्यात वर्ष तो हो ही जाते हैं ?

समाधान– नहीं होते हैं, क्योंकि, यदि ऐसा न माना जाय, तो बादर एकेन्द्रिय जीवोंका उत्कृष्ट काल 'संख्यात हजार वर्षप्रमाण है' यह सूत्र-वचन नहीं बन सकता है। इसलिए तत्प्रायोग्य संख्यातवार ही बादर एकेन्द्रियोंकी उत्पत्ति सिद्ध होती है ।

अविवक्षित कोई जीव बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें उत्पन्न होकर संख्यातसहस्र वर्षप्रमाण अधिकसे अधिक काल तक उनके परिभ्रमण करके पुनः अविवक्षित जीवोंमें निश्चयसे उत्पन्न होता है, यह अर्थ कहा गया समझना चाहिए ।

बादर एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ ११६ ॥

क्योंकि, सभी कालोंमें इन जीवोंके विरहका अभाव है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है ॥ ११७ ॥

क्योंकि, लब्ध्यपर्याप्तक जीवोंमें जघन्य आयुकी स्थिति उतनेमात्र अर्थात् क्षुद्रभवग्रहण-प्रमाण ही पाई जाती है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ११८ ॥

क्योंकि, अविवक्षित इन्द्रियवाला कोई जीव बादर एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकोंमें

१ प्रतिषु ' तत्तियमेत्ता ' इति पाठः ।

सहस्सावरं तत्थेव तत्थेव उप्पज्जदि, तो वि तेसु सव्वेसु अंतोमुहुत्तेसु एगट्ठकदेसु वि एगमुहुत्तपमाणाभावा ।

सुहुमएइंदिया केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ ११९ ॥

कुदो ? सव्वद्धा सुहुमेइंदियविरहाभावा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ १२० ॥

अणप्पिदिंदियस्स सुहुमेइंदियअपज्जत्तएसु सव्वजहण्णकालमच्छिय अणप्पिदिंदियं गदस्स खुद्दाभवग्गहणुवलंभा ।

उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा ॥ १२१ ॥

तं जहा– अणिंदिएहिंतो आगंतूण सुहुमेइंदिएसुप्पज्जिय असंखेज्जलोगमेत्तं तेसिमुक्कस्सभवट्ठिदिं तत्थ गमिय अण्णिंदियं गच्छदि । कुदो ? हेउसरूवजिणवयणोवलंभादो ।

सुहुमेइंदियपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ १२२ ॥

उत्पन्न होकर यद्यपि संख्यात सहस्रवार उन उनमें ही उत्पन्न होता है, तथापि उन सभी अन्तर्मुहूर्तोंके एकत्रित करने पर भी एक मुहूर्तप्रमाणका अभाव है, अर्थात् फिर भी पूरा एक मुहूर्त नहीं होता है ।

सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ ११९ ॥

क्योंकि, सभी कालोंमें सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवोंके विरहका अभाव है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है ॥ १२० ॥

क्योंकि, अविवक्षित इन्द्रियवाले जीवके सूक्ष्म एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकोंमें सर्व जघन्य काल रह करके अविवक्षित इन्द्रियवाले जीवोंमें गये हुए जीवके क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण जघन्य काल पाया जाता है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल असंख्यात लोकके जितने प्रदेश हैं, तत्प्रमाण है ॥ १२१ ॥

जैसे, अविवक्षित अन्य इन्द्रियवाले जीवोंसे आकर सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होकर कोई जीव असंख्यात लोकप्रमाण उनकी उत्कृष्ट भवस्थितिको वहां पर बिताकर अन्य इन्द्रियवाले जीवोंमें चला जाता है, क्योंकि, इस प्रकारके हेतुस्वरूप जिन-वचन पाये जाते हैं ।

सूक्ष्म एकेन्द्रियपर्याप्तक जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ १२२ ॥

सव्वद्धासु विरहाभावा। सो वि कधं णव्वदे ? अण्णहाणुववत्तिहेउलक्खणोवलक्खियजिणवयणादो।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १२३ ॥

केत्तियमेत्तं ? तेसिं जहण्णाउट्ठिदिमेत्तं। एत्थ खुद्दाभवग्गहणं किण्ण लब्भदे ? ण, अपज्जत्ते मोत्तूण अण्णत्थ तस्स संभवाभावा।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ १२४ ॥

एगाउट्ठिदी संखेज्जावलियमेत्ता त्ति कट्टु संखेज्जवारम-संखेज्जवारं वा तत्थेव पुणो पुणो उप्पज्जमाणस्स दिवस-पक्ख-मास-उडु-अयण-संवच्छरादिकालो किण्ण लब्भदे ? ण, तेत्तियवारं तत्थुप्पत्तीए असंभवा। सो वि कधं णव्वदे ?

क्योंकि, सभी कालोंमें सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीवोंके विरहका अभाव है।

शंका– यह भी कैसे जाना ?

समाधान– अन्यथानुपपत्तिस्वरूप हेतुके लक्षणसे उपलक्षित जिन-वचनसे जाना जाता है कि सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीव सर्वदा रहते हैं।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १२३ ॥

शंका– यह अन्तर्मुहूर्त काल कितना बड़ा लेना चाहिए ?

समाधान– उनकी, अर्थात् सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीवोंकी जघन्य आयुके कालप्रमाण लेना चाहिए।

शंका– इस सूत्रमें 'अन्तर्मुहूर्त' के स्थानपर 'क्षुद्रभवग्रहण' इस पदका उपादान क्यों नहीं किया गया।

समाधान– नहीं, क्योंकि, लब्ध्यपर्याप्तक जीवोंको छोड़कर अन्यत्र उसका, अर्थात् क्षुद्रभवका होना संभव नहीं है।

सूक्ष्म एकेन्द्रियपर्याप्तक जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १२४ ॥

शंका– जब कि एक आयुकर्मकी स्थिति संख्यात आवलीप्रमाण है, तब संख्यातवार या असंख्यातवार वहां पर ही पुनः पुनः उत्पन्न होनेवाले जीवके दिवस, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, अथवा संवत्सर आदि प्रमाण स्थितिकाल क्यों नहीं पाया जाता है।

समाधान– नहीं, क्योंकि, उतने वार उस पर्यायमें उत्पत्ति होना असंभव है, जितने वारमें कि मास, वर्ष आदि प्रमाण स्थितिकाल पाया जा सके।

शंका– यह भी कैसे जाना ?

समाधान– अन्यथा, सूत्रमें 'अन्तर्मुहूर्त' ऐसा वचन नहीं हो सकता था, इस अन्यथानुपपत्तिसे जाना।

अंतोमुहुत्तवयणण्णहाणुववत्तीदो । कधं सज्झ-साहणाणमेयत्तं ? ण, पमाणेणाणेयंता । किंतु एगजीवजहण्णआउट्ठिदिकालादो तस्सेवुक्कस्सभवट्ठिदिकालो संखेज्जगुणो, णाणाआउट्ठिदिसमूहणिप्पण्णत्तादो ।

सुहुमेइंदियअपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ १२५ ॥

सुगममेदं सुत्तं, बहुसो परूविदत्तादो । कधमेग-बहुवयणाणमेगमहियरणं ? ण एस दोसो, सव्वत्थ दोण्हमण्णोण्णाविणाभावुवलंभा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ १२६ ॥

असंजदसम्मादिट्ठीणमवहारकालो आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तो वि होंतो अंतोमुहुत्तमिदि सुत्ते णिद्दिट्ठो । एसा अपज्जत्ताउट्ठिदी जहण्णिया संखेज्जावलियमेत्ता अंतोमुहुत्तमिदि सुत्ते किण्ण वुत्ता ? ण एस दोसो, पज्जत्ताउआदो अपज्जत्तजहण्णाउअं संखेज्जगुणहीणमिदि पदुप्पायणट्ठं खुद्दाभवग्गहणस्सुवदेसा ।

शंका— साध्य और साधन, इन दोनोंके एकत्व कैसे हो सकता है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, उक्त कथनमें प्रमाणसे अनेकान्त है, अर्थात्, प्रमाण स्वयं साध्य होते हुए भी अन्यका साधक होता है ।

किन्तु यथार्थ बात यह है कि एक जीवकी जघन्य आयुस्थितिके कालसे उसीकी उत्कृष्ट भवस्थितिका काल संख्यातगुणा होता है, क्योंकि, वह नाना आयुस्थितियोंके समूहसे निष्पन्न होता है ।

सूक्ष्म एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ १२५ ॥

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि, पहले बहुतवार प्ररूपणा किया गया है ।

शंका— एकवचन और बहुवचन, इन दोनोंका एक अधिकरण कैसे हो सकता है ?

समाधान— यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, सर्वत्र ही एकवचन और बहुवचन, इन दोनोंका अविनाभावसम्बन्ध पाया जाता है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है ॥ १२६ ॥

शंका— असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका अवहारकाल आवलीके असंख्यातवें भागमात्र होता हुआ भी 'अन्तर्मुहूर्त है' ऐसा सूत्रमें निर्देश किया गया है । फिर यह लब्ध्यपर्याप्तक जीवोंकी जघन्य आयुस्थिति संख्यात आवलीप्रमाण होते हुए भी 'अन्तर्मुहूर्तप्रमाण है' ऐसा सूत्रमें क्यों नहीं कहा ?

समाधान— यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, पर्याप्तक जीवोंकी (जघन्य) आयुसे लब्ध्यपर्याप्तक जीवोंकी जघन्य आयु संख्यातगुणी हीन होती है, यह बतलानेके लिए सूत्रमें क्षुद्रभवग्रहणका उपदेश किया गया है ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ १२७ ॥

सुगममेदं सुत्तं, बहुसो परूविदत्तादो ।

बीइंदिया तीइंदिया चउरिंदिया बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-पज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा[1] ॥ १२८ ॥

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

उवदेसेण विणा जाणिज्जदि त्ति सुगममेदं सुत्तं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं अंतोमुहुत्तं[2] ॥१२९॥

'जहा उद्देसो तहा णिद्देसो' त्ति णायादो । वि-ति-चउरिंदियाणं जहण्णकालो खुद्दाभवग्गहणं, तत्थ अपज्जत्ताणं संभवा । पज्जत्ताणं अंतोमुहुत्तं तत्थ खुद्दाभवग्गहणस्स संभवाभावा ।

उक्कस्सेण संखेज्जाणि वाससहस्साणि[3] ॥ १३० ॥

तीइंदियाणमेगूणवण्णदिवसा उक्कस्साउट्ठिदिपमाणं, चउरिंदियाणं छम्मासा,

---

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १२७ ॥

पहले बहुतवार प्ररूपणा किये जानेसे यह सूत्र सुगम है ।

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीव तथा द्वीन्द्रियपर्याप्तक, त्रीन्द्रियपर्याप्तक और चतुरिन्द्रियपर्याप्तक जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते है ॥ १२८ ॥

उपदेशके विना ही जाना जाता है कि यह सूत्र सुगम है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल क्रमशः क्षुद्रभवग्रहण और अन्तर्मुहूर्तप्रमाण है ॥ १२९ ॥

'जैसा उद्देश होता है, वैसा ही निर्देश होता है' इस न्यायसे सामान्य द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवोंका जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है, क्योंकि, उनमें लब्ध्यपर्याप्तक जीवोंकी संभावना है । किन्तु पर्याप्तक जीवोंका काल अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि, पर्याप्तकोंमें क्षुद्रभवग्रहणकी संभावना नहीं है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका उत्कृष्ट कालसंख्यात हजार वर्ष है ॥ १३० ॥

त्रीन्द्रिय जीवोंकी उनंचास दिवस उत्कृष्ट आयुस्थितिका प्रमाण है, चतुरिन्द्रिय

---

१ विकलेन्द्रियाणां नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । स. सि. १, ८.

२ एकजीवं प्रति जघन्येन क्षुद्रभवग्रहणम् । स. सि. १, ८.

३ उत्कर्षेण संख्येयानि वर्षसहस्राणि । स. सि. १, ८.

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

बीइंदियाणं बारस वासा। जदो एवं, तदो संखेज्जाणि वाससहस्साणि त्ति ण घडदे ? ण एस दोसो, एदाओ एगाउट्ठिदीओ। एदाहि ण एत्थ कज्जमत्थि, भवट्ठिदीए अहियारादो। का भवट्ठिदी णाम ? आउट्ठिदिसमहो। जदि एवं, तो असंखेज्जाणि वाससहस्साणि भवट्ठिदी किण्ण होदि ? ण एस दोसो, असंखेज्जवारं संखेज्जवास-सहस्सविरोहिसंखेज्जवारं वा तत्थुप्पत्तीए संभवाभावा। अणप्पिदिंदिएहिंतो आगंतूण अप्पिंदिदिएसु उप्पज्जिय संखेज्जाणि वाससहस्साणि चेव हिंडदि, असंखेज्जाणि ण परिभमदि त्ति घुत्तं होदि।

बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदियपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ १३१ ॥

उवदेसेण विणा एदस्स सुत्तस्स अत्थो णव्वदे।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं॥ १३२ ॥

जीवोंकी छह मास और द्वीन्द्रिय जीवोंकी बारह वर्ष उत्कृष्ट आयुस्थिति होती है।

शंका– यदि ऐसा है, तो उक्त जीवोंमें सूत्रमें कही गई संख्यात हजार वर्षोंकी स्थिति नहीं घटित होती है ?

समाधान– यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, ये बतलाई गई स्थितियां आयुसम्बन्धी हैं, इनसे यहां पर कोई कार्य नहीं है। किन्तु यहांपर भवस्थितिका अधिकार है।

शंका– भवस्थिति किसे कहते हैं ?

समाधान– अनेक आयुस्थितियोंके समूहको भवस्थिति कहते हैं।

शंका– यदि ऐसा है, तो असंख्यात हजार वर्षप्रमाण भवस्थिति क्यों नहीं होती है ?

समाधान– यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, असंख्यातवार अथवा संख्यात वर्षसहस्रके विरोधी संख्यातवार भी उनमें उत्पत्ति होनेकी संभावनाका अभाव है। अविवक्षित इन्द्रियवाले जीवोंसे आ करके विवक्षित इन्द्रियवाले जीवोंमें उत्पन्न होकर, संख्यातसहस्र वर्ष ही भ्रमण करता है, असंख्यातवर्ष भ्रमण नहीं करता है, ऐसा अर्थ कहा हुआ समझना चाहिए।

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ १३१ ॥

उपदेशके विना ही इस सूत्रका अर्थ ज्ञात है।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है ॥ १३२ ॥

यह सूत्र सुगम है।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ १३३ ॥

एवं पि सुत्तं सुगमं चेव । णवरि बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदियअपज्जत्ताणं जहाकमेण अंतरविरहिया असीदि-सट्ठि-चालीसअपज्जत्तभवा। जदि वि एत्तियवारमेगो जीवो[1] तत्थतणुक्कस्सट्ठिदीए उप्पज्जदि, तो वि तब्भवट्ठिदिकालसमासो अंतोमुहुत्तमेत्तो चेव । कथमेदं णव्वदे ? अंतोमुहुत्तुवदेसण्णहाणुववत्तीदो ।

पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्तएसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा[2] ॥ १३४ ॥

सुगममेदं सुत्तं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १३५ ॥[3]

एदस्स सुत्तस्स अत्थो जधा मूलोघम्हि मिच्छत्तस्स जहण्णकालपरूवणासुत्तस्स वुत्तो तधा वत्तव्वो ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १३३ ॥

यह सूत्र भी सुगम ही है । विशेष बात यह है कि द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक जीवके यथाक्रमसे अन्तररहित होकर अस्सी, साठ चालीस लब्ध्यपर्याप्तक भव होते हैं । यद्यपि इतने बार एक जीव उनकी उत्कृष्ट स्थितिमें उत्पन्न होता है, तो भी उनकी भवस्थितिके कालका जोड़ अन्तर्मुहूर्तमात्र ही होता है ।

शंका– यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान– अन्यथा सूत्रमें अन्तर्मुहूर्तका उपदेश हो सकता था । इस अन्यथानुपपत्तिसे जाना जाता है कि उन भवोंका जोड़ अन्तर्मुहूर्तमात्र ही होता है ।

पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ १३४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य अन्तर्मुहूर्तप्रमाण है ॥ १३५ ॥

इस सूत्रका अर्थ जैसा कालप्ररूपणाके मूलोघमें मिथ्यात्वके जघन्य कालकी प्ररूपणा करनेवाले सूत्रका कहा है, वैसा ही यहां कहना चाहिए ।

१ प्रतिषु ' वीजो ' इति पाठः ।

२ पंचेन्द्रियेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । स. सि. १, ८.

३ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

उक्कस्सेण सागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि, सागरोवमसदपुधत्तं[1] ॥ १३६ ॥

'जहा उद्देसो तहा णिद्देसो' त्ति णायादो पंचिंदियाणं पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि सागरोवमसहस्साणि, पंचिंदियपज्जत्ताणं सागरोवमसदपुधत्तं। एदस्सुदाहरणं-एक्को एइंदियादो विगलिंदियादो वा आगंतूण पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्तएसु उववज्जिय सगट्ठिदिमच्छिय अण्णिदियं गदो। एक्कस्सेव सागरोवमसहस्सस्स सुत्तंतब्भूदबहुत्तमवेक्खिय सागरोवमसहस्साणि त्ति सुत्ते बहुवयणणिद्देसो कदो।

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं[2] ॥१३७॥

कुदो ? ओघादो णाणेगजीवसासणादिकालाणं भेदाभावा।

पंचिंदियअपज्जत्ता बीइंदियअपज्जत्तभंगो ॥ १३८ ॥

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल पूर्वकोटीपृथक्त्वसे अधिक सागरोपमसहस्र और सागरोपमशतपृथक्त्वप्रमाण है ॥ १३६ ॥

'जैसा उद्देश होता है, तथैव निर्देश होता है' इस न्यायसे सामान्य पंचेन्द्रिय जीवोंका उत्कृष्ट काल पूर्वकोटीपृथक्त्वसे अधिक सागरोपमसहस्र है, तथा पंचेन्द्रिय पर्याप्तक जीवोंका उत्कृष्ट काल सागरोपमशतपृथक्त्व है।

अब इन दोनों कालोंका उदाहरण कहते हैं– कोई एक जीव एकेन्द्रिय या विकलेन्द्रियसे आकर पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें उत्पन्न होकर, अपनी स्थिति तक रह कर, अन्य इन्द्रियको चला गया। यहां पर एक ही सागरोपमसहस्रके, अपने अन्तर्गत बहुत्वको देखकर 'सागरोपमसहस्र' ऐसा सूत्रमें बहुवचनका निर्देश किया गया है।

सासादनसम्यग्दृष्टिसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तकके जीवोंका काल ओघके समान है ॥ १३७ ॥

क्योंकि, ओघप्ररूपणासे नाना और एक जीवसम्बन्धी सासादनादि गुणस्थानोंके कालोंमें भेदका अभाव है।

पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक जीवोंका काल द्वीन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक जीवोंके कालके समान है ॥ १३८ ॥

१ उत्कर्षेण सागरोपमसहस्रं पूर्वकोटीपृथक्त्वेनाभ्यधिकम्। स. सि. १, ८.

२ शेषाणां सामान्योक्तः कालः। स. सि. १, ८.

णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा, एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तमिच्चाइणा भेदाभावा। णवरि पंचिंदियअपज्जत्तएसु णिरंतरुप्पज्जणभववारा चउवीस होंति।

एवमिंदियमग्गणा समत्ता।

कायाणुवादेण पुढविकाइया आउकाइया तेउकाइया वाउकाइया केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा[1] ॥ १३९ ॥

कुदो ? सव्वद्धासु एदेसिं संताणस्स विच्छेदाभावा।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं[2] ॥ १४० ॥

एदस्सुदाहरणं— एगो अणप्पिदकाइओ जीवो अप्पिदकाइएसु उप्पज्जिय सव्वजहण्णं कालमच्छिय अणप्पिदकाइयं गदो। लद्धो जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणकालो

उक्कस्सेण असंखेज्जा[3] ॥ १४१ ॥

नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल, एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है, उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है इत्यादिक रूपसे कोई भेद नहीं है। विशेष बात यह है कि पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक जीवोंमें लगातार निरन्तर उत्पन्न होनेके भववार चौवीस होते हैं।

इस प्रकार इन्द्रियमार्गणा समाप्त हुई।

कायमार्गणाके अनुवादसे पृथिवीकायिक, जलकायिक, तेजस्कायिक और वायुकायिक जीव कितने कालतक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल होते हैं ॥ १३९ ॥

क्योंकि, सभी कालोंमें इन पृथिवीकायिकादिकोंकी संतान-परम्पराका विच्छेद नहीं होता है।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है ॥ १४० ॥

इसका उदाहरण— अविवक्षित कायवाला कोई एक जीव विवक्षित कायवाले जीवोंमें उत्पन्न होकर सर्व जघन्य काल रह कर अविवक्षित कायको प्राप्त हुआ। तब क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण जघन्य काल उपलब्ध हुआ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल असंख्यात लोकप्रमाण है ॥ १४१ ॥

१ कायानुवादेन पृथिव्यप्तेजोवायुकायिकानां नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। स. सि. १, ८.

२ एकजीवं प्रति जघन्येन क्षुद्रभवग्रहणम्। स. सि. १, ८.

३ उत्कर्षेणासंख्येयः कालः। स. सि. १, ८.

एदस्सुदाहरणं– एगो अणप्पिदकाइओ अप्पिदकाइएसु उप्पज्जिय सव्वुक्कस्सियं अप्पिदकाइयट्ठिदिमसंखेज्जलोगमेत्तं परिभमिय अणप्पिदकायं गदो ।

बादरपुढविकाइया बादरआउकाइया बादरतेउकाइया बादरवाउकाइया बादरवणप्फदिकाइया पत्तेयसरीरा केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ १४२ ॥

कुदो ? सव्वकालमणुच्छिण्णसंताणसावो ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ १४३ ॥

एदस्सुदाहरणं एगो अणप्पिदकाइओ अप्पिदकाइयअपज्जत्तएसु उववज्जिय सव्वजहण्णमाउट्ठिदिं गमिय अणप्पिदकाइएसु उववण्णो । लद्धो जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणकालो ।

उक्कस्सेण कम्मट्ठिदी ॥ १४४ ॥

कम्मट्ठिदि त्ति वुत्ते किं सव्वेसिं कम्माणं ट्ठिदीओ घेप्पंति, आहो एक्कस्स चेव ट्ठिदी घेप्पदि त्ति ? सव्वकम्माणं ट्ठिदीओ ण घेप्पंति, किंतु एक्कस्सेव कम्मट्ठिदी

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

इसका उदाहरण– अविवक्षित कायवाला कोई एक जीव विवक्षित पृथिवीकायिक आदि जीवोंमें उत्पन्न होकर विवक्षित कायकी असंख्यात लोकप्रमाण सर्वोत्कृष्ट स्थिति तक परिभ्रमण करके पुनः अविवक्षित कायको प्राप्त हो गया ।

बादरपृथिवीकायिक, बादरजलकायिक, बादरतेजस्कायिक, बादरवायुकायिक और बादरवनस्पतिकायिकप्रत्येकशरीर जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ १४२ ॥

क्योंकि, इन सूत्रोक्त जीवोंकी सर्वकाल अविच्छिन्न संतान पाई जाती है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है ॥ १४३ ॥

इसका उदाहरण–अविवक्षित कायवाला कोई एक जीव विवक्षित कायके लब्ध्यपर्याप्तक जीवोंमें उत्पन्न होकर वहां की सर्व जघन्य आयुस्थितिको बिताकर पुनः अविवक्षितकायिकोंमें उत्पन्न हो गया, तब क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण जघन्य काल उपलब्ध हुआ ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल कर्मस्थितिप्रमाण है ॥ १४४ ॥

शंका– 'कर्मस्थिति' इस प्रकार कहने पर क्या सर्व कर्मोंकी स्थितियां ग्रहण की जा रही हैं, अथवा, एक ही कर्मकी स्थिति ग्रहण की जा रही है ?

समाधान– सर्व कर्मोंकी स्थितियां नहीं ग्रहण की जा रही हैं, किन्तु एक मोहकर्मकी ही स्थिति यहां पर 'कर्मस्थिति' शब्दसे ग्रहण की जा रही है, क्योंकि, इस प्रकारका

घेप्पदि । कुदो ? गुरुववेसादो । तत्थ वि दंसणमोहणीयस्स चेय उक्कस्सट्ठिदीए सत्तरिसागरोवमकोडाकोडिमेत्ताए गहणं कादव्वं, पाहण्णियादो । कुदो पहाणत्तं ? संगहिदासेसकम्मट्ठिदीए । के वि आइरिया कम्मट्ठिदीदो बादरट्ठिदी परियम्मे उप्पण्णा त्ति कज्जे कारणोवयारमवलंबिय बादरट्ठिदीए चेय कम्मट्ठिदिसण्णमिच्छंति, तन्न घटते, 'गौण-मुख्ययोर्मुख्ये संप्रत्ययः' इति न्यायात् । ण च बादराणं सामण्णेण वुत्तकालो बादरेगदेसाणं बादरपुढविकाइयाणं पि सो चेव होदि विरोहा । सामण्ण-बादरट्ठिदिमणुवयारेण परूविय संपहि बादरपुढविट्ठिदिं भण्णमाणे उवयारावलंबणे पओजणाभावा च । एदस्सुदाहरणं– अणप्पिदबादरकाइओ अप्पिदबादरकाइएसु उप्पज्जिय तत्थ सत्तरिसागरोवमकोडाकोडिमेत्तकालमच्छिय अणप्पिदबादरकाइयं गदो ।

बादरपुढविकाइय-बादरआउकाइय-बादरतेउकाइय-बादरवाउ-काइय-बादरवप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ १४५ ॥

गुरुका उपदेश है । उसमें भी केवल दर्शनमोहनीयकर्मकी ही सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरोपमप्रमाण उत्कृष्ट स्थितिका ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि, वही प्रधान है ।

शंका– दर्शनमोहनीयकर्मकी स्थितिकी प्रधानता कैसे है ?

समाधान– क्योंकि, उसमें सर्व कर्मोंकी स्थिति संगृहीत है ।

कितने ही आचार्य 'कर्मस्थितिसे बादरस्थिति परिकर्ममें उत्पन्न है' इसलिये कार्यमें कारणके उपचारका अवलम्बन करके बादरस्थितिकी ही 'कर्मस्थिति' यह संज्ञा मानते हैं, किन्तु यह कथन घटित नहीं होता है, क्योंकि, 'गौण और मुख्यमें विवाद होने पर मुख्यमें ही संप्रत्यय होता है' ऐसा न्याय है । दूसरी बात यह है कि बादरकायिक जीवोंका सामान्यसे कहा हुआ काल, बादरकायिक जीवोंके एकदेशभूत बादर पृथिवीकायिकोंका भी वही हो नहीं हो सकता है, क्योंकि, इसमें विरोध आता है । तथा, सामान्य बादरकायिक स्थितिका अनुपचारसे प्ररूपण करके अब बादरपृथिवीकायिककी स्थितिको कहनेपर उपचारके आलम्बनमें कोई प्रयोजन भी नहीं है ।

अब उक्त कर्मस्थितिप्रमाण कालका उदाहरण कहते हैं– अविवक्षित बादरकायवाला कोई जीव विवक्षित बादरकायिकोंमें उत्पन्न होकर वहां पर सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरोपमप्रमाण काल तक रह करके अविवक्षित बादरकायिकमें चला गया ।

बादरपृथिवीकायिकपर्याप्त, बादरजलकायिकपर्याप्त, बादरतेजस्कायिक-पर्याप्त, बादरवायुकायिकपर्याप्त और बादरवनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीरपर्याप्त जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ १४५ ॥

सव्वद्धासु एदेसिं विरहाभावा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १४६ ॥

एदस्सुदाहरणं–एगो अणप्पिदकाइओ अप्पिदकाइएसु उप्पज्जिय सव्व-जहण्णमंतोमुहुत्तमच्छिय अणप्पिदकायं गदो ।

उक्कस्सेण संखेज्जाणि वाससहस्साणि ॥ १४७ ॥

सुद्धपुढविजीवाणमाउट्ठिदिमाणं बारह वाससहस्सा (१२०००), खरपुढवि-काइयाणं बावीस वाससहस्सा (२२०००), आउकाइयपज्जत्ताणं सत्त वाससहस्सा (७०००), तेउकाइयपज्जत्ताणं तिण्णि दिवसा (३), वाउकाइयपज्जत्ताणं तिण्णि वाससहस्साणि (३०००), वणप्फइकाइयपज्जत्ताणं दस वाससहस्साणि (१००००) उक्कस्साउट्ठिदिपमाणं होदि[1]। एदासु आउट्ठिदीसु संखेज्जवाससहस्सवारमुप्पण्णे संखेज्जाणि वाससहस्साणि होंति । उदाहरणं– एगो अणप्पिदकाइयो, अप्पिदकाइयपज्जत्तएसु उववण्णो । पुणो तम्हि चेव संखेज्जाणि वाससहस्साणि अच्छिय अणप्पिदकाइयं गदो ।

क्योंकि, सभी कालोंमें इन जीवोंके विरहका अभाव है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १४६ ॥

इसका उदाहरण– एक अविवक्षितकायिक कोई जीव विवक्षित कायवाले जीवोंमें उत्पन्न होकर सर्व-जघन्य अन्तर्मुहूर्तकाल रह करके अविवक्षित कायको प्राप्त हुआ ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल संख्यात हजार वर्ष है ॥ १४७ ॥

शुद्धपृथिवीकायिक पर्याप्तक जीवोंकी आयु स्थितिका प्रमाण बारह हजार (१२०००) वर्ष है । खरपृथिवीकायिकपर्याप्तक जीवोंकी स्थितिका प्रमाण बाईस हजार (२२०००) वर्ष है । जलकायिकपर्याप्त जीवोंकी स्थितिका प्रमाण सात हजार (७०००) वर्ष है । तेज-स्कायिकपर्याप्तक जीवोंकी स्थितिका प्रमाण तीन (३) दिवस है । वायुकायिकपर्याप्तक जीवोंकी स्थितिका प्रमाण तीन हजार (३०००) वर्ष है । वनस्पतिकायिकपर्याप्तक जीवोंकी स्थितिका प्रमाण दश हजार (१००००) वर्ष है । इन आयुस्थितियोंमें संख्यात हजार बार उत्पन्न होनेपर संख्यात सहस्र वर्ष हो जाते हैं ।

इसका उदाहरण– एक अविवक्षित कायवाला कोई जीव विवक्षित कायवाले पर्याप्तकोंमें उत्पन्न हुआ । पुनः उसी ही कायमें संख्यात सहस्र वर्ष रह करके अविवक्षित कायको प्राप्त हो गया ।

१ पृथिवीकायिकाः द्विविधाः शुद्धपृथिवीकायिकाः खरपृथिवीकायिकाश्चेति । तत्र शुद्धपृथिवीकायिकानां उत्कृष्टा स्थितिर्द्वादश वर्षसहस्राणि । खरपृथिवीकायिकानां द्वाविंशतिर्वर्षसहस्राणि । वनस्पतिकायिकानां दश वर्षसहस्राणि । अप्कायिकानां सप्तवर्षसहस्राणि । वायुकायिकानां त्रीणि वर्षसहस्राणि । तेजस्कायिकानां त्रीणि रात्रिंदिवानि । त. रा. वा. ३, ३९.

बादरपुढविकाइय-बादरआउकाइय-बादरतेउकाइय-बादरवाउकाइय-बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरअपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ १४८ ॥

सुगममेदं सुत्तं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ १४९ ॥

उदाहरणं–एगो अणप्पिदकाइओ अप्पिदकाइयअपज्जत्तएसु उववण्णो । तत्थ खुद्दाभवग्गहणमच्छिय्ण अणप्पिदं काइयं गदो ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ १५० ॥

उदाहरणं–एगो अणप्पिदकाइओ अप्पिदकाइएसु उप्पज्जिय सव्वुक्कस्समंतोमुहुत्तकालं तत्थ परिभमिय अण्णकायं गदो ।

सुहुमपुढविकाइया सुहुमआउकाइया सुहुमतेउकाइया सुहुमवाउकाइया सुहुमवणप्फदिकाइया सुहुमणिगोदजीवा तस्सेव पज्जत्तापज्जत्ता सुहुमेइंदियपज्जत्ता-अपज्जत्ताणं भंगो ॥ १५१ ॥

बादरपृथिवीकायिकलब्ध्यपर्याप्तक, बादरजलकायिकलब्ध्यपर्याप्तक, बादरतेजस्कायिकलब्ध्यपर्याप्तक, बादरवायुकायिकलब्ध्यपर्याप्तक और बादरवनस्पतिकायिकप्रत्येकशरीरलब्ध्यपर्याप्तक जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ १४८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है ॥ १४९ ॥

उदाहरण–एक अविवक्षित कायवाला कोई जीव विवक्षित कायवाले लब्ध्यपर्याप्तक जीवोंमें उत्पन्न हुआ । वहां पर क्षुद्रभवग्रहणकालप्रमाण रह करके पुनः अविवक्षित कायको प्राप्त हो गया ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १५० ॥

उदाहरण–एक अविवक्षित कायिक जीव विवक्षित कायिक जीवोंमें उत्पन्न होकर सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल तक उनमें परिभ्रमण करके पुनः अन्य कायमें चला गया ।

सूक्ष्मपृथिवीकायिक, सूक्ष्मजलकायिक, सूक्ष्मतेजस्कायिक, सूक्ष्मवायुकायिक, सूक्ष्मवनस्पतिकायिक, सूक्ष्मनिगोद जीव और उनके ही पर्याप्त तथा अपर्याप्त जीवोंका काल सूक्ष्म एकेन्द्रियपर्याप्तक और अपर्याप्तकोंके कालके समान है ॥ १५१ ॥

कुदो ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा, एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा। पज्जत्ताणमपज्जत्ताणं च अंतोमुहुत्तमिच्चेदेहि सुहुमेइंदियपज्जत्तापज्जत्तेहि विसेसाभावा।

वणप्फदिकाइयाणं एइंदियाणं भंगो[1] ॥ १५२ ॥

कुदो ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं, उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टमिच्चेदेण एइंदिएहिंतो वणप्फदिकाइयाणं भेदाभावा।

णिगोदजीवा केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ १५३ ॥

सुगममेदं सुत्तं।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ १५४ ॥

एदं पि सुत्तं सुगमं चेय।

उक्कस्सेण अड्ढाइज्जा पोग्गलपरियट्टं ॥ १५५ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल, एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण और अन्तर्मुहूर्त, तथा उत्कृष्ट काल असंख्यात लोक है। पर्याप्तक और अपर्याप्तक जीवोंका काल अन्तर्मुहूर्त है, इत्यादि रूपसे सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक और अपर्याप्तक जीवोंके साथ सूक्ष्मपृथिवीकायिकादिकके कालमें विशेषताका अभाव है।

वनस्पतिकायिक जीवोंका काल एकेन्द्रिय जीवोंके कालके समान है ॥१५२॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल, एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहण और उत्कृष्ट काल अनन्तकालात्मक असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन है, इस रूपसे एकेन्द्रियोंसे वनस्पतिकायिक जीवोंके कालका कोई भेद नहीं है।

निगोद जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ १५३ ॥

यह सूत्र सुगम है।

एक जीवकी अपेक्षा निगोद जीवोंका जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है ॥ १५४ ॥

यह भी सूत्र सुगम ही है।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अढ़ाई पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है ॥ १५५ ॥

---

१ वनस्पतिकायिकानामेकेन्द्रियवत् । स. सि. १. ८.

तं जधा- एगो अण्णकायादो आगंतूण णिगोदेसुववण्णो। तत्थ अड्ढाइज्जा पोग्गलपरियट्टाणि परियट्टिदूण अण्णकायं गदो।

बादरणिगोदजीवाणं बादरपुढविकाइयाणं भंगो ॥ १५६ ॥

कुदो ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा, एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं, उक्कस्सेण कम्मट्ठिदी इच्चेएण बादरणिगोदाणं बादरपुढविकाइएहिंतो भेदाभावा।

तसकाइय-तसकाइयपज्जत्तएसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा[1] ॥ १५७ ॥

सुगममेवं सुत्तं।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[2] ॥ १५८ ॥

तसकाइयाणं तेसिं पज्जत्ताणं च जहण्णकालो अंतोमुहुत्तं। तसकाइयाणमंतोमुहुत्तमिदि अभणिय खुद्दाभवग्गहणं त्ति किमट्ठं वुत्तं ? ण, खुद्दाभवग्गहणं पेक्खिदूण जहण्णमिच्छत्तकालस्स थोवत्तादो। सेसं सुगमं।

जैसे- कोई एक जीव अन्य कायसे आ करके निगोदिया जीवोंमें उत्पन्न हुआ। वहां पर अढ़ाई पुद्गलपरिवर्तन काल तक परिभ्रमण करके अन्य कायको प्राप्त हो गया।

बादरनिगोद जीवोंका काल बादरपृथिवीकायिक जीवोंके समान है ॥ १५६ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल, एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट काल कर्मस्थितिप्रमाण है, इस रूपसे बादरनिगोदिया जीवोंके कालका बादरपृथिवीकायिक जीवोंके कालसे कोई भेद नहीं है।

त्रसकायिक और त्रसकायिकपर्याप्तकोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ १५७ ॥

यह सूत्र सुगम है।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १५८ ॥

त्रसकायिक और उनके पर्याप्तकोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है।

शंका- 'त्रसकायिक जीवोंका अन्तर्मुहूर्त काल है, ऐसा न कह कर 'क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण काल है,' ऐसा क्यों नहीं कहा ?

समाधान- नहीं, क्योंकि, क्षुद्रभवग्रहणके कालको देखकर अर्थात् उसकी अपेक्षा जघन्य मिथ्यात्वका काल और भी छोटा है।

१ त्रसकायिकेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। स. सि. १, ८.

२ एकं जीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। स. सि. १, ८.

उक्कस्सेण वे सागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि, वे सागरोवमसहस्साणि[1] ॥ १५९ ॥

तं जधा- दो जीवा थावरकायादो आगंतूण एगो तसकाइएसु, अण्णेगो तसकाइयपज्जत्तएसु उववण्णो। तत्थ जो सो तसकाइएसु उववण्णो सो पुव्वकोडि-पुधत्तब्भहिय-वे-सागरोवमसहस्साणि तत्थ परिभमिय थावरकायं गदो। इदरो वि वे सागरोवमसहस्सं परिभमिय थावरं गदो, एत्तो उवरि तत्थच्छणसंभवाभावा।

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं[2] ॥१६०॥

कुदो ? ओघसासणादिसयलगुणट्ठाणाणं णाणेगजीवजहण्णुक्कस्सकालेहिंतो तसकाइयतसकाइयपज्जत्तसासणादिसयलगुणट्ठाणणाणेगजीवजहण्णुक्कस्सकालाणं भेदाभावा।

तसकाइयअपज्जत्ताणं पंचिंदियअपज्जत्तभंगो ॥ १६१ ॥

कुदो ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा, एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं,

---

त्रसकायिक जीवोंका उत्कृष्ट काल पूर्वकोटीपृथक्त्वसे अधिक दो हजार सागरोपम और त्रसकायिक पर्याप्तक जीवोंका उत्कृष्ट काल पूरे दो हजार सागरोपमप्रमाण है ॥ १५९ ॥

जैसे- दो जीव एक साथ स्थावरकायसे आकर एक तो सामान्य त्रसकायिक जीवोंमें और दूसरा त्रसकायिक पर्याप्तकोंमें उत्पन्न हुआ। उनमेंसे जो सामान्य त्रसकायिक जीवोंमें उत्पन्न हुआ, वह जीव पूर्वकोटीपृथक्त्वसे अधिक दो हजार सागरोपम काल उसमें परिभ्रमण करके स्थावरकायको प्राप्त हुआ। तथा दूसरा जीव भी दो हजार सागरोपमप्रमाण उसमें परिभ्रमण करके स्थावरकायमें चला गया, क्योंकि, इसके ऊपर त्रसकायमें रहना संभव नहीं है।

सासादनसम्यग्दृष्टिसे लेकर अयोगिकेवलीगुणस्थान तकका काल ओघके समान है ॥ १६० ॥

क्योंकि, ओघके सासादनादि सकल गुणस्थानोंके नाना और एक जीवके जघन्य और उत्कृष्ट कालोंसे त्रसकायिक तथा त्रसकायिकपर्याप्तकोंके सासादनादि सकल गुणस्थानोंके नाना और एक जीवके जघन्य और उत्कृष्ट कालोंका कोई भेद नहीं है।

त्रसकायिकलब्ध्यपर्याप्तकोंका काल पंचेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकोंके समान है ॥ १६१ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल, एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल क्षुद्रभव-

---

१ उत्कर्षेण द्वे सागरोपमसहस्रे पूर्वकोटीपृथक्त्वेनाभ्यधिके। स. सि. १, ८.

२ शेषाणां पंचेन्द्रियवत्। स. सि. १, ८.

उक्कस्सेण बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-पंचिंदियअपज्जत्तएसु जहाकमेण असीदि-सट्ठिचालीस चदुवीस-अणुबद्धभवेसु बहुसवारपरियट्टणसंभूदअंतोमुहुत्तकालो इच्चेदेहि विसेसाभावा ।

एवं कायमग्गणा समत्ता ।

जोगाणुवादेण पंचमणजोगि-पंचवचिजोगीसु मिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी संजदासंजदा पमत्तसंजदा अप्पमत्तसंजदा सजोगिकेवली केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा[1] ॥१६२॥

कुदो ? मणजोग-वचिजोगेहि परिणमणकालादो तदुवक्कमणकालंतरस्स थोवत्तादो ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं[2] ॥ १६३ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थणिच्छयसमुप्पायणट्ठं मिच्छादिट्ठिआदिगुणट्ठाणाणि अस्सिदूण एगसमयपरूवणा कीरदे । एत्थ ताव जोगपरावत्ति-गुणपरावत्ति-मरण-वाघादेहि मिच्छत्तगुणट्ठाणस्स एगसमओ परूविज्जदे । तं जधा– एक्को सासणो सम्मामिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी संजदासंजदो पमत्तसंजदो वा मणजोगेण

ग्रहण, उत्कृष्ट काल, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकोंमें यथाक्रमसे अस्सी, साठ, चालीस और चौबीस क्षुद्रभवोंमें कई सौ बार परिवर्तनसे उत्पन्न हुआ अन्तर्मुहूर्त-काल होता है, इस प्रकारसे कोई विशेषता नहीं है ।

इस प्रकार कायमार्गणा समाप्त हुई ।

योगमार्गणाके अनुवादसे पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी जीवोंमें मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत, अप्रमत्तसंयत और सयोगि-केवली कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥१६२॥

क्योंकि, मनोयोग और वचनयोगके द्वारा होनेवाले परिणमन कालसे उनके उपक्रमण-कालका अन्तर अल्प पाया जाता है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल एक समय है ॥ १६३ ॥

इस सूत्रके अर्थ-निश्चयके समुत्पादनार्थ मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानोंको आश्रय करके एक समयकी प्ररूपणा की जाती है– उनमेंसे पहले योगपरिवर्तन, गुणस्थानपरिवर्तन मरण और व्याघात, इन चारोंके द्वारा मिथ्यात्वगुणस्थानका एक समय प्ररूपण किया जाता है । वह इस प्रकार है– सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत अथवा प्रमत्तसंयत गुणस्थानवर्ती कोई एक जीव मनोयोगके साथ विद्यमान था ।

१ योगानुवादेन वाङ्मानसयोगिषु मिथ्यादृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्टिसंयतासंयतप्रमत्ताप्रमत्तसयोगकेवलिनां नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । स. सि. १, ८.

२ एकजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः । स. सि. १, ८.

अच्छिदो। एगसमओ मणजोगद्धाए अत्थि त्ति मिच्छत्तं गदो। एगसमयं मणजोगेण सह मिच्छत्तं दिट्ठं। विदियसमए मिच्छादिट्ठी चेव, किंतु वचिजोगी कायजोगी वा जादो। एवं जोगपरावत्तीए पंचविहा एयसमयपरूवणा कदा। कधं समयभेदो? सासणादिगुणट्ठाणपच्छाकदत्तेण। गुणपरावत्तीए एगसमओ वुच्चदे। तं जहा– एक्को मिच्छादिट्ठी वचिजोगेण कायजोगेण वा अच्छिदो। तस्स वचि-कायजोगद्धासु खीणासु मणजोगो आगदो। मणजोगेण सह एगसमये मिच्छत्तं दिट्ठं। विदियसमए वि मणजोगी चेव। किंतु सम्मामिच्छत्तं वा असंजमेण सह सम्मत्तं वा संजमासंजमं वा अपमत्तभावेण संजमं वा पडिवण्णो। एवं गुणपरावत्तीए चउव्विहा एगसमयपरूवणा कदा। कधमेत्थ समयभेदो? पडिवज्जमाणगुणभेएण। पुव्विल्लपंचसु समएसु संपहिलद्धचदुसमए पक्खित्ते णव भंगा होंति (९)। एक्को मिच्छादिट्ठी वचिजोगेण कायजोगेण वा अच्छिदो। तेसिं खएण मणजोगो आगदो। एगसमयं मणजोगेण सह

मनोयोगके कालमें एक समय अवशिष्ट रहने पर वह मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ। वहां पर एक समयमात्र मनोयोगके साथ मिथ्यात्व दिखाई दिया। द्वितीय समयमें भी वह जीव मिथ्यादृष्टि ही रहा, किन्तु मनोयोगसे वह वचनयोगी अथवा काययोगी हो गया। इस प्रकार योगपरिवर्तनके साथ पांच प्रकारसे एक समयकी प्ररूपणा की गई।

शंका– यहां पर एक समयसे दूसरे समयमें भेद कैसे होता है?

समाधान– सासादनादि गुणस्थानोंको पीछे करनेसे अर्थात् सासादनादि गुणस्थानोंके बदलनेसे समयभेद बन जाता है।

अब गुणस्थानपरिवर्तनके द्वारा एक समयकी प्ररूपणा कहते हैं। वह इस प्रकार है– कोई एक मिथ्यादृष्टि जीव वचनयोगसे अथवा काययोगसे विद्यमान था। उनके वचनयोग अथवा काययोगका काल क्षीण होने पर मनोयोग आगया और मनोयोगके साथ एक समयमें मिथ्यात्व दृष्टिगोचर हुआ। पश्चात् द्वितीय समयमें भी वह जीव यद्यपि मनोयोगी ही है, किन्तु सम्यग्मिथ्यात्वको, अथवा असंयमके साथ सम्यक्त्वको अथवा संयमासंयमको, अथवा अप्रमत्तभावके साथ संयमको प्राप्त हुआ। इस प्रकारसे गुणस्थानके परिवर्तनद्वारा चार प्रकारसे एक समयकी प्ररूपणा की गई।

शंका– यहांपर एक समयसे दूसरे समयमें भेद कैसे होता है?

समाधान– आगे प्राप्त होनेवाले गुणस्थानके भेदसे समयमें भेद हो जाता है।

पूर्वोक्त योगपरिवर्तनसम्बन्धी पांच समयोंमें साम्प्रतिक लब्ध गुणस्थानसम्बन्धी चार समयोंको प्रक्षिप्त करने पर नौ (९) भंग हो जाते हैं। कोई एक मिथ्यादृष्टि जीव वचनयोगसे अथवा काययोगसे विद्यमान था। पुनः योगसम्बन्धी कालके क्षय हो जाने पर उसके मनोयोग आ गया। तब एक समय मनोयोगके साथ मिथ्यात्व दिखाई दिया और

मिच्छत्तं दिट्ठं । विदियसमए मदो । जदि तिरिक्खेसु वा मणुसेसु वा उप्पण्णो, तो कम्मइयकायजोगी ओरालियमिस्सकायजोगी वा । अध देव-णेरइएसु जइ उप्पण्णो तो कम्मइयकायजोगी वेउव्वियमिस्सकायजोगी वा जादो । एवं मरणेण लद्धएगभंगे पुव्विल्लणवभंगेसु पक्खित्ते दस भंगा होंति (१०) । वाघादेण एक्को मिच्छादिट्ठी वचिजोगेण कायजोगेण वा अच्छिदो । तेसिं वचि-कायजोगाणं खएण तस्स मणजोगो आगदो । एगसमयं मणजोगेण मिच्छत्तं दिट्ठं । विदियसमए वाघादिदो कायजोगी जादो । लद्धो एगसमओ । एवं पुव्विल्लदसभंगेसु पक्खित्ते एक्कारस भंगा (११) । एत्थ उवउज्जंती[1] गाहा—

गुण-जोगपरावत्ती वाघादो मरणमिदि हु चत्तारि ।
जोगेसु होंति ण वरं पच्छिल्लदुगूणका जोगे ॥ ३९ ॥

एदम्हि गुणट्ठाणे ट्ठिदजीवा इमं गुणट्ठाणं पडिवज्जंति, ण पडिवज्जंति त्ति णादूण गुणपडिवण्णा वि इमं गुणट्ठाणं गच्छंति, ण गच्छंति त्ति चिंतिय असंजद-सम्मादिट्ठिसंजदासंजद-पमत्तसंजदाणं च चउव्विहा एगसमयपरूवणा परूविदव्वा । एवमप्पमत्तसंजदाणं । णवरि वाघादेण विणा तिविधा एगसमयपरूवणा कादव्वा ।

दूसरे समयमें मरा । सो यदि वह तिर्यंचोंमें या मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ तो कार्मणकाययोगी, अथवा औदारिकमिश्रकाययोगी हो गया । अथवा, यदि देव या नारकियोंमें उत्पन्न हुआ तो कार्मणकाययोगी अथवा वैक्रियिकमिश्रकाययोगी हो गया । इस प्रकार मरणसे प्राप्त एक भंगको पूर्वोक्त नौ भंगोंमें प्रक्षिप्त करने पर दश भंग हो जाते हैं (१०) । अब व्याघातसे लब्ध होनेवाले एक भंगकी प्ररूपणा करते हैं— कोई एक मिथ्यादृष्टि जीव वचनयोगसे अथवा काययोगसे विद्यमान था । सो उन वचनयोग अथवा काययोगके क्षय हो जाने पर उसके मनोयोग आ गया । तब एक समय मनोयोगके साथ मिथ्यात्व वृष्ट हुआ और द्वितीय समयमें वह व्याघातको प्राप्त होता हुआ काययोगी हो गया । इस प्रकारसे एक समय लब्ध हुआ । पूर्वोक्त दश भंगोंमें इस एक भंगके प्रक्षिप्त करने पर ग्यारह भंग होते हैं (११) । इस विषयमें उपयुक्त गाथा इस प्रकार है—

गुणस्थानपरिवर्तन, योगपरिवर्तन, व्याघात और मरण, ये चारों बातें योगोंमें अर्थात् तीनों योगोंके होने पर, होती हैं । किन्तु सयोगिकेवलीके पिछले दो, अर्थात् मरण और व्याघात तथा गुणस्थानपरिवर्तन नहीं होते हैं ॥ ३९ ॥

इस विवक्षित गुणस्थानमें विद्यमान जीव इस अविवक्षित गुणस्थानको प्राप्त होते हैं या नहीं, ऐसा जान करके, गुणस्थानोंको प्राप्त जीव भी इस विवक्षित गुणस्थानको जाते हैं, अथवा नहीं, ऐसा चिन्तवन करके असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत और प्रमत्तसंयतोंकी चार प्रकारसे एक समयकी प्ररूपणा करना चाहिए । इसी प्रकारसे अप्रमत्तसंयतोंकी भी प्ररूपणा होती है, किन्तु विशेष बात यह है कि उनके व्याघातके विना तीन प्रकारसे एक समयकी प्ररूपणा करना चाहिए ।

[1] आ-प्रतौ ' उवउज्जंती ' क-प्रतौ ' उववज्जंती ' इति पाठः ।

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

किमट्ठं वाघादो णत्थि ? अप्पमाद-वाघादाणं सहअणवट्ठाणलक्खणविरोहा । सजोगिकेवलिस्स एगसमयपरूवणा कीरदे । तं जधा– एक्को खीणकसाओ मणजोगेण अच्छिदो मणजोगद्धाए एगो समओ अत्थि त्ति सजोगी जादो । एगसमयं मणजोगेण दिट्ठो सजोगिकेवली विदियसमए अवचिजोगी कायजोगी वा जादो । एवं चदुसु मणजोगेसु पंचसु वचिजोगेसु पुव्वुत्तगुणट्ठाणाणं एगसमयपरूवणा कायव्वा ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं[1] ॥ १६४ ॥

तं जधा– मिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी संजदासंजदो पमत्तसंजदो (अप्पमत्तसंजदो) सजोगिकेवली वा अणप्पिदजोगे दिट्ठो अद्धाक्खएण अप्पिदजोगं गदो । तत्थ तप्पाओग्गुक्कस्समंतोमुहुत्तमच्छिय अणप्पिदजोगं गदो ।

सासणसम्मादिट्ठी ओघं[2] ॥ १६५ ॥

शंका–अप्रमत्तसंयतके व्याघात किस लिए नहीं है ?

समाधान– क्योंकि, अप्रमाद और व्याघात, इन दोनोंका सहानवस्थानलक्षण विरोध है ।

अब सयोगिकेवलीके एक समयकी प्ररूपणा की जाती है । वह इस प्रकार है– एक क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ जीव मनोयोगके साथ विद्यमान था । जब मनोयोगके कालमें एक समय अवशिष्ट रहा, तब वह सयोगिकेवली हो गया और एक समय मनोयोगके साथ दृष्टिगोचर हुआ । वह सजोगिकेवली द्वितीय समयमें वचनयोगी अथवा काययोगी हो गया । इस प्रकारसे चारों मनोयोगोंमें और पांचों वचनयोगोंमें पूर्वोक्त गुणस्थानोंकी एक समयसम्बन्धी प्ररूपणा करना चाहिए ।

उक्त पांचों मनोयोगी तथा पांचों वचनयोगी मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत, अप्रमत्तसंयत और सयोगिकेवलीका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १६४ ॥

जैसे– अविवक्षित योगमें विद्यमान मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत, (अप्रमत्तसंयत) और सयोगिकेवली उस योगसम्बन्धी कालके क्षय हो जानेसे विवक्षित योगको प्राप्त हुए । वहां पर तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्तकाल तक रह करके पुनः अविवक्षित योगको चले गये ।

पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी सासादनसम्यग्दृष्टियोंका काल ओघके समान है ॥ १६५ ॥

१ उत्कर्षेणान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

२ सासादनसम्यग्दृष्टेः सामान्योक्तः कालः । स. सि. १, ८.

कुदो ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगो समओ, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो; एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण छ आवलियाओ; इच्चेदेहि पंचमण-वचिजोगसासणाणं ओघसासणेहिंतो भेदाभावा। एत्थ वि जोग-गुणपरावत्ति-मरण-वाघादेहि समयाविरोहेण एगसमयपरूवणा कायव्वा।

सम्मामिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं[1] ॥ १६६ ॥

उदाहरणं- सत्तट्ठ जणा बहुगा वा मिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी संजदा-संजदा पमत्तसंजदा वा अप्पिदमण-वचिजोगेसु ट्ठिदा अप्पिदजोगद्धाए एगसमओ अत्थि त्ति सम्मामिच्छत्तं गदा। एगसमयमप्पिदजोगेण सह दिट्ठा, विदियसमए सव्वे अणप्पिदजोगं गदा। एवं मरणेण विणा जोग-गुणपरावत्ति वाघादेहि एगसमयपरूवणा चिंतिय वत्तव्वा।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो[2] ॥ १६७ ॥

कुदो ? अप्पिदजोगेण सहिदसम्मामिच्छादिट्ठीणं पवाहस्स अविच्छण्णरूवस्स पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागायामस्सुवलंभा।

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय, उत्कर्षसे पल्योपमका असंख्यातवां भाग, एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे छह आवलियां, इस रूपसे पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी सासादनसम्यग्दृष्टियोंके कालका ओघसम्बन्धी सासादनोंके कालसे कोई भेद नहीं है। यहां पर भी योगपरावर्तन, गुणस्थानपरावर्तन, मरण और व्याघातके द्वारा आगमके अविरोधसे एक समयकी प्ररूपणा करना चाहिए।

पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा एक समय होते हैं ॥ १६६ ॥

उदाहरण- विवक्षित मनोयोग अथवा वचनयोगमें स्थित सात आठ जन, अथवा बहुतसे मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत अथवा प्रमत्तसंयत जीव उस विवक्षित योगके कालमें एक समय अवशिष्ट रह जाने पर सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुए और एक समयमात्र विवक्षित योगके साथ दृष्टिगोचर हुए। द्वितीय समयमें सभीके सभी अविवक्षित योगको चले गये इसी प्रकार मरणके विना शेष योगपरावर्तन, गुणस्थानपरावर्तन और व्याघात, इन तीनोंकी अपेक्षा एक समयकी प्ररूपणा चिंतन करके करना चाहिए।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट काल पल्योपमके असंख्यातवें भाग है ॥ १६७ ॥

क्योंकि, विवक्षित योगसे सहित सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका अविच्छिन्नरूप प्रवाह पल्योपमके असंख्यातवें भाग लम्बे काल तक पाया जाता है।

१ सम्यग्मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः। स. सि. १, ८.

२ उत्कर्षेण पल्योपमासंख्येयभागः। स. सि. १, ८.

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं[1] ॥ १६८ ॥

एत्थ वि मरणेण विणा गुण-जोगपरावत्ति-वाघादे अस्सिदूण एगसमयपरूवणा जाणिय वत्तव्वा ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं[2] ॥ १६९ ॥

उदाहरणं– एक्को सम्मामिच्छादिट्ठी अणप्पिदजोगे ट्ठिदो अप्पिदजोगं पडिवण्णो । तत्थ तप्पाओग्गुक्कस्समंतोमुहुत्तमच्छिय अणप्पिदजोगं गदो । लद्धमंतोमुहुत्तं ।

चदुण्हमुवसमा चदुण्हं खवगा केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं[3] ॥ १७० ॥

उवसामगाणं वाघादेण विणा जोग-गुणपरावत्ति-मरणेहि णाणाजीवे अस्सिदूण एगसमयपरूवणा कादव्वा । खवगाणं मरण-वाघादेहि विणा जोग-गुणपरावत्तीओ दो चेव अस्सिदूण एगसमयपरूवणा परूवेदव्वा ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका जघन्य काल एक समय है ॥ १६८ ॥

यहां पर भी मरणके विना गुणस्थानपरावर्तन, योगपरावर्तन और व्याघात, इन तीनोंका आश्रय करके एक समयकी प्ररूपणा जान करके कहना चाहिए ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १६९ ॥

उदाहरण– अविवक्षित योगमें विद्यमान कोई एक सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव विवक्षित योगको प्राप्त हुआ । वहां पर अपने योगके प्रायोग्य उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल तक रह करके अविवक्षित योगको चला गया । इस प्रकारसे एक अन्तर्मुहूर्त काल प्राप्त हो गया ।

पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी चारों उपशामक और क्षपक कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय होते हैं ॥ १७० ॥

उपशामक जीवोंके व्याघातके विना योगपरिवर्तन, गुणस्थानपरिवर्तन और मरणके द्वारा नाना जीवोंका आश्रय करके एक समयकी प्ररूपणा करना चाहिए । क्षपक जीवोंकी मरण और व्याघातके विना योगपरिवर्तन और गुणस्थानपरिवर्तन, इन दोनोंका आश्रय लेकर ही एक समयकी प्ररूपणा कहना चाहिए ।

१ एक जीवं प्रति जघन्येनैकः समयः । स. सि. १, ८.

२ उत्कर्षेणान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

३ चतुर्णामुपशमकानां क्षपकाणां च नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च जघन्येनैकः समयः स. सि. १, ८.

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं[1] ॥ १७१ ॥

तं जधा– चत्तारि उवसामगा चत्तारि खवगा च अणप्पिदजोगे ट्ठिदा अद्धाक्खएण अप्पिदजोगं गदा। तत्थ अंतोमुहुत्तमच्छिय पुणो वि अणप्पिदजोगं पडिवण्णा। लद्धमंतोमुहुत्तं।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ १७२ ॥

एत्थ एगसमयपरूवणा खवगुवसामगाणं दोहि तीहि पयारेहि जाणिय वत्तव्वा।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ १७३ ॥

एत्थ अंतोमुहुत्तपरूवणा जाणिय वत्तव्वा। एत्थ एगसमयवियप्पपरूवणट्ठं गाहा–

एक्कारस छ सत्त य एक्कारस दस य णवय अट्ठेव।
पण पंच पंच तिण्णि य दु दु दु दु एगो य समयगणा ॥ ४१ ॥

११, ६, ७, ११, १०, ९, ८, ५, ५, ५, ३, २, २, २, २, १।

कायजोगीसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा[2] ॥ १७४ ॥

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १७१ ॥

वह इस प्रकार है– अविवक्षित योगमें स्थित चारों उपशामक और क्षपक जीव उस योगके कालक्षयसे विवक्षित योगको प्राप्त हुए। वहां पर अन्तर्मुहूर्त तक रह करके पुनरपि अविवक्षित योगको प्राप्त हो गए। इस प्रकारसे अन्तर्मुहूर्त काल प्राप्त हो गया।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल एक समय है ॥ १७२ ॥

यहां पर एक समयकी प्ररूपणा क्षपकोंके योगपरावर्तन और गुणस्थानपरावर्तनकी अपेक्षा दो प्रकारसे और उपशामकोंकी व्याघातके विना शेष तीन प्रकारोंसे जान करके कहना चाहिए।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १७३ ॥

यहां अन्तर्मुहूर्तकी प्ररूपणा जान करके कहना चाहिए। यहां पर एक समयसम्बन्धी विकल्पोंके प्ररूपणा करनेके लिए यह गाथा है–

मिथ्यादृष्टि गुणस्थानोंमें क्रमशः ग्यारह, छह, सात, ग्यारह, दश, नौ, आठ, पांच, पांच, पांच, तीन, दो, दो, दो, दो और एक, इतने एक समयसम्बन्धी प्ररूपणाके विकल्प होते हैं। ११, ६, ७, ११, १०, ९, ८, ५, ५, ५, ३, २, २, २, २, १ ॥ ४० ॥

काययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ १७४ ॥

१ उत्कर्षेणान्तर्मुहूर्तः। स. सि. १, ८.

२ काययोगिषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। स. सि. १, ८.

कुदो ? सव्वद्धासु कायजोगिमिच्छाविट्ठीणं विरहाभावा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं[1] ॥ १७५ ॥

तं जधा– एगो सासणसम्माविट्ठी सम्मामिच्छाविट्ठी असंजदसम्माविट्ठी संजदासंजदो पमत्तसंजदो वा कायजोगद्धाए अच्छिदो । तिस्से एगसमयावसेसे मिच्छाविट्ठी जादो । कायजोगेण एगसमयं मिच्छत्तं विट्ठं । विदियसमए अण्णजोगं गदो । अधवा मणवचिजोगेसु अच्छिदस्स मिच्छाविट्ठिस्स तेसिमद्धाक्खएण कायजोगो आगदो । एगसमयं कायजोगेण सह मिच्छत्तं विट्ठं । विदियसमए सम्मामिच्छत्तं वा असंजमेण सह सम्मत्तं वा संजमासंजमं अप्पमत्तभावेण संजमं वा पडिवण्णो । लद्धो एगसमओ । एत्थ मरण-वाघादेहि एगसमओ[2] णत्थि । कुदो ? मुदे वाघादिदे वि कायजोगं मोत्तूण अण्णजोगाभावा ।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं[3] ॥ १७६ ॥

तं जधा– एगो मिच्छाविट्ठी मण-वचिजोगेसु अच्छिदो अद्धाखएण कायजोगी

क्योंकि, सभी कालोंमें काययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंके विरहका अभाव है ।

एक जीवकी अपेक्षा काययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंका जघन्य काल एक समय है ॥ १७५ ॥

जैसे– एक सासादनसम्यग्दृष्टि, अथवा सम्यग्मिथ्यादृष्टि, अथवा असंयतसम्यग्दृष्टि, अथवा संयतासंयत, अथवा प्रमत्तसंयत जीव काययोगके कालमें विद्यमान था । उस योगके कालमें एक समय अवशेष रहने पर वह मिथ्यादृष्टि हो गया । तब काययोगके साथ एक समय मिथ्यात्व दृष्टिगोचर हुआ । पुनः द्वितीय समयमें वह अन्य योगको चला गया । अथवा मनोयोग और वचनयोगमें विद्यमान मिथ्यादृष्टि जीवके उन योगोंके कालक्षयसे काययोग आ गया । तब एक समय काययोगके साथ मिथ्यात्व दृष्टिगोचर हुआ । पुनः द्वितीय समयमें सम्यग्मिथ्यात्वको, अथवा असंयमके साथ सम्यक्त्वको, अथवा संयमासंयमको, अथवा अप्रमत्तभावके साथ संयमको प्राप्त हुआ । इस प्रकार एक समय लब्ध हो गया । यहां पर मरण अथवा व्याघातकी अपेक्षा एक समय नहीं है, क्योंकि, मरण होने पर अथवा व्याघात होने पर भी काययोगको छोड़कर अन्य योगका अभाव है ।

एक जीवकी अपेक्षा काययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट काल अनन्तकालात्मक असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन है ॥ १७६ ॥

जैसे– मनोयोग अथवा वचनयोगमें विद्यमान एक मिथ्यादृष्टि जीव, उस योगके

---

१ एक जीवं प्रति जघन्येनैकः समयः । स. सि. १, ८.

२ प्रतिषु ' सगसमओ ' इति पाठः ।

३ उत्कर्षेणानन्तः कालोऽसंख्येयाः पुद्गलपरिवर्ताः । स. सि. १, ८.

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

जावो, सव्वुक्कस्समंतोमुहुत्तमच्छिदूण एइंदिएसु उप्पण्णो। तत्थ अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं कायजोगेण सह परियट्टिदूण आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तपोग्गलपरियट्टेसुप्पण्णेसु तसेसु आगंतूण सव्वुक्कस्समंतोमुहुत्तमच्छिय वचिजोगी जादो। लद्धो कायजोगस्स उक्कस्सकालो।

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति मणजोगिभंगो ॥ १७७ ॥

एवं सुत्तं सुगमं, मणजोगे णिरुद्धे पवंचेण परूविदत्तादो। णवरि मरणवाघादा सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीणं णत्थि। सासणसम्मादिट्ठि-संजदासंजद-पमत्तसंजदाणं वाघादेण एगसमओ णत्थि, मरणेण पुण अत्थि।

ओरालियकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ १७८ ॥

कुदो ? ओरालियकायजोगिमिच्छादिट्ठिसंताणस्स सव्वद्धासु वोच्छेदाभावा।

कालक्षय हो जानेसे काययोगी हो गया। वहां पर सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्तकाल तक रह करके एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ। वहां पर अनन्तकालप्रमाण असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन काययोगके साथ परिवर्तन करके आवलीके असंख्यातवें भागमात्र पुद्गलपरिवर्तनोंके शेष रहने पर त्रसजीवोंमें आकर और सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल रह करके वचनयोगी हो गया। इस प्रकारसे काययोगका उत्कृष्ट काल प्राप्त हुआ।

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक काययोगियोंका काल मनोयोगियोंके कालके समान है ॥ १७७ ॥

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि, मनोयोगके निरुद्ध करनेपर पहले प्रपंचसे (विस्तारसे) प्ररूपण किया जा चुका है। विशेष बात यह है कि काययोगी सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टियोंके मरण और व्याघात नहीं होते हैं। तथा काययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत और प्रमत्तसंयतोंके व्याघातकी अपेक्षा एक समय नहीं होता है, किन्तु मरणकी अपेक्षा एक समय होता है।

औदारिककाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ १७८ ॥

क्योंकि, औदारिककाययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंकी परम्पराके सभी कालोंमें विच्छेदका अभाव है।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ १७९ ॥

एत्थ मरण-गुण-जोगपरावत्तीहि एगसमयो परूवेदव्वो। वाघादेण एगसमओ ण लब्भदि, तस्स कायजोगाविणाभावित्तादो।

उक्कस्सेण बावीसं वाससहस्साणि देसूणाणि ॥ १८० ॥

तंजहा अ- एगो तिरिक्खो मणुस्सो देवो वा बावीससहस्सावासाउट्ठिदिएसु एइंदिएसु उववण्णो। सव्वजहण्णेण अंतोमुहुत्तकालेण पज्जत्तो गदो। ओरालिय-अपज्जत्तकालेणूणबावीसवाससहस्साणि ओरालियकायजोगेण अच्छिय अण्णजोगं गदो। एवं देसूणबावीसवाससहस्साणि जादाणि अधवा देवो ण उप्पादेदव्वो, तस्स जहण्णअपज्जत्तकालाणुवलंभा।

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति मणजोगि-भंगो ॥ १८१ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो सुगमो, पुव्वं परूविदत्तादो। णवरि वाघादेण एत्थ एगसमयपरूवणा ण परूवेदव्वा।

एक जीवकी अपेक्षा औदारिककाययोगी मिथ्यादृष्टियोंका जघन्य काल एक समय है ॥ १७९ ॥

यहां पर मरण, गुणस्थानपरावर्तन और योगपरावर्तनकी अपेक्षा एक समयकी प्ररूपणा करनी चाहिए। किन्तु यहां पर व्याघातकी अपेक्षा एक समय नहीं पाया जाता है, क्योंकि, वह काययोगका अविनाभावी है।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल कुछ कम बाईस हजार वर्ष है ॥ १८० ॥

जैसे- एक तिर्यंच, मनुष्य अथवा देव बाईस हजार वर्षकी आयुस्थितिवाले एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ। सर्वजघन्य अन्तर्मुहूर्तकालसे पर्याप्तपनेको प्राप्त हुआ। पुनः इस औदारिकशरीरके अपर्याप्तकालसे कम बाईस हजार वर्ष औदारिककाययोगके साथ रह करके पुनः अन्य योगको प्राप्त हुआ। इस प्रकारसे कुछ कम बाईस हजार वर्ष हो जाते हैं। अथवा, यहां पर देव नहीं उत्पन्न कराना चाहिए, क्योंकि, देवोंसे आकर एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होनेवाले जीवके जघन्य अपर्याप्तकाल नहीं पाया जाता है।

सासादनसम्यग्दृष्टिसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक औदारिककाय-योगियोंका काल मनोयोगियोंके कालके समान है ॥ १८१ ॥

इस सूत्रका अर्थ सुगम है, क्योंकि, पूर्वमें कहा जा चुका है। विशेष बात यह है कि यहां पर व्याघातकी अपेक्षा एक समयकी प्ररूपणा नहीं करनी चाहिए।

ओरालियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ १८२ ॥

कुदो ? ओरालियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठिसंताणवोच्छेदस्स सव्वद्धासु अभावा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं तिसमऊणं ॥ १८३ ॥

तं जहा– एगो एइंदिओ सुहुमवाउकाइएसु अधोलोगंते ट्ठिएसु खुद्दाभवग्गहणाउट्ठिदिएसु तिण्णि विग्गहे काऊण उववण्णो । तत्थ तिसमऊणखुद्दाभवग्गहणमपज्जत्तो होदूण जीविय मदो, विग्गहं कादूण कम्मइयकायजोगी जादो । एवं तिसमऊणखुद्दाभवग्गहणमोरालियमिस्सजहण्णकालो जादो ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ १८४ ॥

तं जधा– अपज्जत्तएसु उववज्जिय संखेज्जाणि भवग्गहणाणि तत्थ परियट्टिय पुणो पज्जत्तएसु उववज्जिय ओरालियकायजोगी जादो । एवाओ संखेज्जभवग्गहणद्धाओ मिलिदाओ वि मुहुत्तस्संतो चेव होंति ।

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ १८२ ॥

क्योंकि, औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टियोंकी परम्पराके विच्छेदका सर्वकालोंमें अभाव है ।

एक जीवकी अपेक्षा औदारिकमिश्रकाययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंका जघन्य काल तीन समय कम क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है ॥ १८३ ॥

जैसे– एकेन्द्रिय जीव अधोलोकके अन्तमें स्थित और क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण आयुस्थितिवाले सूक्ष्मवायुकायिकोंमें तीन विग्रह करके उत्पन्न हुआ । वहां पर तीन समय कम क्षुद्रभवग्रहणकाल तक लब्ध्यपर्याप्त हो, जीवित रह कर मरा । पुनः विग्रह करके कार्मणकाययोगी हो गया । इस प्रकारसे तीन समय कम क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण औदारिकमिश्रकाययोगका जघन्य काल सिद्ध हुआ ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १८४ ॥

जैसे– कोई एक जीव लब्ध्यपर्याप्तकोंमें उत्पन्न होकर संख्यात भवग्रहणप्रमाण जन्ममें परिवर्तन करके पुनः पर्याप्तकोंमें उत्पन्न होकर औदारिककाययोगी हो गया । इन सब संख्यात भवोंके ग्रहण करनेका काल मिल करके भी मुहूर्तके अन्तर्गत ही रहता है, अधिक नहीं होता है ।

सासणसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ १८५ ॥

तं जधा– सत्तट्ठ जणा बहुधा वा सासणा सगद्धाए एगसमओ अत्थि त्ति ओरालियमिस्सकायजोगिणो जादा । एगसमयमच्छिदूण विदियसमए मिच्छत्तं गदा । लद्धो ओरालियमिस्सेण सासणाणमेगसमओ ।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १८६ ॥

तं जधा– सत्तट्ठ जणा बहुधा वा सासणा ओरालियमिस्सकायजोगिणो जादा । सासणगुणेण अंतोमुहुत्तमच्छिय ते मिच्छत्तं गदा । तस्समए चेव अण्णे सासणा ओरालियमिस्सकायजोगिणो जादा । एवमेक्क-दो-तिण्णि आदिं कादूण जाव उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तवारं सासणा ओरालियमिस्सकायजोगं पडिवज्जावेदव्वा । तदो णियमा अंतरं होदि । एवमेस कालो मेलाविदो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो होदि ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ ॥ १८७ ॥

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

औदारिकमिश्रकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय होते हैं ॥ १८५ ॥

जैसे– सात आठ जन, अथवा बहुतसे सासादनसम्यग्दृष्टि जीव, अपने योगके कालमें एक समय अवशेष रहने पर औदारिकमिश्रकाययोगी हो गये । उसमें एक समय रह करके द्वितीय समयमें मिथ्यात्वको प्राप्त हुए । इस प्रकारसे औदारिकमिश्रकाययोगके साथ सासादनसम्यग्दृष्टियोंका एक समय लब्ध हुआ ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है ॥ १८६ ॥

जैसे– सात आठ जन, अथवा बहुतसे सासादनसम्यग्दृष्टि जीव औदारिकमिश्रकाय-योगी हुए । सासादनगुणस्थानके साथ अन्तर्मुहूर्त काल रह करके पीछे वे मिथ्यात्वको प्राप्त हुए । उसी समयमें ही अन्य दूसरे सासादनसम्यग्दृष्टि जीव औदारिकमिश्रकाययोगी हुए । इस प्रकारसे एक, दो, तीनको आदि करके उत्कर्षसे पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र बार सासादनसम्यग्दृष्टि जीव औदारिकमिश्रकाययोगको प्राप्त कराना चाहिए । इसके पश्चात् नियमसे अन्तर हो जाते हैं । इस प्रकारसे यह सब मिलाया गया काल पल्योपमके असंख्यातवें भाग मात्र होता है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल एक समय है ॥ १८७ ॥

तं जधा- एक्को सासणो सगद्धाए एगसमओ अत्थि त्ति ओरालियमिस्स-कायजोगी जादो। विदियसमए मिच्छत्तं गदो। लद्धो एगसमओ।

उक्कस्सेण छ आवलियाओ समऊणाओ ॥ १८८ ॥

तं जधा- देवो वा णेरइओ वा उवसमसम्मादिट्ठी उवसमसम्मत्तद्धाए छ आवलियाओ अत्थि त्ति सासणं गदो। एगसमयमच्छिय कालं करिय तिरिक्ख-मणुस्सेसु उजुगदीए उववज्जिय ओरालियमिस्सकायजोगी जादो। समऊण-छ-आवलियाओ अच्छिय मिच्छत्तं गदो।

असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १८९ ॥

तं जधा- सत्तट्ठ जणा बहुगा वा असंजदसम्मादिट्ठिणो णेरइया ओरालिय-मिस्सकायजोगिणो जादा। सव्वलहुं पज्जत्तिं गदा, बहुसागरोवमाणि पुव्वं दुक्खेण सह ट्ठिदत्तादो।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ १९० ॥

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

जैसे- एक सासादनसम्यग्दृष्टि जीव अपने कालमें एक समय अवशिष्ट रहने पर औदारिकमिश्रकाययोगी हो गया और द्वितीय समयमें मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ। इस प्रकार एक समय प्राप्त हो गया।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल समय कम छह आवलीप्रमाण है ॥ १८८ ॥

जैसे- कोई एक देव अथवा नारकी उपशमसम्यग्दृष्टि जीव, उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवली कालके शेष रहने पर सासादनगुणस्थानको प्राप्त हुआ। वहां पर एक समय रह करके मरण कर तिर्यंच और मनुष्योंमें ऋजुगतिसे उत्पन्न होकर औदारिकमिश्र-काययोगी हो गया। वहां पर एक समय कम छह आवली तक रह करके मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ।

औदारिकमिश्रकाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त काल तक होते हैं ॥ १८९ ॥

जैसे- सात आठ जन, अथवा बहुतसे असंयतसम्यग्दृष्टि नारकी जीव औदारिकमिश्र-काययोगी हुए। और बहुतसे सागरोपम काल तक पहले दुःखोंके साथ रहे हुए होनेसे सर्वलघु कालसे पर्याप्तियोंको प्राप्त हुए।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १९० ॥

तं जधा– देव-णेरइया मणुस्सा सत्तट्ठ जणा बहुआ वा सम्मादिट्ठिणो ओरालियमिस्सकायजोगिणो जादा। ते पज्जत्तिं गदा। तस्समए चेव अण्णे असंजदसम्मादिट्ठि ो ओरालियमिस्सकायजोगिणो जादा। एवमेक्क-दो-तिण्णि जाव-उक्कस्सेण संखेज्जवारा त्ति। एदाहि संखेज्जसलागाहि एगमपज्जत्तद्धं गुणिदे एगमुहुत्तस्स अंतो चेव जेण होदि, तेण अंतोमुहुत्तमिदि वुत्तं।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १९१ ॥

तं जधा– एक्को सम्मादिट्ठी बावीस सागरोवमाणि दुक्खेक्करसो होदूण जीविदो। छट्ठीदो पुढवीदो उवट्टिय मणुस्सेसु उप्पण्णो। विग्गहगदीए तस्स सम्मत्तमाहप्पेण उवज्जिदपुण्णपोग्गलस्स ओरालियणामकम्मोदएण सुअंध-सुरस-सुवण्ण-सुहफासपरमाणुपोग्गलबहुला आगच्छंति[1], तस्स जोगबहुत्तदंसणादो। एदस्स जहण्णियओरालियमिस्सकायजोगस्स अद्धा होदि।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ १९२ ॥

जैसे– देव, नारकी, अथवा मनुष्य सात आठ जन, अथवा बहुतसे सम्यग्दृष्टि जीव, औदारिकमिश्रकाययोगी हुए। वे सब पर्याप्तपनेको प्राप्त हुए। उसी समयमें ही अन्य असंयतसम्यग्दृष्टि जीव औदारिकमिश्रकाययोगी हुए। इस प्रकार एक, दो, तीन इत्यादि क्रमसे उत्कृष्ट संख्यातवार तक अन्य अन्य असंयतसम्यग्दृष्टि जीव मिश्रकाययोगी होते गये। इन संख्यात शलाकाओंसे एक अपर्याप्तकालको गुणित करने पर वह सब काल चूंकि एक मुहूर्तके अन्तर्गत ही होता है, इसलिए सूत्रकारने अन्तर्मुहूर्त काल कहा है।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १९१ ॥

जैसे– छठी पृथिवीका कोई एक सम्यग्दृष्टि नारकी बाईस सागर तक दुखोंसे एक रस अर्थात् अत्यन्त पीड़ित होकर जीता रहा। पुनः छठी पृथिवीसे निकलकर मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ। विग्रहगतिमें, सम्यक्त्वके माहात्म्यसे उदयमें आये हैं पुण्यप्रकृतिके पुद्गलपरमाणु जिसके ऐसे उस जीवके औदारिकनामकर्मके उदयसे सुगन्धित, सुरस, सुवर्ण और शुभ स्पर्शवाले पुद्गलपरमाणु बहुलतासे आते हैं, क्योंकि, उस समय उसके योगकी बहुलता देखी जाती है। ऐसे जीवके औदारिकमिश्रकाययोगका जघन्य काल होता है।

एक जीवकी अपेक्षा औदारिकमिश्रकाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टियोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १९२ ॥

१ आ प्रतौ 'बहु आगच्छंति' इति पाठः।

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

एदं कस्स होदि ? सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवस्स तेत्तीस सागरोवमाणि सुहुलालियस्स पमुट्ठदुक्खस्स माणुसगब्भे मूह-मुत्त-पित्त-खरिस-वस-सेंभलोहि-सुक्कापूरिदे अइदुग्गंधे दूरसे दुव्वण्णे दुप्फासे चम्मारकुंडोपमे उप्पण्णस्स, तत्थ मंदो जोगो होदि त्ति आइरियपरंपरागदुवदेसा। मंदजोगेण थोवे पोग्गले गेण्हंतस्स ओरालिय मिस्सद्धा दोहा होदि त्ति उत्तं होदि। अथवा जोगो एत्थ महल्लो चेव होदु, जोगवसेण बहुआ पोग्गला आगच्छंतु, तो वि एदस्स दोहा अपज्जत्तद्धा होदि, विलिसाए दूसियस्स लहुं पज्जत्तिसमाणणे[1] असामत्थियादो।

सजोगिकेवली केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ १९३ ॥

एसो एगसमओ कस्स होदि। सत्तट्ठजणाणं दंडादो कवाडं गंतूण तत्थ एगसमय-मच्छिय रुजगं गदाणं, रुजगादो कवाडं गंतूण एगसमयमच्छिय दंडं गदकेवलीणं वा।

शंका– यह उत्कृष्ट काल किस जीवके होता है ?

समाधान– तेतीस सागरोपमकाल तक सुखसे लालित पालित हुए तथा दुःखोंसे रहित सर्वार्थसिद्धिविमानवासी देवके विष्टा, मूत्र, आलडी, पित्त, खरिस (कफ) चर्बी, नासिकामल, लोहू और शुक्र व्याप्त, अति दुर्गन्धित, कुत्सितरस, दुर्वर्ण और दुष्ट स्पर्शवाले चमारके कुंडके सदृश मनुष्यके गर्भमें उत्पन्न होनेपर औदारिकमिश्रकाययोगका उत्कृष्ट काल होता है, क्योंकि, उसके विग्रहगतिमें तथा उसके पश्चात् भी मंदयोग होता है, इस प्रकारका आचार्यपरम्परागत उपदेश है। मंदयोगसे अल्प पुद्गलोंको ग्रहण करनेवाले जीवके औदारिक-मिश्रकाययोगका काल दीर्घ होता है, यह अर्थ कहा गया है। अथवा, यहां पर चाहे योगकाल बड़ा ही रहा आवे, और योगके वशसे पुद्गल भी बहुतसे आते रहें, तो भी उक्त प्रकारके जीवके अपर्याप्तकाल बड़ा ही होता है, क्योंकि, विलाससे दूषित जीवके शीघ्रतापूर्वक पर्याप्तियोंके सम्पूर्ण करनेमें असामर्थ्य है।

औदारिकमिश्रकाययोगी सयोगिकेवली कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय होते हैं ॥ १९३ ॥

शंका– यह एक समय किसके होता है ?

समाधान– दंडसमुद्घातसे कपाटसमुद्घातको प्राप्त होकर और वहां एक समय रह कर प्रतरसमुद्घातको प्राप्त हुए सात आठ केवलियोंके यह एक समय होता है। अथवा, रुचक-समुद्घातसे कपाटसमुद्घातको प्राप्त होकर और एक समय रह करके दंडसमुद्घातको प्राप्त होनेवाले केवलियोंके यह एक समय होता है।

---

१ आ प्रतौ 'पज्जत्ति समाणो' इति पाठः।

उक्कस्सेण संखेज्जसमयं ॥ १९४ ॥

एदे संखेज्जसमया कम्हि होंति ? कवाडे चडण-ओयरणकिरियावावदबंड-पदरपज्जायपरिणदसंखेज्जकेवलीहि संखेज्जसमयपंतीए ट्ठिदेहि अधिउस्सेहि ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण एगसमओ ॥ १९५ ॥

एसो कम्हि होदि ? कवाडगदकेवलिम्हि चडणोदरणकिरियावावदबंड-पदर-पज्जयपरिणदकेवलीहिंतो आगदम्हि । बहुआ समया किण्ण होंति ? ण, कवाडम्हि एगसमयं मोत्तूण बहुसमयमच्छणाभावा । कुदो एक्कस्सेव जहण्णुक्कस्सववएसो ? ण एस दोसो, कणिट्ठो वि जेट्ठो वि एसो चेव मम पुत्तो त्ति लोगे ववहारुवलंभा ।

औदारिकमिश्रकाययोगी सयोगिकेवली जिनोंका उत्कृष्ट काल संख्यात समय है ॥ १९४ ॥

शंका– ये संख्यात समय किसमें होते हैं ?

समाधान– कपाटसमुद्घातकी आरोहण और अवतरणरूप क्रियामें लगे हुए क्रमशः दंडसमुद्घात और प्रतरसमुद्घातरूप पर्यायसे परिणत संख्यात समयोंकी पंक्तिमें स्थित, ऐसे संख्यात केवलियोंके द्वारा अधिकृत अवस्थामें उक्त संख्यात समय पाये जाते हैं ।

एक जीवकी अपेक्षा औदारिकमिश्रकाययोगी सयोगिकेवली जिनोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है ॥ १९५ ॥

शंका– यह एक समय कहां पर होता है ?

समाधान– आरोहण और अवतरणरूप क्रियामें व्यापृत, ऐसे दंडसमुद्घात और प्रतरसमुद्घातरूप पर्यायसे क्रमशः परिणत हो उक्त समुद्घात केवली अवस्थासे आये हुए कपाटसमुद्घातगत केवलीके यह एक समय पाया जाता है ।

शंका– उक्त प्रकारके जीवोंके बहुत समय क्यों नहीं पाये जाते हैं ?

समाधान– नहीं, क्योंकि, कपाटसमुद्घातमें एक समयको छोड़कर बहुत समय तक रहनेका अभाव है ।

शंका– तो फिर एक ही समयके जघन्य और उत्कृष्टका व्यपदेश कैसे किया ?

समाधान– यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, कनिष्ठ भी और ज्येष्ठ भी 'यही हमारा पुत्र है' इस प्रकारका लोकमें व्यवहार पाया जाता है, इसलिए एकमें भी जघन्य और उत्कृष्टका व्यपदेश हो सकता है ।

वेउव्वियकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ १९६ ॥

कुदो ? सव्वद्धासु वेउव्वियकायजोगिमिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठिसंताणवोच्छेदाभावा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ ॥ १९७ ॥

तं जधा- एगो मिच्छादिट्ठी मण-वचिजोगेसु अच्छिदो अद्धाखएण वेउव्वियकायजोगी जादो । एगसमयं वेउव्वियकायजोगेण दिट्ठो । विदियसमए मदो अण्णजोगं गदो । मरणेण विणा सम्मामिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी वा जादो । अथवा सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी वा वेउव्वियकायजोगद्धाए एगो समओ अत्थि त्ति मिच्छादिट्ठी जादो । विदियसमए अण्णजोगं गदो । वाघादेण एगसमओ णत्थि, णिरुद्धकायजोगादो । एवमसंजदसम्मादिट्ठिस्स वि एगसमयपरूवणा तीहि पयारेहि कायव्वा ।

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ १९८ ॥

वैक्रियिककाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ १९६ ॥

क्योंकि, सभी कालोंमें वैक्रियिककाययोगवाले मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंकी परम्पराके विच्छेदका अभाव है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल एक समय है ॥ १९७ ॥

जैसे– कोई एक मिथ्यादृष्टि जीव, मनोयोग अथवा वचनयोगमें विद्यमान था । वह उस योगके कालके क्षय हो जानेसे वैक्रियिककाययोगी हो गया । तब वह एक समय वैक्रियिककाययोगके साथ दृष्टिगोचर हुआ । द्वितीय समयमें मरा और अन्य योगको प्राप्त हो गया । अथवा, मरणके विना सम्यग्मिथ्यादृष्टि या असंयतसम्यग्दृष्टि हो गया । अथवा सासादनसम्यग्दृष्टि या सम्यग्मिथ्यादृष्टि या असंयतसम्यग्दृष्टि कोई जीव, वैक्रियिककाययोगके कालमें एक समय अवशेष रहने पर, मिथ्यादृष्टि हो गया और द्वितीय समयमें अन्य योगको प्राप्त हुआ । इस प्रकारसे एक समय लब्ध होता है । यहां पर व्याघातकी अपेक्षा एक समय नहीं पाया जाता है, क्योंकि, काययोगकी अपेक्षा कथन हो रहा है । (व्याघात तो मन या वचनयोगमें पाया जाता है ।) इसी प्रकार असंयतसम्यग्दृष्टि जीवके भी एक समयकी प्ररूपणा तीन प्रकारसे करना चाहिए ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १९८ ॥

तं जधा– मिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठिणो देवा णेरइया वा मण-वचिजोगेसु ट्ठिदा कायजोगिणो जादा। सव्वुक्कस्समंतोमुहुत्तमच्छिय अण्णजोगिणो जादा। लद्धमंतोमुहुत्तं।

सासणसम्मादिट्ठी ओघं ॥ १९९ ॥

णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण छ आवलियाओ, एच्चेदेहि ओघसासणादो भेदाभावा।

सम्मामिच्छादिट्ठीणं मणजोगिभंगो ॥ २०० ॥

णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एयसमओ, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगो समओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तमिच्चेएण मणजोगिसम्मामिच्छादिट्ठीहिंतो वेउव्वियकायजोगिसम्मामिच्छादिट्ठीणं विसेसाभावा।

वेउव्वियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २०१ ॥

आचार्य श्री शुभचन्द्रसागर जी महाराज

जैसे– मनोयोग या वचनयोगमें स्थित मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि कोई देव अथवा नारकी जीव वैक्रियिककाययोगी हुए और उसमें सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल रह करके अन्य योगवाले हो गये। इस प्रकारसे उत्कृष्ट कालरूप अन्तर्मुहूर्त प्राप्त हो गया।

वैक्रियिककाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका काल ओघके समान है ॥ १९९ ॥

नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय, उत्कर्षसे पल्योपमका असंख्यातवां भाग, तथा एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे छह आवली, इस रूपसे ओघवर्णित सासादनगुणस्थानके कालसे इसमें कोई भेद नहीं है।

वैक्रियिककाययोगी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका काल मनोयोगियोंके समान है ॥ २०० ॥

नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय, तथा उत्कृष्ट काल पल्योपमका असंख्यातवां भाग है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे अन्तर्मुहूर्त है। इस प्रकारसे मनोयोगी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंसे वैक्रियिककाययोगी सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंके कालमें कोई विशेषता नहीं है।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त काल तक होते हैं ॥ २०१ ॥

एत्थ ताव मिच्छादिट्ठिस्स जहण्णकालो वुच्चदे– सत्तट्ठ जणा बहुआ वा दव्वलिंगिणो उवरिमगेवेज्जेसु उववण्णा सव्वलहुमंतोमुहुत्तेण पज्जत्ति गदा। संपहि सम्मादिट्ठीणं वुच्चदे– संखेज्जा संजदा[1] सव्वट्ठदेवेसु दो विग्गहं कादूण उववण्णा सव्वलहुमंतोमुहुत्तेण पज्जत्ति गदा। किमट्ठं दो विग्गहे कराविदा ? बहुपोग्गल-गहणट्ठं। तं पि किमट्ठं ? थोवकालेण पज्जत्तिसमाणट्ठं। मिच्छादिट्ठी वो विग्गहे किण्ण कराविदो ? ण, तत्थ वि पडिसेहाभावा।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २०२ ॥

सत्तट्ठ जणा उक्कस्सेण असंखेज्जसेढिमेत्ता वा मिच्छादिट्ठिणो देव-णेरइएसु उववज्जिय वेउव्वियमिस्सकायजोगिणो जादा, अंतोमुहुत्तेण पज्जत्ति गदा। तस्समए चेव अण्णे मिच्छादिट्ठिणो वेउव्वियमिस्सकायजोगिणो जादा। एवमेक्क-दो-तिण्णि उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ताओ सलागाओ[2] लब्भंति। एवाहि

यहां पर पहले मिथ्यादृष्टिका जघन्य काल कहते हैं– सात आठ जन, अथवा बहुतसे द्रव्यलिंगी जीव उपरिम ग्रैवेयकोंमें उत्पन्न हुए और सर्वलघु अन्तर्मुहूर्तकालसे पर्याप्तकपनेको प्राप्त हुए। अब सम्यग्दृष्टिका जघन्य काल कहते हैं– संख्यात संयत दो विग्रह करके सर्वार्थसिद्धिविमानवासी देवोंमें उत्पन्न हुए और सबसे अल्प अन्तर्मुहूर्त कालसे पर्याप्तियोंकी पूर्णताको प्राप्त हुए।

शंका– दो विग्रह किस लिए कराये गये हैं ?

समाधान– बहुतसी पुद्गलवर्गणाओंके ग्रहण करानेके लिए दो विग्रह कराये गये हैं।

शंका–बहुतसे पुद्गलोंका ग्रहण भी किसलिए कराया गया ?

समाधान– अल्पकालके द्वारा पर्याप्तियोंके सम्पन्न करनेके लिए बहुतसे पुद्गलोंका ग्रहण कराया जाता है।

शंका– मिथ्यादृष्टि जीवके दो विग्रह क्यों नहीं कराये गये ?

समाधान– नहीं, क्योंकि, उनमें भी प्रतिषेधका अभाव है, अर्थात् मिथ्यादृष्टि जीव भी दो विग्रह कर सकते हैं।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट काल पल्योपमके असंख्यातवें भाग है ॥ २०२ ॥

सात आठ जन, अथवा उत्कर्षसे असंख्यातश्रेणिमात्र मिथ्यादृष्टि जीव देव, अथवा नारकियोंमें उत्पन्न होकर वैक्रियिकमिश्रकाययोगी हुए, और अन्तर्मुहूर्तसे पर्याप्तियोंकी पूर्णताको प्राप्त हुए। उसी समयमें ही अन्य मिथ्यादृष्टि जीव वैक्रियिकमिश्रकाययोगी हुए। इस प्रकारसे एक, दो, तीनको आदि लेकर पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र

१ अ-आ-क प्रतिषु ' संखेज्जासंखेज्जा संजदा '; म २ प्रतौ तु स्वीकृतः पाठः।

२ अ-आ-क प्रतिषु ' सलागाओ ' इति पाठो नास्ति। म २ प्रतौ तु अस्ति।

वेउव्वियमिस्सद्धं गुणिदे पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तो वेउव्वियमिस्सकालो होदि । असंजदसम्मादिट्ठीणं पि एवं चेव वत्तव्वं । णवरि एदे एगसमएण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तो उवक्कस्सेण उप्पज्जंति, रासीदो वेउव्वियमिस्सकालो असंखेज्जगुणो । तं कधं णव्वदे ? आइरियपरंपरागदूवदेसादो । देवलोए उप्पज्जमाणसम्मादिट्ठीहिंतो देव-णेरइएसु उप्पज्जमाणमिच्छादिट्ठी असंखेज्जसेढिगुणिदमेत्ता होंति त्ति कालो वि तावदिगुणो किण्ण होदि त्ति वुत्ते, ण होदि, उहयत्थ वेउव्वियमिस्सद्धासलागाणं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तुवदेसा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २०३ ॥

तं जधा– एक्को दव्वलिंगी उवरिमगेवेज्जेसु दो विग्गहे कादूण उववण्णो, सव्वलहुमंतोमुहुत्तेण पज्जत्तिं गदो । सम्मादिट्ठीणं एक्को संजदो सव्वट्ठदेवेसु दो विग्गहे कादूण उववण्णो, सव्वलहुमंतोमुहुत्तेण पज्जत्तिं गदो ।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंकी शलाकाएं पाई जाती हैं । इनसे वैक्रियिकमिश्रकाय योगके कालको गुणा करने पर पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण वैक्रियिकमिश्रकाययोगका काल होता है । असंयतसम्यग्दृष्टियोंका भी काल इसी प्रकारसे कहना चाहिए । विशेष बात यह है कि ये असंयतसम्यग्दृष्टि जीव एक समयमें पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र उत्कृष्टरूपसे उत्पन्न होते हैं, क्योंकि, इस उत्पन्न होनेवाली राशिसे वैक्रियिकमिश्रकाययोगका काल असंख्यातगुणा है ।

शंका– यह कैसे जाना ?

समाधान– आचार्यपरम्परागत उपदेशसे जाना जाता है कि एक समयमें उत्पन्न होनेवाली असंयतसम्यग्दृष्टिराशिसे उक्त काल असंख्यातगुणा है ।

शंका– देवलोकमें उत्पन्न होनेवाले सम्यग्दृष्टियोंसे देव या नारकियोंमें उत्पन्न होनेवाले मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यात श्रेणियोंसे गुणितप्रमाण होते हैं; इसलिए वैक्रियिकमिश्रका काल भी असंख्यात श्रेणिगुणित क्यों नहीं होता है ।

समाधान– ऐसी आशंका पर उत्तर देते हैं कि नहीं होता है, क्योंकि, दोनों ही स्थानों पर, अर्थात् मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें वैक्रियिकमिश्रकालकी शलाकाओंके पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र होनेका उपदेश है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २०३ ॥

एक द्रव्यलिंगी साधु उपरिम ग्रैवेयकोंमें दो विग्रह करके उत्पन्न हुआ और सर्वलघु अन्तर्मुहूर्तके द्वारा पर्याप्तपनेको प्राप्त हुआ । एक सम्यग्दृष्टि भावलिंगी संयत सर्वार्थसिद्धिविमानवासी देवोंमें दो विग्रह करके उत्पन्न हुआ और सर्वलघु अन्तर्मुहूर्तकालसे पर्याप्तियोंकी पूर्णताको प्राप्त हुआ ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ २०४ ॥

तं जधा– एक्को तिरिक्खो मणुस्सो वा मिच्छादिट्ठी सत्तमपुढविणेरइएसु उववण्णो सव्वचिरेण अंतोमुहुत्तेण पज्जत्ति गदो। सम्मादिट्ठिस्स– एक्को बद्धणिरयाउओ सम्मत्तं पडिवज्जिय दंसणमोहणीयं खविय पढमपुढविणेरइएसु उववज्जिय सव्वचिरेण अंतोमुहुत्तेण पज्जत्ति गदो। दोण्हं जहण्णकालेहिंतो उक्कस्सकाला दो वि संखेज्जगुणा। कथमेदं णव्वदे ? गुरूवदेसादो।

सासणसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ २०५ ॥

तं जधा– सत्तट्ठ जणा बहुआ वा सासणसम्मादिट्ठिणो सगद्धाए एगो समओ अत्थि त्ति देवेसु उववण्णा। विदियसमए सव्वे मिच्छत्तं[1] गदा। लद्धो एगसमओ।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २०६ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २०४ ॥

जैसे– कोई एक तिर्यंच अथवा मनुष्य मिथ्यादृष्टि जीव सातवीं पृथिवीके नारकियोंमें उत्पन्न हुआ और सबसे बड़े अन्तर्मुहूर्तकालसे पर्याप्तियोंकी पूर्णताको प्राप्त हुआ। अब असंयतसम्यग्दृष्टिकी कालप्ररूपणा करते हैं– कोई एक बद्धनरकायुष्क जीव सम्यक्त्वको प्राप्त होकर दर्शनमोहनीयका क्षपण करके और प्रथम पृथिवीके नारकियोंमें उत्पन्न होकर सबसे बड़े अन्तर्मुहूर्तकालसे पर्याप्तियोंकी पूर्णताको प्राप्त हुआ। दोनोंके जघन्य कालोंसे दोनों ही उत्कृष्ट काल संख्यातगुणे हैं।

शंका– यह कैसे जाना ?

समाधान– गुरुके उपदेशसे जाना कि वैक्रियिकमिश्रकाययोगी मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि एक जीव की अपेक्षा बतलाए गए जघन्य कालोंसे उन्हींके उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण होते हुए भी संख्यातगुणित हैं।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय होते हैं ॥ २०५ ॥

जैसे– सात आठ जन, अथवा बहुतसे सासादनसम्यग्दृष्टि जीव अपने गुणस्थानके कालमें एक समय अवशेष रहने पर देवोंमें उत्पन्न हुए और द्वितीय समयमें सबके सब मिथ्यात्वको प्राप्त हुए। इस प्रकार एक समय प्राप्त हो गया।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है ॥२०६॥

---

१ प्रतिषु ' सव्वमिच्छत्तं ' इति पाठः।

तं जहा– सत्तट्ठ जणा जावुक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ता वा एक्कवे-तिण्णि समए आदिं कादूण जाव उक्कस्सेण समऊण-छ-आवलियाओ सासणद्धा अत्थि त्ति देवेसु उववण्णा । ते सव्वे कमेण मिच्छत्तं गदा । तस्समए चेव पुव्वं व सासणा देवेसुववण्णा । एवं णिरंतरं णाणाजीवे अस्सिदूण सासणद्धा पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ता सगरासीदो असंखेज्जगुणा जादा त्ति ।

आचार्य श्री सूर्यसागर जी महाराज

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ २०७ ॥

तं जधा– एक्को सासणो सगद्धाए एगसमओ अत्थि त्ति देवेसुववण्णो, बिदियसमए मिच्छत्तं गदो । लद्धो एगसमओ ।

उक्कस्सेण छ आवलियाओ समऊणाओ ॥ २०८ ॥

तं जधा– एक्को तिरिक्खो मणुस्सो वा उवसमसम्मत्तद्धाए छ आवलियाओ अत्थि त्ति आसाणं गंतूण एगसमयमच्छिय उजुगदीए देवेसुववज्जिय समऊण-छ-आवलियाओ आसाणेणच्छिय मिच्छत्तं गदो ।

जैसे– सात आठ जन, अथवा उत्कर्षसे पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र जीव एक, दो अथवा तीन समयको आदि करके उत्कर्षसे एक समय कम छह आवलीप्रमाण सासादन-कालके अवशेष रहने पर वे सबके सब देवोंमें उत्पन्न हुए । पुनः वे सब क्रमसे मिथ्यात्वको प्राप्त हुए । उसी समयमें ही पूर्वके समान अन्य सासादनसम्यग्दृष्टि जीव देवोंमें उत्पन्न हुए । इस प्रकार निरन्तर नाना जीवोंका आश्रय करके सासादनगुणस्थानका काल पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र और अपनी राशिसे असंख्यातगुणा हो जाता है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल एक समय है ॥ २०७ ॥

जैसे– कोई एक सासादनसम्यग्दृष्टि जीव अपने गुणस्थानके कालमें एक समय अवशिष्ट रहने पर देवोंमें उत्पन्न हुआ और द्वितीय समयमें ही मिथ्यात्वको प्राप्त हो गया । इस प्रकारसे एक समयप्रमाण काल उपलब्ध हो गया ।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टिका उत्कृष्ट काल एक समय कम छह आवलीप्रमाण है ॥ २०८ ॥

जैसे– कोई तिर्यंच अथवा मनुष्य उपशम सम्यक्त्वके कालमें छह आवलियां अवशिष्ट रहने पर सासादनगुणस्थानको प्राप्त होकर और एक समय वहां पर रहकर ऋजुगतिसे देवोंमें उत्पन्न होकर एक समय कम छह आवलीप्रमाण काल तक सासादनगुणस्थानके साथ रह कर मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ ।

आहारकायजोगीसु पमत्तसंजदा केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ २०९ ॥

तं जहा– सत्त अट्ठ जणा पमत्तसंजदा मणजोगेण वचिजोगेण वा अच्छिदा सगद्धाए खीणाए आहारकायजोगिणो जादा । विदियसमए मदा, मूलसरीरं वा पविट्ठा[1] । लद्धो एगसमओ । एत्थ वाघाद-गुणपरावत्तीहि एगो समओ ण लब्भदि ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ २१० ॥

तं जहा– आहारसरीरमुट्ठाविदपमत्तसंजदा सत्त-वचिजोगद्विदा आहारकाय-जोगिणो जादा । जाधे[2] ते जोगंतरं गदा, ताधे चेव अण्णे आहारकायजोगं पडिवण्णा । एवमेगादि एगुत्तरवड्ढीए संखेज्जसलागाओ लब्भंति । एदाहि एगं कायजोगद्धं गुणिदे आहारकायजोगद्धा उक्कस्सिया अंतोमुहुत्तपमाणा होदि ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ ॥ २११ ॥

आहारककाययोगियोंमें प्रमत्तसंयत जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय होते हैं ॥ २०९ ॥

जैसे– सात आठ प्रमत्तसंयत मनोयोग अथवा वचनयोगके साथ वर्तमान थे । वे अपने योगकालके क्षीण हो जाने पर आहारककाययोगी हुए । द्वितीय समयमें मरे अथवा मूल औदारिकशरीरमें प्रविष्ट हुए । इस प्रकारसे एक समयका काल उपलब्ध हो गया । यहां पर व्याघात अथवा गुणस्थानपरिवर्तनके द्वारा एक समय नहीं प्राप्त होता है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २१० ॥

जैसे– आहारकशरीरको उत्पन्न करनेवाले, मनोयोग अथवा वचनयोगमें विद्यमान प्रमत्तसंयत जीव आहारककाययोगी हुए । जब वे किसी दूसरे योगको प्राप्त हुए उसी समयमें ही अन्य प्रमत्तसंयत आहारककाययोगको प्राप्त हुए । इस प्रकार एकको आदि लेकर एकोत्तर वृद्धिसे संख्यात शलाकाएं प्राप्त होती हैं । इन शलाकाओंसे एक काययोगके कालको गुणा करने पर उत्कृष्ट आहारककाययोगका काल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण हो जाता है ।

एक जीवकी अपेक्षा आहारककाययोगी जीवोंका जघन्य काल एक समय है ॥ २११ ॥

---

१ प्रतिषु 'पविट्ठो' इति पाठः ।
२ प्रतिषु 'जादे' इति पाठः ।

आगमों की सुरक्षितता का अभियान

तं जहा– एक्को पमत्तसंजदो मणजोगे वचिजोगे वा अच्छिदो आहारकाय-जोगं गदो । विदियसमए मदो, मूलसरीरं वा पविट्ठो ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ २१२ ॥

तं जहा–मणजोगे वचिजोगे वा दुवे पमत्तसंजदो आहारकायजोगं गदो[1], सव्वुक्कस्समंतोमुहुत्तमच्छिय अण्णजोगं गदो ।

आहारमिस्सकायजोगीसु पमत्तसंजदा केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २१३ ॥

तं जहा– सत्तट्ठ जणा पमत्तसंजदा विद्धमग्गा आहारमिस्सकायजोगिणो जादा, सव्वलहुमंतोमुहुत्तेण पज्जत्तिं गदा । एवं जहण्णकालो परूविदो ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ २१४ ॥

तं जहा– सत्तट्ठ जणा पमत्तसंजदा विद्धमग्गा अविद्धमग्गा वा आहारमिस्स-कायजोगिणो जादा, अंतोमुहुत्तेण पज्जत्तिं गदा । तस्समए चेव अण्णे आहारमिस्स-कायजोगिणो जादा । एवमेक्क-दो-तिण्णि जाव संखेज्जसलागा जादा त्ति कादव्वं । पुणो

जैसे– मनोयोग या वचनयोगमें विद्यमान कोई एक प्रमत्तसंयत जीव आहारककाय-योगको प्राप्त हुआ और द्वितीय समयमें मरा, अथवा मूल शरीरमें प्रविष्ट हो गया ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २१२ ॥

जैसे– मनोयोग या वचनयोगमें विद्यमान कोई एक प्रमत्तसंयत जीव आहारककाय-योगको प्राप्त हुआ । वहां पर सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्तकाल रह करके अन्य योगको प्राप्त हुआ ।

आहारकमिश्रकाययोगियोंमें प्रमत्तसंयतजीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्तकाल होते हैं ॥ २१३ ॥

जैसे– देखा है मार्गको जिन्होंने ऐसे सात आठ प्रमत्तसंयत जीव आहारकमिश्रकाययोगी हुए और सर्वलघु अन्तर्मुहूर्तसे पर्याप्तपनेको प्राप्त हुए । इस प्रकार जघन्य काल कहा ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २१४ ॥

जैसे– देखा है मार्गको जिन्होंने ऐसे, अथवा अदृष्टमार्गी सात आठ प्रमत्तसंयत जीव आहारकमिश्रकाययोगी हुए और अन्तर्मुहूर्तसे पर्याप्तियोंकी पूर्णताको प्राप्त हुए । उसी समयमें ही अन्य भी प्रमत्तसंयत जीव आहारकमिश्रकाययोगी हुए । इस प्रकारसे एक, दो, तीनको आदि लेकर जब तक संख्यात शलाकाएं पूरी हों, तब तक संख्या बढ़ाते जाना

---

१ अ-आ प्रत्योः अत्र ' विदियसमए मदो ' इत्याधिकः पाठः; क-प्रतौ म-प्रत्योस्तु सत्पाठो नोपलभ्यते ।

एदाहि सलागाहि आहारमिस्सकायजोगद्धं गुणिदे आहारमिस्सकायजोगस्स उक्कस्सकालो अंतोमुहुत्तमेत्तो होदि ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २१५ ॥

तं जधा– एक्को पमत्तसंजदो पुव्वमणेगवारमुट्ठाविदआहारसरीरो आहारमिस्सकायजोगी जादो, सव्वलहुमंतोमुहुत्तेण पज्जत्ति गदो । लद्धो जहण्णकालो ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ २१६ ॥

तं जधा– एक्को पमत्तसंजदो अदिट्ठमग्गो आहारमिस्सो जादो । सव्वचिरेण अंतोमुहुत्तेण जहण्णकालादो संखेज्जगुणेण पज्जत्तिं गदो ।

कम्मइयकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ २१७ ॥

कुदो ? विग्गहगदीए वट्टमाणजीवाणं सव्वद्धासु विरहाभावादो ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ २१८ ॥

चाहिए । पुनः इन शलाकाओंसे आहारकमिश्रकाययोगके कालको गुणा करने पर आहारकमिश्रकाययोगका अन्तर्मुहूर्तप्रमाण उत्कृष्ट काल होता है ।

एक जीवकी अपेक्षा आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २१५ ॥

जैसे– पूर्वमें जिसने अनेक वार आहारकमिश्रशरीरको उत्पन्न किया है ऐसा कोई एक प्रमत्तसंयत जीव आहारकमिश्रकाययोगी हुआ और सबसे लघु अन्तर्मुहूर्तसे पर्याप्तकपनेको प्राप्त हुआ । इस प्रकारसे जघन्य काल प्राप्त हो गया ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २१६ ॥

जैसे– नहीं देखा है मार्गको जिसने ऐसा कोई एक प्रमत्तसंयत जीव आहारकमिश्रकाययोगी हुआ और जघन्य कालसे संख्यातगुणे सबसे बड़े अन्तर्मुहूर्तद्वारा पर्याप्तियोंकी पूर्णताको प्राप्त हुआ ।

कार्मणकाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ २१७ ॥

क्योंकि, सभी कालोंमें विग्रहगतिमें विद्यमान जीवोंके विरहका अभाव है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल एक समय है ॥ २१८ ॥

तं जहा– एगो मिच्छाइट्ठी विग्गहगदिणामकम्मवसेण एगविग्गहे मारणंतियं गदो। पुणो अंतोमुहुत्तेण छिण्णाउओ होदूण बद्धाउवसेण उप्पण्णपढमसमए कम्मइयकायजोगी जादो। विदियसमए ओरालियमिस्सं वेउव्वियमिस्सं वा गदो। लद्धो एगसमओ।

उक्कस्सेण तिण्णि समया ॥ २१९ ॥

तं जधा– एगो सुहुमेइंदियो अहो सुहुमवाउकाइएसु तिण्णि विग्गहं मारणंतियं गदो। पुणो अंतोमुहुत्तेण छिण्णाउओ होदूण उप्पण्णपढमसमयप्पहुडि तिसु विग्गहेसु तिण्णि समयं कम्मइयजोगी होदूण चउत्थसमए ओरालियमिस्सं गदो। सुहुमेइंदियाणं सुहुमेइंदिएसु उप्पज्जमाणाणं तिण्णि विग्गहा होंति त्ति णियमो कधं णव्वदे? णत्थि एत्थ णियमो, किंतु संभवं पडुच्च सुहुमेइंदियग्गहणं कदं। बादरेइंदिया सुहुमेइंदिया तसकाया वा सुहुमेइंदिएसु उववज्जमाणा तिण्णि विग्गहे करेंति त्ति एस णियमो घेत्तव्वो, आइरियपरंपरागदत्तादो। तिण्णिविग्गहाकरणदिसा वुच्चदे– बम्हलोगुद्देसे

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

जैसे– एक मिथ्यादृष्टि जीव, विग्रहगतिनामकर्मके वशसे एक विग्रहवाले मारणान्तिकसमुद्घातको प्राप्त हुआ। पुनः अन्तर्मुहूर्तसे छिन्नायुष्क होकर बांधी हुई आयुके वशसे उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें कार्मणकाययोगी हुआ। पुनः द्वितीय समयमें औदारिकमिश्रकाययोगको अथवा वैक्रियिकमिश्रकाययोगको प्राप्त हुआ। इस प्रकारसे एक समय उपलब्ध हुआ।

एक जीवकी अपेक्षा कार्मणकाययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट काल तीन समय है ॥ २१९ ॥

जैसे– एक सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव अधस्तन सूक्ष्मवायुकायिकोंमें तीन विग्रहवाले मारणान्तिकसमुद्घातको प्राप्त हुआ। पुनः अन्तर्मुहूर्तसे छिन्नायुष्क होकर उत्पन्न होनेके प्रथम समयसे लगाकर तीन विग्रहोंमें तीन समय तक कार्मणकाययोगी होकर चौथे समयमें औदारिकमिश्रकाययोगको प्राप्त हो गया।

शंका– सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होनेवाले सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवके तीन विग्रह होते हैं, यह नियम कैसे जाना?

समाधान– यद्यपि इस विषयमें कोई नियम नहीं है, तो भी संभावनाकी अपेक्षा यहां पर सूक्ष्म एकेन्द्रियोंका ग्रहण किया है। अतएव सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होनेवाले बादर एकेन्द्रिय या सूक्ष्म एकेन्द्रिय अथवा त्रसकायिक जीव ही तीन विग्रह करते हैं, यह नियम ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि, यही उपदेश आचार्यपरम्परासे आया हुआ है।

अब तीन विग्रह करनेकी दिशाको कहते हैं– ब्रह्मलोकवर्ती प्रवेशपर वामदिशा-

बादरवाउलोगपेरंतादो तिरिच्छेण तिण्णि दक्खिणं रज्जुमेत्तं गंतूण तदो साद्धदस-रज्जूणि अधो कंडुज्जुवं गंतूण तदो संमुहं चदुरज्जुमेत्तं आगंतूण पुणो तिरिच्छेण दक्खिणं चदुरज्जुमेत्तं गंतूण कोणदिसाठिदलोगपेरंतसुहुमवाउकाइएसु उप्पज्जमाणस्स[1] तिण्णि विग्गहा होंति ।

सासणसम्मादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ २२० ॥

तं जधा– सासणसम्मादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी एगविग्गहं कादूणुप्पण्ण-पढमसमए एगसमओ कम्मइयकायजोगेण लब्भदि ।

उक्कस्सेण आवलियाए असंखेज्जदिभागो ॥ २२१ ॥

तं जधा– सासणसम्मादिट्ठी-असंजदसम्मादिट्ठिणो दोण्णि विग्गहं कादूण बद्धाउवसेणुप्पज्जिय दोण्णि समए अच्छिय ओरालियमिस्सं वेउव्वियमिस्सं वा गदा । तस्समए चेव अण्णे कम्मइयकायजोगिणो जादा । एदमेगं कंडयं कादूण एरिसाणि[2] आवलियाए असंखेज्जभागमेत्तं कंडयाणि होंति । एदाणं सलागाहि दोण्णि समए गुणिदे आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तो कम्मइयकायजोग उक्कस्सकालो होदि ।

सम्बन्धी लोकके पर्यन्त भागसे तिरछे दक्षिणकी ओर तीन राजुप्रमाण जाकर पुनः साढ़े दश राजु नीचेकी ओर बाणके समान सीधी गतिसे जाकर पश्चात् सामनेकी ओर चार राजुप्रमाण आकर पुनः तिरछे दक्षिणकी ओर चार रज्जुप्रमाण जाकर कोणवर्ती दिशामें स्थित लोकके अन्तवर्ती सूक्ष्म वायुकायिकोंमें समुत्पन्न होनेवाले जीवके तीन विग्रह होते हैं ।

कार्मणकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय होते हैं ॥ २२० ॥

जैसे– कोई सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीव एक विग्रह करके उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें एक समय कार्मणकाययोगके साथ पाया जाता है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है ॥ २२१ ॥

जैसे– पूर्व पर्यायको छोड़नेके पश्चात् कितने ही सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयत-सम्यग्दृष्टि जीव बाँधी हुई आयुके वशसे उत्पन्न होकर विग्रहगतिमें दो विग्रह करके, दो समय रह कर, पुनः औदारिकमिश्रकाययोगको अथवा वैक्रियिकमिश्रकाययोगको प्राप्त हुए । उसी समयमें ही दूसरे भी जीव कार्मणकाययोगी हुए । इस प्रकार इस एक काण्डक करके इसी प्रकारके अन्य अन्य आवलीके असंख्यातवें भागमात्र काण्डक होते हैं । इन काण्डकोंकी शलाकाओंसे दोनों समयोंको गुणा करने पर आवलीका असंख्यातवां भागमात्र कार्मणकाययोगका उत्कृष्ट काल होता है ।

---

१ अ-क प्रत्योः ' काइयाए समुप्पज्जमाणस्स '; आ-प्रतौ ' -काइयाएसं उप्पज्जमाणस्स ' इति पाठः ।

२ प्रतिषु ' एरिसाणं ' इति पाठः ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ २२२ ॥

सुगममेदं सुत्तं ।

उक्कस्सेण वे समयं ॥ २२३ ॥

कुदो ? एदेसि सुहुमेइंदिएसु उप्पत्तीए अभावा, वड्ढि-हाणिकमेण ट्ठिदलोगंते उप्पत्तीए अभावादो च ।

सजोगिकेवली केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण तिण्णि समयं ॥ २२४ ॥

तं जहा– सत्तट्ठ जणा वा सजोगिणो समगं कवाडं गदा, पदर-लोगपूरणं गंतूण भूओ पदरं गंतूण तिण्णि समयं कम्मइयकायजोगिणो होदूण कवाडं गदा ।

उक्कस्सेण संखेज्जसमयं ॥ २२५ ॥

कुदो ? तिण्णि समइयं कंडयं काऊण संखेज्जकंडयाणमुवलंभा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण तिण्णि समयं ॥ २२६ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल एक समय है ॥ २२२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल दो समय है ॥ २२३ ॥

क्योंकि, इन सासादन या असंयतगुणस्थानवर्ती जीवोंकी सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें उत्पत्तिका अभाव है । तथा वृद्धि और हानिके क्रमसे विद्यमान लोकके अन्तमें भी उनकी उत्पत्तिका अभाव है ।

कार्मणकाययोगी सयोगिकेवली कितने समय तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे तीन समय होते हैं ॥ २२४ ॥

जैसे– सात अथवा आठ सयोगिजिन एक साथ ही कपाटसमुद्घातको प्राप्त हुए, और प्रतर तथा लोकपूरणसमुद्घातको प्राप्त होकर पुनः प्रतरसमुद्घातको प्राप्त हो, तीन समय तक कार्मणकाययोगी रह करके कपाटसमुद्घातको प्राप्त हुए ।

कार्मणकाययोगी सयोगिजिनोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट काल संख्यात समय है ॥ २२५ ॥

क्योंकि, तीन समयवाले काण्डकको करके उनके संख्यात काण्डक पाये जाते हैं ।

एक जीवकी अपेक्षा कार्मणकाययोगी सयोगिजिनोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल तीन समय है ॥ २२६ ॥

कुदो ? पदरादो लोगपूरणादो वा कवाडस्स गमणाभावा ।

एवं जोगमग्गणा समत्ता ।

वेदाणुवादेण इत्थिवेदेसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा[1] ॥ २२७ ॥

कुदो ? सव्वद्धासु इत्थिवेदमिच्छादिट्ठीणं विरहाभावा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[2] ॥ २२८ ॥

तं जधा– एक्को इत्थिवेदगो सम्मामिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी संजदासंजदो पमत्तसंजदो वा परिणामपच्चएण मिच्छत्तं गंतूण सव्वजहण्णकालमच्छिय अण्णगुणं गदो ।

उक्कस्सेण पलिदोवमसदपुधत्तं[3] ॥ २२९ ॥

अवत्तं जधा– एक्को अणिच्छिदवेदो इत्थिवेदेसु उववण्णो । पुणो तत्थ इत्थिवेदेण पलिदोवमसदपुधत्तं परियट्टिय अणप्पिदवेदं गदो ।

क्योंकि, कार्मणकाययोगी सयोगिजिनका प्रतर और लोकपूरणसमुद्घातसे लौटकर कपाटसमुद्घातमें आनेका अभाव है ।

इस प्रकार योगमार्गणा समाप्त हुई ।

वेदमार्गणाके अनुवादसे स्त्रीवेदियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ २२७ ॥

क्योंकि, सभी कालोंमें स्त्रीवेदवाले मिथ्यादृष्टि जीवोंके विरहका अभाव है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २२८ ॥

जैसे– कोई एक स्त्रीवेदी सम्यग्मिथ्यादृष्टि, अथवा असंयतसम्यग्दृष्टि, अथवा संयतासंयत, अथवा प्रमत्तसंयत जीव परिणामोंके निमित्तसे मिथ्यात्वको प्राप्त होकर सबसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त कालप्रमाण रह करके अन्य गुणस्थानको चला गया ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल पल्योपमशतपृथक्त्व है ॥ २२९ ॥

जैसे– अविवक्षित वेदवाला कोई एक जीव स्त्रीवेदियोंमें उत्पन्न हुआ । पुनः वहां पर स्त्रीवेदके साथ पल्योपमशतपृथक्त्व काल तक परिवर्तन करके अविवक्षित वेदको चला गया ।

---

१ स्त्रीवेदेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । स. सि. १, ८.

२ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

३ उत्कर्षेण पल्योपमशतपृथक्त्वम् । स. सि. १, ८.

सासणसम्मादिट्ठी ओघं[1] ॥ २३० ॥

णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण रासीदो असंखेज्जगुणो, पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो; एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण छ आवलियाओ, इच्चेएण ओघादो विसेसाभावा ओघमिदि वुत्तं ।

सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं ॥ २३१ ॥

कुदो ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण सगरासीदो असंखेज्जगुणो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो; एगजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं, इच्चेदेण ओघादो भेदाभावा ।

असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण सव्वद्धा[2] ॥ २३२ ॥

कुदो ? इत्थिवेदम्हि असंजदसम्मादिट्ठिविरहिदकालाणुवलंभा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[3] ॥ २३३ ॥

स्त्रीवेदी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २३० ॥

आचार्य श्री पुष्पदन्तसागर जी महाराज

नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय, उत्कर्षसे अपनी राशिसे असंख्यातगुणा पल्योपमका असंख्यातवां भाग, एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे छह आवलीप्रमाण काल है, इस प्रकार ओघके कालसे कोई भेद विशेषता नहीं है, अतएव ओघ यह पद सूत्रमें कहा ।

स्त्रीवेदी सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका काल ओघके समान है ॥ २३१ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त, और उत्कृष्ट काल अपनी राशिसे असंख्यातगुणित पल्योपमके असंख्यातवें भाग है; तथा एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, इस प्रकार ओघके कालसे कोई भेद नहीं है ।

स्त्रीवेदियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ २३२ ॥

क्योंकि, स्त्रीवेदियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंसे विरहित कोई काल नहीं पाया जाता है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २३३ ॥

---

१ सासादनसम्यग्दृष्टयाद्यनिवृत्तिबादरान्तानां सामान्योक्तः कालः । स. सि. १, ८.

२ किंतु असंयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । स. सि. १, ८.

३ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

तं जधा– एगो मिच्छादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी संजदासंजदो पमत्तसंजदो वा इत्थिवेदगो परिणामपच्चएण असंजदसम्मादिट्ठी होदूण सव्वजहण्णमंतोमुहुत्तमच्छिय जहण्णकालाविरोहेण गुणंतरं गदो । लद्धो जहण्णकालो ।

उक्कस्सेण पणवण्णपलिदोवमाणि देसूणाणि[1] ॥ २३४ ॥

कुदो ? अण्णिवेदस्स पणवण्णपलिदोवमाउट्ठिदिवेदीसु उववज्जिय छ पज्जत्तीओ समाणिय अंतोमुहुत्तं विस्समिय पुणो अंतोमुहुत्तं विसुद्धो होदूण वेदगसम्मत्तं पडिवज्जिय सम्मत्तेण आउट्ठिदिमणुपालिय कालं कादूण पुरिसवेदं पडिवण्णस्स तीहि[2] अंतोमुहुत्तेहि ऊणपणवण्णपलिदोवमुवलंभा ।

संजदासंजदप्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति ओघं ॥ २३५ ॥

कुदो ? ओघं पेक्खिदूण उत्तगुणट्ठाणाणं भेदाभावा । णवरि संजदासंजद-उक्कस्सकालम्हि अत्थि विसेसो । तं जधा– एक्को अट्ठवीससंतकम्मिओ इत्थीवेदेसु

जैसे– एक मिथ्यादृष्टि, या सम्यग्मिथ्यादृष्टि, या संयतासंयत अथवा प्रमत्तसंयत स्त्रीवेदी जीव परिणामोंके निमित्तसे असंयतसम्यग्दृष्टि होकर और सर्वजघन्य अन्तर्मुहूर्त रह करके जघन्य कालके अविरोधसे किसी दूसरे गुणस्थानको चला गया । इस प्रकार जघन्य काल लब्ध हुआ ।

एक जीवकी अपेक्षा स्त्रीवेदी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट काल कुछ कम पचवन पल्योपम है ॥ २३४ ॥

क्योंकि, किसी अविवक्षित अन्य वेदवाले जीवके पचवन पल्योपमकी आयुस्थितीवाली देवियोंमें उत्पन्न हो, छहों पर्याप्तियोंको सम्पन्न कर, अन्तर्मुहूर्त विश्राम करके, पुनः अन्तर्मुहूर्तमें विशुद्ध होकर वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त कर सम्यक्त्वके साथ अपनी आयुस्थितिको परिपालन कर, मरणको करके पुरुषवेदको प्राप्त जीवके तीन अन्तर्मुहूर्तोंसे कम पचवन पल्योपमप्रमाण काल पाया जाता है ।

संयतासंयत गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक स्त्रीवेदी जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २३५ ॥

क्योंकि, ओघके कालको देखते हुए सूत्रोक्त गुणस्थानोंके कालोंमें कोई भेद नहीं है । केवल संयतासंयतके उत्कृष्ट कालमें विशेषता है । वह इस प्रकार है– मोहकर्मकी अट्ठाईस

१ उत्कर्षेण पंचपंचाशत्पल्योपमानि देशोनानि । सं. सि. १, ८.

२ क प्रतौ ' तिहि ' इति पाठ ।

कुक्कुडमक्कडादिसु उववज्जिय वे मासे गब्भे अच्छिदूण णिप्फिडिय मुहुत्तपुधत्तस्सुवरि[1] सम्मत्तं संजमासंजमं च जुगवं[2] घेत्तूण वेमासमुहुत्तपुधत्तूणपुव्वकोडि संजमासंजममणुपालिय मदो देवो जादो त्ति । ओघम्हि पुण अंतोमुहुत्तूणपुव्वकोडिसंजदासंजदउक्कस्सकालो सण्णिसम्मुच्छिमपज्जत्तमच्छ-कच्छव[3]-मंडूकादिसु लद्धो, एत्थ सो ण लब्भदि, सम्मुच्छिमेसु इत्थिवेदाभावा ।

पुरिसवेदएसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा[4] ॥ २३६ ॥

तिसु वि अद्धासु पुरिसवेदमिच्छादिट्ठीणं विरहाभावा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[5] ॥ २३७ ॥

कुदो ? असंजदसम्मादिट्ठिस्स सम्मामिच्छादिट्ठिस्स संजदासंजदस्स पमत्तसंजदस्स वा दिट्ठमग्गस्स मिच्छादिट्ठी होदूण सव्वजहण्णद्धमच्छिय गुणंतरं पडिवण्णस्स

प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक जीव स्त्रीवेदी कुक्कुट, मर्कट आदिमें उत्पन्न होकर और दो मास गर्भमें रह, निकल करके मुहूर्तपृथक्त्वके ऊपर सम्यक्त्व और संयमासंयमको युगपत् ग्रहण करके दो मास और मुहूर्तपृथक्त्वसे कम पूर्वकोटीवर्षप्रमाण संयमासंयमको परिपालन करके मरा और देव हो गया। किन्तु ओघकालप्ररूपणामें जो अन्तर्मुहूर्त कम पूर्वकोटी वर्ष संयतासंयतका उत्कृष्ट काल कहा है वह संज्ञी सम्मूर्च्छिम पर्याप्त मच्छ, कच्छप मंडूकादिकोंमें ही पाया जाता है, वह यहां पर नहीं पाया जाता है; क्योंकि, सम्मूर्च्छिम जीवोंमें स्त्रीवेदका अभाव है।

पुरुषवेदियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ २३६ ॥

क्योंकि, तीनों ही कालोंमें पुरुषवेदी मिथ्यादृष्टि जीवोंका विरह असंभव है ।

एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २३७ ॥

क्योंकि, देखा है मार्गको जिसने, ऐसे असंयतसम्यग्दृष्टि, अथवा सम्यग्मिथ्यादृष्टि, अथवा संयतासंयत, अथवा प्रमत्तसंयतके, मिथ्यादृष्टि होकर और सर्वजघन्य काल रह करके अन्य गुणस्थानको प्राप्त होनेवाले जीवके अन्तर्मुहूर्त काल पाया जाता है ।

---

१ अ प्रतौ ' णिप्फलिय मुहुत्तं '; आ प्रतौ ' णिप्फडियमंतोमुहुत्तं '; क प्रतौ 'णिप्फडिलिय मुहुत्तं '; म प्रतौ ' णिप्फलिय मुहुत्त- ' इति पाठः । २ प्रतिषु ' दुगदं ' इति पाठः ।
३ प्रतिषु ' कच्छमदि- ' इति पाठः । ४ पुंवेदेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वःकालः । स.सि. १, ८.
५ एक जीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

उक्कस्सेण सागरोवमसदपुधत्तं[1] ॥ २३८ ॥

एदस्सुदाहरणं– एक्को त्थी-णवुंसयवेदेसु बहुवारं परियट्टिदजीवो पुरिसवेदेसु उववण्णो। पुरिसवेदो होदूण सागरोवमसदपुधत्तं परिभमिय अणप्पिदवेदं[2] गदो। तिसदमादिं करिय जाव णवसदं ति एदिस्से संखाए सदपुधत्तसण्णिदे सण्णा।

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति ओघं[3] ॥ २३९ ॥

कुदो ? एदेसिं उत्तगुणट्ठाणाणं णाणेगजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सकालेहि ओघादो भेदाभावा। पुरिस[illegible] संजदासंजदाणमित्थिवेदभंगो।

णवुंसयवेदेसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा[4] ॥ २४० ॥

कुदो ? सव्वद्धासु एदेसिं विरहाभावा।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल सागरोपमशतपृथक्त्व है ॥ २३८ ॥

इसका उदाहरण– स्त्री और नपुंसकवेदी जीवोंमें बहुत बार परिभ्रमण किया हुआ कोई एक जीव पुरुषवेदियोंमें उत्पन्न हुआ। पुरुषवेदी होकर सागरोपमशतपृथक्त्व काल तक परिभ्रमण करके अविवक्षित वेदको चला गया। तीन सौ को आदि करके नौ सौ तककी संख्याकी 'शतपृथक्त्व' यह संज्ञा है।

सासादनसम्यग्दृष्टिसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती पुरुषवेदी जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २३९ ॥

क्योंकि, इन सूत्रोक्त गुणस्थानोंका नाना जीव और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट कालके साथ ओघके कोई भेद नहीं है। विशेष बात यह है कि पुरुषवेदी संयतासंयतोंका काल स्त्रीवेदी संयतासंयतोंके समान है।

नपुंसकवेदियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल होते हैं ॥ २४० ॥

क्योंकि, सभी कालोंमें इन जीवोंके विरहका अभाव है।

---

१ उत्कर्षेण सागरोपमशतपृथक्त्वम्। स. सि. १, ८.

२ अ-आ-क प्रतिषु 'अप्पिदवेदं' इति पाठः; म प्रतौ तु स्त्रीकृतपाठः।

३ सासादनसम्यग्दृष्ट्याद्यनिवृत्तिबादरान्तानां सामान्योक्तः कालः। स. सि. १, ८.

४ नपुंसकवेदेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। स. सि. १, ८.

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[1] ॥ २४१ ॥

कुदो ? सम्मामिच्छादिट्ठिस्स असंजदसम्मादिट्ठिस्स संजदासंजदस्स संजदस्स वा मिच्छत्तं गंतूण सव्वजहण्णद्धमच्छिय गुणंतरं गदस्स अंतोमुहुत्तुवलंभा ।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं[2] ॥ २४२ ॥

एवस्सुदाहरणं– एक्को परिभमिदत्थी-पुरिसवेदट्ठिदिगो णवुंसयवेदं पडिवज्जिय तमच्छइंतो आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तपोग्गलपरियट्टाणि परिभमिय अण्णवेदं गदो ।

सासणसम्मादिट्ठी ओघं[3] ॥ २४३ ॥

सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं ॥ २४४ ॥

एदाणि दो वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा[4] ॥ २४५ ॥

एक जीवकी अपेक्षा नपुंसकवेदी मिथ्यादृष्टियोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २४१ ॥

क्योंकि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, या असंयतसम्यग्दृष्टि या संयतासंयत, अथवा संयत जीवके मिथ्यात्वको प्राप्त होकर और वहां पर सर्व जघन्य काल रह करके अन्य गुणस्थानको प्राप्त होनेवाले जीवके अन्तर्मुहूर्तकाल पाया जाता है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अनन्तकालात्मक असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन-प्रमाण है ॥ २४२ ॥

इसका उदाहरण– जिसने पुरुषवेद और स्त्रीवेदकी स्थितिप्रमाण परिभ्रमण किया है, ऐसा कोई एक जीव नपुंसकवेदको प्राप्त होकर, उसे नहीं छोड़ता हुआ आवलीके असंख्यातवें भागमात्र पुद्गलपरिवर्तनोंतक परिभ्रमण करके अन्य वेदको प्राप्त हुआ ।

सासादनसम्यग्दृष्टि नपुंसकवेदी जीवोंका काल ओघके समान है ॥२४३ ॥

सम्यग्मिथ्यादृष्टि नपुंसकवेदी जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २४४ ॥

ये दोनों ही सूत्र सुगम हैं ।

असंयतसम्यग्दृष्टि नपुंसकवेदी जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ २४५ ॥

---

१ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

२ उत्कर्षेणानन्तः कालोऽसंख्येयाः पुद्गलपरिवर्ताः । स. सि. १, ८.

३ सासादनसम्यग्दृष्टयाद्यनिवृत्तिबादरान्तानां सामान्यवत् । स. सि. १, ८.

४ किन्त्वसंयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । स. सि. १, ८.

सुगममेदं सुत्तं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[1] ॥ २४६ ॥

कुदो ? मिच्छाविट्ठिस्स सम्मामिच्छादिट्ठिस्स संजदासंजदस्स संजदस्स वा विट्ठमग्गस्स असंजदसम्मत्तं पडिवज्जिय सव्वजहण्णद्धमच्छिय गुणंतरं गदस्संतोमुहुत्तुवलंभा ।

उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि[2] ॥ २४७ ॥

कुदो ? अट्ठावीससंतकम्मियस्स सत्तमपुढवीए[3] उप्पज्जिय छ पज्जत्तीओ समाणिय विस्समिय विसुद्धो होदूण सम्मत्तं पडिवज्जिय अंतोमुहुत्तावसेसे आउए मिच्छत्तं गंतूण आउअं बंधिय अंतोमुहुत्तं विस्समिय णिग्गदस्स छहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणतेत्तीससागरोवमुवलंभा ।

संजदासंजदप्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति ओघं ॥ २४८ ॥

आसां अं [illegible] णेगजीवजहण्णुक्कस्सकालेहि ओघादो विसेसाभावा ।

यह सूत्र सुगम है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २४६ ॥

क्योंकि, दृष्टमार्गी मिथ्यादृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, संयतासंयत या संयत जीवके असंयतसम्यक्त्वको प्राप्त होकर सर्व जघन्य काल रह करके अन्य गुणस्थानको प्राप्त होने पर अन्तर्मुहूर्त काल पाया जाता है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागरोपम है ॥ २४७ ॥

क्योंकि, मोहकर्मकी अट्ठावीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले किसी जीवके सातवीं पृथिवीमें उत्पन्न होकर, छह पर्याप्तियोंको सम्पन्न करके, विश्राम कर और विशुद्ध होकर, तथा सम्यक्त्वको प्राप्त होकर, आयुके अन्तर्मुहूर्त अवशेष रहने पर, मिथ्यात्वको जाकर, आगामी भवसम्बन्धी आयुको बांधकर, अन्तर्मुहूर्त विश्राम करके निकलनेवाले जीवके छह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम तेतीस सागरोपम काल पाया जाता है ।

संयतासंयतसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक नपुंसकवेदी जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २४८ ॥

क्योंकि, नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट कालके साथ ओघसे कोई विशेषता नहीं है ।

१ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

२ उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि देशोनानि । स. सि. १, ८.

३ प्रतिषु ' सत्तपुढवीए ' इति पाठः ।

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

अपगदवेदएसु अणियट्टिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं[1] ॥ २४९ ॥

कुदो ? णाणेगजीवजहण्णुक्कस्सकालेहि ओघादो विसेसाभावा ।

एवं वेदमग्गणा समत्ता ।

कसायाणुवादेण कोहकसाइ-माणकसाइ-मायकसाइ-लोभकसाईसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदा त्ति मणजोगिभंगो[2] ॥ २५० ॥

कुदो ? दव्वट्ठियणयावलंबणेण । पज्जवट्ठियणए अवलंबिज्जमाणे अत्थि विसेसो । तं वत्तइस्सामो । तं जधा- कोधकसाई मिच्छादिट्ठी एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं । एत्थ कसाय-गुणपरावत्ति-मरणेहि एगसमओ वत्तव्वो । वाघादेण एगसमओ ण लब्भदि, कोधस्सेव तत्थुप्पत्तीदो । तं जधा- एक्को सासणो सम्मामिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी संजदासंजदो पमत्तसंजदो वा कोधकसाई एगसमयं कोधकसायद्धा अत्थि त्ति मिच्छत्तं गदो । एगसमयं कोधेण मिच्छत्तं दिट्ठं । विदिय-

अपगतवेदी जीवोंमें अनिवृत्तिकरण गुणस्थानके अवेदभागसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तकके जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २४९ ॥

क्योंकि, नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट कालके साथ ओघसे कोई विशेषता नहीं है ।

इस प्रकार वेदमार्गणा समाप्त हुई ।

कषायमार्गणाके अनुवादसे क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी और लोभकषायी जीवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर अप्रमत्तसंयत तकका काल मनोयोगियोंके समान है ॥ २५० ॥

क्योंकि, सूत्रमें द्रव्यार्थिकनयका अवलम्बन किया गया है । किन्तु पर्यायार्थिकनयके अवलम्बन करने पर विशेषता है । उसे कहते हैं । जैसे— क्रोधकषायी मिथ्यादृष्टी जीवका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय है । यहां पर कषायपरिवर्तन, गुणस्थानपरिवर्तन और मरणके द्वारा एक समयकी प्ररूपणा कहना चाहिए । व्याघातकी अपेक्षा एक समय नहीं पाया जाता है, क्योंकि, व्याघातके होने पर तो क्रोधकी ही उत्पत्ति होती है । जैसे कोई- सासादनसम्यग्दृष्टि या सम्यग्मिथ्यादृष्टि, या असंयतसम्यग्दृष्टि, या संयतासंयत, अथवा प्रमत्तसंयत क्रोधकषायी जीव क्रोधकषायके कालमें एक समय अवशेष रहने पर मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । एक समय क्रोधके साथ मिथ्यात्व दृष्टिगोचर हुआ, और द्वितीय समयमें किसी और कषायको प्राप्त हो गया । यह कषायपरिवर्तनसम्बन्धी एक

१ अपगतवेदानां सामान्यवत् । स. सि. १, ८.

२ कषायानुवादेन चतुष्कषायाणां मिथ्यादृष्ट्याद्यप्रमत्तान्तानां मनोयोगिवत् । स. सि. १, ८.

समए अण्णकसायं गदो । एसा कसायपरावत्ती । एक्को मिच्छादिट्ठी अण्णकसाएणच्छिदो, तस्स अद्धाक्खएण कोधकसाओ आगदो, एगसमयं कोहेण सह दिट्ठो । विदियसमए सम्मामिच्छत्तं असंजदसम्मत्तं संजमासंजमं अप्पमत्तभावेण संजमं वा पडिवण्णो । एसा गुणपरावत्ती । एक्को मिच्छादिट्ठी अण्णकसाएणच्छिदो, तस्सद्धाक्खएण कोहकसाई जादो । एगसमयं कोहेण सह दिट्ठो । विदियसमए मदो अण्णकसाएसु उववण्णो । एसो मरणेण एगसमओ । कोहेण मदो णिरयगदीएण उप्पादेदव्वो, तत्थुप्पण्णजीवाणं पढमं कोधोदयस्सुवलंभा । माणेण मदो मणुसगदीएण उप्पादेदव्वो, तत्थुप्पण्णाणं पढमसमए माणोदयणियमोवदेसा । मायाए मदो तिरिक्खगईएण उप्पादेदव्वो, तत्थुप्पण्णाणं पढमसमए मायोदयणियमोवदेसा । लोभेण मदो देवगदीएण उप्पादेदव्वो, तत्थुप्पण्णाणं पढमं चेय लोहोदओ होदि त्ति आइरियपरंपरागदुवदेसा[1] । एवं सेसगुणट्ठाणाणं पि णादूण वत्तव्वं । एवं माण-माया लोभाणं वत्तव्वं । णवरि कसाय-गुण-परावत्ति-मरण-वाघादेहि चउहि वि एगसमयपरूवणा वत्तव्वा ।

समयकी प्ररूपणा है । एक मिथ्यादृष्टि जीव जो कि अन्य कषायमें वर्तमान था, उस कषायके कालक्षयसे क्रोधकषायको प्राप्त हुआ । एक समय वह क्रोधकषायके साथ दृष्टिगोचर हुआ और द्वितीय समयमें सम्यग्मिथ्यात्वको अथवा असंयतसम्यक्त्वको, अथवा संयमासंयमको, अथवा अप्रमत्तभावके साथ संयमको प्राप्त हुआ । यह गुणस्थानपरिवर्तन है । एक मिथ्यादृष्टि जीव अन्य कषायमें विद्यमान था । उस कषायके कालक्षयसे वह क्रोधकषायी हो गया । एक समय क्रोधकषायके साथ दृष्टिगोचर हुआ । पुनः द्वितीय समयमें मरा और अन्य कषायोंमें उत्पन्न हुआ । यह मरणकी अपेक्षा एक समय हुआ । क्रोधकषायके साथ मरा हुआ जीव नरकगतिमें उत्पन्न कराना चाहिए, क्योंकि, नरकोंमें उत्पन्न होनेवाले जीवोंके सर्व प्रथम क्रोधकषायका उदय पाया जाता है । मानकषायसे मरा हुआ जीव मनुष्यगतिमें उत्पन्न कराना चाहिए, क्योंकि, मनुष्योंमें उत्पन्न हुए जीवोंके प्रथम समयमें मानकषायके उदयके नियमका उपदेश देखा जाता है । मायाकषायसे मरा हुआ जीव तिर्यग्गतिमें उत्पन्न कराना चाहिए, क्योंकि, तिर्यंचोंके उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें मायाकषायके उदयका नियम देखा जाता है । लोभकषायसे मरा हुआ जीव देवगतिमें उत्पन्न कराना चाहिए, क्योंकि उनमें उत्पन्न होनेवाले जीवोंके सर्व प्रथम लोभकषायका उदय होता है; ऐसा आचार्यपरम्परागत उपदेश है । इसी प्रकारसे शेष गुणस्थानोंका भी काल जान कर कहना चाहिए । इसी प्रकार मानकषाय, मायाकषाय और लोभकषायोंके कालोंकी प्ररूपणा करना चाहिए । विशेष बात यह है कि कषायपरिवर्तन, गुणपरिवर्तन, मरण और व्याघात, इन चारोंके द्वारा एक समयकी प्ररूपणा कहना चाहिए ।

[1] णारयतिरिक्खणरसुरगईसु उप्पण्णपढमकालम्हि । कोही माया माणो लोहुदओ अणियमो वापि ॥ गो. जी. २८८.

दोण्णि तिण्णि उवसमा केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं[1] ॥ २५१ ॥

तिसु कसाएसु दोण्हि उवसामगा, अणियट्टीदो उवरि तिण्हं कसायाणमभावा। लोभकसाए तिण्णि उवसामगा उवसंतकसाए लोभोदयाभावा। एदेसिं कसायपरावत्ति-गुणपरावत्ति-वाघादेहि एगसमओ णत्थि। कुदो? तहाविहुवएसाभावा। किंतु अणियट्टिसुहुमसांपराइयाणं चढंत-ओयरंत-पढमसमए मदाणं एगसमओ लब्भइ। अपुव्वस्स पुण ओयरंतस्स पढमसमए चेव। कुदो? चढमाणअपुव्वस्स पढमसमए मरणाभावा।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ २५२ ॥

कुदो? चढंत-ओयरंतपज्जयपरिणदजीवेहि अंतोमुहुत्तकालं एदेसिं गुणट्ठाणमसुण्णसुवलंभा।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ २५३ ॥

क्रोध, मान और माया, इन तीनों कषायोंकी अपेक्षा दो उपशामक अर्थात् आठवें और नवें गुणस्थानवर्ती उपशामक जीव, और लोभकषायकी अपेक्षा तीन उपशामक अर्थात् आठवें, नवें और दशवें गुणस्थानवर्ती उपशमश्रेण्यारोहक जीव, कितने काल तक होते हैं? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय होते हैं ॥ २५१ ॥

क्रोधादि तीनों कषायोंमें अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, ये दो गुणस्थानवर्ती उपशामक जीव होते है; क्योंकि, अनिवृत्तिकरणसे ऊपर तीनों कषायोंका अभाव है। लोभ-कषायमें अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्पराय, ये तीन गुणस्थानवर्ती उपशामक जीव होते है, क्योंकि, उपशान्तकषाय गुणस्थानमें लोभकषायके उदयका अभाव है। इन उपर्युक्त दो और तीन गुणस्थानवर्ती उपशामकोंमें कषायपरिवर्तन, गुणस्थानपरिवर्तन और व्याघात, इन तीनोंकी अपेक्षा एक समयकी प्ररूपणा नहीं है, क्योंकि, उस प्रकारका उपदेश नहीं पाया जाता है। किन्तु, अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्परायिक जीवोंके चढ़ने या उतरनेके प्रथम समयमें मरे हुए जीवोंके एक समय पाया जाता है। अपूर्वकरण गुणस्थानके उतरनेके प्रथम समयमें ही एक समय पाया जाता है, क्योंकि, उपशमश्रेणी पर चढ़नेवाले अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती जीवके प्रथम समयमें मरणका अभाव है।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २५२ ॥

क्योंकि, उपशमश्रेणी पर चढ़ती और उतरती हुई पर्यायसे परिणत जीवोंकी अपेक्षा अन्तर्मुहूर्त काल इन गुणस्थानोंके अशून्य अर्थात् परिपूर्ण रूपसे पाया जाता है।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल एक समय है ॥ २५३ ॥

---

१ द्वयोरुपशमकयोः ×× केवललोभस्य च ×× सामान्योक्तः कालः। स. सि. १, ८.

कुदो ? तिण्हमुवसामगाणं मरणेण एगसमउवलंभा ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ २५४ ॥

कुदो ? कसायाणमुदयस्स अंतोमुहुत्तादो उवरि णिच्छएण विणासो होदि त्ति गुरूवदेसा ।

दोण्णि तिण्णि खवा केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[1] ॥ २५५ ॥

एत्थ एगसमओ किण्ण लब्भदे ? उच्चदे– ण ताव कसायपरावत्तीए एगसमओ लब्भदि, खवगुवसामगेसु कसायुदयस्स जहण्णकालस्स वि अंतोमुहुत्तपरिमाणुवदेसा । ण गुणपरावत्तीए वि एगसमओ, एगसमइयस्स कसायुदयस्स खवगुवसमसेढीसु अभावा । ण वाघादेण वि, खवगुवसमसेढीसु वाघादस्स पडिसेधा । ण मरणेण वि, खवगेसु मरणाभावा । तदो जहण्णकालेण णिच्छएण अंतोमुहुत्तेण होदव्वमिदि ।

अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, इन दो गुणस्थानवर्ती क्षपक तथा अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्पराय, इन तीनों उपशामक जीवोंके मरणके साथ एक समय पाया जाता है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त तक है ॥ २५४ ॥

क्योंकि, कषायोंके उदयका अन्तर्मुहूर्त कालसे ऊपर निश्चयसे विनाश होता है, इस प्रकार गुरुका उपदेश है ।

अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, ये दो गुणस्थानवर्ती क्षपक तथा अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्पराय, ये तीन गुणस्थानवर्ती क्षपक कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त तक होते हैं ॥ २५५ ॥

शंका– इन सूत्रोक्त क्षपक जीवोंके एक समयप्रमाण काल क्यों नहीं पाया जाता है ?

समाधान– उक्त आशंकापर उत्तर कहते हैं कि उक्त दोनों या तीनों गुणस्थानोंमें न तो कषायपरिवर्तनसे एक समय पाया जाता है, क्योंकि, क्षपक या उपशामकोंमें अपनी उदयागत कषायके उदयका जघन्य काल भी अन्तर्मुहूर्तप्रमाण ही होता है, ऐसा आचार्य परम्पराका उपदेश है । और न गुणस्थानपरिवर्तनके द्वारा ही एक समयप्रमाण काल पाया जाता है, क्योंकि, एक समयवाले कषायके उदयका क्षपक और उपशम श्रेणियोंमें अभाव है । न व्याघातके द्वारा ही एक समय पाया जाता है । क्योंकि, क्षपक और उपशमश्रेणियोंमें व्याघातका प्रतिषेध पाया जाता है । और न मरणके द्वारा ही एक समय पाया जाता है, क्योंकि, क्षपकोंमें मरणका अभाव है, इसलिए यहां पर कषायोंका जघन्य काल निश्चयसे अन्तर्मुहूर्त ही होना चाहिए ।

१ ××द्वयो: क्षपकयो: केवललोभस्य च ××सामान्योक्त: काल: । स. सि. १, ८.

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ २५६ ॥

कमेण अंतोमुहुत्तंतरेण खवगसेढिं चडमाणबहुजीवे अस्सिदूण जहण्णकालादो संखेज्जगुणकालुवलंभा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २५७ ॥

एदस्स अत्थो सुगमो ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ २५८ ॥

एदस्स वि अत्थो सुगमो ।

अकसाईसु चदुट्ठाणी ओघं[1] ॥ २५९ ॥

कुदो ? सव्वेण वि पयारेण णाणेगजीवजहण्णुक्कस्सकालगदविसेसाभावा ।

एवं कसायमग्गणा समत्ता ।

णाणाणुवादेण मदिअण्णाणि-सुदअण्णाणीसु मिच्छादिट्ठी ओघं[2] ॥ २६० ॥

उक्त जीवोंके उक्त कषायोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २५६ ॥

क्योंकि, क्रमशः अन्तर्मुहूर्तके अन्तरसे क्षपकश्रेणी पर चढ़नेवाले बहुत जीवोंकी अपेक्षा जघन्य कालसे उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा पाया जाता है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २५७ ॥

इस सूत्रका अर्थ सुगम है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २५८ ॥

इस सूत्रका अर्थ सुगम है ।

अकषायी जीवोंमें अन्तिम चतुर्गुणस्थानी जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २५९ ॥

क्योंकि, सर्व ही प्रकारसे नाना जीव और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट कालगत कोई विशेषता नहीं है ।

इस प्रकार कषायमार्गणा समाप्त हुई ।

ज्ञानमार्गणाकी अपेक्षा मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २६० ॥

---

१ ×××अकषायाणां च सामान्योक्तः कालः । स. सि. १, ८.

२ ज्ञानानुवादेन मत्यज्ञानिश्रुताज्ञानिषु मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्ट्योः सामान्यवत् स. सि. १, ८.

कुदो ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा, एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणमिच्चेएण ओघादो भेदाभावा। अणादिअणिहण-अणादिसणिहण-मदि-सुदअण्णाणी वि अत्थि, किंतु तेहि एत्थ अणहियारो।

सासणसम्मादिट्ठी ओघं ॥ २६१ ॥

कुदो ? मदि-सुदअण्णाणविरहिदसासणाणमभावा।

विभंगणाणीसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा[1] ॥ २६२ ॥

कुदो ? विभंगणाणिमिच्छदिट्ठीणं तिसु वि कालेसु संताणवोच्छेदाभावा।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[2] ॥ २६३ ॥

कुदो ? असंजदसम्मादिट्ठिस्स संजदासंजदस्स संजदस्स वा विदुमग्गस्स मिच्छत्तं पडिवज्जिय सव्वजहण्णद्धमच्छिय गुणंतरं गदस्स अंतोमुहुत्तमेत्तविभंगणाण-कालुवलंभा।

उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि[3] ॥ २६४ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल, एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन है। इस प्रकारसे ओघके कालसे कोई भेद नहीं है। यद्यपि अनादि-अनन्त और अनादि-सान्त मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी भी जीव हैं, किन्तु उनका यहां पर अधिकार नहीं है।

मति-श्रुताज्ञानी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका काल ओघके समान है ॥२६१॥

क्योंकि, मत्यज्ञान और श्रुताज्ञानसे रहित सासादनगुणस्थानी जीवोंका अभाव है।

विभंगज्ञानियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ २६२ ॥

क्योंकि, तीनों ही कालोंमें विभंगज्ञानी मिथ्यादृष्टि जीवोंकी परम्पराके व्युच्छेदका अभाव है।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २६३ ॥

क्योंकि, कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनमात्र असंयतसम्यग्दृष्टि संयतासंयत या संयतके मिथ्यात्व गुणस्थानको प्राप्त होकर और सर्व जघन्य काल तक वहां रह कर गुणस्थानान्तरको गये हुए जीवके अन्तर्मुहूर्तप्रमाण विभंगज्ञानका काल पाया जाता है।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागरोपम है ॥ २६४ ॥

---

१ विभंगज्ञानिषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। स. सि. १, ८.

२ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। स. सि. १, ८.

३ उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि देशोनानि। स. सि. १, ८.

उदाहरणं– एक्को मिच्छादिट्ठी सत्तमाए पुढवीए उववज्जिय छ पज्जत्तीओ समाणिय विभंगणाणी जादो। अप्पणो आउट्ठिदिमणुपालिय कालं काऊण णिग्गयस्स णट्ठं विभंगणाणं, अपज्जत्तद्धाए तस्स विरोहा। एवमंतोमुहुत्तूणतेत्तीससागरोवमाणि विभंगणाणस्स उक्कस्सकालो होदि।

सासणसम्मादिट्ठी ओघं' ॥ २६५ ॥

णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण सगरासीदो असंखेज्जगुणो, पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण छ आवलियाओ, इच्चेएण ओघादो भेदाभावादो।

आभिणिबोहियणाणि-सुदणाणि-ओधिणाणीसु असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था त्ति ओघं[2] ॥ २६६ ॥

कुदो ? णाणेगजीवजहण्णुक्कस्सकालेहि एदेसिं ओघादो विसेसाभावा। णवरि ओधिणाणिसंजदासंजदेगजीवुक्कस्सकालम्हि अत्थि विसेसो[3]। तं जहा– एक्को

उदाहरण– एक मिथ्यादृष्टि जीव सातवीं पृथिवीमें उत्पन्न होकर और छहों पर्याप्तियोंको सम्पन्न करके विभंगज्ञानी हुआ। अपनी आयुस्थितिको परिपालन कर और मरण करके निकला। तब उसका विभंगज्ञान नष्ट हो गया, क्योंकि, अपर्याप्तकालमें विभंगज्ञानके होनेका विरोध है। इस प्रकार अन्तर्मुहूर्त कम तेतीस सागरोपम विभंगज्ञानका उत्कृष्ट काल होता है।

विभंगज्ञानी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २६५ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय, उत्कृष्ट काल अपनी राशिसे असंख्यातगुणा है अर्थात् पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है तथा एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल छह आवलिप्रमाण, इस प्रकार ओघ कालसे कोई भेद नहीं है।

आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २६६ ॥

क्योंकि, नाना और एक जीवसम्बन्धी जघन्य और उत्कृष्ट कालकी अपेक्षा इन सूत्रोक्त जीवोंके कालमें ओघसे कोई विशेषता नहीं है। केवल, अवधिज्ञानी संयतासंयत गुणस्थानसम्बन्धी एक जीवके उत्कृष्ट कालमें विशेषता है। वह इस प्रकार है– मोहकर्मकी

१ सासादनसम्यग्दृष्टेः सामान्योक्तः कालः। स. सि. १, ८.

२ आभिनिबोधिकश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलज्ञानिनां सामान्योक्तः कालः। स. सि. १, ८.

३ प्रतिषु ' अत्थि त्ति विसेसा ' इति पाठः।

अट्ठावीससंतकम्मिओ सण्णिसम्मुच्छिमपज्जत्तएसु उववण्णो। छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो विस्संतो विसुद्धो संजमासंजमं पडिवज्जिय मदि-सुदणाणी जादो। तदो अंतोमुहुत्तं गंतूण ओधिणाणमुप्पादेदि[1]। एत्तिओ चेव विसेसो, णत्थि अण्णत्थ कत्थ वि।

मणपज्जवणाणीसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव खीणकसायवीदराग-छदुमत्था त्ति ओघं ॥ २६७ ॥

कुदो ? पमत्तापमत्तसंजदाणमुवसामगाणं खवगाणं च णाणेगजीवजहण्णुक्कस्सकालेहि ओघादो भेदाभावा।

केवलणाणी सजोगिकेवली अजोगिकेवली ओघं ॥ २६८ ॥

कुदो ? केवलणाणविरहिदसजोगि-अजोगिकेवलीणमभावा।

एवं णाणमग्गणा समत्ता।

संजमाणुवादेण संजदेसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं ॥ २६९ ॥

अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्ता रखनेवाला कोई एक जीव संज्ञी, सम्मूर्च्छिम, पर्याप्तकोंमें उत्पन्न हुआ और छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो, विश्राम करता हुआ, विशुद्ध होकर, संयमासंयमको प्राप्त कर, मति-श्रुतज्ञानी हो गया। पुनः अन्तर्मुहूर्तके पश्चात् अवधिज्ञानको उत्पन्न करता है। इतनी मात्र ही विशेषता है और कहीं भी कोई विशेषता नहीं है।

मनःपर्ययज्ञानियोंमें प्रमत्तसंयतसे लेकर क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २६७ ॥

क्योंकि, प्रमत्त और अप्रमत्तसंयतोंका तथा उपशामक और क्षपकोंका नाना जीव और एक जीवके जघन्य और उत्कृष्ट कालोंके साथ ओघप्ररूपणासे कोई भेद नहीं है।

केवलज्ञानियोंमें सयोगिकेवली और अयोगिकेवली जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २६८ ॥

क्योंकि, केवलज्ञानसे रहित सयोगिकेवली और अयोगिकेवलियोंका अभाव है।

इस प्रकार ज्ञानमार्गणा समाप्त हुई।

संयममार्गणाके अनुवादसे संयतोंमें प्रमत्तसंयतसे लेकर अयोगिकेवली तक जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २६९ ॥

---

१ प्रतिषु ' ओधिणाणीमुप्पदेदि ' इति पाठः।

२ संयमानुवादेन सामायिकछेदोपस्थापनपरिहारविशुद्धिसूक्ष्मसाम्पराययथाख्यातशुद्धिसंयतानां × × सामान्योक्तः कालः। स. सि. १, ८.

सामण्णसंजमे अवलंबिदे विसेसाणुवलद्धीदो ।

सामाइय-च्छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदेसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति ओघं ॥ २७० ॥

कुदो ? पमत्तापमत्ताणं णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा, एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगो समओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । दोण्हमुवसामगाणं जहण्णेण णाणेगजीवं पडुच्च एगो समओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं, दोण्हं खवगाणं णाणेगजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तमिच्चेएण ओघादो भेदाभावा ।

परिहारसुद्धिसंजदेसु पमत्त-अप्पमत्तसंजदा ओघं ॥ २७१ ॥

कुदो ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा, एगजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण एगसमओ, अंतोमुहुत्तमिच्चेदेहि विसेसाभावा ।

सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदेसु सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदा उवसमा खवा ओघं ॥ २७२ ॥

कुदो ? सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदाणमुभयत्थ संजमभेदाभावा ।

क्योंकि, संयमसामान्यके अवलंबन करने पर ओघके कालसे कोई भेद नहीं पाया जाता ।

सामायिक और छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयतोंमें प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण तकके जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २७० ॥

क्योंकि, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयतोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । आठवें और नवें गुणस्थानवर्ती दोनों उपशामकोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय है, तथा उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । आठवें और नवें गुणस्थानवर्ती दोनों क्षपकोंका नाना जीव और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, इस प्रकार ओघके कालसे कोई भेद नहीं है ।

परिहारविशुद्धिसंयतोंमें प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयतोंका काल ओघके समान है ॥ २७१ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल, एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय अन्तर्मुहूर्त है, इस प्रकार ओघके कालसे कोई विशेषता नहीं है ।

सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयतोंमें सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयत उपशामक और क्षपकोंका काल ओघके समान है ॥ २७२ ॥

क्योंकि, सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयतोंके दोनों श्रेणियोंमें संयमके भेदका अभाव है ।

जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदेसु चदुट्ठाणी ओघं ॥ २७३ ॥

कुदो ? ओघादेसेसु चदुण्हं गुणट्ठाणाणं संजमभेदाणुवलंभा ।

संजदासंजद ओघं[1] ॥ २७४ ॥

सुगमो एदस्स अत्थो ।

असंजदेसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठि त्ति ओघं[2] ॥ २७५ ॥

एदस्स [illegible] सुगमो ।

एवं संजममग्गणा समत्ता ।

दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणीसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा[3] ॥ २७६ ॥

कुदो ? चक्खुदंसणिमिच्छादिट्ठिविरहिदकालाभावा ।

यथाख्यातविहारशुद्धिसंयतोंमें अन्तिम चार गुणस्थानवाले जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २७३ ॥

क्योंकि, ओघ और आदेशमें चारों गुणस्थानोंके संयमोंमें कोई भेद नहीं पाया जाता है ।

संयतासंयतोंका काल ओघके समान है ॥ २७४ ॥

इस सूत्रका अर्थ सुगम है ।

असंयत जीवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक असंयतोंका काल ओघके समान है ॥ २७५ ॥

जिन्होंने ओघसम्बन्धी कालको भलीभांति अवधारण किया है, ऐसे शिष्योंके लिए इस सूत्रका अर्थ सुगम है ।

इस प्रकार संयममार्गणा समाप्त हुई ।

दर्शनमार्गणाके अनुवादसे चक्षुदर्शनी जीवोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ २७६ ॥

क्योंकि, चक्षुदर्शनी मिथ्यादृष्टि जीवोंसे रहित कालका अभाव है ।

---

१ × × × संयतासंयतानां × × सामान्योक्तः कालः । स. सि. १, ८.

२ × × × असंयतानां च सामान्योक्तः कालः । स. सि. १, ८.

३ दर्शनानुवादेन चक्षुर्दर्शनिषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । स. सि. १, ८.

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[1] ॥ २७७ ॥

कुदो ? सम्मामिच्छाविट्ठिस्स असंजदसम्मादिट्ठिस्स संजदासंजदस्स संजदस्स वा विदुमग्गस्स मिच्छत्तं गंतूण सव्वजहण्णद्धमच्छिय गुणंतरं गदस्स अंतोमुहुत्तकालुवलंभा।

उक्कस्सेण वे सागरोवमसहस्साणि[2] ॥ २७८ ॥

उदाहरणं– एसो अचक्खुदंसणी मिच्छादिट्ठी चक्खुदंसणीसु उववण्णो। चक्खुदंसणी होदूण वे सागरोवमसहस्साणि परिभमिय अचक्खुदंसणं गदो। लद्धि-अपज्जत्तेसु चक्खुदंसणं णिव्वत्तिअपज्जत्ताणं व किण्ण उच्चदे ? ण, तम्हि भवे तत्थ चक्खुदंसणुवजोगाभावा। णिव्वत्तिअपज्जत्ताणं तम्हि भवे णियमेण चक्खुदंसणुव-जोगुवलंभा।

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था त्ति ओघं[3] ॥ २७९ ॥

कुदो ? चक्खुदंसणविरहिदसासणादीणमभावा।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २७७ ॥

क्योंकि, वृद्धमार्गी सम्यग्मिथ्यादृष्टि या असंयतसम्यग्दृष्टि, या संयतासंयत, या संयतके मिथ्यात्वको प्राप्त होकर वहां पर सर्व जघन्य काल रह करके अन्य गुणस्थानको प्राप्त होनेवाले जीवके अन्तर्मुहूर्त काल पाया जाता है।

चक्षुदर्शनी मिथ्यादृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट काल दो हजार सागरोपम है ॥ २७८ ॥

उदाहरण– कोई एक अचक्षुदर्शनी मिथ्यादृष्टि जीव चक्षुदर्शनियोंमें उत्पन्न हुआ, और चक्षुदर्शनी होकर दो हजार सागरोपम काल तक परिभ्रमण करके अचक्षुदर्शनको प्राप्त हो गया। (इस प्रकार सूत्रोक्त काल सिद्ध हुआ।)

शंका– निर्वृत्यपर्याप्तकोंके समान लब्ध्यपर्याप्तकोंमें चक्षुदर्शन क्यों नहीं कहा ?

समाधान– नहीं, क्योंकि, लब्ध्यपर्याप्तकोंके उसी भवमें चक्षुदर्शनोपयोगका अभाव पाया जाता है। किन्तु निर्वृत्यपर्याप्तकोंके तो उसी भवमें नियमसे ही चक्षुदर्शनोपयोग पाया जाता है।

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक चक्षुदर्शनी जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २७९ ॥

क्योंकि, चक्षुदर्शनसे रहित सासादनादि गुणस्थान नहीं पाये जाते हैं।

---

१ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। स. सि. १, ८.

२ उत्कर्षेण द्वे सागरोपमसहस्रे। स. सि. १, ८.

३ सासादनसम्यग्दृष्टयादीनां क्षीणकषायान्तानां सामान्योक्तः कालः। स. सि. १, ८.

अचक्खुदंसणीसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसाय-वीदरागछदुमत्था त्ति ओघं[1] ॥ २८० ॥

कुदो ? अचक्खुदंसणविरहिदसावरणजीवाणुवलंभा ।

ओधिदंसणी ओधिणाणिभंगो[2] ॥ २८१ ॥

केवलदंसणी केवलणाणिभंगो ॥ २८२ ॥

एदाणि दोण्णि सुत्ताणि अवहारिदणाणाणुवादाणं सुगमाणि ।

एवं दंसणमग्गणा समत्ता ।

लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय-णीललेस्सिय-काउलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा[3] ॥२८३॥

कुदो ? सव्वकालं तिलेस्सियमिच्छादिट्ठीणं विरहाभावा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[4] ॥ २८४ ॥

अचक्षुदर्शनियोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थान लेकर क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तकका काल ओघके समान है ॥ २८० ॥

क्योंकि, अचक्षुदर्शनसे रहित सावरण जीव नहीं पाये जाते हैं ।

अवधिदर्शनी जीवोंका काल अवधिज्ञानियोंके समान है ॥ २८१ ॥

केवलदर्शनी जीवोंका काल केवलज्ञानियोंके समान है ॥ २८२ ॥

ज्ञानमार्गणाके कालानुवादका अवधारण करनेवाले शिष्योंके लिए ये दोनों ही सूत्र सुगम हैं ।

इस प्रकार दर्शनमार्गणा समाप्त हुई ।

लेश्यामार्गणाके अनुवादसे कृष्णलेश्या, नीललेश्या और कापोतलेश्यावाले जीवोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ २८३ ॥

क्योंकि, सर्वकाल ही तीनों अशुभ लेश्यावाले मिथ्यादृष्टि जीवोंके विरहका अभाव है ।

एक जीवकी अपेक्षा तीनों अशुभ लेश्यावाले जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २८४ ॥

---

१ अचक्षुर्दर्शनिषु मिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकषायान्तानां सामान्योक्तः कालः । स. सि. १, ८.

२ अवधि-केवलदर्शनिनोरवधि-केवलज्ञानिवत् । स. सि. १, ८.

३ लेश्यानुवादेन कृष्णनीलकापोतलेश्यासु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । स. सि. १, ८.

४ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

किण्हलेस्साए ताव अंतोमुहुत्तपरूवणं कीरदे । तं जधा– णीललेस्साए अच्छिदस्स तिस्से अद्धाखएण किण्हलेस्सा जादा । सव्वलहुमंतोमुहुत्तमच्छिदूण णीललेस्सिओ जादो । । काउलेस्सिओ किण्ण होदि ? ण, किण्हलेस्साए परिणदस्स जीवस्स अणंतरमेव काउलेस्सापरिणमणसत्तीए असंभवा ।

णीललेस्साए उच्चदे– हीयमाण-वड्ढमाणकिण्हलेस्साए काउलेस्साए वा अच्छिदस्स णीललेस्सा आगदा । सव्वजहण्णमंतोमुहुत्तमच्छिय जहण्णकालाविरोहेण काउलेस्सं किण्हलेस्सं वा गदो, अण्णलेस्सागमणासंभवा । के वि आइरिया हीयमाण-लेस्साए चेव जहण्णकालो होदि त्ति भणंति ।

काउलेस्साए उच्चदे– [1]हीयमाणणीललेस्साए तेउलेस्साए वा अच्छिदस्स काउलेस्सा आगदा । तत्थ सव्वजहण्णमंतोमुहुत्तमच्छिय जदि तेउलेस्सादो आगदो, तो णीललेस्सं णेदव्वो । अह णीललेस्सादो आगदो तो तेउलेस्साए णेदव्वो, अण्णहा संकिलेस-विसोहीओ आउरंतस्स जहण्णकालाणुववत्तीदो । एत्थ जोगस्सेव एगसमओ

पहले कृष्णलेश्याके अन्तर्मुहूर्त कालकी प्ररूपणा की जाती है । वह इस प्रकार है– नीललेश्यामें वर्तमान किसी जीवके उस लेश्याके काल क्षय हो जानेसे कृष्णलेश्या हो गई, और वह उसमें सर्वलघु अन्तर्मुहूर्त काल रह करके नीललेश्यावाला हो गया ।

शंका– कृष्णलेश्याके पश्चात् कापोतलेश्यावाला क्यों नहीं होता है ?

समाधान– नहीं, क्योंकि, कृष्णलेश्यासे परिणत जीवके तदनन्तर ही कापोतलेश्यारूप परिणमन शक्तिका होना असंभव है ।

अब नीललेश्याके अन्तर्मुहूर्त कालकी प्ररूपणा करते हैं– हीयमाण कृष्णलेश्यामें अथवा वर्धमान कापोतलेश्यामें विद्यमान किसी जीवके नीललेश्या आ गई । तब वह जीव उसमें सर्व जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल रह करके जघन्य कालके अविरोधसे यथासंभव कापोतलेश्याको अथवा कृष्णलेश्याको प्राप्त हुआ, क्योंकि, इन दोनों लेश्याओंके सिवाय उसके अन्य किसी लेश्याका आगमन असंभव है । कितने ही आचार्य, हीयमान लेश्यामें ही जघन्य काल होता है, ऐसा कहते हैं ।

अब कापोतलेश्याके जघन्य कालको कहते हैं– हीयमाण नीललेश्यामें अथवा तेजोलेश्यामें विद्यमान जीवके कापोतलेश्या आ गई । वह जीव उस लेश्यामें सर्वजघन्य अन्तर्मुहूर्त काल रह करके, यदि तेजोलेश्यासे आया है तो नीललेश्यामें ले जाना चाहिए; और यदि नीललेश्यासे आया है तो तेजोलेश्यामें ले जाना चाहिए । अन्यथा संक्लेश और विशुद्धिको आपूरण करनेवाले जीवके जघन्य काल नहीं बन सकता है ।

शंका– यहां पर योगपरावर्तनके समान एक समयरूप जघन्य काल क्यों नहीं

१ म-प्रतौ ' हायमाण ' इत्यपि पाठः ।

जहण्णकालो किण्ण लब्भदे ? ण, जोग-कसायाणं व लेस्साए लेस्सापरावत्तीए गुण-परावत्तीए मरणेण वाघादेण वा एगसमयकालस्सासंभवा । ण ताव लेस्सापरावत्तीए एगसमओ लब्भदि, अप्पिदलेस्साए परिणमिदविदियसमए तिस्से विणासाभावा, गुणंतरं गदस्स विदियसमए लेस्संतरगमणाभावादो च । ण च गुणपरावत्तीए, अप्पिदलेस्साए परिणदविदियसमए गुणंतरगमणाभावा । ण च वाघादेण, तिस्से वाघादाभावा । ण च मरणेण, अप्पिदलेस्साए परिणदविदियसमए मरणाभावा ।

उक्कस्सेण तेत्तीस सत्तारस सत्त सागरोवमाणि सादिरेयाणि[1]

॥ २८५ ॥

एदेसिमुदाहरणाणि । तं जधा– णीललेस्साए अच्छिदस्स किण्हलेस्सा आगदा । तत्थ सव्वुक्कस्समंतोमुहुत्तमच्छिय अधो सत्तमीए पुढवीए उववण्णो । तत्थ तेत्तीसं सागरोवमाणि गमिय उववट्टिदो । पच्छा वि अंतोमुहुत्तकालं भावणवसेण सा चेव लेस्सा होदि । एवं दोहि अंतोमुहुत्तेहि सादिरेयाणि तेत्तीसं सागरोवमाणि किण्हलेस्साए उक्कस्सकालो होदि ।

पाया जाता है ।

समाधान– नहीं, क्योंकि, योग और कषायोंके समान लेश्यासे लेश्याके परिवर्तनद्वारा अथवा गुणस्थानके परिवर्तनद्वारा अथवा मरण और व्याघातद्वारा एक समय कालका पाया जाना असंभव है । इसका कारण यह है कि न तो लेश्यापरिवर्तनके द्वारा एक समय पाया जाता है, क्योंकि, विवक्षित लेश्यासे परिणत हुए जीवके द्वितीय समयमें उस लेश्याके विनाशका अभाव है । तथा इसी प्रकार विवक्षित लेश्याके साथ अन्य गुणस्थानको गये हुए जीवके द्वितीय समयमें अन्य लेश्यामें जानेका भी अभाव है । न गुणस्थानपरिवर्तनकी अपेक्षा एक समय संभव है, क्योंकि, विवक्षित लेश्यासे परिणत हुए जीवके द्वितीय समयमें अन्य गुणस्थानके गमनका अभाव है । न व्याघातकी अपेक्षा ही एक समय संभव है, क्योंकि, एक समयमें वर्तमानलेश्याके व्याघातका अभाव है । और न मरणकी अपेक्षा ही एक समय संभव है, क्योंकि, विवक्षित लेश्यासे परिणत हुए जीवके द्वितीय समयमें मरणका अभाव है ।

उक्त तीनों अशुभ लेश्याओंका उत्कृष्ट काल क्रमशः साधिक तेतीस सागरोपम, साधिक सतरह सागरोपम और साधिक सात सागरोपम प्रमाण है ॥ २८५ ॥

इनके उदाहरण इस प्रकार हैं– नीललेश्यामें विद्यमान किसी जीवके कृष्णलेश्या आ गई । उसमें वह सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल रह करके मरण कर नीचे सातवीं पृथिवीमें उत्पन्न हुआ । वहां वह तेतीस सागरोपम काल बिताकर निकला । उसके बाद भी अन्तर्मुहूर्त काल तक भावनाके वशसे वही ही लेश्या होती है । इस प्रकार दो अन्तर्मुहूर्तोंसे अधिक तेतीस सागरोपम कृष्णलेश्याका उत्कृष्ट काल होता है ।

---

१ उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सप्तदशसप्तसागरोपमाणि सातिरेकाणि । त. सि. १, ८.

णीललेस्साए उच्चदे– काउलेस्साए अच्छिदस्स णीललेस्सा आगदा। तत्थ दोहमंतोमुहुत्तमच्छिदूण पंचमीए पुढवीए उववण्णो। तत्थ सत्तारस सागरोवमाणि ताए लेस्साए गमिय उव्वट्टिदो। उव्वट्टिदस्स वि अंतोमुहुत्तं सा चेव लेस्सा होदि। एवं दोहि अंतोमुहुत्तेहि सादिरेयाणि सत्तारस सागरोवमाणि णीललेस्साए उक्कस्सकालो होदि।

काउलेस्साए उच्चदे– तेउलेस्साए अच्छिदस्स सगद्धाए खीणाए काउलेस्सा आगदा। तत्थ दोहमंतोमुहुत्तमच्छिय तदियाए पुढवीए उववण्णो। तीए लेस्साए सत्त सागरोवमाणि तत्थ गमिय उव्वट्टिदो। उव्वट्टिदस्स वि सा चेव लेस्सा अंतोमुहुत्तं होदि। एवं दोहि अंतोमुहुत्तेहि सादिरेयाणि सत्त सागरोवमाणि काउलेस्साए उक्कस्सकालो होदि।

सासणसम्मादिट्ठी ओघं[1] ॥ २८६ ॥

कुदो? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगो समओ, उक्कस्सेण रासीदो असंखेज्जगुणो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगो समओ, उक्कस्सेण छ आवलियाओ, एदेहि तिलेस्सागदसासणाणं तदो भेदाभावा।

अब नीललेश्याका काल कहते हैं– कापोतलेश्यामें वर्तमान जीवके नीललेश्या आ गई। उसमें उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त रह करके वह जीव पांचवीं पृथिवीमें उत्पन्न हुआ। वहां पर सतरह सागरोपम काल उस लेश्याके साथ बिताकर निकला। निकलने पर भी अन्तर्मुहूर्त तक वही ही लेश्या होती है। इस प्रकार दो अन्तर्मुहूर्तोंसे अधिक सतरह सागरोपम नीललेश्याका उत्कृष्ट काल होता है।

अब कापोतलेश्याका उत्कृष्ट काल कहते हैं– तेजोलेश्यामें विद्यमान किसी जीवके उस लेश्याके कालके क्षीण हो जाने पर कापोतलेश्या आगई। उसमें उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल रह कर मरण करके तृतीय पृथिवीमें उत्पन्न हुआ। वहां पर उसी लेश्याके साथ सात सागरोपम काल बिताकर निकला। निकलनेके पश्चात् भी वही लेश्या अन्तर्मुहूर्त तक रहती है। इस प्रकार दो अन्तर्मुहूर्तोंसे अधिक सात सागरोपम कापोतलेश्याका उत्कृष्ट काल होता है।

उक्त तीनों अशुभ लेश्यावाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २८६ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय, उत्कर्षसे अपनी राशिसे असंख्यातगुणा पल्योपमका असंख्यातवां भाग काल है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे छह आवलीप्रमाण काल है। इस प्रकारसे तीनों अशुभ लेश्याओंको प्राप्त हुए सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके कालका ओघसे कोई भेद नहीं है।

१ सासादनसम्यग्दृष्टि-सम्यग्मिथ्यादृष्टयोः सामान्योक्तः कालः। स. सि. १, ८.

सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं ॥ २८७ ॥

कुदो ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण सगरासीदो असंखेज्जगुणो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, एगजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तमिच्चेवेहि तदो भेदाभावा ।

असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा[1] ॥ २८८ ॥

सुगममेदं सुत्तं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[2] ॥ २८९ ॥

तं जहा– एगो असंजदसम्मादिट्ठी वड्ढमाणणीललेस्साए अच्छिदो किण्हलेस्सं गदो । तत्थ सव्वजहण्णमंतोमुहुत्तमच्छिय पुणो णीललेस्सामागदो । णीललेस्साए उच्चदे– हायमाणकिण्हलेस्सिओ णीललेस्सी जादो । ताए सव्वजहण्णमंतोमुहुत्तमच्छिय काउलेस्सं गदो । काउलेस्साए उच्चदे– एगो सम्मादिट्ठी हायमाण-

---

उक्त तीनों अशुभ लेश्यावाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २८७ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट काल अपनी राशिसे असंख्यातगुणा पल्योपमका असंख्यातवां भाग है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, इस प्रकार इनका ओघकालसे कोई भेद नहीं है ।

उक्त तीनों अशुभ लेश्यावाले असंयतसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ २८८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २८९ ॥

जैसे– वर्धमान नीललेश्यामें विद्यमान कोई एक असंयतसम्यग्दृष्टि जीव कृष्ण-लेश्याको प्राप्त हुआ । वहां पर सर्वजघन्य अन्तर्मुहूर्त काल रह करके पुनः नीललेश्यामें आ गया । अब नीललेश्याका काल कहते हैं– हायमान कृष्णलेश्यावाला कोई एक जीव नीललेश्यावाला हो गया । उस लेश्यामें सर्वजघन्य अन्तर्मुहूर्त काल तक रहकर कापोत-लेश्याको प्राप्त हो गया । अब कापोतलेश्याका काल कहते हैं– हायमान नीललेश्यावाला

---

१ असंयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । स. सि. १, ८.

२ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

णीललेस्सिओ काललेस्सं गदो। तत्थ सव्वजहण्णमंतोमुहुत्तमच्छिय तेउलेस्सिओ जादो। पुव्वं हायमाण-वड्ढमाणतेउ-काउलेस्साहिलो काउ-णीललेस्साणमागदाणं जहण्णकालो उत्तो, सो संपहि एत्थ किण्ण उच्चदे ? ण, पाएण तस्सुवएसाभावा।

उक्कस्सेण तेत्तीस सत्तारस सत्त सागरोवमाणि देसूणाणि[1] ॥२९०॥

किण्हलेस्साए देसूणाणि तेत्तीसं सागरोवमाणि, णीललेस्साए देसूणसत्तारस सागरोवमाणि, काउलेस्साए देसूण सत्त सागरोवमाणि। 'जहा उद्देसो तहा णिद्देसो' त्ति णायादो उदाहरणाणि उद्देसपरिवाडीए णिद्दिसंते। तं जहा– एक्को अट्ठावीस-संतकम्मिओ मिच्छाइट्ठी सत्तमाए पुढवीए किण्हलेस्साए सह उववण्णो। छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो विस्संतो विसुद्धो होदूण सम्मत्तं पडिवण्णो। अंतोमुहुत्तूण-तेत्तीसं सागरोवमाणि भवसंबंधेण अवट्ठिदाए किण्हलेस्साए गमिय अंतोमुहुत्तावसेसे मिच्छत्तं गंतूण आउअं बंधिय विस्समिय मदो, तिरिक्खो जादो। एवं छहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणाणि तेत्तीसं सागरोवमाणि किण्हलेस्साए उक्कस्सकालो होदि।

आचार्य श्री सुविधिसागरजी महाराज

एक असंयतसम्यग्दृष्टिजीव कापोतलेश्याको प्राप्त हुआ। उसमें सर्वजघन्य अन्तर्मुहूर्त काल रह करके तेजोलेश्याको प्राप्त हुआ।

शंका– पहले हायमान तेजोलेश्या और वर्धमान कापोतलेश्यासे क्रमशः कापोत और नीललेश्यामें आये हुए जीवोंका जघन्य काल कहा है, सो वह अब यहां पर क्यों नहीं कहते हैं ?

समाधान– नहीं, क्योंकि, प्रायः आजकल उस प्रकारके उपदेशका अभाव है।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेत्तीस सागरोपम, सतरह सागरोपम और सात सागरोपम है ॥ २९० ॥

कृष्णलेश्यामें कुछ कम तेतीस सागरोपम, नीललेश्यामें कुछ कम सतरह सागरोपम और कापोतलेश्यामें कुछ कम सात सागरोपम काल है। सो 'जैसा उद्देश होता है, उसी प्रकारसे निर्देश होता है' इस न्यायानुसार इनके उदाहरण भी उद्देशकी परिपाटीसे निर्दिष्ट किये जाते हैं। वे इस प्रकारसे हैं– मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक मिथ्यादृष्टि जीव सातवीं पृथिवीमें कृष्णलेश्याके साथ उत्पन्न हुआ। छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त होकर, विश्राम ले तथा विशुद्ध होकर सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ। सम्यक्त्वके साथ अन्तर्मुहूर्त कम तेतीस सागरोपम भवसम्बन्धसे अवस्थित कृष्णलेश्याके साथ बिताकर, अन्तर्मुहूर्त कालके अवशिष्ट रहने पर मिथ्यात्वको जाकर परभवकी आयु बांधकर, विश्राम लेकर मरा और तिर्यंच हुआ। इस प्रकार छह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम तेतीस सागरोपम कृष्णलेश्याका उत्कृष्ट काल होता है।

---

१ उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सप्तदशसप्तसागरोपमाणि देवोनानि। स. सि. १, ८.

एगो अट्ठावीससंतकम्मिओ णीललेस्साए पंचमपुढवीए हेट्ठिमपत्थडे उक्कस्साउट्ठिदिओ होदूण उववण्णो। तत्थ जहण्णिया किण्हलेस्सा चे ण, सव्वेसिं णेरइयाणं तत्थतणाणं तीए चेव लेस्साए अभावा। एक्कम्हि पत्थडे भिण्णलेस्साणं कधं संभवो? ण, विरोहाभावा। एसो अत्थो सव्वत्थ जाणिदव्वो। छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो विस्संतो विसुद्धो होदूण सम्मत्तं पडिवण्णो। आउट्ठिदिमणुपालिय मदो मणुस्सो जादो। तत्थ वि अंतोमुहुत्तं तीए चेव लेस्साए अच्छिदूण लेस्संतरं गदो। पच्छिल्लमंतोमुहुत्तं पुव्विल्लेसु अंतोमुहुत्तेसु ओहिय सुद्धसेसेण ऊणाणि सत्तारस सागरोवमाणि असंजदसम्माविट्ठिस्स णीललेस्साए उक्कस्सकालो होदि। एगो मिच्छादिट्ठी तदियाए पुढवीए उक्कस्साउट्ठिदिओ काउलेस्सिओ होदूण उववण्णो। छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो विस्संतो विसुद्धो होदूण सम्मत्तं पडिवज्जिय आउट्ठिदिमणुपालिय मणुसो जादो। पच्छा वि अंतोमुहुत्तं सा चेव लेस्सा होदि। पच्छिल्लं

मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक जीव नीललेश्याके साथ पांचवीं पृथिवीके अधस्तन प्रस्तारके उत्कृष्ट आयुकर्मकी स्थितिवाला हो करके उत्पन्न हुआ ?

शंका— पांचवी पृथिवीके अधस्तन प्रस्तारमें तो अधन्य कृष्णलेश्या होती है ?

समाधान— नहीं, पांचवीं पृथिवीके अधस्तन प्रस्तारके समस्त नारकियोंके उसी ही लेश्याका अभाव है।

शंका— एक ही प्रस्तारमें दो भिन्न लेश्याओंका होना कैसे संभव है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, एक ही प्रस्तारमें भिन्न भिन्न जीवोंके भिन्न भिन्न लेश्याओंके होनेमें कोई विरोध नहीं है। (अर्थात् कुछ नारकियोंके उत्कृष्ट नीललेश्या ही होती है और कुछके अधन्य कृष्णलेश्या होती है।) यही अर्थ सर्वत्र जानना चाहिए।

इस प्रकार पांचवीं पृथिवीमें उत्पन्न हुआ वह जीव छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो, विश्राम लेकर तथा विशुद्ध होकर सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ। वहां अपनी आयुस्थितिका परिपालन करके मरा और मनुष्य हुआ। वहां पर भी अन्तर्मुहूर्त तक उसी पूर्वलेश्याके साथ रह कर अन्य लेश्याको प्राप्त हुआ। इस प्रकार पिछले अन्तर्मुहूर्तको पूर्वके तीन अन्तर्मुहूर्तोंसे कम करके बचे हुए अन्तर्मुहूर्तोंसे कम सतरह सागरोपम असंयतसम्यग्दृष्टिके नीललेश्याका उत्कृष्ट काल होता है।

एक मिथ्यादृष्टि जीव तीसरी पृथिवीमें वहां की उत्कृष्ट आयुकर्मकी स्थितिवाला तथा कापोतलेश्यावाला होकरके उत्पन्न हुआ और छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो, विश्राम ले, विशुद्ध होकर सम्यक्त्वको प्राप्त करके और अपनी आयुकर्मकी स्थितिको भोग करके मनुष्य हुआ। पीछे भी अन्तर्मुहूर्त तक वही ही लेश्या होती है। इस पिछले अन्तर्मुहूर्तको

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

अंतोमुहुत्तं पुव्विल्लतिसु[1] अंतोमुहुत्तेसु सोहिय सुद्धसेसेण ऊणाणि सत्त सागरोवमाणि काउलेस्साए उक्कस्सकालो होदि ।

तेउलेस्सिय-पम्मलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण सव्वद्धा[2] ॥२९१॥

सुगममेदं सुत्तं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[3] ॥ २९२ ॥

तं जधा– हायमाणपम्मलेस्साए अच्छिदस्स सगद्धाखएण तेउलेस्सा आगदा । तत्थ सव्वजहण्णमंतोमुहुत्तमच्छिय काउलेस्सं गदो । एवमसंजदसम्मादिट्ठिस्स वि तेउलेस्साए जहण्णकालो वत्तव्वो । पम्मलेस्साए उच्चदे– एक्को सुक्कलेस्साए हायमाणाए अच्छिदो मिच्छादिट्ठी तिस्से अद्धाखएण पम्मलेस्सिओ जादो । सव्वजहण्णमंतोमुहुत्तमच्छिदूण तेउलेस्सं गदो । एवं जहण्णेण अंतोमुहुत्तं मिच्छादिट्ठी पम्मलेस्साए । एवमसंजदसम्मादिट्ठिस्स वि जहण्णकालो वत्तव्वो ।

पहलेके तीन अन्तर्मुहूर्तोंमेंसे घटा कर शेष बचे हुए अन्तर्मुहूर्तोंसे कम सात सागरोपम कापोतलेश्याका उत्कृष्ट काल होता है ।

तेजोलेश्या और पद्मलेश्यावालोंमें मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ २९१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य अन्तर्मुहूर्त है ॥ २९२ ॥

जैसे– हायमान पद्मलेश्यामें विद्यमान किसी मिथ्यादृष्टि जीवके अपनी लेश्याके काल क्षय हो जानेसे तेजोलेश्या आ गई । उसमें सर्वजघन्य अन्तर्मुहूर्त काल रह करके वह कापोतलेश्याको प्राप्त हो गया । इस प्रकार असंयतसम्यग्दृष्टि जीवके भी तेजोलेश्याका जघन्य काल कहना चाहिए ।

अब पद्मलेश्याका जघन्य काल कहते हैं– कोई एक मिथ्यादृष्टि जीव हायमान शुक्ललेश्यामें विद्यमान था । उस लेश्याके कालके क्षय हो जानेसे वह पद्मलेश्यावाला हो गया । वहां सर्वजघन्य अन्तर्मुहूर्त काल रह करके तेजोलेश्याको प्राप्त हुआ । इस प्रकार जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त काल तक वह मिथ्यादृष्टि जीव पद्मलेश्यामें रहा । इस प्रकारसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीवका भी जघन्य काल कहना चाहिए ।

---

१ प्रतिषु ' अंतोमुहुत्तं सा चेव लेस्सा पुव्विल्लतिसु ' इति पाठः ।

२ तेजःपद्मलेश्ययोर्मिथ्यादृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्टयोर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । स. सि. १, ८.

३ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

उक्कस्सेण वे अट्ठारस सागरोवमाणि सादिरेयाणि[1] ॥ २९३ ॥

तं जधा– एक्को मिच्छादिट्ठी काउलेस्साए अच्छिदो। तिस्से अद्धाखएण तेउलेस्सिओ जादो। तत्थ अंतोमुहुत्तमच्छिदूण मदो सोहम्मे उववण्णो। वे सागरोवमाणि पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेणब्भहियाणि जीविदूण चुदो णट्ठलेस्सिओ जादो। लद्धा सगट्ठिदी पुव्विल्लंतोमुहुत्तेण अब्भधिया। अंतोमुहुत्तूणअड्ढाइज्जसागरोवममेत्ता ट्ठिदी किण्ण लब्भदे ? ण, मिच्छादिट्ठि-सम्मादिट्ठीहि उवरिमदेवेसु बद्धमाउअ-मोवट्टणाघादेण घादिय मिच्छादिट्ठी जदि सुट्ठु महंतं करेदि, तो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेणब्भधियवेसागरोवमाणि करेदि, सोहम्मे उप्पज्जमाणमिच्छादिट्ठीणं एवम्हावो अहियाउट्ठवणे सत्तीए अभावा। अड्ढाइज्जसागरोवमट्ठिदीए उप्पण्ण-सम्मादिट्ठि मिच्छत्तं णेदूण उक्कस्सकालं भणिस्सामो ? ण, अंतोमुहुत्तूणअड्ढाइज्ज-सागरोवमेसु उप्पण्णसम्मादिट्ठिस्स सोहम्मणिवासिस्स मिच्छत्तगमणे संभवाभावा।

तेजोलेश्याका उत्कृष्ट काल सातिरेक दो सागरोपम और पद्मलेश्याका उत्कृष्ट काल सातिरेक अठारह सागरोपम है ॥ २९३ ॥

जैसे– एक मिथ्यादृष्टि जीव कापोतलेश्यामें विद्यमान था। उस लेश्याके कालक्षयसे वह तेजोलेश्यावाला हो गया। उसमें अन्तर्मुहूर्त रहकर मरा और सौधर्मकल्पमें उत्पन्न हुआ। वहां पर पल्योपमके असंख्यातवें भागसे अधिक दो सागरोपम काल तक जीवित रह कर च्युत हुआ और उसकी तेजोलेश्या नष्ट हो गई। इस प्रकार पूर्वके अन्तर्मुहूर्तसे अधिक दो सागरोपम सौधर्मकल्पकी मिथ्यादृष्टिसम्बन्धी उत्कृष्ट स्थिति तेजोलेश्याको प्राप्त हो गई।

शंका– मिथ्यादृष्टि जीवके तेजोलेश्याकी उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्तसे कम अढ़ाई सागरोपमप्रमाण क्यों नहीं पाई जाती है ?

समाधान– नहीं, क्योंकि, मिथ्यादृष्टि या सम्यग्दृष्टि जीवोंके द्वारा उपरिम देवोंमें बांधी हुई आयुको उद्वर्तनाघातसे घात करके मिथ्यादृष्टि जीव यदि अच्छी तरह खूब बड़ी भी स्थिति करे, तो पल्योपमके असंख्यातवें भागसे अभ्यधिक दो सागरोपम करता है, क्योंकि, सौधर्मकल्पमें उत्पन्न होनेवाले मिथ्यादृष्टि जीवके इस उत्कृष्ट स्थितिसे अधिक आयुकी स्थिति स्थापन करनेकी शक्तिका अभाव है।

शंका– यदि हम अढ़ाई सागरोपम स्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुए सम्यग्दृष्टिको मिथ्यात्वमें ले जाकर तेजोलेश्याका उत्कृष्ट काल कहें तो ?

समाधान– नहीं, क्योंकि, अन्तर्मुहूर्त कम अढ़ाई सागरोपमकी स्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुए सौधर्मनिवासी सम्यग्दृष्टि देवके मिथ्यात्वमें आनेकी संभावनाका अभाव है।

[1] उत्कर्षेण द्वे सागरोपमे अष्टादश च सागरोपमाणि सातिरेकाणि। स. सि. १, ८.

तं पि कधं णव्वदे ? पलिदोवमस्स असंखेज्जविभागब्भहियबेसागरोवममेत्ता सोहम्मीसाणे मिच्छाइट्ठि-आउट्ठिदी होदि त्ति आइरियपरंपरागदोवदेसा । अधवा अण्णेणुवएसेण अड्ढाइज्जसागरोवमाणि देसूणाणि मिच्छाविट्ठिस्स वि संभवंति. भवणवासिसहस्सारंतदेवेसु[1] मिच्छाइट्ठिस्स दुविहाउट्ठिविपरूवणण्णहाणुववत्तीदो ।

असंजदसम्माविट्ठिस्स उच्चदे– एक्को असंजदो सोहम्मीसाणदेवेसु बे सागरोवमाणि अंतोमुहुत्तूणं सागरोवमस्स अद्धं च आउवं करिय अंतोमुहुत्तं तेउलेस्सी होदूण कमेण कालं करिय सोहम्मे उववण्णो । सगट्ठिदिमच्छिय पुणो मणुसेसुववज्जिय अंतोमुहुत्तं तीए चेव लेस्साए परिणमिय पम्मलेस्सं काउलेस्सं वा गदो । लद्धाणि अंतोमुहुत्तूणअड्ढाइज्जसागरोवमाणि संपुण्णाणि । अहियाणि वा किण्ण होंति त्ति उत्ते ण, पुव्वावरकालम्हि लद्धअंतोमुहुत्तादो अद्धसागरोवमम्हि पडिदंतोमुहुत्तस्स बहुत्तुवदेसा ।

पम्मलेस्साए उच्चदे– एक्को मिच्छाविट्ठी वड्ढमाणतेउलेस्सिओ सगद्धाए

शंका– यह भी कैसे जाना जाता है ?

समाधान– पल्योपमके असंख्यातवें भागसे अधिक दो सागरोपमप्रमाण सौधर्म-ईशानकल्पमें मिथ्यादृष्टिकी आयुस्थिति होती है; इस प्रकारका आचार्यपरम्परागत उपदेश है अथवा अन्य उपदेशसे कुछ कम अढ़ाई सागरोपमकाल सौधर्म-ईशानकल्पवासी मिथ्यादृष्टि देवके भी संभव है, अन्यथा, भवनवासियोंसे लगाकर सहस्रारकल्प तकके देवोंमें मिथ्यादृष्टि जीवके दो प्रकारकी आयुस्थितिकी प्ररूपणा हो नहीं सकती थी ।

अब असंयतसम्यग्दृष्टिके उत्कृष्ट तेजोलेश्याके कालको कहते हैं– एक असंयत-सम्यग्दृष्टि जीव सौधर्म-ऐशान देवोंमें दो सागरोपम और अन्तर्मुहूर्त कम सागरोपमके अर्ध भागप्रमाण आयुको बांध करके एक अन्तर्मुहूर्त तेजोलेश्यावाला हो करके और कमसे मर कर सौधर्मकल्पमें उत्पन्न हुआ । पुनः अपनी आयुस्थिति तक वहां रह कर और मनुष्योंमें उत्पन्न होकर अन्तर्मुहूर्त तक उसी ही लेश्यासे परिणत हो, पद्मलेश्या या कापोतलेश्याको प्राप्त हुआ । इस प्रकारसे अन्तर्मुहूर्त कम पूरा अढ़ाई सागरोपमकाल प्राप्त हो गया ।

शंका– अन्तर्मुहूर्तसे कम अढ़ाई सागरोपमकालसे अधिक काल क्यों नहीं होता है ?

समाधान– नहीं, क्योंकि, अढ़ाई सागरोपमकालके आदि और अन्तमें लब्ध होनेवाले अन्तर्मुहूर्तसे अर्ध सागरोपम कालमें पतित अन्तर्मुहूर्तके बहुत्वका उपदेश पाया जाता है ।

अब पद्मलेश्याके उत्कृष्ट कालको कहते हैं– वर्धमान तेजोलेश्यावाला कोई एक

---

१ प्रतिषु ' देवीसु ' इति पाठः ; ।

खीणाए पम्मलेस्सिओ जादो। दोहमंतोमुहुत्तब्भहियाणि सदार-सहस्सारकप्पवासियदेवेसु उववण्णो। तत्थ अट्ठारह सागरोवमाणि पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेणब्भहियाणि जीविदूण चुदस्स णट्ठा पम्मलेस्सा। असंजदसम्मादिट्ठिस्स उच्चदे– एक्को संजदो पम्मलेस्साए अंतोमुहुत्तमच्छिदो सदार-सहस्सारदेवेसु अट्ठारस सागरोवमाणि अंतोमुहुत्तूणमद्धसागरं च आउअं करिय कमेण कालं करिय सहस्सारदेवेसु उववज्जिय सम्मत्तं घेत्तूण तमच्छिय चुदो मणुसो जादो। तत्थ वि अंतोमुहुत्तं पम्मलेस्साए अच्छिय सुक्कलेस्सं तेउलेस्सं वा गदो। लद्धाणि अंतोमुहुत्तूणद्धसागरोवमेण अहियाणि अट्ठारस सागरोवमाणि।

सासणसम्मादिट्ठी ओघं[1] ॥ २९४ ॥

कुदो? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण सगरासीदो असंखेज्जगुणो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण छ आवलियाओ, इच्चेदेहि तेउ पम्मलेस्सियसासणाणं तत्तो भेदाभावा।

सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं[1] ॥ २९५ ॥

मिथ्यादृष्टि जीव अपने कालके क्षीण होनेपर पद्मलेश्यावाला हो गया। और वहां उस लेश्यामें उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल तक रह करके शतार-सहस्रारकल्पवासी देवोंमें उत्पन्न हुआ। वहां पर पल्योपमके असंख्यातवें भागसे अधिक अठारह सागरोपम काल तक जीवित रह कर च्युत हुआ, तब उसकी पद्मलेश्या नष्ट हो गई।

अब असंयतसम्यग्दृष्टि जीवके पद्मलेश्याका उत्कृष्ट काल कहते हैं—एक संयत पद्मलेश्यामें अन्तर्मुहूर्त काल तक रहा और शतार-सहस्रार देवोंमें अठारह सागरोपम और अन्तर्मुहूर्त कम अर्ध सागरोपमकी आयुको बांध कर, क्रमसे मरण कर, सहस्रारकल्पके देवोंमें उत्पन्न होकर और अपनी स्थितिप्रमाण वहां रह करके च्युत हो मनुष्य होगया। वहां पर भी अन्तर्मुहूर्त तक पद्मलेश्यामें रह करके शुक्ललेश्याको या तेजोलेश्याको प्राप्त हुआ। इस प्रकार अन्तर्मुहूर्त कम आधे सागरोपम कालसे अधिक अठारह सागरोपम प्राप्त हुए।

तेजोलेश्या और पद्मलेश्यावाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २९४ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे अपनी राशिसे असंख्यातगुणा पल्योपमका असंख्यातवां भाग काल है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे छह आवलिप्रमाण काल है। इस रूपसे तेजोलेश्या और पद्मलेश्यावाले सासादनसम्यग्दृष्टियोंके कालका ओघप्ररूपणासे कोई भेद नहीं है।

उक्त दोनों लेश्यावाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २९५ ॥

[1] सासादनसम्यग्दृष्टि-सम्यग्मिथ्यादृष्ट्योः सामान्योक्तः कालः। स. सि. १, ८.

कुदो ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, एगजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण [1]अंतोमुहुत्तमिच्चेएहि तेउ-पम्मलेस्सियसम्मामिच्छादिट्ठीणं[2] तत्तो भेदाभावा ।

संजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजदा केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा[3] ॥ २९६ ॥

सुगममेदं सुत्तं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं[4] ॥ २९७ ॥

तत्थ ताव संजदासंजदाणमेगसमयपरूवणा कीरदे—एक्को मिच्छादिट्ठी असंजद-सम्मादिट्ठी वा वड्ढमाणतेउलेस्सिओ एगसमओ तेउलेस्साए अत्थि त्ति संजमासंजमं पडिवण्णो । एगसमयं संजमासंजमं तेउलेस्साए सह विट्ठं । विदियसमए संजदासंजदो पम्मलेस्सं गदो । एसा लेस्सापरावत्तो (१) । अधवा एक्को संजदासंजदो हायमाण-पम्मलेस्सिओ पम्मलेस्सद्धाए खीणाए एगसमयं संजमासंजमगुणो अत्थि त्ति तेउलेस्सिओ जादो । तेउलेस्साए सह संजमासंजमो एगसमयं दिट्ठो । विदियसमए तीए लेस्साए सह

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल पल्योपमका असंख्यातवां भागप्रमाण है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इस प्रकारसे तेजोलेश्या और पद्मलेश्यावाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका ओघप्ररूपणासे कोई भेद नहीं है।

उक्त दोनों लेश्यावाले संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ २९६ ॥

यह सूत्र सुगम है।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल एक समय है ॥ २९७ ॥

इनमेंसे पहले संयतासंयतोंके लेश्यासम्बन्धी एक समयकी प्ररूपणा की जाती है—वर्धमान तेजोलेश्यावाला एक मिथ्यादृष्टि अथवा असंयतसम्यग्दृष्टि जीव तेजोलेश्याके कालमें एक समय अवशेष रह जानेपर संयमासंयमको प्राप्त हुआ । एक समय संयमासंयम तेजोलेश्याके साथ दृष्टिगोचर हुआ। दूसरे समय वह संयतासंयत पद्मलेश्याको प्राप्त हो गया। यह लेश्यापरिवर्तनसम्बन्धी एक समयकी प्ररूपणा है (१)। अथवा, हीयमान पद्मलेश्यावाला एक संयतासंयत पद्मलेश्याके कालके क्षीण हो जाने पर एक समय संयमासंयम गुणस्थानका अवशेष रहने पर तेजोलेश्यावाला हो गया। तेजोलेश्याके साथ संयमासंयम एक समय दृष्ट

---

१ प्रतिषु 'अंतोमुहुत्तो मुहुत्त-' इति पाठः । २ प्रतिषु 'मिच्छादिट्ठीणं' इति पाठः ।
३ संयतासंयतप्रमत्ताप्रमत्तानां नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । स. सि. १, ८.
४ एकजीवं प्रति जघन्येनैकः समयः । स. सि. १, ८.

असंजदसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी सासणसम्मादिट्ठी मिच्छादिट्ठी वा जादो। एसा गुणपरावत्ती (२)। मरण-वाघादेहि एगसमओ ण लब्भदि।

संपहि पम्मलेस्साए उच्चदे। तं जधा– एगो मिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी वा वड्ढमाणपम्मलेस्सिओ पम्मलेस्सद्धाए एगो समओ अत्थि त्ति संजमासंजमं पडिवण्णो। विदियसमए संजमासंजमेण सह सुक्कलेस्सं गदो। एसा लेस्सापरावत्ती (३)। अधवा वड्ढमाणतेउलेस्सिओ संजदासंजदो तेउलेस्सद्धाए खएण पम्मलेस्सिओ जादो। एगसमयं पम्मलेस्साए सह संजमासंजमं विट्ठं, विदियसमए अप्पमत्तो जादो। एसा गुणपरावत्ती। अधवा संजदासंजदो हायमाणसुक्कलेस्सिओ सुक्कलेस्सद्धाखएण पम्मलेस्सिओ जादो। विदियसमए पम्मलेस्सिओ चेव, किंतु असंजदसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी सासणसम्मादिट्ठी मिच्छादिट्ठी वा जादो। एसा गुणपरावत्ती (४)। मिच्छादिट्ठी-असंजदसम्मादिट्ठिगुणट्ठाणेसु तेउ-पम्मलेस्साणं लेस्सा-गुणपरावत्तीओ अस्सिदूण एगसमओ किण्ण उच्चदे? ण,

हुआ। द्वितीय समयमें उसी लेश्याके साथ असंयतसम्यग्दृष्टि, या सम्यग्मिथ्यादृष्टि, या सासादनसम्यग्दृष्टि अथवा मिथ्यादृष्टि हो गया। यह गुणस्थानपरिवर्तनके द्वारा एक समयकी प्ररूपणा हुई (२)। यहां पर मरण और व्याघातके द्वारा एक समय नहीं पाया जाता है।

अब पद्मलेश्याके एक समयकी प्ररूपणा कहते हैं। जैसे– वर्धमान पद्मलेश्यावाला कोई एक मिथ्यादृष्टि, अथवा असंयतसम्यग्दृष्टि जीव, पद्मलेश्याके कालमें एक समय अवशेष रहने पर संयमासंयमको प्राप्त हुआ। द्वितीय समयमें संयमासंयमके साथ ही शुक्ललेश्याको प्राप्त हुआ। यह लेश्यापरावर्तनसम्बन्धी एक समयकी प्ररूपणा हुई (३)। अथवा, वर्धमान तेजोलेश्यावाला कोई संयतासंयत तेजोलेश्याके कालके क्षय हो जानेसे पद्मलेश्यावाला हो गया। एक समय पद्मलेश्याके साथ संयमासंयम दृष्टिगोचर हुआ। और वह द्वितीय समयमें अप्रमत्तसंयत हो गया। यह गुणस्थानपरिवर्तनकी अपेक्षा एक समयकी प्ररूपणा हुई। अथवा, हायमान शुक्ललेश्यावाला कोई संयतासंयत जीव शुक्ललेश्याके कालके पूरे हो जाने पर पद्मलेश्यावाला हो गया। द्वितीय समयमें वह पद्मलेश्यावाला ही है, किन्तु असंयतसम्यग्दृष्टि, अथवा सम्यग्मिथ्यादृष्टि अथवा सासादनसम्यग्दृष्टि अथवा मिथ्यादृष्टि हो गया। यह गुणस्थानपरिवर्तनकी अपेक्षा एक समयकी प्ररूपणा हुई (४)।

शंका– मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि, इन दो गुणस्थानोंमें तेज और पद्मलेश्यावाले जीवोंकी लेश्या और गुणस्थानसम्बन्धी परिवर्तनोंको आश्रय करके एक समयकी प्ररूपणा क्यों नहीं कही?

समाधान– नहीं, क्योंकि, इन गुणस्थानोंमें एक समयकी प्ररूपणाका होना संभव नहीं है।

तत्थ एगसमयसंभवाभावा। वट्टमाणतेउलेस्सादो पम्मलेस्सं गंतूण विदियसमए उवरिमगुणट्ठाणं गच्छंताणं मिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीणं पम्मलेस्साए एगसमओ लब्भदि। हायमाणतेउलेस्साए एगसमओ अत्थि त्ति मिच्छादिट्ठिअसंजदसम्मादिट्ठि-गुणट्ठाणं पडिवण्णाणं तेउ-लेस्साए एगसमओ लब्भदि,। एवं काउ-णीललेस्साणं पि एगसमओ लब्भदि त्ति उत्ते ण लब्भदि, जदो मिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठिणो एगसमयं लेस्साए परिणमिय विदियसमए अण्णगुणं लेस्संतरं वा ण गच्छंति। एदाणि गुणट्ठाणाणि पडिवज्जंता वि लेस्साए एगो समओ अत्थि त्ति ण पडिवज्जंति। कुदो ? सभावदो। हेट्ठिमगुणट्ठाणाणि लेस्साए एगो समओ अत्थि त्ति जहा संजमा-संजमगुणट्ठाणं पडिवज्जंति, पमत्तसंजदो तहा संजमासंजमगुणट्ठाणं किण्ण पडिवज्जदे ? सहावदो। अधवा णत्थि एत्थ पडिसेहो।

पमत्तस्स उच्चदे– एक्को पमत्तो हायमाण-पम्मलेस्साए अच्छिदो। तिस्से अद्धाखएण पमत्तद्धाए एगो समओ अत्थि त्ति तेउलेस्सिओ जादो एगसमओ दिट्ठो।

वर्धमान तेजोलेश्यासे पद्मलेश्याको जाकर द्वितीय समयमें उपरिम गुणस्थानोंको जानेवाले मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंके पद्मलेश्याके साथ एक समय पाया जाता है। इसी प्रकार हायमान तेजोलेश्यामें एक समय अवशेष रहने पर मिथ्यादृष्टि या असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानको प्राप्त होनेवाले जीवोंके तेजोलेश्याके साथ एक समय पाया जाता है।

शंका– तेज और पद्मलेश्याके समान ही कापोत और नीललेश्याओंका भी एक समय पाया जाता है, (फिर उसे क्यों नहीं कहा) ?

समाधान– कापोत और नीललेश्याके साथ एक समय नहीं पाया जाता है, क्योंकि, मिथ्यादृष्टि अथवा असंयतसम्यग्दृष्टि जीव एक समयमें विवक्षित लेश्याके द्वारा परिणत होकर द्वितीय समयमें अन्य गुणस्थानको, अथवा अन्य लेश्याको नहीं जाते हैं। तथा इन गुणस्थानोंको प्राप्त होनेवाले भी जीव विवक्षित धारण की गई लेश्याके कालमें एक समय अवशिष्ट रहने पर उन उन गुणस्थानोंको नहीं प्राप्त होते हैं, क्योंकि, ऐसा स्वभाव ही है।

शंका– अपनी लेश्यामें एक समय रहने पर जैसे नीचेके गुणस्थानवाले संयमासंयम गुणस्थानको प्राप्त होते हैं, उसी प्रकारसे प्रमत्तसंयत भी संयमासंयम गुणस्थानको क्यों नहीं प्राप्त होता है ?

समाधान– ऐसा स्वभाव ही है। अथवा, इस विषयमें कोई प्रतिषेध नहीं है।

अब प्रमत्तसंयतका काल कहते हैं– एक प्रमत्तसंयत हायमान पद्मलेश्यामें विद्यमान था। उस लेश्याके कालक्षयसे तथा प्रमत्तसंयत गुणस्थानके कालमें एक समय अवशेष रहने पर वह तेजोलेश्यावाला हो गया। एक समय वह तेजोलेश्याके साथ प्रमत्तसंयतके

विदियसमए तेउलेस्सा चेव, किंतु संजमासंजमं असंजमेण सह सम्मत्तं सम्मामिच्छत्तं सासणसम्मत्तं मिच्छत्तं वा गदो। एसा गुणपरावत्ती (१)। अथवा, अप्पमत्तो-तेउलेस्साए अच्छिदो। तिस्से अप्पमत्तद्धाए खएण पमत्तो जादो। पमत्तो तेउलेस्साए सह एगसमयं दिट्ठो। विदियसमए मदो देवो जादो। एवं मरणेण (२)। पमत्त-संजदो तेउलेस्साए परिणमिय विदियसमए जेण लेस्संतरं ण गच्छदि, पमत्तगुणं पडिवज्जमाणो वि तेउलेस्सद्धाए एगसमओ अत्थि त्ति ण पडिवज्जदि, तेण लेस्सा-परावत्ती णत्थि। अप्पमत्तो हायमाणपम्मलेस्सिओ पम्मलेस्सद्धाए एगो समओ अत्थि त्ति पमत्तो जादो। विदियसमए वि पमत्तो चेव, किंतु तेउलेस्सिओ जादो। एसा लेस्सापरावत्ती (३)। अथवा पमत्तो तेउलेस्साए अच्छिदो। तिस्से अद्धाखएण पम्मलेस्सा आगदा। पम्मलेस्साए सह पमत्तो एगसमयं दिट्ठो। विदियसमए पम्मलेस्सिओ चेव, किंतु अप्पमत्तो जादो। एसा गुणपरावत्ती। पम्मलेस्साए अच्छिदो पमत्तो तिस्से अद्धाखएण तेउलेस्साए परिणमिय विदियसमए अप्पमत्तो किण्ण कीरदे? ण, हीयमाणलेस्साए अप्पमत्तगुणग्गहणाभावा। मिच्छत्तादिगुणं

रूपमें दृष्टिगोचर हुआ। पश्चात् द्वितीय समयमें तेजोलेश्या ही रही, किन्तु वह संयमासंयमको अथवा असंयमके साथ सम्यक्त्वको अथवा सम्यग्मिथ्यात्वको अथवा सासादनगुणस्थानको अथवा मिथ्यात्वगुणस्थानको प्राप्त हो गया। यह एक समयरूप गुणस्थानपरिवर्तन है (१)। अथवा कोई एक अप्रमत्तसंयत तेजोलेश्यामें वर्तमान था। उसी लेश्यामें रहते हुए ही अप्रमत्तगुणस्थानके कालक्षयसे वह प्रमत्तसंयत हो गया। वह प्रमत्तसंयत तेजोलेश्याके साथ एक समय दृष्टिगोचर हुआ। द्वितीय समयमें मरा और देव हो गया। इस प्रकार मरणकी अपेक्षा एक समय उपलब्ध हुआ (२)। प्रमत्तसंयत तेजोलेश्याके साथ परिणमित होकर द्वितीय समयमें चूंकि, दूसरी अन्य लेश्याको नहीं प्राप्त होता है, और प्रमत्तसंयत गुणस्थानको प्राप्त होता हुआ भी तेजोलेश्याके कालमें एक समय शेष रहता है, इसी लिए वह लेश्यान्तरको नहीं प्राप्त होता है। इस कारणसे यहां पर लेश्याका परिवर्तन नहीं है। हीयमान पद्मलेश्यावाला कोई अप्रमत्तसंयत, पद्मलेश्याके कालमें एक समय अवशिष्ट रहने पर प्रमत्तसंयत हो गया। द्वितीय समयमें भी वह प्रमत्तसंयत ही रहा, किन्तु तेजोलेश्यावाला हो गया। यह लेश्यासम्बन्धी परिवर्तन है (३)। अथवा, कोई प्रमत्तसंयत तेजोलेश्यामें विद्यमान था। उसके उस तेजोलेश्याके कालक्षयसे पद्मलेश्या आगई। पद्मलेश्याके साथ वह प्रमत्तसंयत एक समय दृष्टिगोचर हुआ। द्वितीय समयमें वह पद्मलेश्यावाला ही रहा, किन्तु अप्रमत्तसंयत हो गया। यह गुणस्थान-परिवर्तन हुआ।

शंका— पद्मलेश्याके कालमें विद्यमान कोई प्रमत्तसंयत उस लेश्याके कालक्षयसे तेजोलेश्यासे परिणमित होकर द्वितीय समयमें अप्रमत्तसंयत क्यों नहीं हो जाता?

किण्ण पडिवज्जदि ? ण, तेउलेस्साए पडिय अंतोमुहुत्तमणत्थिय हेट्ठिमगुणग्गहणाभावा। अधवा अप्पमत्तो पम्मलेस्साए अच्छिदो अप्पमत्तद्धाखएण पमत्तो जादो। विदियसमए मदो देवत्तं गदो।

अप्पमत्तसंजदस्स उच्चदे– मिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी संजदासंजदो पमत्तसंजदो वा वड्ढमाणतेउलेस्सिओ तेउलेस्सद्धाए एगो समओ अत्थि त्ति अप्पमत्तो जादो। तेउलेस्साए सह एगसमयं अप्पमत्तो दिट्ठो। विदियसमए पम्मलेस्सिओ जादो। एसा लेस्सापरावत्ती (१)। अधवा पमत्तो हायमाणपम्मलेस्सिओ एगसमयमप्पमत्तद्धा अत्थि त्ति पम्मलेस्सद्धाए खएण तेउलेस्सिओ जादो। विदियसमए पमत्तगुणं पडिवण्णो। एसा गुणपरावत्ती (२)। अधवा पमत्तो वड्ढमाणतेउलेस्सिओ अप्पमत्तो जादो। विदियसमए मदो देवत्तं गदो। एवं मरणेण (३)। पमत्तो वड्ढमाणपम्मलेस्सिओ पम्मलेस्सद्धाए एगसमओ अत्थि त्ति अपमत्तो जादो।

समाधान– नहीं, क्योंकि, हीयमान लेश्याके साथ अप्रमत्तगुणस्थानके ग्रहण करनेका अभाव है।

शंका– तो उक्त प्रकारका जीव मिथ्यात्व आदिक नीचेके गुणस्थानको क्यों नहीं प्राप्त हो जाता है ?

समाधान– नहीं, क्योंकि, तेजोलेश्यामें गिर करके अन्तर्मुहूर्त रहे बिना नीचेके गुणस्थानोंके ग्रहण करनेका अभाव है।

अथवा, कोई अप्रमत्तसंयत पद्मलेश्यामें विद्यमान था। वह अप्रमत्तसंयतगुणस्थानके कालक्षयसे प्रमत्तसंयत हो गया। वह द्वितीय समयमें मरा और देवत्वको प्राप्त हुआ।

अब अप्रमत्तसंयतके एक समयसम्बन्धी लेश्याविपरिवर्तनको कहते हैं— वर्धमान तेजोलेश्यावाला कोई मिथ्यादृष्टि, अथवा असंयतसम्यग्दृष्टि अथवा संयतासंयत, अथवा प्रमत्तसंयत जीव, तेजोलेश्याके कालमें एक समय अवशेष रहने पर अप्रमत्तसंयत हो गया। वह तेजोलेश्याके साथ एक समय अप्रमत्तसंयतरूपसे दृष्टिगोचर हुआ और द्वितीय समयमें पद्मलेश्यावाला हो गया। यह लेश्यापरिवर्तन है (१)। अथवा हीयमान पद्मलेश्यावाला कोई अप्रमत्तसंयत, एक समय अप्रमत्तसंयत कालके अवशेष रहने पर पद्मलेश्याके कालक्षयसे तेजोलेश्यावाला हो गया, और द्वितीय समयमें प्रमत्तसंयत गुणस्थानको प्राप्त हुआ। यह गुणस्थानपरिवर्तन है (२)। अथवा, वर्धमान तेजोलेश्यावाला कोई प्रमत्तसंयत जीव अप्रमत्तसंयत हो गया। वह द्वितीय समयमें मरा और देवत्वको प्राप्त हुआ। इस प्रकार मरणसे एक समय लब्ध हुआ (३)। कोई वर्धमान पद्मलेश्यावाला प्रमत्तसंयत, पद्मलेश्याके

विदियसमए अप्पमत्तो चेव, किंतु सुक्कलेस्सं गदो। एसा लेस्सापरावत्ती (१)। अधवा अप्पमत्तो हायमाणसुक्कलेस्सिगो सुक्कलेस्सद्धाखएण पम्मलेस्सिगो जादो। विदियसमए पम्मलेस्साए सह पमत्तगुणं पडिवण्णो। एसा गुणपरावत्ती (२)। अधवा पमत्तो पम्मलेस्साए अच्छिदो पमत्तद्धाए खीणाए एगसमयं जीविदमत्थि त्ति अप्पमत्तो जादो। विदियसमए मदो देवत्तं गदो। एवं मरणेण (३)।

उक्कस्समंतोमुहुत्तं[1] ॥ २९८ ॥

तं जधा– संजदासंजदो पमत्तसंजदो अप्पमत्तसंजदो वा तेउ-पम्मलेस्सासु अप्पिदलेस्साए परिणमिय सव्वुक्कस्समंतोमुहुत्तमच्छिय अणप्पिदलेस्सं गदो।

सुक्कलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा[2] ॥ २९९ ॥

कुदो ? तिसु वि कालेसु सुक्कलेस्सियमिच्छादिट्ठीणं विरहाभावा।

कालमें एक समय अवशेष रहने पर अप्रमत्तसंयत हो गया। वह द्वितीय समयमें अप्रमत्तसंयत ही रहा, किन्तु शुक्ललेश्याको प्राप्त हो गया। इस प्रकार यह लेश्यापरिवर्तन हुआ (१)। अथवा, हीयमान शुक्ललेश्यावाला कोई अप्रमत्तसंयत जीव शुक्ललेश्याके कालक्षयसे पद्मलेश्यावाला हो गया। द्वितीय समयमें पद्मलेश्याके साथ प्रमत्तगुणस्थानको प्राप्त हुआ। यह गुणस्थान-परिवर्तनसम्बन्धी एक समयकी प्ररूपणा हुई (२)।

अथवा, कोई प्रमत्तसंयत पद्मलेश्यामें विद्यमान था। वह प्रमत्तकालके क्षीण हो जाने पर, तथा एक समयप्रमाण जीवनके शेष रहने पर अप्रमत्तसंयत हो गया, दूसरे समयमें मरा और देवत्वको प्राप्त हो गया। यह मरणके साथ एक समयकी प्ररूपणा हुई (३)।

तेजोलेश्या और पद्मलेश्यावाले संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्त-संयतोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २९८ ॥

जैसे– कोई संयतासंयत, अथवा प्रमत्तसंयत अथवा अप्रमत्तसंयत जीव तेजोलेश्या और पद्मलेश्याओंमेंसे विवक्षित किसी एक लेश्यामें परिणत होकर और सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्तकाल रह करके अविवक्षित लेश्याको प्राप्त हो गया।

शुक्ललेश्यामें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल होते हैं ॥ २९९ ॥

क्योंकि, तीनों ही कालोंमें शुक्ललेश्यावाले मिथ्यादृष्टि जीवोंके विरहका अभाव है।

१ उत्कर्षेणान्तर्मुहूर्तः। स. सि. १, ८.

२ शुक्ललेश्यानां मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। स. सि. १, ८.

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[1] ॥ ३०० ॥

तं जधा- एक्को मिच्छाविट्ठी वड्ढमाणपम्मलेस्सिओ सगद्धाए खएण सुक्कलेस्सिओ जादो। सव्वजहण्णमंतोमुहुत्तमच्छिय पम्मलेस्सं गदो, अण्णलेस्सागमणे संभवाभावा।

उक्कस्सेण एक्कत्तीसं सागरोवमाणि सादिरेयाणि[2] ॥ ३०१ ॥

तं जधा- एक्को दव्वलिंगी दव्वसंजममाहप्पेण उवरिमगेवज्जेसु आउअं बंधिय पम्मलेस्साए अच्छिदस्स तिस्से अद्धाखएण सुक्कलेस्सा आगदा। तत्थ अंतोमुहुत्तमच्छिय कालं करिय उवरिमगेवेज्जेसु उववज्जिय सगट्ठिदिं गमिय चुदो तक्खणे चेव णट्ठलेस्सिओ जादो। एवं पढमिल्लंतोमुहुत्तेण सादिरेगएक्कत्तीस सागरोवममेत्तो मिच्छत्तसहिदसुक्कलेस्सुक्कस्सकालो होदि।

सासणसम्मादिट्ठी ओघं[3] ॥ ३०२ ॥

सुक्कलेस्सेत्ति अणुवट्टदे। कुदो ओघत्तं ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगो

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३०० ॥

आयुको बांधकर पद्मलेश्यामें विद्यमान कोई मिथ्यादृष्टि जीव अपनी लेश्याका काल समाप्त हो जानेसे शुक्ललेश्यावाला हो गया। वह उसमें सर्व जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल रह करके पद्मलेश्याको प्राप्त हुआ, क्योंकि, उसका पद्मलेश्याके सिवाय अन्य किसी लेश्यामें जाना संभव ही नहीं है।

शुक्ललेश्यावाले मिथ्यादृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट काल साधिक इकतीस सागरोपम है ॥ ३०१ ॥

जैसे- एक द्रव्यलिंगी साधु द्रव्यसंयमके माहात्म्यसे उपरिम ग्रैवेयकोंमें आयुको बांधकर पद्मलेश्यामें विद्यमान था। उसके उस लेश्याके कालक्षयसे शुक्ललेश्या आ गई। उसमें अन्तर्मुहूर्त काल रह कर, कालको करके, उपरिम ग्रैवेयकोंमें उत्पन्न होकर, अपनी स्थितिको बिताकर च्युत हुआ और उसी क्षणमें नष्टलेश्यावाला हो गया। इस प्रकार प्रथम अन्तर्मुहूर्तके साथ साधिक इकतीस सागरोपमप्रमाण मिथ्यात्वसहित शुक्ललेश्याका उत्कृष्ट काल होता है।

शुक्ललेश्यावाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका काल ओघके समान है ॥ ३०२ ॥

यहां पर 'शुक्ललेश्या' इस पदकी अनुवृत्ति होती है।

शंका- सूत्रोक्त ओघपना कैसे संभव है ?

समाधान- नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय, और उत्कृष्ट काल

१ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। स. सि. १, ८.

२ उत्कर्षेणैकत्रिंशत्सागरोपमाणि सातिरेकाणि। स. सि. १, ८.

३ सासादनसम्यग्दृष्टयादिसयोगकेवल्यन्तानां × × सामान्योक्तः कालः। स. सि. १, ८.

समओ, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण छ आवलियाओ, इच्चेदेहि तदो भेदाभावा ।

सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ३०३ ॥

कुदो ? णाणेगजीवजहण्णुक्कस्सकालेहि सह ओघसम्मामिच्छादिट्ठीहिंतो भेदाभावा ।

असंजदसम्मादिट्ठी ओघं ॥ ३०४ ॥

कुदो ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा, एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि सादिरेयाणि, इच्चेदेहि विसेसाभावा । णवरि पज्जवट्ठियणए अवलंबिज्जमाणे अत्थि विसेसो । कुदो ? एत्थ पच्छिममणुससहगव-अंतोमुहुत्तेण सादिरेगत्तुवलंभा । ओघम्हि देसूणपुव्वकोडीए सादिरेगत्तदंसणादो ।

संजदासंजदा पमत्त-अप्पमत्तसंजदा केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ ३०५ ॥

सुगममेदं सुत्तं ।

पल्योपमका असंख्यातवां भाग है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय, और उत्कृष्ट काल छह आवलिप्रमाण है । इस प्रकार ओघसे इसके कालमें कोई भेद नहीं होनेसे ओघपना बन जाता है ।

शुक्ललेश्यावाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका काल ओघके समान है ॥३०३॥

क्योंकि, नाना जीव और एक जीवसम्बन्धी जघन्य और उत्कृष्ट कालोंके साथ ओघसम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंसे कोई भेद नहीं है ।

शुक्ललेश्यावाले असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका काल ओघके समान है ॥३०४॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल है, एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है, उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागरोपम है, इस प्रकारसे कोई विशेषता नहीं है । इतनी विशेषता है कि पर्यायार्थिकनयके अवलम्बन करने पर यहां विशेषता है ।

शंका– यह विशेषता किस कारणसे है ?

समाधान– क्योंकि, यहां पर पिछले मनुष्यभवमें होनेवाली शुक्ललेश्याके एक अन्तर्मुहूर्तके साथ उक्त कालकी सातिरेकता पाई जाती है । किन्तु ओघमें देशोन पूर्वकोटीके साथ उक्त कालकी सातिरेकता देखी जाती है ।

शुक्ललेश्यावाले संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ ३०५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

---

१ ×× संयतासंयतस्य नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । सं. सि. १, ८.

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं[1] ॥ ३०६ ॥

तं जधा– एक्को पमत्तसंजदो हायमाणसुक्कलेस्सिगो एगो समओ सुक्कलेस्साए अत्थि त्ति संजदासंजदो जादो। विदियसमए संजदासंजदो चेव, किंतु पम्मलेस्सं गदो। एसा लेस्सापरावत्ती (१)। सेसगुणट्ठाणेहिंतो संजमासंजमं पडिवज्जंताणं सुक्कलेस्साए एगसमओ ण लब्भदि। कुदो? वड्ढमाणसुक्कलेस्साए संजमासंजमं पडिवण्णाणं विदियसमए पम्मलेस्साए गमणाभावा। अधवा संजदासंजदो वड्ढमाण-पम्मलेस्सिगो तिस्से अद्धाखएण संजमासंजमद्धाए एगो समओ अत्थि त्ति सुक्कलेस्सिओ जादो। विदियसमए सुक्कलेस्सिओ चेव, किंतु अप्पमत्तभावेण संजमं पडिवण्णो। एसा गुणपरावत्ती (२)।

पमत्तस्स उच्चदे– एक्को अप्पमत्तो हायमाणसुक्कलेस्सिगो सुक्कलेस्सद्धाए एगो समओ अत्थि त्ति पमत्तो जादो। विदियसमए पमत्तो चेव, किंतु पम्मलेस्सा परावत्तिदा। एसा लेस्सापरावत्ती (१)। अधवा एक्को पमत्तो वड्ढमाणपम्मलेस्सिगो पम्मलेस्सद्धाए खएण सुक्कलेस्सिगो जादो। विदियसमए सुक्कलेस्सिगो चेव, किंतु

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल एक समय है ॥ ३०६ ॥

जैसे– हायमान शुक्ललेश्यावाला एक प्रमत्तसंयत जीव, शुक्ललेश्याके कालमें एक समय शेष रहने पर संयतासंयत हुआ। द्वितीय समयमें वह संयतासंयत ही है, किन्तु पद्मलेश्याको प्राप्त हो गया। यह लेश्याका एक समयसम्बन्धी परिवर्तन है (१)। शेष गुणस्थानोंसे संयमासंयमको प्राप्त होनेवाले जीवोंके शुक्ललेश्याका एक समय नहीं पाया जाता है, क्योंकि, वर्धमान शुक्ललेश्याके साथ संयमासंयमको प्राप्त होनेवाले जीवोंके द्वितीय समयमें पद्मलेश्यामें गमनका अभाव है। अथवा कोई संयतासंयत वर्धमान पद्मलेश्यावाला है। उस लेश्याके कालक्षयसे और संयमासंयमके कालमें एक समय अवशेष रहने पर वह शुक्ललेश्यावाला हो गया। द्वितीय समयमें वह शुक्ललेश्यावाला ही है, किन्तु अप्रमत्तभावके साथ संयमको प्राप्त हुआ। यह गुणस्थानपरिवर्तनसम्बन्धी एक समयकी प्ररूपणा है (२)।

अब अप्रमत्तसंयतके एक समयकी प्ररूपणा करते हैं– हायमान शुक्ललेश्यावाला कोई एक अप्रमत्तसंयत शुक्ललेश्याके कालमें एक समय अवशेष रहने पर प्रमत्तसंयत हो गया। द्वितीय समयमें वह प्रमत्तसंयत ही रहा, किन्तु पद्मलेश्या लौट आई। यह लेश्यापरिवर्तनसम्बन्धी एक समयकी प्ररूपणा हुई (१)। अथवा, वर्धमान पद्मलेश्यावाला कोई एक प्रमत्तसंयत जीव, पद्मलेश्याके कालक्षयसे शुक्ललेश्यावाला हो गया। द्वितीय समयमें वह (शुक्ललेश्यावाला) ही

१ एकजीवं प्रति जघन्येनैकः समयः। स. सि. १, ८.

अप्पमत्तो जादो। एसा गुणपरावत्ती (२)। अधवा अप्पमत्तो हायमाणसुक्कलेस्सिगो सुक्कलेस्सद्धाए सह पमत्तो जादो। विदियसमए मदो देवत्तं गदो (३)।

अप्पमत्तस्स उच्चदे– एक्को पमत्तो सुक्कलेस्साए अच्छिदो, सुक्कलेस्साए सह अप्पमत्तो जादो। विदियसमए मदो देवत्तं गदो (१)। अधवा अपुव्वकरणो ओवरंतो सुक्कलेस्सिगो अप्पमत्तो होदूण मदो देवो जादो (२)। एत्थ एगसमय भंगपरूवणगाहा–

दो दो य तिण्णि तेऊ तिण्णि तिया होंति पम्मलेस्साए।
दो तिग दुगं च समया बोद्धव्वा सुक्कलेस्साए ॥ ४१ ॥

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं[1] ॥ ३०७ ॥

कुदो ? सुक्कलेस्साए परिणमिय उक्कस्समंतोमुहुत्तमच्छिय पम्मलेस्सं गदाणमण्णकस्सकालवलंभा।

आचार्य श्री सुविधिसागरजी महाराज

है, किन्तु अप्रमत्तसंयत हो गया। यह गुणस्थानसम्बन्धी परिवर्तन है (२)। अथवा, हायमान शुक्ललेश्यावाला कोई अप्रमत्तसंयत, शुक्ललेश्याके ही कालके साथ प्रमत्तसंयत हो गया। पुनः दूसरे समयमें मरा और देवत्वको प्राप्त हुआ (३)।

अब अप्रमत्तसंयतके एक समयकी प्ररूपणा करते हैं– शुक्ललेश्यामें विद्यमान कोई एक प्रमत्तसंयत जीव शुक्ललेश्याके साथ ही अप्रमत्तसंयत हो गया। वह द्वितीय समयमें मरा और देवत्वको प्राप्त हुआ (१)। अथवा, शुक्ललेश्यावाला श्रेणीसे उतरता हुआ कोई अपूर्वकरणसंयत अप्रमत्तसंयत होकर मरा और देव हो गया (२)। यहां पर एक समयके भंगोंकी प्ररूपणा करनेवाली गाथा इस प्रकार है–

तेजोलेश्याके दो, दो और तीन समयभंग होते हैं। पद्मलेश्याके तीन त्रिक अर्थात् तीन, तीन और तीन समयभंग होते हैं। तथा, शुक्ललेश्याके दो, तीन और दो समयभंग होते हैं, ऐसा जानना चाहिए ॥ ४१ ॥

विशेषार्थ– ऊपर जो एकसमयसम्बन्धी अनेक विकल्प बताये गये हैं, उनका स्पष्टीकरण इस प्रकार है– तेजोलेश्यासम्बन्धी देशसंयतके दो भंग, प्रमत्तसंयतके दो भंग, और अप्रमत्तसंयतके तीन भंग, इस प्रकार कुल (२+२+३=७) सात भंग होते हैं। पद्मलेश्यासम्बन्धी देशसंयतके तीन भंग, प्रमत्तसंयतके तीन भंग और अप्रमत्तसंयतके तीन भंग, इस प्रकार कुल (३+३+३=९) नौ भंग होते हैं। शुक्ललेश्यासम्बन्धी देशसंयतके दो भंग, प्रमत्तसंयतके तीन भंग और अप्रमत्तसंयतके दो भंग, इस प्रकार कुल (२+३+२=७) सात भंग जानना चाहिए।

उक्त तीनों गुणस्थानोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३०७ ॥

क्योंकि, शुक्ललेश्यासे परिणत होकर उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त रह कर पद्मलेश्याको प्राप्त हुए जीवोंके उत्कृष्ट काल पाया जाता है।

---

१ उत्कर्षेणान्तर्मुहूर्तः। स. सि. १, ८.

चदुण्हमुवसमा चदुण्हं खवगा सजोगिकेवली ओघं ॥ ३०८ ॥

कुदो ? एदेसिमोघे वि सुक्कलेस्सं मोत्तूण अण्णलेस्साभावा ।

एवं लेस्सामग्गणा समत्ता ।

भवियाणुवादेण भवसिद्धिएसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा[1] ॥ ३०९ ॥

सुगममेदं सुत्तं ।

एगजीवं पडुच्च अणादिओ सपज्जवसिदो सादिओ सपज्जवसिदो[2] ॥ ३१० ॥

तं जहा– भवियत्तं दुविहं, अणादिसपज्जवसिदं सादिसपज्जवसिदमिदि । पुव्वमलद्धसम्मत्तस्स अणादिसपज्जवसिदं । सम्मत्तं लद्धिऊण मिच्छत्तं गदस्स सादिसपज्जवसिदं । अणादिसादो अकट्टिमस्स ण विणासो चे ण, अण्णाणस्स कम्मबंधस्स य

शुक्ललेश्यावाले चारों उपशामक, चारों क्षपक और सयोगिकेवलीका काल ओघके समान है ॥ ३०८ ॥

क्योंकि, इन गुणस्थानवालोंके ओघमें भी शुक्ललेश्याको छोड़कर अन्य लेश्याका अभाव है ।

इस प्रकार लेश्यामार्गणा समाप्त हुई ।

भव्यमार्गणाके अनुवादसे भव्यसिद्धिक जीवोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ ३०९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

एक जीवकी अपेक्षा अनादि-सान्त और सादि-सान्त काल है ॥ ३१० ॥

जैसे– भव्यत्व दो प्रकारका है, अनादि-सान्त और सादि-सान्त । पूर्वमें नहीं प्राप्त हुआ है सम्यक्त्व जिसको, ऐसे जीवके अनादि-सान्त भव्यत्व होता है । सम्यक्त्वको प्राप्त करके मिथ्यात्वको गये हुए जीवके सादि-सान्त भव्यत्व होता है ।

शंका– जो वस्तु अनादि है, वह अकृत्रिम होती है और उसका विनाश नहीं होता । (इसलिए मिथ्यात्वको अनादि होनेसे अकृत्रिमता सिद्ध है, फिर उसका विनाश नहीं होना चाहिए ?)

समाधान– नहीं, क्योंकि, अज्ञानका और कर्मबन्धका उनके अनादि होते हुए भी,

१ भव्यानुवादेन भव्येषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । स. सि. १, ८.

२ एकजीवापेक्षया द्वौ भंगौ, अनादिः सपर्यवसानः, सादिः सपर्यवसानश्च । स. सि. १, ८.

अणादिस्स वि विणासुवलंभा । अकारणत्तादो ण तस्स विणासो चे ण, अणादिबंधन-बद्धकम्मकारणत्तादो । सिद्धाणं मिच्छत्तासंजमकसायजोगकम्मासवविरहियाणं ण संसारे पदणमत्थि, तदो ण सादि भवियत्तं । ण पडिवण्णसम्मत्तस्स वि सादि भवयत्तं होदि, पुव्वं पि तत्थ भवियत्तुवलंभा ? एत्थ परिहारो वुच्चदे–ण संसारे णिवदिदसिद्धे अस्सिदूण भवियत्तं सादि उच्चदे । ण च ते संसारे णिवदंति, णट्ठासवत्तादो । किंतु गहिदसम्मत्तजीवस्स भवियत्तं सादि उच्चदे । ण च तं पुव्वमत्थि, सादिसांतस्सेदस्स पुव्विल्लेण अणादि-अणंतेण सह एयत्तविरोहा । पुव्विल्लमवि भवियत्तं सांतं चे ण, सति पडुच्च तस्स सांतत्तुवएसा । ण चत्थि पडुच्च सम्मत्तगहणेण विणा अणंतसंसारस्स जीवस्स सांतं भवियत्तं, विरोहा । अणादि-अणंतेण वि भवियत्तेण होदव्वं, अण्णहा भव्वजीवबोच्छेदप्पसंगादो ।

अत्थि अणंता जीवा जेहिं ण पत्तो तसाण परिणामो ।
भावकलंकसुपउरा णिगोदवासं ण मुंचंति[1] ॥ ४२ ॥

विनाश पाया जाता है ।

शंका– कारणरहित वस्तुका विनाश नहीं होता है, इसलिए अज्ञान या कर्मबन्धका भी विनाश नहीं होना चाहिए ?

समाधान– नहीं, क्योंकि, अज्ञान या कर्मबन्धका कारण अनादिबन्धनबद्ध कर्म ही है ।

शंका– मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और योगके द्वारा कर्मास्रवसे विरहित सिद्ध जीवोंका पुनः संसारमें पतन नहीं होता है, इसलिए भव्यत्व सादि-सान्त नहीं है । और न प्रतिपन्नसम्यक्त्वी जीवके भी भव्यत्व सादि होता है, क्योंकि, सम्यक्त्वकी प्राप्तिके पूर्व भी उस जीवमें भव्यत्व पाया जाता है ?

समाधान– अब उक्त आशंकाका परिहार कहते हैं– संसारमें पुनः लौटकर आनेवाले सिद्ध जीवोंकी अपेक्षासे भव्यत्वको सादि नहीं कह सकते, क्योंकि, कर्मास्रवोंके नष्ट हो जानेसे वे संसारमें पुनः लौटकर नहीं आते । किन्तु ग्रहण किया है सम्यक्त्वको जिसने, ऐसे जीवके भव्यत्वको सादि कहते हैं; तथा, वह पूर्वमें भी नहीं है, क्योंकि, इस सादि-सान्त भव्यत्वके पूर्ववर्ती उस अनादि-अनन्त भव्यत्वके साथ एकत्वका विरोध है ।

शंका– पहलेके भव्यत्वको भी यदि सान्त मान लिया जाय, तो क्या हानि है ?

समाधान– नहीं, क्योंकि, शक्तिकी अपेक्षासे उसके सान्तताका उपदेश किया गया है । व्यक्तिकी अपेक्षा सम्यक्त्वग्रहणके विना अनन्त संसारी जीवके सान्त भव्यत्व नहीं माना जा सकता, क्योंकि, ऐसा माननेमें विरोध आता है । अर्थात्, फिर तो भव्यत्वको अनादि-अनन्त भी होना पड़ेगा, अन्यथा, भव्य जीवोंके विच्छेदका प्रसंग प्राप्त होगा । तथा–

ऐसे अनन्तानन्त जीव हैं जिन्होंने त्रसोंकी पर्याय अभी तक नहीं पाई है, और जो दूषित भावोंकी अति प्रचुरताके कारण कभी भी निगोदके वासको नहीं छोड़ते हैं ॥ ४२ ॥

१ गो. जी. १९७.

एयणिगोदसरीरे जीवा दव्वप्पमाणदो दिट्ठा ।
सिद्धेहि अणंतगुणा सव्वेण वितीदकालेण[1] ॥ ४३ ॥

इच्चादिसुत्तवंसणादो य । ण च मोक्खमगच्छंताणं भवियत्तं णत्थि त्ति वोत्तुं जुत्तं, मोक्खगमणसत्तिसब्भावं पडुच्च तेसिं भवियत्तुवदेसा[2] (३) । ण च सत्तिमंताणं सव्वेसिं पि वत्तीए होदव्वमिदि णियमो अत्थि सव्वस्स वि हेमपासाणस्स हेमपज्जाएण परिणमणप्पसंगा[3] । ण च एवं, अणुवलंभा । णिव्वुइं गच्छमाणो वि ण वोच्छिज्जदि भव्वरासि त्ति कथमेवं णव्वदे ? तस्साणंतियादो । सो रासी अणंतो उच्चइ, जो संते वि वए ण णिट्ठादि, अण्णहा अणंतववएसो असत्थओ होज्ज । तम्हा तिविहेण भवियत्तेण होदव्वमिदि । ण च सुत्तेण सह विरोहो, सत्ति पडुच्च सुत्ते अणादि-सांतत्तुवएसा[4] ।

जो सो सादिओ सपज्जवसिदो तस्स इमो णिद्देसो[5] ॥ ३११ ॥

एक निगोदशरीरमें द्रव्यप्रमाणसे जीव सिद्धोंसे तथा समस्त अतीत कालके समयोंसे अनन्तगुणे देखे गये हैं ॥ ४३ ॥

इत्यादि सूत्रोंके देखे जानेसे भी भव्य जीवोंके विच्छेदका अभाव सिद्ध है । तथा, मोक्षको नहीं जानेवाले जीवोंके भव्यपना नहीं होता है, ऐसा भी कहना युक्त नहीं है, क्योंकि, मोक्षगमनकी शक्तिके सद्भावकी अपेक्षा उनके भव्यत्वके पाये जानेका उपदेश है । तथा यह भी कोई नियम नहीं है कि भव्यत्वकी शक्ति रखनेवाले सभी जीवोंके उसकी व्यक्ति होना ही चाहिए, अन्यथा, सभी स्वर्णपाषाणके स्वर्णपर्यायसे परिणमनका प्रसंग प्राप्त होगा । किन्तु इस प्रकारसे देखा नहीं जाता है ।

शंका— निर्वृति (मोक्ष) को जानेके कारण नित्यव्ययात्मक भव्यराशि विच्छेदको प्राप्त नहीं होगी, यह कैसे जाना ?

समाधान— क्योंकि, वह राशि अनन्त है । और वही राशि अनन्त कही जाती है, जो व्ययके होते रहने पर भी समाप्त नहीं होती है । अन्यथा, फिर उस राशिकी अनन्त संज्ञा अनर्थक हो जायगी । इसलिए भव्यत्व तीन प्रकारका ही होना चाहिए । तथा सूत्रके साथ भी कोई विरोध नहीं आता है, क्योंकि, शक्तिकी अपेक्षा सूत्रमें भव्यत्वके अनादिसान्तताका उपदेश दिया गया है ।

उक्त तीन प्रकारोंमेंसे जो भव्यत्व सादि और सान्त है उसका निर्देश इस प्रकार है ॥ ३११ ॥

---

१ गो. जी. १९६. २ अ प्रतौ ' भवियत्तुवलंभदेसा ' इति पाठः ।
३ भव्वसणस्स जोग्गा जे जीवा ते हवंति भवसिद्धा । ण हु मलविगमे णियमा ताणं कणओवलाणमिव ॥ गो. जी. ५५८. ४ तत्र सादिः सपर्यवसानो जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

तिण्हं भवियाणं मज्झे जो सादिसपज्जवसिदो भविओ तस्स इमो णिद्देसो परूवणा पण्णवणा त्ति उत्तं होदि । अथवा भवियाणं जं मिच्छत्तं दुविहं, अणादिस पज्जवसिदं सादिसपज्जवसिदमिदि । तत्थ जो सो सादिओ सपज्जवसिदो मिच्छादिट्ठी तस्स इमो णिद्देसो त्ति वत्तव्वं । पुव्विल्लम्हि पुण अत्थो जो सादिओ सपज्जवसिदो भविओ तस्स मिच्छत्तस्स इमो णिद्देसो परूवेदव्वो ।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३१२ ॥

तं जहा- सम्मादिट्ठी विट्ठवग्गो मिच्छत्तं गंतूण सव्वजहण्णमंतोमुहुत्तमच्छिय अण्णगुणं गदो ।

उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं[1] ॥ ३१३ ॥

तं जहा- एक्को अणादियमिच्छादिट्ठी तिण्णि करणाणि करिय सम्मत्तं पडिवण्णो । तेण सम्मत्तेण उप्पज्जमाणेण अणंतो संसारो छिण्णो संतो अद्धपोग्गलपरियट्टमेत्तो कदो[2] । उवसमसम्मत्तेण सव्वजहण्णमंतोमुहुत्तमच्छिय उवसमसम्मत्तद्धाए छावलियसेसाए आसाणं गंतूण मिच्छत्तं णेदव्वो । अहवा उवसमसम्मादिट्ठी चेव

तीन प्रकारके भव्योंके मध्यमें जो सादि-सान्त भव्य है, उसका यह निर्देश है, अर्थात् उसकी यह प्ररूपणा या प्रज्ञापना की जाती है । अथवा, भव्य जीवोंके जो मिथ्यात्व है, वह दो प्रकारका होता है- (१) अनादि-सान्त, और (२) सादि-सान्त । उनमेंसे जो सादि और सान्त मिथ्यादृष्टि है, उसका यह निर्देश है, ऐसा कहना चाहिए । तथा पहलेके अर्थमें जो सादि-सान्त भव्य कहा है, उसके मिथ्यात्वका यह निर्देश है, ऐसी प्ररूपणा करनी चाहिए ।

सादि-सान्त मिथ्यात्वका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३१२ ॥

जैसे- दृष्टिमार्गी कोई सम्यग्दृष्टि जीव मिथ्यात्वको प्राप्त होकर सर्वजघन्य अन्तर्मुहूर्त काल रह करके अन्य गुणस्थानको चला गया ।

सादि-सान्त मिथ्यात्वका उत्कृष्ट काल देशोन अर्धपुद्गलपरिवर्तन है ॥ ३१३ ॥

जैसे- कोई एक अनादि मिथ्यादृष्टि जीव तीनों करणोंको करके सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । उत्पन्न होनेके साथ ही उस सम्यक्त्वसे अनन्त संसार छिन्न होता हुआ अर्धपुद्गलपरिवर्तन कालमात्र कर दिया गया । उपशमसम्यक्त्वके साथ सर्वजघन्य अन्तर्मुहूर्त काल रह कर उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलियां शेष रह जाने पर उसी जीवको सासादनगुणस्थानमें ले जाकर मिथ्यात्वमें ले जाना चाहिए । अथवा, उपशमसम्यग्दृष्टि जीव ही मिथ्यात्वको जाकर देशोन अर्धपुद्गलपरिवर्तन काल मिथ्यात्वके साथ परिभ्रमण करके

---

१ उत्कर्षेणार्धपुद्गलपरिवर्तो देशोनः । स. सि. १, ८. २ प्रतिषु 'कुदो' इति पाठः ।

मिच्छत्तं गंतूण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं मिच्छत्तेण परियट्टिय अंतोमुहुत्तावसेसे संसारे सम्मत्तं घेत्तूण अणंताणुबंधी विसंजोइय विस्समिय दंसणमोहं खविय पमत्ता-पमत्तपरावत्तसहस्सं करिय अधापमत्तकरणं काऊण अपुव्वो अणियट्टी सुहुमो खीणो सजोगी होदूण सिद्धो जादो। जादं देसूणमद्धपोग्गलपरियट्टं।

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं[1] ॥३१४॥

कुदो ? सासणादीणं भवियत्तं मोत्तूण अण्णत्तासंभवा।

अभवसिद्धिया केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ ३१५ ॥

कुदो ? अव्वयत्तादो।

एगजीवं पडुच्च अणादिओ अपज्जवसिदो[2] ॥ ३१६ ॥

कुदो ? मिच्छत्तं मोत्तूण तस्स गुणंतरगमणाभावा।

एवं भवियमग्गणा समत्ता।

अन्तर्मुहूर्तमात्र संसारके शेष रहने पर सम्यक्त्वको ग्रहण करके, पुनः अनन्तानुबन्धी कषायका विसंयोजन करके, पश्चात् विश्राम ले, दर्शनमोहको क्षपक कर, प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थान-सम्बन्धी सहस्रों परिवर्तनोंको करके, अधःप्रवृत्तकरण कर, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण सूक्ष्मसाम्पराय, क्षीणकषाय, सयोगी और अयोगी हो करके सिद्ध हो गया। इस प्रकारसे देशोन अर्धपुद्गलपरिवर्तन काल सिद्ध हुआ।

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली तकका काल ओघके समान है ॥ ३१४ ॥

क्योंकि, सासादनादि गुणस्थानवर्ती जीवोंके भव्यत्वको छोड़कर अन्यका होना, अर्थात् अभव्यपना, असंभव है।

अभव्यसिद्ध जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ ३१५ ॥

क्योंकि, अभव्य जीवोंका व्यय ही नहीं होता।

एक जीवकी अपेक्षा अभव्योंका अनादि और अनन्त काल है ॥ ३१६ ॥

क्योंकि, मिथ्यात्वको छोड़कर अभव्यके अन्य गुणस्थानमें जानेका अभाव है।

इस प्रकार भव्यमार्गणा समाप्त हुई।

---

१ सासादनसम्यग्दृष्टयाद्ययोगकेवल्यन्तानां सामान्योक्तः कालः। स. सि. १, ८.

२ अभव्यानामनाद्यपर्यवसानः। स. सि. १, ८.

सम्मत्ताणुवादेण सम्मादिट्ठि-खइयसम्मादिट्ठीसु असंजद-सम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं[1] ॥ ३१७ ॥

कुदो ? सव्वगुणट्ठाणाणमप्पणो णाणेगजीवजहण्णुक्कस्सकाले अस्सिदूण भेदाभावा । णवरि खइयसम्मादिट्ठि-संजदासंजदेसु अत्थि भेदो । तं भणिस्सामो । ण चेसो भेदो सुत्तेण अपरूविदो, संगहिदविसेससामण्णमवलंबिय ओघमिदि णिद्देसादो । तं जहा– एगो देवो णेरइओ वा सम्मादिट्ठी मणुसेसुवज्जिय अंतोमुहुत्तब्भहिय-गब्भादिअट्ठवस्से गमिय संजमासंजमं पडिवज्जिय अंतोमुहुत्तं विस्समिय अंतोमुहुत्तेण दंसणमोहणीयं खविय खइयसम्मादिट्ठी जादो । चदुहि अंतोमुहुत्तेहि अब्भहिय-अट्ठवस्सेहि ऊणियं पुव्वकोडिसंजमासंजममणुपालिय मदो देवो जादो । एत्थेव विसेसो, णत्थि अण्णत्थ कत्थ वि ।

वेदगसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्त-संजदा त्ति ओघं[2] ॥ ३१८ ॥

कुदो ? णाणेगजीवजहण्णुक्कस्सकालेहि सव्वगुणट्ठाणाणं ओघगुणट्ठाणेहिंतो भेदाभावा ।

सम्यक्त्वमार्गणाके अनुवादसे सम्यग्दृष्टि और क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें असंयत-सम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तकका काल ओघके समान है ॥ ३१७ ॥

आचार्यश्री पुष्पदंतसागर जी महाराज

क्योंकि, चौथे गुणस्थानसे लेकर ऊपरके सभी गुणस्थानोंका अपने अपने नाना जीव और एक जीवके अघन्य और उत्कृष्ट कालका आश्रय करके सम्यग्दृष्टि जीवोंके साथ कोई भेद नहीं है । विशेष बात यह है कि क्षायिकसम्यग्दृष्टि संयतासंयतोंके कालमें भेद है, उसे कहते हैं । यह कहा जानेवाला भेद सूत्रके द्वारा न कहा गया हो, ऐसी बात नहीं है, क्योंकि, संगृहीत हैं विशेष जिसमें, ऐसे सामान्य विषयक द्रव्यार्थिकनयका अवलम्बन करके 'ओघ' ऐसा पद सूत्रमें निर्दिष्ट किया गया है । अब उक्त कालका स्पष्टीकरण करते हैं– कोई एक देव, अथवा नारकी सम्यग्दृष्टि जीव मनुष्योंमें उत्पन्न होकर और अन्तर्मुहूर्त अधिक, गर्भको आदि लेकर आठ वर्ष बिताकर, संयमासंयमको प्राप्त होकर और अन्तर्मुहूर्त विश्राम करके, एक अन्तर्मुहूर्तसे दर्शनमोहनीयका क्षपण कर, क्षायिकसम्यग्दृष्टि हो गया । इन आर अन्तर्मुहूर्तोंसे अधिक आठ वर्षोंसे कम पूर्वकोटि वर्षप्रमाण संयमासंयमको परिपालन करके मरा और देव हुआ । यहां पर ही इतनी विशेषता है, और कहीं कुछ भी विशेषता नहीं है ।

वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तकका काल ओघके समान है ॥ ३१८ ॥

क्योंकि, नाना जीव और एक जीवसम्बन्धी जघन्य और उत्कृष्ट कालोंकी अपेक्षा सूत्रोक्त सर्व गुणस्थानोंके कालका ओघ गुणस्थानोंके कालसे कोई भेद नहीं है ।

---

१ सम्यक्त्वानुवादेन क्षायिकसम्यग्दृष्टीनामसंयतसम्यग्दृष्टय्यादयोऽयोगकेवल्यन्तानां सामान्योक्तः कालः । स. सि. १, ८. २ क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टीनां चतुर्णां सामान्योक्तः कालः । स. सि. १, ८.

उवसमसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठी संजदासंजदा केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[1] ॥ ३१९ ॥

तं जहा- सत्तट्ठ जणा बहुआ वा मिच्छाविट्ठिणो उवसमसम्मत्तं पडिवण्णा। उवसमसम्मत्तद्धाए छावलियसेसाए सव्वे आसाणं गदा। अंतरं जादं।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो[2] ॥ ३२० ॥

तं जहा- सत्तट्ठ जणा बहुआ वा मिच्छाविट्ठिणो उवसमसम्मत्तं पडिवण्णा। तत्थ अंतोमुहुत्तमच्छिय वेदगसम्मत्तं सम्मामिच्छत्तं सासणसम्मत्तं मिच्छत्तं वा गदा। एवस्स एगा सलागा णिक्खिवियव्वा। तस्समए चेव अण्णे मिच्छाविट्ठिणो उवसमसम्मत्तं पडिवज्जिय तत्थ अंतोमुहुत्तमच्छिय चदुण्हं गुणट्ठाणाणमण्णदरं गदा। विदियसलागा लद्धा होदि। एवं तिण्णि चत्तारि आदिं गंतूण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ताओ सलागाओ लब्भंति। तं कधं णव्वदे? आइरियपरंपरागदुवदेसादो। एवाहि सलागाहि उवसमसम्मत्तद्धं गुणिदे सगरासीदो असंखेज्जगुणो अणंतरकालो होदि।

उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत जीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त काल होते हैं ॥ ३१९ ॥

जैसे- सात आठ जन, या बहुतसे मिथ्यादृष्टि जीव उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुए, और उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलीप्रमाण कालके अवशिष्ट रहने पर सभीके सभी सासादनगुणस्थानको प्राप्त हो गये और पुनः अन्तरको प्राप्त हुए।

उपशमसम्यग्दृष्टि असंयत और संयतासंयतोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट काल पल्योपमके असंख्यातवें भाग है ॥ ३२० ॥

जैसे- सात आठ जन, अथवा बहुतसे मिथ्यादृष्टि जीव उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुए। उसमें अन्तर्मुहूर्त रह करके वे सब वेदकसम्यक्त्वको, या सम्यग्मिथ्यात्वको, या सासादनसम्यक्त्वको, अथवा मिथ्यात्वको प्राप्त हुए। इसकी एक शलाका स्थापित करना चाहिए। उसी समयमें अन्य भी मिथ्यादृष्टि जीव उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त होकर, उसमें अन्तर्मुहूर्त रह कर, पूर्वोक्त चार गुणस्थानोंमेंसे किसी एक गुणस्थानको प्राप्त हुए। यह दूसरी शलाका प्राप्त हुई। इस प्रकारसे तीन चारको आदि लेकर पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र शलाकाएं प्राप्त होती हैं।

शंका- यह कैसे जाना जाता है कि उपशमसम्यक्त्वकी शलाकाएं पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र होती हैं?

समाधान- आचार्यपरम्परागत उपदेशसे यह जाना जाता है।

इन लब्ध शलाकाओंसे उपशमसम्यक्त्वके कालको गुणा करने पर अपनी राशिसे असंख्यातगुणा अन्तररहित उपशमसम्यक्त्वका काल होता है।

१ औपशमिकसम्यक्त्वेषु असंयतसम्यग्दृष्टिसंयतासंयतयोर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। स. सि. १, ८.
२ उत्कर्षेण पल्योपमासंख्येयभागः। स. सि. १, ८.

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[1] ॥ ३२१ ॥

तं जहा– एक्को मिच्छादिट्ठी उवसमसम्मत्तं पडिवण्णो, अवरो देससंजमेण सह तं चेव पडिवण्णो, सव्वजहण्णमद्धमच्छिय उवसमसम्मत्तद्धाए छावलियावसेसाए आसाणं गदा । एसो दोण्हं पि जहण्णकालो ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं[1] ॥ ३२२ ॥

तं जहा– दो मिच्छादिट्ठिणो । तत्थ एगो उवसमसम्मत्तं, अवरो देससंजमं पडिवण्णो । सव्वुक्कस्समंतोमुहुत्तमच्छिय दोण्णि वि तिण्हमण्णदरं गदा ।

पमत्तसंजदप्पहुडि जाव उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था त्ति केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं[2] ॥ ३२३ ॥

तं जहा– पमत्त-अप्पमत्ताणं ताव उच्चदे । सत्त अट्ठ जणा बहुआ वा उवसमसम्मादिट्ठिणो उवसमसेढीदो ओदरिय पमत्तापमत्ता होदूण एगसमयमच्छिय कालं करिय देवा जादा । अपुव्वकरणस्स ओदरमाणेहि, अणियट्टि-सुहुमसांपराइयाणं चढणोयरणकिरियाणावदेहि, उवसंतस्स चढतेहि अप्पिदगुणपडिवण्णविदियसमए[3] मदेहि जीवेहि एगसमओ वत्तव्वो ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३२१ ॥

जैसे– एक मिथ्यादृष्टि जीव उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । दूसरा देशसंयमके साथ उसी उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । दोनों ही जीव सर्वजघन्य काल अपने अपने गुणस्थानमें रह करके उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलियां अवशेष रह जाने पर सासादनगुणस्थानको प्राप्त हुए । यह दोनों गुणस्थानोंका जघन्य काल है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३२२ ॥

जैसे– दो मिथ्यादृष्टि जीव हैं । उनमेंसे एक उपशमसम्यक्त्वको और दूसरा देशसंयमको प्राप्त हुआ । वहां वे दोनों ही जीव सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्तकाल रह करके सम्यग्मिथ्यात्व, मिथ्यात्व, अथवा वेदकसम्यक्त्व, इन तीनोंमेंसे किसी एकको प्राप्त हुए ।

प्रमत्तसंयतसे लेकर उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक उपशमसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय होते हैं ॥ ३२३ ॥

वह इस प्रकार है– उनमेंसे पहले प्रमत्त और अप्रमत्तसंयतोंकी एक समयकी प्ररूपणा करते हैं– सात आठ जन, अथवा बहुतसे उपशमसम्यग्दृष्टि जीव, उपशमश्रेणीसे उतर कर प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत होकर, वहां पर एक समय रह करके, मरण कर, देव हुए । अपूर्वकरण गुणस्थानवालेके उतरते हुए, अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्परायिक गुणस्थानवालोंके आरोहण और अवतरण, इन दोनों ही क्रियाओंमें लगे हुए, तथा उपशान्तकषायके चढ़ते हुए विवक्षित गुणस्थानको प्राप्त होकर द्वितीय समयमें मरे हुए जीवोंके द्वारा एक समयकी प्ररूपणा करनी चाहिए ।

१ एकजीवं प्रति जघन्यपदेनोत्कृष्टपदेनान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

२ प्रमत्ताप्रमत्तयोश्चतुर्णामुपशमकानां च नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च जघन्येनैकः समयः । स. सि. १, ८.

३ प्रतिषु ' अप्पिदगुणपडिवण्ण ' इति पाठः ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं[1] ॥ ३२४ ॥

पमत्तापमत्ताणं ताव उच्चदे— सत्तट्ठ जणा बहुआ वा दंसणमोहणीयउवसामगा चारित्तमोहणीयउवसामगा वा पमत्तापमत्तगुणे पडिवण्णा । तेसु अंतोमुहुत्तद्धमच्छिय अण्णगुणं गदा । तम्हि चेव समए अण्णे उवसमसम्मादिट्ठिणो पमत्तापमत्तगुणे पडिवण्णा । एवमेत्थ संखेज्जसलागा लब्भंति । एदाहि पमत्तापमत्तद्धं गुणिदे वि अंतोमुहुत्तं चेव होदि । कुदो ? अंतोमुहुत्तमिदि सुत्ते उद्दिट्ठत्तादो । एवं चेव चदुण्हमुवसामगाणं वि वत्तव्वं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ ३२५ ॥

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३२६ ॥

एदाणि दो वि सुत्ताणि सुगमाणि, णाणाजीवजहण्णुक्कस्सकालपरूवणाए परूविदत्तादो ।

सासणसम्मादिट्ठी ओघं[2] ॥ ३२७ ॥

सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं[2] ॥ ३२८ ॥

मिच्छादिट्ठी ओघं[2] ॥ ३२९ ॥

उक्त गुणस्थानवर्ती उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३२४ ॥

उनमेंसे पहले प्रमत्त और अप्रमत्तसंयतोंका काल कहते हैं— सात आठ जीव अथवा बहुतसे जीव, चाहे वे दर्शनमोहनीयकर्मके उपशामक हों, अथवा चाहे चारित्रमोहनीयकर्मके उपशमन करनेवाले हों, प्रमत्त और अप्रमत्तगुणस्थानको प्राप्त हुए । उन दोनों गुणस्थानोंमें अन्तर्मुहूर्त काल रह करके अन्य गुणस्थानको प्राप्त हुए । उसी समयमें अन्य भी उपशमसम्यग्दृष्टि जीव प्रमत्त और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानको प्राप्त हुए । इस प्रकारसे यहां पर संख्यात शलाकाएं प्राप्त होती हैं । इन शलाकाओंसे प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयतके कालको गुणा करने पर भी अन्तर्मुहूर्त ही होता है, क्योंकि, सूत्रमें 'अन्तर्मुहूर्त' ऐसा पद कहा गया है । इसी प्रकारसे चारों उपशामकोंका भी काल कहना चाहिए ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल एक समय है ॥ ३२५ ॥

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३२६ ॥

ये दोनों ही सूत्र सुगम हैं, क्योंकि, इनका अर्थ नाना जीवोंके जघन्य और उत्कृष्ट कालकी प्ररूपणामें प्ररूपण किया जा चुका है ।

सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका काल ओघके समान है ॥ ३२७ ॥

सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका काल ओघके समान है ॥ ३२८ ॥

मिथ्यादृष्टि जीवोंका काल ओघके समान है ॥ ३२९ ॥

---

१ उत्कर्षेणान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

२ सासादनसम्यग्दृष्टि-सम्यग्मिथ्यादृष्टि-मिथ्यादृष्टीनां सामान्योक्तः कालः । स. सि. १, ८.

ओघम्हि उत्तसासणादीणं सम्मत्ताणुवादम्हि उत्तसासणादितिण्हं गुणट्ठाणाणं च भेदाभावा ।

एवं समत्तमग्गणा समत्ता ।

सण्णियाणुवादेण सण्णीसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा[1] ॥ ३३० ॥

सुगममेदं सुत्तं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३३१ ॥

एदं पि सुत्तं सुगमं चेय, बहुसो परूविदत्तादो ।

उक्कस्सेण सागरोवमसदपुधत्तं ॥ ३३२ ॥

तं जधा– एगो असण्णी सण्णीसु उववण्णो सागरोवमसदपुधत्तं तत्थेव भमिय पुणो असण्णिस्सं गदो ।

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था त्ति ओघं[2] ॥ ३३३ ॥

ओघमें कहे गये सासादनसम्यग्दृष्टि आदि तीन गुणस्थानोंकी कालप्ररूपणाका और सम्यक्त्वमार्गणाके अनुवादमें कहे गये सासादनसम्यग्दृष्टि आदि तीन गुणस्थानोंकी कालप्ररूपणाका परस्परमें कोई भेद नहीं है ।

इस प्रकार सम्यक्त्वमार्गणा समाप्त हुई ।

संज्ञामार्गणाके अनुवादसे संज्ञी जीवोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल होते हैं ॥ ३३० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

एक जीवकी अपेक्षा संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३३१ ॥

यह सूत्र भी सुगम ही है, क्योंकि, पहले बहुत बार प्ररूपण किया जा चुका है ।

एक जीवकी अपेक्षा संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट काल सागरोपम-शतपृथक्त्व है ॥ ३३२ ॥

जैसे– कोई एक असंज्ञी जीव संज्ञियोंमें उत्पन्न हुआ और सागरोपमशतपृथक्त्वके अन्त तक वह संज्ञियोंमें ही भ्रमण करके पुनः असंज्ञित्वको प्राप्त हुआ ।

सासादनसम्यग्दृष्टिसे लेकर क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक संज्ञियोंकी कालप्ररूपणा ओघके समान है ॥ ३३३ ॥

---

१ संज्ञानुवादेन संज्ञिषु मिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकषायान्तानां पुंवेदवत् । स. सि. १, ८.

२ शेषाणां सामान्योक्तः कालः । स. सि. १, ८.

सण्णिसासणादीणं ओघसासणादीणं च सण्णित्तं पडि भेदाभावा ।

असण्णी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा[1] ॥ ३३४ ॥

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

सुगममेवं सुत्तं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं[2] ॥ ३३५ ॥

तं जहा- एगो सण्णी असण्णीसु उपज्जिय खुद्दाभवग्गहणमेत्तकालमच्छिय सण्णित्तं गदो ।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं[3] ॥ ३३६ ॥

तं जधा- एगो सण्णी मिच्छादिट्ठी असण्णी होदूण आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तपोग्गलपरियट्टे तत्थ परियट्टिदूण सण्णित्तं गदो ।

एवं सण्णिमग्गणा समत्ता ।

आहाराणुवादेण आहारएसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा[4] ॥ ३३७ ॥

क्योंकि, संज्ञी सासादनादिकोंका और ओघ सासादनादिकोंका संज्ञित्वके प्रति कोई भेद नहीं है ।

असंज्ञी जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ ३३४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

एक जीवकी अपेक्षा असंज्ञी जीवोंका जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है ॥ ३३५ ॥

जैसे- कोई एक संज्ञी जीव असंज्ञियोंमें उत्पन्न होकर क्षुद्रभवग्रहणमात्र काल रह करके संज्ञित्वको प्राप्त हो गया ।

एक जीवकी अपेक्षा असंज्ञियोंका उत्कृष्ट काल अनन्तकालात्मक असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है ॥ ३३६ ॥

जैसे- कोई एक संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीव असंज्ञी होकर, आवलीके असंख्यातवें भागमात्र पुद्गलपरिवर्तनोंतक उन्हींमें परिभ्रमण करके संज्ञित्वको प्राप्त हुआ ।

इस प्रकार संज्ञीमार्गणा समाप्त हुई ।

आहारमार्गणाके अनुवादसे आहारकोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ ३३७ ॥

---

१ असंज्ञिनां मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । स. सि. १, ८.

२ एकजीवं प्रति जघन्येन क्षुद्रभवग्रहणम् । स. सि. १, ८.

३ उत्कर्षेणानन्तः कालोऽसंख्येयाः पुद्गलपरिवर्ताः । स. सि. १, ८.

४ आहारानुवादेन आहारकेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । स. सि. १, ८.

सुगममेवं सुत्तं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[1] ॥ ३३८ ॥

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

एदं पि सुत्तं सुगमं चेय, ओघम्हि उत्तत्थादो ।

उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जासंखेज्जाओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ[2] ॥ ३३९ ॥

तं जहा– एक्को मिच्छाइट्ठी विग्गहं कादूण उववण्णो । अंगुलस्स असंखेज्जदिभागं असंखेज्जासंखेज्जा ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीपमाणं तत्थ परिभमिय आहारगो जादो । पुणो अवसाणे विग्गहं करिय अणाहारिसं गदो । एवमाहारि-मिच्छाइट्ठिस्स उक्कस्सकालो सिद्धो होदि ।

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति ओघं[3] ॥३४०॥

कुदो ? णाणेगजीवजहण्णुक्कस्सकालेहि आहारिसासणादीणं ओघसासणादीहि भेदाभावा ।

अणाहारएसु कम्मइयकायजोगिभंगो[4] ॥ ३४१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

एक जीवकी अपेक्षा आहारक मिथ्यादृष्टि जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३३८ ॥

यह सूत्र भी सुगम ही है, क्योंकि, ओघमें इसका अर्थ कह दिया गया है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण असंख्याता-संख्यात अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी है ॥ ३३९ ॥

जैसे– एक मिथ्यादृष्टि जीव विग्रह करके (आहारक मिथ्यादृष्टियोंमें) उत्पन्न हुआ । अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी तक उनमें परिभ्रमण करता हुआ आहारक रहा । पुनः अन्तमें विग्रह करके अनाहारकपनेको प्राप्त हुआ । इस प्रकारसे आहारक मिथ्यादृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट काल सिद्ध हो जाता है ।

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तकके आहारकोंका काल ओघके समान है ॥ ३४० ॥

क्योंकि, नाना और एक जीवसम्बन्धी जघन्य और उत्कृष्ट कालकी अपेक्षा आहारक सासादनसम्यग्दृष्टि आदि गुणस्थानोंका ओघ सासादनादि गुणस्थानोंके कालके साथ कोई भेद नहीं है ।

अनाहारक जीवोंका काल कार्मणकाययोगियोंके समान है ॥ ३४१ ॥

---

१ एकजीव प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

२ उत्कर्षेणांगुलासंख्येयभागा असंख्येयासंख्येया उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यः । स. सि. १, ८,

३ शेषाणां सामान्योक्तः कालः । स. सि. १, ८.

४ अनाहारकेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । एकजीवं प्रति जघन्येनैकः समयः । उत्कर्षेण

कुदो ? मिच्छाविट्ठी णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धं होंति, एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगो समओ, उक्कस्सेण तिण्णि समया; सासणसम्मादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण वे समया; सयोगिकेवलीणं णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण तिण्णि समया, उक्कस्सेण संखेज्जसमया, एगजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण तिण्णि समया इच्चेहि अणाहारमिच्छाविट्ठिआदीणं कम्मइयकायजोगिमिच्छाविट्ठिआदीहिंतो विसेसाभावा ।

अजोगिकेवली ओघं[1] ॥ ३४२ ॥

कुदो ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं, एगजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण पंचह्रस्सक्खरुच्चारणकालो इच्चेदेहि भेदाभावा ।

(एवं आहारमग्गणा समत्ता ।)

एवं कालाणिओगद्दारं समत्तं[2] ।

क्योंकि, अनाहारक मिथ्यादृष्टि नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं, एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय होते हैं, और उत्कर्षसे तीन समय होते हैं; अनाहारक सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय, उत्कर्षसे आवलीके असंख्यातवें भाग, एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे दो समय तक होते हैं; सयोगिकेवलीका काल नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे तीन समय और उत्कर्षसे संख्यात समय है, तथा एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल तीन समय है; इस प्रकारसे अनाहारक मिथ्यादृष्टि आदि जीवोंका कार्मणकाययोगी मिथ्यादृष्टि आदिसे विशेषताका अभाव है ।

अनाहारक अयोगिकेवलीका काल ओघके समान है ॥ ॥ ३४२ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है; एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल पांच ह्रस्व अक्षरोंके उच्चारण कालके समान है, इस प्रकार ओघप्ररूपणासे कोई भेद नहीं है ।

(इस प्रकार आहारमार्गणा समाप्त हुई ।)

इस प्रकार कालानुयोगद्वार समाप्त हुआ ।

त्रयः समयाः । सासादनसम्यग्दृष्टयसंयतसम्यग्दृष्टयोर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः । उत्कर्षेणावलिकाया असंख्येयभागः । एकजीवं प्रति जघन्येनैकः समयः । उत्कर्षेण द्वौ समयौ । सयोगिकेवलिनो नानाजीवापेक्षया जघन्येन त्रयः समयाः । उत्कर्षेण संख्येयाः समयाः । एकजीवं प्रति जघन्यश्चोत्कृष्टश्च त्रयः समयाः । स. सि. १,८.

१ अयोगिकेवलिनो सामान्योक्तः । स. सि. १, ८. २ कालो वर्णितः । स. सि. १, ८.

धवला भाग ४

शुद्धिपत्र

(संशोधक—पं. जवाहरलाल शास्त्री, भीण्डर, राजस्थान)

शंका—

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्ध
१४	५	डेवढा	डेढा

विषयपरिचय

१७	१	एक राजूके प्रस्तर या वर्ग प्रमाण है	एक राजू चौडा, सातराजू, लंबा (आयात) एक लाख योजन ऊंचा (१४२८५ $\frac{1}{7}$) यो बाहल्य जगप्रतर प्रमाण घनफलवाला है
१७	२	व्यासवाला	योजन व्यासवाला तथा एक लाख योजन ऊंचा
१८	३१	गमनागमन कर रहे हैं।	×(एकेंद्रियोंमें विहारवत् स्वस्थान नहीं होता)

मूलपुस्तक

१०	२८	गुणिते	गुणिते कृते
११	२७	एकैकस्मिन्	एकैकस्मिन्
,,	,,	गुणिता	गुणिता जाता
१३	२५	प्रमाणको	विस्तारको
१५	१८	अर्धमात्र	अर्ध-अर्ध मात्र
३४	२६	उत्सेधके	आयामके
४०	२८	$\left(\frac{१६८}{१०} \div \frac{१}{२}\right)^२$	$\left(\frac{१६८}{१०} \times \frac{१}{२}\right)^२$
४१	१०	$\frac{१६८^१}{२०}$	$\left(\frac{१६८}{२०}^{१}\right)$
,,	२०	पूर्वोक्त गुणकारोंसे	पूर्वोक्त गुणकार गुणित अवगाहना गुणित राशिसे
,,	२२	इन गुणकारोंसे	इन राशियोंसे
४३	२३	चाहिये	चाहिए
४६	१८	की उत्कृष्ट अवगाहना	का उत्कृष्ट क्षेत्रफल
,,	१९	,,	,,
,,	२३	$\frac{५००}{९} \times १६ + १६$	$\left[\frac{५००}{९} \times १६\right] + १६$

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्ध
४६	२४	$\frac{८८८१२०००}{३६६१२}$ धनुष	$\frac{८८८२२०००}{३६६१२}$ वर्गधनुष
,,	२५	$\frac{८८८१२०००}{३६६१२} \times \frac{९६}{१}$	$\frac{८८८२२०००}{३६६१२} \times \left[\frac{९६}{१}\right]^{१}$
,,	,,	$\frac{८५२५१५२०००}{३६६१२}$ प्रतरांगुळ	$\frac{८१८५८३५५२०००}{३६६१२}$ प्रतरांगुळ
४९	१२	$\frac{१०८+५००}{९६} =$	$\frac{१०८ \times ५००}{९६} =$
५२	१४	२००० हजार योजन	२००० योजन
,,	१९	उत्तर और दक्षिण	पूर्व और पश्चिम
५३	११	पूर्व और पश्चिम	दक्षिण और उत्तर
,,	१८	,,	,,
,,	१९	,,	,,
५४	८	उत्तर और दक्षिणमें पूर्वसे पश्चिमतक	पूर्व और पश्चिम पार्श्वयुगलोंमें
५४	१३	१३×७ = ९१, ९१×१४ = १२७४	१३×७ = ९१, १६+१२ = २८, २८ ÷ २ = १४ ९१×१४ = १२७४
,,	१७	पूर्व और पश्चिम	दक्षिण और उत्तर
,,	२४	,, में	,, की अपेक्षा
,,	२५	,,	,,
५५	९	,,	,,
,,	१८	$\div \frac{७}{१}$	$\div \frac{४९}{१}$
,,	२३	$\frac{३१९८०००}{३४४} + \frac{१७८३६}{३४४}$	$\frac{३१९८०००}{३४३} + \frac{१७८३६}{३४३}$
५८	१६	७×४+३×२४+६ = ७५७	(७×४×२४)+(३×२४)+६ = ७५०
,,	१७	७५०—७२ = $\frac{६७८}{१२}$	७५०-७२ = ६७८, ६७८ ÷ १२ = $\frac{६७८}{१२}$
६१	,,	$१३\frac{४}{७}$	$१३\frac{५}{७}$

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्ध
६२	११	छठवी	छठी
६४	१६	प्रतिसमयमें मरनेवाली राशिको	प्रथम पृथ्वीके द्रव्यको
,,	१७	,,	,,
,,	२५	गतिमें	गतिमें
,,	३०	विस्तारसे करना	विस्तारसे गुणित करना
७०	१४	संग्रहीत	संगृहीत
,,	२९	तिर्यंच पर्याप्त	तिर्यंच
७२	१३	,,	,,
,,	१४	पर्याप्त जीव	जीव
,,	२३	हुई,	है,
७७	२४	असंख्यातगुणे	असंख्यातगुणे
७८	२१	इससे	यहांसे
८०	२०	क्षेत्रके	क्षेत्रको
८५	२२	उसका जो	उसका जो लब्ध आवे उसके
,,	२३	,,	,,
,,	,,	भाग लब्ध आवे उतनी	भाग प्रमाणराशि
८६	१३	असंख्यात भागको	असंख्यात बहुभागको
९४	५	संखेज्जदिभागेण होज्ज ?	संखेज्जदि भागे ण होज्ज ?
,,	१९	भाग प्रमाण होना चाहिए ?	भाग क्षेत्रमें नहीं होना चाहिए ?
१०४	२५	त्रस पर्याय	त्रस पर्याप्त
१३७	१६	संज्ञीजीव	आहारक जीव
१४२	१	अजिवो	×
,,	२६	इस भव्य शरीरवालेको	इस भविष्य कालमें स्पर्शनविषयक शास्त्रके ज्ञायकके
१५३	२२	$(१)\ \frac{२२८}{२२८} = १$	$(१)\ \frac{२८८}{२८८} = १$

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्ध
१५३	२२	$(२)\frac{५७६}{२२८}=२$	$(२)\frac{५७६}{२८८}=२$
१६२	१२	असंख्यातवाँ	संख्यातवाँ
,,	२९	वे उस गुणस्थानमें	वे उन एकेन्द्रियोंमें
१६३	९	उस गुणस्थानमें	एकेन्द्रियोंमें
,,	९	सासादनसम्यग्दृष्टियोंमें	सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थान सहित
१६४	२६	सासादन गुणस्थानवर्ती	सासादन गुणस्थानवर्ती जीवोंका
१६८	२२	$\left(\frac{३}{८}\times\frac{१}{२}\right)=\frac{२७}{२५६}$	$\left(\frac{३}{८}\times\frac{१}{२}\right)^{२}=\frac{२७}{२५६}$ वर्गराजू या प्रतर राजू
,,	२३	व $\frac{७^{१}}{४६४}\frac{२७}{१६}$	व $\frac{७^{१}}{४६४}\frac{२७}{१६}$
१७६	१९	वे आकाशके	वे देशोन आकाशके
१९१	२५	संख्यातवा	संख्यातवाँ
१९४	४	॥ ४ ॥	॥ ५ ॥
१९५	१३	२०१६, ८१७८	२०१६, ८१२८
१९८	१०	संख्या	संख्या
,,	,,	देव	देय
,,	१५	$१६-१^{अ}=\frac{२\,७^{१}\,(\text{जगत्प्रतर})}{१०००००^{२}\times ३१३६}$	$१६^{(अ-१)}=\frac{२\,७^{१}\,(\text{जगत्प्रतर})}{१०००००^{२}\times ३१३६}$
,,	१६	$४-१^{अ}$	$४^{(अ-१)}$
,,	१९	प्राप्त शलाका मानमेंसे	×××
,,	२०	,,	,,

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्ध
१९८	२२	लेकर सोलह	लेकर क्षेत्रफलोंका अनुपात सोलह
,,	२८	प्रतिषु 'सुवर्ण'	प्रतिषु 'सुण्ण'
२००	२४	$२ = \left[\frac{१(१६^{न}-१)}{(१६-१)}\right]-\left[\frac{१(४^{न}-१)}{(४-१)}\right]$	$२ = \left[\frac{१(१६^{न}-१)}{१६-१}\right]-\left(\frac{१(४^{न}-१)}{४-१}\right)$
२०५	१९	भागोंसे	मागोंसे
२०८	१३	राजु प्रततरूप	राजु प्रतरूप
२११	२७	योनिमती	योनिनी
,,	३१	तिर्यंच	तिर्यंच
२१२	१५	हो जा है	हो जाता है
२१६	३०	कस्यासंख्येयभागः	लोकस्यासंख्येयभागः
२१८	२६	स्थिर	स्थित
२१९	२०	पूर्वोक्त	पूर्वोक्त
,,	२४	समचतुरस्त्र	समचतुरस्र
,,	३२	वह क्षेत्रके	यह क्षेत्र
२२१	२४	लोकबाहुल्य	योजनबाहुल्य
,,	३३	अ--क प्रत्यो	आ--क प्रत्योः
२२२	१६	३५७१ / २९०५६	३५७९ राजुप्रतर / २८९२८
,,	१९	विष्कम्भ	विष्कम्भ
२२४	१७	नही ।	नहीं है ।
२२५	२८	देवोंने	देवोंके
२२६	४	तदाफोसणं	तदा फोसणं'
,,	३२	×××	१ प्रतिषु मारणं इतिपाठः ।
२२९	३१	ऊपके	ऊपरके
२३१	१५	संख्यात घनांगुळ प्रमाण	××

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्ध
२३१	१६	अंगुल	घनांगुल
,,	१७	घनांगुल	अंगुल
,,	२५	भवनवासी	व्यंतर
२३३	१४	नोयोजन	नौ सौ योजन
४५	२२	साधर्म	साधर्म्य
२४८	१८	$\left(३\frac{३}{७}\right)$	$\left(३\frac{४}{७}\right)$
,,	१९	$\left[४\frac{६}{७}\right]$	$\left[४\frac{३}{७}\right]$
,,	२५	पृथिवों	पृथिवी
२५१	२६	आचार्यश्री सुविधिसागर जी महाराज	विशेष
२६५	२४	मनुष्योंका	मनुष्योंमें
२६७	१३	सम्यदृष्टि	सम्यग्दृष्टि
२६८	१६	भी ओघपना	भी इनके ओघपना
,,	२५	चाहिये।	चाहिए, क्योंकि
२६९	२	भागो	भागे
,,	१३	वै. मिश्रकाययोगी जीवोंका	वै. मिश्रकाययोगी असंयत सम्यग्दृष्टि जीवोंका
२७१	१	एथ	एत्थ
२७२	१८	राजुप्रतको	राजुप्रतरको
२७३	१५	दर्शना	दर्शनों
२८६	२७	लब्धिके	एक लब्धिके
२९२	२३	हुई भी	हुए भी
,,	२९	उपापद	उपपाद
२९६	२०	डेढ राजू पर समाप्त	डेढ राजू पर तेजो लेश्यावालोंका उपपाद क्षेत्र समाप्त

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्ध
३०५	१८	आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज अवशेष	शेष पदोंके
३०७	२२	उपपापद	उपपादपद
३०९	३	आहारएसु	अणाहारएसु
,,	१४	सम्भवित	सम्भावित
,,	२४	देशोना: । सयोगकेवलिनां	देशोना: । असंयत सम्यग्दृष्टिभि: लोकस्यासंख्येयभाग: पट्चतुर्दश-भागा वा देशोना । सयोगकेवलिनां
३१५	२१	परिणमित	(अन्यरूप) परिणमित
३२१	२१	प्रवुत्त	प्रवृत्त
३२४	२९	सादि सपर्यवासनश्चेति ।	सादिसपर्यवसानश्चेति ।
३३२	३०	निर्जीणा:	निर्जीर्णा:
३३९	१८	कि क्षयहोनेवाली सभी राशियोंके	क्योंकि सभी राशियां
३४५	१४	प्रतिभाग काल महित	प्रतिभग्न होनेके काल सहित
३४६	१६	सर्वाद्धा	सब्वद्धा
३५४	१९	एक समयकी	उत्कृष्ट कालकी (अन्तर्मुहूर्तकी)
३६५	२१	पुन:	अथवा
३८३	१८	उद्वर्तना घातसे	अपवर्तनासे घातसे
३८९	१०	असंखेज्जासंखेज्जाणि	असंखेज्जासंखेज्जाओ
,,	२७	प्रतर, पल्य	प्रतरपल्य
४१७	३	पोग्गल परियट्टेसुप्पण्णेसु	पोग्गलपरियट्टेसु पुण्णेसु (एकेन्द्रियेषु आवल्यसंख्येयभाग प्रमित-पुद्गल परिवर्तन प्रमाणानन्तकालात्मक: परिभ्रमणकाल:। (पेज ३८८ सूत्र १०९) (धवलाटीका)
४१७	१५	शेष रहनेपर	पूर्ण होनेपर
४२०	१६	अपने योगके	अपने गुणस्थानके
४२२	१८	मूहूर्तके	मुहूर्तके
,,	२२	उदयमें आये	उपार्जित किये

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्ध
४३४	२९	प्रदेशसत्त्वकी सूचिकिसागर की झलक	स्थानपर
४३७	१३	और	या
४४५	६	णिरयगदीएण	णिरयगदीए ण
,,	८९	तिरिक्खगईएण	तिरिक्खगईए ण
,,	१०	देवगदीएण	देवगदीए ण
४४५	२०-२१	उत्पन्न कराना	उत्पन्न नहीं कराना
	२२	,,	,,
४४५	२४	,,	,,
,,	९६	,,	,,
४५६	६	०मंतोमच्छिय	०मंतो मुहुत्त मच्छिय
४६१	१३	प्रस्तार के	प्रस्तार में
,,	२४	तीन अन्तर्मुहूर्तोंसे	तीन अन्तर्मुहूर्तोंमेंसे
४६३	२२	उद्वर्तनाघात	अपवर्तनाघात
४६४	२४	कम अढाईसागरोपम कालसे अधिक काल	अधिक ढाई सागरोपम काल
,,	२५	अढाई सागरोपम कालके	विवक्षित पर्यायके
४६८	१३	वर्धमान	शंका-- वर्धमान
,,	१८	शंका--- तेजओय	तेजओय
४७५	३०	गुणस्थानोंका	गुणस्थानोंमें शुक्ललेश्याका
४७७	१८	सादि सान्त नहीं है।	सादि नहीं है।
,,	२९	अर्थात् फिर तो भव्यत्वको अनादि अनन्त भी होना पडेगा	अनादि अनन्त भव्यत्वभी होना चाहिए.
,,	३०	,,	,,
४८८	३	उक्कस्सेण वे समया	उक्कस्सेण आवलियाए असंखेज्जदिभागो एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ उक्कस्सेण वे समया
४८८	२८	सामान्योक्तः	सामान्योक्तः कालः

१ खेत्तपरूवणासुत्ताणि ।

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१	खेत्ताणुगमेण दुविहो णिद्देसो, ओघेण आदेसेण य ।	२
२	ओघेण मिच्छाइट्ठी केवडि खेत्ते, सव्वलोगे ।	१०
३	सासणसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति केवडि खेत्ते, लोगस्स, असंखेज्जदिभाए ।	३९
४	सजोगिकेवली केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे, असंखेज्जेसु वा भागेसु, सव्वलोगे वा ।	४८
५	आदेसेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइएसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्माइट्ठि त्ति केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	५६
६	एवं सत्तसु पुढवीसु णेरइया ।	६५
७	तिरिक्खगदीए तिरिक्खेसु मिच्छाइट्ठी केवडि खेत्ते, सव्वलोए ।	६६
८	सासणसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदा त्ति केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	६७
९	पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्त-पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदा केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	६९
१०	पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्ता केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	७३
११	मणुसगदीए मणुस-मणुसपज्जत्त मणुसिणीसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवली केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	७३
१२	सजोगिकेवली केवडि खेत्ते, ओघं ।	७५
१३	मणुसअपज्जत्ता केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	७६
१४	देवगदीए देवेसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्माइट्ठि त्ति केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	७७
१५	एवं भवणवासियप्पहुडि जाव उवरिम-उवरिमगेवज्जविमाण-वासियदेवा त्ति ।	७७
१६	अणुदिसादि जाव सव्वट्ठसिद्धिविमाण-वासियदेवा असंजदसम्माइट्ठी केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	८१
१७	इंदियाणुवादेण एइंदिया बादरा सुहुमा पज्जत्ता अपज्जत्ता केवडि खेत्ते, सव्वलोगे ।	८१
१८	बीइंदिय - तीइंदिय - चउरिंदिया तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता य केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	८४
१९	पंचिंदिय - पंचिंदियपज्जत्तएसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	८६
२०	सजोगिकेवली ओघं ।	८६
२१	पंचिंदियअपज्जत्ता केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	८७

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
२२	कायाणुवादेण पुढविकाइया आउकाइया तेउकाइया वाउकाइया, बादरपुढविकाइया बादरआउकाइया बादरतेउकाइया बादरवाउकाइया बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरा तस्सेव अपज्जत्ता, सुहुमपुढविकाइया सुहुमआउकाइया सुहुमतेउकाइया सुहुमवाउकाइया तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता य केवडि खेत्ते, सव्वलोगे।	८७
२३	बादरपुढविकाइया बादरआउकाइया बादरतेउकाइया बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरा पज्जत्ता केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे।	९३
२४	बादरवाउक्काइयपज्जत्ता केवडि खेत्ते, लोगस्स संखेज्जदिभागे।	९९
२५	वणप्फदिकाइयणिगोदजीवा बादरा सुहुमा पज्जत्तापज्जत्ता केवडि खेत्ते, सव्वलोगे	१००
२६	तसकाइय-तसकाइयपज्जत्तएसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे।	१०१
२७	सजोगिकेवली ओघं।	१०१
२८	तसकाइयअपज्जत्ता पंचिंदियअपज्जत्ताणं भंगो।	१०१
२९	जोगाणुवादेण पंचमणजोगि-पंचवचिजोगीसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवली केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे।	१०२
३०	कायजोगीसु मिच्छाइट्ठी ओघं।	१०३
३१	सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे।	१०३
३२	सजोगिकेवली ओघं।	१०४
३३	ओरालियकायजोगीसु मिच्छाइट्ठी ओघं।	१०४
३४	सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवली लोगस्स असंखेज्जदिभागे।	१०५
३५	ओरालियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी ओघं।	१०५
३६	सासणसम्मादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी सजोगिकेवली केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे।	१०६
३७	वेउव्वियकायजोगीसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठी केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे।	१०८
३८	वेउव्वियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी सासणसम्मादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे।	१०९
३९	आहारकायजोगीसु आहारमिस्सकायजोगीसु पमत्तसंजदा केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे।	१०९
४०	कम्मइयकायजोगी सु मिच्छाइट्ठी ओघं।	११०
४१	सासणसम्मादिट्ठी असंजदसम्माइट्ठी ओघं।	११०
४२	सजोगिकेवली केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जेसु भागेसु सव्वलोगे वा।	१११
४३	वेदाणुवादेण इत्थिवेद-पुरिसवेदेसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्टी केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे।	१११

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
४४	णवुंसयवेदेसु मिच्छाविट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति ओघं ।	११२
४५	अपगदवेदएसु अणियट्टिप्पहुडि जाव अजोगिकेवली केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	११३
४६	सजोगिकेवली ओघं ।	११३
४७	कसायाणुवादेण कोधकसाइ-माणकसाइ-मायकसाइ-लोभकसाईसु मिच्छाविट्ठी ओघं ।	११३
४८	सासणसम्माविट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	११४
४९	णवरि विसेसो, लोभकसाईसु सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदा उवसमा खवा केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	११६
५०	अकसाईसु चदुट्ठाणमोघं ।	११६
५१	णाणाणुवादेण मदिअण्णाणि-सुदअण्णाणीसु मिच्छाविट्ठी ओघं ।	११७
५२	सासणसम्माविट्ठी ओघं ।	११८
५३	विभंगणाणीसु मिच्छाविट्ठी सासणसम्माविट्ठी केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	११८
५४	आभिणिबोहिय-सुद-ओहिणाणीसु असंजदसम्माविट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	११९
५५	मणपज्जवणाणीसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	११९
५६	केवलणाणीसु सजोगिकेवली ओघं ।	१२०
५७	अजोगिकेवली ओघं ।	१२०
५८	संजमाणुवादेण संजदेसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवली ओघं ।	१२१
५९	सजोगिकेवली ओघं ।	१२२
६०	सामाइय-छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदेसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति ओघं ।	१२२
६१	परिहारसुद्धिसंजदेसु पमत्त-अप्पमत्तसंजदा केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	१२३
६२	सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदेसु सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदउवसमा खवगा केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	१२३
६३	जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदेसु चदुट्ठाणमोघं ।	१२४
६४	संजदासंजदा केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	१२४
६५	असंजदेसु मिच्छाविट्ठी ओघं ।	१२४
६६	सासणसम्माविट्ठी सम्मामिच्छाविट्ठी असंजदसम्माविट्ठी ओघं ।	१२५
६७	दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणीसु मिच्छाविट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	१२६
६८	अचक्खुदंसणीसु मिच्छाविट्ठी ओघं ।	१२७
६९	सासणसम्माविट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था त्ति ओघं ।	१२७
७०	ओहिदंसणी ओहिणाणिभंगो ।	१२७
७१	केवलदंसणी केवलणाणिभंगो ।	१२७

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
७२	लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय-णील-लेस्सिय-काउलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठी ओघं ।	१२८
७३	सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी ओघं ।	१२८
७४	तेउलेस्सिय-पम्मलेस्सिएसु मिच्छा-इट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदा केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	१२९
७५	सुक्कलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदि-भागे ।	१३०
७६	सजोगिकेवली ओघं ।	१३१
७७	भवियाणुवादेण भवसिद्धिएसु मिच्छा-दिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवली ओघं ।	१३१
७८	अभवसिद्धिएसु मिच्छादिट्ठी केवडि खेत्ते, सव्वलोए ।	१३२
७९	सम्मत्ताणुवादेण सम्मादिट्ठि-खइय-सम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठि-प्पहुडि जाव अजोगिकेवली ओघं ।	१३३
८०	सजोगिकेवली ओघं ।	१३४
८१	वेदगसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मा-दिट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदा केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदि-भागे ।	१३४
८२	उवसमसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मा-दिट्ठिप्पहुडि जाव उवसंतकसाय-वीदरागछदुमत्था केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	१३४
८३	सासणसम्मादिट्ठी ओघं ।	१३५
८४	सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं ।	१३५
८५	मिच्छादिट्ठी ओघं ।	१३५
८६	सण्णियाणुवादेण सण्णिसु मिच्छा-दिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसाय-वीदरागछदुमत्था केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	१३६
८७	असण्णी केवडि खेत्ते, सव्वलोए ।	१३६
८८	आहाराणुवादेण आहारएसु मिच्छा-दिट्ठी ओघं ।	१३७
८९	सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवली केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	१३७
९०	अणाहारएसु मिच्छादिट्ठी ओघं ।	१३७
९१	सासणसम्मादिट्ठी असंजदसम्मा-दिट्ठी अजोगिकेवली केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	१३८
९२	सजोगिकेवली केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जेसु वा भागेसु, सव्वलोगे वा ।	१३८

फोसणपरूवणासुत्ताणि

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१	पोसणाणुगमेण दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य ।	१४१
२	ओघेण मिच्छाइट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, सव्वलोगो ।	१४५
३	सासणसम्माइट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	१४८
४	अट्ठ बारह चोद्दसभागा वा देसूणा ।	१४९
५	सम्मामिच्छाइट्ठि-असंजदसम्मा-इट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	१६६
६	अट्ठ चोद्दसभागा वा देसूणा ।	१६६
७	संजदासंजदेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	१६७
८	छ चोद्दसभागा वा देसूणा ।	१६८
९	पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अजोगि-केवलीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	१७०
१०	सजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जा वा भागा, सव्वलोगो वा ।	१७२
११	आदेसेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइएसु मिच्छाइट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदि-भागो ।	१७३
१२	छ चोद्दसभागा वा देसूणा ।	१७३
१३	सासणसम्माइट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	१७७
१४	पंच चोद्दसभागा वा देसूणा ।	१७७
१५	सम्मामिच्छाइट्ठि-असंजदसम्मा-इट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	१७८
१६	पढमाए पुढवीए णेरइएसु मिच्छा-इट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मा-इट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	१८२
१७	विदियादि जाव छट्ठीए पुढवीए णेरइएसु मिच्छाइट्ठि-सासणसम्मा-इट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	१८८
१८	एग दो तिण्णि चत्तारि पंच-चोद्दस-भागा वा देसूणा ।	१८८
१९	सम्मामिच्छाइट्ठि-असंजदसम्मा-इट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	१८९
२०	सत्तमाए पुढवीए णेरइएसु मिच्छा-इट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	१९०
२१	छ चोद्दसभागा वा देसूणा ।	१९०
२२	सासणसम्माइट्ठि – सम्मामिच्छा-इट्ठि-असंजदसम्माइट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखे-ज्जदिभागो ।	१९१

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
२३	तिरिक्खगदीए तिरिक्खेसु मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, ओघं।	१९२
२४	सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	१९३
२५	सत्त चोद्दसभागा वा देसूणा।	१९३
२६	सम्मामिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	२०६
२७	असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजदेहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	२०७
२८	छ चोद्दसभागा वा देसूणा।	२०७
२९	पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्त-जोणिणीसु मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	२११
३०	सव्वलोगो वा।	२११
३१	सेसाणं तिरिक्खगदीणं भंगो।	२१३
३२	पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तएहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	२१३
३३	सव्वलोगो वा।	२१४
३४	मणुसगदीए मणुस-मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	२१६
३५	सव्वलोगो वा।	२१६
३६	सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	२१७
३७	सत्त चोद्दसभागा वा देसूणा।	२१७
३८	सम्मामिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	२२०
३९	सजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जा वा भागा, सव्वलोगो वा।	२२३
४०	मणुसअपज्जत्तेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	२२३
४१	सव्वलोगो वा।	२२४
४२	देवगदीए देवेसु मिच्छादिट्ठिसासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	२२४
४३	अट्ठ णव चोद्दसभागा वा देसूणा।	२२५
४४	सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	२२७
४५	अट्ठ चोद्दसभागा वा देसूणा।	२२७
४६	भवणवासिय-वाणवेंतर-जोदिसिय-देवेसु मिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	२२८
४७	अद्धट्ठा वा, अट्ठ णव चोद्दसभागा वा देसूणा।	२२९
४८	सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	२३३
४९	अद्धट्ठा वा अट्ठ चोद्दसभागा देसूणा।	२३३
५०	सोधम्मीसाणकप्पवासियदेवेसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जावे असंजदसम्मादिट्ठि त्ति देवोघं।	२३४

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
५१	सणक्कुमारप्पहुडि जाव सदार-सहस्सारकप्पवासियदेवेसु मिच्छा-दिट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मा-दिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	२३७
५२	अट्ठ चोद्दसभागा वा देसूणा ।	२३७
५३	आणद जाव आरणच्चुदकप्पवासिय-देवेसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव असंजद-सम्माइट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	२३८
५४	छ चोद्दसभागा वा देसूणा फोसिदा ।	२३८
५५	णवगेवज्जविमाणवासियदेवेसु मिच्छा-दिट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मा-दिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	२३९
५६	अणुदिस जाव सव्वट्ठसिद्धिविमाण-वासियदेवेसु असंजदसम्माइट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	२४०
५७	इंदियाणुवादेण एइंदिय-बादरसुहुम-पज्जत्तापज्जत्तएहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, सव्वलोगो ।	२४०
५८	बीइंदिय–तीइंदिय–चउरिंदियतस्सेव पज्जत्त-अपज्जत्तएहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	२४२
५९	सव्वलोगो वा ।	२४३
६०	पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्तएसु मिच्छा-दिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	२४४
६१	अट्ठ चोद्दसभागा देसूणा, सव्व-लोगो वा ।	२४४
६२	सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगि-केवलि त्ति ओघं ।	२४५
६३	सजोगिकेवली ओघं ।	२४५
६४	पंचिंदियअपज्जत्तएहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	२४६
६५	सव्वलोगो वा ।	२४६
६६	कायाणुवादेण पुढविकाइय-आउ-काइय–तेउकाइय-वाउकाइय-बादर-पुढविकाइय-बादरआउकाइय-बादरते-उकाइय–बादरवाउकाइय-वणप्फदि-काइयपत्तेयसरीर–तस्सेव अपज्जत्त-सुहुमपुढविकाइय–सुहुमआउकाइय–सुहुमतेउकाइय-सुहुमवाउकाइय तस्सेव पज्जत्तपज्जत्तएहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, सव्वलोगो ।	२४७
६७	बादरपुढविकाइय–बादरआउकाइय-बादरतेउकाइय-बादरवणप्फदिकाइय-पत्तेयसरीरपज्जत्तएहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	२५०
६८	सव्वलोगो वा ।	२५०
६९	बादरवाउपज्जत्तएहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स संखेज्जदिभागो ।	२५२
७०	सव्वलोगो वा ।	२५३
७१	वणप्फदिकाइयणिगोदजीवबादरसुहुम-पज्जत्त-अपज्जत्तएहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, सव्वलोगो ।	२५३
७२	तसकाइय-तसकाइयपज्जत्तएसु मिच्छा-दिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघ ।	२५४
७३	तसकाइयअपज्जत्ताणं पंचिंदिय–अपज्जत्ताणं भंगो ।	२५४

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
७४	ओगाहणाबंधेण पंचमणजोगि-पंचवचिजोगीसु मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	२५५
७५	अट्ठ चोद्दसभागा देसूणा, सव्वलोगो वा।	२५५
७६	सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदा ओघं।	२५६
७७	पमत्तसंजदप्पहुडि जाव सजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	२५७
७८	कायजोगीसु मिच्छादिट्ठी ओघं।	२५८
७९	सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था ओघं।	२५८
८०	सजोगिकेवली ओघं।	,,
८१	ओरालियकायजोगीसु मिच्छाइट्ठी ओघं।	२५९
८२	सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	२६०
८३	सत्त चोद्दसभागा वा देसूणा।	,,
८४	सम्मामिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	२६१
८५	असंजदसम्मादिट्ठीहि संजदासंजदेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	,,
८६	छ चोद्दसभागा वा देसूणा।	२६२
८७	पमत्तसंजदप्पहुडि जाव सजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो :	,,
८८	ओरालियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी ओघं।	२६३
८९	सासणसम्माइट्ठि-असंजदसम्माइट्ठि-सजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	२६४
९०	वेउव्वियकायजोगीसु मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	२६६
९१	अट्ठ तेरह चोद्दसभागा वा देसूणा।	,,
९२	सासणसम्मादिट्ठी ओघं।	२६७
९३	सम्मामिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी ओघं।	२६७
९४	वेउव्वियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठि–सासणसम्मादिट्ठि–असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	२६८
९५	आहारकायजोगी-आहारमिस्सकायजोगीसु पमत्तसंजदेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	२६९
९६	कम्मइयकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी ओघं।	,,
९७	सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	२७०
९८	एक्कारह चोद्दसभागा देसूणा।	,,
९९	असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	,,
१००	छ चोद्दसभागा देसूणा।	,,
१०१	सजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जा भागा, सव्वलोगो वा।	२७१

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१०२	वेदाणुवादेण इत्थिवेद-पुरिसवेदएसु मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	२७१
१०३	अट्ठ चोद्दसभागा देसूणा, सव्वलोगो वा।	२७२
१०४	सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	२७२
१०५	अट्ठ चोद्दसभागा देसूणा।	,,
१०६	सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	२७४
१०७	अट्ठ चोद्दसभागा वा देसूणा फोसिदा।	,,
१०८	संजदासंजदेहि केवडि खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	,,
१०९	छ चोद्दसभागा देसूणा।	२७५
११०	पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अणियट्टि-उवसामग-खवएहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	,,
१११	णउंसयवेदएसु मिच्छादिट्ठी ओघं।	२७६
११२	सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	,,
११३	बारह चोद्दसभागा वा देसूणा।	२७७
११४	सम्मामिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	,,
११५	असंजदसम्मादिट्ठीहि-संजदासंजदेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	२७८
११६	छ चोद्दसभागा देसूणा।	,,
११७	पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति ओघं।	२७८
११८	अपगदवेदएसु अणियट्टिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं।	२७९
११९	सजोगिकेवली ओघं।	२८०
१२०	कसायाणुवादेण कोधकसाइ-माणकसाइ-मायकसाइ-लोभकसाईसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्टि-त्ति ओघं।	,,
१२१	णवरि लोभकसाईसु सुहुमसांपराइयउवसमा खवा ओघं।	,,
१२२	अकसाईसु चदुट्ठाणमोघं।	,,
१२३	णाणाणुवादेण मदिअण्णाणि-सुदअण्णाणीसु मिच्छादिट्ठी ओघं।	२८१
१२४	सासणसम्मादिट्ठी ओघं।	,,
१२५	विभंगणाणीसु मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	२८२
१२६	अट्ठ चोद्दसभागा देसूणा, सव्वलोगो वा।	,,
१२७	सासणसम्मादिट्ठी ओघं।	२८३
१२८	आभिणिबोहिय-सुद-ओधिणाणीसु असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था त्ति ओघं।	,,
१२९	मणपज्जवणाणीसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था त्ति ओघं।	२८४
१३०	केवलणाणीसु सजोगिकेवली ओघं।	,,

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१३१	अजोगिकेवली ओघं ।	२८५
१३२	संजमाणुवादेण संजदेसु पमत्तसंजद-प्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं ।	,,
१३३	सजोगिकेवली ओघं ।	,,
१३४	सामाइयच्छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदेसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति ओघं ।	२८६
१३५	परिहारसुद्धिसंजदेसु पमत्त-अप्प-मत्तसंजदेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	,,
१३६	सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदेसु सुहुम-सांपराइय-उवसमा खवा ओघं ।	२८७
१३७	अहाक्खादविहारसुद्धिसंजदेसु चदु-ट्ठाणी ओघं ।	,,
१३८	संजदासंजदा ओघं ।	,,
१३९	असंजदेसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठि त्ति ओघं ।	२८८
१४०	दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणीसु मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	,,
१४१	अट्ठ चोद्दसभागा देसूणा सव्व-लोगो वा ।	,,
१४२	सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव खीण-कसायवीयरागछदुमत्था त्ति ओघं ।	२८९
१४३	अचक्खुदंसणीसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीयरागछदुमत्था त्ति ओघं ।	,,
१४४	ओधिदंसणी ओधिणाणिभंगो ।	२८९
१४५	केवलदंसणी केवलणाणिभंगो ।	२९०
१४६	लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सियणील-लेस्सिय-काउलेस्सियमिच्छादिट्ठी ओघं ।	,,
१४७	सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	२९१
१४८	पंच चत्तारि वे चोद्दसभागा वा देसूणा ।	,,
१४९	सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मा-दिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	२९३
१५०	तेउलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठिसासण-सम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	२९४
१५१	अट्ठ णव चोद्दसभागा वा देसूणा ।	२९५
१५२	सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मा-दिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	,,
१५३	अट्ठ चोद्दसभागा वा देसूणा ।	,,
१५४	संजदासंजदेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	२९६
१५५	विवड्ढ चोद्दसभागा वा देसूणा ।	,,
१५६	पमत्त-अपमत्तसंजदा ओघं ।	२९७
१५७	पम्मलेस्सिएसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदि-भागो ।	२९७
१५८	अट्ठ चोद्दसभागा वा देसूणा ।	,,
१५९	संजदासंजदेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	२९८
१६०	पंच चोद्दसभागा वा देसूणा ।	,,

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१६१	पमत्त-अपमत्तसंजदा ओघं ।	२९९
१६२	सुक्कलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	,,
१६३	छ चोद्दसभागा वा देसूणा ।	,,
१६४	पमत्तसंजदप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति ओघं ।	३००
१६५	भवियाणुवादेण भवसिद्धिएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं ।	३०१
१६६	अभवसिद्धिएहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, सव्वलोगो ।	,,
१६७	सम्मत्ताणुवादेण सम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं ।	३०२
१६८	खइयसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठी ओघं ।	,,
१६९	संजदासंजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	३०३
१७०	सजोगिकेवली ओघं	३०४
१७१	वेदगसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदा त्ति ओघं ।	३०४
१७२	उवसमसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठी ओघं ।	,,
१७३	संजदासंजदप्पहुडि जाव उवसंतकसायवीदरागछदुमत्थेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	३०५
१७४	सासणसम्मादिट्ठी ओघं ।	३०६
१७५	सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं ।	,,
१७६	मिच्छादिट्ठी ओघं ।	,,
१७७	सण्णियाणुवादेण सण्णीसु मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, [illegible]	,,
१७८	अट्ठ चोद्दसभागा देसूणा सव्वलोगो वा ।	,,
१७९	सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था ओघं ।	३०७
१८०	असण्णीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, सव्वलोगो ।	,,
१८१	आहाराणुवादेण आहारएसु मिच्छादिट्ठी ओघं ।	३०८
१८२	सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदा ओघं ।	,,
१८३	पमत्तसंजदप्पहुडि जाव सजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	,,
१८४	अणाहारएसु कम्मइयकायजोगिभंगो ।	३०९
१८५	णवरिविसेसा, अजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	३०९

कालपरूवणासुत्ताणि ।

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१	कालाणुगमेण दुविहो णिद्देसो, ओघेण आदेसेण य ।	३१३
२	ओघेण मिच्छाविट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	३२३
३	एगजीवं पडुच्च अणादिओ अपज्जवसिदो, अणादिओ सपज्जवसिदो, सादिओ सपज्जवसिदो । जो सो सादिओ सपज्जवसिदो तस्स इमो णिद्देसो । जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	३२४
४	उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं	३२५
५	सासणसम्मादिट्ठि केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ ।	३३९
६	उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ।	३४०
७	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ ।	३४१
८	उक्कस्सेण छ आवलियाओ ।	३४२
९	सम्मामिच्छाइट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	३४२
१०	उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ।	३४४
११	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	,,
१२	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	३४५
१३	असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	३४५
१४	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	३४६
१५	उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि सादिरेयाणि ।	३४७
१६	संजदासंजदा केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	३४८
१७	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	३४९
१८	उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणा ।	३५०
१९	पमत्त – अप्पमत्तसंजदा केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	,,
२०	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	३५०
२१	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	३५१
२२	चउण्हं उवसमा केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	३५२
२३	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	,,
२४	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	३५३
२५	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	३५४
२६	चदुण्हं खवगा अजोगिकेवली केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	,,
२७	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	,,
२८	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	३५५
२९	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	,,

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
३०	सजोगिकेवली केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	३५६
३१	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	,,
३२	उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणा ।	,,
३३	आदेसेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइएसु मिच्छाविट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	३५७
३४	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	,,
३५	उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि ।	३५८
३६	सासणसम्माविट्ठी सम्मामिच्छाविट्ठी ओघं ।	,,
३७	असंजदसम्माविट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	,,
३८	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	३५९
३९	उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि ।	,,
४०	पढमाए जाव सत्तमाए पुढवीए णेरइएसु मिच्छाविट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	३६०
४१	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	,,
४२	उक्कस्सेण सागरोवमं तिण्णि सत्त दस सत्तारस बावीस तेत्तीसं सागरोवमाणि ।	,,
४३	सासणसम्माविट्ठी सम्मामिच्छाविट्ठी ओघं ।	३६१
४४	असंजदसम्माविट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	,,
४५	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	३६२
४६	उक्कस्सं सागरोवमं तिण्णि सत्त दस सत्तारस बावीस तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि ।	३६२
४७	तिरिक्खगदीए तिरिक्खेसु मिच्छाविट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	३६३
४८	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	,,
४९	उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टं ।	३६४
५०	सासणसम्माविट्ठी सम्मामिच्छाविट्ठी ओघं ।	,,
५१	असंजदसम्माविट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	३६५
५२	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	,,
५३	उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि ।	,,
५४	संजदासंजदा केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	३६६
५५	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	,,
५६	उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणा ।	,,
५७	पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदिय-तिरिक्ख-पज्जत्त-पंचिंदियतिरिक्ख-जोणिणीसु मिच्छाविट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	३६७
५८	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	,,
५९	उक्कस्सं तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेण अब्भहियाणि ।	,,
६०	सासणसम्माविट्ठी सम्मामिच्छाविट्ठी ओघं ।	३६९
६१	असंजदसम्माविट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	,,

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
६२	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	३७०
६३	उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि, तिण्णि पलिदोवमाणि, तिण्णि पलिदोवमाणि देसूणाणि ।	,,
६४	संजदासंजदा ओघं ।	३७१
६५	पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	,,
६६	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ।	,,
६७	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	३७२
६८	मणुसगदीए मणुस-मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	,,
६९	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	,,
७०	उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि ।	३७३
७१	सासणसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	३७४
७२	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	,,
७३	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	,,
७४	उक्कस्सं छ आवलियाओ ।	३७५
७५	सम्मामिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	,,
७६	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	,,
७७	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	३७६
७८	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	३७६
७९	असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	,,
८०	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	३७७
८१	उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि, तिण्णि पलिदोवमाणि सादिरेयाणि, तिण्णि पलिदोवमाणि देसूणाणि ।	,,
८२	संजदासंजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं ।	३७८
८३	मणुसअपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ।	३७९
८४	उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ।	,,
८५	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ।	,,
८६	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	,,
८७	देवगदीए देवेसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	३८०
८८	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	,,
८९	उक्कस्सेण एक्कत्तीसं सागरोवमाणि ।	,,
९०	सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं ।	३८१
९१	असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	३८१
९२	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	,,
९३	उक्कस्सं तेत्तीसं सागरोवमाणि ।	,,

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
९४	भवणवासियप्पहुडि जाव सदार-सहस्सारकप्पवासियदेवेसु मिच्छा-दिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	३८२
९५	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	,,
९६	उक्कस्सेण सागरोवमं पलिदोवमं सादिरेयं बे सत्त चोद्दस सोलसाणं अट्ठारस सागरोवमाणि सादिरेयाणि ।	,,
९७	सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छा-दिट्ठी ओघं ।	३८५
९८	आणद जाव णवगेवज्जविमाण-वासियदेवेसु मिच्छादिट्ठी असंजद-सम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	,,
९९	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	,,
१००	उक्कस्सेण वीसं बावीसं तेवीसं चउवीसं पणवीसं छव्वीसं सत्तावीसं अट्ठावीसं एगूणतीसं तीसं एक्कत्तीसं सागरोवमाणि ।	३८६
१०१	सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छा-दिट्ठी ओघं ।	,,
१०२	अणुद्दिस-अणुत्तरविजय-वइजयंत-जयंत-अवराजिदविमाणवासियदेवेसु असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	,,
१०३	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एक्कत्तीसं, बत्तीसं सागरोवमाणि सादिरेयाणि ।	,,
१०४	उक्कस्सेण बत्तीस, तेत्तीस सागरोवमाणि ।	३८७
१०५	सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवेसु असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	३८७
१०६	एगजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि ।	,,
१०७	इंदियाणुवादेण एइंदिया केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	३८८
१०८	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दा-भवग्गहणं ।	,,
१०९	उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्ज-पोग्गलपरियट्टं ।	,,
११०	बादरएइंदिया केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	३८९
१११	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दा-भवग्गहणं ।	,,
११२	उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जवि-भागो असंखेज्जासंखेज्जाओ ओस-प्पिणि-उस्सप्पिणीओ ।	,,
११३	बादरेइंदियपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	,,
११४	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	,,
११५	उक्कस्सेण संखेज्जाणि वाससह-स्साणि ।	३९२
११६	बादरेइंदियअपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	३९३
११७	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दा-भवग्गहणं ।	,,

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
११८	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	,,
११९	सुहुमएइंदिया केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	३९४
१२०	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दा-भवग्गहणं ।	,,
१२१	उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा ।	,,
१२२	सुहुमेइंदियपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	३९४
१२३	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतो-मुहुत्तं ।	३९५
१२४	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	,,
१२५	सुहुमेइंदियअपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	३९६
१२६	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दा-भवग्गहणं ।	,,
१२७	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	३९७
१२८	बीइंदिया तीइंदिया चउरिंदिया, बीइंदिय – तीइंदिय – चउरिंदिय-पज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	,,
१२९	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दा-भवग्गहणं, अंतोमुहुत्तं ।	,,
१३०	उक्कस्सेण संखेज्जाणि वाससह-स्साणि ।	,,
१३१	बीइंदिय – तीइंदिय – चउरिंदिया अपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	३९८
१३२	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दा-भवग्गहणं ।	,,
१३३	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	३९९
१३४	पंचिंदिय – पंचिंदियपज्जत्तएसु मिच्छाविट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा	,,
१३५	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतो-मुहुत्तं ।	,,
१३६	उक्कस्सेण सागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि, सागरोवमसदपुधत्तं ।	४००
१३७	सासणसम्मादिट्ठीप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं ।	,,
१३८	पंचिंदियअपज्जत्ता बीइंदिय-अपज्जत्तभंगो ।	,,
१३९	कायाणुवादेण पुढविकाइया आउ-काइया तेउकाइया वाउकाइया केवचिरं कालादो होंति, णाणा-जीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	४०१
१४०	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दा-भवग्गहणं ।	,,
१४१	उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा ।	,,
१४२	बादरपुढविकाइया बादरआउ-काइया बादरतेउकाइया बादर-वाउकाइया बादरवणप्फदिकाइय-पत्तेयसरीरा केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	४०२
१४३	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दा-भवग्गहणं ।	,,
१४४	उक्कस्सेण कम्मट्ठिदी ।	,,

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१४५	बादरपुढविकाइय – बादरआउ-काइय-बादरतेउकाइय - बादरवाउ-काइय – बादरवणप्फदिकाइय–पत्तेयसरीरपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	४०३
१४६	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतो-मुहुत्तं ।	४०४
१४७	उक्कस्सेण संखेज्जाणि वाससहस्साणि	,,
१४८	बादरपुढविकाइय-बादरआउकाइय-बादरतेउकाइय–बादरवाउकाइय–बादरवणप्फदिकाइय–पत्तेयसरीर–अपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	४०५
१४९	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दा-भवग्गहणं ।	,,
१५०	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	,,
१५१	सुहुमपुढविकाइया सुहुमआउकाइया सुहुमतेउकाइया सुहुमवाउकाइया सुहुमवणप्फदिकाइया सुहुमणिगोद-जीवा तस्सेव पज्जत्तापज्जत्ता सुहु-मेइंदियपज्जत्त–अपज्जत्ताणं भंगो ।	,,
१५२	वणप्फदिकाइयाणं एइंदियाणं भंगो ।	४०६
१५३	णिगोदजीवा केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	,,
१५४	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दा-भवग्गहणं ।	,,
१५५	उक्कस्सेण अड्ढाइज्जादो पोग्गल-परियट्टं ।	,,
१५६	बादरणिगोदजीवाणं बादरपुढवि-काइयाणं भंगो ।	४०७
१५७	तसकाइय–तसकाइयपज्जत्तएसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	४०७
१५८	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	,,
१५९	उक्कस्सेण वे सागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि, वे सागरोवमसहस्साणि ।	४०८
१६०	सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं ।	,,
१६१	तसकाइअपज्जत्ताणं पंचिंदिय–अपज्जत्तभंगो ।	,,
१६२	जोगाणुवादेण पंचमणजोगि–पंच–वचिजोगीसु मिच्छादिट्ठी असंजद-सम्मादिट्ठी संजदासंजदा पमत्तसं-जदा अप्पमत्तसंजदा सजोगिकेवली केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	४०९
१६३	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	,,
१६४	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	४१२
१६५	सासणसम्मादिट्ठी । ओघं	,,
१६६	सम्मामिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	४१३
१६७	उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखे-ज्जदिभागो ।	,,
१६८	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	४१४
१६९	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	,,
१७०	चदुण्हमुवसमा चदुण्हं खवगा केवचिरं कालादो होंति, णाणा-	

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
	जोगं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	४१४
१७१	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	४१५
१७२	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	,,
१७३	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	,,
१७४	कायजोगीसु मिच्छाविट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	,,
१७५	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	४१६
१७६	उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टं ।	,,
१७७	सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति मणजोगिभंगो ।	४१७
१७८	ओरालियकायजोगीसु मिच्छाविट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	,,
१७९	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	४१८
१८०	उक्कस्सेण बावीसं वाससहस्साणि देसूणाणि ।	,,
१८१	सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति मणजोगिभंगो ।	,,
१८२	ओरालियमिस्सकायजोगीसु मिच्छाविट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	४१९
१८३	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं तिसमऊणं ।	,,
१८४	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	,,
१८५	सासणसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	४२०
१८६	उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ।	४२०
१८७	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ ।	,,
१८८	उक्कस्सेण छ आवलियाओ समऊणाओ ।	४२१
१८९	असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	,,
१९०	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	,,
१९१	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	४२२
१९२	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	,,
१९३	सजोगिकेवली केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	४२३
१९४	उक्कस्सेण संखेज्जसमयं ।	४२४
१९५	एगजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण एगसमओ ।	,,
१९६	वेउव्वियकायजोगीसु मिच्छाविट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	४२५
१९७	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ ।	,,
१९८	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	,,
१९९	सासणसम्मादिट्ठी ओघं ।	४२६
२००	सम्मामिच्छादिट्ठीणं मणजोगिभंगो ।	,,
२०१	वेउव्वियमिस्सकायजोगीसु मिच्छाविट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं	

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
	कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	४२६
२०२	उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ।	४२७
२०३	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	४२८
२२४	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	४२९
२०५	सासणसम्माविट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	,,
२०६	उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ।	,,
२०७	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	४३०
२०८	उक्कस्सेण छ आवलियाओ समऊणाओ ।	,,
२०९	आहारकायजोगीसु पमत्तसंजदा केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	४३१
२१०	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	,,
२११	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	,,
२१२	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	४३२
२१३	आहारमिस्सकायजोगीसु पमत्तसंजदा केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	,,
२१४	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	,,
२१५	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	४३३
२१६	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	४३३
२१७	कम्मइयकायजोगीसु मिच्छाविट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	,,
२१८	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	,,
२१९	उक्कस्सेण तिण्णि समया ।	४३४
२२०	सासणसम्माविट्ठी असंजदसम्माविट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमय ।	४३५
२२१	उक्कस्सेण आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।	,,
२२२	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	४३६
२२३	उक्कस्सेण वे समयं ।	,,
२२४	सजोगिकेवली केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण तिण्णि समयं ।	,,
२२५	उक्कस्सेण संखेज्जसमयं ।	,,
२२६	एगजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण तिण्णि समयं ।	,,
२२७	वेदाणुवादेण इत्थिवेदएसु मिच्छाविट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	४३७
२२८	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	,,
२२९	उक्कस्सेण पलिदोवमसदपुधत्तं ।	,,
२३०	सासणसम्माविट्ठी ओघं ।	४३८
२३१	सम्मामिच्छाविट्ठी ओघं ।	,,

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
२३२	असंजदसम्माविट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।	४३८
२३३	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	,,
२३४	उक्कस्सेण पणवण्णपलिदोवमाणि देसूणाणि।	४३९
२३५	संजदासंजदप्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति ओघं।	,,
२३६	पुरिसवेदएसु मिच्छाविट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।	४४०
२३७	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	,,
२३८	उक्कस्सेण सागरोवमसदपुधत्तं।	४४१
२३९	सासणसम्माविट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति ओघं।	,,
२४०	णवुंसयवेदेसु मिच्छाविट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।	,,
२४१	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	४४२
२४२	उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं।	,,
२४३	सासणसम्माविट्ठी ओघं।	,,
२४४	सम्मामिच्छाविट्ठी ओघं।	,,
२४५	असंजदसम्माविट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।	,,
२४६	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	४४३
२४७	उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि।	४४३
२४८	संजदासंजदप्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति ओघं।	,,
२४९	अपगदवेदएसु अणियट्टिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं।	४४४
२५०	कसायाणुवादेण कोधकसाइ-माणकसाइ-मायकसाइ-लोभकसाईसु मिच्छाविट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदा त्ति मणजोगिभंगो।	,,
२५१	दोण्णि तिण्णि उवसमा केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।	४४६
२५२	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।	,,
२५३	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।	,,
२५४	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।	४४७
२५५	दोण्णि तिण्णि खवा केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	,,
२५६	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।	४४८
२५७	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	,,
२५८	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।	,,
२५९	अकसाईसु चदुट्ठाणी ओघं।	,,
२६०	णाणाणुवादेण मदिअण्णाणि-सुदअण्णाणीसु मिच्छाविट्ठी ओघं।	,,
२६१	सासणसम्माविट्ठी ओघं।	४४९
२६२	विभंगणाणीसु मिच्छाविट्ठी केव-	

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
	चिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	४४९
२६३	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	,,
२६४	उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि ।	,,
२६५	सासणसम्मादिट्ठी ओघं ।	४५०
२६६	आभिणिबोहियणाणि-सुदणाणि-ओधिणाणीसु असंजदसम्मादिट्ठीप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था त्ति ओघं ।	,,
२६७	मणपज्जवणाणीसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था त्ति ओघं ।	,,
२६८	केवलणाणीसु सजोगिकेवलि अजोगिकेवली ओघं ।	,,
२६९	संजमाणुवादेण संजदेसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं ।	,,
२७०	सामाइय-छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदेसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति ओघं ।	४५२
२७१	परिहारसुद्धिसंजदेसु पमत्त-अप्पमत्तसंजदा ओघं ।	,,
२७२	सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदेसु सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदा उवसमा खवा ओघं ।	,,
२७३	जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदेसु अकसाई ओघं ।	४५३
२७४	संजदासंजदा ओघं ।	,,
२७५	असंजदेसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठि त्ति ओघं ।	४५३
२७६	दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणीसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	,,
२७७	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	४५४
२७८	उक्कस्सेण बे सागरोवमसहस्साणि ।	,,
२७९	सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था त्ति ओघं ।	,,
२८०	अचक्खुदंसणीसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था त्ति ओघं ।	४५५
२८१	ओधिदंसणी ओधिणाणिभंगो ।	,,
२८२	केवलदंसणी केवलणाणि भंगो ।	,,
२८३	लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय-णीललेस्सिय-काउलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	,,
२८४	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	,,
२८५	उक्कस्सेण तेत्तीस सत्तारस सत्त सागरोवमाणि सादिरेयाणि ।	४५७
२८६	सासणसम्मादिट्ठी ओघं ।	४५८
२८७	सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं ।	४५९
२८८	असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	,,

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
२८९	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	४५९
२९०	उक्कस्सेण तेत्तीस सत्तारस सत्त सागरोवमाणि देसूणाणि ।	४६०
२९१	तेउलेस्सिय-पम्मलेस्सिएसु मिच्छाविट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	४६२
२९२	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	,,
२९३	उक्कस्सेण वे अट्ठारस सागरोवमाणि सादिरेयाणि ।	४६३
२९४	सासणसम्मादिट्ठी ओघं ।	४६५
२९५	सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं ।	,,
२९६	संजदासंजदा-पमत्त-अप्पमत्त-संजदा केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	४६६
२९७	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	,,
२९८	उक्कस्समंतोमुहुत्तं ।	४७१
२९९	सुक्कलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	,,
३००	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	४७२
३०१	उक्कस्सेण एक्कत्तीसं सागरोवमाणि सादिरेयाणि ।	,,
३०२	सासणसम्मादिट्ठी ओघं ।	,,
३०३	सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं ।	४७३
३०४	असंजदसम्मादिट्ठी ओघं ।	,,
३०५	संजदासंजदा पमत्त-अप्पमत्त-संजदा केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	४७३
३०६	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	४७४
३०७	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	४७५
३०८	चदुण्हमुवसमा चदुण्हं खवगा सजोगिकेवली ओघं ।	४७६
३०९	भवियाणुवादेण भवसिद्धिएसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	
३१०	एगजीवं पडुच्च अणादिओ सपज्जवसिदो सादिओ सपज्जवसिदो ।	,,
३११	जो सो सादिओ सपज्जवसिदो तस्स इमो णिद्देसो ।	४७८
३१२	जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	४७९
३१३	उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं ।	,,
३१४	सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं ।	४८०
३१५	अभवसिद्धिया केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	,,
३१६	एगजीवं पडुच्च अणादिओ अपज्जवसिदो ।	,,
३१७	सम्मत्ताणुवादेण सम्मादिट्ठी खइयसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं ।	४८१
३१८	वेदगसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदा त्ति ओघं ।	,,

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
३१९	उवसमसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठी संजदासंजदा केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	४८२
३२०	उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ।	,,
३२१	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	४८३
३२२	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	,,
३२३	पमत्तसंजदप्पहुडि जाव उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था त्ति केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	,,
३२४	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	४८४
३२५	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	,,
३२६	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	,,
३२७	सासणसम्मादिट्ठी ओघं ।	,,
३२८	सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं ।	,,
३२९	मिच्छादिट्ठी ओघं ।	,,
३३०	सण्णियाणुवादेण सण्णीसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	४८५
३३१	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	,,
३३२	उक्कस्सेण सागरोवमसदपुधत्तं ।	४८६
३३३	सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था त्ति ओघं ।	,,
३३४	असण्णी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	४८६
३३५	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ।	,,
३३६	उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं ।	,,
३३७	आहाराणुवादेण आहारएसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	,,
३३८	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	४८७
३३९	उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जासंखेज्जाओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणी ।	,,
३४०	सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति ओघं ।	,,
३४१	अणाहारएसु कम्मइयकायजोगिभंगो ।	,,
३४२	अजोगिकेवली ओघं ।	४८८

२ अवतरण-गाथा-सूची

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

क्रम संख्या	गाथा	पृष्ठ	अन्यत्र कहाँ
४२	अत्थि अणंता जीवा	४७७	गो. जी. १९७
१	अपगयणिवारणट्ठं	२	
४	आगासं सपदेस तु	७	अभिधा. रा. उद्धृत.
३६	आवलिय अणागारे	३९१	कसायपाहुडे अद्धाप.
७	इट्ठुसलागाखुत्तो चत्तारि	२०१	
१०	उच्छ्वासानां सहस्राणि	३१८	
२९	उप्पज्जंति वियंति य भावा	३३७	स. त. १,११.
३१	उवसमसम्मत्तद्धा	२४१	
३२	उवसमसम्मत्तद्धा जह	३४२	
१९	एयक्खेत्तोगाढं सव्व.	३२७	गो. क. १८५
४०	एक्कारस छ सत्त य	४१५	
१४	एक्कारसयं तिसु हेट्ठिमेसु	२३६	
३४	एक्कं तिय सत्त दस तह	३६१	
४३	एयणिगोदसरीरे जीवा	४७८	गो. जी. १९६.
२४	ओसप्पिणि-उस्सप्पिणी	३३३	स सि, २,१० गो. जी. ५६०. टीका.
१	कालो त्ति य ववएसो	३१५	पंचा. गा. २४
२	कालो परिणामभवो	३१५	पंचा. गा. १०८
३७	केवलदंसण-णाणे कसा-	३९१	कसायपाहुडे अद्धाप.
३	खेत्तं खलु आगासं	७	
२१	गहणगुणमयम्हि जीवो	३३२	
३९	गुणजोगपरावत्ती वाघा-	४११	
१५	गेवज्जाणुत्तरिमया जह-	२३६	
२	चंदाइच्च- गहेहिं चेव	१५१	
१३	छच्चेव सहस्साइं सयाइ-	२३६	
५	छप्पंचणवविहाणं अत्था-	३१५	गो. जी. ५६०.
३	छावट्ठि च सहस्सं णव-	१५२	अभिधा. रा. चन्द्रशब्दे
२८	जह णेण्हइ परियट्टं पुरि-	३३४	
९	णत्थि चिरं वा खिप्पं	३१७	पंचा. गा. २६
३	ण य परिणमइ सयं सो	३१५	गो. जी. ५७०
३३	ण य भरइ णेव संजम-	३४९	
२	णामं ठवणा दवियं ति		ह स. त. १,६.
२५	णिरआउआ जहण्णा	३३३	स. सि. १. १०. गो. जी. टीका. ५६.
३५	तिण्णि सया छत्तीसा	३९०	गो. जी. १२३.
४१	दो हो य तिण्णि लेऊ	४७५	
१७	नन्दा भद्रा जया रिक्ता	३१९	
११	निमेषाणां सहस्राणि	३१८	
१८	पणुवीसं असुराणं	७९	त्रि. सा. २४९.
१२	पण्णासं तु सहस्सा	२३५	
२७	परियट्टिदाणि बहुसो	३३४	गो. जी. जी. प्र. ५६० (संस्कृत-छाया)
५	पल्लो सायर सूई पदरोय	१०	ति. प. १,९३ त्रि. सा. ९२.
६	पंचत्थिया था य छज्जीव-	३१६	मूलाचा. २९९
११	बम्हे कप्पे गम्हीसरे य	२३५	
५	बाहिर सूईवग्गो अब्भं-	१९५	ति. प. ५, ३६. त्रि. सा ३१६. (अर्थसमता)
१६	बीजे जोणीभूदे जीवो	२५१	गो. जी. १९०.
३८	माणद्धा कोधद्धा मायद्धा	३९१	कसायपाहुडे अद्धाप.
९	मुह-तलसमास-अद्धं	२०	ति. प. १,१६५ ज. प. ११,१०८
१६	,,	५१	,,

क्रम संख्या	गाथा	पृष्ठ	अन्यत्र कहां
१७	मुह-भूमिविसेसम्हि दु	५७	
१	मुहसहिदमूलमद्धं	१४६	
१०	मूलं मज्झेण गुणं	२१	जं.प.११,११०
१५	,,	५१	,,
१३	रोहणो बलभामा च	३१८	
१२	रौद्रः श्वेतश्च मैत्रश्च	३१८	
७	लोगो अकट्टिमो खलु	११	त्रि. सा. ४.
८	लोयस्स य विक्खंभो	११	जंबू. प. ११, १०७.
४	लोयायासपदेसे एक्केक्के	३१५	गो. जी.५८८.
१०	वसीसं सोहम्मे अट्ठा-	२३५	
८	विक्खंभभवग्गदसगुण-	२०९	त्रि. सा. ९३.
११	वेदण-कसाय-वेउव्विय-	२९	गो.जी.६६७.
१३	व्यासं तावत्कृत्वा वदन-	३५	
९	व्यासं षोडशगुणितं	४२	
१४	,,	२२१	
४	सत्त णव सुण्ण पंच य	१९४	
७	सब्भावसहावाणंजीवा-	३१७	पंचा. गा.२३.
८	समओ णिमिसो कट्ठा	३१७	पंचा. गा.२५.
१६	समयो रात्रिदिनयो-	३१९	
२३	सव्वम्हि लोगखेत्ते	३३३	स. सि.२,१०. गो. जी.५६० टीका.
२६	सव्वासि पगदीणं अणु-	३३४	,,
१८	सव्वे वि पोग्गला खलु	३२६	,,
२२	,,	३३३	,,
१४	सादिओ धुर्वसंजश्च	३१९	
१५	सिद्धार्थः सिद्धसेनश्च	,,	
२०	सुहुमट्ठिदिसंजुत्तं आस-	३३१	गो. जी. ५६०. टीका.
६	सोलह सोलसहि गुणे	१९९	
१२	संखो पुण बारह जोय-	३३	
३०	संते वए ण णिट्ठादि	३३८	
६	हेट्ठा मज्झे उवरिं वेत्ता-	११	जंबू. प. ११, १०६.

गाथा-खंड

रूपेषु गुणमर्थेषु वर्गणं	२००	
रूपोनमादिसंगुण-	१५९,	१९९, २०१
व्यासार्धकृतिघ्निकं	१६९	

३ न्यायोक्तियां

क्रम संख्या	पृष्ठ
१ अवयवेषु प्रवृत्ता शब्दाः समुदायेष्वपि वर्तन्ते इति न्यायात् ।	११६
२ क्षीरकुम्भस्य मधुकुम्भो वत्स ।	२४
३ गिम्हकालरुक्खछाहीव	३४०
४ गौण-मुख्ययोर्मुख्ये सम्प्रत्ययः इति न्यायात् ।	४०३
५ जहा उद्देसो तहा णिद्देसो।	१०, १४५, ३२३, ३७७, ४००.

४ ग्रन्थोल्लेख

पृष्ठ

१ अप्पाबहुगसुत्त

१. तसरासिमल्लिइूण थुत्तबंधप्पाबहुगसुत्तादो णज्जदे । १३२

२ करणाणिओगसुत्त

१. ण च सत्तरज्जुबाहल्लं करणाणिओगसुत्तविरुद्धं, तस्स तत्थ विधिप्पडिसेधाभावादो ।

३ कालसुत्त

१. 'वे सत्त दस चोद्दस सोलसट्ठारस य वीस बावीसा' एदीए गाहाए सह एदस्स सुत्तस्स किण्ण विरोहो होदि ? ण होदि विरोहो, भिण्णविसयत्तादो । तं जहा– थूलं सुहुमं बंधप्पडिबद्धं । कालसुत्तं पुण संजमगदविसयं दिट्ठमिदि । २८४

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

४ खुद्दाबंधसुत्त

१. कदजुम्मेहि पंचिंदियतिरिक्ख-पज्जत्त-जोणिणिजोविसिय-वेंतरदेव-आहारकालेहि खुद्दाबंधसुत्तसिद्धेहि अकदजुम्मजगपदरे भागे हिदे एदाओ रासीओ सछेदाओ होज्ज ? ण च एवं, जीवाणं छेदाभावा । १८४

२. खुद्दाबंधम्मि उववादपरिणामसासणाणमेक्कारहचोद्दसभागपोसणपरूवयसुत्तादो च णव्वदे । २०६

५ खेत्ताणिओगद्दार

१. एदेसिं चेव खेत्ताणिओगद्दारोधम्हि उत्तपरूवणाए तुल्ला । २४५

६ गाहासुत्त (कसायपाहुड)

१. 'आवलिय अणागारे' ....(३६–३८) इदि गाहासुत्तादो (कसायपाहुड) ३९१

७ जीवट्ठाण

१. जीवट्ठाणादिसु वग्गकालो ण थूलो त्ति तस्साभावो ण घोसुं सक्किज्जदे, एत्थ छदव्वपदुप्पायणे अहियाराभावा । ३१६

८ जीवसमास

१. जीवसमासाए वि उत्तं–'छप्पंचणवविहाणं..... ... ३१५

९ णिरयाउबंधसुत्त

१. 'एक्कं तिय सत्त दस'.....इदि णिरयाउबंधसुत्तादो । ३६२

१० तच्चत्थसुत्त (तत्त्वार्थसूत्र)

१. तह णिद्धपिछाइरियप्पयासिदतच्चत्थसुत्ते वि वत्तणापरिणामकिया परत्वापरत्वे च कालस्य' इदि ववहारकालो परूविदो। ३१६

११ तिलोयपण्णत्ति

१. एसा तप्पाओग्गसंखेज्जरूवाहियजंबूदीवछेदणयसहिदवीवसायरुवमेत्तरज्जुच्छेदपमाणपरिक्खाविहो ण अण्णाइरिओवदेसपरंपराणुसारिणी केवलं तु तिलोयपण्णत्तिसुत्ताणुसारिओ विसियदेवभागहारपदुप्पाइयसुत्तावलंबिजुत्तिबलेण पयदगच्छसाहणट्ठमम्हेहि परूविदा, प्रतिनियतसूत्रावष्टम्भबलविजृम्भितगुणप्रतिपन्नप्रतिबद्धासंख्येयावलिकावहारकालोपदेशवत् आयतचतुरस्रलोकसंस्थानोपदेशवद्वा। १५७

१२ दव्वाणिओगद्दार

१. किं च दव्वाणियोगद्दारवक्खाणम्हि चुण्णहेट्ठिम-उवरिमविपप्पा अभावमुवदुक्कंते, अवग्गसमुट्ठिदलोगत्ताहो।

२. दव्वाणिओगद्दारे वि तत्थ एगगुणट्ठाणदव्वस्स पमाणपरूवणादो य। १६२-६३

१३ परियम्म

१. जत्तियाणि वीवसागरुवाणि जंबूदीवछेदणाणि च रूवाहियाणि तत्तियाणि रज्जुछेदणाणि त्ति परियम्मेण एवं वक्खाणं किण्ण विरुज्झदे ? एदेण सह विरुज्झदि, किंतु सुत्तेण सह ण विरुज्झदि। तेणेवस्स वक्खाणस्स गहणं कायव्वं, ण परियम्मस्स; तस्स सुत्तविरुद्धत्तादो। ण सुत्तविरुद्धं वक्खाणं होदि, अइप्पसंगादो। १५६

२. रज्जू सत्तगुणिदा जगसेढी, सा वग्गिदा जगपदरं, सेढीए गुणिदजगपदरं घणलोगो होदि त्ति परियम्मसुत्तेण सव्वाइरियसम्मदेण विरोहुप्पसंगादो। १८४

३. के वि आइरिया कम्मट्ठिदीदो बादरट्ठिदी परियम्मे उप्पण्णा त्ति कज्जे कारणोवयारमवलंबिय बादरट्ठिदीए चेव कम्मट्ठिदिसण्णमिच्छंति, तन्न घटते। ४०३

४. कम्मट्ठिदिमावलियाए असंखेज्जदिभागेण गुणिदे बादरट्ठिदी आदा त्ति परियम्मवयणेण सह एवं सुत्तं विरुज्झदि त्ति णेदस्स ओक्खत्तं, सुत्ताणुसारि परियम्मवयणं ण होदि त्ति तस्सेव ओक्खत्तप्पसंगा। ३९०

१४ पंचत्थिपाहुड

१. वुत्तं च पंचत्थिपाहुडे–'कालो त्ति य ववएसो' इत्यादि १-४ गाथा. ३१५

२. वुत्तं च पंचत्थिपाहुडे ववहारकालस्स अत्थित्तं–सब्भावसहावाणं..... ५-९ गाथा. ३१७

१५ वग्गणसुत्त

१. अंगुलस्स असंखेज्जविभागमेत्तबाहल्लतिरियपदरम्हि सेढीए असंखेज्जविभागमेत्तओगाहणवियप्पेहि गुणिदे तत्थ अत्थिओ रासि सत्थियमेत्ताओ णिरयगइपाओग्गाणुपुव्वीए पयडीओ.....त्ति वग्गणसुत्तादो। १७५-१७६

२. महामच्छोगाहणम्हि एगबंधणबद्धछज्जीवणिकायाणमत्थित्तं कधं णव्वदे ? वग्गणम्हि उत्तअप्पाबहुगादो। २१५

१६ वेदणाखेत्तविधाण

१. 'एगजीवस्स जहण्णोगाहणा वि अंगुलस्स असंखेज्जविभागमेत्ता' त्ति वेदणाखेत्तविधाणे परूविदत्तादो।

२. पत्तेयसरीरपज्जत्तजहण्णोगाहणादो बीइंदियपज्जत्तजहण्णोगाहणा असंखेज्जगुणा त्ति कुदो णव्वदे ? वेदणाखेत्तविहाणम्हि वुत्तओगाहणदंडयादो। ९४

१७ संताणिओगद्दार

१. जदि सासणा एइंदिएसु उप्पज्जंति, तो तत्थ दो गुणट्ठाणाणि होंति। ण च एवं, संताणिओगद्दारे तत्थ एक्कमिच्छादिट्ठिगुणप्पदुप्पायणादो।

२. एवं पि बद्धायुसंजदासंजदसुत्तविरुद्धं ति णासंकेयव्वं। १५६

---

५ पारिभाषिक शब्दसूची

सूचना— यहां शब्दोंके केवल उन्हीं पृष्ठोंका उल्लेख किया गया है जहां उनके विषयमें कुछ विशेष कहा गया पाया जाता है।

शब्द	पृष्ठ	शब्द	पृष्ठ
अ		अज्ञान	४७६
अकर्मभाव	३२७	अणुव्रत	३७८
अकृतयुग्मअप्रतर	१८५	अतिप्रसंग	२३, २०८
अकृत्रिम	११, ४७६	अतीतकालविशेषितक्षेत्र	१४५
अक्षयराशि	३१९	अतीतानागतवर्तमान–कालविशिष्टक्षेत्र	१४८
अगृहीतग्रहणाद्धा	३२७, ३२९	अतीन्द्रिय	१५८
अखिलद्रव्यस्पर्शन	१४३	अर्थ	२००
अचक्षुदर्शन	१६५, १७०, २३६, २६२, २०८	अर्थपद	१८७

शब्द	पृष्ठ
अद्धा	३१८
अर्धतृतीयक्षेत्र	३७, १६९
अर्धतृतीयद्वीपसमुद्र	२१४
अधोलोक	९, २५६
अधोलोकक्षेत्रफल	१६
अधोलोकप्रमाण	३२, ४१, ५०
अधःप्रवृत्तकरण	३३५, ३५८
अधःप्रवृत्तविशोधि	३३६
अधस्तनविकल्प	१८५
अन्तरकाल	१७९
अन्तर्मुहूर्त	३२४, ३८०
अनन्त	३३८
अनन्तकाल	३२८
अनन्तव्यपदेश	४७८
अनन्तानुबन्धी	३३६
अनर्पित	३९३, ३९८
अनवस्था	३२०
अनवस्थाप्रसंग	१६३
अनाकारोपयोग	३९१
अनादि	४३६
अनादिमिथ्यादृष्टि	३३५
अनाहारक	४८७
अनिवृत्तिकरण	३३५, ३५७
अनिवृत्तिक्षपक	३३६
अनुकृष्टि	३५५
अनुगम	९, ३२२
अनुत्तरविमान	२३६, ३८६
अनुदिशविमान	८१, २३६ २४०, ३८६
अनुसंचिताद्धा	३७६
अन्योन्याभ्यस्त	१५९, १९६, २०२
अपकर्षण	३३२
अपक्रमणोपक्रमण	२६५
अपकर्षषट्कनियम	१७९
अपनयनध्रुवराशि	२०१
अपनयनराशि	२००
अपर्याप्त	९१
अपराजित	३८६
अपरीतसंसार	३३५
अपवर्तना	३८, ४१, ४३, ४७, १०३ १२६, १३०
अपवर्तनाघात	४६३
अपित	३९३ ३४८,
अपूर्वकरण	३३५, ३५७
अपूर्वकरणक्षपक	३३६
अपूर्वकरणगुणस्थान	३५३
अप्रशस्ततेजससशरीर	२८
अभिजित्	३१८
अभिव्यक्तिजनन	३२२
अभेद	१४४
अमूर्त	१४४
अयन	३१७, ३९५
अयोगी	३३६
अर्यमन्	३१८
अरुण	३१९
अलोकाकाश	९, २२
अल्पबहुत्व	२५
अवक्षिप्तप्रसंग	३९०
अवर्गसमुत्थितलोक	१८५
अवगाहनलक्षण	८
अवगाहना	२५, ३०, ४५
अवगाहनागुणकार	४४, ९८
अवगाहनाविकल्प	१७६
अवगाह्यमान	२३
अवधिक्षेत्र	३८, ७९
अवबोध	३२२
अवहारकाल	१५७, १८५

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

शब्द	पृष्ठ
अवसन्नासन्न	२३
अवसर्पिणी	३८९
अविभागप्रतिच्छेद	१५
अविसंवाद	१५८
अष्टमपृथिवी	९०, १६४
अष्टाविंशतिसत्कर्मिक–३४९, ३५९, ३६२, ३६६, मिथ्यादृष्टि ३७०, ३७५, ३७७, ४३९, ४४३, ४६१	
असद्भावस्थापनाकाल	३१४
असंयम	४७७
असंयमबहुलता	२८
असंयतसम्यग्दृष्टि	३५८
असंख्येयराशि	३३८

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

शब्द	पृष्ठ
आ	
आकाश	८, ३१९
आकाशप्रदेश	१७६
आगमद्रव्यकाल	३१४
आगमद्रव्यक्षेत्र	५
आगमद्रव्यस्पर्शन	१४२
आगमभावकाल	३१६
आगमभावक्षेत्र	७
आगमभावस्पर्शन	१४४
आज्ञाकनिष्ठता	२८
आदित्य	१५०
आदेश	१०, १४४, ३२२
आदेशनिर्देश	१४५, ३२२
आधार	८
आधेय	८
आनुपूर्वीनामकर्म	३०
आनुपूर्वीप्रायोग्यक्षेत्र	१९१
आबाधा	३२७
आयत	११, १७२
आयतचतुरस्रक्षेत्र	१३
आयतचतुरस्रलोकसंस्थान	१५७
आयाम	१३, १६५, १८१
आरण	१६५, १७०, २३६
आवलिका	४३
आवली	३१७, ३४०, ३९१
आवास	७८
आहारकसमुद्घात	२८
आहारवर्गणा	३३२
आहारशरीर	४५
इ	
इच्छाराशि	५७, ७१, १९९, ३४१
इन्द्र	३१९
इन्द्रक	१७४, २३४
ई	
ईशान	२३५
ईषत्प्राग्भारपृथिवी	१६२
उ	
उच्छ्रयणी	८०
उत्सानसंख्या	३७८
उत्पत्तिक्षेत्र	१७९
उत्पत्तिक्षेत्रसमानक्षेत्रान्तर	१७९
उत्पाद	३३६
उत्तरकुरु	३६५
उत्तराभिमुखकेवली	५०
उत्सर्पिणी	३८९
उत्सेध	१३, २०, ५७, १८१
उत्सेधकृति	२१
उत्सेधकृतिगुणित	५१
उत्सेधगुणकार	२१०
उत्सेधयोजन	३४

शब्द	पृष्ठ
उत्सेधांगुल	२४, १६०, १८५
उत्सेधांगुलप्रमाण	४०
उदयादिनिषेक	३२७
उद्वर्तन	३८३
उद्वेध	१७
उपक्रमणकाल	७१, १२९
उपक्रमणकालगुणकार	८५
उपपाद	२६, १६६, २०५
उपचार	२०४, ३३९
उपपादकाल	३२२
उपपादक्षेत्र	८५
उपपादक्षेत्रप्रमाण	१६५
उपपादक्षेत्रायाम	७९
उपपादभवनसम्मुखवृत्तक्षेत्र	१७२
उपपादयोग	३३२
उपपादराशि	३१
उपपादस्पर्शन	१६५
उपमालोक	१८५
उपरिमउपरिमग्रैवेयक	८०
उपरिमविकल्प	१८५
उपशमश्रेणी	३५१, ४४७
उपशमसम्यक्त्वगुण	४४
उपशमसम्यक्त्वाद्धा	४४, २३९, ३४१, ३४२, ३७४, ४८३
उपशान्तकाल	३५३
उपशामक	३५२, ४४६
उपार्धपुद्गलपरिवर्तन	५३६
उपवास	३९१
ऊ	
ऊर्ध्वकपाटछेदनकनिरूपण	१७६
ऊर्ध्वलोक	९, २५६
ऊर्ध्वलोकक्षेत्रफल	१६
ऊर्ध्वलोकप्रमाण	३२, ४१, ५१
ऊर्ध्ववृत्त	१७२
ऋ	
ऋजुगति	२६, २९, ८०
ऋजुवलन	१८०
ऋतु	३१७, ३९५
ए	
एकक्षेत्रावगाढ	३२७
एकत्ववितर्कअवीचारशुक्लध्यान	३९१
एकखंड	२२६
एकनारकावासविष्कम्भ	१८०
ऐ	
ऐरावत	४५
ओ	
ओघ	९, १४४, ३२२
ओघनिर्देश	१४५, ३२३
ओघप्ररूपणा	२५९
औ	
औदारिकशरीर	२४
औपचारिकनोकर्मद्रव्यक्षेत्र	७
अं	
अंगुल	५७
अंगुलगणना	४०
क	
कथन	१४४, ३२२
कपाटगतकेवली	४९
कपाटसमुद्घात	२८, ४३६
करण	३३५
करणगाथा	२०३
कर्ण	१४
कर्णक्षेत्र	१५
कर्णकार	७८
कर्म	२३
कर्मद्रव्यक्षेत्र	६
कर्मबन्ध	४७६
कर्मभूमि	१४, १६९

शब्द	पृष्ठ

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

कर्मभूमिप्रतिभाग	२१४
कर्मपुद्गल	३३२
कर्मपुद्गलपरिवर्तन	३२२, ३२५
कर्मास्रव	४७७
कर्मस्थिति	३९०, ४०२, ४०७
कर्मस्थितिकाल	३२२
कल्प	३२०
कल्पवासिदेव	२३८
कषाय	३९१
कषायसमुद्घात	२६, १६६
कापिष्ठ	२३५
कार्मणवर्गणा	३३२
कार्मणशरीर	२४, १६५
काययोग	३९१
कायस्थितिकाल	२३२
कायोत्सर्ग	५०
काल	३१८, ३२१
कालपरिवर्तन	३२५
कालपरिवर्तनकाल	३३४
कालपरिवर्तनप्रकार	३३४
कालसंसार	३३३
कालस्पर्शन	१४१
कालाणु	३१५
कालानुगम	३१३, ३२२
कालोदकसमुद्र	१५०, १९४, १९५
काष्ठा	३१७
कुलशैल	१९१, २१८
कृतयुग्म	१८४
कृति	२३२
कृष्टीकरण	३९१
कृष्णादिमिश्रभावकाल	३२४
केवलज्ञान	३९१
केवलदर्शन	३९१
केवलिसमुद्घात	२८
कोडाकोडी	१५२
कोटी	१४
कोष्ठकजघन्यक्षेत्र	४४४

शब्द	पृष्ठ
क्रोधाद्धा	३९१
कांक्षक	४३५
कांडकजुगति	७८, २१६
कुंडलपर्वत	१९३
क्षण	३१७
क्षपक	३५४, ४४७
क्षपकश्रेणी	३३५, ४४७
क्षपकश्रेणीप्रायोग्यविशोधि	३४७
क्षायिकसम्यग्दृष्टि	३५७
क्षीणकषाय	३३६, ३५६
क्षुद्रभव	३९०
क्षुद्रभवग्रहण	३७१, ३७९, ३८८, ३९१, ४०१, ४०६
क्षेत्र	६, २३१
क्षेत्रपरिवर्तन	३२५
क्षेत्रपरिवर्तनकाल	३३४
क्षेत्रपरिवर्तनप्रकार	,,
क्षेत्रफल	१८०
क्षेत्रफलशलाका	१९५
क्षेत्रफलसंकलना	२००
क्षेत्रसंसार	३३३
क्षेत्रस्पर्शन	१४१
क्षेत्रानुगम	२

ख

खातफल	१२, १८१, १८६

ग

गगन	८
गच्छ	१५३, २०१
गच्छराशि	१५४
गच्छसमीकरण	१५३
गणित	३५, २०९
गर्भोपक्रान्त	१६३
गुण	२००
गुणकार	७६
गुणकारशलाका	१९६

शब्द	पृष्ठ
गुणकारशलाकासंकलन	२०१
गुणपरावृत्ति	४०९, ४७०, ४७१
गुणस्थितिकाल	३२२
गुणान्तरसंक्रमण	३२५
गुह्यकाचरित	८
गृहीतग्रहणाद्धा	३२८
गृहीतग्रहणाद्धाशलाका	३२९
गोमूत्रकगति	२९
गोम्मिहक्षेत्र	३४
गौणभाव	१४५
ग्रह	१५१
ग्रैवेयक	२३६

घ

आचार्य श्री [illegible] जी महाराज	२०
घनरज्जु	१४६
घनलोक	१८, १८४, २५६
घनलोकप्रमाण	५०
घनांगुल	१०, ४३, ४४, ४५, १७८
घनांगुलगुणकार	३३
घनांगुलप्रमाण	,,
घनांगुलभागहार	९८
घातसूक्ष्मभवग्रहण	३९२
घ्राणेन्द्रिय	३९१

च

चक्षुरिन्द्रिय	३९१
चतुर्थपृथिवी	८९
चतुर्थसमुद्रक्षेत्र	१९८
चतुर्दशगुणस्थाननिबद्ध	१४८
चतुरस्र	१७८
चन्द्र	१५०, ३१९
चन्द्रबिम्बशलाका	१५९
चित्रा	२१७
चित्रोपरिमतल	२३९

छ

छिन्नायुष्ककाल	१६३

ज

जगत्प्रतर	१८, ५२, १५०, १५१, १५५, १६९, १८०, १८४, १९९, २०१, २०२, २३३
जगत्श्रेणी	१०, १८, १८४
जघन्यावगाहना	२२, ३३
जम्बूद्वीप	१५०
जम्बूद्वीपक्षेत्र	१९४
जम्बूद्वीपच्छेदनक	१५५
जम्बूद्वीपशलाका	१९६
जयन्त	३८९
जया	३१९
जाति	१९३
जिह्वेन्द्रिय	३९१
जीवसमास	३१
ज्योतिष्कजीवराशि	१५५
ज्योतिष्कस्वस्थानक्षेत्र	१६०
ज्योतिष्कसासादनसम्यग्दृष्टि-स्वस्थानक्षेत्र	१५०

झ

झल्लरीसंस्थान	११, २१

त

तद्भवसामान्य	३
तद्व्यतिरिक्तनोआगमद्रव्य	३१५
तद्व्यतिरिक्तनोआगमद्रव्यस्पर्शन	१४२
तलबाहल्य	१३
तारा	३५३
तालप्रमाण	४०
तालवृक्षसंस्थान	२३, २३
तिथि	३३९
तिर्यक्क्षेत्र	३६

शब्द	पृष्ठ
तिर्यक्लोक	३७, ३६९, ३८३
तिर्यक्लोकप्रमाण	४३, ३५०
तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी	३७६
तिर्यग्प्रतर	२११
तिर्यग्स्वस्थानस्वस्थानक्षेत्र	१९४, २०४
तिर्यंच	३२२
तृतीयपृथिवी	८९
तृतीयपृथिवीअधस्तनतल	२२५
तैजसशरीर	२४
तैजसशरीरसमुद्घात	२७
तोरण	१६५
त्र्यंश	१७८
त्रिकोणक्षेत्र	१३
त्रिसमयाधिकावली	३३२
त्रैराशिकक्रम	४८

द

दर्शनमोहनीय	३३५
दात्रक	३१९
दार्ष्टान्त	२१
दिवस	३३७, ३९५
दिशा	२२६
द्वितीयदंडस्थित	७२
द्वितीयपृथिवी	८९
द्विसमयाधिकावली	३३२
दुक्खम्नदुक्खाहुक्षेत्रफल	२१८
दृष्टान्त	२२
देवकुरु	३६५
देवक्षेत्र	३६
देवता	३१९
देवपथ	८
देशामर्शक	५७
देशोनलोक	५६
दैत्य	३१८
दंड	३०
दंडक्षेत्र	४८
दंडगतकेवली	,,
दंडसमुद्घात	२८
द्रव्य	३३१, ३३७
द्रव्यकाल	३१३
द्रव्यक्षेत्र	३
द्रव्यत्व	३३६
द्रव्यपरिवर्तन	३२५
द्रव्यलिंग	२०८
द्रव्यस्त्रीलिंगी	४२७, ४२८
द्रव्यस्पर्शन	१४१
द्रव्यार्थिक	,,
द्रव्यार्थिकनय	३, १४५, १७०, ३२२ ३३७, ४४४
द्रव्यार्थिकप्ररूपणा	२५९

ध

धन	१५९
धनुष्य	४५, ५७
धरणीतल	२३६
धर्म	३१९
धातकीखंड	१५०, १९५
धूर्व	३२९
ध्रुवत्व	१४१

न

नक्षत्र	१५१
नन्दा	३१९
नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी	१७५, १९१
नवग्रैवेयकविमान	३८५
नामकाल	३१३
नामक्षेत्र	३
नामस्पर्शन	१४१
नारक	५७
नारकसर्वावास	१७९
नारकावास	१७७

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

शब्द	पृष्ठ
मासी	३१८
निक्षेप	२, १४१
निगोदजीव	४०६
निगोदशरीर	४७८
निचितकर्म	७६
निमित्त	३१७
निर्देश	९, १४४, ३२२
निःसूचीक्षेत्र	१२
निस्सरणात्मकतैजसशरीर	२७
नैर्ऋत	३१८
नोआगमद्रव्यकाल	३१४
नोआगमद्रव्यस्पर्शन	१४२
नोआगमभावकाल	३१६
नोआगमभावक्षेत्र	७
नोआगमभावस्पर्शन	१४४
नोकर्मद्रव्य	६
नोकर्मपर्याय	३२७
नोकर्मपुद्गल	३३२
नोकर्मपुद्गलपरिवर्तन	३२५
प	
पक्ष	३१७, ३१५
पन्नग	२३२
परप्रत्यय	२३४
परमाणु	२३
परमार्थकाल	३२०
परिधि	१२, ४३, ४५, २०९, २२२
परिधिविष्कम्भ	३४
परिमंडलाकार	१७८
पर्यन्त	१९
पर्याप्त	८६, ३६२
पर्याप्ति	३६२
पर्याय	३३७
पर्यायनय	,,
पर्यायार्थिकजन	१४९
पर्यायार्थिकनय	३, १४५, १७०, ३२२, ४४४
पर्यायार्थिकप्ररूपणा	१४९, १७२, १८६, २०७, २५९
पर्व	३१७
पल्य	९, १८५, ३८९
पल्योपम	९, ७७, १८५, ३१७, ३४०, ३७९
पल्योपमशतपृथक्त्व	४३७
पल्यंकासन	४९
पश्चात्कृतमिथ्यात्व	३४९
पाणिमुक्तागति	२९
पारमार्थिकनोकर्मद्रव्यक्षेत्र	७
पिंड	१४४
पुद्गलपरिवर्तन	३६४, ३८८, ४०६
पुद्गलपरिवर्तनकाल	३२७, ३३४
पुद्गलपरिवर्तनवार	३३४
पुद्गलपरिवर्तनसंसार	३३३
पुष्करद्वीप	१९५
पुष्करद्वीपार्ध	१५०
पुष्करसमुद्र	१९५
पूर्वदन्त	३१९
पूर्व	३१७
पूर्वकोटी	३४७, ३५०, ३५६, ३६६
पूर्वकोटीपृथक्त्व	३६८, ३७३, ४००, ४०८
पूर्वाभिमुखकेवली	५०
पृथिवी	३६०
पृथक्त्ववितर्कवीचार-शुक्लध्यान	३२१
पंकबहुलपृथिवी	२३२
पंचद्रव्याधारलोक	१८५
पंचमपृथिवी	८९
पंचांश	१७८
पंचेन्द्रियतिर्यग्गति-प्रायोग्यानुपूर्वी	१९१
प्रकाशन	३२२
प्रकीर्णक	१७४, २३४
प्रकृतिविकल्प	१७६
प्रतरगतकेवली	१९
प्रतरगतकेवलिक्षेत्र	५६

शब्द	पृष्ठ
प्रतरसमुद्घात	२९, ४३६
प्रतराकार	२०४
प्रतरावली	३८९
प्रतरांगुल	१०, ४३, ४४, १५१, १६०, १७२
प्रतरांगुलभागहार	९८
प्रतिभाग	८२
प्रत्यक्ष	३३९
प्रथमपृथिवी	८८
प्रथमपृथिवीस्वस्थानक्षेत्र	१८२
प्रत्यवस्थान	,,
प्रत्यासत्ति	३७७
प्रत्यासन्नविपाकानुपूर्वीफल	१७५
प्रधानभाव	१४५
प्रभापटल	८०
प्रभासप्रभासपरावर्तसहस्र	३४७
प्रमाण	३९६
प्रमाणघनांगुल	३५
प्रमाणलोक	१८
प्रमाणराशि	७१, ३४१
प्रमाणवाक्य	१४५
प्रमाणांगुल	४८, १६०, १८५
प्रमेयत्व	१४४
प्रवेध	१९१
प्रशस्ततैजसशरीर	२८
प्रस्तार	५७
फ	
फलराशि	५७, ७१, ३४१
ब	
बल	३१८
बद्धायुष्कघात	२८३
बद्धायुष्कमनुष्यसम्यग्वृष्टि	६९
बादरनिगोदप्रतिष्ठित	३५१
बादरस्थिति	३९०, ४०३
बाहुल्य	१२, ३५, १७२
बाह्यांगित	१५१
बेलावली	३३२
ब्रह्म	२३५

शब्द	पृष्ठ
ब्रह्मोत्तर	२३५
भ	
भद्रा	३१९
भरत	४५
भवनवासिउपपादक्षेत्र	८०
भवनवासिक्षेत्र	७८
भवनवासिजगप्रतरणि	,,
भवनवासिजगमूल	१६४
भवनवासिप्रायोग्यानुपूर्वी	२३०
भवनवासी	१६२
भवनविमान	,,
भवपरिवर्तन	३२५
भवपरिवर्तनकाल	३३४
भवपरिवर्तनवार	,,
भवस्थिति	३३३, ३९८
भवस्थितिकाल	३२२, ३२९
भव्यत्व	४८०
भव्यद्रव्यस्पर्शन	१४२
भव्यनोआगमद्रव्यकाल	३१४
भव्यराशि	३३९
भागहार	७१
भानु	३१९
भाग्य	३१८
भावकाल	३१३
भावक्षेत्र	३
भावक्षेत्रागम	६
भावपरिवर्तन	३२५
भावपरिवर्तनकाल	३३४
भावपरिवर्तनवार	,,
भावसंसार	,,
भावस्थितिकाल	३२२
भावस्पर्शन	१४१
भुज	१४
भूत	२३२
भूमि	८
भेद	१४४

शब्द	पृष्ठ
भेदप्ररूपणा	२५९
भोगभूमि	२०९
भोगभूमिप्रतिभाग	१६८
भोगभूमिप्रतिभागद्वीप	२११
भोगभूमिसंस्थानसंस्थित	[illegible]
भंग	३३६, ४११
भंगप्ररूपणा	४७५
भ्रमरक्षेत्र	३३
म	
मध्यमक्षेत्रफल	१३
मध्यमगुणकार	४१
मध्यमप्रतिपत्ति	३४०
मध्यमविस्तार	११
मध्यलोक	९
मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी	१७९
मनुष्यलोकप्रमाण	४२
मनोयोग	३९१
मरण	४०९, ४७०, ४७१
महामत्स्यक्षेत्र	३६
महामत्स्यक्षेत्रस्थान	६६
महाशुक्र	२३५
मागधप्रस्थ	३२०
मानाद्धा	३९१
मानुषक्षेत्र	१७०
मानुषक्षेत्रव्यपदेशान्यथानुपपत्ति	१७१
मानुषोत्तरपर्वत	१९३
मानुषोत्तरशैल	१५०, २१६
मायाद्धा	३९१
मारणान्तिककाल	४३
मारणान्तिकक्षेत्रायाम	६६
मारणान्तिकराशि	८५
मारणान्तिकसमुद्घात	२६, १६६
मास	३१७, ३९५
माहेन्द्र	२३५
मिथ्यात्व	३३६, ३५८, ४७७
मिथ्यात्वादिकारण	२४
मिश्रग्रहणाद्धा	२२९, ३२८
मिश्रद्रव्यस्पर्शन	१४३
मुक्तमारणान्तिक	१७५, २३०
मुक्तमारणान्तिकराशि	७६
मुख	१४६
मुखउत्सेधगुणकारभागहार की प्ररूपणा	४८
मुखविस्तार	१३
मुहूर्त	३१७, ३९०
मूल	१४६
मूलाग्रसमास	३३
मृदंगक्षेत्र	५१
मृदंगमुखवृत्तप्रमाण	"
मृदंगसंस्थान	२२
मृदंगाकार	११, १२
मेरु	१९३
मेरुतल	२०४
मेरुपर्वत	२१८
मेरुमूल	२०५
मेरु	३१८
मंदरमूल	८३
य	
यम	३१९
यावृच्छिकप्रसंग	१८
युग	३१७
योग	४७७
योगनिरोध	३५६
योगपरावृत्ती	४०९
योग्य	३१९
र	
रज्जु	११, १३, १६५, १६७
रज्जुच्छेदनक	१५५
रज्जुप्रतर	१५०, १६४
रति	४५
राक्षस	२३२
रिक्ता	३१९
रुचकपर्वत	१९३
रूप	२००
रूपप्रक्षेप	१५०

शब्द	पृष्ठ
कपोतावलिका	४३
रोहण	३१८
रोहू	,,
रोध	१९
ल	
लब्धिसम्पन्नमुनिवरं	११७
लयसमम	३५३
लव	३१७
लवणसमुद्र	१५०, १९४
लवणसमुद्रक्षेत्रफल	१९५, १९८
लाघव	२३५
लांगलिकगति	२९
लेश्यापरावृत्ति	४७०, ४७१
लोक	९, १०
लोकनाली	२०, ८३, १४८, १६४, १७०, १९१
लोकपूरणसमुद्घात	२९, ४३६
लोकप्रतर	१०
लोकप्रमाण	१४६, १४७
लोकाकाश	९
लोकालोकविभाग	२२
लोभाद्धा	३९१
व	
वर्ग	२०, १४६
वर्गण	२००
वर्गमूल	२०२
वचनयोग	३९१
वर्तमानविशिष्टक्षेत्र	१४५
वर्धनकुमारमिथ्यात्वकाल	३२४
वर्धितराशि	१५४
वर्ष	३२०
वर्षपृथक्त्व	३४८
वर्षसहस्र	४१८
वाच्यवाचकशक्ति	२
वालवलय	५१
वायु	३१९
वारुण	३१८
विक्षोभ	३१९
विगूर्वणाविच्छद्धिप्राप्त	१७०
विगूर्वमानएकेन्द्रियराशि	८२
विग्रह	६४, १७५
विग्रहगति	२६, ३०, ४३, ८०
विग्रहगतिनामकर्म	४३४
विजय	३१८, ३८६
विदिशा	२२६
विदेह	४५
विदेहसंयतराशि	,,
विनाश	३३६
विन्यासक्रम	७६
विमान	१७०
विमानतल	१६५
विमानशिखर	२२७
विरलन	२०१
विरह	३९०
विशेष	१४५
विष्कम्भ	११, ४५, १४७
विष्कम्भचतुर्भाग	२०९
विष्कम्भवर्गगुणितरज्जु	८५
विष्कम्भवर्गसंयशगुणकरणी	२०९
विष्कम्भसूचीगुणितश्रेणी	८०
विष्कम्भार्ध	१२
विसंयोजन	३३६
विस्तार	१६५
विस्रसोपचय	२५
विहायोगतिनामकर्म	३२
विहारवत्स्वस्थान	२६, ३२, १६६
वृत्त	२०९
वृद्धि	१९, २८
वेत्रासन	११, २१
वेत्रासनसंस्थित	२०
वेदनासमुद्घात	२६, ७९, ८७, १८६
वेदान्तरसंक्रान्ति	३६९, ३७३
वेष	२०
वेलधर	२३२

शब्द	पृष्ठ
वैक्रियिकसमुद्घात	२६, १६६
वैजयन्त	३१९, ३८६
वैरोचन	३१८
वैश्रवणदेव	,,
व्यन्तरदेव	१६१
व्यन्तरदेवराशि	,,
व्यन्तरदेवसासादनसम्यग्दृष्टि-स्वस्थानक्षेत्र	,,
व्यन्तरावास	१६१, २३१
व्यभिचार	४६, ३२०
व्यवहारकाल	३१७
व्याख्यान	७९, १४४, १६५, ३४१
व्याघात	४०९
व्यापक	८
व्यास	२२१
व्यंजनपर्याय	३३७

श

शत	२३५
शतसहस्र	,,
शतार	२३६
शलाका	४३५, ४८४
शलाकासंकलना	२००
शशिपरिवार	१५२
शालभंजिका	१६५
शुक्र	२६५
शुक्लक्षेत्र	३५
श्रेणी	७६, ८०
श्रेणीबद्ध	१७४, २३४
श्वेत	३१८
श्रोत्रेन्द्रिय	३९१

ष

षडंश	१७८
षट्कापक्रमनियम	२१८, २२६
षष्ठपृथिवी	९०

स

सचित्तद्रव्यस्पर्शन	१४३
सत्त्व	१४४
सबुक्कंभदुवाह	१८७
सद्भावस्थापनाकाल	३१४
सप्तमपृथिवी	९०
सप्तमपृथिवीनारक	१६३
समचतुरस्र	८३
समपरिमंडलसंस्थित	१७२
समय	३१७, ३१८
समानजातीय	१६३
समीकरण	१७८
समीकृत	५१
समुद्घात	२६
समुद्घातकेवलिजीवप्रदेश	४५
समुद्राभ्यन्तरप्रथमपंक्ति	१५१
सम्प्रदायविरोधाशंका	१५८
सम्यक्त्व	३५८
सम्यग्मिथ्यात्व	,,
सम्यग्मिथ्यादृष्टि	,,
सयोगिकाल	३५७
सयोगी	३३६
सर्वलोकप्रमाण	४२
सर्वाकाश	१८
सर्वार्थसिद्धि	२४०, ३८७
सर्वार्थसिद्धिविमान	८१
सर्वाद्धा	३६३
सहस्र	२३५
सहस्रार	२३६
सहानवस्थानलक्षणविरोध	२५९, ४१२
सागर	१०, १८५
सागरोपम	१०, १८५, ३१७, ३६०, ३८०, ३८७
सागरोपमशतपृथक्त्व	४००, ४४१, ४८५
सान्तरोपक्रमणद्वार	३४०
सादृश्यसामान्य	३
साध्य	३८६
साधन	,,
सानत्कुमार	२३५

शब्द	पृष्ठ
साम्परायिक	३९१
सारभट	३१८
सावित्र	३१९
सासादनकाल	३५१
सासादनमारणान्तिकक्षेत्रायाम	१६२
सासादनलब्धकस्वपृष्ठायत	३२५
सिद्ध	४७७, ३३६
सिद्धसेन	३१९
सिद्धार्थ	,,
सुगन्धर्व	,,
सूक्ष्मक्षपक	३३६
सूचीक्षेत्रफल	१६
सूच्यंगुल	१०, २०३, २१२
सूर्यक्षेत्र	१३
सूर्य	३१९, १५०
सौधर्म	२३५
सौधर्मविमानशिखरध्वजदंड	२३९
सौधर्मादि	१६२
संकलन	१४४, १९९
संकलना	१५९
संख्येयराशि	३३८
संयतराशि	४६
संयतासंयतउत्सेध	१६९
संयतासंयतस्वस्थानक्षेत्र	,,
संयम	३४३
संयमासंयम	३४३, ३५०
संयोग	१४४
संवत्सर	३१७, ३९५
संवर्ग	१७
संस्थाननामकर्म	३०
संस्थानविपाकी	१७६
स्वकप्रत्यय	२३४
स्तूपतल	१६२
स्थापना	३, ३१४
स्थापनाकाल	३१३
स्थापनाक्षेत्र	३
स्थापनास्पर्शन	१४९
स्थिति	३३६
स्पर्शन	२३२, १४४, १४१
स्पर्शनानुगम	१४४
स्पर्शनेन्द्रिय	३९१
स्वयंप्रभपर्वत	२२१
स्वयंप्रभपर्वतपरभाग	२१४
स्वयंप्रभपर्वतपरभागक्षेत्र	१६८
स्वयंप्रभपर्वतोपरिमभाग	२०९
स्वयंभूरमणसमुद्र	१९४, १५१
स्वयंभूरमणक्षेत्रफल	१९८
स्वयंभूरमणसमुद्रविष्कम्भ	१६८
स्वस्थान	२६, ९२, १२१
स्वस्थानक्षेत्रमेलापनविधान	१६७
स्वस्थानस्वस्थान	२६, १६६
स्वस्थानस्वस्थानराशि	२१
हरत	५७
हानि	१९
हुताशन	३१९
हेतुवाद	१५८
हेमपाषाण	४७८

आचार्यश्री सुविधिसागर जी महाराज